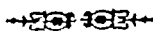


भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,
साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना



सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १-५

प्रातिस्थान

मैनेजर

भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय, नया ससार प्रेस, वाराणसी ।

Sri Dig Jain Sangha Granthamala No 1-V

KASĀYA-PĀHUDAM

V

(ANUBHAG VIHATTI)

BY

GUNADHARACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND

**THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF
VIRASENACHARYA THERE-UPON**

EDITED BY

Pandit Phalachandra Siddhantashastri

EDITOR MAHABANDHA

JOINT EDITOR DHAVALA,

Pandit Bailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirika Siddhantarajna

Pradhanadhyapak Syadoda Digumbara Jain

Vidyapeya Banaras.

PUBLISHED BY

**THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT
THE ALL-INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA
CHAURASI MATHURA**

VIRA SAMVAT 2483] VIKRAMA S. 2013

[1956 A. C.

विषय-परिचय

प्रस्तुत अधिकारका नाम अनुभागविभक्ति है। अनुभाग फलदानशक्तिका कहते हैं। यह दो प्रकारका है—बन्धके समय जो अनुभाग प्राप्त होता है एक वह और बन्धके बाद द्वितीयादि समयोंमें जो अनुभाग रहता है एक वह। बन्धके समय प्राप्त होनेवाले अनुभागका विचार महाबन्धमें किया है। मात्र उसका यहाँ अधिकार नहीं है। यहाँ तो ऐसे अनुभागका विचार किया गया है जो सत्ताके रूपमें बन्ध समयसे लेकर अचरित्यत रहता है। वह बन्धकालमें जितना प्राप्त हुआ है उतना भी हो सकता है और क्रियाविशेषके कारण अन्यप्रकार भी हो सकता है। मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ अट्टाईस हैं। एकवार उत्तर भेदोंका आश्रय लिए बिना और दूसरी वार इनका आश्रय लेकर प्रस्तुत अधिकारमें अनुभागका सांगोपाग विचार किया गया है, इसलिए इसका अनुभागविभक्ति नाम सार्थक है। तदनुसार इस अधिकारके दो भेद हैं—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति। उसमें भी चूर्णिकार आचार्य यतिवृषभने मूलप्रकृति अनुभागविभक्तिकी सूचनामात्र की है। वीरसेनस्वामीने उसका विशेष व्याख्यान उच्चारणावृत्तिके अनुसार तेईस अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर किया है। वे तेईस अनुयोगद्वार ये हैं—संज्ञा, सर्वाणुभागविभक्ति, नोसर्वाणुभागविभक्ति, उष्कृष्टानुभागविभक्ति, अनुष्कृष्टानुभागविभक्ति, जघन्याणुभागविभक्ति, अजघन्याणुभागविभक्ति, सादिअनुभागविभक्ति, अनादिअनुभागविभक्ति, ध्रुवाणुभागविभक्ति, अध्रुवाणुभागविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामिष्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति एक है, इसलिए उसका विचार करते समय सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है।

संज्ञा—घातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा। जीवके अनुजीवी गुणोंका घात करनेवाला होनेसे मोहनीय-कर्मकी घातिसंज्ञा है। उसमें भी यह दो प्रकारकी है—सर्वघाति और देशघाति। अपनेसे सम्बन्ध रखनेवाले जीवगुणका जो पूरी तरहसे घात करता है उसे सर्वघाति कहते हैं और जो पूरी तरहसे घात करनेमें समर्थ न होकर एकदेश घात करता है उसे देशघाति कहते हैं। यहाँ मोहनीयकर्मका उष्कृष्ट अनुभाग सर्वघाति ही होता है, क्योंकि उसका उष्कृष्ट सक्रिष्ट परिणामोंसे सज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव बन्ध करता है। तथा अनुष्कृष्ट अनुभाग सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकारका होता है क्योंकि उसमें जघन्य अनुभाग भी सम्मिलित है। जघन्य अनुभाग देशघाति होता है, क्योंकि इसमें एकस्थानिक अनुभागकी उपलब्धि होती है और अजघन्य अनुभाग देशघाति और सर्वघाति दोनों प्रकारका होता है, क्योंकि इसमें एकस्थानिकसे लेकर चतुःस्थानिक पर्यन्त चारों प्रकारका अनुभाग उपलब्ध होता है।

कुल अनुभाग चार प्रकारका होता है—एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक। जहाँ केवल लतारूप अनुभाग होता है उसकी एकस्थानिक संज्ञा है। जहाँ लता और दारुरूप अनुभाग होता है उसकी द्विस्थानिक संज्ञा है। जहाँ लता, दारु और अस्थिरूप अनुभाग होता है उसकी त्रिस्थानिक संज्ञा है और जहाँ लता, दारु, अस्थि और शैलरूप अनुभाग होता है उसकी चतुःस्थानिक संज्ञा है। इस प्रकार स्थानसंज्ञाके चार भेद हैं। यहा इतना विशेष समझ लेना चाहिए कि उत्तर अनुभागमें पूर्व अनुभाग गमित मान कर भी ये द्विस्थानिक आदि संज्ञाएँ व्यवहृत होती हैं। यद्यपि लता, दारु, अस्थि और शैल ये उपमाएँ मानकपायके लिए दी जाती हैं, क्योंकि उरारोत्तर इस प्रकारकी फडेरताका भाव उसमें सम्भव है फिर भी यहाँ अनुभागकी उत्तरोत्तर तीव्रताको देखकर ये संज्ञाएँ आरोपित की गई हैं। इनमेंसे लतारूप अनुभाग और दारुरूप अनुभागका अनन्तत्वाँ भाग देशघाति माना गया है और शेष अनुभाग सर्वघाति माना गया है। मोहनीय कर्म घातियोंमें पठित है, इसलिए संज्ञाके ये भेद शेष घातिकर्मोंमें भी सम्भव

हैं। अर्थात् कमोंमें स्वातंत्र्यशास्त्रके चार भेद तो किये जाते हैं पर उनके नाम अथवा अन्वय भेदोंके साथ प्रत्यक्ष और पापकर्मके भेदोंके अन्वय हैं।

सोदहीय कर्मके कुछ भेद बतलाई हैं। उनकी अथवा संज्ञात्मक विचार इस प्रकार है— सम्बन्ध मङ्गलिके विधाने देहावधि स्वर्गक है हे सब सम्यक् है। सम्बन्धिमित्यक्तके प्रथम सर्वथाति स्वर्गकसे लेकर द्वादसमाह स्वर्गकके अन्तर्गत ही स्वर्गक उपलब्ध होते हैं। मिथ्यात्वके चर्चा सम्बन्धिमित्यक्तके अन्तिम स्वर्गक समाप्त होता है चर्चासे लेकर आगेके सब सर्वथाति स्वर्गक पाये जाते हैं। चार संज्ञात्मकोंके अन्तर्गत दोष चारह कथायेंके द्वितीयक सर्वथाति स्वर्गकसे लेकर आगेके सब स्वर्गक होते हैं। चार संज्ञात्मक और भी लोकनायके देहावधि चार सर्वथाति सब स्वर्गक होते हैं। चर्चा मिथ्यात्वके कर्मके अनुमानस्वर्गक अथवा अन्तर्गतके कर्म हैं फिर भी उनमें तात्पर्य है किस्म विरोध ज्ञान महात्मके अन्तर्गतके कर सेवा आदि। इस प्रकार इन मङ्गलिकोंकी स्वर्गक स्वभाव परिज्ञान करके हममें अति-संज्ञा और स्वातंत्र्यशास्त्र अन्तर्गत कर सेवा आदि। सुखासा इस प्रकार है—मिथ्यात्व सम्बन्धिमित्यक्त चारह कथा और द्वादसमाह लोकनायके अन्तर्गत, अनुकूल, अन्वय और अन्तर्गत चर्चा प्रकारका अनुमान सर्वथाति ही होता है, क्योंकि इन मङ्गलिकोंके अन्वय अनुमान भी सर्वथाति होता है। चर्चा सब लोकनायके का अन्वय और अनुकूल अनुमान भी अन्तर्गतकरने विचारात्मेवसे सर्वथाति स्वीकार किया है। दोष रही चार सम्बन्ध और तीन भेद के साथ मङ्गलिकों से इनका अन्तर्गत अनुमान सर्वथाति ही होता है, क्योंकि वह अनुमानिक होता है। अनुकूल अन्तर्गत सर्वथाति और देहावधि दोनों प्रकारका होता है, क्योंकि इसमें एकस्वभाविक अन्वय अनुमान भी सम्मिलित है। तथा इसका अन्वय अनुमान देहावधि होता है क्योंकि अन्तर्गतमें अपने अपने योग्य स्वभावमें वह एकस्वभाविक ही उपलब्ध होता है। तथा इनका अन्तर्गत अनुमान सर्वथाति और देहावधि दोनों प्रकारका होता है। अन्तर्गत विचार कर कथन कर सेवा आदि। स्वान संज्ञाकी दृष्टिसे विचार करनेपर चर्चा किन्तु स्वातंत्र्य अनुमान प्राप्त होता है इनका परिज्ञान अन्तर्गतात्पर्य करता है—

मङ्गलिक	अन्तर्गत	अनुकूल	अन्वय	अन्तर्गत
मिथ्यात्व, चारह कथाय द्वादसमाह	अन्तर्गत	अनु वि दि	द्विस्वा	दि वि, च
सम्बन्ध	द्विस्वा	दि० एक	एकस्वा	एक दि०
सम्बन्धिमित्यक्त	द्विस्वा	द्विस्वा	द्विस्वा	द्विस्वा
चार संज्ञात्मक, प्रथमभेद	अनु	च वि दि एक	एकस्वा०	एक दि वि अनु
तीसरे, अनुकूल-भेद	अनु	च वि दि० एक	एकस्वा	दि वि अनु

अन्तर्गत और अनुकूलभेदोंकी अन्तर्गत स्वभावसे अन्तर्गत पर जाने पर अन्तिम भेदके अन्तर्गत अन्तर्गत एकस्वभाविक अन्वय अन्तर्गत होता है, इसलिये इन दोनों भेदोंका अन्तर्गत अनुमान एकस्वभाविक नहीं बना है।

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—]

[—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series —

**Publication of Digambara Jain Siddhanta,
Darsana, Purana, Sahitya and other Works
in Prakrit, Samskrit etc. Possibly with Hindi
Commentary and Translation.**

DIRECTOR —

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. VOL V.

To be had from —

**THE MANAGER
SRI DIG. JAIN SANGHA.
CHAURASI, MATHURA,
U P. (INDIA)**

Printed by—S N UPADHYAYA,
AT THE NAYA SANSAR PRESS BANARAS

800 Copies,

Price Rs. Twelve only

प्रकाशक की ओरसे

कसबावाहुके चौबसे भाग अनुभाग विमोचिका एक बप पञ्चात् ही प्रकाशित करते हुए; हमें हर्ष होना स्वामाधिक है। यह भाग भी बोंगरगङ्गे उदारमना बान्नीर सेठ मागचन्द्र की के द्वारा दिये गये द्रव्यसे ही प्रकाशित हुआ है और आगेके भाग भी बङ्गीके द्रव्यसे प्रकाशित हो रहे हैं इसके लिये सेठ जी व उनकी बर्मापत्नी सेठानी नर्बाबाई जी दोनों धन्यबादके पात्र हैं।

सम्पादन आदिका भार पूर्वकत् वं फूलचन्द्र जी सिद्धान्तप्रणाली और हम दोनोंमे बहन किया है। प्रेस सम्बन्धी सब सम्झौतोंको वं फूलचन्द्रजी ने ठाया है। एतदर्थ मैं पंडितजीका भी आभारी हूँ।

कार्यमें गङ्गा घट पर स्थित स्व बाबू छेरीसाज जी के जिन मन्दिरके नीचेके भागमें बयभक्ता कर्बालय अपने मग्न कालसे ही स्थित है और यह स्व० बानूसाहबके सुपुत्र बाबू गणेशदास जी और पौत्र बा सासिगणम जी तथा बा अणमचन्द्रजीके सौजन्य और धर्मप्रेमका परिचायक है, अतः मैं उनका भी आभारी हूँ।

नवा खंसार प्रेसके स्वामी पं० शिवनाथरायण जी उपाध्याय तथा उनके कर्मचारियोंने इस भागका मुद्रक बहुत शीघ्र करके दिया, एतदर्थ वे भी धन्यबादके पात्र हैं।

बयभक्ता कर्बालय
मदौरी, अराली
शीघ्रकाली-१९२१

}

फैलाचन्द्र शास्त्री
मंत्री साहित्य विभाग
म रि बैनस

सर्वविभक्ति नोसर्वविभक्ति—सर्वविभक्तिमें सब अनुभाग और नोसर्वविभक्तिमें उससे कम अनुभाग विवक्षित है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे यह यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टविभक्ति—सर्वोत्कृष्ट अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाका अनुभाग उत्कृष्टविभक्ति कहलाता है और उससे न्यून अनुभाग अनुत्कृष्ट विभक्ति कहा जाता है। यह भी अपने अपने अनुभागका विचार कर घटित कर लेना चाहिए।

जघन्य-अजघन्यविभक्ति—सबसे जघन्य स्थानकी अन्तिम वर्गणाका अनुभाग या अन्तिम कृष्टिका अनुभाग जघन्यविभक्ति है और इससे अधिक अनुभाग अजघन्यविभक्ति है जो मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

सादि अनादि-ध्रुव-अध्रुवविभक्ति—मूल प्रकृतिकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग सूक्ष्मसाम्परायिक चपकके होता है, अतः जघन्य अनुभाग सादि और अध्रुव कहा है। इसके पूर्व सब अनुभाग अजघन्यरूप रहता है, इसलिए अजघन्य अनुभाग अनादि तो है ही साथ ही वह भव्यकी अपेक्षा अध्रुव और अभव्यकी अपेक्षा ध्रुवरूप होनेसे सादिविकल्पके सिवा तीन प्रकारका कहा है। उत्कृष्ट अनुभाग और अनुत्कृष्ट-अनुभाग कदाचित् होते हैं, इसलिये इनमें सादि और अध्रुव ये दो ही विकल्प बनते हैं। उत्तरप्रकृतियों की अपेक्षा विचार करनेपर चार सज्वलन और 'गौ नोकपायोंका अजघन्य अनुभाग तो अनादि, ध्रुव और अध्रुवके भेदसे तीन प्रकारका है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग चपकश्रेणिमें प्राप्त होनेसे अजघन्य अनुभागमें सादि विकल्पके सिवा शेष तीन विकल्प घन जाते हैं। तथा इन १३ प्रकृतियोंका शेष तीन प्रकारका अनुभाग और इनके सिवा शेष प्रकृतियोंका चारों प्रकारका अनुभाग कदाचित् होनेसे सादि और अध्रुव है।

स्वामित्व—स्वामित्व दो प्रकारका है—उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका स्वामित्व और जघन्य अनुभाग-विभक्तिका स्वामित्व। मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध सञ्जी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव करता है, इसलिए वह तो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका स्वामी है ही। साथ ही उसका घात हुए बिना ऐसे जीवके एकेन्द्रिय आदि अन्य पर्यायोंमें सरकर उत्पन्न होने पर एकेन्द्रिय आदि अन्य जीव भी मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिके स्वामी हैं। मात्र भोगभूमिके तिर्यञ्च और मनुष्य तथा आनतादिकके देव उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिके स्वामी नहीं होते, क्योंकि एक तो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंकी इनमें उत्पत्ति नहीं होती। दूसरे इन जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध नहीं होता। सामान्यसे मोहनीयका जघन्य अनुभाग चपक-श्रेणिमें प्राप्त होता है, इसलिए अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्पराय चपक जीव जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी है। मोहनीयके अवान्तर भेदोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट अनुभाग, विभक्तिका स्वामी मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा जो स्वामित्व कहा है उसके ही समान है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका स्वामी उनकी सत्तावाले सब जीव हैं। मात्र दर्शनमोहनीयकी चपका करनेवाला जीव उत्कृष्ट अनुभागका घात करनेके बाद उसका स्वामी नहीं है। तथा मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव होता है, क्योंकि मिथ्यात्वके अनुभागका घात होकर सबसे जघन्य अनुभाग इसीके शेष रहता है, और वह घात किये गये उक्त अनुभागके साथ अन्य एकेन्द्रियोंमें व द्वीन्द्रिय आदिमें उत्पन्न होकर जब तक उसे नहीं बढ़ाता है तब तक ये जीव भी मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिके स्वामी होते हैं। देव, नारकी और असह्यातवर्षकी आयुवाले तिर्यञ्च और मनुष्य जघन्य अनुभागविभक्तिके स्वामी नहीं होते, क्योंकि इनमें सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंकी सरकर उत्पत्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मध्यकी आठ कपायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामित्व जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी दर्शनमोहनीयकी चपका करनेवाला अन्तिम समयवर्ती चपक जीव होता है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिका स्वामी दर्शनमोहनीयकी चपकाके समय अपने अन्तिम

कहे हैं वे ही यहाँपर कइने चाहिए। इस प्रकार यह सामान्यसे विचार किया है। गति आदि मार्गशास्त्रोंमें अपनी अपनी विशेषता व स्वामित्वको जानकर भङ्ग ले आना चाहिए।

भागभाग—मोह सामान्यका उत्कृष्ट अनुभाग सजी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं, इसलिए इनके और ये इस अनुभागाके साथ अन्य एकेन्द्रियादिमें जाते हैं उनके मात्र उत्कृष्ट अनुभाग सम्भव है, अतः मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं और अनुकृष्ट अनुभागवाले सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण होते हैं। मोहनीयकी छव्वीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवालोंका यही भागभाग जानना चाहिए, क्योंकि स्वामित्वकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यसे यहाँ कोई भेद नहीं है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले कुल जीव ही असरयात होते हैं, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागवाले असख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं और अनुकृष्ट अनुभागवाले असख्यात एक भागप्रमाण होते हैं यह भागभाग घटित होता है। कारण इनका अनुकृष्ट अनुभाग सप्तयाके समय ही सम्भव है, इसलिए वे सख्यात ही होते हैं। शेष असख्यात जीव उत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं। जघन्य अनुभागकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं, क्योंकि मोहनीयका जघन्य अनुभाग सप्तश्रेणियोंमें प्राप्त होता है और अजघन्य अनुभागवाले अनन्त बहुभाग प्रमाण होते हैं। उत्तर प्रकृतियोंका विचार करने पर अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और नौ नोकपार्योंका भागभाग इसी प्रकार जानना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले असख्यातवें भागप्रमाण होते हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव असख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। मार्गशास्त्रोंमें भी इसी प्रकार स्वामित्वको देखकर भागभाग ले आना चाहिए।

परिमाण—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असख्यात हैं और अनुकृष्ट अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा यही परिमाण जानना चाहिए। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असख्यात हैं और अनुकृष्ट अनुभागवाले जीव सख्यात हैं। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव सख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। चार संज्वलन और नौ नोकपार्यों की अपेक्षा इसी प्रकार परिमाण जानना चाहिए। मिथ्यात्व और आठ कपार्योंकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले दोनों प्रकारके जीव अनन्त हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले जीव सख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव असख्यात हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले जीव असख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। तथा भागभागमें भी हम कारणका उल्लेख कर आये हैं, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए। मार्गशास्त्रोंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर परिमाण ले आना चाहिए।

क्षेत्र—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि ये स्वल्प होते हैं, अतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं हो सकता और अनुकृष्ट अनुभागवालोंका सर्व लोक क्षेत्र है। कारण स्पष्ट है। उत्तर छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इनका इसी प्रकार क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि इनकी सत्ता जो सम्यक्त्वको प्राप्त कर मिथ्यादृष्टि हो गये हैं, जो वर्तमानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेजना होनेके पूर्व सम्यक्त्वको प्राप्त कर रहे हैं या जो उपशम तथा वेदकसम्यक्त्व सहित हैं उनके ही होती है। उसमें भी जिन्हें मिथ्यादृष्टि हुए पल्पके असख्यातवें भागसे अधिक काल नहीं हुआ है उनके ही उनकी सत्ता होती है। मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य

सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुद्भूत और उत्कृष्ट काल पक्षके तीन असंख्यातषष्ठ भाग अधिक दो छ्वासठ सागरप्रमाण है। सम्यक्त्वके अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। मात्र सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि इसकी जपणाके अन्तिम समयमें इसका जघन्य अनुभाग उपलब्ध होता है। इसी प्रकार अपने अपने स्वामित्वके अनुसार अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और तीन वेदोंके जघन्य अनुभागका काल एक समय घटित कर लेना चाहिए। इनमेंसे अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागके अनादि-अनन्त, अनादि सान्त और सादि-सान्त ये तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं। सादि-सान्तका जघन्य काल अन्तमुद्भूत और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। कारण स्पष्ट है। चार संज्वलन, तीन वेद और छह नोकपायोंके अजघन्य अनुभागके दो भङ्ग होते हैं—अनादि-अनन्त और अनादि सान्त। तथा आठ कपायोंके अजघन्य अनुभागका काल मिथ्यात्वके समान है। इस प्रकार यह सामान्यसे कालका विचार किया है। गति आदि मार्गप्राप्तिमें अपनी अपनी विशेषता जानकर काल ले खाना चाहिए।

अन्तर—सामान्यसे मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुद्भूत है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात होकर अन्तमुद्भूतमें पुन उसकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल प्रमाण है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियके एकेन्द्रियादि पर्यायमें इतने काल तक रहने पर उत्कृष्ट अनुभागका इतना अन्तर देखा जाता है। अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्भूत प्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्भूत है। उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुद्भूत है, क्योंकि घात द्वारा अनुकृष्ट अनुभाग होकर कमसे कम अन्तमुद्भूत कालमें पुन उसकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि कोई पञ्चेन्द्रिय उत्कृष्ट अनुभागका घात कर अधिक से अधिक इतने काल तक एकेन्द्रियोंमें परिभ्रमण करनेके बाद सजी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त होकर पुन उसका धन्य करता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़ कर इनके अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्भूत है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्भूत बतलाया है। अनन्तानुबन्धीके अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुद्भूत है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्वासठ सागर प्रमाण है, क्योंकि इसकी विसयोजना होकर इतने काल तक इसका अभाव रहता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि इनकी उद्वेजना होकर कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण काल तक उनका अभाव देखा जाता है। इनके अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर सम्भव नहीं है, क्योंकि उसकी प्राप्ति इनकी जपणाके समय होती है। सामान्यसे मोहनीयके जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं होता, क्योंकि मोहनीयका जघन्य अनुभाग जपक सूक्ष्मसाम्प्राय के अन्तिम समयमें होता है, इसलिए इसका तो अन्तर हो ही नहीं सकता और इसके पहले अजघन्य अनुभाग रहता है, इसलिए उसका भी अन्तर सम्भव नहीं है। अलग अलग प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार करने पर सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार संज्वलन कपाय और नौ नोकपायोंके जघन्य अनुभागका तो अन्तर सम्भव नहीं है, क्योंकि जपणाके पूर्व इनकी सत्ता निश्चयसे बनी रहती है। हाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि उद्वेजना होकर इनका उक्त काल तक अन्तर देखा जाता है। मिथ्यात्व और आठ कपायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुद्भूत है, क्योंकि जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव अजघन्य अनुभागका बन्धकर अन्तमुद्भूतमें घात द्वारा पुन उसे जघन्य कर सकता है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक प्रमाण है, क्योंकि जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव अजघन्य अनुभागका बन्धकर असंख्यात लोकप्रमाण घातस्थान परिणामोंमें उतने ही काल तक परिभ्रमण

कहे हैं वे ही यहाँपर कहने चाहिए। इस प्रकार यह सामान्यसे विचार किया है। गति आदि मार्गशास्त्रोंमें अपनी अपनी विशेषता व स्वामित्वको जानकर भङ्ग ले आना चाहिए।

भागभाग—मोह सामान्यका उत्कृष्ट अनुभाग सजी पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं, इसलिए इनके और ये इस अनुभागके साथ अन्य एकेन्द्रियादिमें जाते हैं उनके मात्र उत्कृष्ट अनुभाग सम्भव है, अतः मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले सब जीवोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण होते हैं। मोहनीयकी छुब्रीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका यही भागभाग जानना चाहिए, क्योंकि स्वामित्वकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यसे यहाँ कोई भेद नहीं है। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले कुल जीव ही असख्यात होते हैं, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागवाले असख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले असख्यात एक भागप्रमाण होते हैं यह भागभाग घटित होता है। कारण इनका अनुत्कृष्ट अनुभाग क्षणिके समय ही सम्भव है, इसलिए वे सख्यात ही होते हैं। शेष असख्यात जीव उत्कृष्ट अनुभागवाले होते हैं। जघन्य अनुभागकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण होते हैं, क्योंकि मोहनीयका जघन्य अनुभाग क्षणिकश्रेणियोंमें प्राप्त होता है और अजघन्य अनुभागवाले अनन्त बहुभाग प्रमाण होते हैं। उत्तर प्रकृतियोंका विचार करने पर अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका भागभाग इसी प्रकार जानना चाहिए। तथा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले असख्यातवें भागप्रमाण होते हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव असख्यात बहुभागप्रमाण होते हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। मार्गशास्त्रोंमें भी इसी प्रकार स्वामित्वको देखकर भागभाग ले आना चाहिए।

परिमाण—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। छुब्रीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा यही परिमाण जानना चाहिए। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव असख्यात हैं और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सख्यात हैं। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवाले जीव सख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। चार संज्वलन और नौ नोकषायों की अपेक्षा इसी प्रकार परिमाण जानना चाहिए। मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले दोनों प्रकारके जीव अनन्त हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले जीव सख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव असख्यात हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा जघन्य अनुभागवाले जीव असख्यात हैं और अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्त हैं। कारणका ज्ञान स्वामित्वको देखकर कर लेना चाहिए। तथा भागभागमें भी हम कारणका उल्लेख कर आये हैं, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिए। मार्गशास्त्रोंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर परिमाण ले आना चाहिए।

क्षेत्र—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि ये स्वल्प होते हैं, अतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाणसे अधिक नहीं हो सकता और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका सर्व लोक क्षेत्र है। कारण स्पष्ट है। उत्तर छुब्रीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इनका इसी प्रकार क्षेत्र घटित कर लेना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि इनकी सत्ता जो सम्यक्त्वको प्राप्त कर मिथ्यादृष्टि हो गये हैं, जो वर्तमानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेजना होनेके पूर्व सम्यक्त्वको प्राप्त कर रहे हैं या जो उपशम तथा वेदकसम्यक्त्व सहित हैं उनके ही होती है। उसमें भी जिन्हें मिथ्यादृष्टि हुए पत्यके असख्यातवें भागसे अधिक काल नहीं हुआ है उनके ही उनकी सत्ता होती है। मोहनीयकी जघन्य अनुभागवामित्ववालोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है और अजघन्य

अनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इसके अन्तिम काण्डके पतनमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और अजघन्य अनुभागवालोंका सर्वदा काल है, क्योंकि इसके इस अनुभागवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। छह नोकपायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका काल सम्यग्मिथ्यात्वके समान ही है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्के जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि इनकी सयोजनाके प्रथम समयमें ही इनका जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है और उत्कृष्ट काल आवृत्तिके असख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि निरन्तर यद्यपि नाना जीव इनके जघन्य अनुभागको प्राप्त होते हैं तो इतने काल तक ही प्राप्त होते हैं। तथा इनके अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। नाना जीवोंकी अपेक्षा मार्गशास्त्रोंमें भी इसी प्रकार काल अपने अपने स्वामित्वके अनुसार घटित कर लेना चाहिए।

अन्तर—मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि नागा जीवोंकी अपेक्षा एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट अनुभागकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि कोई भी जीव इतने काल तक उत्कृष्ट अनुभागको न प्राप्त हो यह सम्भव है। अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर काल नहीं है, क्योंकि इस अनुभागके साथ जीव सदा उपलब्ध होते रहते हैं। मोहनीयकी छन्बीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवाले जीवोंका इसी प्रकार अन्तरकाल जानना चाहिए। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं उपलब्ध होता क्योंकि इन प्रकृतियोंकी रूपणाके सिवा अन्यत्र इनका उत्कृष्ट अनुभाग ही उपलब्ध होता है। इनके अनुकृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, क्योंकि इनकी कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक छह महीनाके अन्तरसे चपया सम्भव है। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, क्योंकि कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक छह महीनाके अन्तरसे चपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव है। मोहनीयके अजघन्य अनुभागवालोंका अन्तर नहीं होता, क्योंकि अजघन्य अनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, लोभसज्वलन और छह नोकपायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिए। मिथ्यात्व और आठ कपायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इनके दोनों प्रकारके अनुभागवाले जीव सदा उपलब्ध होते रहते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्के जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि जिन्होंने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है ऐसे नाना जीव एक समयके अन्तरसे उससे पुन सयुक्त हों यह सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी सयोजनाके कारणभूत परिणाम असख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए यह सम्भव है कि जिस परिणामसे जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है वह इतने काल बाद होवे। अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इसके अजघन्य अनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं। ऋग्वेद और नपु सकवेदके जघन्य अनुभागवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षष्टयक्त्वप्रमाण है, क्योंकि इन वेदवाले जीवोंका एक समयके अन्तरसे भी चपकश्रेणिकी पर आरोहण करना सम्भव है और वर्षष्टयक्त्वके अन्तरसे भी चपकश्रेणिकी पर आरोहण करना सम्भव है। इनके अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। कारण स्पष्ट है। तीन सज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य अनुभागवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके उदयसे एक समयके अन्तरसे भी जीव चपकश्रेणिकी पर आरोहण कर सकते हैं और अधिकसे अधिक साधिक एक वर्षके अन्तरसे आरोहण करते हैं। इनके अजघन्य अनुभागवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। गति आदि मार्गशास्त्रोंमें अपने अपने स्वामित्वको जानकर यह अन्तर काल घटित कर लेना चाहिए।

मात्र—मोहनीय सामान्य और उच्च प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुकूल, अल्प्य और अज्ञान्य अनुमाग-
वाहिक सर्वत्र औद्भविक मात्र है, क्योंकि मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट ही इतक कल्प आदि सम्भव है।
यद्यपि अपत्यात्मोहमें मोहनीयके उत्कृष्टके विना भी इतक सत्य सेवा जाता है पर वहाँ पर अतीव बन्ध
होकर इतकी सत्ता नहीं होती इसलिये सर्वत्र औद्भविकमात्र कहनेमें कोई शोष नहीं है।

समिकल्प—मोहनीयसामान्यकी अपेक्षा सन्निकर्ष सम्भव नहीं है। उच्च प्रकृतियोंकी अपेक्षा जो
मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुमागवाहा जीव है उसके सम्बन्ध और सम्बन्धिमिथ्यात्वका सत्य होता भी है और
नहीं भी होता क्योंकि यद्यपि मिथ्यादृष्टिके और विद्यने इतकी उद्भवता कर ही है उसके इतक सत्य नहीं
होता अन्वये होता है। यदि सत्य होता है तो नियमसे इसके उत्कृष्ट अनुमागका सत्यताका होता है, क्योंकि
यह सन्निकर्ष मिथ्यादृष्टिके ही सम्भव है और मिथ्यादृष्टिके सम्बन्ध और सम्बन्धिमिथ्यात्वका मात्र उत्कृष्ट
अनुमाग होता है। मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुमागवाहे जीवके छोड़कर कदाच और भी लोकवाचिक नियमसे
सत्य होता है। किन्तु उससे इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुमाग भी होता है और अनुकूल अनुमाग भी
होता है। यदि अनुकूल अनुमाग होता है तो वह वह दृष्टिकोसे किसी एक दृष्टिके सिद्ध हुए होता है।
कारण सत्य है। छोड़कर कदाच और भी लोकवाचिकोंसे एक एकको मुक्तकर इसीप्रकार सन्निकर्ष स्थित कर
लेना चाहिए। सम्बन्धके उत्कृष्ट अनुमागवाहे जीवके सम्बन्धिमिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुमाग नियमसे जाता है।
मिथ्यात्व कारण कदाच और भी लोकवाचिकोंका उत्कृष्ट अनुमाग भी होता है और अनुकूल अनुमाग भी
होता है। यदि अनुकूल अनुमाग होता है तो वह वह प्रकारकी दृष्टिके सिद्ध हुए होता है। इसके
अन्वयानुबन्धीयानुभव सत्य होता भी है और नहीं भी होता है। यदि सत्य होता है तो उत्कृष्ट अनुमाग
भी होता है और अनुकूल अनुमाग भी जाता है। यदि अनुकूल अनुमाग होता है तो वह वह प्रकारकी
दृष्टिके सिद्ध हुए होता है। सम्बन्धिमिथ्यात्वको मुक्तकर सम्बन्धके समान ही सन्निकर्ष जानना चाहिए।
मात्र सम्बन्धिमिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुमागवाहेके सम्बन्धका ध्यान होनेका कोई निश्चय नहीं है। कारण कि
सम्बन्धकी उद्भवता सम्बन्धिमिथ्यात्वसे पहले हो जाती है। पर यदि उद्भवता नहीं हुई है तो नियमसे
सम्बन्धका उत्कृष्ट अनुमाग ही पाया जाता है।

मिथ्यात्वके अल्प्य अनुमागवाहेके सम्बन्ध और सम्बन्धिमिथ्यात्वका ध्यान होता भी है और नहीं भी
होता। यदि अल्प्य हीव मिथ्यात्वमें प्राप्त होकर और सूक्ष्म विज्ञान अपर्षासमें उदाह दान सम्बन्ध
और सम्बन्धिमिथ्यात्वकी उद्भवताके पूर्व मिथ्यात्वके अल्प्य अनुमागमें प्राप्त होता है तो अल्प्य सत्य
होता है अल्प्यता नहीं होता। यदि सत्य होता है तो नियमसे अल्प्य अनुमागका ही सत्य होता है जो
अपने अल्प्यसे अल्प्यगुणा अधिक होता है। इससे अल्प्यानुबन्धीयानुभव का संभव और भी
लोकवाचिक नियमसे सत्य होता है जो अल्प्य अल्प्यगुणा अधिक होता है। कारण कि इतक अल्प्य
अनुमाग सूक्ष्म विज्ञान अपर्षासके सम्भव नहीं है। मात्र अल्प्य ही सत्य होता है जो अल्प्य भी होता है
और अल्प्य भी होता है। यदि अल्प्य होता है तो नियमसे वह दृष्टिके सिद्ध हुए होता है।
मिथ्यात्व और मात्र कदाचके अल्प्य अनुमागका त्वासी एक है, इसलिये नहीं ऐसा सम्भव है।
मात्र कदाचोंसे अल्प्य कदाचके मुक्तकर सन्निकर्ष कल्प मिथ्यात्वके समान ही करना चाहिए।
सम्बन्धके अल्प्य अनुमागवाहेके कारण कदाच और भी लोकवाचिक अपने अपने सत्य अल्प्य
अनुमाग होता है जो अपने अल्प्यकी अपेक्षा अल्प्यगुणा अधिक होता है। इसके अल्प्य प्रकृतियोंका
सत्य नहीं होता क्योंकि सम्बन्धकी अपेक्षा अल्प्य सम्बन्धमें अल्प्य अल्प्य अनुमाग होता है, इसलिये
उसके अल्प्य दृष्टिके प्रकृतियोंका ही सत्य पाया जाता है। इसी प्रकार सम्बन्धिमिथ्यात्वकी मुक्तगते सन्निकर्ष
जानना चाहिए। किन्तु इतकी विवेकता है कि इसके सम्बन्धका भी सत्य होता है जो सम्बन्धका सत्य
अल्प्य अल्प्यगुणा अनुमागके सिद्ध हुए होता है। अल्प्यानुबन्धीयानुभवके अल्प्य अनुमागवाहेके

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपाय नियमसे अजघन्य अनन्तगुणो अनुभाग वाले होते हैं, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी सयोजनाके समय इन प्रकृतियोंका जघन्य अनुभाग सम्भव नहीं है। इसके अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका सत्त्व तो अवश्य होता है पर उनका अनुभाग उस समय जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है क्योंकि सयोजनाके प्रथम समयमें जिस प्रकृतिके जघन्य अनुभागके योग्य परिणाम होते हैं उसका जघन्य अनुभाग होता है और शेषका अजघन्य अनुभाग होता है। यदि उस समय इन तीनका अजघन्य अनुभाग होता है तो वह ब्रह्म वृद्धियोंको लिए हुए होता है। जिस प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोधके जघन्य अनुभागकी मुख्यतासे सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभके जघन्य अनुभागकी मुख्यतासे भी सन्निकर्ष कहना चाहिए। क्रोध सज्वलनके जघन्य अनुभागवालेके तीन सज्वलन कपायोंका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है, क्योंकि तपस्याके समय जब सज्वलन क्रोधका जघन्य अनुभाग होता है उस समय अन्य तीन सज्वलन प्रकृतियाँ अजघन्य अनुभागवाली होती हैं। सज्वलन मानके जघन्य अनुभागवालेके सज्वलन माया और लोभका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है, क्योंकि इनकी तपस्या सज्वलन मानके बाद होती है। सज्वलन मायाके जघन्य अनुभागवालेके सज्वलन लोभका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। यहा सज्वलन क्रोध आदि के जघन्य अनुभागके समय अन्य प्रकृतियाँ नहीं होतीं, इसलिए उनका सन्निकर्ष नहीं कहा है। सज्वलन लोभके जघन्य अनुभागवालेके एक भी प्रकृतिकी सत्ता नहीं होती, इसलिए यहाँ अन्य प्रकृतियोंके साथ सन्निकर्षका अभाव है। स्त्रीवेदवालेके चार सज्वलन और सात नोकपायोंका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। इसी प्रकार नपु सकवेदकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदके जघन्य अनुभागवालेके चार सज्वलनोंका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। ब्रह्म नोकपायोंके जघन्य अनुभागवालेके पुरुषवेद और चार सज्वलनका अजघन्य अनन्तगुणा अनुभाग होता है। किन्तु उस समय ब्रह्म नोकपायोंका परस्पर नियमसे जघन्य अनुभाग होता है। यहा स्त्रीवेद आदि के जघन्य अनुभागवालेके जिन प्रकृतियोंका सत्त्व होता है उन्हींका सन्निकर्ष कहा है, शेषका सत्त्व नहीं होता, क्योंकि उनकी पूर्वमें ही तपस्या हो जाती है।

अल्पबहुत्व—मोहनोयके उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव अनन्तगुणो हैं। इसी प्रकार मोहनोयके जघन्य अनुभागवाले जीव सबसे थोड़े हैं तथा इनसे अजघन्य अनुभागवाले जीव अनन्तगुणो हैं। उत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षा चूर्णिकारने जीव अल्पबहुत्वका निर्देश न करके स्थिति अल्पबहुत्वका निर्देश किया है। उच्चारणाकी अपेक्षा भी वीरसेन स्वामीने चूर्णिसूत्रके अनुसार जाननेकी सूचना की है। यहाँ इतना निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उत्कृष्ट अनुभागकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते समय चूर्णिकारने यह सूचना की है कि जिस प्रकार बन्धमें प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका अल्पबहुत्व है उसी प्रकार जानना चाहिए। तथा सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दोनों बन्ध प्रकृतियाँ न होनेसे इनके उत्कृष्ट अनुभागका पूर्व अनुभागके अल्पबहुत्वसे तारसम्य विठलाते हुए स्वतन्त्र-रूपसे अन्तमें अल्पबहुत्व कहा है।

भुजगारविभक्ति

भुजगारविभक्तिके चार पद हैं—भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवसक्त्य। पिछले समयमें जितना अनुभाग हो उससे वर्तमान समयमें अधिक अनुभागका होना भुजगार अनुभाग विभक्ति है। पिछले समयमें जितना अनुभाग हो उससे वर्तमान समयमें हीन अनुभागका होना अल्पतर अनुभाग-विभक्ति है। पिछले समयमें जितना अनुभाग हो, वर्तमान समयमें उतना ही अनुभागका होना अवस्थित विभक्ति है। और सत्ता प्राप्त होनेके प्रथम समयमें जो अनुभाग प्राप्त हो उसका नाम अवसक्त्य अनुभाग

विभक्ति है। वहाँ इस अनुयोगद्वाराका समुत्कीर्तना स्वामित्व, कर्म, प्रत्यय वाचा बीबोंकी अनेक संश्लेष्य मायाप्रभा, परिभाषा श्रेय, स्पर्शन, कर्म प्रत्यय भाव और अस्वरबुद्धि इन षेरह अविभक्तिके द्वारा प्रतिपादन किया गया है। इस सब अविभक्तियोंकी जायद्वारीके बिना जो कुछ शब्दके स्वाभाविकी प्रकृत्यवस्था है। मात्र वहाँ इतना निर्देश कर देना अविभक्त प्रतीय होता है कि मोहनीय सामान्यकी अनेक मुखपार अस्वर और अदृशित वे तीन ही पर होते हैं, अक्षरत्वपरव नहीं होता, क्योंकि जिसने मोहनीय कर्मका प्रत्यय कर दिया है उसके पुत्रा वसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। अक्षर प्रकृतियोंकी अनेक सम्प्रदाय वारह अक्षर और भी अक्षरप्राप्तिके भी मोहनीय सामान्यके समान तीन ही पर होते हैं। कारण पूर्णक ही है। सम्प्रदाय और सम्प्रदायत्वके अक्षरत्व, अदृशित और अक्षरत्व ये तीन पर होते हैं। इनके प्रारम्भके दो पर होते हैं पर तो स्पष्ट ही है। तथा इनकी एक तो अक्षरत्व सम्प्रदायकी प्राप्तिके सम्भव सत्ता होती है। दूसरे अक्षरका होकर पुत्रा सम्प्रदायकी प्राप्तिके सम्भव सत्ता प्राप्त होती है इसबिना इनका अक्षरत्वपर भी नम जाता है। सम्प्रदाय और सम्प्रदायत्वके मुखपारपरव न होनेका कारण यह है कि सत्तासे इनका अक्षर अनुभाष ही प्राप्त होता है, इसबिना अक्षरमें बुद्धि सम्भव नहीं है। अक्षरानुबन्धीके चार पर होते हैं। अक्षरत्वपर होनेका कारण यह है कि इसकी विसंबोजका होकर पुत्रा संबोजका हो सकती है।

पदनिष्पेप

पदनिष्पेपमें मुखपारविभक्तिके अक्षरत्व भेदोंका विशेष कसटी विचार किया जाता है। तथा—जो मुखपारविभक्ति होती है वह अक्षर बुद्धिकम होती है वा अक्षर बुद्धिकम होती है। जो अक्षरविभक्ति होती है वह अक्षर दामिकम होती है वा अक्षर दामिकम होती है। तथा इन अक्षर बुद्धि प्राप्तिके बाद जो अवस्थाव होता है वह भी अक्षर और अक्षरके मेषके दो प्रकारका होता है। यदि अक्षर बुद्धि अक्षर दामिके बाद अवस्थाव होता है तो वह अक्षर अवस्थाव कर्मजाता है और अक्षर बुद्धि और अक्षर दामिके बाद अवस्थाव होता है तो वह अक्षर अवस्थाव कर्मजाता है। इसके तीन अनुयोगद्वारा हैं—समुत्कीर्तना स्वामित्व और अक्षरबुद्धि। समुत्कीर्तनाकी अनेक मोहनीय सामान्यकी अक्षर बुद्धि अक्षर दामिके बाद अवस्थावपर होते हैं। तथा अक्षर बुद्धि अक्षर दामिके बाद अवस्थाव वे तीन पर भी होते हैं। इसी प्रकार मोहनीयकी अक्षरत्व प्रकृतियोंमें भी नाम अक्षर प्राप्ति। मात्र सम्प्रदाय और सम्प्रदायत्वमें मुखपारविभक्ति सम्भव न होनेके वहाँ इन्की अक्षर बुद्धि और अक्षर बुद्धिका निर्देश नहीं किया है। अर्थात् इन दोनों प्रकृतियोंकी अक्षर दामिके बाद अक्षर दामिके बाद अवस्थाव वे पर ही होते हैं। अक्षर सम्प्रदाय सम्प्रदायत्व और अक्षरानुबन्धीकानुबन्ध अक्षरत्वपर भी होता है पर इसका निर्देश मुखपारविभक्तिमें कर भावे हैं। वहाँ इस परकी अनेक अक्षरोंके विवेक नहीं जाती है, इसबिना पदनिष्पेपमें इसका अक्षरके निर्देश नहीं किया है। स्वामित्व और अक्षरबुद्धिका विचार मूक शब्दके अक्षर कर अक्षर प्राप्ति। वहाँ अक्षर प्राप्ति अन्य अनुयोगद्वाराके प्राक्क श्रेय विचार नहीं किया गया है। मात्र प्रकृत्या दे कि पदनिष्पेपके अक्षरकी तीन अनुयोगद्वाराके प्राक्क श्रेय ही प्राप्ति रही है, अर्थात् अक्षर प्राप्ति प्राक्क श्रेय अक्षर प्राप्ति नहीं की गई है।

बुद्धि

पदनिष्पेपमें जो अक्षर बुद्धि प्राप्ति और अक्षर दामिके प्राप्ति निर्देश किया है वे अक्षरके प्रकारकी होती हैं इसादिना प्राक्क श्रेय अनुयोगद्वारा प्राप्ति होता है, इसबिना इस अनुयोगद्वारामें वह बुद्धि, वह दामिके बाद अवस्थावका विचार किया जाता है। अनुभाष अक्षर भी और अक्षर भी अक्षर अविभाष्य-प्रतीयोंके बिना रूप होता है इसबिना इसमें अक्षर बुद्धि और अक्षर दामिके सम्भव हैं। तथा अक्षरके

घाट, अवस्थान भी सम्भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसके तेरह अनुयोगद्वार हैं। नाम वे ही हैं जिनका निर्देश भुजगारविभक्तिके समय कर आये हैं। उनमेंसे समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यकी छह वृद्धियाँ, छह हानियाँ और अवस्थान ये पद होते हैं। इसीप्रकार छद्मोत्तरप्रकृतियोंकी अपेक्षासे भी जानना चाहिए। मात्र यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद भी जानना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनन्तगुणहानि, अवस्थान और अवक्तव्य ये तीन पद ही जानने चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी दर्शनमोहनीयकी क्षणिके समय ही हानि होती है। वह भी केवल अनन्तगुणहानिरूप ही होती है, इसलिए इसकी हानि एक प्रकारकी ही बतलाई है। शेष अनुयोगद्वारोंका विचार मूलको देखकर कर लेना चाहिए।

स्थानप्ररूपणा

कर्मके अनुभागका विचार अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्धक और स्थान इन पाँच विशेषताओंके साथ किया जाता है। इन पाँचों विशेषताओंकी चरचा मूलमें पृष्ठ ३४१ के विशेषार्थमें की गई है, इसलिए इसे वहाँसे जान लेनी चाहिए। यहा मुख्यरूपसे जो विचार करना है वह यह है कि अलग अलग कर्मोंकी अलग अलग फलदानशक्ति और एक ही कर्मकी हीनाधिक फलदानशक्ति क्यों होती है। एक उदाहरण यह दिया जाता है कि जिस प्रकार एक ही प्रकारका भोजन पाककालमें अनेक प्रकारके रस मजा आदि धातु उपधातु रूपसे परिणामन करता है उसीप्रकार कर्मका बन्ध होने पर वह भी पाककालमें अनेक प्रकारके फलोंको जन्म देता है। पर इस समाधानसे मूल यात पर बहुत ही कम प्रकाश पड़ता है, क्योंकि कर्मका बन्ध होने पर उसमें जो स्थिति और अनुभाग प्राप्त होता है उसीके अनुसार उसका पाक (फल) देखा जाता है। बन्धके बाद उसमें अन्य पाचनक्रिया नहीं होती। यह कहा जा सकता है कि बन्धके बाद भी उसमें सक्रमण, उत्कर्षण व अपकर्षण क्रिया होती ही है, इसलिए बन्धके बाद अन्य पाचनक्रिया नहीं होती यह मानना ठीक नहीं है। पर इस प्रश्नका समाधान यह है कि यह सक्रमण आदिरूप क्रिया भी बन्धका ही एक भेद है। जिस प्रकार कपाय आदि परिणामोंसे नवीन कर्मका बन्ध होता है उसी प्रकार वे परिणाम बँधे हुए कर्ममें भी अपनी जातिके भीतर परिवर्तन, रसोत्कर्ष व रसहानि करते हैं। उसे कर्मका पाक नहीं कहा जा सकता। पाक शब्दका प्रयोग दो अर्थोंमें होता है—एक आत्मसात करने अर्थमें और दूसरा भोग अर्थमें। भोजनको ग्रहण करते समय उसका सात्मीकरण नहीं होता। उसके उदरस्थ होने पर ही पाचन क्रिया व्यापारके द्वारा सात्मीकरण होता है। किन्तु कर्मके विषयमें ऐसी बात नहीं है। उसे जिस समय जीव ग्रहण करता है उसी समय सात्मीकरण हो जाता है। यह सम्भव है कि जिस रूपमें उसे ग्रहण किया है उसी रूपमें वह फल दे। यह यात अन्य है कि एक बार सात्मीकरण हो जानेके बाद भी जीव कालान्तरमें नवीन कर्मके समान पुन पुन उसका सात्मीकरण करता रहता है। जीवके द्वारा की गई इस क्रियाका नाम ही सक्रमण और उत्कर्षण आदि है। इसलिए हमें यह जानना आवश्यक है कि कर्ममें यह विविध प्रकारकी फलदानशक्ति क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होती है? यह तो प्रत्येक विचारक जानता है कि जीव अमूर्तिक है और कर्म मूर्तिक। अमूर्तिक और मूर्तिकका बन्ध नहीं होना चाहिए, क्योंकि दो द्रव्योंके परस्पर अनुप्रविष्ट होकर स्पर्श विशेषका नाम बन्ध है, अत बन्ध उन्हीं दो द्रव्योंका हो सकता है जिनमें स्पर्शगुण हो। आत्मामें स्पर्शगुण तो होता नहीं फिर उसका कर्मके साथ बन्ध कैसा? प्रश्न मार्मिक है। शास्त्रकारोंने इस प्रश्नका यह समाधान किया है कि जीव अनादिसे कर्मबद्ध है। कर्मको वह अपने परिणामोंसे ही ग्रहण करता है, इसलिए दोनों मिलकर पृष्ठश्रेणागाही हो कर रहते हैं और दोनोंकी क्रिया प्रतिक्रियाका एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। तथा इस क्रिया प्रतिक्रियाके अनुसार प्रति समय नये नये कारणाकृत मिलते रहते हैं। जहाँ तक हलन चलन रूप क्रियाका सम्बन्ध है वहाँ

एक उद्योग द्वारा लये गये कर्मोंका प्रत्यक्ष होता है। हमारे सामने यह प्रश्न बहुत दिनसे था कि योग
 दिया द्वारा कर्मोंका प्रत्यक्ष हो वह तो ठीक है पर उसका आचारवादि कर्मसे विभाजन होकर क्यों प्रत्यक्ष
 होता है, क्योंकि वह कर्म ज्ञानका आचरण करे और वह दर्शनका आचरण करे यह विभाग योग दियेसे
 सम्भव नहीं हो सकता है। यदि इसे भी कल्पनाका कार्य माना जाय तो प्रकृतिकर्म और प्रवेष्टकर्मका अर्थ
 योग है इस धारणा तकमें बाधा पड़ती है। किन्तु हमारे इस प्रश्नका समाधान ब्रह्मा कर्मोवाचकसे हो
 जाता है। वहाँ कर्मोवाचक विवेकपूर्णसे ब्रह्मबोध दिया गया है। इस सम्बन्धमें वहाँ दिये गये हैं कि प्रत्येक
 कर्मोंकी कर्मोवाचक ही अलग अलग है। प्रारम्भमें जो भी इस बातको सुनेगा उसे अत्यन्त प्रसन्न होगा
 पर समीचीन बात नहीं प्रतीत होती है। कारण कि विद्यमान इस अलग अलग पुरुषक स्वभावमें अलग
 अलग प्रकारके कार्य करनेकी शक्ती देखते हैं। कोई पुरुषक स्वभाव भारक होता है कोई पुरुषक स्वभाव
 भारकता उत्पन्न करता है और कोई पुरुषक स्वभाव संजीवनीका कार्य करता है। वह उस पुरुषक स्वभावके
 समुक्त प्रकारके रसों रस आदि मुक्त हो कर बन्धनविशेषका ही कार्य होता है। इसी प्रकार कर्मोवाचक भी
 अपने अपने अलग अलग विद्येके कारण इसी बनती है जिनमेंसे कोई बन्ध होने पर आचारवादि कार्य करनेमें
 सहायक होती है, कोई मोहनका कार्य करनेमें सहायक होती है और कोई मुक्त-मुक्तका अर्थ करनेमें सहायक
 होती है। जीवके कल्प आदि परिधामोंका यह कार्य नहीं कि कौन कर्मोवाचक उससे सम्बन्ध हो कर किस
 प्रकारका कार्य करे। कर्मोवाचक निवृत्त है और वे सम्बन्ध हो कर निवृत्त कार्य ही करती हैं। यहाँ निवृत्त
 कार्यसे उत्पन्न कार्य सामान्यसे है। वही कारण है कि वह कर्मोंका आचरणका दर्शनवाचक आदि कर्मसे
 और दर्शनवाचकका आचरणका आदि कर्मसे सम्बन्ध नहीं हो सकता। सामान्यसे राधादि परिधामोंका कार्य
 इससे आगेका है। आत्मके राधादि परिधाम तथा कार्य करते हैं इसके बिना वह दृष्टान्त वस्तुतः होगा।
 मान कीद्विप किन्तीके आदिपरिधामोंके निर्माण करनेका ज्ञान है, अतः वह ब्रह्मकी धामतीको प्राप्त कर
 किन्तीके पुत्रवत्की ब्रह्मा है और किन्तीके अन्त खेडकी सामगी तैयार करता है। विस्तृत करनेके लक्ष्य
 वाली एक प्रकारकी इस धामतीसे वह अपने परिधामोंके अनुसार उद्योग वस्तुतः विविध प्रकारके
 कार्य करने निर्माण करता है उद्योग प्रकार यह भी योगदिया द्वारा कर्मोंके प्रत्यक्ष करता है यह अलग
 परिधाम विद्येके कारण स्वयंके उत्पन्न और विविध प्रकारके प्रकारके बिना हुए ब्रह्मकी प्रकारका
 अन्त होता है जिससे उस अन्तके अन्त होते समय धरती विस्तृत दिया (ब्रह्म) द्वारा वह अन्तमें
 उन संस्कारोंके वस्तुतः करता है जिन कार्योंके करनेसे उसके कर्मोंमें वैशेष उत्पन्न पड़े थे। ब्रह्मवाचक एक
 आदर्शके किन्ती वृत्त आदर्शकी हत्वा की इसविधि हत्वा करनेवालेके उस समय मोहवीन कर्मके वस्तुतः
 कर्मोवाचकका वैशेष अन्तविद्येका होता जो यदि वस्तुतः ब्रह्म रहा। अर्थात् अपनी आदिके भीतर अन्त
 कर्मोंके वृत्तोंकी वृत्ता तो अपने विद्येके समय उन संस्कारोंके वस्तुतः करता है जिससे वह भी वृत्तोंके
 द्वारा हन्तविद्येका प्राप्त होता है। प्रश्न यह है कि उसने हन्तविद्येका विविध समयमें की थी किन्तु उस
 दियासे सम्बन्ध संस्कारवाले कर्मोंका विस्तृत (ब्रह्म) किन्ती एक समयमें तो होता नहीं किन्तु हीन
 प्रकारका होता रहता है, इसविधि इसके वे हन्तविद्येके अन्त संस्कार कर्म वस्तुतः होते। धामवाचक यह
 है कि वह वस्तुतः विविध विद्येके तथा उन संस्कारोंके अन्त कर्मोंका विद्येका अन्त (ब्रह्म) विस्तृत होता।
 वहीवाचक हत्वा थी वही है। विविध विद्येके अन्त करनेके बिना हमने एक दृष्टान्तमान दिया है।
 कर्मोवाचकके अन्तके इसकी संशय विद्येका अन्त आदि। इसप्रकार हमने अन्तके ही कर्मोंकी
 अलग अलग अन्तवाचक और एक ही कर्मोंकी अन्तवाचक अन्तवाचक अन्तवाचक अन्तवाचक अन्तवाचक
 उत्पन्न यह है कि योगसे उस वस्तु प्रकृतिका कर्मोंका ही प्रत्यक्ष होता है। ज्ञानके जो कर्मोवाचक
 आहुत करती हैं वे अलग हैं और दर्शनके आचरण करनेवाली कर्मोवाचक अलग हैं। योगद्वारा वे
 अन्तके अन्त अन्तके बिना वस्तुतः कर ही जाती हैं। इसी प्रकार अन्त कर्मोंके अन्तमें भी
 अन्तके अन्त आदि। योगद्वारा अन्तमें वैशेष अन्तवाचककी कर्मोवाचक प्रत्यक्ष होता है पर अन्त प्रत्यक्ष

होनेपर वे आत्माके साथ किस प्रकारके स्पर्शको (बन्धको) प्राप्त हों यह कार्य कपायका है । कपायके कारण ही उनके स्पर्शकी हीनाधिकता और स्पर्शमें वारतन्व्य व आकार निश्चित होता है जिसे क्रमसे स्थिति और अनुभाग कहा जाता है । इस प्रकार अनुभागका ज्ञान ही जानेपर वह किस क्रमसे रहता है इस प्रक्रियाको बतलानेके लिए स्थानोका निरूपण किया गया है । स्थान तीन प्रकारके हैं - बन्धसमुत्पत्तिकस्थान, हतसमुत्पत्तिकस्थान और हतहतसमुत्पत्तिकस्थान । बन्धके समय जो अनुभागकी क्रमिकरचना होती है उस सबको बन्धसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं । तथा सत्तामें स्थित अनुभागका घात होकर जो स्थान उत्पन्न होते हैं वे यदि बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंके समान होते हैं तो उन्हें भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान कहते हैं । किन्तु जो स्थान घातसे उत्पन्न होकर बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंसे भिन्न होते हैं उन्हें हतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं । तथा इन हतसमुत्पत्तिकस्थानोंका भी घात होकर जो अन्य स्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें हतहतसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं । इनमें बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे थोड़े हैं । हतसमुत्पत्तिकस्थान इनसे असंख्यातगुणे हैं और हतहतसमुत्पत्तिकस्थान इनसे भी असंख्यातगुणे हैं । इनका विशेष जहापोह मूलमें किया ही है; इसलिये वहासे जान लेना चाहिए ।



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वीर विमर्शक नमस्कार कर अनुभाग		अपम्य काल	३०-४३
विमर्शके कहनेकी प्रतीक्षा	१	अन्तरानुगम	४३-५२
अनुभागविमर्शके दो भेद	२	वक्तृ अन्तर	४३-४९
अनुभागका स्वरूप	२	अपम्य अन्तर	४६-५०
विमर्श शब्दका अर्थ	२	नामा जीवोंकी अपेक्षा संगविषय	५३-५६
मूलप्रकृति अनुभाग विमर्शका अर्थ	२	वक्तृ संगविषय	५३-५४
व्युत्पन्नप्रकृति अनुभागविमर्शका अर्थ	२	अपम्य संगविषय	५५-५६
मूलप्रकृति बहुमायविमर्श	२-१२०	भागामागानुगम	५६-५६
मूलप्रकृति अनुभागविमर्शके		वक्तृ भागप्रभागानुगम	५६-५८
२३ अनुबोधार्थके नाम	२	अपम्य भागामागानुगम	५८-५६
मूलप्रकृति अनुभागविमर्शमें		परिभाषानुगम	५९-६१
समिर्ष्य अनुयोगद्वाराके न होमेका		वक्तृ परिभाषानुगम	५९-६०
निषेध	३	अपम्य परिभाषानुगम	६०-६१
मूलप्रकृति अनुभागविमर्शके अपम्य		चेत्रानुगम	६२-६३
अनुयोगद्वारा	३	वक्तृ चेत्रानुगम	६२-६३
संज्ञाके दो भेद और इनका विचार	३-६	अपम्य चेत्रानुगम	६३-६५
पाठिसंज्ञाके दो भेद	३	स्पर्शानुगम	६५-६७
वक्तृ पाठिसंज्ञा	३-५	वक्तृ स्पर्शानुगम	६५-६१
सर्वप्रति पदका अर्थ	३	अपम्य स्पर्शानुगम	६२-६७
अपम्य पाठिसंज्ञा	५-६	कालानुगम	७७-८४
स्थान संज्ञाके दो भेद और इनका		वक्तृ कालानुगम	७७-८१
विचार	६-९	अपम्य कालानुगम	८१-८४
वक्तृ स्थान संज्ञा	६-८	अन्तरानुगम	८५-९०
अपम्य स्थान संज्ञा	६-६	वक्तृ अन्तरानुगम	८५-९०
सर्व-न्यसर्वाणामुगम	६	अपम्य अन्तरानुगम	८७-९०
वक्तृ-अनुकृतानुगम	९	मत्तानुगम	९
अपम्य-अपम्यानुगम	९	अस्यबहुत्वानुगम	९१
सावि-असावि-शुद्ध-अशुद्धानुगम	१०-११	वक्तृ अस्यबहुत्वानुगम	९१
स्वामित्वानुगम	११-१९	अपम्य अस्यबहुत्वानुगम	९१
वक्तृ स्वामित्व	११-१५	शुद्धगार विमर्श	९२-१०७
अपम्य स्वामित्व	११-१६	शुद्धगार विमर्शके १३	
कालानुगम	१०-४३	अनुयोगद्वाराके नाम	९२
वक्तृ काल	२०-३	समुत्कीर्तना	९२

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्वामित्व	९२-९३	स्वामित्वानुगम	११३-११४
कालानुगम	९३-९६	कालानुगम	११४-११५
नारकियोंमें प्रति समय अनुभाग का अपवर्तन नहीं होता इस बातका निर्देश	९४	अन्तरानुगम	११६-११८
अनुभागसत्त्वका अपवर्तनाके विना अल्पतर पद नहीं होता इस बातका निर्देश	९४	नानाजीवोंकी अपेक्षा भद्रविचय	११८-११९
चारित्रमोहकी क्षणके विना मोहनीयके अनुभागका प्रति समय घात नहीं होता इस बातका निर्देश	९४	भागाभागानुगम	१२०
अन्तरानुगम	९७-९८	परिमाणानुगम	१२०-१२१
नानाजीवोंकी अपेक्षा भगविचय	९९-१००	क्षेत्रानुगम	१२१
भागाभागानुगम	१०१-१०२	स्पर्शानुगम	१२१-१२२
परिमाणानुगम	१०२	कालानुगम	१२२-१२३
क्षेत्रानुगम	१०३	अन्तरानुगम	१२३-१२४
स्पर्शानुगम	१०३-१०४	भावानुगम	१२४
कालानुगम	१०४-१०५	अल्पबहुत्वानुगम	१२४-१२५
अन्तरानुगम	१०६	स्थान	१२५-१२६
भावानुगम	१०७	प्ररूपणा	१२५-१२६
अल्पबहुत्वानुगम	१०७	प्रमाणा	१२७
पदनिक्षेप	१०७-११२	अल्पबहुत्व	१२७-१२८
पदनिक्षेपके ३ अनुयोगद्वारा	१०७	उत्तर प्रकृतिअनुभागविभक्ति	१२९-३९७
पदनिक्षेप पदका अर्थ	१०७	उत्तर प्रकृतियोंकी स्पर्धकरचना विचार	१२९-१३५
समुत्कीर्तनानुगम	१०८	सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुभाग देशघाति ; है इसकी सिद्धि	१३०
उत्कृष्ट समुत्कीर्तनानुगम	१०८	सम्यक्त्व प्रकृति सम्यग्दर्शनके किस भागका घात करता है इसका विचार	१३०
जघन्य समुत्कीर्तनानुगम	१०८	सज्ञाके दो भेद और उनका विचार	१३५-१५५
स्वामित्वानुगम	१०८-११०	द्विस्थानिक अनुभागमें लता और दारुरूप अनुभाग लिया गया है इसकी सिद्धि	१३७-१३८
उत्कृष्ट स्वामित्वानुगम	१०८-११०	लता अदि सज्ञाएँ मान कषायके अनुभागमें आती हैं फिर भी उनका मिथ्यात्व आदिके अनुभागमें ग्रहण होता है इसकी सिद्धि	१३९
जघन्य स्वामित्वानुगम	११०	मिथ्यात्व सर्वघाति क्यों है इसका विचार	१३९
अल्पबहुत्व	१११-११२	सम्यक्त्वका अनुभाग देशघाति तथा एकस्थानिक और द्विस्थानिक है ऐसा कहनेका कारण	१४३
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	१११		
जघन्य अल्पबहुत्व	११२		
वृद्धिविभक्ति	११२-१२५		
वृद्धिविभक्तिके १३ अनुयोगद्वारा	११२		
वृद्धि पदका अर्थ	११२		
समुत्कीर्तनानुगम	११३		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
व्यारणाके अनुसार संज्ञाके शानों		व्यारणाके अनुसार वल्लुष्ट	
भेदोंका विचार	१५१-१५५	अन्तरानुगम	२०२-२०५
पाठिसंज्ञा विचार	१५१-१५३	अपन्य अन्तरानुगम	२०३ २१०
स्वान्तसंज्ञा विचार	१५३-१५५	अन्तानुबन्धीकी वल्लुष्टाके बाद	
व्यारणाके अनुसार अनुभागविभक्तिके		पुन उत्पत्तिके समान अपन्य	
अनुयागशारोंका नामनिर्देश	१५५-१६६	प्रकृतियोंकी पुन उत्पत्ति क्यों	
सर्व-व्यारणाविभक्त्यनुगम	१५६	नहीं होती इसका विचार	२०७
वल्लुष्ट-अनुवृत्तविभक्त्यनुगम	१५६	अन्तानुबन्धीके समान मिथ्यात्व	
अपन्य-अत्रापन्यविभक्त्यनुगम	१५६	आदिका विचययोजना प्रकृति	
सादि-अन्तदि-भुक्-अभुक्-अनुगम	१५६-१५७	न माननेका कारण	२०८
स्वामित्वानुगम	१५७-१८५	व्यारणाके अनुसार अपन्य	
पठितुपमभाषार्य द्वारा सर्वविभक्ति		अन्तरानुगम	२१०-२१३
आदि अधिकार न कह कर		माना जीबोंकी अपेक्षा मङ्गविषय	२१३-२२१
स्वामित्व अधिकार कहनेका		अर्थपर	२१४
कारण	१५७	वल्लुष्ट मङ्गविषय	२१४-२१८
वल्लुष्ट स्वामित्व	१५७-१६१	व्यारणाके अनुसार वल्लुष्ट	
अपन्य स्वामित्व	१६१-१७५	मङ्गविषय	२१९-२२०
पूर्विसुत्रमें आये हुए सूत्रम पृथकी		व्यारणाके अनुसार अपन्य	
विरोध व्याख्या	१६१-१६२	मङ्गविषय	२२०-२२१
मिथ्यात्वका अपन्य अनुभाग		मागाभाग	२२१-२२३
सूत्रम एकेन्द्रिय अपवर्तनकोके		वल्लुष्ट मागाभाग	२२१-२२२
दाता है इसका कारण	१६२	अपन्य मागाभाग	२२२-२२३
अन्तानुबन्धीका अपन्य अनुभाग		परिमाण	२२४-२२६
सूत्रम पदप्रत्ययके क्यों नहीं		वल्लुष्ट परिमाण	२२४
दाता इसका विचार	१६७	अपन्य परिमाण	२२४-२२६
नरकगतिये उत्तर प्रकृतियोंके अपन्य		चेत्र	२२६-२२७
अनुभागसंज्ञकका निर्देश	१७५-१७६	वल्लुष्ट चेत्र	२२६
व्यारणाके अनुसार स्वामित्वानुगम	१७८-१८५	अपन्य चेत्र	२२६-२२७
वल्लुष्ट स्वामित्व	१७९-१८१	स्पर्शन	२२७-२२८
अपन्य स्वामित्व	१८१-१८५	वल्लुष्ट स्पर्शन	२२७-२२९
कासानुगम	१८५-०	अपन्य स्पर्शन	२२९-२३०
वल्लुष्ट कास	१८५-१८९	कासानुगम	२३३-२३८
व्यारणाके अनुसार वल्लुष्ट कास	१८९-१८९	वल्लुष्ट कासानुगम	२३३-२३४
अपन्य कास	१९०-१९५	व्यारणाके अनुसार वल्लुष्ट	
व्यारणाके अनुसार अपन्य कास	१९५-२००	कासानुगम	२३५-२३६
अन्तानुगम	२०१-२१३	अपन्य कासानुगम	२३६-२३८
वल्लुष्ट अन्तानुगम	२१-२०२		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उच्चारणाके अनुसार जघन्य		भाव	२६७
कालानुगम	२३८-२४०	अल्पबहुत्व	२६७-२६६
अन्तरानुगम	२४१-२४२	पदनिक्षेप	२६६-३०७
उत्कृष्ट अन्तरानुगम	२४१-२४२	पदनिक्षेपके ३ अनुयोगद्वार	२६६
उच्चारणाके अनुसार उत्कृष्ट		समुत्कीर्तना उत्कृष्ट व जघन्य	२६९-३००
अन्तरानुगम	२४२-२४३	स्वामित्व " "	३००-३०५
जघन्य अन्तरानुगम	२४४-२४७	अल्पबहुत्व " "	३०५-३०७
उच्चारणाके अनुसार जघन्य		वृद्धिविभक्ति	३०७-३३०
अन्तरानुगम	२४७-२४८	वृद्धिविभक्तिके १३ अनुयोगद्वार	३०७
उच्चारणाके अनुसार सन्निकर्ष	२४९-२५६	समुत्कीर्तना	३०७-३०८
उत्कृष्ट सन्निकर्ष	२४८-२५२	स्वामित्व	३०८-३०८
जघन्य सन्निकर्ष	२५२-२५६	काल	३०८-२१२
भावानुगम	२५६	अन्तर	३१२-३१६
अल्पबहुत्वानुगम	२५६-२७३	नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	३१६-३१८
उत्कृष्ट अल्पबहुत्व	२५६-२५९	भागाभाग	३१८-३२०
जघन्य अल्पबहुत्व	२५९-२६९	परिमाण	३२०-३२१
नरकगतिमें जघन्य अल्पबहुत्व	२६९-२७१	क्षेत्र	३२१
उच्चारणाके अनुसार जघन्य		स्पर्शन	३२१-३२४
अल्पबहुत्व	२७२-२७३	काल	३२४-३२६
भुजगार विभक्ति	२७३-२९४	अन्तर	३२६-३२८
चूर्णिसूत्रमें बन्धके अनुसार भुजगार, पद,		भाव	३२८
निक्षेप और वृद्धिविभक्तिके जानने		अल्पबहुत्व	३२८-३३०
मात्र की सूचना	२७३	स्थानप्ररूपणा	३३०-३६७
भुजगारविभक्तिके १३ अनुयोग		चूर्णिसूत्रमें सत्कर्मस्थानोंके तीन	
द्वारोंकी सूचना	२७३	भेदोंका निर्देश	३३०
समुत्कीर्तना	२७३-२७४	बन्धसमुत्पत्तिक आदि तीनों	
स्वामित्व	२७५-२७६	भेदोंका निरुक्त्यर्थ	३३१
काल	२७६-२८०	स्थानप्ररूपणा कहने की सार्थकता	"
अन्तर	२८०-२८६	चूर्णिसूत्रमें बन्धसमुत्पत्तिक स्थान सबसे	
नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय	२८६-२८८	स्तोक हैं इस बातका निर्देश	३३२
भागाभाग	२८८-२८९	सबसे जघन्य बन्धसमुत्पत्तिकस्थान	
परिमाण	२८९-२९०	किसके होता है इस बातका निर्देश	
क्षेत्र	२९०-२९१	व उसकी सिद्धि	३३२
स्पर्शन	२९१-२९३	किस अवस्थामें घातस्थान बन्धसमुत्पत्तिक	
काल	२९३-२९५	स्थान कहा जाता है इस बातका निर्देश	३३३
अन्तर	२९५-२९७	अष्टाक किसे कहते हैं इस बातका विचार	३३३

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
अबन्ध अनुभागस्थान अबन्धगुण- वृद्धिरूप है इसकी सिद्धि	३३३	सूक्ष्म जीवके अचानक स्थानके परमाणुओं की वह अभिन्मयोंके द्वारा प्ररूपणा	३५२
अबन्धका प्रमाय निर्देश	३३४	प्ररूपणा	३५३
अबन्ध अनुभागस्थान अचानक होकर भी अबन्धस्थानके समान है		प्रमाय	३५२
इसकी सममाय सिद्धि	३३४	श्रेयि	३५२
अचानक अनुभागवृद्धिका कारण नहीं है		अबन्धकारका	३५३
इस बातकी सिद्धि	३३५	भागभाग	३५४
अन्तिम स्पर्शकी अन्तिम वर्ग्याका एक परमाणु अनुभागस्थान क्यों है		अत्यवहुत	३५३
इस बातकी सिद्धि	३३६	द्वितीय आदि अनुभागस्थानका विचार	३५५
योगस्थानके समान अनुभागस्थानके काम न करनेका कारण	३३७	एक कर्मपरमाणुके अभिभागप्रतिष्केषोंमें अनुभागस्थान वर्ग, वर्ग्या और स्पर्श के चारों संझारों बन जाती हैं	
प्रदेशोंके गहननेसे स्थितिघातके समान अनुभागघात नहीं होता	३३७	इस बातका निर्देश	३६८
संयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती निष्पत्तिके अनुभागबन्ध अचानक क्यों नहीं होता इस बातका विचार	३३८	एक कर्मपरमाणुके अभिभागप्रति- ष्केषोंकी स्थान संझा मानने पर एक स्थानमें अचानक स्थान नहीं प्राप्त होते इस बातका कियेप कहापोह	३६६
संयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती निष्पत्तिके अनुभागसंक्रम अचानक क्यों नहीं है इस बातका विचार	३३८	अनुभागस्थानके बन्ध और अचानकसे निष्पन्न होने पर वह बन्धसे निष्पन्न हुआ क्यों कहा जाता है	
अनुभागकी वृद्धि या इन्निमें योग कारण नहीं है इस बातका निर्देश	३३९	इस बातका विचार	३७२
समुच्चालगत केवलीके अक्षर अनुभागकी सत्ता कैसे सम्भव है इस बातकी सिद्धि	३४१	असंख्याव्यवस्थावृद्धि आदि किस प्रकार उत्पन्न होती हैं आदिका कियेप कहापोह	३७४
अबन्धस्थानकी स्वरूपसिद्धि	३४४	अबन्धस्थानोंके कारणभूत कषाय बन्ध स्थानोंके अबन्धस्थान क्रमका निर्देश	३८
अबन्ध स्थानकी चार प्रकारसे प्ररूपणा	३४७	इतसमुत्पत्तिकेव्यवस्था विचार	३८०-३९०
अभिभागप्रतिष्केषप्ररूपणा	३४७	विद्युत्स्थानका सञ्चय	३८०
वर्ग्याप्ररूपणा	३४८	इतइतसमुत्पत्तिकेव्यवस्थाविचार	३९१-३९०
स्पर्शप्ररूपणा	३४९		
अन्धप्ररूपणा	३५		





सिरि-भद्रसहाहरिपिरइय-शुणिमुत्तसमण्डि

सिरि भगवतशुणहरभारभोषइट

क सा य पा हु डं

तस्स

सिरि वीरसेषाहरिपिरइया टीका

जयधवला

तत्त्व

अनुभागविहारी नाम चरत्थो अत्वाडिपारो

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

शिद्धिपुत्रमहकर्म्य वीरं जमियुज पतसम्बद्ध ।

अनुभागस्स विहितिं जहोषएसं पस्सेमो ॥१॥

विन्दोमि आठों कर्मोंका मारा कर दिया है वीर समस्त कर्मोंको प्रसन्न कर लिया है वन भी वीर विनयेकको नमस्कार करके शास्त्रानुसार अनुभागविहारीको कहेते हैं ॥ १ ॥

कसायपाहुडस्स

अ गु भा ग वि ह ती

चउत्यो अत्याहियारो

* एत्तो अणुभागविहत्ती दुविहा—मूलपयडिअणुभागविहत्ती चेव उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती चेव ।

§ १. को अणुभागो ? कम्मार्णं सगकज्जकरणसत्ती अणुभागो णाम । तस्से विहत्ती भेदो पवंचो जम्हि अहियारे परुविज्जदि सा अणुभागविहत्ती णाम । तिस्से दुवे अहियारा—मूलपयडिअणुभागविहत्ती उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती चेदि । मूलपयडिअणुभागस्स जत्थ विहत्ती परुविज्जदि सा मूलपयडिअणुभागविहत्ती । उत्तरपयडीणमणुभागस्स जत्थ विहत्ती परुविज्जदि सा उत्तरपयडिअणुभागविहत्ती । एवमेत्थ वे चेव अत्थाहियारा; तदियस्स णिव्विसयत्तेण अभावादो । ण दोण्हमहियाराण समूहो विसओ; समूहिवदिरित्तसमूहाभावादो तेहितो चेव तदवगमादो वा ।

* एत्तो मूलपयडिअणुभागविहत्ती भाणिदव्वा ।

§ २. एदम्हादो णिवधणादो मूलपयडिअणुभागविहत्ती भाणिदूणं गेण्हदव्वा । संपहि एदस्स सुत्तस्स उच्चारणाइरियकयवक्खवाणं वत्तइस्सामो । तत्थ इमाणि तेवीसं

* यहाँ से अनुभागविभक्ति का कथन प्रारम्भ होता है । उसके दो भेद हैं—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति ।

§ १ शङ्का—अनुभाग किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्मोंके अपना कार्य करनेकी शक्तिको अनुभाग कहते हैं, अर्थात् कर्मोंमें अपना अपना फल देनेकी जो शक्ति रहती है उसे ही अनुभाग कहा जाता है ।

उस अनुभागकी विभक्ति अर्थात् भेद या विस्तार जिस अधिकारमें कहा जाता है उसका नाम अनुभागविभक्ति है । उसके दो अधिकार हैं—मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति । जिस अधिकारमें मूल प्रकृतियोंके अनुभागका विभाग कहा जाता है वह मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति है और जिसमें उत्तर प्रकृतियोंके अनुभागके विस्तारको कहा जाता है वह उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति है । इस प्रकार यहाँ दो ही अधिकार हैं । तीसरे अधिकारका अभाव है, क्योंकि उसका कोई विषय नहीं है । शायद कहा जाय कि दोनों अधिकारोंका समूह उसका विषय है अर्थात् तीसरे अधिकारमें मूल प्रकृतिअनुभागविभक्ति और उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्ति का कथन रह सकता है सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि समूहवालोंसे अतिरिक्त समूहका अभाव है और समूहवालोंका ज्ञान हो जानेसे ही उनके समूहका भी ज्ञान हो जाता है । सारांश यह है कि जब पहले अधिकारमें मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका और दूसरेमें उत्तरप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन हो ही सकता है तो उनका ज्ञान हो जानेसे उनके समूहका भी ज्ञान हो ही जाता है, क्योंकि दोनों विभक्तियोंका समूह उनसे कोई पृथक् वस्तु नहीं है, अतः तीसरे अधिकारमें कथन करनेके लिये कोई विषय ही नहीं है इसलिये यहाँ तीसरे अधिकारका अभाव है ।

* यहाँसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन कराना चाहिये ।

§ २. इस सूत्रसे मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिका कथन कराके उसे ग्रहण करना चाहिये । अब इस सूत्रके उच्चारणाचार्यकृत व्याख्यानको कहेंगे । मूलप्रकृतिअनुभागविभक्तिके विषयमें ये

अजियागदाराणि षाड्भ्राणि भवंति । तं महा—स्रग्णा स्रग्णाणुभागविहरी गोस्रग्णाणु
 भागविहरी चक्रस्साणुभागविहरी अणुकस्साणुभागविहरी महण्णाणुभागविहरी भज
 हण्णाणुभागविहरी सादियमणुभागविहरी अणादियमणुभागविहरी घुषाणुभागविहरी
 महघुषाणुभागविहरी एग बीषेण सामिणं काशो अंतर गाणाजीबहि भंगविषओ
 भागभागो परिमाणं स्लेत्तं पोसणं कासो अंतरं भावो अप्पाबहुअं चेदि । सण्णियासो
 गत्वि; एद्धिस्स पयडीए त्दसंभवादां । सुभगार-पदणिकसेय-मड्डिनिहधि हाणाणि चेदि
 अण्णे चचारि अत्वाहियारा हांति ।

१ ३ तस्य एदेहि क्रमेण मूलपयटिअणुभागविहरीय पकवणं कस्सामो । तं
 महा—स्रग्णा दुविहा—यादिस्रग्णा हाणस्रग्णा थदि । पादिस्रग्णा दुविहा—अहण्णा
 चक्रस्सा चेदि । चक्रस्स पपदं । दुविहा गिहो सो—ओघेण भादसेण य । तस्य ओघेण
 मोह० चक्रस्सअणुभागविहरी सम्भवादी । सम्भवादि पि किं ? समपटिबद्धं भीव
 गुणं सम्भं गिरपसेसं पाइत्तं जिगासिदु सीध मस्स अणुभागस्स सो अणुभागो
 सव्वपादी । अणुकस्सअणुभागविहरी सम्भवादी देवपादी वा । एवं मणुसतिण्णि-

तेइस अनुपागद्वार ज्ञानने योग्य हैं—संज्ञा, सर्वाणुभागविमत्ति नोसर्वाणुभागविमत्ति, चक्रस्स
 मणुविमत्ति अनुचक्र अनुभागविमत्ति, अणुमणुविमत्ति अणुमणुविमत्ति अणुमणुविमत्ति
 स्रग्णिअणुभागविमत्ति अनादिअणुभागविमत्ति मणुअणुभागविमत्ति अणुअणुभागविमत्ति एक
 बीषकी अपेक्षा स्वप्रमित्य काज, अन्तर, नाना बीषकी अपेक्षा भोगविषय, मातामाता परिमाण
 केव, स्वर्गन काज अन्तर भाव और अस्वबहुत्व । यहाँ सन्निकर्ष अनुबोगद्वार नहीं है, क्योंकि
 एक प्रकृतिमें सन्निकर्ष संभव नहीं है । यहाँ सुभगार, पदनिषेप वृद्धिविमत्ति और स्वान ये चार
 अधिकार और होते हैं ।

१ ३ अथ इनके द्वारा क्रमसे मूलप्रकृतिअणुभागविमत्तिका कथन करेंगे । यह इस प्रकार
 है—संज्ञा दो प्रकारकी है—पाठिसंज्ञा और स्वानसंज्ञा । पाठिसंज्ञा दो प्रकारकी है—अणुमणु और
 चक्रस्स । इनमेंसे पहले चक्रस्स पाठिसंज्ञाका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आय
 निर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे आयनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय कर्मकी चक्रस्स अनुभाग
 विमत्ति सर्वपाठी है ।

संज्ञा—सर्वपाठि इस पदका क्या अर्थ है ?
 समाधान—अपने से मतिवद्ध बीषके गुणको पूरी तरह से बातम्बक जिस अनुभागका
 स्वभाव है उस अनुभागको सर्वपाठी कहते हैं ।
 मोहनीय कर्मकी अनुचक्र अनुभागविमत्ति सर्वपाठी भी है और देशपाठी भी है । इसी

१ जो वाच्य अतिवर्ण संकलं ओ होइ अन्ववाहरको ।
 २ा निविहरो विटो तच्छयो कश्चिद्व्यवहारविमत्तो ॥ १२८ ॥ खेदागवर पंचरत्नसङ्ग्रह ३
 व्याख्या— जो वाच्यति स्वविचरं संकलं च पद्यति अर्थवातिरथा ।
 सव स्ववार्त्वं कंससङ्ख्यादिचकलं युक्तं वाच्यतीति अन्ववातीति ।
 कमावृत्तिव्यं संकल्यन्वये ज्ञान टीका ७७
 स्वविचरं अन्वयेन अन्वि वाच्यत अन्ववातिरथा । कर्मावृत्तिव्यं टीका १ १

पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालियकाय०-
चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि ति ।

§ ४. आदेसेण णेरइएसु उक्क० अणुक० सव्वघादी । एवं सव्वणिरय-सव्व-
तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेव-सव्वेइदिय सव्वविगलिटिय-पंचिदियअपज्ज०-सव्वपंच-
काय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउ० मिस्स०-कम्मइय०-आहार०-
आहारमिस्स०-तिण्णिवेद-तिण्णअण्णाण-परिहार०-सजदासंजद०-असंजद०-पंचले०-
अभवसि०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि ति ।

प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचो मनोयागी, पाचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, सद्गी और आहारक में जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मके अनुभागका वर्णन करनेके लिये जो वेईस अनुयोगद्वारा बतलाये हैं उनमेंसे पहले सज्ञाके द्वारा अनुभागका वर्णन किया है । सज्ञाके दो भेद कहे हैं—एक घाती दूसरा स्थान । मोहनीय कर्म घाती है, क्योंकि वह आत्माके गुणोंको घातता है । इसलिये उसके अनुभागकी घाति सज्ञा है । वह अनुभागकी हीनाधिकताको लिए हुए अनेक प्रकारका होता है । सबसे अधिक फलदानकी शक्तिको उत्कृष्ट अनुभाग कहते हैं और उसके सिवा शेषको अनुत्कृष्ट कहते हैं । हीन फलदानकी शक्तिको जघन्य अनुभाग कहते हैं और उसके सिवा शेषको अजघन्य कहते हैं । इस प्रकार घाती मोहनीय कर्मके अनुभागके चार प्रकार हो जाते हैं—उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य । इन चार भेदों में से उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सर्वघाती ही होती है परन्तु अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिमें जघन्य भी सम्मिलित है इस लिए वह सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकार की होती है । जो अनुभागविभक्ति आत्माके गुणोंको पूरी तरहसे घातती है वह सर्वघाती है और जो उन्हें एकदेशसे घातती है वह देशघाती है ।

अनुभागके भेद प्रभेदोंको सर्वघाती और देशघातीकी तरह एक दूसरे प्रकारसे भी विभाजित किया जाता है और वह प्रकार है स्थानसज्ञाका । मोहनीय कर्मके अनुभागस्थानोंको चार हिस्सोंमें बाटा जाता है—एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक । एकस्थानिक स्पर्धक देशघाती ही होते हैं और द्विस्थानिक स्पर्धक देशघाती भी होते हैं और सर्वघाती भी होते हैं । किन्तु शेष अनुभाग स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं ।

§ ४ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्ति सर्वघाती है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्तक, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब चिक्खलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब तेजकायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कामैणकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, तीनों वेदी, कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धसंयमी, सयतासयत, असयत, शुक्लके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असद्गी और अनाहारकोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—उक्त सब मार्गणाओंमें मोहनीयकर्मका एक स्थानिक अनुभाग नहीं रहता है

५ ५ अश्वत्थ० उद० सम्बधादी । अशुद्ध० सम्बधादी देसपादी वा । एष माभिणि०-सुद०-मोहि०-मणपञ्ज०-समम०-सामाहय-धेदो०-सुहुम०-मोहिर्वस० सुकले०-सम्मादिदि०-स्वइयसम्मादिदि० सि । अकसाइ० उद० अशुद्ध० सम्बधादी० । एवं अहाक्त्वा० संसदे सि ।

एवमुक्तस्तसम्माशुगमो समत्ता ।

५ ६ अहण्यए पर्यदं । दुबिहो गिहो सो—ओषेण भादेसण य । तस्य ओषेणं मोह० अहण्यशुभागविहारी देसपादी । अहण्यशु० देसपादी सम्बधादी वा । एवं मज्जसत्थिय-पंचिदिय-पंचिदियपञ्ज०-वस-वसपञ्ज०-पंचमण० पंचवधि०-काययोगि० मोरासियकाय०-अश्वत्थवेद०-वचारिकसाय-माभिणि०-सुद०-मोहि०-मणपञ्ज०-संसद०-सामाहय-धेदो०-सुहुम०-सांपराहय-चनत्तु०-अश्वत्थु०-मोहिर्वसण-सुकले०-मयसि०-सम्मादि०-स्वइय०-सण्णि-माहारि सि ।

बैसा कि आगेके स्थानसंज्ञा अनुबोगद्वारासे स्पष्ट है । तथा द्विस्वान्तिक अनुभागका भी वही अंश रहता है जो सर्वपाठी है अतः इनमें मोहनीयकर्मकी अकृत्य और अनुकृत्य अनुभागविमर्षि सब माली होती हैं ।

५ ८. वेदं उचित बीजकी अकृत्य अनुभागविमर्षि सर्वपाठी है और अनुकृत्य अनुभागविमर्षि सर्वपाठी अश्वत्थ देशपाठी है । इसी प्रकार अप्रमिन्नोपिच्छजानी, मुत्तजानी अश्विच्छान्ति मन्त्र पर्यवहानी संवमी सामाधिकसंवमी, जेवोपस्वापनासंवमी सुखसांपराहयसंवमी अश्वि वरानी, पुण्ड्रसंस्वापाने, सम्पगच्छि और क्षायिकसम्पगच्छि के जानना चाहिये । अकृत्यादि बीजकी अकृत्य और अनुकृत्य अनुभागविमर्षि सर्वपाठी है । इसी प्रकार अश्वत्थवत्तचारित्रसंवतमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मूलमें कही गई क्षायिकसम्पगच्छि पर्यन्त मार्गवाधोमें मोहनीयकर्मकी अकृत्य अनुभागविमर्षि जो सर्वपाठी ही होती है किन्तु अनुकृत्य अनुभागविमर्षि सर्वपाठी भी होती है और देशपाठी भी होती है । इसका कारण यह है कि इनके अक्षरम यीमें एकस्वान्तिक अनुभागकी भी सत्ता रहती है । अकृत्यादि और अश्वत्थवत्तसंवत बीजोंके मोहनीयके सर्वपाठी अनुभागकी ही सत्ता रहती है, क्योंकि अक्षरम यीकी अपेक्षा ही इन मार्गवाधोमें मोहनीयका सत्त्व सम्भव है । अतः इनके दोनों ही अनुभाग सर्वपाठी होते हैं ।

इस प्रकार अकृत्य संज्ञाशुगम समस्त हुआ ।

५ ९ अथ अपत्य अनुभागविमर्षिका प्रकरणे है । निर्गारा दो प्रकारका है—ओषन्तिरा और भादेशन्तिरा । इनमेंसे ओषन्तिराकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी अक्षरम अनुभागविमर्षि देशपाठी है और अक्षरम अनुभागविमर्षि देशपाठी अश्वत्थ सत्तावाती है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी पंचेन्द्रिय पञ्चोन्द्रिय पर्याप्त, त्रस त्रसपक्षि, पाँचो मनोयोगी पाँचो अक्षरयोगी कक्षयोगी, औदारिकअक्षरयोगी अपगतवेरी, पाँचो अक्षरवाले आमिन्नि-वापिच्छानी मुत्तजानी, अश्विच्छान्ति, मन्त्रःपर्यवहानी, संवत सामाधिकसंवमी, जेवोपस्वापना संवमी सुखसांपराहयसंवमी, अश्वत्थवरानी, अश्वत्थवरानी, अश्विद्वरानी, पुण्ड्रसंस्वापाने, मन्त्र, सम्पगच्छि, क्षायिकसम्पगच्छि, संज्ञी और अक्षरधोमें समझना चाहिये ।

§ ७. आदेसेण णेरइएसु जहण्ण० अजहण्ण० सव्वघादी । एवं सव्वणेरइय-
सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०--सव्वदेव--सव्वएइंदिय--सव्वविगल्लिंदिय--पच्चैदियअपज्जै०
सव्वपचकाय०--तसअपज्ज०--ओरालियमिस्स०--वेउव्विय०--वेउव्वियमिस्सै०--कम्मइय०--
आहार०--आहारमिस्स०--तिण्णिवेद०--अकसा०--तिण्णअण्णा०--परिहार०--जहाक्खाद०--
संजमासंजम--असजम--पंचल्ले०--अभवसि०--वेदग०--उवसम०--सासण०--सम्माभि०--
मिच्छादि०--असण्णि०--अणाहारि त्ति ।

एवं जहण्णसण्णाणुगमो समत्तो ।

§ ८. द्वाणसण्णा दुविहा—जहण्णिया उक्खस्सिया चेदि । उक्खस्सियाए पयदं ।
दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्खस्साणुभागद्वाणं चदुद्दा-
णियं । अणुक्क० चदुद्दाणियं तिद्दाणियं विद्दाणियं एगद्दाणियं वा । एवं मणुसतिण्ण-
पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०--तस-तसपज्ज०--पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि०--ओरालियकाय०--

§ ७ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्ति सर्वघाती है ।
इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्यअपर्याप्त, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय
पचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथ्वीकायिक, सब जलकायिक, सब तेजस्कायिक, सब वायुकायिक, सब
वनस्पतिकायिक, त्रसअपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्र-
काययोगी, कार्मणकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, तीनों वेदवाले, अकपायिक,
कुमातज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, परिहारविशुद्धिसयमी, यथाख्यातचारित्रसयमी, सयमासंयमी,
असयमी, शुक्ललेद्याके सिवा शेष पाचों लेद्यावाले, अभव्य, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,
सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यामिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी और अनाहारकमें समम्फता चाहिये ।

विशेषार्थ—मूलमें कही गई आहारक पर्यन्त मार्गणाओं में क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा एक
स्थानिक अनुभाग का भी सत्त्व पाया जाता है । अतः उनमें जघन्य अनुभाग देशघाती और अज-
घन्य अनुभाग देशघाती तथा सर्वघाती होता है । तथा शेष अनाहारक पर्यन्त मार्गणाओं में
सर्वघाती अनुभागका ही सत्त्व पाया जाता है अतः उनमें जघन्य और अजघन्य दोनों अनुभाग
सर्वघाती ही होते हैं । यहा यह स्मरण रखनेकी बात है कि अनुभागके ये उत्कृष्ट आदि भेद श्लोक
और आदेश दो प्रकारसे किये हैं । इसलिए जहाँ जो सम्भव हों उस अपेक्षा से उन्हें घटित कर
लेना चाहिए ।

इस प्रकार जघन्य सन्नानुगम समाप्त हुआ ।

§ ८ स्थानसन्ना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे यहा उत्कृष्ट का प्रकरण है ।
निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय
कर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक होता है और अनुत्कृष्ट अनुभागस्थान चतुःस्थानिक,
त्रिस्थानिक, द्विस्थानिक और एकस्थानिक होता है । इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्य, पञ्चन्द्रिय,
पञ्चन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-

अचारिकसाय-अक्षु०-अक्षु० मनसि०-सण्णि०-आहारि सि ।

१६ आदेशेण भेरुपसु उक्तसं० चरुहाण० । मणुक० वेहा० विहा० घट्टु
 हाणियं वा । एवं सम्भणेरुय-सम्भतिरिक्त्त-मणुसअपञ्ज०-देव भवणादि जाम सह
 स्सार सम्भेइदिय-सम्भविगळिदिय-पंविदियअपञ्ज०-सम्भपंचकाय-तसअपञ्ज०-ओरा-
 लयमिस्स०-वेउअिय०-वेउअियमिस्स०-कम्मइय०-तिण्णिबद्-तिण्णिअण्णाय-असं
 मद-पंचले०-अमवसि० मिच्छादिदि-असण्णि-अणाहारि सि । आणदादि जाम सम्भट्ट
 सिद्धि सि उक्त० अणुक० वेहाणियं । एवमाहार० आहारमिस्स०-अक्षसाय-परिहार०-
 अहाअसाद०-संभदासंभद-वेदगसम्माइदि-उपसम०-सासण०-सम्मामि०दिदि सि । अब
 गद्वेदसु मोह० उक्त० वेहाणिय । अणुक० वेहाणियमेगहाणियं वा । एवमभिणि०
 सुद०-ओहि०-मणपञ्चव०-संभद०-सामाइय-अप्येओ०-सुहुमसापराइय०-ओहिदम०-

योगी चारों रूपयत्ने, अक्षुवर्तनी, अक्षुवर्तनी, मय्य, संघी और अक्षुवर्तने जानना चाहिये ।
 विशेषार्थ—पाठिकर्मोंकी अनुमागशक्ति जटा, शरु अस्वि और शैल इस प्रकार चार
 प्रकारकी मानी गई है । जिसमें यह चारों प्रकारकी शक्ति होती है उसे पशुःस्थानिक अनुमाग
 कहते हैं । जिसमें शैलरूप शक्तिके सिवा तीन प्रकारकी शक्ति होती है उसे त्रिस्थानिक अनुमाग
 कहते हैं । जिसमें जटा और शरु रूप शक्ति होती है उसे द्विस्थानिक अनुमाग कहते हैं और
 जिसमें केवल जटा रूप शक्ति होती है उसे एकस्थानिक अनुमाग कहते हैं । उक्त अनुमागशक्ति
 पशुःस्थानिक होती है वह स्पष्ट ही है और उससे हीम सब अनुमाग शक्ति अनुकूल कहलाती है,
 इसलिये अनुकूल अनुमागशक्तिको पशुःस्थानिक आदि चारों प्रकारका कहा है । यहाँ इतना
 विशेष जानना चाहिये कि एकस्थानिक अनुमागशक्ति अपकमेयिके सिवा अन्यत्र नहीं उपलब्ध
 होती । यही कारण है कि यहाँ जिन मार्गवाच्योंमें अपकमेयिके सम्भव है उनका कवन भोषके
 समान जाननेकी सूचना की है ।

१६ आदेशाद्धी अपेक्षा नारकियोंमें उक्त अनुमागस्थान पशुःस्थानिक होता है और
 अनुकूल अनुमागस्थान त्रिस्थानिक त्रिस्थानिक अथवा पशुःस्थानिक होता है । इसी प्रकार सब
 नारकियोंमें सब तिरवाँजों मनुष्य अपर्थात्क सामान्य रूप भवनवासीके लेकर उरुसार स्वर्ग
 तकके वेच, सब एकत्रिय सब विकसेत्रिय पंचेन्द्रियअपमासु, सब पाँचों स्वावरकाय तस
 अपर्थात्क औदारिकमिअकअयोनी वैश्विककअययोगी वैश्विकमिअकअययोगी कर्मणकाययोगी
 तीनों वेदवले मतिअज्ञानी भुतअज्ञानी विमहज्ञानी, असंयत सुकलेरवाले सिवा छेप पाँचों
 लेख्यावले अमध्य मिध्यादृष्टि, असंघी और अनक्षरकर्म ज्ञानना चाहिये । अर्थात् जन्में उक्त
 अनुमागस्थान पशुःस्थानिक होता है और अनुकूल अनुमागस्थान पशुःस्थानिक त्रिस्थानिक
 अथवा द्विस्थानिक होता है । आनतस्वर्गके लेकर सर्वावसिद्धि तकके देवोंमें उक्त और अनुकूल
 अनुमागस्थान द्विस्थानिक ही होता है । इसी प्रकार आक्षरकर्मयोगी आक्षरकर्मिअकअययोगी
 अकर्मवी परिहारिकुदिसंयत पचासवातसंबत संयतासंबत वैश्वकसम्भट्टि, अशरामसम्भट्टि
 सास्तावनसम्भट्टि और सम्भमिध्यादृष्टियोंमें जानना चाहिये । अर्थात् जन्में उक्त और अनुकूल
 अनुमागस्थान द्विस्थानिक ही होता है । अपगतवेची बीचोंमें मोहनीवर्त्मका उक्त अनुमागस्थान
 द्विस्थानिक होता है और अनुकूल अनुमागस्थान त्रिस्थानिक अथवा एकस्थानिक होता है । इसी
 प्रकार अविनिबोविकजानी, भुत्जानी, अवधिजानी मत्पर्ययजानी संयत सामायिकसंबत

सुकले०-सम्मादिट्टि-खइय०दिट्टि त्ति ।

एव उकसिया हाणसण्णा समत्ता ।

§ १०. जहणियाए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण-
मोह० जहण्णाणुभागविहत्ती एगहाणिया । अज० एगहा० विट्टा० तिट्टा० चउट्टा-
णिया वा । एवं मणुसत्तिग-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-
कायजोगि०--ओरालिय०--चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०--भवसि०-सण्णि०-आहारि
त्ति ।

§ ११. आदेसेण णेरइएसु ज० वेट्टाणियं । अज० वेट्टा० तिट्टा० चउट्टाणियं
वा । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव भवणादि जाव सहस्सार सव्व-

छेदोपस्थापनासयत, सूक्ष्मसापरायसयत, अवधिदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, सामान्य सम्यग्दृष्टि और
क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिये । अर्थात् उनमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभागस्थान
द्विस्थानिक होता है और अनुकृष्ट अनुभागस्थान द्विस्थानिक अथवा एकस्थानिक होता है ।

विशेषार्थ—आदेशसे प्ररूपणा करते समय यहाँ निर्दिष्ट सब मार्गणाओंको तीन भागोंमें
विभक्त कर दिया है । प्रथम प्रकारमें वे मार्गणाएँ आती हैं जिनमें ओघ उत्कृष्ट अनुभागवन्ध
सम्भव है । या उसका घात किये बिना जिनमें ऐसे जीवोंकी उत्पत्ति सम्भव है । दूसरे प्रकारमें वे
मार्गणाएँ आती हैं जिनमें क्षपकश्रेणितो सम्भव नहीं पर अन्तरङ्ग विशुद्धिके कारण न तो द्विस्था-
निक अनुभागसे ऊपरके या नीचेके अनुभागका वन्ध ही होता है और न इससे आगेके या नीचेके
अनुभागकी सत्ता ही रहती है । तथा तीसरे प्रकारमें वे मार्गणाएँ आती हैं जिनमें परिणामोंकी
विशुद्धिके कारण द्विस्थानिक अनुभागसे आगेके अनुभागका न तो वन्ध ही होता है और न सत्ता
ही रहती है । परन्तु इन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होने से यहाँ एकस्थानिक
अनुभाग भी बन जाता है । मार्गणाओंका नामनिर्देश मूलमें किया ही है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थानसंज्ञा समाप्त हुई ।

§ १० अब जघन्य स्थानसंज्ञाका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और
आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक होती
है और अजघन्य अनुभागविभक्ति एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा चतु स्थानिक
होती है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक, मनुष्यिनी, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस,
त्रसपर्याप्तक, पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चारों कपायवाले,
चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, सश्री और आहारकमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—एकस्थानिकमें भी जो सबसे हीन अनुभागशक्ति होती है वह जघन्य अनुभाग-
शक्ति है और इसके सिवा शेष सब अजघन्य अनुभागशक्ति है । इनमेंसे मोहनीयकी जघन्य
अनुभागशक्ति क्षपकसूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होती है । इसके सिवा अन्यत्र अजघन्य
होती है । ओघसे तो यह सम्भव है ही । पर जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्वादि क्षपक सूक्ष्मसापराय
तक गुणस्थान सम्भव हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः मूलमें निर्दिष्ट मार्गणाओंका
कथन ओघके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ११ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनियकर्मका जघन्य अनुभागस्थान द्विस्थानिक
होता है और अजघन्य अनुभागस्थान द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक अथवा चतु स्थानिक होता है ।
इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर सहस्रार

एहंदिद्य-सम्बदिगलिदिद्य-पंचिदिद्यमपञ्ज-सम्बपंचकाय-तसमपञ्ज-ओरास्त्रियमिस्स-
 वेरम्बिय-वेरम्बियमिस्स-कम्बइय-तिण्णिपेद तिण्णिमण्णाय-मसंजद-पंचलेस्ता
 मयवसि-मिच्छादि-मसण्णि-मणाहारि सि । भाणदादि जाय सम्बइसिदि सि
 जइण्णाजइणमज्जुमागविहती वेदाणिया । एयं आहार-आहारमि-अकसा-परिहार-
 महाक्खाद-संजदासंजद-वेदग-उयसम-सासण-सम्मामि-दिदि सि । अबगदवेदेसु
 माह-ज-एगहाणिया । अन-एगहाणिया विदाणिया वा । एवमामिणि-सुद-
 ओहि-मणपक्क-संजद-सामाइय-अदो-सुहुमसांपराय-ओहिदंस-सुक्खो-
 सम्मादि-स्वय-दिदि सि ।

एयं जइणिया हाणसण्णा समत्ता ।

§ १२ सम्बविहति-ओसम्बविहतियाणुगमेण बुविहो णिहेसो-ओपेण आइसेण
 य । ओपे-मोह-सम्बफइयाणि सम्बविहती । तदूणं णोसम्बविहती । एव जेदम्यं
 जाय मणाहारि सि ।

स्वर्ग तकके देव सब एकेन्द्रिय सब विकसेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त सब पाँचों स्थावररूप, अस
 अपर्याप्त, औदारिकमिन्नकामयोगी वैश्वियिककामयोगी वैश्वियिकमिन्नकामयोगी, कामर्याकामयोगी,
 तीनों वेदी, यतिअज्ञानी भुतअज्ञानी विमज्जानी, असंभत छुज्जलेस्याके सिवा सेप पाँचों
 अदवावासे, असम्य मिथ्यादृष्टि असंखी और अनइरकमे ज्ञानता बइहिये । आमत स्वर्गसे
 लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त अथम्ब और अजअम्य अनुमागविमत्ति द्विस्वानिक ही होती है । इसी
 प्रकार आहारकअपयोगी, आहारकमिन्नकामयोगी अकपायी, परिहाइसुखिसंयत, पचास्यात
 संयत संयतासंयत, वेदकसम्बगदृष्टि, उपरामसम्बगदृष्टि, सासत्तनसम्बगदृष्टि और सम्ममिथ्या-
 दृष्टिमें ज्ञानता बइहिये । अपगतवेदी बीचोंमें मोहनीपकमैकी अथम्ब अनुमागविमत्ति एकस्वानिक
 होती है और अजअम्य अनुमागविमत्ति एकस्वानिक होती है और द्विस्वानिक होती है । इसी
 प्रकार आग्निबोधिअज्ञानी, भुतअज्ञानी अविमज्जानी, मनापर्ययअज्ञानी संभत सामाधिकसंयत,
 जेदोपस्थापनासंयत, सूक्ष्मसाम्प्रदायसंयत, अथपिबसेरी, छुज्जलेरवावासे सम्बगदृष्टि और कायिक
 सम्बगदृष्टिमें ज्ञानता बइहिये । अर्थात् इनमें मोहनीपकमैकी अथम्ब अनुमागविमत्ति एकस्वानिक
 होती है और अजअम्य अनुमागविमत्ति एकस्वानिक और द्विस्वानिक होती है ।

इस प्रकार अथम्ब स्वानतंथा समाप्त हुई ।

§ १३. सर्वविमत्ति और नोसर्वविमत्तिकी अपेक्षा निर्वेरा दो प्रकारका है-ओवनिर्वेरा
 और आदिनिर्वेरा । ओवकी अपेक्षा मीहनीपकमैके सब स्पर्शक सर्वविमत्ति हैं और अन्ते म्यून
 स्पर्शक नोसर्वविमत्ति हैं । इसी प्रकार अवाहारक मार्गाया पर्यन्त से जाना बइहिये ।

विशेषार्थ-सर्वविमत्तिसे आशय है सब मेद-अमेद । अर्थात् सब मेद प्रमेदोंके समूहको
 सर्वविमत्ति कहते हैं और अत समूहमेंसे यदि एक भी मेद कम हो तो अन्ते नोसर्वविमत्ति कहते
 हैं । अत मोहवीपकमैके जितने स्पर्शक हैं अन्ता समूह सर्वविमत्ति कहा जाता है और इस
 समूहमेंसे यदि एक भी स्पर्शक कम हो तो अन्ते नोसर्वविमत्ति कहते हैं । शार्तअ कह है कि
 सर्वविमत्ति केवल सब स्पर्शकोंका समूह ही है और इस समूहसे कम स्पर्शक नोसर्वविमत्ति
 है । सब मार्गावाओंमें सर्वविमत्ति और नोसर्वविमत्तिअथ ही कम समझना बइहिये ।

§ १३. उक्त्साणुकत्साणुगमेण दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० सव्वुकत्सओ अणुभागो उक्त्सविहती। तदूणमणुकत्सविहती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति; आदेसुकत्सस्स सव्वत्थ संभवाटो।

§ १४. जहण्णाजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिहो सो—ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० सव्वजहण्णओ अणुभागो जहण्णविहती। तदुवरिमा अजहण्णविहती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति; आदेसजहण्णस्स सव्वत्थ संभवाटो।

§ १५. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिहो सो—ओघे० आदेसे०। ओघे० मोह० उक्त्स-अणुकत्स-जहण्णअणुभागविहती किं सादिया किमणादिया किं धुवा किद्धुवा वा ? सादि-अद्धुवा। अज० किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमद्धुवा वा ? अणादिया धुवा अद्धुवा वा। आदेसेण णेरइय० मोह० उक्त्स० अणुक० ज० अज० [किं सादि०] किमणादि० कि धुवा किमद्धुवा ? सादि-अद्धुवा।

§ ११ उक्त्स अनुभागविभक्ति और अनुक्त्स अनुभागविभक्ति की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सर्वोक्त्स अनुभाग उक्त्सविभक्ति है और उससे न्यून अनुभाग अनुक्त्सविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिये, क्योंकि आदेश उक्त्स अनुभाग सब जगह सम्भव है।

§ १४ जघन्य अनुभागविभक्ति और अजघन्य अनुभागविभक्तिकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सबसे जघन्य अनुभाग जघन्यविभक्ति है और उससे ऊपरके अनुभाग अजघन्य विभक्ति हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये, क्योंकि आदेश जघन्य अनुभाग सब जगह सम्भव है।

विशेषार्थ—यहाँ उक्त्स और अनुक्त्स अनुभागविभक्तिका विचार करते समय आदेश उक्त्सकी और जघन्य-अजघन्य अनुभाग विभक्तिका विचार करते समय आदेश जघन्यकी सम्भावना प्रकट की है सो उसका यही अभिप्राय है कि जिन मार्गणाओंमें ओघ उक्त्स अनुभागविभक्ति और ओघ जघन्य अनुभागविभक्ति सम्भव नहीं है वहा जो सबसे उक्त्स अनुभाग हो उसे आदेश उक्त्स अनुभागविभक्ति और जो सबसे कम अनुभाग हो उसे आदेश जघन्य अनुभाग विभक्ति जानना चाहिए। उदाहरणस्वरूप आभिनिवोधिक ज्ञानमे एकस्थानिक और द्विस्थानिक यह दो प्रकारकी अनुभागविभक्ति ही सम्भव है, इसलिए यहा उक्त्स से आदेश उक्त्स द्विस्थानिक अनुभागविभक्ति ली गई है। तथा सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य अनुभागविभक्ति भी द्विस्थानिक सम्भव है, इसलिए वहा जघन्यसे आदेश जघन्य अनुभागविभक्ति ली गई है। इसी प्रकार सर्वत्र जहाँ जो सम्भव हो उसे घटित कर लेना चाहिए।

§ १५ सादि अनुभागविभक्ति, अनादि अनुभागविभक्ति, ध्रुवअनुभागविभक्ति और अध्रुव-अनुभागविभक्ति की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघ की अपेक्षा मोहनीय कर्मकी उक्त्स, अनुक्त्स और जघन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि है क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि अध्रुव है। अजघन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि है क्या अनादि है, क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी उक्त्स, अनुक्त्स, जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है क्या ध्रुव है अथवा क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है, क्योंकि

पदपरिचयणेन निगमनपनसेहि य सत्त्वलंमादो । एवं वेदम्बं जाय अणाहारममणा सि ।
 § १६ सामिर्तं बुधिर्ह—अणुभागास्तं च । उक्तस्तप पपद । बुधिर्हो निरे सो-
 माप० मादसं० । आपेण मोह० उक्तस्ताणुभागे कस्त ? अणुद्रस्त उक्तस्ताणुभागे
 संविद्वान् जान न इगदि ताम सो एहिदिआ वा वेहिदिओ वा तहिदिओ वा चरिदिओ
 वा असणिगर्पसिदिआ वा अणुद्रस्त नीवस्त अणुद्ररगदीए पद्ममाणस्तं । अस्तस्वञ्च
 पस्ताअतिरिक्त्वा-अणुस्सेसु मणुसोनवादिपद्वेषु च णस्यि । अणुक्तस्ताणुभागे
 कस्त ? अणुद्रस्त ।

पदपरिचयनेकी अपेक्षा और नरकसे निकलन और नरकमें प्रवरा करनेका अपेक्षा उक्त अहि
 चारोंका साहि और अणुबन्धन बन जाता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गका एक संज्ञान्ता चाहिये।
 विशेषार्थ—भोषणे माहनीयकर्मका अपेक्ष्य अनुभाग चरक सूत्रमसम्परयधिकके अन्तिम
 समर्पमें होता है, अतः वह साहि और अणुब है। उससे पहले अन्नपच्य अनुभाग होता है अतः
 जो सूत्रमसम्परयधिक अणुब नहीं हुए वनके अन्नपच्य अनुभाग अनर्पि है। मन्त्र की अपेक्षा वह
 अणुब है और अन्नपच्य की अपेक्षा अणुब है। तथा उक्त अनुभागका अणु उक्त संक्षेप परिचामी
 सिन्धाट्टिके होता है और तब तक ही पसका सत्त्व रहता है जब तक पसका पात नहीं करता,
 अतः वह साहि और अणुब है। उक्त अनुभागकर्मके पश्चात् जो बन्ध होता है उसे अनुक्त
 अनुभागकर्म कहते हैं, अतः अनुक्त अनुभागकर्म भी साहि और अणुब ही होता है। मन्त्र
 बाभोमें उक्त अहि चारों पर साहि और अणुब ही होते हैं, क्यों कि एक ता मार्गार्थे बलती
 जाती है और दूसरे कोई मार्गका नहीं भी बलती है जैसे अन्नपच्य ता वममें उक्त अहि पर
 बलते रहते हैं, अतः मन्त्रबाभोमें उक्त अहि चारोंके साहि और अणुब ये वा पद ही सम्भव हैं।
 § १६ स्वमित्त दो प्रकारका है—अपच्य और उक्त । यहाँ उक्त स्वामित्वसे प्रयोजन
 है। निर्देश दो प्रकारका है—मोषनिर्देश और आदेशनिर्देश। आपकी अपेक्षा माहनीयकर्मका
 उक्त अनुभाग किसके होता है ? उक्त अनुभागका बन्ध करके जो जीव उक्त जब तक पात
 नहीं करता है तब तक वह ऐन्द्रिय हो वा वाइन्द्रिय हो वा वैन्द्रिय हो वा चन्द्रिय हो अथवा
 अस्त्री पञ्चेन्द्रिय वा किसी मो गतिमें वर्तमान किसी भी बोधके उक्त अनुभाग होता है। किन्तु
 अस्त्रीकाल वर्षको अणुबसे विपन्न और मनुष्योंमें तथा मनुष्योंमें ही अस्त्रीकाल उत्पत्ति जाती है जब
 वेचोमें उक्त अनुभाग नहीं होता है। अनुक्त अनुभाग किसके होता है ? किसी भी जीवके
 होता है ।

१ उक्तोर्णा पश्चिम आश्रितवर्गान्निष्कृत्य उक्तस्य । आन च वापृ तर्ष संकामर् आमुपुतेता ॥२१॥
 सिन्धाट्टिकेणानुपुयानं वृत्त्या एत आश्रितवर्गान्निष्कृत्य-कन्धाश्रितकालाः वरत इत्यर्थः ।
 अनुक्तमनुपुयानं संकामर्षि तन्वयावर्ष विद्यन्वति । किन्तु कर्षं वाक्च पुनर्ष विद्यन्वतीति चेत्
 उक्तस्य-आमुपुतेता-अन्वय इति वाच्यतेत्यर्थः । परतो सिन्धाट्टिकेण पुन-पश्चिमीयमनुपुयानं संकामर्षेण अन्वय-
 मन्वयीनां तु विद्यन्वत्यावर्षे विद्यन्वति ॥ २१ ॥ कर्मार्थ संज्ञ ।
 "सिन्धाट्टस्य उक्तस्य अन्वयार्थकर्मन् कस्त ? उक्तस्य अन्वयार्थं संविद्वान् जान च इत्यदि ताम ओ होत्र
 एहिदिओ वा वेहिदिओ वा तहिदिओ वा चरिदिओ वा अणुबो वा उणुबो वा । अणुवेमन्वयावपु
 मणुसोनवादिपद्वेषु च णस्यि ।" इति च ।
 २ "अस्त्रीकालवसावपु इति पुत्रे म्मेवमिभितिरिक्त्वावपुच्यं चार्थं ।-----मणुसोन
 वादिपद्वेषु च पुत्रे वाच्यमि इत्यस्मिन्वपुच्यं चार्थं मणुसोन केव वैदिसुगतीयो ।-----पद्वेषु

§ १७. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणु० कस्स ? अण्णट० उक्कस्साणु-
भागं वंधिदूण जाव सो ण हणदि ताव । अणुक्क० कस्स ? अण्णट० । एवं सव्वणेरइय-
सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-देव० भवणादि जाव सहस्सार० पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-
तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०--ओरालिय०-वेउच्चिय०-तिण्णिवेद०-
चत्तारिक०-तिण्णअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचत्ते०-भवसि०-अभवसि०-
मिच्छादिट्ठि-सण्णि--आहारि ति । णवरि पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० मोह०
उक्कस्साणुभागविहत्ती कस्स ? अण्णट० मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा [पंचिदियतिरिक्ख-

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट अनुभागवन्ध चारों गतिके उत्कृष्ट सत्त्वोपरिणामी
सह्यी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक जीव करते हैं । करने पर जब तक उसका घात नहीं किया जाता तब तक
वह जीव मरकर जहा भी उत्पन्न होगा वहीं उसके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व पाया जायेगा । इसी
कारणसे एकेन्द्रियादिकमें उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध न होने पर भी उसका सत्त्व कहा है । किन्तु
भोगभूमिया जीवोंके मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागसत्त्व नहीं होता, क्योंकि न तो वहाँ मोहनीय
का उत्कृष्ट अनुभागवन्ध ही होता है और न उसकी सत्तावाला जीव वहा जन्म ही लेता है । इसी
प्रकार आनतादि स्वर्गके देवोंके भी मोहनीय के उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व नहीं होता, उत्कृष्ट अनु-
भागकी सत्तावाला कोई जीव यदि भोगभूमि या आनतादि स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाला होता है तो
उत्कृष्ट अनुभागका घात करके ही उत्पन्न हो सकता है । उत्कृष्ट अनुभागसे अतिरिक्त अनुभाग को
अनुत्कृष्ट अनुभाग कहते हैं और ऐसा अनुभाग प्रायः सभी मोही जीवों के पाया जाता है ।

§ १७ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके हाता है ?
उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करके जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक किसी भी जीवके
मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग होता है । अनुत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? किसी भी जीवके
होता है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर
सहस्रार स्वर्ग तकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों
वचनयोगी, काययोगी औदारिककाययोगी, वैकियिककाययोगी, तीनों वेदी, चारों कपायवाले,
तीनों अज्ञानी, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्याके सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले,
भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सह्यी और आहारक जीवोंमें जानना चाहिये । पचेन्द्रिय तिर्यञ्च
अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्टानुभागविभक्ति किसके होती है ? जो मनुष्य, मनुष्यिनी,

उक्कस्साणुभागसत्त्वकम्मं णत्थि त चादिय विट्ठाणिया करिय पच्छा एदेसुप्पयोदो । ए च तत्थ उक्कस्साणुभाग-
बंधो वि अत्थि, तेवपम्मसुक्कलेस्ताहि तिरिक्ख-मणुस्सेसु सुक्कलेरिसयाए देवेसु च उक्कस्साणुभागबधभावादो ।”
ज० ध० अणु० वि० ।

तथा चोक्त पञ्चसप्रहमूलटीकायाम्—“सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सम्यक्त्वसम्यग्मिथ्यावयोनौकृष्ट-
मनुभाग विनाशयन्ति अपि तु क्षपक' सम्यग्दृष्टिर्विनाशयति उभयोरपि दृष्टयोरिति । मिथ्यादृष्टि' पुन' सर्वासा-
मपि शुभप्रकृतीनां सक्लेरोनाशुभप्रकृतीनां तु विशुद्धथा अन्तमु' हृत्वात्परतः उक्कृष्टमनुभागवश्यं विनाशयति
॥ २६ ॥ कर्मप्र० सक्त०

अणुभाग अज्ञपर्यो सुद्धमअपज्जवगाह मिच्छो उ । वज्जिय थसखधासाठए च मणुओववाए य ॥२६॥
केवलमसक्येयवर्णायुपो मनुष्यतिर्यञ्चो ये च देवा स्वभवाच्छुक्ता मनुष्येषु उत्पद्यन्ते ताश्च मनुष्योपपाता-
आनतप्रमुखान् देवान् वर्जयिष्या । एते हि मिथ्यादृष्टयोऽपि नाशुभप्रकृतीनामुक्तस्वरूपयामुक्कृष्टमनुभाग
वध्नन्ति, सक्लेशाभावात् ॥ कर्मप्र० सक्त० ।

जाणियो बा] पंचिदियतिरिक्खमोपिणीमो वा उक्कस्ताणुभागं बंधिद्वं जाव न इणदि ताव मो पंचिदियतिरिक्खअपञ्जत्तएसु उववण्णो तस्स उक्कस्ताणुभागबिहत्ती । एवं मणुसअपञ्ज०-सम्बएइदिय-सम्बविगसिंदिय पंचिदियअपञ्ज०-सम्बपंचकाय-तत्तअपञ्ज०-ओरात्तिपमिस्स०-वेचच्चियमिस्स०-कम्मइय०-असण्ण-अणाहारि ति ।

§ १८ माणदादि जाव णवगवञ्जा पि मोइ० उक्कस्स० कस्स ? अण्णदरस्स मो तप्पाओग्गउक्कस्सअणुभागसंतकम्मिओ दुब्बसिंणी मत्तो अप्पप्यणो द्दंसेसु एववण्णा सो जाव न इणदि ताव तस्स उक्कस्ताणुभागबिहत्ती । इदे अणुक्कस्ता । अणु विसादि भाव सम्बइसिद्धि पि उक्कस्ताणुभागबिहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स मो तप्पाओग्गउक्कस्ताणुभागसंतकम्मिओ वेदगसम्मादिद्धी अप्पप्यणो द्दंसेसु उववण्णो सो जाव न इणदि ताव उक्कस्ताणुभागबिहत्ती । इदे अणुक्कस्ताणुभागबिहत्ती ।

§ १९ आहार०-आहारमिस्स० उक्कस्ताणुभाग० कस्स ? ओ संमदो पद्दग सम्माइद्धी अहानीससंतकम्मिओ तप्पाओग्गउक्कस्ताणुभागसंतकम्मिओ चहाविदाहार सरीरो तस्स उक्कस्सिया अणुभागबिहत्ती । अण्णस्स अणुक्कस्सिया । अण्णद० उक्क०

पञ्चमिदित्येवमपवा पञ्चमिदित्येवमोनिती उक्कस्स अनुमागका कथ्य करके इसका पाठ किंवा बिना हो यदि पंचेन्द्रियतिर्यञ्ज अपयत्तकर्मोंमें कल्पन होता है तो इस पञ्च मिदित्येवम अपयत्तके उक्कस्स अनुमागविभक्ति होती है । इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त मत्र एकेन्द्रिय सब विकसतिर्य्य, पञ्च मिद्व अपयत्त सब पूर्वों स्वावरकाय, त्रस अपयत्तक, औदारिकमिद्वबोगी, वैक्रियिक मिद्वबोगी, कर्मव्यकायबोगी असंख्य और अनप्यरक बीबोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मूलमें नारकीसे लेकर आहारक पर्यन्त जो मार्गधार्य गिनत हैं उनमें माहनीपका उक्कस्स अनुमागकथ्य हो सकता है अतः उक्कस्स अनुमागका कथ्य करके जब तक उक्तका पाठ नहीं किया जाता तब तक उक्त मार्गधार्यमें उक्कस्स अनुमाग रहता है । तथा पञ्च मिद्वित्येवम अप यत्तकर्मों और मूलमें गिनत गई मनुष्य अपयत्तकसे लेकर अनप्यर मार्गधार्यपर्यन्त मार्गधार्यमें कथपि मोहनीपकर्मका उक्कस्स अनुमागकथ्य तो नहीं होता है किन्तु कोई मनुष्य चाहे यदि इसका कथ्य करके उक्त मार्गधार्यमें आजाते हैं तो उनमें भी उक्कस्स अनुमागका सत्त्व पाया जाता है ।

§ १८ आन्त स्वर्गसे लेकर जन्मवैयक तकके देवोंमें मोहनीपकर्मका उक्कस्स अनुमाग किसके होता है ? जिसके आन्तार्थि स्वर्गके योग्य मोहनीपकर्मके उक्कस्स अनुमागकी सत्ता है ऐसा जो इच्छसिद्धी मरकर अपने पाप उक्त देवोंमें जन्म होता है वह जब तक इसका पाठ नहीं करता है तब तक उक्कस्स अनुमागविभक्ति होती है और उक्कस्स अनुमागका पाठ कर देम पर अनुक्कस्स अनुमागविभक्ति होती है । अनुविरासे लेकर सर्वाभिसिद्धि तक उक्कस्सनुमागविभक्ति किसके होती है ? अनुविरा आविके योग्य उक्कस्स अनुमागकी सत्तावासा वा वेदकसम्पत्ति अपने योग्य उक्त देवोंमें जन्म होता है वह जब तक उक्कस्स अनुमागका पाठ नहीं करता है तब तक उक्कस्स अनुमागविभक्ति होती है, और उक्कस्स अनुमागका पाठ करने पर अनुक्कस्स अनुमागविभक्ति जाती है ।

§ १९ आहारकजायवागी और आहारकमिद्वकाययोगियोंमें उक्कस्स अनुमागविभक्ति किसके होती है ? अहर्षस प्रकृतियोंकी सत्तावासा जो वेदकसम्पत्ति संयमी कल्पयोग्य उक्कस्स अनु मागकी सत्ताके एते हुए आहारकवापीरको कल्पन करता है इससे उक्कस्स अनुमागविभक्ति होती है,

कस्म ? जो अवगदवेदअणियट्टिवसामओ पढमाणुभागकंडए वट्टमाणओ तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती । हदे अणुकस्सा । एवमकसाय-जहाकरवाटसंजटाण । णवरि उवसंतकसायपढमादिसमए तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागसंतकस्मेण वट्टमाणस्स वत्तव्वं; तत्थ अणुभागस्स घादाभावादो ।

§ २०. णाणाणु० आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० कस्स ? जेण मिच्छा-दिट्ठिणा अट्टावीससंतकस्मिणएण तप्पाओग्गउक्कस्साणुभागेण सह वेदगसम्मत्तं पडिवण्णं जाव तं ण हणदि ताव तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती । तम्मि हदे अणुकस्सा । एवं संजद।संजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदग०-सम्मामि०दिट्ठि ति । मणपज्जव० आहार०-भंगो । एव संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०सजदा ति । सृहुमसांपराय० उक्क० कस्स ? सृहुमसांपराइयउवसामयस्स सगउक्कस्साणुभागेण सह वट्टमाणस्स । तम्मि हदे अणुकस्सो । सुक्कले० आभिणि०भगो । उवसमसम्मा० मोह० उक्क० कस्स ? जो मोहतप्पाओग्गउक्कस्ससंतकस्मेण सह वट्टमाणो उवसमसम्मादिट्ठी जाव पढमाणुभाग-खंडयं ण हणदि ताव तस्स उक्कस्साणुभागविहत्ती । तम्मि हदे अणुकस्सा । खइयसम्मा०

अन्यके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । अपगतवेदमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति किसके होती है ? जो अनित्यत्तिकरण गुणस्थानके अवेद भागवर्ती उपशमश्रेणिवाला जीव प्रथम अनुभागकाण्डक में विद्यमान है उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । तथा उसका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । इसीप्रकार अकपाय और यथाख्यातसयतोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उपशान्तकपाय गुणस्थानके प्रथम आदि समयमें उसके योग्य उत्कृष्ट अनुभागोंको सत्तासे युक्त जीवके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति कहनी चाहिये, क्योंकि वहा अनुभागका घात नहीं होता है ।

§ २० ज्ञानकी अपेक्षा आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और श्रवधिज्ञानीमें मोहनीय-कर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस मिथ्यादृष्टिने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ वेदकसम्यक्त्व प्राप्त किया है, जब तक वह उस अनुभागका घात नहीं करता है तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । तथा उत्कृष्ट अनुभागका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । इसी प्रकार सयतासयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानमें आहारककाययोगी के समान जानना चाहिये । इसी प्रकार सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत और परिहार-विशुद्धिसयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसाम्परायसयतमें उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? जो सूक्ष्मसाम्परायसयत उपशामक जीव अपने उत्कृष्ट अनुभागके साथ विद्यमान है उसके उत्कृष्ट अनुभाग होता है और उसका घात होने पर अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है । शुक्ललेख्यावालेके आभिनिवोधिकज्ञानी की तरह भग होता है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट अनुभाग किसके होता है ? जो उपशमसम्यग्दृष्टि मोहनीयकर्मके अपने योग्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तासे युक्त होता हुआ जब तक प्रथम अनुभागकाण्डकका घात नहीं करता है, तब तक उसके उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । और उसका घात करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय

मोह० चक्र० कस्त ? जेण दंसणमोहणीय खर्वेतेण अर्गताणुबंभिचवक्कं विसंजोए तेण सव्वमहण्णो अणुमागो पादिदो अणुनसामिदधारित्तमोहणीयो तस्स चक्रस्सआ अणु मागो । [अण्णस्स अणुकस्सो] । सासण० मोह० चक्र० कस्त ? ओ उवसमसम्मा दिट्ठी चक्रस्साणुमागण सह सासणं पट्टिवण्णो तस्स चक्रस्सा । अवरस्स अणुकस्सा ।

एवमुक्कस्ससामिचाणुमा समघो ।

§ २१ महण्णए पयदं । दूषिहो णिह्वेसो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण मोह० ज० अणुमागो कस्त० ? अण्णदर० स्वपगस्सं चरिमसमपसकसापस्स । एवं मणुसविय—पंघिदिय—पंघि०पस्स०--तस--तसपज्ज०--पंघमण--पंघमधि०--अयमोमि ओरासिय०--अपगदवेद०--खोमक०--आमिणि०--मुद०--ओहि०--मणपज्ज०--संभद० सुद्धमसांपराय०--अचकु०--अचकु०--ओहिदंस०--सुक्कखे० मवसि०--सम्मादिट्ठि०--स्वइय० सण्णि०--आहारि वि ।

कर्मका चक्रस अणुमाग किसके होता है ? दर्शनमोहनीयकी क्षयखा और जनन्तलुक्कीचक्रकी विसंबोजना करते समय जिस क्षाविकसम्पत्ति जीवमे सबसे अपम्व अणुमागका प्राप्त किया है तथा चारित्रमोहनीयका उपराम नहीं किया है उसके चक्रस अणुमाग होता है और इसके सिवा अन्य क्षाविकसम्पत्ति जीवके अणुचक्र अणुमाग जाता है । सासादनसम्पत्तिबोमें मोह नीयकर्मका चक्रस अणुमाग किसके होता है ? जो उपरामसम्पत्ति चक्रस अणुमागके साथ सासादनगुणस्वान्तको प्राप्त हुआ है उसके चक्रस अणुमाग होता है और अन्यके अणुचक्र अणुमाग होता है ।

विशेषार्थ—पहलं आमिन्निबोधिकाज्ञान आदि जिन मार्गबोधोंमें मिथ्यात्व गुणस्वान्तसे ज्ञान सम्भव है उनमें मिथ्यात्व गुणस्वान्तसे ले जाकर चक्रस अणुमागविमर्श प्राप्त करनी चाहिए । और आहारकर्मवयोग आदि जिन मार्गबोधोंमें मिथ्यात्व गुणस्वान्तसे ज्ञान सम्भव नहीं है उनमें ऐसे जीवका से ज्ञान चाहिए जिसके तत्वाबोधे चक्रस अणुमागके साथ छत्र मार्गबोधोंमें ज्ञान सम्भव हो । इसी प्रकार सर्वत्र चक्रस स्वामित्वका विचार करना चाहिए ।

इसप्रकार चक्रस स्वामित्व समझ हुआ ।

§ २१. अब जपम्वसे प्रयोजन है । निर्लेस हो प्रकरका है—ओपनिर्देरा और आदेरा निर्देरा । ओप की अपेक्षा मोहनीय कर्मका जपम्व अणुमाग किसके होता है ? सक्याव जपकके अन्तिम समवेमें अबोधे इसमें गुणस्वान्तके अन्तमें मोहनीय कर्मका जपम्व अणुमाग होता है । इसी प्रकार तीनो मनुज पंचेन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय पर्यंत, प्रस प्रस पर्यंत, पूर्वो मवोयोगी, पूर्वो वचनयोगी अययोगी औदारिककर्मवयोगी, अपगतवेरी शोभकभाववले आमिन्निबोधिकाज्ञानी, कुतस्थानी अथविक्रान्ती, मन्तपर्यवधानी संवत् सूत्रमद्यन्परवत्संवत् चक्रसूत्रीनी अचक्रसूत्रीनी अथविक्रान्तीनी, सुद्धमोहवजासे अन्य सम्पत्ति, क्षाविकसम्पत्ति, संघी और आहारक जीवोंमें ज्ञानता परीसे ।

१ ओपमर्शम्वसे अणुचक्रमणुवापर्यवकर्म्म कस्त ? अण्णस्स चरिमसमपसकसापस्स । १० सू व ५० अणु वि ।

§ २२. आदेसेण णेरइएसु मोह० ज० अणुभागो कस्स ? अण्णट० जो हद्द-समुत्पत्तियअणुभागसंतकम्मंसिओ असण्णिपन्ञ्जायदो' णेरइएसु उव्वण्णो पुणो जाव सो वधेण ण वड्ढि' ताव तस्स जहण्णिया अणुभागविहती । एवं पढमाए पुढवीए । विदियादि जाव सत्तमि ति मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णटरस्स उक्कस्सपरिणामेहि अणताणुवधिचउक्क विसजोइदसम्माइट्टिस्स । एवं जोदिसियदेवाणं पि वत्तव्वं ।

§ २३ तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणुभागो कस्स ? अण्णट० जो 'सुहुमेइंदिओ अपज्जत्तो कदहदसमुत्पत्तियसंतकम्मो जाव जहण्णाणुभागसंतकम्मस्सुवरि वंधेण ण

विशेषार्थ—अनुभागकाण्डकघात आदि क्रियाविशेषके कारण क्षणिक सूक्ष्मसाम्यरायके अन्तिम समयमें मोहनीयका सजसे जघन्य अनुभाग उपलब्ध होता है, इसलिए अन्तिम समयवर्ती क्षणिक सूक्ष्मसाम्यरायिक जीवको जघन्य अनुभागका स्वामी कहा है । मूलमें गिनार्ह गई अन्य मार्गणाश्रोंमें यह अवस्था सम्भव है, अतः उनका कथन शोधके समान किया है ।

§ २२ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक अनुभाग सत्कर्मवाला जीव असही पर्यायसे आकर नारक पर्यायमें उत्पन्न हुआ है वह जब तक पुनः बन्धके द्वारा अनुभागको नहीं बढ़ा लेता है तब तक उसके जघन्य अनुभागविभक्ति होती है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरोसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो सम्यग्दृष्टि उत्कृष्ट परिणामोंसे अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसयोजना कर चुका है उसके हांता है । इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंमें भी कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—सत्तामें स्थित अनुभागका घात करनेके घाद जो अनुभाग शेष वचता है उसे हतसमुत्पत्तिक अनुभागसत्कर्म कहते हैं । ऐसे अनुभागवाले असंज्ञीके नरकमें उत्पन्न होने पर उस नारकीके शरीर ग्रहणके पूर्व तक मोहनीयका जघन्य अनुभाग होता है । इसलिए सामान्यसे नरकमें ऐसे जीवको जघन्य अनुभागका स्वामी कहा है । प्रथम नरकमें ऐसा जीव उत्पन्न होता है, इसलिए उसका कथन सामान्य नारकियोंके समान किया है । किन्तु द्वितीयादि नरकोंमें सज्ञीके योग्य अनुभाग ही सम्भव है, इसलिए वहाँ जघन्य अनुभागका स्वामित्व जिसने उत्कृष्ट परिणामोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना की है ऐसे जीवको दिया है । ज्योतिषी देवोंमें इसी प्रकार जघन्य स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए उनका कथन द्वितीयादि नरकोंके नारकियोंके समान किया है ।

§ २३ तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक सत्कर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तिक जीव जब तक जघन्य अनुभाग सत्कर्मके ऊपर बन्धके

१ 'हते घातिते समुत्पत्तिर्यस्य तद् हतसमुत्पत्तिक कर्म । अणुभागसत्कर्मं घादिदे जमुव्वरिदं जहय्याणुभागसत्कर्मं तस्स हवसमुत्पत्तियकम्ममिदि सण्णा ति भण्णिद होदि । ज० ध० अनु० वि० ।

" हत विनाशित प्रभूत्वमनुभागसत्कर्मं येन स हवसत्कर्मा ॥२१॥ कर्मप्र० स०

२ "शिरयगादीए मिच्छरास्स जहय्याणुभागसत्कम्मं कस्स ? असण्णित्थस्स हदसमुत्पत्तियकम्मेण आगदस्स ।" चू० सू०, ज० ध०, अनु० वि० । ३ आ० प्रत्तौ वट्टदि इति पाठः ।

४ "मिच्छरास्स जहय्यायमणुभागसत्कम्म कस्स ? सुहुमस्स । हदसमुत्पत्तियकम्मेण अण्णदरो पुहदिओ वा वेहदिओ वा तेहदिओ वा चवरिदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा सुहुमो वा बादरो वा पज्जतो वा अपज्जतो वा जहय्याणुभागसत्कम्मिओ होदि ।" चू० सू०, ज० ध०, अनु० वि० ।

यद्दि ताव तस्स अहण्णामो अशुमागो । एवमेइदिय-सुहुमेइदिय-सुहुमेइदियअपज्जत्त०
पणप्फदि-णिगोद-सुहुमवणप्फदि-सुहुमणिगोद तेसि वेव अपज्जत्त० ओराखियमिस्स०
दोण्णिमण्णाण-असंसद०-तिण्णिलो० अमव०-मिच्छादिट्ठि-असण्णिं ति ।

§ २४ पंचिदियतिरिक्खेसु माह० अहण्णाधुमागो कस्स ? अण्णदरस्स जो
पंचिदियतिरिक्खत्ता क्खइदसमुप्पत्थियसुहुमेइदियचरो जाव अहण्णसंतकम्मस्सुवरि
यद्दिदूण ण बंधदि ताव तस्स अहण्णामो अशुमागो । एवं पंचिदियतिरिक्खपज्जत्ता
पज्जत्त-पंचि०तिरि०णोणिणि-मणुसअपज्ज०-सम्बवादरेइदिय सुहुमेइदियपज्ज० सम्ब
विगच्छिदिय-पंचिदियअपज्ज०--सम्बवचारिकाय-सम्बवादरवणप्फदिकाइय-सम्बवादर
णिमोद-सुहुमवणप्फदि-सुहुमणिगोदपज्ज०-तसअपज्ज०-कम्मइय०-अणाहारि ति ।

§ २५ देव मयण०-बाण०-वेठम्बियमिस्स० णेरइयमंगो । सोहम्मादि जाव
सम्बद्धसिद्धि ति मोह० अहण्णाधुमागो कस्स ? अण्णइ० जो एक्कन्दि भव दोवार

इत्थ अशुमागो न्ही क्का सेता हे तवतक वसके अण्ण अशुमाग हाता हे । इसी प्रकार एकेन्द्रिय
सूक्ष्म एकेन्द्रिय सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक वनस्पतिकार्यिक, निर्गर्हवा, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म
निर्गोदिया और वनके अपर्याप्तक, औद्योगिकमिश्रणयोगी, कुम्भटिष्ठानी, कुम्भटिष्ठानी, असंसद,
तीनों अणुम लेण्याबले, अण्ण, सिप्पाट्ठि और असंसदीमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इतसमुत्पत्तिक सरकर्मबले सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तके ये सब मार्गवायें सम्भव
हैं इसलिय इनमें अण्ण अशुमागका स्वामित्य तिर्यञ्चोंके समान कहा हे ।

§ २४ पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मका अण्ण अशुमाग किसके होता हे ? जिसने
अशुमाग इतसमुत्पत्तिक किया हे तथा जो सूक्ष्म एकेन्द्रियसे आकर पंचिन्द्रिय तिर्यच पर्यायमें अण्ण
हूमा हे येसा जो पंचिन्द्रिय तिर्यच अण्ण सरकर्मके ऊपर जब तक अशुमाग बढ़ा कर नही बंधता
हे तब तक वसके अण्ण अशुमाग होता हे । इसी प्रकार पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त पञ्चन्द्रिय
तिर्यञ्च अपर्याप्त, पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च मोहिनी, मणुप्य अपर्याप्तक, सब वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म
एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सब विक्खेन्द्रिय, पञ्चन्द्रिय अपर्याप्त, सब पृथिवीकार्यिक सब जलकार्यिक, सब
वेहस्कार्यिक, सब वायुकार्यिक सब वादर वनस्पतिकार्यिक सब वादर निर्गोद सूक्ष्म वनस्पति,
पयाप्तक, सूक्ष्मनिर्गोद पर्याप्तक, अस अपर्याप्तक, कर्मण्यकार्ययोगी और अनन्तारकर्म जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन सब मार्गवायोंमें पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों
की अण्ण सम्भव हे और यथासम्भव शरीर प्रवृत्तके पूर्व तक वनके वह अशुमाग बना रहता हे
इसलिये इनका अण्ण पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान किया हे ।

§ २५ सामान्य रूप, मज्जवासी, अण्ण और वैद्विद्विकमिश्रणयोगीमें आरकियोंकी तरह
भंग होता हे । अर्थात् जैसे पहले मरकमें मोहनीयका अण्ण अशुमाग बतलाया हे जैसे ही इनमें
भी होता हे, क्योंकि इतसमुत्पत्तिक कर्मबला असंसदी और इनमें जो अण्ण ले सकता हे । सोबम
रुगसे लेकर सार्वसिद्धि तकके क्षेत्रोंमें मोहनीयकर्मका अण्ण अशुमाग किसके होता हे ? जो

१ या मही बहदि इति वक्तः । २. या मणी वद्विद्वय बंधदि इति वक्तः । ३. या मही
वाव वेठ वेठम्बियमित्य इति वक्तः ।

मुवसमसेदिमारुहिय पच्छा दंसणमोहणीयं खविय पुणो अप्पिट्ठेवेसु उववण्णस्स । एवं वेजन्वियकायजोगीणं ।

§ २६. आहार०-आहारमिस्स० मोह० जहएणाणुभागो कस्स ? जेण दोवार-मुवसमसेदिमारुहिय हेठा ओदरिय दंसणमोहणीयं खविय पच्छा आहारसरीरमुट्ठाविदं तस्स जहएणओ अणुभागो । एवं परिहार०-संजदासंजदाणं ।

§ २७. इत्थिवेदेसु मोह० जहएणाणुभागो कस्स ? चरिमसमयसवेदस्स खवयस्स । एवं पुरिसं०-णवुस०वेदाणं^१ । तिण्हं कसायाणमेवं चेव । णवरि अप्प-प्पणो चरिमसमयसकसायस्स जहएणाणुभागो ।

§ २८. अकसाईसु जहएणाणुभागो कस्स ? एगवारमुवसमसेदिमारुहिय ओयरिदूण पुणो उवसमसेदिं चडिय उवसंतकसायत्तमावणस्स । एवं जहाक्खाद-संजदाणं । विहंग० मोह० जहएणाणुभागो कस्स ? अएणद० दोवारमुवसमसेदिं चडिय

एक भवमें दोवार उपशमश्रेणिपर चढकर, पञ्चात् दर्शनमोहनीयका क्षण करके पुन विचक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है । इसी प्रकार चैक्रियक-काययोगियोंमें जानना चाहिये ।

§ २६ आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगीमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जिसने दो वार उपशमश्रेणि पर चढकर नीचे उतरकर दर्शनमोहनीय का क्षण करके पीछे आहारकशरीर उत्पन्न किया है उसके जघन्य अनुभाग होता है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसयत और सयतासंयतमें जानना चाहिये ।

§ २७ स्त्रीवेदी जीवोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? क्षणकश्रेणि वाले सवेदी जीवके अन्तिम समयमें होता है । इसी प्रकार पुरुषवेदी और नपुंसकवेदीके जानना चाहिये । तीनों कपायोंमें भी इसी प्रकार जघन्य अनुभाग होता है । इतनी विशेषता है कि सकपाय जीवके अपने अपने कपायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है । अर्थात् जैसे वेदकी अपेक्षा क्षणकश्रेणिवाले सवेदीके अन्त समयमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है वैसे ही क्रोधकपायकी अपेक्षा क्षणकश्रेणिवाले सकपाय जीवके क्रोधकपायके अन्तिम समयमें मोहनीय कर्मका जघन्य अनुभाग होता है, मान कपायकी अपेक्षा मान कपायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है आदि ।

§ २८ अकपाय जीवोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? एक वार उपशमश्रेणिपर चढकर उतरकर पुनः उपशमश्रेणि पर चढकर जो जीव उपशान्तकपाय गुण-स्थानको प्राप्त हुआ है उसके मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग होता है । इसी प्रकार यथाख्यात-सयतोंके जानना चाहिये । विभगज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मका जघन्य अनुभाग किसके होता है ? जो

१ 'इत्थिवेदस्स जहएणायमणुभागसंतकम्म कस्स ? खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदस्स ।' 'पुरिस-वेदस्स जहएणायमणुभागसंतकम्म कस्स ? पुरिसवेदेण उवट्ठियस्स चरिमसमयअसंकायस्स ।'

चू० सू० न० घ०, अणु० वि० ।

२, 'णवुसववेदस्स जहएणाणुभागसंतकम्म कस्स ? खवगस्स चरिमसमयणुसयवेदयस्स ।'

चू०, सू०, ज० घ०, अणु० वि० ।

हेहा ओदरिण समयाविरोहेण विहंगणार्ण पडिनएणस्स । सामाहय-खेयो० मोह०
 महएणाणुमागो कस्स ? चरिमसमपअणिपट्टिस्स स्वयगस्स । तेउ०-पम्म० सोहम्म-
 र्गगो । वदग० मोह व० कस्स ? दोवारमुवसमसेहिं वडिय ओदरिण दंसणमोहणीयं
 स्वदिय पडमसमयकदकरणिअमार्बं गयस्स । एवमुवसम० । णवरि उस्तकसायदाए
 हेहा वा ओदरिय वट्टमाणववसमसम्मादिट्टिस्स । एवं सासण०-सम्माभिच्छादिट्ठीजं ।

एवं अहएणसामिचाणुगमो समघो ।

दो बार उपरामत्रेणपर चडकर वससे नाच उतरकर आत्माके अनुसार विमंगजानके प्राप्त करता है अर्थात् मरकर उपरिम प्रेक्षकमें कल्पन होकर मिथ्यात्वको प्राप्त करके विमंगजानी हो जाता है उसको मोहनीयकर्मका अपत्य अनुमाग होता है । सामाधिकसंयत और ज्ञेयोपस्थापनासमयमें मोहनीयकर्मका अपत्य अनुमाग किसके होता है ? अथक अनिष्टवृत्तियगुणस्वान्तके अन्तिस समयवर्ती जीवक होता है । तेजालेखा और पद्मलेखामें सौषर्मे स्वर्गकी तरफ मंग जानना चाहिये । अर्थात् जो दो बार उपरामत्रेण पर चडकर पीछे शरानमोहनीयका अथ करके देवोंमें वसना हो और वहाँ उसके तेज या पद्मलेखा हो वो तेजालेखा या पद्मलेखाकी अपेक्षा उस जीवके मोहनीयकर्मका अपत्य अनुमाग होता है । वेदकसम्बन्धित्तमोंमें मोहनीय कर्मका अपत्य अनुमाग किसके होता है ? जो दो बार उपरामत्रेणपर चडकर, उतरकर, शरान मोहनीयका अथ करके उल्लस्यपनेको प्राप्त हुआ है उसके प्रथम समयमें मोहनीयका अपत्य अनुमाग होता है । इसी प्रकार उपसमसम्बन्धित्तके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विवेकता है कि उपरामत्रेणपर गुणस्वान्तके कालमें विद्यमान अथवा नीचे उतरकर विद्यमान उपसमसम्बन्धित्त जीवके मोहनीयकर्मका अपत्य अनुमाग होता है । अर्थात् वह उपरामसम्बन्धित्त ग्यारहवें गुणस्वान्तमें हो या उससे नीचे उतर गया हो उसके मोहनीय-कर्मका अपत्य अनुमाग होता है । इसी प्रकार सासाहनसम्बन्धित्त और सम्बन्धित्तके ज्ञानना चाहिये ।

विद्योपार्थ—उपर सौषर्मे स्वर्गसे लेकर जिन मार्गवाचोंमें मोहनीयकर्मके अपत्य अनुमाग का स्वामित्व कलहावा है उनमें यदि अथकत्रेण संभव है तो अथकत्रेणमें अपने अपने अथकत्रेणके अन्तिस समयमें मोहनीयकर्मके अपत्य अनुमागका स्वामित्व जानना चाहिये । जैसे स्त्रीवर्ती आदिमें । किन्तु जिनमें अथकत्रेण संभव नहीं है उनमें यदि उपरामत्रेण हो सक्ती है तो दूसरी बार उपरामत्रेण पर चडे हुए जीव अथकत्रेण अपत्य अनुमागके स्वामी होते हैं । किन्तु जिनमें उप-रामत्रेण ही संभव नहीं है उन मार्गवाचोंमें दूसरी बार उपरामत्रेण पर चडकर नीचे गिरकर शरानमोहनीयका अपत्य करमेवाला जीव विचक्षित मार्गवाचाला होने पर अपत्य अनुमागका स्वामी होता है । किन्तु शरानमोहनीयका अपत्य करके जिन मार्गवाचोंमें जाना शक्य नहीं है जैसे विमंगजान, उपरामसम्बन्धित्त आदि तो उनमें दूसरी बार उपरामत्रेण पर चडकर नीचे गिरनेवाला जीव ही शरानमोहनीयका अपत्य किये बिना विचक्षित मार्गवाचाला होने पर अपत्य अनुमागका स्वामी होता है । सारंग वद है कि जिस मार्गवाचमें जिस प्रकारसे जिस जीवके अपत्य अनुमागकी स्था रह सक्ती है उस मार्गवाचमें उस प्रकारसे उस जीवके अपत्य अनुमागका स्वामित्व ज्ञानना चाहिये । इससे अतिरिक्त प्रकारके जीवोंके इसी मार्गवाचमें अपत्य अनुमाग होता है । वहाँ इतना विवेक जानना चाहिये कि जिस मार्गवाचमें मोहनीयका जो अथके कम

§ २६. कालो दुविहो—जहएणओ उकस्सओ चेदि । उकस्सए पयदं । दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उकस्साणुभागविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहणुक० अंतोमुहुत्तं । अणुक० ज० अतोमु०, उक० अणंतकाल-मसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । एवं तिरिक्ख-एइंदिय-वणप्फदि--कायजोगि-णवुंसयवेद-मदि--सुदअएणाण--असंजद--अचक्खु०--भवसि०--मिच्छादि०--असण्णि ति । णवरि तिरिक्ख०-कायजोगि०-णवुंसयवेदेसु उक० अणुक० जह० एयसमओ । एइंदिय-वणप्फदि-असरणीसु उक० जह० एगसमओ ।

अनुभाग पाया जाता है उस मार्गणामे.वही जघन्य अनुभाग है, उससे अतिरिक्त शेष अनुभाग अजघन्य अनुभाग है ।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अनन्त काल अर्थात् असख्यात पुद्गल परावर्तन है । इसी प्रकार तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, काययोगी, नपुसकवेदी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, मिथ्यादृष्टि और असङ्गी जीवोंमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च, काययोगी और नपुसकवेदी जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक और असङ्गी जीवोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है ।

विशेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त ही है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके काण्डकघातके बिना बहुत कालतक रहने पर भी अन्तमुहूर्तसे अधिक काल तक रहना संभव नहीं है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल तो अन्तमुहूर्त ही है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अन्तमुहूर्त कालके बाद पुनः उत्कृष्ट-अनुभाग-बन्ध कर सकता है । परन्तु उत्कृष्ट काल असख्यात पुद्गल परावर्तन है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनुकृष्ट अनुभागके साथ पञ्चेन्द्रियपर्यायमें अपने योग्य उत्कृष्ट काल तक रहकर पुन एकेन्द्रियपर्यायमें चला जाने पर और वहाँ असख्यात पुद्गल परिवर्तन विताकर पुनः पञ्चेन्द्रिय होकर उत्कृष्ट अनुभाग करने पर उतना काल बन जायेगा । इसी प्रकार तिर्यञ्चसे लेकर असङ्गी पर्यन्त जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्च, काययोगी और नपुसकवेदीमें दोनों विभक्तियोंका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागका अवस्थान काल एक समय प्रमाण शेष रहने पर यदि कोई अन्य गतिका जीव मरकर तिर्यञ्च हो या अन्य वेदवाला जीव मरकर नपुसकवेदी हो तो तिर्यञ्च और नपुसकवेदीके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल एक समय होता है । इसीप्रकार वचनयोग या मनोयोगमें स्थित उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला जीव उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताके एक समय प्रमाण शेष रहने पर काययोगी हुआ या काययोगमें धर्तमान कोई मिथ्यादृष्टि एक समय तक उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके दूसरे समयमें वचनयोगी या मनोयोगी हो गया तो उसके काययोगमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका काल एक समय होता है इसी प्रकार अनुकृष्ट अनु-

३ ३० आदेशण भेरइयसु मोह० चक्रस्ताणुभाग० बाह० एगसमभो, चक्र० अंतोमुहुत्त । एवं सभ्वणेरइय-सभ्वर्षिदियतिरिक्त्त०-सभ्वमणुस०-देव० भवणादि आय सहस्सार० सभ्वबादरेइदिय-सभ्वसुहुमेइदिय-सभ्वविगलिदिय-र्षिदियमपज्ज० सभ्वपचारिक्रय०-सभ्वबादरसुहुमवणप्फदि-सभ्वणिगाठ-तसअपत्त०-पंचमज०-पंचवधि०-भोरास्त्रिय०-भोरास्त्रियमिस्त०-भरभिय०-भेरभियमिस्त०-इत्यि०-पुरिस०-पचारिक्रसाय-विमंगणाण-किण्ह-गीम्म-काउत्तेस्सिया पि ।

३ ३१ संपदि ब्रह्मकर्मदेसिमणुकस्सकालाणुगमं कस्साया । तं ब्रह्म-भेरइय० मणुक० न० एगस०, चक्र० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं सभ्वणेरइयार्ण । गवरि

भागविमूर्च्छिका भी ब्रह्म काल एक समय बनता है । एकाग्रिय, वनस्पति और अंतर्धीमें भी ब्रह्म अनुभागका ब्रह्म काल इसी प्रकार एक समय होता है किन्तु इनमें अनुकृत अनुभागका ब्रह्म काल एक समय नहीं है, क्योंकि इनमें ब्रह्म अनुभागबन्ध नहीं होता है ।

३ ३० आदेशणकी अपेक्षा नारदियमें मोहनीयकर्मकी ब्रह्म अनुभागविमूर्च्छिका ब्रह्म काल एक समय है और ब्रह्म काल अणुसु हुत्त है । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्च मित्रतिर्यञ्च सब मनुष्य, सामान्य देव मध्वनासीसे लेकर सहस्वार पर्यन्त तकके देव, सब बादर एकेभिय, सब सूक्ष्म एके-मिब, सब विकलेमिय, पञ्चोमिय अपर्वात् सब प्रविधीकामिक, सब जलकामिक, सब वेदकामिक, सब वायुकामिक, सब बादर सूक्ष्म वनस्पति, सब निगोदिवा, त्रस अपर्वात्, पौर्षो मनोयोगी पौर्षो वचनयोगी, औदारिककामयोगी औदारिकमिमकावयोगी, वैभियिककामयोगी वैभियिकमिमकावयोगी, खीवेरी, पुदुवर्वा कापी, मानी, मायावी लामी, विभागावामी, कृष्णसेरयावामे, मील केरयावामे और कापोत्सेरयावामेमान्ता चाहिये ।

विशेषार्थ-कोई मनुष्य वा संही पञ्च मित्र तिर्बञ्च मिष्पादधि ब्रह्म अनुभागका बन्ध करके और ब्रह्म अनुभागके कालमें एक समय होय रहने पर वह नारक आदिमें जन्म लेता है तो कर्ममें ब्रह्म अनुभागका ब्रह्म काल एक समय पाया जाता है । इसी प्रकार त्रसपर्वात्तक तक जानना । मनोयोग, वचनयोग या औदारिककामयोगमें स्थित कोई भी अपने अपने योगका काल एक समय होय रहने पर ब्रह्म अनुभागका बन्ध करके दूसरे समकर्म अन्ध योगवाला हो गया तो उसके क्त क्त योगमें ब्रह्म अनुभागविमूर्च्छिका ब्रह्म काल एक समय पाया जाता है । या ब्रह्म अनुभागविमूर्च्छिका कोई भी मनोयोगसे वचनयोग या औदारिककामयोगमें या वचनयोगसे किसी दूसरे योगमें या जाता है और कहीं एक समय वा ब्रह्म अनुभागका परिपन्न कर देता है तो वह क्त योगमें ब्रह्म अनुभागका काल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार कोई मनुष्य वा संही पञ्चमिब-पर्वात् तिर्बञ्च ब्रह्म अनुभागका बन्ध करके मरकर औदारिकमिमकावयोगी वा वैभियिकमिमकाव योगी हुआ और एक समय तक क्त योगमें ब्रह्म अनुभागके साथ रहकर दूसरे समय ब्रह्म अनुभागका बात कर दिया तो क्त योगमें ब्रह्म अनुभागका काल एक समय बन जाता है । होय विविक्षित मार्गेश्वरोंमें ब्रह्म अनुभागविमूर्च्छिका ब्रह्म काल एक समय बन जाता है । इन सब मार्गेश्वरोंमें ब्रह्म अनुभागका ब्रह्म काल अणुसु हुत्त है यह स्पष्ट ही है ।

३ ३१ अब क्रमासुसार इनके अनुकृत कालका अनुगम करते हैं जो इस प्रकार है- नारदियमें अनुकृत अनुभागविमूर्च्छिका ब्रह्म काल एक-समय और ब्रह्म काल तेत्तीस सागर है- इसी प्रकार सब नारदिकोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि प्रत्येक नरकमें

सगसगुक्कस्सट्टिदी वत्तव्वा । पंचितिरिक्ख-पंचितिरिपज्ज-पंचितिरिजोगिणीसु अणुक्कं जं एगसं, उक्कं तिण्णि पल्लिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि । एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं । पंचिदियतिरिक्खअपज्जं अणुक्कं जं उक्कं अंतोमु० । एवं मणुसअपज्जं-पंचिदियअपज्जं--सव्वविगल्लिदियअपज्जं--तसअपज्जत्ताणं । देवभवणादि जाव सहस्सारं त्ति अणुक्कं जं एगसं, उक्कं अप्पणो उक्कस्सट्टिदी । आणदादि जाव सव्वट्टिसिद्धिं त्ति उक्कस्स-अणुक्कस्सअणुभागाणं जहण्णेण अतोमु०, उक्कं सगसगुक्कस्सट्टिदी ।

अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । अर्थात् पहले नरकमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल एक सागर है, दूसरेमें तीन सागर हैं, तीसरेमें सात सागर हैं, चौथेमें दस सागर हैं, पाँचवेंमें सत्रह सागर हैं, छठेमें बाईस सागर हैं और सातवेंमें तेतीस सागर हैं । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्तक और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी जीवोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य प्रमाण है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यिनीके कहना चाहिये । पञ्चेन्द्रिय तिरीञ्च अपर्याप्तके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त सब विकलेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रसअपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गपर्यन्तके देवोंके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है । आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमु हूत और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जिन पर्यायोंमें मोहनीय कर्मका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है, उनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय बन जाता है । किन्तु यदि उन पर्यायोंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध न हुआ हो और पिछले भवसे भी उत्कृष्ट अनुभागको न लाया गया हो तो जीवनभर अनुत्कृष्ट अनुभागकी ही सत्ता रह सकती है । इसीसे नरकगतिमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा है । पञ्चेन्द्रिय तिरीञ्च आदिमें तथा तीन प्रकारके मनुष्योंमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है अतः उनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय बन जाता है । तथा इन मार्गणाओंकी कायस्थिति तीन पल्य अधिक पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण है, अत इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट अनुभाग का उत्कृष्ट काल भी इतना ही कहा है । पञ्चेन्द्रिय तिरीञ्च अपर्याप्तक आदिमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध नहीं होता है, तथा एक जीवकी अपेक्षा इन मार्गणाओंका काल भी अन्तमु हूत ही है, अत इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तमु हूत ही कहा है । भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्तके देवोंमें भी यदि उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हुआ तो अनुत्कृष्ट अनुभागका काल एक समय अन्यथा अपनी अपनी स्थिति प्रमाण होता है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट अनुभागका घात न होने पर वह जीवन भर रह सकता है और घात होने पर उसका अन्तमु हूत काल उपलब्ध होता है । तथा जीवनके अन्तमें अन्तमु हूत काल शेष रहने पर उत्कृष्ट अनुभागका घात होने पर अन्तिम अन्तमु हूतमें अनुत्कृष्ट अनुभाग पाया

१३२ ईदियापुत्रादेण वादरेईदियसु अणुक्क० नह० सुवामयमाहणं अंतो मुहुत्तं, उक्क० अंगुस्स मसंसे० भागो मसंसेज्जासंसेज्जाओ भोसपिणि-उस्सपिणीओ । वादरेईदियपञ्चत्तएसु अणुक्क० नह० उक्कस्ताणुभागकालेणुणमंतोमुहुत्त, उक्क० संसेज्जाणि पाससहस्साणि । वादरेईदियअपञ्चत्तएसु अणुक्क० न० उक्कस्ताणुभागकालेणुणं सुवामयमाहणं, उक्क० अंतोमु० । मुहुमेईदियसु अणुक्क० नह उक्कस्ताणुभागकालेणुणं सुवामयमाहणं, उक्क० मसंसेज्जा लोगा । मुहुमेईदियपञ्चत्तएसु अणुक्क० न० उक्कस्ताणुभागकालेणुणमंतोमुहुत्तं, उक्क० सयल्लमतीमु० । मुहुमेईदियअपञ्चत्तएसु वादरेईदियअपञ्चत्तमंगो । विगल्लिदिय-विगल्लिदियपञ्चत्तएसु अणुक्क० न उक्कस्ताणुभागकालेणुणं सुवामयमाहणमंतोमुहुत्त, उक्क० संसेज्जाणि पाससहस्साणि । पंचिदिय-पंचिदियपञ्चत्तएसु उक्कस्ताणुभागो नह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० नह० एगस०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुन्नकोटिपुत्तएणम्यहियाणि सागरोवमसदुत्तपत्तं ।

बाठा है और जो अनुत्त अनुभागके साथ इन दोनोंमें व्यय होता है उनके जीवन मर अनुत्त अनुभाग पाया बाठा है । इसीसे यहाँ उत्त और अनुत्त दोनों प्रकारके अनुभागका बचन्य कल अन्तमु हुतं और उत्त कल अपनी अपनी उत्त स्थितिपमाय करा है ।

१३२ इन्द्रियकी अपेक्षा वात्त एकेन्द्रियमें अनुत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल अन्तमु हुतं कम सुप्रभवप्रत्ययपमाय और उत्त कल अंगुत्त असेकवातवें भागपमाय है जो कि असेकवातासंख्यात अबसर्पिणी-असर्पिणी प्रमाय होता है । वात्त एकेन्द्रिय पर्याप्तिकमें अनुत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल उत्त अनुभाग कालसे कम अन्तमु हुतं प्रमाय है और उत्त कल संख्यात इबार बर्ष है । वात्त एकेन्द्रिय अपर्याप्तिकमें अनुत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल उत्त अनुभागके कालसे कम सुप्रभवप्रत्ययपमाय है और उत्त कल अन्तमु हुतं है । सूक्ष्म एकेन्द्रियमें अनुत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल उत्त अनुभागके कालसे कम सुप्रभवप्रत्ययपमाय है और उत्त कल असेकवात शोक है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तिकमें अनुत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल उत्त अनुभागके कालसे कम अन्तमु हुतं है और उत्त कल सम्पूर्व अन्तमु हुतं प्रमाय है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तिकमें वात्त एकेन्द्रिय अपर्याप्तिके समान भंग है । विकसेन्द्रिय तथा विकसेन्द्रिय पर्याप्तिकमें अनुत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल उत्त अनुभागके कालसे हीन सुप्रभवप्रत्ययपमाय और अन्तमु हुतं है और उत्त कल संख्यात इबार बर्ष है । पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तिकमें उत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल एक समय है और उत्त कल अन्तमु हुतं है । अनुत्त अनुभागविभक्तिका बचन्य कल एक समय है और उत्त कल कालसे पूर्वकोटि पूकत्व अधिक एक इबार सागर और सौ प्रयत्न सागर है ।

विद्येपार्य-वात्त एकेन्द्रियका बचन्य कल सुप्रभवप्रत्ययपमाय है, जो जीव उत्त अनुभागको लेकर वात्त एकेन्द्रियमें व्ययन होता है वह एक अन्तमु हुतंमें उत्त कल कर देता है, अतः इसके अनुत्त अनुभागका बचन्य कल अन्तमु हुतं कम सुप्रभवप्रत्यय वतलाया है तथा उत्त कल वात्त एकेन्द्रियकी उत्त स्थितिपमाय कलान्ता है । आगे भी विकसेन्द्रिय पर्याप्तिक

१ वा मती अणुक्क० उक्कस्ताणुभागकालेणुणं इति वचन ।

§ ३३. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउकाइएसु मोह० अणुक० जह० उकस्साणुभागकालेणूं खुदाभवग्गहणं, उक० असंखेज्जा लोगा । एवमेदेसिं वादराण । णवरि उक० कम्मट्ठिदी । वादरपुढवि०-वादरआउ०--वादरतेउ०-वादरवाउ०पज्जतएसु अणुक०जह० अतोमु०, उक० संखेज्जाणि वाससहस्साणि । एदेसिमपज्जत्ताणं वादरेइंदिय-अपज्जत्तभंगो । सुहुमपुढवि०--सुहुमआउ०-सुहुमतेउ०-सुहुमवाउकाइएसु मोह० अणुक० ज० देसूण खुदाभवग्गहण, उक० असंखेज्जा लोगा । एदेसिं पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च सुहुमेइदियपज्जत्तापज्जत्तभंगो । वादरवणप्फदिकाइयाणं तेसि पज्जत्तापज्जत्ताणं च वादरे-इंदिय-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताण भंगो । सुहुमवणप्फदिकाइय० तेसि पज्जत्तापज्जत्ताणं सुहुमेइंदिय०सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तभंगो । वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं वादर-पुढविभंगो । तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताण वादरपुढविपज्जत्तापज्जत्तभंगो । णिगोदेसु मोह० अणुक० ज० खुदाभवग्गहण देसूण, उक० अट्टाइज्जपोग्गलपरियट्टा । वादरणिगोदाणं

पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । अर्थात् अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल ती उत्कृष्ट अनुभागके कालसे रहित अपनी अपनी जघन्य भवस्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है । पञ्चेन्द्रिय सामान्य और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकमें उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल पूर्ववत् एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि इनके उत्कृष्ट अनुभागबन्ध हो सकता है । तथा उत्कृष्ट काल पञ्चेन्द्रिय सामान्य और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तककी कायस्थिति प्रमाण है ।

§ ३३ कायकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिकोंमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हीन लुद्रभव प्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल असख्यात लाक है । इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक, वादर जलकायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर वायुकायिकोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक, वादर जलकायिक पर्याप्तक, वादर तेजस्कायिक पर्याप्तक और वादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष है । तथा इन्हीं अपर्याप्तकोंमें वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग है । सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक और सूक्ष्म वायुकायिकोंमें मोहनीय कर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवप्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल असख्यात लोकप्रमाण है । इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमें सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भंग है । वादर वनस्पतिकायिकोंमें वादर एकेन्द्रियके समान, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकोंमें वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकके समान और वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकोंमें वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भङ्ग है । सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा उनके पर्याप्तक और अपर्याप्तकोंमें क्रमसे सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एवन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान भङ्ग है । वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरी जीवोंमें वादर पृथिवीकायिकके समान भंग है । वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरी पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकके समान भङ्ग है । निगोदिया जीवोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवप्रहणप्रमाण है । और उत्कृष्ट काल ढाई पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । वादर निगोदिया

बादरपुडविभंगो । तैसि पञ्चत्वापञ्चत्वात् बादरपुडविपञ्चत्वापञ्चत्वाभंगो । सुदुमणिगोदानं सुदुमपुडविभंगो । तसकाश्य-तसकाश्यपञ्चत्वापञ्चत्वा मोह० चक्र० ज० एगसममां, चक्र० अंतोद्यु० । अणुक० ज० एगस०, चक्र० षसागरोभमसहस्ताणि पुम्बकोटिपुषत्वेण-म्बहियाणि [षसागरोभमसहस्ताणि]

§ ३४ भोगाशुवादेणं पंचमण०-पंचवचिनोगीसु मोह० अणुक० अह० एगस०, चक्र० अंतोद्यु० । भोरास्त्रियकायभोगीसु मोह० अणुक० ज० एगस०, चक्र० पावीस पत्ससहस्ताणि देसूणाणि । भोरास्त्रियमिस्सकायभोगीसु मोह० अणुक० ज० सुरा मबमहणं देसूणं, चक्र० अंतोद्यु० । वेठम्बियकायभोगीसु मोह० अणुक० ज० एगस०, चक्र० अंतोद्यु० । पंचवियमिस्स० मोह० अणुक० अहणुक० अंतोद्यु० । कम्मइय० मोह० चक्र० अणुक० अह० एगस०, चक्र० तिञ्जि समया । आहार०-आहारमिस्स० मोह० चक्र० अणुक० अहणुक० अंतोद्यु० । णवरि आहारकायभोगीसु अह० एगस० ।

बीबोंमें बाहर प्रविष्टीकाधिकके समान अह्न है और बाहर निगोदिया पर्याप्तक तथा अपर्याप्तकोंमें बाहर प्रविष्टीकाधिक पर्याप्तक और अपर्याप्तकके समान अह्न है । सूक्ष्म निगोदिया बीबोंमें सूक्ष्म प्रविष्टीकाधिकके समान अह्न है । असक्यिक तथा त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । तथा अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमसे पूर्वकोटि प्रपक्त्व अधिक हो हजार सागर और दो हजार सागर है ।

विशेषार्थ-ऊपर कही गई स्वावरकायसम्बन्धी मार्ग्याओंमें भी पहलेके समान ही अनुकृष्ट अनुभाग का अपम्य काल उत्कृष्ट अनुभागके कालसे हीन अपनी अपनी मवस्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कामस्थिति प्रमाण है । सामान्य त्रसक्यिक और त्रसक्यिक पर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट अनुभागका अपम्य और उत्कृष्ट काल पूर्ववत् जानना चाहिए । तथा इनमें उत्कृष्ट अनुभागअप्य हो सक्यिके कारण अनुकृष्ट अनुभागका अपम्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कामस्थितिप्रमाण है, इसलिये इन सबमें एक प्रमाण काल क्या है ।

§ ३४ भोगकी अपम्या पांचों मनोयोगी और पांचों बचनयोगियोंमें मोहनीय कर्मकी अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । औदारिककाययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम बर्तस हजार वर्ष है । औदारिकमित्रकायभोगियोंमें मोहनीयकर्मकी अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य काल कुछ कम सुत्रमवधारणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । वैश्वियिकमित्रभोगियोंमें मोहनीय कर्मकी अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । वैश्वियिकमित्रभोगियोंमें मोहनीय कर्म की अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । कर्मसहाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । आहारकायभोगी और आहारमित्रकायभोगियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपम्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूत है । इतनी विशेषता है कि

१ एग एगो अह० षसागरोभमसहस्ताणि पुम्बकोटिपुषत्वेण अम्बहियाणि च भोगाशुवादेण वा अहो अह० षसागरोभमसहस्ताणि भोगाशुवादेण इति वाच्यं ।

§ ३५. वेदाणुवादेण इत्थिं--पुरिसं मोहं अणुकं जं एगसं, उक्कं परिवाहीए पल्लिदोवमसदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं । अवगदवेदएसु मोहं उक्कं जहं एगसमओ, मरणेणुवलंभादो । उक्कं अंतोसुं । अणुकं जं एगसं, उक्कं अंतो-मुहुत्तं । कसायाणुवादेण कोधकसाईं अणुकं जहं एगसं, उक्कं अंतोसुं । एवं माण-माया-लोहाणं । अकसायं मोहं उक्कं अणुकं जहं एगसं, उक्कं अंतोसुं । एवं जहाक्खादं-सुहुमसांपरायसंजदाण ।

आहारककाययोगियोंमें जघन्य काल एक समय है ।

विशेषार्थ—कोई एक मनोयोगी या वचनयोगी उत्कृष्ट अनुभागका विनाश करके उस समय अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हुआ जब उसके मनोयोग या वचनयोगका काल एक समय शेष रहा । इस प्रकार एक समय तक विवक्षित योगके साथ अनुत्कृष्ट अनुभागमें रहा और दूसरे समयमें योग बदल गया तो विवक्षित वचनयोग या मनोयोगमें अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है । अथवा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला कोई जीव मनोयोगी या वचनयोगी हुआ । एक समय तक विवक्षित योगमें रहकर उसने दूसरे समयमें उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर लिया अथवा दूसरे समयमें मरकर अन्य काययोगी हो गया तो भी एक समय काल बन जाता है । उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त इमलिये है कि मनोयोग और वचनयोगका उत्कृष्ट काल इतना ही है । औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष एकेन्द्रिय जीवोंमें सभसे अधिक स्थिति वाले खरपृथिवीकायिक जीवके होता है । अतः उनमें अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष कहा है । जो जीव उत्कृष्ट अनुभागके साथ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ और उत्कृष्ट अनुभागका काल वीतने पर वह अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया उसके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और जो अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ ही वैक्रियिकमिश्रकाययोगी हुआ उसके उत्कृष्ट काल भी अन्तमुहूर्त होता है । कर्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है, अतः उसमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी उतना ही होता है । आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त-मुहूर्त है तथा आहारकमिश्रका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, अतः उनमें रहनेवाले उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका भी उतना ही काल जानना चाहिये ।

§ ३५. वेदकी अपेक्षा स्त्रीवेदी और पुरुषवेदियोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल क्रमशः स्त्रीवेदियोंमें सौ पृथक्त्वपल्य और पुरुषवेदियोंमें सौ पृथक्त्वसागरप्रमाण है । अपगतवेदी जीवोंमें माहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल एक समय है, क्योंकि यह मरणकी अपेक्षा उपलब्ध होता है । और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । कषायकी अपेक्षा क्रोध कषायवालोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार मान, माया और लोभमें जानना चाहिये । कषायरहित जीवोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार यथाख्यातसयत और सुद्धम साम्परायसयतोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें उत्कृष्टका बन्ध करके क्रमशः आयुके अन्तमें एक समय तक अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ रहकर अन्य वेदके साथ उत्पन्न हो गया उसके अनुत्कृष्ट अनु-

§ ३६ बाष्पाणु० विहंगणाणीसु मोह० अणुक० बह० एगस०, उह० वेतीसं सागरोबमाभि देसणाणि । आभिणि०-सुद०-भोहि० मोह० उह० बह० एगसमभो, उह० अंतोसुह । अणुक० न० अंतोसु०, उह० द्वावहिसागरोबमाभि सादिरेयाणि । मणपन्न० मोह० उह० न० अंतोसु०, उह० पुव्वकोडी देसणा । एवमणुकस्सं पि ।

§ ३७ संभमाणुवादन संभदेसु मोह० उह० बह० अंतोसु०, उह० पुव्वकोडी देसणा, किरियाए विणा अणुभागपादाभावादो । अणुक० न० अंतोसु०, उह० पुव्व-

भागका अणुत्व काल एक समय होता है । तथा उत्कृष्ट काल दोनों वेदोंकी अपनी अपनी कार्यस्थिति प्रमाय है यह स्पष्ट ही है । ओषधि कर्पायोंका अणुत्व काल एक समय और उत्कृष्ट काल अणुत्व हुत होनेसे इनमें अणुत्व अणुभागविभक्तिका अणुत्व काल एक समय और उत्कृष्ट काल अणुत्व हुत क्या है । कर्पायोंके समान ही अक्यायी, सूक्ष्मसात्पर्यविस्तृत और ब्रह्मसात्पर्यत कीयोंके पणित कर लेना चाहिए ।

§ ३६ ज्ञानकी अपेक्षा विभङ्गानियोंमें मोहनीय कर्मकी अणुत्व अणुभागविभक्तिका अणुत्व काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम वेतीस सागर है । आभिनिबोधिका ज्ञानी, गुरुज्ञानी और अशुभिनियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अणुभागविभक्तिका अणुत्व काल एक समय और उत्कृष्ट काल अणुत्व हुत है । तथा अणुत्व अणुभागविभक्तिका अणुत्व काल अणुत्व हुत और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक विषासठ सागर है । मनाःपर्यवधानियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अणुभागविभक्तिका अणुत्व काल अणुत्व हुत और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है । इसी प्रकार अणुत्व अणुभागविभक्तिका भी काल होता है ।

विशेषार्थ—जो मारकी विभङ्गानियोंमें होनेके दूसरे समयमें अणुत्व अणुभागविभक्तिका हो जाता है उसके विभङ्गानियोंमें अणुत्व अणुभागका अणुत्व काल एक समय उपलब्ध होमसे यह उक्त प्रमाण कहा है । तथा सातवें नरकमें विभङ्गानियोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम वेतीस सागर होनेसे अणुत्व अणुभागका उत्कृष्ट काल कुछ कम वेतीस सागर क्या है । आभिनिबोधिका ज्ञानी आदि तीनों ज्ञानोंका अणुत्व काल अणुत्व हुत और उत्कृष्ट काल साधिक विषासठ सागर है, इसलिये इनमें अणुत्व अणुभागका अणुत्व और उत्कृष्ट काल उत्कृष्टमाय क्या है । इन तीनों ज्ञानोंमें उत्कृष्ट अणुभागका उत्कृष्ट काल अणुत्व हुत है यह तो स्पष्ट ही है । मात्र इसका अणुत्व काल जो एक समय क्या है सो कल्प यह करण्य है कि जो जीव उत्कृष्ट अणुभागमें एक समय रहने पर आभिनिबोधिका ज्ञानी आदि होत हैं कल्पे यह एक समय काल देखा जाता है । मनाःपर्यवधानिका अणुत्व काल अणुत्व हुत और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसलिये इसमें उत्कृष्ट और अणुत्व दोनोंका अणुत्व काल अणुत्व हुत और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि क्या है । यहाँ उत्कृष्ट अणुभागका अणुत्व काल एक समय समान महीं । कारण कि जो तत्प्राप्तय उत्कृष्ट अणुभागके साथ मनाःपर्यवधानको उत्पन्न करता है उसका वह उत्कृष्ट अणुभाग कमसे कम अणुत्व हुत काल तक अवश्य रहता है । तथा उत्कृष्ट अणुभागका उत्कृष्ट काल जो कुछ कम एक पूर्वकोटि क्या है कल्प काण्य यह है कि कियाने किन्तु उत्कृष्ट अणुभागका पाठ न होकर उत्कृष्ट इतने काल तक अवस्थान सम्भव है ।

§ ३७ संभको अपेक्षा संभमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अणुभागविभक्तिका अणुत्व काल अणुत्व हुत है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है क्योंकि कियाने किन्तु अणुभागका पाठ नहीं होता । अणुत्व अणुभागविभक्तिका अणुत्व काल अणुत्व हुत और उत्कृष्ट काल कुछ कम

कोडी देसूणा । एवं सामाइय-छेदो-परिहार-संजदासंजदाणं । णवरि सामाइय-छेदो अणुक० ज० एगस० ।

§ ३८. दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । अणुक० ज० एगस०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि । ओहिदंसणी० ओहिणाणिभंगो ।

§ ३९. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० मोह० अणुक० जह० एगस०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरो० सादिरेयाणि । तेउ०-पम्म० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोसु० । अणुक० ज० एगस०, उक्क० वे-अट्टारससागरोवमाणि सादिरेयाणि । सुक्कलेस्साए मोह० उक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोसु० । अणुक० ज० अंतोसु०, उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि ।

पूर्वकोटि है । इसी प्रकार सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत और सयता संयतोंके जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदोपस्थापनासयतोंमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है ।

विशेषार्थ—यहाँ सब कालका स्पष्टीकरण मनःपर्ययज्ञानके समान कर लेना चाहिए । मात्र सामायिकसयत और छेदोपस्थापनासयतका जघन्य काल एक समय होनेसे इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है ।

§ ३८ दर्शनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है । अवधिदर्शनियोंमें अवधिज्ञानीके समान भद्र है ।

विशेषार्थ—जो चक्षुदर्शनी भवके अन्तिम समयमें उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभाग करके मरकर द्वितीय समयमें अचक्षुदर्शनी हो जाता है उस चक्षुदर्शनीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, इसलिए वह उक्तप्रमाण कहा है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ३९ लेश्याकी अपेक्षा कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मकी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक तेतीस सागर, कुछ अधिक सतरह सागर और कुछ अधिक सात सागर है । तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है । शुक्ललेश्यामें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—जो कृष्णादि पाँच लेश्यावाला जीव अपने अपने लेश्याके प्रारम्भमें एक समय तक अनुत्कृष्टविभक्तिवाला होता है उसके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय होता है । इसी प्रकार पीत आदि तीन लेश्याओंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिए । मात्र शुक्ललेश्यामें अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इस लेश्यामें अनुत्कृष्टके बाद पुनः उत्कृष्टकी प्राप्ति सम्भव नहीं है । शेष कथन

५ ४० सम्मत्ताणु० सम्मादि० मोह० उक्क० अणुक० आभिणि० भंगो । वेदग०
 एवं वेव । णवरि अणुक० सगहिदी । स्वय० मोह० उक्क० ज० अंतोसु०,
 उक्क० तेतीससागरा० सादिरेयाणि । एवमणुकस्तं पि । उवसम० माह० उक्क० अह
 णुक० अंतोसु० । एवमणुकस्तं पि । सासण० मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अ
 मावत्तियामो । एवमणुकस्तं पि । सम्मादि० मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क०
 अंतोसु० । अणुक० अहणुक० अंतोसुहुत्त ।

स्पष्ट ही है ।

५ ४० सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्मत्प्रदियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभाग-
 विभक्तिका काल आग्निनिवापिकप्रदियोंके समान है । अदिकसम्बन्धप्रदियोंमें भी इसी प्रकार होता है ।
 इतनी विवेकता है कि अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल वेदकसम्बन्धकी स्थितिप्रमाय
 अर्थात् द्विधासक सागर होता है । आग्निक्सम्बन्धप्रदियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका
 अपन्य काल अन्तमु हुत्त और उत्कृष्ट काल अन्त अदिक तेतीस सागर है । इसी प्रकार अनुकृष्ट
 अनुभागविभक्तिका भी काल होता है । उपरामसम्बन्धप्रदियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभाग
 विभक्तिका अपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत्त है । इसी प्रकार अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका
 भी काल होता है । सासादनसम्बन्धप्रदियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अपन्य
 काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त आबली है । इसी प्रकार अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका भी
 काल होता है । सम्मत्प्रदियोंमें मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अपन्य काल
 एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत्त है और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका अपन्य और उत्कृष्ट
 काल अन्तमु हुत्त है ।

विसर्पार्थ—जो तदप्रयोग्य उत्कृष्ट अनुभागके साथ आग्निक्सम्बन्धको प्राप्त होता है
 उसका क्रियास्तरके पूर्व क्रमसे क्रम एक अन्तमु हुत्त काल तक और अधिकसे अधिक साधिक तेतीस
 सागर काल तक अवबन्ध ही अवबन्धान रहता है, इसलिये यहाँ उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका अपन्य
 काल अन्तमु हुत्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । इसी प्रकार जो अनुकृष्ट अनु-
 भागके साथ आग्निक्सम्बन्धको प्राप्त होता है या क्रिया द्वारा उत्कृष्ट अनुभागका पाठकर अनुकृष्ट
 अनुभाग कर लेता है उसे उसका अभाव करनेमें क्रमसे क्रम अन्तमु हुत्त काल और अधिकसे अधिक
 साधिक तेतीस सागर काल लगता है इसलिये यहाँ अनुकृष्ट अनुभागका भी अपन्य काल अन्त-
 मु हुत्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । उपरामसम्बन्धका अपन्य और उत्कृष्ट
 काल अन्तमु हुत्त है और इतन काल तक दोनों प्रकारके अनुभागका अवबन्धान सम्भव है तथा
 यहाँ भी क्रियास्तर अन्तमु हुत्त कालके पूर्व समय नहीं इसलिये इसमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट
 अनुभागका अपन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारका काल अन्तमु हुत्त कहा है । सासादनसम्बन्धका
 अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त आबली होनेसे इसमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनु-
 भागका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत्त कहा है । जिस विध्यादि कीवक
 तदप्रयोग्य उत्कृष्ट अनुभागके एक समय सेप रहने पर सम्बन्धितगुणस्वान होता है उस
 सम्बन्धितगुणके उत्कृष्ट अनुभाग एक समय तक देखा जाता है और जो विध्यादि तदप्रयोग्य
 उत्कृष्ट अनुभागके साथ सम्बन्धितगुणस्वानका प्राप्त होकर यहाँ उसके साथ ही रहता है उस
 सम्बन्धितगुणके अन्तमु हुत्त काल तक उत्कृष्ट अनुभाग देखा जाता है । यही कारण है कि सम्ब-
 न्धितगुणके उत्कृष्ट अनुभागका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हुत्त कहा है ।

§ ४१. सण्णि० मोह० उक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं ।

§ ४२. आहारणुवादेण मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । अणाहरीसु कम्मइयभगो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

§ ४३. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदोसो—ओघे० आदेसे० । तत्थ ओघे० मोह० जहण्णाणुभागविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अज० अणादि-अपज्जवसिदो अणादि-सपज्जवसिदो वा ।

यहाँ अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त हैं यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

§ ४१ सन्नियोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सौ प्रथक्त्व सागर है।

विशेषार्थ—जो सही भवके अन्तमें एक समय तक उत्कृष्ट या अनुत्कृष्ट अनुभागके साथ रहकर दूसरे समयमें असही हो जाता है उस सहीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ४२ आहारककी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अंगुलके असख्यातवें भाग है जो कि असख्यातासख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीप्रमाण है। अनाहारकमें कार्मणकाययोगियोंके समान भद्र है।

विशेषार्थ—यहाँ आहारकोंमें सन्नियोंके समान कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। मात्र इनकी कायस्थिति अंगुलके असख्यातवें भागप्रमाण होनेसे अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। कार्मणकाययोगी अनाहारक ही होते हैं, इसलिए अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान काल कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

§ ४३ जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका काल अनादि—अनन्त और अनादि-सान्त है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्ति क्षणिक सूक्ष्मसान्परायके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अजघन्य अनुभागविभक्ति अभव्योंके अनादिसे अनन्त काल तक और भव्योंके अनादिसे सान्तकाल तक होती है, क्योंकि जघन्य

१४४ आदेशेन जेरइपसु मोह० अहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।
अमहण्णाणु० ज० दस बाससहस्साणि अंतोमुहुत्त्वाणि, उक्क० तेधीसं सागरोपमाणि ।
एवं पइमाए । जवरि अमहण्णाणु० सगट्ठिदी । एवं दंब०—मबण०—वाणयेंतर० ।
जवरि अमहण्णाणु० सगट्ठिदी । विदियादि जाव सचमि ति मोह० अह० ज० अंतोमु०,
उक्क० सगट्ठिदी देवणा । अम० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी संपुण्णा । एवं जादि
सिया० । जवरि सगट्ठिदी पचन्वा ।

अनुभागविमर्शिके प्रसन्नानके पूर्वतक वह अज्ञपन्य होती है, इसलिये उसका काल उक्तप्रमाण्य
क्या है।

१४४ आदेशकी अपेक्षा नरकियोंमें मोहनीयकर्मकी अज्ञपन्य अनुभागविमर्शिका अज्ञपन्य
काल एक समय और उक्तक काल अन्तमु हूत है। अज्ञपन्य अनुभागविमर्शिका अज्ञपन्य काल
अन्तमु हूत कम इस हकार बर्ष और उक्तक तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहला पृथिवीमें
जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अज्ञपन्य अनुभागविमर्शिका उक्तक काल
अपनी अपनी स्थिति प्रमाण्य होता है। इसी प्रकार सामान्य देव, मबन्वासी और अन्तरोंमें
होता है किन्तु इतनी विशेषता है कि अज्ञपन्य अनुभागविमर्शिका काल अपनी स्थिति प्रमाण्य
होता है। इसी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीय कर्मकी अज्ञपन्य अनुभागविमर्शिका
अज्ञपन्य काल अन्तमु हूत और उक्तक काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण्य है। तथा
अज्ञपन्य अनुभागविमर्शिका अज्ञपन्य काल अन्तमु हूत और उक्तक काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति
प्रमाण्य है। इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंमें कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि उक्तक काल अपनी
स्थिति प्रमाण्य कहना चाहिये।

विशेषार्थ—जो इतसमुत्पत्तिक सत्कर्मबला असंखी पञ्चमिन्द्रिय तिर्यञ्च मरकर नरकमें
जन्म लेता है उसके तब तक अज्ञपन्य अनुभाग रहता है जब तक वह सप्तमं स्थित अनुभागसे
अधिक अनुभागवत्त्व नहीं करता है। अतः यदि वह दूसरे समयमें ही अनुभागको बढ़ा लेता है
तो उसके अज्ञपन्य अनुभागका काल एक समय होता है अथवा अन्तमु हूत होता है। अन्तमु हूतके
बाद हुआ अज्ञपन्य अनुभागका सत्त्व आयुके अन्त समय तक रहता है अतः अज्ञपन्य अनुभाग
का अज्ञपन्य काल अन्तमु हूत कम इस हकार बर्ष होता है। और यदि अज्ञपन्य अनुभागके साथ
नरकमें जन्म लिया गया तो उसके उक्तक काल तेतीस सागर होता है क्योंकि नरकमें इतनी ही
उक्तक स्थिति है। पहले नरक सामान्य देव, मबन्वासी और अन्तरोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये,
क्योंकि इतसमुत्पत्तिक सत्कर्मबला असंखी जन्में जन्म ले सकता है। अन्तर केवल इतना है कि
इन्में अज्ञपन्य अनुभागका उक्तक काल अपनी अपनी उक्तक स्थितिप्रमाण्य लेना चाहिये। जैसे
पहले मरकम एक सागर। दूसरे जादि नरकमें तथा ज्योतिषी देवोंमें असंखी तो जन्म ले नहीं
सकता। अतः अज्ञपन्य अनुभागबला का बीच तक स्थानोंमें जन्म लेकर अन्तमु हूतके बाद
सम्पत्त्वको प्राप्य करके अन्ततनुकर्मकी विस्तारबना करता है इसके अज्ञपन्य अनुभाग होता है।
यदि वह बीच विस्तारबना करके अन्तमु हूतके बाद सम्पत्त्वसे म्युत हो जाता है वा मर जाता है
तो उसके अज्ञपन्य अनुभागका काल अन्तमु हूत होता है, अथवा कुछ कम अपनी अपनी उक्तक
स्थिति प्रमाण्य होता है। किन्तु सातवें नरकमें सम्पत्त्विक अज्ञपन्य मरण्य नहीं होता, अतः कुछ
और अधिक कम कर लेना चाहिये। अज्ञपन्य अनुभागका अज्ञपन्य और उक्तक काल स्पष्ट ही है।

§ ४५. तिरिक्खवर्गईए तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सव्वपच्चिदियतिरिक्खवमणुसअपज्ज० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्खस्सट्ठिदी । मणुसतियम्मि मोह० जहण्णाणु० ओघं । अज० ज० सुद्धाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सगसगट्ठिदी । सोधम्मदि जाव सव्वसिद्धि ति मोह० जहण्णाजहण्णाणुभागाणं जहण्णुक्खस्सेण सगसगजहण्णुक्खस्सट्ठिदी वत्तच्चा ।

§ ४५ तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक है । सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अजघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्यानुभागविभक्तिका काल ओघके समान है और अजघन्यानुभागविभक्तिका जघन्य काल सामान्य मनुष्यके लुद्धमवग्रहणप्रमाण है और शेष दो के अन्तमुहूर्त है, उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्ति और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें जो सूक्ष्म निगोदिया एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव अजघन्य अनुभागका घात कर देता है उसके तब तक जघन्य अनुभागकी सत्ता रहती है जब तक वह बन्धद्वारा उसे बन्धा नहीं लेता । यदि एक समयमें ही उसने जघन्य अनुभागसे अधिकका बन्ध कर लिया तो जघन्य अनुभागका काल एक समय होता है, अन्यथा अन्तमुहूर्त होता है । इसी प्रकार जिस तिर्यञ्चने एक समयके लिए अजघन्य अनुभाग प्राप्त किया और दूसरे समयमें मर कर वह मनुष्य हो गया तो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है, अन्यथा अनुत्कृष्ट अनुभागकी तरह असख्यात लोक होता है । यहाँ पर अनन्त काल न कहनेका कारण यह है कि एक तो सूक्ष्म एकेन्द्रियों में निरन्तर रहनेका काल असख्यात लोकप्रमाण है, इसलिए जिसने सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायके प्रारम्भ में और अन्तमें जघन्य अनुभाग करके मध्यमें वह अजघन्य अनुभागका स्वामी रहा तो अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असख्यात लोक देखा जाता है । दूसरे पृथिवीकायादिमें निरन्तर रहनेका काल भी असख्यात लोक है, इसलिए किसी सूक्ष्म निगोदिया लब्धपर्याप्त करने जघन्य अनुभाग किया और दूसरे समयमें वह अन्य कायवाला होकर असख्यात लोकप्रमाण काल तक अजघन्य अनुभागका स्वामी बना रहा । पुनः इतने कालके बाद वह सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त होकर जघन्य अनुभागका स्वामी हुआ तो भी अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल असख्यात लोकप्रमाण देखा जाता है । इतसमुत्पत्तिकर्मवाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागके साथ जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें बन्धा लेता है तो जघन्य अनुभागका काल एक समय होता है अन्यथा अन्तमुहूर्त होता है । इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है, क्योंकि इनकी जघन्य भवस्थिति ही इतनी है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । मनुष्यत्रिकमें क्षपकश्रेणि सम्भव होनेसे इनमें जघन्य अनुभागका काल ओघके समान बन जाता है । तथा सामान्य मनुष्योंकी भव-

१ ४६ इदियाणुभादेण परंदिपसु मोहं बहणाणुं नहं एगसं, चकं
 अंतोसुं । अमं बहं एगसं, चकं असंस्लेज्जा सोगा । बादरेईदियसु मोहं बह
 ण्णाणुं नं एगसं, चकं अंतोसुं । अमं नं अंतोसुं, चकं अंगुलस्स असंस्ले-
 यागो असंस्लेज्जासंस्लेज्जाओ ओसप्पिणि-वस्सप्पिणीआ । एवं बादरेईदियपक्कचारणं ।
 अवरि अमहणाणुं चकं संस्लेज्जाणि वाससहस्साणि । बादरेईदियअपक्कचपसु मोहं
 बहणाणुं नं एगसं, चकं अंतोसुं । अमं बहं सुहामवमहाणं वेसुणं, चकं
 अंतोसुं । सुहुमेईदियसु मोहं बहणाणुं नं एगसं, चकं अंतोसुं । अमं
 नं एगसं, चकं असंस्लेज्जा सोगा । सुहुमेईदियपक्कं मोहं बहणाणुभागं नं
 एगसममो, चकं अंतोसुं । अमं नं चकं अंतोसुं । सुहुमेईदिय अपक्कं बह
 ण्णाणुं नं एगसं, चकं अंतोसुं । अमं नं एगसं, चकं अंतोसुं । वेईदिय
 तेईदिय-अवरिदियारणं वेसिं येव पक्कचारणं च मोहं बहणाणुं नं एगसं, चकं
 अंतोसुं । अमं नं सुहामवमहाणं वेसुणमतोसुहुत्तं वेसुणं, चकं संस्लेज्जाणि वस्स

स्विति हस्तकं अत्रप्रथममात्र और शेषकी अन्तमु हतप्रमात्र होनेसे इतने अत्रप्रथम अनुभागका
 अत्रप्रथम काल एकप्रथममात्र और अन्तमु काल अपनी अपनी अत्रप्रथमप्रतिप्रमात्र कहा है । औपचारिक
 वेचोमेंसे कहीं वेचोके अत्रप्रथम अनुभाग होता है जो पिछले भवमें किया द्वारा सबसे अत्रप्रथम अनुभाग
 कर चुके हैं और शेषके अत्रप्रथम अनुभाग होता है । वही कारण है कि औपचारिक सब वेचोमें
 अत्रप्रथम और अत्रप्रथम अनुभागका अत्रप्रथम काल अपनी अपनी अत्रप्रथम अत्रप्रथमप्रतिप्रमात्र और अन्तमु
 काल अपनी अपनी अन्तमु अत्रप्रथमप्रतिप्रमात्र कहा है ।

१ ४६ इन्द्रियकी अपेक्षा एकैन्द्रियमें मोहनीय कर्मकी अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिका
 अत्रप्रथम काल एक समय है और अन्तमु काल अन्तमु हुत है । अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिका
 अत्रप्रथम काल एक समय है और अन्तमु काल असंस्वात लोक है । बाहर एकैन्द्रियमें मोहनीय-
 कर्मके अत्रप्रथम अनुभागका अत्रप्रथम काल एक समय और अन्तमु अन्तमु हुत है । अत्रप्रथम अनुभागका
 अत्रप्रथम काल अन्तमु हुत और अन्तमु अंगुलके असंस्वातके माग है जो कि असंस्वात-
 संस्वात अत्रप्रथमपिणी-अत्रप्रथमकी काल प्रमात्र है । इसी प्रकार बाहर एकैन्द्रिय पर्यंतकोके जानना
 चरिहे । किन्तु इतनी विधेयता है कि अत्रप्रथमअनुभागका अन्तमु काल संस्वात हजार वप है ।
 बाहर एकैन्द्रिय अपर्याप्तकोमें मोहनीय कर्मके अत्रप्रथम अनुभागका अत्रप्रथम काल एक समय और
 अन्तमु काल अन्तमु हुत है । तथा अत्रप्रथमअनुभागका अत्रप्रथम काल एक समय अत्रप्रथमअनुभागका
 और अन्तमु काल अन्तमु हुत है । सूत्र एकैन्द्रियमें मोहनीय कर्मकी अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिअ
 अत्रप्रथम काल एक समय और अन्तमु काल अन्तमु हुत है । अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिअ अत्रप्रथम
 काल एक समय है और अन्तमु काल असंस्वात लोक है । सूत्र एकैन्द्रिय पर्यंतकोमें मोहनीय
 कर्मकी अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिका अत्रप्रथम काल एक समय और अन्तमु काल अन्तमु हुत है ।
 तथा अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिअ अत्रप्रथम और अन्तमु काल अन्तमु हुत है । सूत्र एकैन्द्रिय
 अपर्याप्तकोमें अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिका अत्रप्रथम काल एक समय और अन्तमु काल अन्तमु हुत
 है । तथा अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिका अत्रप्रथम काल एक समय और अन्तमु काल अन्तमु हुत
 है । सामान्य बाह्यैन्द्रिय ऐह्यैन्द्रिय और औह्यैन्द्रिय तथा अहिके पर्यंतकोमें मोहनीय कर्मकी
 अत्रप्रथम अनुभागविभक्तिअ अत्रप्रथम काल एक समय और अन्तमु काल अन्तमु हुत है । तथा

सहस्साणि । एदेसिमपज्जत्ताण पंचिदियअपज्जत्ताणं च पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ४७. पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोटिपुधत्तेण्भ-हियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ।

§ ४८. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० असखेज्जा लोगा । वादर-पुढवि-वादरआउ०-वादरतेउ०-वादरवाउ० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० कम्मट्ठिदी । एदेसिं चैव पज्जत्ताणं जहण्णाणु०

सामान्य दोइन्द्रियादिकके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तक दोइन्द्रियादिकके कुछ कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण हैं और सबके उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष हैं । दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोके पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोके समान भङ्ग होता है ।

विशेषार्थ—सब प्रकारके एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागवाले सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे उनमें जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, इसलिए वह तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए । पूर्वोक्त अन्य जीवोंमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी अपनी भवस्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण वतलाया है यह तो ठीक है परन्तु एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें जो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय वतलाया है उसका कारण यह है कि ये भवके अन्तमें एक समयके लिए अजघन्य अनुभागवाले होकर दूसरे समयमें यदि अन्य कायवाले हो जाते हैं तो इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है ।

§ ४७ सामान्य पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा सामान्य पञ्चेन्द्रियोंके अजघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल लुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपुयक्त्वसे अधिक एक हजार सागर है । और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर है ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इनकी भवस्थिति और कायस्थितिको ध्यानमें रखकर इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है ।

§ ४८ कायकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अष्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिकमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक प्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक, वादर अष्कायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर वायुकायिक जीवके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कमेस्थिति प्रमाण है । इन्हीं पर्याप्तकोंके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त

ज० एगस०, उक० अंतामु० । अज० ज० अतोमु०, उक० संखज्जाणि वाससहस्ताणि ।
 एदसिमपञ्चत्तार्ण वादरइदियअपञ्चत्तर्भंगो । सुहुमपुइधि०-सुहुमभार०-सुहुमतउ०-सुहुम
 बार० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक० अतामुहुत्तं । अज० ज० सुरामवग्गहर्णं दमूर्णं,
 उक० असत्तेज्जा सागा । एदसिं धव पञ्चत्तपञ्चत्तएसु जहण्णाणु० ज० एगस०, उक०
 अतोमु० । अज० ज० अतोमु० दमूर्णं सुरा० दमूर्णं, उक० अंतामु० । षण्णफदि
 काइयाणं एदियमंगा । वादरवण्णफदिकाइय-वादरवण्णफदिकाइयपञ्चत्तपञ्चत्तार्ण
 वादरइदियपञ्चत्तपञ्चत्तार्ण मंगा । सुहुमवण्णफदिकाइय-सुहुमवण्णफदिकाइयपञ्चत्तपञ्चत्तार्ण
 पञ्चत्तार्ण सुहुमेइदिय-सुहुमइदियपञ्चत्तपञ्चत्तर्भंगो । सम्भणिगोदाणं सध्वेइदियमंगो ।
 वादरवण्णफदिकाइयपञ्चत्तपञ्चत्तार्ण मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक० अंतामु० ।
 अज० ज० सुरामवग्गहर्णं दमूर्णं, उक० फम्महिदी । वादरवण्णफदिपञ्चत्तपञ्चत्तप
 माह० ज० ज० एगस०, उक० अंतामु० । अज० ज० देमूर्णमंतोमु०, उक० संखे
 ज्जाणि वाससहस्ताणि । वादरवण्णफदिपञ्चत्तपञ्चत्तार्ण पंचिदियअपञ्चत्तर्भंगो ।
 तस०-तसपञ्चत्तपसु माह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०, अज० ज० सुरामवग्गहर्णं

हे । तथा अत्राप्य अनुभागविभक्तिका अपन्य कास अस्तमुहूर्तं चौर उच्छ्र सख्यात इज्जर
 र्भवं हे । इन्दी अपर्याप्तके वादर एवमिय अपर्याप्तके समान मंग होता हे । सूरम पृथिवी-
 कायिक, सूरम अकायिक, सूरम तेजस्त्रयिक और सूरम वायुयिक जीवोंके अपन्य अनु-
 भागविभक्तिका अपन्य कास एक समय और उच्छ्र अस्तमुहूर्तं हे । तथा अत्राप्यानुभाग-
 विभक्तिका अपन्य कास कुछ कम हुइमवग्गहर्ण और उच्छ्र असत्तेजात लोक हे । इन्दी जीवोंके
 पर्याप्त और अपवातक अवस्थामें अपन्य अनुभागविभक्तिका अपन्य कास एक समय और
 उच्छ्र कास अस्तमुहूर्तं हे । तथा एक पर्याप्तके अत्राप्य अनुभागविभक्तिका अपन्य कास
 कुछ कम अस्तमुहूर्तं हे और अपर्याप्तके कुछ कम हुइमवग्गहर्ण प्रमाय ह और वानोंके उच्छ्र
 कास अस्तमुहूर्तं हे । वनस्पतिविक्रिकोंके पर्याप्तके समान मंग हे । सामान्य वादर वनस्पति
 कायिकके वादर पर्याप्तके समान, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तके वादर एवमिय पर्याप्तके
 समान और वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तके वादर एवमिय अपर्याप्तके समान मंग हाता हे ।
 सूरम वनस्पतिकायिक सूरम वनस्पतिकायिक पर्याप्त और सूरम वनस्पतिकायिक अपर्याप्तके
 कमसे सूरम पर्याप्त सूरम पर्याप्त पर्याप्त और सूरम एवमिय अपर्याप्तके तरह मंग हाता
 हे । सब निगर्दना जीवोंके सब पर्याप्तके समान मंग हाता ह । वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त
 शरीरी जीवोंमें माहनीवर्धमेंही अपन्य अनुभागविभक्तिका अपन्य कास एक समय और उच्छ्र
 कास अस्तमुहूर्तं हे । अत्राप्य अनुभागविभक्तिका अपन्य कास कुछ कम हुइमवग्गहर्ण प्रमाय
 और उच्छ्र अस्तित्वमाय हे । वादर वनस्पतिकायिक शरीरी पर्याप्त जीवोंमें माहनीवर्धमेंही
 अपन्य अनुभागविभक्तिका अपन्य कास एक समय और उच्छ्र अस्तमुहूर्तं हे । अत्राप्य अनु-
 भागविभक्तिका अपन्य कास कुछ कम अस्तमुहूर्तं और उच्छ्र संख्यात इज्जर र्भवं ह । वादर
 वनस्पति वनस्पतिकायिक और वादरोंके वनस्पतिकायिक अपर्याप्तके समान मंग हाता ह । वस और
 वनस्पतिकायिकोंमें माहनीवर्धमेंही अपन्य अनुभागविभक्तिका अपन्य कास एक समय

सहस्साणि । एदेसिमपज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्ताणं च पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ४७. पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुन्वकोटिपुधत्तेण्भ-हियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ।

§ ४८. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । वादर-पुढवि-वादरआउ०-वादरतेउ०-वादरवाउ० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० कम्मट्ठिदी । एदेसिं चेष पज्जत्ताणं जहण्णाणु०

सामान्य दोइन्द्रियादिकके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तक दोइन्द्रियादिकके कुछ कम अन्तमुहूर्त प्रमाण है और सबके उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष है । दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय अपर्याप्तकोके पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोके समान भङ्ग होता है ।

विशेषार्थ—सब प्रकारके एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागवाले सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे उनमें जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है, इसलिए वह तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए । पूर्वोक्त अन्य जीवोंमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी अपनी भवस्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण बतलाया है यह तो ठीक है परन्तु एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें जो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय बतलाया है उसका कारण यह है कि ये भवके अन्तमें एक समयके लिए अजघन्य अनुभागवाले होकर दूसरे समयमें यदि अन्य कायवाले हो जाते हैं तो इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है ।

§ ४७ सामान्य पञ्चन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा सामान्य पञ्चन्द्रियोंके अजघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल लुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर है । और पञ्चन्द्रिय पर्याप्तकोंके जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर है ।

विशेषार्थ—पञ्चन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय पर्याप्तकोंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इनकी भवस्थिति और कायस्थितिको ध्यानमें रखकर इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है ।

§ ४८ कायकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अण्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिकमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक प्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक, वादर अण्कायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर वायुकायिक जीवके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थिति प्रमाण है । इन्हीं पर्याप्तकोंके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त

अ० एगस०, उक्त० अंतामु० । अज० ज० अनामु०, उक्त० संख्यजाणि वामसहस्ताणि ।
 एदसिमपञ्चताणं वादरईदियअपञ्चमंगो । सुहुमपुडवि०-सुहुमभाव०-सुहुमतउ०-सुहुम
 वाद० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्त० अंतामुहुव० । अज० ज० पुरामवगगहणं दमूणं,
 उक्त० अस्तंज्जा मागा । एदसिं पव पञ्चतापञ्चतएमु जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्त०
 अंतामु० । अज० ज० अंतामु० दमूणं पुरा० दमूणं, उक्त० अंतामु० । पणप्पदि
 काइयाणं एईदियमंगा । वादरवणप्पदिक्काइय-वादरवणप्पदिक्काइयपञ्चतापञ्चताणं
 वादरईदियपञ्चतापञ्चताणं मंगा । सुहुमवणप्पदिक्काइय-सुहुमवणप्पदिक्काइयपञ्चता-
 पञ्चताणं सुहुमईदिय-सुहुमईदियपञ्चतापञ्चतामंगा । सम्भणिगादाणं सम्भईदियमंगा ।
 वादरवणप्पदिक्काइयपत्तेयसरीरमु मोर० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्त० अंतामु० ।
 अज० ज० पुरामवगगहणं दमूणं, उक्त० कम्महिदी । वादरवणप्पदिपत्तेयपञ्चतएमु
 माह० ज० ज० एगस०, उक्त० अंतामु० । अज० ज० दमूणमतामु०, उक्त० संख्ये
 जाणि वाससहस्ताणि । वादरवणप्पदिपत्तेयसरीरअपञ्चताण पंषिदियअपञ्चतमंगो ।
 तस०-तमपञ्चतएमु माह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०, अज० ज० पुरामवगगहणं

दे । तथा अत्राप्य अनुभागविशुद्धिः अत्राप्य काव अन्तमु हृतं चौर इत्यत्र सन्त्याल इतर
 वर्प दे । इही अपयत्तर्को पार परत्रिय अपयत्तर्के समान मंग हाता ह । सूय श्रिषी
 कविक सूय अपयत्तर्क, सूय वेदकविक और सूय वामुध्विक जीर्को तपय अमु-
 भागविशुद्धिः अत्राप्य काव एत समय और इत्यत्र अन्तमु हृत दे । तथा अत्राप्यानुभागा
 विशुद्धिः अत्राप्य काव इत्यत्र कम् सुद्रमवपरण और इत्यत्र अस्तंज्याल लाक दे । इही जीर्को
 पयत्तर्क और अयत्तर्क अपयत्तर्के अत्राप्य अनुभागविशुद्धिः अत्राप्य काव एत समय और
 इत्यत्र काव अन्तमु हृत दे । तथा इत्यत्र पयत्तर्को अत्राप्य अनुभागविशुद्धिः अत्राप्य काव
 इत्यत्र कम् अत्रमु हृत दे और अपयत्तर्को इत्यत्र कम् सुद्रमवपरण प्रमाण ह और वानोके इत्यत्र
 काव अन्तमु हृत दे । वनस्पतिश्रुतिकोके एतत्रियक समान मंग ह । सामान्य वादर वनस्पति
 काविक वादर एतत्रियक समान, वादर वनस्पतिश्रुतिक पयत्तर्क वादर एतत्रिय पयत्तर्क
 समान और वादर वनस्पतिश्रुतिक अपयत्तर्क वादर परत्रिय अपयत्तर्क समान मंग हाता दे ।
 सूय वनस्पतिश्रुतिक सूय वनस्पतिश्रुतिक पयत्तर्क और सूय वनस्पतिश्रुतिक अपयत्तर्कोके
 कमे सूय एतत्रिय सूय एतत्रिय पयत्तर्क और सूय एतत्रिय अपयत्तर्की तरह मंग हाता
 दे । सब निगादिगा जीर्को सब एतत्रियोके समान मंग हाता ह । वादर वनस्पतिश्रुतिक प्रत्येक
 शरीरी जीर्को माहनीवधर्मकी अत्राप्य अनुभागविशुद्धिः अत्राप्य काव एत समय और इत्यत्र
 काव अन्तमु हृत दे । अत्राप्य अनुभागविशुद्धिः अत्राप्य काव इत्यत्र कम् सुद्रमवपरण प्रमाण
 और इत्यत्र कम्मिन्वित्तमण दे । वादर वनस्पतिश्रुतिक शरीर पयत्तर्क जीर्को माहनीवधर्मकी
 अत्राप्य अनुभागविशुद्धिः अत्राप्य काव एत समय और इत्यत्र अन्तमु हृत दे । अत्राप्य अनु-
 भागविशुद्धिः अत्राप्य काव इत्यत्र कम् अन्तमु हृत और इत्यत्र सन्त्याल इतर वर्प दे । वादर
 वनस्पति प्रत्येकशरीर अपयत्तर्कोके वनस्पतिश्रुतिक अपयत्तर्क समान मंग हाता दे । इत्य और
 वनस्पतिश्रुतिको माहनीवधर्मकी अत्राप्य अनुभागविशुद्धिः अत्राप्य ह इत्यत्र काव एत समय

सहस्साणि । एदेसिमपज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्ताणं च पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ४७. पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसहस्साणि पुच्चकोटिपुथत्तेण्णभ-हियाणि सागरोवमसदपुथत्तं ।

१ ४८. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देमूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । वादर-पुढवि-वादरआउ०-वादरतेउ०-वादरवाउ० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देमूणं, उक्क० कम्मट्ठिदी । एदेसि चैव पज्जत्ताणं जहण्णाणु०

सामान्य दोइन्द्रियादिकके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तक दोइन्द्रियादिकके कुछ कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण हैं और सबके उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष हैं । दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय अपर्याप्तकोके पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोके समान भङ्ग होता हैं ।

विशेषार्थ—सब प्रकारके एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागवाले सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे उनमें जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, इसलिए वह तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए । पूर्वोक्त अन्य जीवोंमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी अपनी भवस्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण बतलाया है यह तो ठीक है परन्तु एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें जो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय बतलाया है उसका कारण यह है कि ये भवके अन्तमें एक समयके लिए अजघन्य अनुभागवाले होकर दूसरे समयमें यदि अन्य कायवाले हो जाते हैं तो इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है ।

§ ४७ सामान्य पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा सामान्य पञ्चेन्द्रियोंके अजघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल लुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपुथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर हैं । और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व सागर हैं ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इनकी भवस्थिति और कायस्थितिको ध्यानमें रखकर इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है ।

§ ४८ कायकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अष्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिकमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक प्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक, वादर अष्कायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर वायुकायिक जीवके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कर्मस्थिति प्रमाण है । इन्हीं पर्याप्तकोंके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त

अ० एगस०, उक्त० अंतामु० । अज० अ० अतोमु०, उक्त० संस्तृजाणि वाससहस्ताणि ।
 एदसिमपञ्चघाणं बादरईदियअपञ्चभंगो । सुहुमपुडवि०-सुहुमआठ०-सुहुमतेठ०-सुहुम
 वाठ० जहण्णाणु० न० एगस०, उक्त० अंतामुहुत्तं । अज० अ० सुराभमगगहणं दसूणं,
 उक्त० असंखेज्जा सागा । एदसिं चव पञ्चतापञ्चतपसु जहण्णाणु० अ० एगस०, उक्त०
 अंतामु० । अज० अ० अंतामु० दसूणं सुरा० दसूणं, उक्त० अंतामु० । घणप्फदि
 काइयाणं एईदियभंगा । बादरवणप्फदिकाइय-बादरवणप्फदिकाइयपञ्चतापञ्चघाणं
 बादरईदियपञ्चतापञ्चघाणं भंगा । सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमवणप्फदिकाइयपञ्चताप
 पञ्चघाणं सुहुमेईदिय-सुहुमेईदियपञ्चतापञ्चभंगो । सम्बणिगोदाणं सम्बईदियभंगो ।
 बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरेसु मोह० जहण्णाणु० अ० एगस०, उक्त० अंतामु० ।
 अज० अ० सुराभमगगहणं देसूणं, उक्त० फम्महिदी । बादरवणप्फदिपत्तेयपञ्चतपसु
 माह० अ० अ० एगस०, उक्त० अंतामु० । अज० अ० देसूणमतोमु०, उक्त० संसे
 ज्जाणि वाससहस्ताणि । बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपञ्चघाणं पंघिदियअपञ्चभंगो ।
 तस०-तसपञ्चतपसु माह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस०, अज० अ० सुराभमगगहणं

है । तथा अत्राप्य अनुभाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं अन्तमु हुतं और अत्र सस्पात इकार
 बर्ष है । इन्हीं अपत्यात्तर्कोके बादर एक्कत्रिय अपत्यात्तर्के समान भंग होता है । सूस्म प्यिषी-
 कायिक, सूस्म अपत्यात्तर्क, सूस्म वेदस्त्रयिक और सूस्म वासुक्कयिक बीबोंके अपत्यं अनु-
 भाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं एक समय और अत्र अन्तमु हुतं है । तथा अत्राप्यानुभाष्य-
 विमर्शिका अपत्यं कालं कुछ कम सुद्रमवपदस्य और अत्र असंख्यात लोक है । इन्हीं जीबोंके
 पयत्तर्क और अपत्यात्तर्क अवस्थामें अपत्यं अनुभाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं एक समय और
 अत्र कालं अन्तमु हुतं है । तथा लक्ष पयत्तर्कोके अत्राप्य अनुभाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं
 कुछ कम अन्तमु हुतं है और अपत्यात्तर्कोके कुछ कम सुद्रमवपदस्य प्रमात्य इ और वानोंके अत्र
 कालं अन्तमु हुतं है । वनस्पतिकायिकोंके एकत्रियके समान भंग है । सामान्य बादर वनस्पति
 कायिकके बादर एकत्रियके समान बादर वनस्पतिकायिक पयत्तर्के बादर एक्कत्रिय पयत्तर्कके
 समान और बादर वनस्पतिक्कयिक अपत्यात्तर्के बादर एक्कत्रिय अपत्यात्तर्कके समान भंग होता है ।
 सूस्म वनस्पतिकायिक सूस्म वनस्पतिकयिक पयत्तर्क और सूस्म वनस्पतिकयिक अपत्यात्तर्कोके
 क्रमसे सूस्म एक्कत्रिय सूस्म एकत्रिय पयत्तर्क और सूस्म एक्कत्रिय अपत्यात्तर्ककी तरह भंग होता
 है । सब निगादिवा जीबोंके सब एकत्रियोंके समान भंग होता है । बादर वनस्पतिकयिक प्रत्येक
 शरीरी जीबोंमें माहनीयकर्मकी अपत्यं अनुभाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं एक समय और अत्र
 कालं अन्तमु हुतं है । अत्राप्य अनुभाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं कुछ कम सुद्रमवपदस्य प्रमात्य
 और अत्र कर्मस्थितिप्रमात्य है । बादर वनस्पतिप्रत्येकशरीर पयत्तर्क जीबोंमें माहनीयकर्मकी
 अपत्यं अनुभाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं एक समय और अत्र अन्तमु हुतं है । अत्राप्य अनु-
 भाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं कुछ कम अन्तमु हुतं और अत्र संख्यात इकार बर्ष है । बादर
 वनस्पति प्रत्येकशरीर अपत्यात्तर्कोके पयत्तर्क अपत्यात्तर्कके समान भंग होता है । अत्र और
 अत्राप्यात्तर्कोंमें माहनीयकर्मकी अपत्यं अनुभाष्यविमर्शिका अपत्यं कालं एक समय

सहस्साणि । एदेसिमपज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्ताणं च पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

॥ ४७. पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएगु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसदस्साणि पुच्चकोटिपुथत्तेणग्ग-
हियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ।

॥ ४८. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० जहण्णाणु० ज० एगसमओ,
उक्क० अंतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । वादर-
पुढवि-वादरआउ०-वादरतेउ०-वादरवाउ० जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।
अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं देसूणं, उक्क० कम्मट्ठिदी । एदेसि चैव पज्जत्ताणं जहण्णाणु०

सामान्य दोइन्द्रियादिकके अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तक दोइन्द्रियादिकके कुछ कम अन्तमुहूर्त प्रमाण है और सत्रके उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष है । दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकोके पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोके समान भङ्ग होता है ।

विशेषार्थ—सब प्रकारके एकेन्द्रियों और चिन्तेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभागवाले सूक्ष्म एकेन्द्रियोंकी उत्पत्ति सम्भव होनेसे उनमें जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है, इसलिए वह तिर्यञ्चोंके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए । पूर्वोक्त अन्य जीवोंमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी अपनी भवस्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण वतलाया है यह तो ठीक है परन्तु एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें जो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय वतलाया है उसका कारण यह है कि ये भवके अन्तमें एक समयके लिए अजघन्य अनुभागवाले होकर दूसरे समयमें यदि अन्य कायवाले हो जाते हैं तो इनके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है ।

॥ ४७ सामान्य पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग-
विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा सामान्य पञ्चेन्द्रियोंके अजघन्य अनुभाग-
विभक्तिका जघन्य काल लुद्रभवग्रहण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपुथक्त्वसे अधिक एक हजार
सागर है । और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंके जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्व
सागर है ।

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव होनेसे यहाँ
जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इनकी भवस्थिति और
कायस्थितिको ध्यानमें रखकर इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है ।

॥ ४८ कायकी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अष्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिकमें जघन्य
अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य
अनुभागविभक्तिका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक
प्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक, वादर अष्कायिक, वादर तेजस्कायिक और वादर वायुकायिक
जीवके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य
अनुभागका जघन्य काल कुछ कम लुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल कमेस्थिति प्रमाण है ।
इन्हीं पर्याप्तकोंके जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त

अतोमु० । कर्मइय० मोह० ब्रह्मणापु० बह० एगसमभो, सक० तिष्णिंसमया । एवमनहर्णं पि । आहारकायजोगी० मोह० ब्रह्मणापु० न० एगस०, सक० अतोमु० । अज० न० एगस०, सक० अतोमु० । आहारमिस्त० मोह० ब्रह्मणाभहर्णं० ब्रह्मणुक० अतोमु० ।

§ ३० वेदाणु० इत्यिवेदपसु मोह० ब्रह्मणापु० ब्रह्मणुक० एगस० । अज० न० एगस०, सक० पस्विदोषमसदपुषर्त् । पुरिस० मोह० न० ब्रह्मणुक० एगस० ।

कल अन्तमु हूर्त् है । अजपन्व अनुभागविभक्तिका जपन्व और उत्कृष्ट कल अन्तमु हूर्त् है । कामस्व-
कल्पयोगिबोमें मोहनीय कर्मकी जपन्व अनुभागविभक्तिका जपन्व काल एक समय और उत्कृष्ट
कल तीन समय है । इसी प्रकार अजपन्व का भी है । आहारकल्पयोगिबोमें मोहनीय कर्मकी
जपन्व अनुभागविभक्तिका जपन्व कल एक समय और उत्कृष्ट कल अन्तमु हूर्त् है । अजपन्व
अनुभागविभक्तिका जपन्व काल एक समय है और उत्कृष्ट कल अन्तमु हूर्त् है । आहारकल्प
कल्पयोगिबोमें मोहनीय कर्मकी जपन्व और अजपन्व अनुभागविभक्तिका जपन्व और उत्कृष्ट
कल अन्तमु हूर्त् है ।

विशेषार्थ—पौषों मनोयोगी, पौषों बचनयोगी, कल्पबागी और औशरिककल्पयोगी
बीबोंके जपक सूत्रमसाम्पराज गुणस्वान सम्बन्ध है, इसलिये इसमें जपन्व अनुभागका जपन्व
और उत्कृष्ट कल एक समय कहा है । तथा पौषों मनोयोग और पौषों बचनयोगीका मरस
और स्वापातकी अपेक्षा तथा औशरिककल्पयोगीका मरसकी अपेक्षा एक समय काल जाता है,
इसलिये इसमें अजपन्व अनुभागका जपन्व काल एक समय कहा है । जो इसमें जपक गुणस्वानमें
जपन्व अनुभागका प्राप्त करनेके एक समय पूर्व कल्पयोगी होता है उसके अजपन्व अनुभागका
जपन्व कल एक समय देना जाता है, अतः यह उक्त प्रमाण कहा है । सूत्रम अपर्याप्त परेम्ब्रिवोंके
द्विस प्रकार काल पटित करके बतला भाये इसी प्रकार औशरिककल्पयोगीके पटित कर लेना
चाहिए । वैश्विककल्पयोग और आहारकल्पयोगका जपन्व काल एक समय होनेसे इसमें जपन्व
और अजपन्व अनुभागका जपन्व कल एक समय कहा है । तथा इन दोनों योगीका उत्कृष्ट कल
अन्तमु हूर्त् होनेसे इसमें जपन्व और अजपन्व अनुभागका उत्कृष्ट कल अन्तमु हूर्त् कहा है । जो
वैश्विककल्पयोगी प्रथम समयमें जपन्व अनुभागके साथ रहता है और दूसरे समयमें उसे
कहा जाता है इसके जपन्व अनुभागका एक समय कल उपजन्व होनेसे यह एक समय कहा है ।
इसमें जपन्व और अजपन्व अनुभागका उत्कृष्ट कल अन्तमु हूर्त् है यह स्पष्ट ही है । साथ ही जो
असौकी मर कर वैश्विककल्पयोगी होता है उसीके जपन्व अनुभाग होता है अन्वके नहीं, इस
लिये अजपन्व अनुभागका भी जपन्व कल अन्तमु हूर्त् प्राप्त होनेसे यह उक्त प्रमाण कहा है । आहार
कल्पयोगीका जपन्व और उत्कृष्ट कल अन्तमु हूर्त् होनेसे इसमें जपन्व और अजपन्व अनु-
भागका जपन्व और उत्कृष्ट कल अन्तमु हूर्त् कहा है । कर्मकल्पयोगीका जपन्व काल एक समय
और उत्कृष्ट कल तीन समय होनेसे इसमें जपन्व और अजपन्व अनुभागका जपन्व कल एक
समय और उत्कृष्ट कल तीन समय कहा है । यहाँ द्विन पागोंमें अजपन्व अनुभागका उत्कृष्ट कल
पटित नहीं किया है यह उक्त योगीके उत्कृष्ट कल प्रमाण जानना चाहिए ।

§ ३० बहकी अपेक्षा बीबिविबोंमें माहनीय कर्मकी जपन्व अनुभागविभक्तिका जपन्व और
उत्कृष्ट कल एक समय है । तथा अजपन्व अनुभागविभक्तिका जपन्व काल एक समय और उत्कृष्ट
कल छौ वृत्तवपत्तोपन है । पुरुत्वविबोंमें माहनीयकर्मकी जपन्व अनुभागविभक्तिका जपन्व

अंतोमु०, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि पुच्चकोटिपुत्तेणञ्चहियाणि वेसागरोवम-
सहस्साणि । तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिदियअपज्जत्तभंगो ।

§ ४६. जोगाणुवादेण पंचमण०--पंचवचि० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक०
एगसमओ । अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । कायजोगि० मोह० जहण्णाणु०
जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।
ओरालियकाय० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क०
वावीसवाससहस्साणि देसूणाणि । ओरालियमिस्स० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०,
उक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु० । वेउच्चियकाय० मोह०
जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।
वेउच्चियमि० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० जहण्णुक०

तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल त्रसोमें लुद्रमवमहण और त्रस पर्याप्तकोंमें
अन्तमुहूर्त है । और उत्कृष्ट त्रसोमें पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रस
पर्याप्तकोंमें केवल दो हजार सागर है । त्रसकायिक अपर्याप्तकोंमें पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान
भग होता है ।

विशेषार्थ—पृथिवी आदि चारों कायोंके भेद-प्रभेदोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य और
उत्कृष्ट काल पूर्ववत् एकेन्द्रियोंके समान घटित कर लेना चाहिये । अजघन्य अनुभागका जघन्य
और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । जिनमें जघन्य काल कुछ
कम कहा है उनमें जघन्य अनुभागके कालको दृष्टिमें रखकर कहा है । अर्थात् जघन्य अनुभागवाला
उनमें जन्म लेकर यदि अनुभागको बढ़ा ले तो अजघन्य अनुभागका जघन्य काल कुछ कम अपनी-
अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण होता है । इसी प्रकार वनस्पतिकायिकमें जानना चाहिए । त्रस और
त्रस पर्याप्तकके क्षपक सूक्ष्मसांस्परायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका
जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी
अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ४६. योगकी अपेक्षा पाचों मनोयोग और पाचों वचनयोगोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य
अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य
काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । काययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभाग
विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल
एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तकाल अर्थात् असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । औदारिक-
काययोगियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।
अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार
वर्ष है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल
एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल
एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । वैक्रियिककाययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य
अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजघन्य
अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । वैक्रियिकमिश्र-
काययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

अंतोमु० । कम्मइय० मोह० जहण्णाणु० जह० एगसमओ, उक्क० तिष्णिंसमया । एवमजहण्णं पि । माहारकायभोगी० मोह० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० अ० एगस०, उक्क० अंतोमु० । माहारमिस्स० मोह० जहण्णाजहण्ण० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।

१५० वेदाणु० इतिवेदपसु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० पखिदोषमसदपुपत्तं । पुरिस० मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस० ।

कल अन्तमु हूतं है । अज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं है । कस्य-कस्यभोगियोंमें मोहनीय कर्मकी ज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । इसी प्रकार अज्ञपन्य का भी है । आहारकालययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी ज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं है । अज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं है । आहारकालययोगियोंमें मोहनीय कर्मकी ज्ञपन्य और अज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं है ।

विशेषार्थ-पौर्णो मनायोगी, पौर्णो वचनवागी, कायबोगी और औदारिककालयबोगी बीबेके ज्ञपक सूक्ष्मसाम्प्रदाय गुण्यस्वान सम्भव है इसलिए इनमें ज्ञपन्य अनुभागका ज्ञपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा पौर्णो मनोयोग और पौर्णो वचनयोगोंका मरक और व्यापाठकी अपेक्षा तथा औदारिककालययोगका मरककी अपेक्षा एक समय काज होता है, इसलिये इनमें अज्ञपन्य अनुभागका ज्ञपन्य काल एक समय कहा है । जो इसमें ज्ञपक गुण्यस्वानमें ज्ञपन्य अनुभागको प्राप्त करनेके एक समय पूर्व कालयोगी होता है उसके अज्ञपन्य अनुभागका ज्ञपन्य काल एक समय केला जाता है, अतः वह ज्ञप प्रमाय कहा है । सूक्ष्म ज्ञपयाप्त एकेन्द्रियोंके जित प्रकार काज पटित करके बतला आये उसी प्रकार औदारिककालययोगमें पटित कर लेना चाहिए । वैश्विककालययोग और आहारकालययोगका ज्ञपन्य काल एक समय होनेसे इनमें ज्ञपन्य और अज्ञपन्य अनुभागका ज्ञपन्य काल एक समय कहा है । तथा इन दोनों बोगोंका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं होनेसे इनमें ज्ञपन्य और अज्ञपन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं कहा है । जो वैश्विककालययोगी प्रथम समयमें ज्ञपन्य अनुभागके साथ रहता है और दूसरे समयमें उसे कहा जाता है उसके ज्ञपन्य अनुभागका एक समय काल ज्ञपन्य होनेसे वह एक समय कहा है । इसमें ज्ञपन्य और अज्ञपन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं है यह स्पष्ट ही है । साथ ही जो अज्ञाती मर कर वैश्विककालययोगी होता है उसीके ज्ञपन्य अनुभाग होता है अन्वके नहीं, इस लिये अज्ञपन्य अनुभागका भी ज्ञपन्य काल अन्तमु हूतं प्राप्त होनेसे वह ज्ञप प्रमाय कहा है । आहारकालययोगका ज्ञपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं होनेसे इसमें ज्ञपन्य और अज्ञपन्य अनुभागका ज्ञपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमु हूतं कहा है । कर्मकालययोगका ज्ञपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय होनेसे इसमें ज्ञपन्य और अज्ञपन्य अनुभागका ज्ञपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है । यहाँ जित योगोंमें अज्ञपन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल पटित नहीं किया है वह ज्ञप बोगोंके उत्कृष्ट काल प्रमाय जानना चाहिए ।

१५० वेदकी अपेक्षा हीनेविषयोंमें मोहनीय कर्मकी ज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो सूक्ष्मसाम्प्रदाय है । पुरुषोद्देशियोंमें मोहनीयकर्मकी ज्ञपन्य अनुभागविभक्तिका ज्ञपन्य

अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसदपुधत्तं । णुंसयवेद० जहण्णाणु० जह-
ण्णुकु० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसरेज्जपोगलपरियट्ठं ।
अवगद० मोह० जहण्णाणु० जहण्णुकु० एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क०
अंतोमु० ।

§ ५१. कसायाणुवाटेण कोधकसाएमु मोह० जहण्णाणु० जहण्णुकु० एगस० ।
अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं माण-माया-लोभाणं । अरुसाएमु मोह०
जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अतोमु० । एवमजहएणं पि ।

§ ५२. णाणाणुवाटेण मदि-सुटअएणाणीमु मोह० जहण्णाणु० ज० उक्क०
अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । विहगणाणीमु मोह०

और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुर्हृत और
उत्कृष्ट काल सौ पृथक्त्वसागर है । नपुसकवेदियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय है तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल
अनन्त काल है । वह अनन्त काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अपगतवेदियोंमें मोहनीय
कर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य अनु-
भागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुर्हृत है ।

विशेषार्थ—तीनों वेदोंमें मोहका जघन्य अनुभाग अपने अपने सवेदभागके अन्तिम
समयमें होता है, अतः इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है ।
स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य काल एक समय और पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तमुर्हृत होने
से इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल उक्त प्रमाण कहा है । तथा इनमें अजघन्य अनुभागका
उत्कृष्ट काल अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । अपगतवेदमें सूक्ष्मसाम्प-
रायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होनेसे इसमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल
एक समय कहा है । मोहकी सत्ताजाले अपगतवेदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल
अन्तमुर्हृत होनेसे इसमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त
मुर्हृत कहा है ।

§ ५१ कपायको अपेक्षा क्रोधकपायवालोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य
और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट
काल अन्तमुर्हृत है । इसी प्रकार मान, माया और लोभमें भी जानना चाहिये । कपायरहित
जीवोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल
अन्तमुर्हृत है । इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका भी काल जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—चारों कपायोंमें मोहका जघन्य अनुभाग अपने अपने ज्ञयके अन्तिम समयमें
होता है, अतः इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा प्रत्येक
कपायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत होनेसे इनमें अजघन्य अनुभागका
जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत कहा है । उपशान्तकपायका भी जघन्य काल
एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत है, अतः अकपायी जीवोंमें जघन्य और अजघन्य अनु-
भागका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत कहा है ।

§ ५२ ज्ञानकी अपेक्षा मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग-
विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुर्हृत है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुर्हृत

जहपण्याणु० जह० एगस०, उक्क० एककतीसं सागरा० देसूणाभि । अम० ज०
 एगस०, उक्क० तेतीसं सामरो० देसूणाभि । आमिणि०—मुद०—ओहि० माह०
 जहपण्याणु० जहपण्याणुक्क० एगस० । अम० ज० अंतोसु०, उक्क० द्वासहिसागरो०
 सादिरेयाणि । मणपज्ज० मोह० जहपण्याणु० जहपण्याणुक्क० एगस० । अम० ज०
 अंतोसु०, उक्क० पुम्बकोडी देसूणा ।

§ ५३ संनमाणु० संनदेसु मोह० ज० जहपण्याणुक्क० एगस० । अम० ज०
 अंतोसु०, उक्क० पुम्बकोडी देसूणा । एषं सामाइय-धेयो० संनदार्ण । णपरि अम०
 जह० एगस० । परिहार० मोह० जहपण्याणु० ज० अंतोसु०, उक्क० पुम्बकोडी

और उत्कृष्ट काल अस्तव्यास लोक है । विमज्जज्ञानियों माहनीय कर्मकी अपन्य अनुमागविमत्ति
 का अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम इक्कीस सागर है । अजपन्य अनुमाग
 विमत्ति का अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । आमिनिवोधिक
 ज्ञानी, मुत्तज्जानी और अविमज्जज्ञानियों मोहनीयकर्मकी अपन्य अनुमागविमत्तिका अपन्य और
 उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजपन्य अनुमागविमत्तिका अपन्य काल अन्तमु हुत और उत्कृष्ट
 काल कुछ अधिक स्थितसत सागर है । मनापययज्जानियों माहनीयकर्मकी अपन्य अनुमागविमत्ति का
 अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजपन्य अनुमागविमत्तिका अपन्य काल अन्तमु हुत
 और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ—सोमो अज्ञानों एक बार अपन्य या अजपन्य अनुमाग होन पर यह कर्मसे
 कम अन्तमु हुत अवश्य रहता है । इसीसे मत्थज्जानी और मुत्तज्जानी जीवोंमें अपन्य अनुमागका
 अपन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजपन्य अनुमागका अपन्य काल अन्तमु हुत कहा है । इनमें
 अजपन्य अनुमागका उत्कृष्ट काल अस्तव्यास लोकप्रमाण जिस प्रकार दन्धेन्द्रियोंमें पठित करके
 पतसा जाते हैं वैसे ही यहाँ भी पठित कर लेना चाहिए । जो मनुष्य अपन्य अनुमागको करके
 अन्ततर नीचे उतर कर बजाविधि एक समय तक विमज्जज्ञानमें अपन्य अनुमागकं साथ रह कर
 अजपन्य अनुमाग कर लेता है उसके विमज्जज्ञानमें अपन्य अनुमाग एक समय तक उपलब्ध होता
 है इसलिए विमज्जज्ञानमें अपन्य अनुमागका अपन्य काल एक समय कहा है । तथा जो अपन्य
 अनुमागके साथ उपरिम-उपरिम नवपैयकमें उत्पन्न होता है उसके विमज्जज्ञानमें कुछ कम
 इक्कीस सागर का एक अपन्य अनुमाग देखा जाता है इसलिए इसका उत्कृष्ट काल एक प्रमाण
 कहा है । इसमें अजपन्य अनुमागका अपन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस
 सागर है यह स्पष्ट ही है । मात्र अजपन्य अनुमागका यह एक समय काल पकाराका पठित करना
 चाहिए । आमिनिवोधिक आदि चारों ज्ञानोंमें अथक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्मान सम्मभ होमेसे इनमें
 अपन्य अनुमागका अपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इनमें अजपन्य अनुमागका
 अपन्य काल अन्तमु हुत और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५३ संयमकी अपेक्षा संयतोंमें मोहनीयकर्मकी अपन्य अनुमागविमत्तिका अपन्य और
 उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजपन्य अनुमागविमत्तिका अपन्य काल अन्तमु हुत और
 उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि है । इसी प्रकार सामयिक और वेरोपस्थापना संयतोंमें जानना चाहिये ।
 किन्तु इतनी विशेषता है कि अजपन्य अनुमागविमत्तिका अपन्य काल एक समय है । परिहार
 विमुत्तिर्लवोंमें मोहनीयकर्मकी अपन्य अनुमागविमत्तिका अपन्य काल अन्तमु हुत और उत्कृष्ट

देसूणा । एवमजहरणं पि । सुह्रुमसांपरायि० मोह० जहरणाणु० जहरणुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । जहाक्त्वाद० अकसायभंगो । संजदासंजद० मोह० जहरणाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पुन्वकोटी देसूणा । एवमजहरणं पि । असंजद० मोह० जहणणाणु० जहरणुक० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंवेज्जा लोगा ।

§ ५४. दंसणाणु० चक्खु० मोह० जहरणाणु० जहरणुक० एगस० । अज० ज० खुदाभवग्गहणं, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि । अचक्खु० मोह० ज० जहरणुक० एगस० । अजं० ज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो । ओहि-दंसणी० ओहिणाणिभंगो ।

काल कुछ कम पूर्वकोटी है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल भी जानना चाहिये। सूक्ष्मसाम्परायिक सयतोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। यथाख्यातसयतोंमें कपायरहित जीवोंके समान भग होता है। सयतासयतोंमें मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटी है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका भी काल जानना चाहिए। असयतोंमें मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है और अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त तथा उत्कृष्ट काल असख्यात लोक है।

विशेषार्थ—यहाँ जिन सयतोंमें च्पकश्रेणी सम्भव है उनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। कारण कि उस उस सयमके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। मात्र सयतोंके सूक्ष्मसाम्यरायके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है। सूक्ष्मसाम्यरायसयम, सामायिकसंयम और छेदोपस्थापनासयमका जघन्य काल एक समय होनेसे इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय कहा है। इन सबमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। यथाख्यातसयम अकपायी जीवोंके होता है, इसलिए इसमें कालका विचार अकपायी जीवोंके समान जाननेकी सूचना की है। अब शेष तीन रहे परिहारविशुद्धिसयम, संयमासयम और असयम सो इनमें जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा है, क्योंकि इनका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है। तथा इनका उत्कृष्ट काल प्रारम्भके दोका कुछ कम पूर्वकोटी होनेसे उनमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है और असयतोंमें अजघन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार मत्यज्ञानियोंमें असख्यात लोकप्रमाण घटित करके वतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिए।

§ ५४ दर्शनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनियोंमें माहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल सुद्रुभवप्रहण और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है। अचक्षुदर्शनियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अनादि अनन्त और अनादि सान्त है। अविधदर्शनवालोंमें अविधज्ञानियोंके समान भङ्ग होता है।

§ ५५ खेस्ताणु० किण्व-पील-काड० मोह० ज० जह० एगस०, उक०
 अंतोमु० । अन० न० एगस०, उक० तेतीस-सत्तारस-सत्तसागरोपमाणि सादिरेयाणि ।
 तेठ०-यम्म० मोह० जहण्णाणु० न० अंतोमु०, उक० वे-अट्टारससागरो० सादि
 रेयाणि । अन० न० अंतोमु०, उक० वे-अट्टारससागरो० सादिरयाणि । सुक० मोह०
 न० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक० तेतीसं सागरो० सादिरेयाणि ।
 § ५६ मयिपाणु० मवसिं ओपं । ममवसिं मोह० ज० जहण्णुक० अंतोमु० ।
 मज० अ० अंतोमु०, उक० मसंसेत्ता सोगा ।

विशेषार्थ-इपक सूक्ष्मात्परायमें भी बहुरांन और अबहुरांन होते हैं इसलिय हममें
 जपन्य अनुभागविमत्तिका जपन्य और उकट्ट काल एक समय कहा है । बहुरांनका जपन्य काल
 हट्टमवमइय प्रमाण और उकट्ट काल दो हजार सागर है, अत इसमें अजपन्य अनुभागका
 जपन्य और उकट्ट काल एकप्रमाण कहा है । अबहुरांन मज्ज और अमध्य होनेके होनेसे उसमें
 अजपन्य अनुभागका जपन्य और उकट्ट काल अमध्योंके अन्तर्दि भन्त और मध्योंके अन्तर्दि
 सन्त कहा है । अबधिरांनवाम्भोके मज्ज अबधिरांनानी जीवोंके समान है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५५ लेखाकी अपेक्षा कृप्य, नील और अपोत लेखात्तोलोंमें मोहनीयकर्मकी जपन्य
 अनुभागविमत्तिका जपन्य काल एक समय और उकट्ट काल अन्तमुहूर्त है । अजपन्य अनु-
 भागविमत्तिका जपन्य काल एक समय और उकट्ट काल क्रमः कुछ अधिक तेतीस सागर,
 कुछ अधिक सत्तर सागर और कुछ अधिक साठ सागर है । वेखलेखा और पचलेखात्तोलोंमें
 मोहनीयकर्मकी जपन्य अनुभागविमत्तिका जपन्य काल अन्तमुहूर्त और उकट्ट काल क्रमः
 कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठार सागर है । अजपन्य अनुभागविमत्ति-
 का जपन्य काल अन्तमुहूर्त और उकट्ट काल क्रमः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक
 अठार सागर है । सुकलेखात्तोलोंमें मोहनीयकर्मकी जपन्य अनुभागविमत्तिका जपन्य और
 उकट्ट काल एक समय है । अजपन्य अनुभागविमत्तिका जपन्य काल अन्तमुहूर्त और उकट्ट
 काल कुछ अधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ-इत्यादि तीन लेखात्तोलोंमें जपन्य अनुभागका जपन्य और उकट्ट काल तथा
 अजपन्य अनुभागका जपन्य काल परेन्निब की तरह पठित कर लेना चाहिये । तथा अजपन्य
 अनुभागका उकट्ट काल प्रत्येक लेखाके उकट्ट काल की तरह है यह स्पष्ट ही है । एक जीव की
 अपेक्षा वेखलेखा और पचलेखाका गितना जपन्य और उकट्ट काल है इतना ही उनमें जपन्य
 और अजपन्य अनुभागका जपन्य और उकट्ट काल कहा है । सुकलेखामें इपक सूक्ष्मात्परा-
 यिकके अन्तिम समयमें मोहका जपन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जपन्य और उकट्ट काल
 एक समय कहा है तथा अजपन्य अनुभागका जपन्य और उकट्ट काल सुकलेखाके एक जीव
 की अपेक्षा काल के अन्तमें रहकर कहा है ।

§ ५६ मध्यकी अपेक्षा मध्योंके ओपके समान मज्ज है । अमध्योंमें मोहनीयकर्म की
 जपन्य अनुभागविमत्तिका जपन्य और उकट्ट काल अन्तमुहूर्त है । तथा अजपन्य अनुभाग-
 विमत्तिका जपन्य काल अन्तमुहूर्त और उकट्ट काल अंतस्पात लाक है ।

विशेषार्थ-आषाढे दिस प्रकार कालका पठित करके बतला जाये हैं इसी प्रकार मध्योंमें

§ ५७. सम्मत्ताणु० सम्मादिटी० मोह० ज० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० णवणउइसागरो० सादिरेयाणि व्वासट्टिसागरो० सादिरेयाणि वा । खइय० मोह० जह० जहणुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । वेदग० मोह० जह० जहणुक्क० अतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० व्वासट्टिसागरोवमाणि । उवसम० मोह० जहणुक्क० जहणुक्क० उक्क० अंतोमु० । अज० जहणुक्क० अतोमु० । सासण० मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० छ आवलियाओ । एवमजहणुक्कं पि । सम्मामि० मोह० ज० जहणुक्क० अंतोमु० । एवमजहणुक्कं पि । मिच्छादिटी० मोह० ज० ज० उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा ।

घटित कर लेना चाहिए। एकेन्द्रियोंमें जघन्य अनुभाग होनेके बाद वह अन्तर्मुहूर्त काल तक अवश्य रहता है, इसलिए इसका अभव्योंमें जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इनमें अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक प्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५७. सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक नित्यानवे सागर है। अथवा कुछ अधिक छियासठ सागर है। चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छियासठ सागर है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छ आवलिका है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल भी है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अजघन्य अनुभागविभक्तिका भी काल है। मिथ्यादृष्टियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असख्यात लोक है।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि और चायिकसम्यग्दृष्टिके क्षणिक सूक्ष्मसांप्रयायिकके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल मोटे तौरपर दोनोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी तरह जानना चाहिए। वेदकसम्यक्त्वमें दोवार उपशमश्रेणीपर चढकर, उससे उतरकर दर्शन-मोहनीयका क्षय करके कृतकृत्यभावको प्राप्त हुए जीवके प्रथम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उपशमसम्यक्त्वमें दुबारा उपशम श्रेणीपर चढकर ग्यारहवें गुणस्थानमें वर्तमान जीवके जघन्य अनुभाग होता है, अतः उसका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। और अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल

§ ५८ सण्णियाणुनादेण सण्णिसु मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस० । मम० म० सुहामवमार्हणं, उक्क० सागरोदमसदपुपच । असण्णि० मोह० ज० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । मज० ज० एगसमआं, उक्क० असत्वेज्जा खोगा ।

§ ५९ आहारीसु मोह० ज० जहण्णुक्क० एगस० । मज० ज० सुहामवमार्हणं क्खिमपूण, उक्क० अणुस्स असत्वे० भागो असत्वेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । मणाहारि० कम्महपमगो ।

एवं जहण्णओ कालाणुगमो समतो ।

§ ६० अंतराणुगमेण दुविहमंतरं—महण्णुक्कस्स च । उक्कस्स पपदं । दुविहो विहो सो—ओपे० आदेसे० । ओपे० मोह० उक्कस्साणुभागमंतरं कथचिरं ? ज० अंतोसु०, उक्क० अर्णतकालमसत्त्वज्जा पोमत्तपरियट्ठा । मणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोसुहुत्तं ।

माट वीरपर दोनोँ सन्धक्लोके जपन्य और उक्कट कालकी तरह जानना चाहिए । सात्वात्मसन्धक्त्व और सन्धमिध्यात्मका जितना जपन्य और उक्कट काल है उतना ही तन्में जपन्य और अजपन्य अनुभागका जपन्य और उक्कट काल होता है । जपन्य अनुभागका जपन्य और उक्कट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे मिध्यादृष्टिके उक्कट जपन्य और उक्कट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा मिध्यात्ममें अजपन्य अनुभाग कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक असंख्यात कालप्रमाण काल तक रहता है वह देखकर यहाँ वह एक प्रमाण कहा है ।

§ ५८. संक्षिप्तकी अपवादा संक्षिप्तोंमें मोहनीयकर्मकी जपन्य अनुभागविभक्तिका जपन्य और उक्कट काल एक समय है । तथा अजपन्य अनुभागविभक्तिका जपन्य काल भुवमकमहस्य और उक्कट काल सौ पूवक्त्व सागर है । असंक्षिप्तोंमें मोहनीयकर्मकी जपन्य अनुभागविभक्तिका जपन्य काल एक समय है और उक्कट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजपन्य अनुभागविभक्तिका जपन्य काल एक समय है और उक्कट काल असंख्यात लोक है ।

विशेषार्थ—संक्षिप्तके अपवाद सूत्रसाम्प्रदाय गुह्यत्वान् सम्भव होनेसे इसमें जपन्य अनुभागका जपन्य और उक्कट काल एक समय कहा है । तथा संक्षिप्तोंका जपन्य काल भुवमकमहस्यप्रमाण और उक्कट काल सौ सागर पूवक्त्व होनेसे इसमें अजपन्य अनुभागका उक्कट प्रमाण काल कहा है । असंक्षिप्तोंमें जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें काल बंदिठ करके बतला जाये है उस प्रकार पठित कर लेना चाहिए ।

§ ५९. आहारकमें मोहनीयकर्मकी जपन्य अनुभागविभक्तिका जपन्य और उक्कट काल एक समय है । अजपन्य अनुभागविभक्तिका जपन्य काल तीन समय कम भुवमकमहस्य और उक्कट काल अंशुलाका असंख्यातका मत्ता है जो कि असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण है । अन्तहारकमें कार्यकालके समान भंग होता है ।

इस प्रकार जपन्य कालाणुगम समाप्त हुआ ।

§ ६० अन्तराणुगमकी अपवादा अन्तर दो प्रकारका है—जपन्य और उक्कट । यहाँ उक्कटका प्रकार है । इसकी अपवादा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आन्तरनिर्देश । ओपकी अपवादा मोहनीय कर्मके उक्कट अनुभागका अन्तर कितना है ? जपन्य अन्तर्मुहूर्त और उक्कट अन्तर् काल है । वह अन्तर् काल असंख्यात पुराणपरार्थत्वप्रमाण है । अनुक्कट अणु-

एवं तिरिक्खोघं ।

§ ६१. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्कस्साणुभागमंतरं केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० देसूणाणि । अणुक० ओघ । एवं सव्वणेरइयाणं । णवरि सग-सगट्टिदी देसूणा । पचिंदियतिरिक्खतिएसु मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वफोडि-पुधत्तं । अणुक० ओघं । मणुस्सतियस्स पचिंदियतिरिक्खतियभंगो । पचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज० उक्क० अणुक० णत्थि अंतरं । एवं मणुस्सअपज्ज० आणदादि जाव सव्वट्ट-सिद्धि त्ति । देवेसु मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अट्टारससागरो० सादिरेयाणि । अणुक० ओघं । एवं भवणादि जाव सहस्सार त्ति । णवरि सग-सगट्टिदी वत्त्वा ।

भागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोमे जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इस प्रकरणमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागके अन्तरकालका विचार किया गया है । जैसे एक सञ्जी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिने उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके उसका घात कर दिया । तथा पुन अन्तर्मुहूर्तमे उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किया । इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है । और यदि वह एकेन्द्रिय पर्यायमे उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनन्त कालतक एकेन्द्रिय ही रहा आवे और उसके बाद सञ्जी पञ्चेन्द्रिय होकर उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके उत्कृष्ट अनुभागवाला हो जाय तो उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर काल असख्यात पुद्गलपरावर्तन होता है । तथा अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं उपलब्ध होता ।

§ ६१ आदेशकी अपेक्षा नारकियोमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार सब नारकियोमें अन्तर काल होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है । पचेन्द्रियतिर्यञ्च, पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी इन तीनोंमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघकी तरह है । सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोमे पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकके समान भङ्ग है । पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोमे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तको और आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे भी समझ लेना चाहिए । सामान्य = वोंमे मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अठाहर सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार भवन-वासी से लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमे जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि प्रत्येकमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति लेनी चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे जो अन्तर काल घटित करके बतलाया है उसी प्रकार सामान्य नारकी, सातों पृथिवियोंके नारकी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक और मनुष्यत्रिकमे घटित कर लेना चाहिए । मात्र उत्कृष्ट अनुभागके उत्कृष्ट अन्तरमे विशेषता है । वात यह है कि इन सब मार्गणाओकी स्थिति भिन्न भिन्न है, इसलिए जहाँ जो स्थिति हो उससे कुछ कम वहाँ उत्कृष्ट

§ ६२. इंदियाणु० पृथिवी-बादर-सुहृम-यज्जत्तापज्जत्तपसु सव्यभिगच्छिदियपज्जत्तापज्जत्तपसु च मोह० उक्तस्ताणुक्तस्ताणुभागंतरं गत्व । पंचिदिय-पंचि० पज्जत्तपसु मोह० उक्त० च० अंतोसु०, उक्त० सागरोचमसहस्ताणि पुम्बकोटिपुपत्तेणम्भियाणि सागरोचमसदपुपत्तं । अणुक्त० ओषं । पंचिदियअपज्जत्त० मोह० उक्तस्ताणुक्तस्त० गत्व अंतरं ।

§ ६३. कायाणु० पंचणं कायाणमेइंदियमंगो । तस-तसपज्जत्तपसु मोह० उक्त० केव० ? जहण्णेण अंतोसु०, उक्त० वेसागरोचमसहस्ताणि पुम्बकोटिपुपत्तेणम्भियाणि वेसागरोचमसहस्ताणि । अणुक्त० ओषं । तसअपज्जत्त० पंचिदियअपज्जत्तमंगो ।

§ ६४. जोगाणु० पंचमण०-पंचवचि०-अयमोगि०-ओराहि०-ओराहियमिस्त०-वेचभिय०-वेचभियमिस्त०-कम्मइय०-आहार०-आहारमिस्त० उक्त० अणुक्त० गत्व अंतरं । जवरि कायमोगीसु अणुक्त० ओषमंगो ।

अनुभागका उक्त अन्तर कर्त्तना चाहिय । पञ्चेन्द्रियवर्त्य अपर्थात् अर्थात् मार्गशास्त्रोमे अग्य पर्यायसे उक्त अनुमातृ सेकर आता है, जहाँ उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिय इनमें उक्त और अनुक्त अनुभागके अन्तरका नियम किया है । वेदोंमें और सहस्रार कस्य तकके वेदोंमें नारकियोंके समान स्पष्टीकरण है ।

§ ६२. इन्द्रियकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, उनके सभी वापर, सूक्ष्म, प्याप्त और अपर्थात् एकेन्द्रियोंमें तथा विकसेन्द्रियोंमें और उनके सभी पर्याप्त और अपर्थात् जीवोंमें माहनीयकर्मके उक्त और अनुक्त अनुभागका अन्तर नहीं है । पंचेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके उक्त अनुभागका अन्तर अपन्यसे अन्तर्मुहृत है और उक्तसे पञ्चेन्द्रियोंमें पूर्वकति पूर्वकत्वसे अधिक एक हजार सागर है और पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें सी प्रथमकसागर है । अनुक्त अनुभागका अन्तर ओषके समान है । पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके उक्त और अनुक्त अनुभागका अन्तर नहीं है ।

विशुपार्य-एकेन्द्रिय, विकसेन्द्रिय और उनके मेह-ममदोंमें तथा पञ्चेन्द्रिय अपर्थात्कोंमें वही पर्यायसे उक्त अनुमातृकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिय जहाँ भी उक्त और अनुक्त अनुभागके अन्तरका नियम किया है । पञ्चेन्द्रियकोंमें नारकियोंके समान स्पष्टीकरण कर लेना चाहिये । मात्र इनकी कावस्थिति भिन्न होनेसे इनमें उक्त अनुभागका उक्त अन्तर कुछ कम अपनी अपनी अवस्थितिप्रमाण कर्त्तना चाहिये । इसी प्रकार आगे भी मार्गशास्त्रोंमें पचासम्भ अन्तरकस्य पठित कर लेना चाहिये । जहाँ विशुपता होगी उसका स्पष्टीकरण करेंगे ।

§ ६३. कावकी अपेक्षा पौषों स्थावरकावोंमें पञ्चेन्द्रियके समान मज्ज हावा है । तस और तसपर्याप्तकोंमें मोहनीय कर्मके उक्त अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहृत है और उक्त अन्तर तसोंमें पूर्वकतिपूर्वकत्वसे अधिक वा हजार सागर और तसपर्याप्तकोंमें केवल वा हजार सागर है । अनुक्त अनुभागका अन्तर ओषके समान है । तस अपर्थात्कोंमें पञ्चेन्द्रिय अपर्थात्कोंके समान मज्ज हावा है ।

§ ६४. योगकी अपेक्षा पौषों मन्त्र्यागी पौषों वचन्यागी, सामान्य कायवागी और-रिक्तमयोगी और-रिक्तमिक्तमयोगी वैश्वियिककाययोगी वैश्वियिकमिक्तकायवागी कर्मक-कायवागी आहारकमकायवागी और आहारकमिक्तकायवागीमें उक्त और अनुक्त अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी विशेषता है कि काययोगियोंमें अनुक्त अनुभागका अन्तर

§ ६५. वेदाणु० इत्थिवेदणु० मोह० उक्० केव० ? ज० अंतोमु०, उक्० पलिदोवमसदपुधत्तं । अणुक्० जहणुक्० ओघं । पुरिसवेद० मोह० उक्० केव० ? जह० अंतोमु०, उक्० सागरोवमसदपुधत्तं । अणुक्० जहणुक्० ओघं । णत्तुंस० मोह० उक्० ज० अंतोमु०, उक्० अणतकालमसखेज्जा पोगल्परियट्ठा । अणुक्० जहणुक्० ओघ । अवगदवेदे० उक्०-अणुक्० अणुभागविहत्तियाणं णत्थि अंतं ।

§ ६६. कसायाणुगादेण कोध-माण-माया-लोभकसाइंसु मोह० उक्०साणुक्०स्स० णत्थि अतर । एवमकसाइण ।

§ ६७. णाणाणु० मदिअण्णाणि-सुटअण्णाणीमु मोह० उक्० केव० ? ज० अंतोमु०, उक्० अणतकालमसखेज्जा पोगल्परियट्ठा । अणुक्० जहणुक्० ओघं ।

श्रोत्रके समान है ।

विशेषार्थ—एक श्रोत्रके रहते हुए दो चार उत्कृष्ट या अनुकृष्ट अनुभाग सम्भव नहीं हैं, इसलिए इनमें अन्तरका निषेध किया है । मात्र काययोगमें अनुकृष्ट अनुभागकी प्राप्ति दो बार सम्भव होनेसे इसमें अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर श्रोत्रके समान बन जाता है ।

§ ६५ वेदकी अपेक्षा स्त्रीवेदियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ प्रथक्त्वपत्त्य है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर श्रोत्रके समान है । पुरुषवेदियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ प्रथक्त्व सागर है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर श्रोत्रके समान है । नपुंसकवेदियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । तथा अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर श्रोत्रके समान है । अवगतवेदियोंमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तियाँ जीवोंका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणि पर चढते समय अपगतवेद अवस्थामें प्रथम अनुभागकाण्डकके रहते हुए उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति होती है । यत् अपगतवेदी जीवके इस अवस्थाकी प्राप्ति दो बार सम्भव नहीं है, इसलिए अपगतवेदी जीवके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागके अन्तरका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६६ कपायकी अपेक्षा, क्रोध, मान, माया और लोभ कपायवाले जीवोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार कपायरहित जीवोंमें भी जानना चाहिये ।

§ ६७ ज्ञानकी अपेक्षा मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । वह अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट

विहंगणाणीष्ट मोह० उक्त० केव० ? ज० अंतोमु०, उक्त० तेचीस सागरो० देखणाणि ।
अपुक्त० जहणुक्त० ओष । आमिणि०-सुद०-ओहि०-मजपज्ज० उक्तसापुक्तस्स०
पत्ति अंतर ।

१ ६८ संजमापु० संजद-सामाहय० जेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-महा
क्खाम्म०-संनदासजद० मोह० उक्तसापुक्तस्स० गत्ति अंतर । असंजद० मोह० उक्त०
अह० अंतोमुहु०, उक्त० अणत्तकालमसंसेजा पोग्गलपरियट्ठा । अपुक्त० जहणुक्त० ओष ।

१ ६९ वंसपापु० पक्खु० मोह० उक्त० ज० अंतोमु०, उक्त० पेसागरोबम
सहस्ताणि देखणाणि । अपुक्त० अहणुक्त० ओष । अचवसु० मोह० उक्त० ज० अंतोमु०,
उक्त० अणत्तकालमसंसेजा पोग्गलपरियट्ठा । अपुक्त० जहणुक्त० ओष । ओहि०-सपी०
ओहिणाणिमंगो ।

अन्तर आपकी तरह है । विहंगणानियोंमें माहनीयकर्मके उक्त अंशमागका अंतर कितना है ?
अपुक्त अंतर अन्तमुहूर्त और उक्त अन्तर कुछ कम लेखीस मागार है । अनुक्त अंशमागका
अपुक्त और उक्त अन्तर आपकी तरह है । आमिनिवापिकहानी सुतछानी अबधिहानी और
मनःपर्ययज्ञानियोंमें उक्त और अनुक्त अंशमागका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ-उक्त अंशमागकी सत्तावासा जो मिथ्यादृष्टि ब्रह्मसम्पत्तको प्राप्त करता
है उसके आमिनिवापिक आदि तीन ज्ञानोंमें उक्त अंशमाग हाता है । तथा जो ब्रह्मसम्पत्तदृष्टि
प्रमत्तसंयत मनःपर्ययज्ञानके प्राप्त करता है उसके मनःपर्ययज्ञानमें उक्त अंशमाग हाता है,
इसलिए इनमें उक्त और अनुक्त अंशमागका अन्तर सम्भव न होनेसे इसका निषेध किया
है । शेष कथम सुगम है ।

१ ७० संभमकी अपेक्षा संयत सामयिकसंयत ज्ञेयोपस्थापनासंयत, परिहारविद्युत्-
संयत सुखसाम्यरापसंयत ब्रह्मस्वातसंयत और संयतासंयतोंमें मोहनीयकर्मके उक्त और
अनुक्त अंशमागविमल्लिखाले जीवोंका अन्तर नहीं है । असंयतोंमें माहनीयकर्मके उक्त अंश
मागका अपुक्त अन्तर अन्तमुहूर्त है और उक्त अन्तर अन्तकाल है जो कि असंयतात
पुद्गलपरिवर्तनप्रमास है । अनुक्त अंशमागका अपुक्त और उक्त अन्तर आपके समान है ।

विशेषार्थ-संयत आदि जीवोंके उक्त अंशमागके स्वमित्तका जा निर्देश किया है उसे
देखनेसे विदित होता है कि इनमें भी उक्त और अनुक्त अंशमागका अन्तर सम्भव नहीं है,
इसलिए इसका निषेध किया है । मात्र असंयत जीवोंके यह बन जाता है जिसका निर्देश मूलमें
किया ही है ।

१ ७१ वर्तनीकी अपेक्षा अक्षुवर्तनवासे जीवोंमें मोहनीयकर्मके उक्त अंशमागका अपुक्त
अन्तर अन्तमुहूर्त है और उक्त अंतर कुछ कम हो हजार सागर है । अनुक्त अंशमागका
अपुक्त और उक्त अन्तर आपके समान है । अक्षुवर्तनवासे जीवोंमें मोहनीयकर्मके उक्त
अंशमागका अपुक्त अन्तमुहूर्त है और उक्त अन्तर अन्तकाल है जो कि असंयतात पुद्गल
परिवर्तनप्रमास है । अनुक्त अंशमागका अपुक्त और उक्त अन्तर आपके समान है । अबधि-
वर्तनवासे अबधिप्रतिबोधके समान भंग होता है ।

§ ७०. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरो० देम्णाणि । अणुक्क० जहणुक्क० ओघं । तेउ०-पम्म० मोह० उक्क० ज० अतोमु०, उक्क० वे-अट्टारसमागरो० सादिरेयाणि । अणुक्क० जहणुक्क० ओघं । मृक्क० मोह० उक्क०स्साणुक्क०स्सा० णत्थि अतर ।

§ ७१. भवियाणु० भवमि० मोह० उक्क० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अणतकाल-मसंखेज्जा पोगगलपरियट्ठा । अणुक्क० जहणुक्क० ओघं । अभवसि०-भवमिद्वियाणमोयं-भगो ।

§ ७२. सम्मत्ताणु० सम्मादिट्ठि-खइय०-वेदय०-उयसम०-सासण०-सम्माभि० मोह० उक्क०स्साणुक्क०स्स० णत्थि अंतरं । मिच्छादिट्ठीमृ भवसिद्वियभंगो ।

§ ७३. सण्णियाणु० सण्णीमृ मोह० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सागरोवमसद-पुघत्तं । अणुक्क० जहणुक्क० ओघं । असण्णीमृ मोह० उक्क०स्साणुक्क०स्स० णत्थि अंतरं ।

§ ७४. आहाराणु० आहारीमृ मोह० उक्क० ज० अतोमु०, उक्क० अंगुलस्स

§ ७०. लेश्याकी अपेक्षा कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम तेतीस सागर, कुछ कम सतरह सागर और कुछ कम सात सागर है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है । तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोमे मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ अधिक दो सागर और कुछ अधिक अठारह सागर है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है । शुक्लेश्यावालोमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है ।

§ ७१. भव्यत्वकी अपेक्षा भव्योंमे मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर्काल है जो असत्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है । अभव्योंमे भव्योंके समान भग होता है ।

§ ७२. सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टियोंमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है । मिध्यादृष्टियोंमे भव्योंके समान भग होता है ।

§ ७३. सज्ञित्वकी अपेक्षा सज्ञियोंमे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर सौ पृथक्त्वसागर है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है । असज्ञी जीवोंमे मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं है ।

§ ७४. आहारकी अपेक्षा आहारकोंमे मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर

मसंसे० भागा असंसेजासंसेजाओ ओसपिणि-मसपिणीमा । अणुक० महणुक०
मोपं । अणाहारि० मोह० एकस्ताणुवस्त० गत्सि अंतरं ।

एवमुक्तस्ताणुमार्गवराणुमो समतो ।

§ ७५ महणुस्य पयर्दं । दुबिहो णिहोसो—भापे० आदेस० । ओपेण मोह०
[महणु] महणुकाणुभागविहारीयणं गत्सि अंतरं । एवं पिरयमोप पदमपुदवि-सम्ब-
र्षविदियतिरिक्क-सम्बमणुस० देपोपं भवण०-बाण० सोहम्मादि भाव० सम्पदसिद्धि ति ।

§ ७६ आदेसेण भेरुपसु विदियादि भाव सधमि ति मोह० महणुणाणु० ज०
अंतोसु०, उक० सग-सणुकस्सट्ठिदी देसुण्ण । अज० ज० अंतोसु०, उक० सग-सणुकस्स

अन्तर्गुहृतं है और एकद्वय अन्तर अंगुलके असंख्यातर्षे माग है, जो असंख्यातासंख्यात अक्ष-
संघिही और एकसंघिहीकासके बराबर है । अनुकृत अनुमागका जपन्य और एकद्वय अन्तर
ओपके समान है । अनन्तरपरिचोमं मोहनीय कर्मके एकद्वय और अनुकृत अनुमागको लेकर
अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—शुद्धमेरुया, सब सम्यक्त्व, असंघी और अनन्तरक मार्ग्याओमें एकद्वय अनु-
मागकल्प नहीं होता, इसलिये इन्में अन्तरक नियेय किया है । शेष कवन सुगम है ।

इस प्रकार एकद्वय अनुमागका अन्तरगुणम समाप्त हुआ ।

§ ७७ अब अपत्यका प्रकार है । निर्दोरा दो प्रकारका है—ओपतिर्दोरा और आवेश-
निर्दोरा । आपकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके जपन्य और अजपन्य अनुमागविमल्लाले जीवोंका
अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य नारकी, पक्षी पृथिवीके नारकी सब पञ्चेन्द्रिय विषय,
सब मनुष्य, सामान्य देव और भवन्वासी, अन्तर तथा सीपर्म स्वगसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके
देशोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मका जपन्य अनुमाग अपत्यकेसिद्धे इच्छे गुण्यस्थानके अन्तिम
समयमें होता है । उसके दूसरे समयमें इस जीवके मोहनीयका सर्वथा अभाव हो जाता है,
अतः ओपसे जपन्य और अजपन्य अनुमागका अन्तर नहीं कहा है । आगे आवेशकी अपेक्षासे
भी अिन अिन मार्ग्याओमें एक अक्षयामे जपन्य अनुमाग होता है इन्में अन्तरकालका
अभाव जानना चाहिए । जैसे कि तीन प्रकारके मनुष्योंमें । सामान्य नारकी, पक्षी नरकक
नारकी सामान्य देव, भवन्वासी और अन्तरमें जो इतसमुत्पत्तिकर्मबाला असंघी पञ्चेन्द्रिय
जन्म लेता है उसके एक एक जपन्य अनुमागकी सत्ता रहती है अब तक वह उसे बढ़ता नहीं
है । इसी प्रकार जो इतसमुत्पत्तिकर्मबाला एकन्द्रिय जीव पञ्चेन्द्रियविषय और मनुष्य
अपत्याममें जन्म लेता है उसके जपन्य अनुमाग होता है । इस अजपन्य अनुमागमें बुद्धि हानि पर
पुनः इन पर्ययोमें इसी जीवके जपन्य अनुमाग नहीं हो सकता अतः इन्में शान्ते प्रकारके अनु-
मागक अन्तर नहीं कहा है । तथा हुआप उपरमनेसि पर कहकर बहोसे गिरकर पीछे दर्शनमाह
धीपका जपन्य करके जो मनुष्य सीपर्मविषयमें उत्पन्न होता है उसके जपन्य अनुमाग होता है ।
वह जपन्य अनुमाग बावजीवन रहता है, अतः सीपर्मविषयमें भी अन्तरकाल नहीं कहा है ।

§ ७८ आवेशकी अपेक्षा मार्गियोंमें दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तक मोहनीय
कर्मके जपन्य अनुमागका जपन्य अन्तर अन्तर्गुहृतं है और एकद्वय अन्तर बुद्ध कर्म अपनी अपनी

द्विदी देसणा । एवं जोदिसिय० । तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।

§ ७७. इंदियाणु० एइंदिय०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाणु० जह० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । णवरि अपज्जत्तएसु अंतोमु० । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । सुहुमेइंदियपज्ज०-वादरेइंदिय वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगल्लिंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-पच्चिदियअपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । पच्चिदिय-पच्चिदियपज्जत्तएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं ।

§ ७८. कायाणु० पुढवि० आउ०-तेउ० [वाउ०-] वादरं-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-

उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । इसी प्रकार ज्योतिषी देवोमे जानना चाहिये । तिर्यञ्चोमे मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक प्रमाण है । अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है ।

विशयार्थ-दूसरे आदि नरकमे जन्म लेकर जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धी चतुष्कका क्षण कर लेता है उसके जघन्य अनुभाग होता है । अन्तमुहूर्तके पश्चात् सम्यक्त्वसे न्युत होकर यदि वह जीव पुन मिथ्यादृष्टि हो जाता है तो अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त होता है । और अन्तमुहूर्त तक अजघन्य अनुभागवाला रहकर सम्यग्दृष्टि होकर यदि पुनः अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके जघन्य अनुभागवाला हो जाता है तो जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त होता है । इसी प्रकार उत्कृष्ट अन्तर भी घटा लेना चाहिये । तिर्यञ्चोमे कोई सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अजघन्य अनुभागका घात करके जघन्य अनुभागवाला हुआ । यत उसने यह जघन्य अनुभाग अन्तमुहूर्तसे अधिक काल तक नहीं रहता, अत अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । और यदि अन्तमुहूर्तके बाद उस अजघन्य अनुभागका घात करके पुन जघन्य अनुभागवाला होजाता है तो जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त होनेसे वह उक्त प्रमाण कहा है । तथा परिणामोंके अनुसार असख्यात लोक कालका अन्तर प्राप्त होनेसे उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा है ।

§ ७७ इन्द्रियकी अपेक्षा एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोमे मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक प्रमाण है । इतनी विशेषता है कि अपर्याप्तकोमे उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । तथा इन सबके अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, समस्त विकलेन्द्रिय, समस्त विकलेन्द्रिय पर्याप्तक, समस्त विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक और पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोमे मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है । पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्तकोमे मोहनीयकर्मके जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है ।

§ ७८ कायकी अपेक्षा पृथिवीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय तथा इनके वादर,

१ ता० प्रती सखेज्जा इति पाठः । २ ता० प्रती तेउ० [वाउ०] वादर०, सा० प्रती तेउ० वादर० इति पाठः ।

सुदुमणफदिक्काइयपञ्ज०—बादरबणफदिक्काइयपतेपसरीरपञ्जपापञ्ज—बादरणिगोद—
पञ्जतापञ्ज०—सुदुमणिगोदपञ्जतपसु मोह० नहण्णामहण्ण० णत्थि अंतरं ।
बणफदिक्काइय—सुदुमणफदिक्काइय०—सुदुमणिगोदेसु मोह० अ० अम० अंतोसु०,
उक्क० असंसेज्जा सोगा । अम० नहण्णुक० अंतोसु० । एवमेदेसिमपञ्जतपसु पि ।
णवरि नहण्णुक० अंतोसु० । तस०—तसपञ्जपापञ्जतपसु० मोह० अहण्णामहण्णाणु०
णत्थि अंतरं ।

‡ ७६ षोणाणु० पंचमण०—पंचबधि०—कायमोगि०—मोरास्सिय०—पेठम्भिय०
पेठम्भियमिस्स०—कम्मइय० आहा०—आहारमिस्स० मोह० नहण्णामहण्णाणु० णत्थि
अंतरं । मोरास्सियमिस्स० सुदुमेइदियअपञ्जतपमो ।

‡ ८० वेठाणुषात्थण इत्थि० पुरिस०—णपुंसय० मोह० नहण्णामहण्णाणु०
णत्थि अंतरं । एवमवगद०—वत्तारिकसाय—अकसाय—आभिणि०—सुव०—ओहिं०—मण-

सूस्म पर्याप्तक, और अपर्याप्तक, सूस्म बन्स्पतिकार्य पर्याप्तक, बाहर बन्स्पतिकार्य
प्रत्येकरापीर तथा इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक, बाहर निगाह तथा इनके पर्याप्तक
और अपर्याप्तक और सूस्म निगोह पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मके अल्प्य और अजपम्य
अनुभागका अन्तर नहीं है । बन्स्पतिकार्यिक, सूस्म बन्स्पतिकार्यिक और सूस्मनिगाहया जीवोंमें
माहनीयकर्मके अल्प्य अनुभागविभक्तिका अल्प्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उक्क अन्तर
अंतर्स्मात् लाक है । अजपम्य अनुभागविभक्तिका अल्प्य और उक्क अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी
प्रकार इनके अपर्याप्तकोंमें भी जानना चाहिये । किन्तु इतनी बिरोधता है कि हममें शान्त प्रकारका
अल्प्य और उक्क अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । ब्रस, ब्रसपर्याप्तक और ब्रस अपर्याप्तकोंमें मोहनीय
कर्मके अल्प्य और अजपम्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है ।

विशेषायां—एकेन्द्रियोंमें और सूस्म एकेन्द्रियोंमें ठिबकोंसे समान स्वप्तीकरण है । किन्तु सूस्म
अपर्याप्तकोंमें अल्प्य अनुभागका उक्क अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही है, क्योंकि बार बार जन्म सने
पर भी कार्य और अपर्याप्तकोंमें अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक लगावार जन्म नहीं ल सकता ।
रोप सूस्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक आदिमें अन्तर नहीं है, क्योंकि इतसमुत्पत्तिकर्म द्वारा अल्प्य
अनुभाग करनेवाला जीव हमसे जन्म ल सकता है किन्तु इन मार्गशाधोंमें अल्प्य अनुभाग
करना सम्भव नहीं है । इसी प्रकार पृथिवीकार्यिकमें भी अन्तरका अभाव जानना चाहिये ।
केवल बन्स्पतिकार्यिक, सूस्म बन्स्पतिकार्यिक और सूस्म निगाहिया जीवोंमें अन्तर हावा
है जो सूस्म एकेन्द्रियकी तरह समक लना चाहिये ।

‡ ७९. सागकी अपेक्षा पांचों मन्नायागी पांचों बचनयागी आययागी औरारिककाय-
यागी वैश्विककाययागी वैश्विकमिन्नकाययागी काम्यकाययागी, आहारकाययागी और
आहारप्रमिन्नकाययोगियोंमें मोहनीयकर्मके अल्प्य और अजपम्य अनुभागका अन्तर नहीं है ।
औरारिकमिन्नकाययागियोंमें सूस्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकके समान मंग है ।

‡ ८०. वेदकी अपेक्षा श्रीवरी पुत्रपेरी और गर्तुसकवदियोंमें माहनीय कर्मके अल्प्य
और अजपम्य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार अपगतवरी चारों कपायवात्त
कपायवहित जीव आभिनिवाधिकरान्नी भुच्छान्नी, अक्षपिछान्नी मत्तपयछान्नी संपत साम्राधिक

पञ्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्वाद०-संजदासंजद०-
चक्खु०-अचक्खु०--ओहिदंस०-सुकले०--भवसि०--सम्मादिट्ठि-वेदग०-खइय०-उवसम०-
सासण०-सम्मामि०-सण्णि-आहारि-अणाहारि ति ।

§ ८१. मदि-सुदअण्णाणीसु मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोसु०, उक्क० असं-
खेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक० अंतोसु० । विहंगणाणीसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु०
णत्थि अंतरं । असजद० मोह० ज० ज० अंतोसु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज०
जहण्णुक० अंतोसु० । किण्ह-णील-काउ०-तेउ०-पम्म० मोह० जहरणाजहरणाणु० णत्थि
अंतरं । अभवसि० मोह० ज० ज० अंतोसु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज०
जहण्णुक० अंतोसु० । एवं मिच्छादिट्ठि-असण्णीणं ।

एवं जहण्णाणुभागअंतराणुगमो^१ समत्तो ।

सयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्परायसयत, यथाख्यातसयत, सयता-
सयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि,
वेदकसम्यग्दृष्टि, चायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि,
सङ्गी, आहारी और अनाहारी जीवोंमे जानना चाहिये ।

§ ८१ मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंमें मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर
अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट
अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । विभगज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभाग
विभक्तिका अन्तर नहीं है असयतोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर
अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और
उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । कृष्ण, नील, कापोत, तेज और पद्मलेश्यामें मोहनीयकर्मकी जघन्य
और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है । अभव्योंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग
विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभाग
विभक्तिवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मिध्यादृष्टि और
असंज्ञियोंमें भी जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—योगकी अपेक्षा मनोयोग, वचनयोग, काययोग और औदारिककाययोगवालोंके
क्षपक दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है अतः अन्तर नहीं कहा है ।
वैक्रियिककाययोगमें सौधर्मादिककी तरह अन्तर नहीं है । वैक्रियिकमिश्रमें नरकमें जन्म लेने
वाले हृतसमुत्पतिककर्मा असंज्ञी पञ्चेन्द्रियकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग होता है अतः उसमें भी
अन्तर नहीं है । आहारक और आहारकमिश्रमें दुवारा उपशमश्रेणि पर चढ़कर, उससे उतर कर
दर्शनमोहनीयका क्षपण करके जो आहारककी उत्पादना करता है उसके जघन्य अनुभाग होता
है अतः उनमें भी अन्तर नहीं प्राप्त होता । कर्मणका काल थोड़ा है, अतः उसमें भी अन्तरकी
सभावना नहीं है । अपने अपने योग्य इसी प्रकारके कारणोंसे शेष मार्गाओंमें अन्तरका
अभाव लगा लेना चाहिये । केवल औदारिकमिश्र, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असयमी, अभव्य,
मिध्यादृष्टि और असंज्ञीमें अन्तरकाल होता है जो एकेन्द्रियकी तरह लगा लेना चाहिये ।

इस प्रकार जघन्य अनुभागका अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

§ ८२ शाण्णामीवेदि मंगविषयभो दुबिहो—महण्णमो उक्कस्सओ वेदि । उक्कस्से पयदं । दुबिहो णिहे सो—ओपे० आवेसे० । तस्य ओपण मोह० उक्कस्साणुभागविहृतीय सिया सम्भे नीत्वा अविहृत्तिया १ । सिया अविहृत्तिया च विहृत्तियो च २ । सिया अविहृत्तिया च विहृत्तिया च ३ । पयमणुक्कस्सं पि । णवरि विहृत्तियुष्मं भाणिदण्वा । एवं सम्भणेत्तय-सम्भतिरिक्क-मणुसतिय-वेब० भवणादि भाव सहस्सार ति । मणुस अपण्ण० उक्कस्साणुक्कस्साणुभागविहृत्तियाणमह भंगा । भाण्णदादि भाव सम्भट्टसिद्धि ति उक्कस्साणुक्कस्स० णियमा अत्थि ।

§ ८३ इंदियाणु० एइदिय-बादर-सुहुय-यञ्जचापञ्ज-सम्भणिगिंदिय-सम्भ पंविदियणु सिया सम्भे अणुक्कस्सनिहृत्तिया १ । सिया अणुक्कस्सनिहृत्तिया च उक्क-स्सनिहृत्तियो च २ । सिया अणुक्कस्सनिहृत्तिया च उक्कस्सनिहृत्तिया च ३ । एवं उक्कस्स-पंचमण०-पंचवि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-वचन्विय०-कम्मइय०-विण्णि वद०-वचरिकसाय० तिण्णिअण्णाण०-आमिणि०-सुद०-ओहि -असंगद०-वचसु० अचसु०-ओहिदंस०-पंचते०-मवसि०-अमवसि०-सम्मादिदि-वेदग०-मिच्छादिदि सणि-असणि-आहारि-मणाहारि ति ।

§ ८२. नाना जीवोंकी अपेक्षा मंगविषय वा प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देरा तो प्रकारका है—प्रापनिर्देरा और आदेरनिर्देरा । उनमें सब जीवोंकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव माहनीयकमका उत्कृष्ट अनुभागाविमत्तिवाले हैं १ । कदाचित् अनेक जीव अविमत्तिवाले और एक जीव विमत्तिवाला होता है २ । कदाचित् अनेक जीव अविमत्ति-वाले और अनेक जीव विमत्तिवाले होते हैं ३ । इसी प्रकार अनुरूप में भी जानना चाहिये । किन्तु इतनी विरोधता है कि विमत्तिका पहले रत्नकर कथन करना चाहिये । अर्थात् कदाचित् सब जीव माहनीयकी अनुकृष्ट विमत्तिवाले हैं १ । कदाचित् अनेक जीव अनुकृष्टविमत्तिवाले और एक जीव अविमत्तिवाला है २ । कदाचित् अनेक जीव अनुकृष्टविमत्तिवाले और अनेक जीव अविमत्ति-वाले हैं ३ । इसी प्रकार सब नारकी सब विर्यञ्च, सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिनी, देव और भवन्वासीस लेकर सहस्रान् स्वर्गतकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागाविमत्तिवालोंके आठ भंग होते हैं । आन्त स्वर्गसे लेकर सर्वापसिद्धि पर्यन्त उत्कृष्ट और अनुकृष्ट विमत्तिवाले जीव नियमसे होते हैं ।

§ ८३. इन्द्रियकी अपेक्षा सामान्य एवेन्द्रिय और इनके बादर, सूक्ष्म, पयास और अपयास सब भवोंमें तथा सब विक्रमन्द्रियों और सब पञ्चेन्द्रियोंमें कदाचित् सब जीव अनुकृष्ट विमत्तिवाले हैं १ । कदाचित् अनेक जीव अनुकृष्ट विमत्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट विमत्ति-वाला है २ । कदाचित् अनेक जीव अनुकृष्ट विमत्तिवाले और अनेक जीव उत्कृष्ट विमत्तिवाले हैं ३ । इसी प्रकार छहों काव पौषों मन्वायागी पौषों वपनयागी औदारिककाययागी औद्द-रिदमिक्ककाययागी वैक्कियिक्ककाययागी कामणकाययागी, तीनों बहवाले चार कयायवातं मत्तिअहासी भुत्तण्णानी विमंगण्णानी आभिनिवाधिकण्णानी, भुत्तण्णानी अचधिण्णानी अरसयत्त वमुदरांमवात्त अचमुदरांमवात्त अचरुदरांमवात्त, सुत्तलेत्तयाक्क मिवाय राण पौषों सरयावात्त, मय्य, अमय्य, सम्मण्णदि, बहकस्सम्यण्णदि विष्णाट्ठि, संही, अरसंती आहारी और अनाहारी

पज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्वाद०-संजदासंजद०-
चक्खु०-अचक्खु०--ओहिदंस०-सुकले०-भवसि०--सम्मादिट्ठि-वेदग०-खइय०-उवसम०-
सासण०-सम्मामि०-सण्णि-आहारि-अणाहारि ति ।

§ ८१. मदि-सुदअण्णाणीसु मोह० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० असं-
खेज्जा लोगा । अज० जहण्णुक० अंतोमु० । विहंगणाणीसु मोह० जहण्णाजहण्णाणु०
णत्थि अंतरं । असजद० मोह० ज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज०
जहण्णुक० अंतोमु० । किण्ह-णील-काउ०-तेउ०-पम्म० मोह० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि
अंतरं । अभवसि० मोह० ज० ज० अंतोमु०, उक्क० असखेज्जा लोगा । अज०
जहण्णुक० अंतोमु० । एवं मिच्छादिट्ठि-असण्णीणं ।

एवं जहण्णाणुभागअंतराणुगमो' समत्तो ।

सयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्परायसयत, यथाख्यातसयत, सयता-
सयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेख्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि,
वेदकसम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि,
सङ्गी, आहारी और अनाहारी जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ८१ मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानियोंमें मोहनीय कर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर
अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट
अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । विभगज्ञानियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभाग
विभक्तिका अन्तर नहीं है असयतोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर
अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य और
उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । कृष्ण, नील, कापोत, तेज और पद्मलेश्यामें मोहनीयकर्मकी जघन्य
और अजघन्य अनुभागविभक्तिका अन्तर नहीं है । अभव्योंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभाग
विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभाग
विभक्तिवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और
असहियोंमें भी जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—योगकी अपेक्षा मनोयोग, वचनयोग, काययोग और औदारिककाययोगवालोंके
क्षपक दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें जघन्य अनुभाग होता है अतः अन्तर नहीं कहा है ।
वैक्रियिककाययोगमें सौधर्मादिककी तरह अन्तर नहीं है । वैक्रियिकमिश्रमें नरकमें जन्म लेने
वाले हतसमुत्पतिककर्मा असङ्गी पञ्चेन्द्रियकी अपेक्षा जघन्य अनुभाग होता है अतः उसमें भी
अन्तर नहीं है । आहारक और आहारकमिश्रमें दुवारा उपशमश्रेणि पर चढकर, उससे उतर कर
दर्शनमोहनीयका क्षपण करके जो आहारककी उत्पादना करता है उसके जघन्य अनुभाग होता
है अतः उनमें भी अन्तर नहीं प्राप्त होता । कर्मणका काल थोड़ा है, अतः उसमें भी अन्तरकी
सभावना नहीं है । अपने अपने याग्य इसी प्रकारके कारणोंसे शेष मार्गणाओंमें अन्तरका
अभाव लगा लेना चाहिये । केवल औदारिकमिश्र, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, असयमी, अभव्य,
मिथ्यादृष्टि और असंज्ञीमें अन्तरकाल होता है जो एकेन्द्रियकी तरह लगा लेना चाहिये ।

इस प्रकार जघन्य अनुभागका अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ८५ अहण्ण पयदं । दुषिहो जिहोसो—भोधण आदेसेण य । तत्व ओपण मोह० अहण्णयापुभागस्स सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया १ । सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च २ । सिया० अविहत्तिया च विहत्तिया च ३ । अनहण्णयास्स सिया सव्व जीवा विहत्तिया १ । सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च २ । सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च १ । एवं निरयओसं पडमपुडवि—सम्भंपंचिदियतिरिक्ख—मणुसतिय-देवोयं मयण०-पाण—सम्भयिगसिदिय—सम्भंपंचिदिय-बादरपुडवि०पञ्ज०-बादरआच० पञ्ज०—बादरसेठ०पञ्ज०—बादरबाह०पञ्ज०—बादरषण्णप्पदिपत्तेयसरीरपञ्ज०—तस तसपञ्जसापञ्जत्त-यंचमण०-यंचवधि०—काययोगि०ओराठि०—तिस्सियावेद०-चत्तारिक० आभिणि०-सुद०-ओहि०-मजपज्जव०-सजद०-सामाइय-वेदा० चकसु०-अचकसु० ओहि र्सस०-सुकुले०-मवसि०-सम्मादिहि-सइयसम्मादिहि-वेदगसम्मा०-सस्सिया-माहारि ति ।

§ ८६ विदियादि जाव सत्तमि पि अहण्णयाअहण्णां णियमा मत्सि । एव तिरिक्ख-ओदिसियादि जाव सम्भट्टसिद्धि-पइदिय-बादरेइदिय-[बादरेइदियअपञ्ज०]-सुहुमेइदिय-यञ्जसापञ्जत्त-पुडवि०-बादरपुडवि०-बादरपुडवि०अपञ्ज—सुहुमपुडवि०

§ ८५ अब जपन्यका प्रकारसु है । निर्देश दो प्रकारका है आपनिर्देश और आवेश-निर्देश । उनमेंसे आपकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव मोहनीयकर्मकी जपन्य अनुभागविभक्ति बाले हैं १ । कदाचित् अनेक जीव माहनीयकर्मकी जपन्य अनुभागविभक्तिसे रहित हैं और एक जीव माहनीयकी जपन्य अनुभागविभक्तिवाला है २ । कदाचित् अनेक जीव माहनीय कर्मकी जपन्य अनुभागविभक्तिसे रहित हैं और अनेक जीव जपन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं ३ । कदाचित् सब जीव माहनीयकर्मकी अजपन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं १ । कदाचित् अनेक जीव माहनीयकर्मकी अजपन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं और एक जीव अजपन्य अनुभाग विभक्तिसे रहित है २ । कदाचित् अनेक जीव माहनीय कर्मकी अजपन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं और अनेक जीव अजपन्य अनुभागविभक्तिसे रहित हैं ३ । इसी प्रकार सामान्य नारकी पक्षी प्रविषीके नारकी, सब पक्षेन्द्रियतिर्यञ्च सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यिनी, सामान्य देव भक्तवासी, व्यन्तर, सब विक्लेश्त्रिय सब पक्षेन्द्रिय, बाहर प्रविषीपर्याप्तक बाहर अज्जायपर्याप्तक, बाहर तेशकावपयाप्तक, बाहर वायुकायपर्याप्तक, बाहर वनस्पतिप्रत्येकरापीरपयाप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक त्रसअपयाप्तक, पाँचों मण्ययोगी पाँचों बचनवागी कायगुगी औहारिक-काववागी पुण्यवशी स्त्रीवशी नपुंसकवशी ओषी मानी मायावी सामी आभिनिषाधिक-शामी मुत्तमानी, अविज्ञानी मन्त्रपर्यवशानी संयत सामायिकसंयत इरापस्थापनासंयत चहुइराजवासी अचहुइराजवासी अविपरानिवाले अविपरानिवाले सुत्रलेखकवाले मन्त्र सम्पन्टटि सायिक सम्पन्टटि बहकसन्धकटटि संज्ञी और आहारी जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ८६ दूसरी प्रश्नीसे लेकर सातवीं प्रविषी तक जपन्य अनुभागविभक्तिवाले और अजपन्य अनुभागविभक्तिवाले नियमसे होते हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्च म्यातिपी देवोंसे लेकर सर्वायसिद्धि तकके देव, पक्षेन्द्रिय बाहर पक्षेन्द्रिय बाहर एण्ड्रियअपर्याप्त सूक्ष्म पक्षेन्द्रिय सूक्ष्म एण्ड्रिय पर्याप्त सूक्ष्म पक्षेन्द्रिय अपयाप्त, प्रविषीअधिक, बाहर प्रविषीअधिक, बाहर प्रविषीअधिक अपयाप्त सूक्ष्म प्रविषीअधिक और उसके पर्याप्त अपयाप्त, अज्जायिक बाहर

§ ८४. वेउन्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०--अकसा०-सुहुमसांप-
राय०-जहाकवाद०-उवसम०--सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठीण मणुसअपज्ज०भंगो ।
सजद-मामइय-छेदो०-परिहार०-सजदासंजद-मणपज्ज०-सुकुले०-खइय०सम्मादिट्ठीण-
माणदभंगो ।

एव णाणाजीवेहि उक्कस्सभंगविचयाणुगमो समत्तो ।

जीवोंमें जानना चाहिए ।

§ ८४ वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगत-
वेदी, अकपायी, सूक्ष्मसाम्परायसयत, यथाख्यातसयत, उपशमसस्यग्दष्टि, सासादनसस्यग्दष्टि
और सस्यग्मिध्यादष्टियोंमें अपर्याप्त मनुष्यके समान भग है । सयत, सामायिकसयत, छेदो-
पस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत, मन पर्ययज्ञानी, शुक्लेश्यावाले और क्षायिक
सस्यग्दष्टियोंमें आनत कल्पके समान भग है ।

विशेषार्थ—इस अनुयोगद्वारमे नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयका विचार किया है ।
ओघसे उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागके तीन तीन भग ही घटित होते हैं । यत उत्कृष्ट अनुभाग-
की सत्ताका काल और जीव बहुत कम हैं, इसलिये कदाचित् ऐसा समय आता है जब उत्कृष्ट अनु-
भागकी सत्तावाला कोई जीव न हो और सब जीव अनुकृष्ट अनुभागवाले हों । कदाचित् अनेक
जीव उत्कृष्ट अनुभागसे रहित और एक जीव सहित हो । कदाचित् अनेक जीव, अनुकृष्ट
अनुभागसे सहित और एक जीव उससे रहित हो । कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे
रहित और अनेक जीव उससे रहित हों । इस प्रकार उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागके रहने न
रहने की अपेक्षासे ६ भग होते हैं । आदेशसे भी चारों गतियोंमें यही ६ भग बनते हैं । केवल
मनुष्य अपर्याप्तके आठ भग होते हैं जो इस प्रकार हैं—कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागसे
रहित होते हैं । कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित होते हैं । कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट
अनुभागसे रहित होता है । कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित होता है । कदाचित्
अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित और अनेक जीव उससे रहित होते हैं । कदाचित् अनेक
जीव उत्कृष्ट अनुभागसे सहित और एक जीव उससे रहित होता है । कदाचित् एक जीव उत्कृष्ट
अनुभागसे सहित और एक जीव उससे रहित होता है । कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागसे
रहित और एक जीव उससे सहित होता है । इसी प्रकार अनुकृष्ट अनुभागके भी आठ भग होते
हैं । मनुष्य अपर्याप्तके ये आठ भग होनेका कारण यह है कि यह सान्तर मार्गणा है । इसमें कदा-
चित् एक भी जीव नहीं पाया जाता और कदाचित् एक या अनेक जीव पाये जाते हैं, अतः उक्त
आठ आठ भग बन जाते हैं । अन्य भी वैक्रियिकमिश्र आदि सान्तर मार्गणाओंमें इसी प्रकार
आठ आठ भग होते हैं । आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक तथा सयत आदिमें उत्कृष्ट
और अनुकृष्ट अनुभागवाले जीव सदा पाये जाते हैं । कारण कि इनमें यदि अनुकृष्ट अनु-
भागवाले जन्म लेते हैं तो उनके तो नियमसे अनुकृष्ट अनुभाग ही बना रहता है और यदि
उत्कृष्ट अनुभागवाले जन्म लेते हैं तो उनके जब तक क्रियान्तरके द्वारा उसका घात नहीं
होता तब तक वही बना रहता है । सयत, सामायिक सयत आदिके आनतादिकके समान ही
जानना चाहिए । तथा शेषमें ओघके समान घटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टभगविचयाणुगम समाप्त हुआ ।

सम्बन्धिगोद-कायभोगि-भोरामि०-भोरालिमिस्स०-कम्मइय०-जणुंस०-चत्तारिक०
 होमण्णाप०-असंजद०-अचक्खु०-किण्ण-णील-काठ०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छा
 विट्ठि०-असप्पिख०-आहारि अजाहारि णि ।

§ ८६ आदेशेण जेरइएसु मोइ० उक्कस्ताणुमाग० सम्बन्धीमाणं केव० ? असंखे०
 भागो । मणुक्क० विहसि० सम्बन्धी० केव० ? असंखे० भागो । एवं सम्बन्धेणइय
 सम्बन्धिदिदि० विरिक्ख-मणुस-मणुसमपञ्ज०-वेव० भवणादि भाव भवराइद०-सम्बन्धिय
 सिद्धिय-सम्बन्धिदिदिय-सम्बन्धचत्तारिकाय-बादरपणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपञ्जापञ्चत्त
 सम्बन्धसाकाइय-पंचमण० पंचमचि०-चत्थि०-नेरुत्थियमिस्स० इत्थि० पुरिस० विहंग०
 आमिणि०-मुद०-आहि०-संभदासंजद०-चक्खु० ओहिदंस०-धर-पम्प-सुक्क०-सम्मादि०
 वदग०-सइय०-चवसम-सासण०-सम्माणि०-सपिया णि ।

§ ८७ मणुसपञ्ज०-मणुसिणी० उक्कस्ताणुमाग० सम्बन्धी० केव० ? संखे० भागो ।
 मणुक्क० संखे० भागो । एवं सम्बन्धेण०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०

और शेष बहु भागप्रमाण अनुकृत अनुभागविमत्तिवाले हैं । इसी प्रकार सामान्य त्रिय च सब पञ्चेन्द्रिय सब वनस्पतिक्रमिक, सब निगोषिया, सामान्य कायवोगी औदारिककायवोगी औदारिकमिभकायवोगी, कार्यकायवोगी, नपुंसकबेदी क्रापी, मानी मायात्री, लामी, मतिभ्रष्टानी भुवभ्रष्टानी असंयत अचक्रुदरानवाले, कृप्या लेरयावाले, मील लरयावाले कायातलेरयावाले, मध्य, अमध्य, मिथ्यादृष्टि, असंखी, आहार्य और अनाहार्य जीवोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-ओपसे उक्त अनुभागविमत्तिवाले असंख्यात और अनुकृत अनुभाग-विमत्तिवाले अनन्त होते हैं । इसीसे उक्त अनुभागविमत्तिवाले अनन्तर्भाग और अनुरक्त अनुभागविमत्तिवाले अनन्त बहुभाग करे हैं । यहाँ मूलमें अन्य शिवनी मार्म्यापे गिनाइ हैं उनमें यह व्यवस्था बन जानेसे उनमें प्रकृत्या ओपके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ ८९ आदेशकी अपेक्षा नायकियोंमें मोहनीयकमके उक्त अनुभागविमत्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातर्भे भागप्रमाण हैं । अनुकृत अनुभागविमत्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब मारकी, सब पञ्चेन्द्रियत्रिय च, मनुष्य मनुष्य अपत्यात सामान्य एवं भवनवादीसे शकर अपराजित अमुत्तर तकके सब सब विकसन्त्रिय सब पञ्चेन्द्रिय सब प्रथिषीक्रमिक सब जलक्रमिक, सब वैजक्रमिक, सब वायुक्रमिक, बादर वनस्पतिक्रमिकप्रत्येकशरीर तथा हमके पयात अपर्णात सब अस्क्रमिक, पौषों मन्त्रेवोगी पौषों वषमवोगी वैत्रिक्रमिककायवोगी वैत्रिक्रमिक कायवोगी द्वीबेदी पुरुषबेदी विमगष्टानी आग्निनिष्ठाधिक्रमानी, भुवभ्रष्टानी अचक्रुदरानी संयत-संयत चक्रुदरानवाले, अचक्रुदरानवाले तेजासेरवावाले परमसेरवावाले हुक्कासेरवावाले सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि चक्रुदरानवाले उपरामसम्यग्दृष्टि, नाग्यदमसम्यग्दृष्टि मध्य-मिथ्यादृष्टि और संखी जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ९० मनुष्यपर्यात और मनुष्यमियोंमें उक्त अनुभागविमत्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातर्भे भाग हैं । अनुकृत अनुभागविमत्तिवाले जीव सब जीवोंके संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सर्वापसिद्धिके सब आहारककायवोगी आहारकमिभकायवोगी,

सुहुमपुढवि०पज्जत्तपज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादरआउअपज्ज०--सुहुमआउ०--सुहुम-
आउपज्जत्तपज्जत्त--तेउ०--वादरतेउ०--वादरतेउअपज्ज०--सुहुमतेउ०--सुहुमतेउ०पज्जत्ता-
पज्जत्त०--वाउ०-वादरवाउ०--वादरवाउ०अपज्जत्त--सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-
सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद--ओरालियमिस्स०--वेउव्विय०--कम्मइय०--मदिअण्णाणि-
सुदअण्णाणि-विहंग०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-किरह-णील-काउ-तेउ-पम्म०-
अभवसि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ८७. मणुसअपज्ज० जहण्णाजहण्ण० अट्ट भंगा । एवं वेउव्वियमिस्स०-
आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०--अकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-उवसम०-
सासण-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

एवं णाणाजीवेहिं भंगविचयाणुगमो समतो ।

§ ८८. भागाभागानुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्से
पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघे० आदेसे० । ओघे० मोह० उक्कस्साणुभागविहृत्तिया
सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो ? अणुक्कस्स०विहृत्तिया सव्वजीणं केव-
डिओ भागो ? अणता भागा । एवं त्तिरिक्खोघ सव्वएइंदिय—सव्ववणप्फदिकाइय-

अष्कायिक, बादर, अष्कायिक, अपर्याप्तक सूक्ष्म अष्कायिक, सूक्ष्म अष्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म
अष्कायिक अपर्याप्तक, तेजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तैज-
स्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक,
बादर वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक
अपर्याप्तक, सब वनस्पति, सब निगोदिया, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, कार्मण-
काययोगी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसयत्त, सयतासयत्त, असयत्त,
कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कपोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, अभव्य,
मिथ्यादृष्टि, असङ्गी और अनाहारी जीवोंमें जानना चाहिए ।

§ ८७ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य विभक्तिके आठ
आठ भग होते हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाय-
योगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायसयत्त, यथाख्यातसयत्त, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन-
सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिकी अपेक्षा ओघ और आदेशसे
जिस प्रकार स्पष्टीकरण किया है उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए । मात्र जिन मार्गणाओंमें
विशेषता है उनमें जघन्य स्वामित्वको ध्यानमें रख कर वह घटित कर लेनी चाहिए ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ८८ भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण
है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा
मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग
हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण
हैं । अर्थात् सब जीवोंमें अनन्तका भाग देने पर एक भागप्रमाण उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिके जीव हैं ।

वि । मणुसपञ्जचादिसंस्तेजरासीसु अहण्याणु० सध्वनी० केव० ? संस्ते० मागो । अण०
सस्तेज्जा मागा ।

एवं अहण्याणो मागामागणुगमो सयत्तो ।

§ ६३ परिमाणाणुगमो दुबिहो—अहण्याणो उक्तस्तमो चेदि । उक्तस्तए
पयद् । दुबिहो गिहोसो—भोवे० आदेसे० । भोवेण उक्तस्ताणुभागविहृत्तिया केव-
हिया ? असस्तेज्जा । अणुक० दध्वपमायेण के० ? अर्णता । एवं तिरिक्त्वोर्षं सध्वे
ईदिय-सध्वयणफदिकाइय०-सध्वणिगोद०-कायमोगि०-ओरास्त्रिय० ओरास्त्रियमिस्स०
कस्माइय०-गणुस०-अचारिकसाय-दोयियाअयणाणि-असंभद०-अचक्नु०-क्रियह-भीस्स-
काव० भवसि०-अभवसि० मिच्छादिदि०-असस्त्रिया-आहारि-अगाहारि वि ।

§ ६४ आदेसेण जेरइएसु उक्तस्त-अणुक्तास्ताणुभागविहृत्तिया जीवा दध्वपमा
येण क० ? असंस्तेज्जा । एवं सध्वणेइय-सध्वर्षंदिदियतिरिक्त्व-मणुस-मणुसअपञ्ज०-
देव मवणादि जाव अमराइद० सध्वविगोदिय-सध्वर्षंदिदिय-सध्वचचारिकाय-बादर
वणफदिकाइयपत्तेयसरीर-यञ्जचापञ्जच-सध्वतसकीइय-पंचमण०-पंचनधि-पेचध्विय०
पेचध्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आमिणि०-मुद०-आहि०-संभदासभद०

और अनाहारक जीवोंम जन्तना चाहिए । मनुष्यपयांत आदि संख्यात राशियोंमें जयन्व
अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं और अजयन्व अनुभाग-
विभक्तिवाले सख्यात बहुभाग प्रमाण हैं ।

इस प्रकार अयम्य भागामागणुगम समार हुआ ।

§ ९१ परिमाणानुगम दो प्रकारका है—अयन्व और उक्तः । प्रकृतमें उक्तःसे प्रयोजन
है । निर्देरा दो प्रकारका है—अोयनिर्देरा और आदेरागिर्देरा । अोयकी अपेक्षा उक्तः अनुभाग-
विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुक्तः अनुभागविभक्तिवाले जीव इत्यप्रमाणसे
कितने हैं ? अयन्व हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च तथा सब पञ्चेन्द्रिय, सब बन्स्पतिकप्रियक,
सब निगोहिया, काययोगी औदारिककाययोगी, औदारिकमिन्नकाययोगी कर्मकाययोगी,
नृपुंसकवही श्रेणी मानी मायावी लोमी मृत्पिच्छानी भुतपिच्छानी असंयत अचक्षुर्दान्त-
वाले उच्यतेमत्तावाले नीललेरपावले कागलेलेरपावले, मय्य अयम्य मिष्याद्यदि, असंकी
आहारक और अनाहारकमें जन्तना चाहिए ।

§ ९४ आदेराकी अपेक्षा नारकियोंमें उक्तः और अनुक्तः अनुभागविभक्तिवाले जीव
इत्यप्रमाणसे कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च मनुष्य
मनुष्य अपर्याप्त सामान्य देव भवनवासीते श्रेकर अपर्याप्त विमान उक्तःदेव सब विकले-
न्द्रिय सब पञ्चेन्द्रिय सब वृषिबीकाधिक सब जलकप्रियक सब हैसकप्रियक सब वायुकायिक,
बादर बन्स्पतिकप्रियक भूदेकरासीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त सब ब्रह्मकप्रियक पांचों
मयवागी, पांचों बवनवोगी वैश्विककायवागी वैश्विकमिन्नकाययोगी जीवही पुरुषवही,
विमंगलानी अग्निनिवायिकानी, भुतजानी, अचक्षुशी संयतासंयत, चक्षुर्दान्तवाले अक्षि-

मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-मुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदे त्ति ।

§ ६१. जहएणए पयदं । दुविट्ठो णिद्देसो—ओघे० आदेसे० । ओघे० मोह० जहएणाणु० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । अज० सव्वजी० केव० ? अणंता भागा । एवं कायजोगि० ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ६२. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहएणाणु० सव्वजीव० केव० ? असंखे०-भागो । अज० असंखेज्जा भागा । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद० सव्वएइंदिय-सव्वविगलिट्ठिय-सव्वपंचिंदिय-सव्व-द्धकाय-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०मिस्स०-वेउच्चिय०-वेउच्चि०मिस्स०-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि०-मुद०-विहंग०-आभिणि०-मुद०-ओहि०-संजटासंजद०-असंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-द्धलेस्सा०-अभवसि०-द्धसम्मत्त०-सरिणा०-असरिणा०-अणाहारि

अपगतवेदी, कपायरहित, मन पर्यायज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहार-विशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्परायसयत और यथाख्यातसयतोमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—नारकी आदि मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले यद्यपि असख्यात हैं फिर भी अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंसे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असख्यातोंमें भाग ही हैं । इसीसे इनमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असख्यातोंमें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं । मनुष्यपर्याप्त आदिमें दोनों विभक्तिवाले सख्यात हैं, इसलिए इनमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सख्यातोंमें भागप्रमाण और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सख्यात बहुभागप्रमाण कहे हैं ।

§ ९१ अत्र जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवैभाग हैं । अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तबहुभाग व हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओघसे और उक्त मार्गणाओंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवाले सख्यात हैं और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले अनन्त हैं, अत्र उक्त प्रकारसे भागाभाग वन जाता है । आगे भी इसी प्रकार सख्या जान कर भागाभाग घटित कर लेना चाहिए ।

§ ९२ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातोंमें भाग हैं और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले सब जीवोंके असख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य-अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विक-लेन्द्रिय, सब पचेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक, सब अप्कायिक, सब तैजस्कायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, सब त्रसकायिक, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, सयतासयत, असयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेश्यावाले, अभव्य, छहों सम्यग्दृष्टि, सङ्गी, असङ्गी,

ति । मणुसपञ्जचादिसंस्त्रेज्जरासीमु जहण्याणु० सम्बन्धी० केव० ? संस्त्रे० भागो । मज० सस्त्रेज्जा भागा ।

एवं जहण्याओ भागामाणुगमो समथो ।

§ ६३ परिमाणानुगमो दुबिहा—जहण्याओ उक्तसमो वेदि । उक्तसप पयर्द । दुबिहो जिहोसो—मोष० मादेसे० । ओपेण उक्तस्ताणुभागविहृत्तिया केव रिया ? असस्त्रेज्जा । अणुक० दम्बपमाणेण क० ? अणता । एवं तिरिक्त्तोपं सम्भे ईदिय-सम्बवणप्फदिकाइय०-सम्बभिगोद०-कायमोगि०-ओरासिय० ओरासियमिस्स० कम्मइय०-अणुसं० चचारिकसाय-दोणियाअण्याणि-असंजद०-अचक्खु०-किराह-णीस-काव० मयसि०-मयनसि०-मिच्छादिदि०-असस्त्रिया-आहारि-अणाहारि ति ।

§ ६४ आदेसेण गेरइपसु उक्तस-अणुकस्ताणुभागविहृत्तिया जीवा दम्बपमा णेण क० ? असंस्त्रेज्जा । एवं सम्बणेइय-सख्खर्पंचिदियतिरिक्त्त्व-मणुस-मणुसअपक्क०-वेय-मनगादि जाय अघराइद० सम्बविगसिदिय-सम्बर्पंचिदिय-सख्खचचारिकाय-बादर वणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-यज्जवापक्कत्त-सम्बतसकीइय-पंचमण० पंचपचि०-वेचम्बिय०-वेचम्बियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विइंग -आभिणि०-मुइ०-ओहि०-संसदासंजद०

और अनाहारक जीवोंमें जानना चाहिए । मनुष्यपर्याप्त आदि संख्यात राशियोंमें कल्प्य अनुमागविमच्छिन्नासे सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातबे भाग हैं और अल्पकल्प अनुमाग-विमच्छिन्नासे संख्यात बहुभाग प्रमात्य हैं ।

इस प्रकार अल्पकल्प अनुमागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ९१ परिमाखानुगम वा प्रकारका है—अपम्य और उत्कृष्ट । प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देरा दो प्रकारका है—ओषनिर्देरा और आदेरानिर्देरा । ओषकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुमाग-विमच्छिन्नासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुकृष्ट अनुमागविमच्छिन्नासे जीव ब्रह्मप्रमात्यासे कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च तथा सब पक्षेन्द्रिय सब वनस्पतिकार्यिक, सब निगादिया काययोगी औदारिककाययोगी औदारिकमिन्नकाययोगी, कार्मन्काययोगी मनुसकवही आभी मानी मायाभी लोमी मतिअज्जानी सुत्तअज्जानी असंखत्त अपणुवर्दान-वाले कृष्णलेखावाले नीललेखावाले कापोल्लेखवाले मय्य अमय्य सिप्पावृष्टि, असंखी आहारक और अनाहारकमें जानना चाहिए ।

§ ९४ आदेरकी अपेक्षा नारत्थियोंमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुमागविमच्छिन्नासे जीव ब्रह्मप्रमात्यासे कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब मरकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त सामान्य वेद भवनवासीसे लेकर अपरवकित विमान तकके वेद सब विकसे-न्द्रिय सब पञ्चेन्द्रिय सब वृषिबीकायिक सब जलकायिक, सब वैजस्ककायिक, सब वसुकायिक बाह्य कम्पत्तिकायिक मत्सेकरादीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त सब प्रसकयिक, पाँचों मनायागी पंचों बचनयोगी वैश्विककाययोगी वैश्विकमिन्नकाययोगी जीवेही पुरुषवेही, विदग्धान्त्री, आभिनिवाचिकज्जानी, भ्रुत्ज्जानी, अचचिज्जानी संयथासंयत्त, बहुवर्दानवाले अचचि-

चक्रवु०-ओहिदंस०--तेउ-पम्म-सुक०--सम्मादिट्टि--वेदय०--खइय०-उवसम०--सासण०-
सम्मापि०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०--मणुसिणी० उजस्साणुकस्साणुभाग० केव० ?
संखेज्जा । एवं सन्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०--संजद-
सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०सजदे त्ति ।

एवमुक्कस्साणुभागपरिमाणुगमो समतो ।

§ ६५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्दे सों—ओघे० आदेसे० । तत्थ ओघेण
मोह० जहण्णाणुभागविहत्तिया केत्तिया ? संखेज्जा । [अजहरणा०] दव्वपमाणेण
केव० ? अणंता । एवं कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०--चत्तारिकसाय०-अचक्रवु०-
भवसि०-आहारि त्ति ।

दर्शनवाले, पीतलेशयावाले, पद्मलेशयावाले, शुक्ललेशयावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदगसम्यग्दृष्टि, स्थायिक-
सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि और सही जीवोंमें जानना
चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव
कितने हैं ? सख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाय-
योगी, अपगतवेदी, कषायरहित, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामाधिकसयत, छेदोपस्थापनासयत,
परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्परायसयत, और यथाख्यातसयत जीवोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—पहले अनुयोगद्वारमें यह बतलाया है कि ओघ और आदेशसे अमुक
अनुभागवाले जीव समस्त जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं और इस अनुयोगद्वारमें उनका परि-
माण बतलाया है । ओघसे मोहनीयकर्मके अनुभागसे युक्त जीवराशि अनन्त है । किन्तु उसमें
उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव केवल असख्यात ही हैं, क्योंकि एक तो मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभाग-
बन्ध सही पञ्चेन्द्रिय जीव करते हैं । दूसरे अन्य इन्द्रियवालोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभाग
उन्हींके पाया जाता है जो सही पञ्चेन्द्रिय इसका घात नहीं करके उनमें उत्पन्न होते हैं,
इसलिए इनका प्रमाण असख्यात कहा है । शेष सब मोहनीयकी सत्तावालोंके अनुत्कृष्ट अनुभाग
होता है अतः उनका प्रमाण अनन्त कहा है । सामान्य तिर्यञ्चसे लेकर अनाहारक पर्यन्त जिन
मार्गणाओंमें जीवराशिका प्रमाण अनन्त है उनमें ओघ की तरह ही परिमाण होता है । नरक-
गतिसे लेकर सही पर्यन्त असख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों ही
विभक्तिवाले जीव असख्यात होते हैं । तथा मनुष्य पर्याप्तसे लेकर यथाख्यातसयत पर्यन्त
सख्यात राशिवाली मार्गणाओंमें दोनों विभक्तिवालोंका परिमाण सख्यात ही होता है । किन्तु
उनमें भी एक भागप्रमाण उत्कृष्ट अनुभागवाले जीव होते हैं और बहु भागप्रमाण अनुत्कृष्ट
अनुभागवाले जीव होते हैं जैसा कि भागाभाग अनुयोगद्वारमें बतलाया है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभाग परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ९५ प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?
सख्यात हैं । द्रव्यप्रमाणसे अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी
प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शन-
वाले, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिए ।

§ ६६ आदेसेण जेरइएसु जहण्णामहण्णाणुभाग० केव० ? असंस्वेज्जा । एवं सम्भणिरय-सम्भपंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-इव० भवणादि जाव भवराइद० सम्भविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-सम्भपुइदि०-सम्भमाउ०-सम्भसेउ०-सम्भबाउ०-पादरनअप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जचापज्जत्त-तसअपज्ज०-वेठम्भिय०-वेठम्भियमिस्स विहंग०-तेउ-पम्मसेस्सिया सि । तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु जहण्णामहण्णाणुभाग० क्व० ? अणत्ता । एवं सम्भपइदिय-सम्भवअप्फदिकाइय-सम्भणिगोद-भोराक्खियमिस्स० कम्मइय०-मदिअप्पायाणि-सुदअप्पायाणि असंनद-किएइ-णील-काउ० अमव०-मिञ्जा दिट्ठि-असयिया-अणाहारि सि ।

§ ६७ मणुसगईए मणुस्सेसु जहण्णाणुभाग० केव० ? संस्वेज्जा । अण० असं स्वेज्जा । एवं पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवधि० इत्थि० पुरिस०-मायिणि०-सुइ०-मोहि०-संजदासंमद० चक्खु०-आहिदंस०-सुक्क०-सम्मा-दिट्ठि०-स्वइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सयिया सि । मणुस्सपज्ज०-मणु-सिणीसु जहण्णामहण्णाणु० क्व० ? संस्वेज्जा । एवं सम्भइ०-माहार०-आहारमिस्स० भवगइ०-अकसा०-मणपज्ज०-संभइ०-सामाइय-इदा०-परिहार०-सुइमसांपराय०-महा कप्पावसंमदे सि ।

एव परिमाणाणुगमा समधो ।

§ ९३ आवेराकी अपेक्षा नारकियेमें जपय्य और अजपय्य अनुमागबिमिच्छासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी सब पञ्चेन्द्रियधर्मों, मनुष्य अपर्वात सामान्य देव भवनवासीसे लेकर अपराभित नामक अनुत्तर तकके देव, सब विकल्पत्रिय पञ्चेन्द्रिय अपर्वात सब प्रकृषीकप्रियक सब आकायिक सब तैजसकप्रियक सब वायुकप्रियक वादर वनस्पति-कप्रियक प्रत्येकराीर तथा उनके पर्यात और अपर्वात त्रस अपर्वात वैश्वियककाययोगी वैश्वियक-मिच्छाकाययोगी विमंगलानी वेजोसेरयावाले और पद्मसेरयावालेमें जानना चाहिये । तिर्यग्गतिमें तिर्यग्गतिमें जपय्य और अजपय्य अनुमागबिमिच्छासे जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सब पञ्चेन्द्रिय सब वनस्पतिकप्रियक सब निगोविष्या औरारिकमिच्छाकाययोगी कर्माण्यकाययोगी मतिअज्ञानी, भूतअज्ञानी असंबत कृष्णसेरयावाले मीकसेरयावाले कापोतलेरयावाले अमक्य मिच्छादृष्टि, असंखी और अनाहारकमें जानना चाहिये ।

§ ९४. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें जपय्य अनुमागबिमिच्छासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजपय्य अनुमागबिमिच्छासे जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय पर्यात त्रस त्रसपर्यात पञ्चो मन्त्रेयोगी पञ्चो भवनवागी, श्रीशेदी पुरुषेशी आभिनितोपिकज्ञानी भूतज्ञानी अर्धजिज्ञानी संयतसंयत अङ्गुरांन्यासे अर्धभिरांन्यासे अङ्गुरेरावासे सम्भन्दृष्टि दायिकसम्भन्दृष्टि, वेदकसम्भन्दृष्टि उपरमसम्भन्दृष्टि, सासदसम्भन्दृष्टि सम्भम्मिच्छादृष्टि और संखी जीवोंमें जानना चाहिये । मनुष्यपर्यात और मनुष्यनियेमें जपय्य और अजपय्य अनुमागबिमिच्छा-वासे जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वाभेसिद्धि, आहारककाययोगी आहारकमिच्छाका-योगी, अपरातपेशी अकपायी, ममपयबज्ञानी संयत सामाविकसंयत देहापस्थापनासंयत परि

§ ६८. खेत्ताणुगमो दुविहो—जहएणाओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिदे सो—ओघे० आदेसे० । ओघेण मोह० उक्कस्ताणुभागविहत्तिया केवदि खेत्ते ? लोगस्स असंखे० भागे । अणुक० सव्वत्तोगे० । एवं तिरिक्खोघं एइंठिय-वादरेइंठिय- [वादरेइंठियपज्जत्तापज्ज०-सुहुमेइंठिय-] सुहुमेइंठियपज्जत्तापज्जत्त-पुढवि० वादरपुढवि० वादरपुढविअपज्ज०--सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-वादरआउ०-वादर-आउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त०-तेउ०-वादरतेउ०-वादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्ज०--वाउ०--वादरवाउ०--वादरवाउअपज्ज०--सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि--वादरवणप्फदि--वादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुम-
हारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्परायसयत और यथाख्यातसयतोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओघसे क्षपकश्रेणिके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग रहता है और ऐसे जीवोंकी सख्या सख्यात है, अत ओघसे जघन्य अनुभागवाले जीवोंका परिमाण सख्यात कहा है और शेष अनन्त जीव अजघन्य अनुभागवाले होते हैं । काययोगी आदि जिन मार्गणाओमें विवक्षित जीवराशिका प्रमाण अनन्त है और क्षपकश्रेणिके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहका जघन्य अनुभाग होता है, उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालों का परिमाण ओघके समान ही जानना चाहिये । तिर्यञ्चगति आदि जिन मार्गणाओमें जीवराशिका प्रमाण अनन्त है और जघन्य अनुभाग हतसमुत्पत्तिककर्मा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंके होता है उनमें दोनों ही अनुभागवालोंका परिमाण अनन्त कहा है । तथा नरक-गतिसे लेकर पद्मलेश्यापर्यन्तकी असख्यात राशिवाली मार्गणाओमें दोनों अनुभागवालोंका परिमाण असख्यात कहा है । सामान्य मनुष्य आदि सञ्जी मार्गणा पर्यन्त जिन मार्गणाओमें जीवराशिका प्रमाण तो असख्यात ही है, किन्तु जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणिमें या उपशमश्रेणिसे गिरे हुए जीवोंके होता है, उनमें जघन्य अनुभागवालोंका परिमाण सख्यात कहा है और अजघन्य अनुभागवालोंका परिमाण असख्यात कहा है । तथा मनुष्यपर्याप्त आदि सख्यात जीवराशिवाली मार्गणाओमें दोनों अनुभागवालोंका परिमाण सख्यात कहा है । विरोप इतना है कि इन सब मार्गणाओमें अलग अलग स्वामित्वका विचार कर यह परिमाण ले आना चाहिए । यहाँ अलग अलग स्वामित्वका उल्लेख न कर सूचनामात्र की है ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ ९८ क्षेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । अनुकृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, बादर अप्कायिक, बादर अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त,

अप्यदि-सुहुमवणप्यदिपञ्चतापञ्च-बादरवणप्यदिपचेय-बादरवणप्यदिपचेयसरीर
 अपञ्च० गिगोद०-बादरगिगोद०-बादरगिगोदपञ्चतापञ्च-सुहुमगिगोद-सुहुमगिगोद
 पञ्चतापञ्च-कायमोगि०-ओरासिय०-ओरालियमिस्स०-कम्पइय०-ज्युस० पत्तारि
 कसाय-मदिमवणाय०-मुदमवणा०-असमद-अचकसु०-किएइ-पीम-काठ०-अवसि०
 अमवसि०-मिच्छाविदि०-असशिया०-आहारि०-अणाहारि सि ।

§ ६६ सेसममाणामु उक्तस्तापुक्तस्तअणुभागविहतिपा बीवा सोम० असस्ते०
 भाग । णवरि बादरवारपञ्चतपसु उक्तस्तापुभागविहतिपा बीवा लोमस्त असंस्ते०
 भागे । अणुक्त०अणुभाग० बीवा सोम० संस्ते०भागे ।

एषमुक्तस्ताणुभामस्तेताणुगमो समधो ।

§ १०० जइस्याए पयदं । इदिहो गिहोसो—भोष० आदेसे० । ओषेण
 मोह० जइयाणुभागविहतिपा केवदि सत्ते ? लोमस्त असंस्ते०भागे । अम० सख

बनस्पतिकामिक, बादर बनस्पतिकामिक, बादर बनस्पतिकामिक पर्याप्त, बादर बनस्पतिकामिक
 अपर्याप्त, सूक्ष्म बनस्पतिकामिक सूक्ष्म बनस्पतिकामिक पर्याप्त, सूक्ष्म बनस्पतिकामिक अपर्याप्त,
 बादर बनस्पतिप्रत्येकरारीर, बादर बनस्पति प्रत्येकरारीर अपर्याप्त निगादिया, बादर निगोदिया,
 बादर निगोदिया पर्याप्त बादर निगोदिया अपर्याप्त सूक्ष्म निगादिया, सूक्ष्म निगादिया पर्याप्त,
 सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त, काययोगी औदारिककाययोगी, औदारिकमिजकाययोगी कार्म्य-
 काययोगी ननुसकवेदी कोपी, मानी, मायावी लोमी मतिअज्ञानी, अज्ञानानी, असंयत
 अज्ञानपर्याप्तान्ते, कृष्ण नील और कापाठ जेरयावाले, मध्य, अमध्य, मिध्याष्टि, असंक्षी
 आहारी और अनाहारिभेदि जानना चाहिये ।

§ ९९. रोप मार्गवाधोमें उक्त और अनुक्त अनुभागविमच्छिवाले जीवोंका क्षेत्र
 लाकके असंख्यातर्षे भाग प्रमात्र है । इतनी विरोधता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तकोमें उक्त
 अनुभागविमच्छिवाले जीवोंका क्षेत्र लोका असंख्यातर्षा भाग है और अनुक्त अनुभागविमच्छि-
 वालोंका क्षेत्र लोका संख्यातर्षा भाग है ।

विशेषार्थ—वर्तमानमें उक्त अनुभागवाले जीव लोकाके असंख्यातर्षे भागप्रमाण क्षेत्रमें
 ही पाये जाते हैं क्योंकि संक्षी पञ्चोन्त्रिच पर्याप्त मिध्याष्टि जीव ही मोहका उक्त अनुभाग-
 म्य करते हैं । और भात किसे बिना इनके अन्य इन्त्रिचवालोंमें वरपन्न होमे पर वहाँ उक्त
 अनुभाग वेला जाता है, इसलिये ओषसे इनका क्षेत्र लोका असंख्यातर्षा भाग है और अनुक्त
 अनुभागवालोंका क्षेत्र सर्वलोका है यह स्पष्ट ही है । इसी प्रकार आदेरासे जिन जीवोंका क्षेत्र
 सर्वे लाक है वममें ओषकी ही तरह क्षेत्र होता है । रोप मार्गवाधोमें दोनों ही अनुभागवालोंका
 क्षेत्र लाकका असंख्यातर्षा भाग है । फलन बादर वायुकायिकपर्याप्तकोमें उक्त अनुभागवालोंका
 क्षेत्र लाकका असंख्यातर्षा भाग है और अनुक्त अनुभागवालोंका क्षेत्र लाकका संख्यातर्षा भाग
 है क्योंकि वे जीव लोकाके संख्यातर्षे भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

इस प्रकार उक्तानुभाग क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ १ अब प्रकृतमें जपन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—आप और आदेश ।
 ओषसे मोहरीयकर्मके जपन्य अनुभागविमच्छिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकाके असंख्या-

लोगे । एवं कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०--चत्तारिकसाय-अचक्खु०--भवसि०-आहारि ति ।

§ १०१. आदेसेण णेरइएसु मोह० जहण्णाजहण्णाणुभाग० केव० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्व-विगल्लिदिय--सव्वपंचिदिय--वाटरपुढविपज्ज०--वाटरआउपज्ज०--वाटरतेउपज्ज०--वाटर-वणप्फट्टिपत्तेयसरीरपज्ज०--सव्वतसकाय०--पंचमण०--पंचवचि०--वेउव्विय०--वेउव्विय-मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अक्रसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०--सुहुमसांपराय-जहाक्वाद०-संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ०-पम्म०-सुक०--सम्मादिट्ठि०-चेदग०-खइय०-उव-सम०-सासण०-सम्माभि०-सणिए ति ।

§ १०२. तिरिक्खवर्गइए तिरिक्खेसु मोह० जहण्णाजहण्णाणुभागविहत्तिया केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । एवमेइंदिय-वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमे-इंदियपज्जत्तापज्जत्त--पुढवि०-- वादरपुढवि०-- वादरपुढविअपज्ज०--सुहुमपुढवि०--सुहुम-पुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०--वादरआउ०- वादरआउअपज्ज०--सुहुमआउ०--सुहुमआउ-

तवें भागप्रमाण क्षेत्र है । अजघन्य अनुभागविभक्तिकेवाले जीवोंका सब लोक क्षेत्र है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोमे जानना चाहिए ।

§ १०१ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभाग-विभक्तिकेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पञ्चेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अष्कायिक पर्याप्त, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सब त्रसकायिक, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिक-काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुष-वेदी, अपगतवेदी, अरुषायी, विभगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्पराय-सयत, यथाख्यातसयत, सयतासयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सही जीवोंमें जानना चाहिए ।

§ १०२ तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मकी जघन्य और अजघन्य अनुभाग-विभक्तिकेवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अष्कायिक, बादर अष्कायिक, बादर अष्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अष्कायिक, सूक्ष्म अष्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अष्का-

पञ्चचापञ्चत्-तं०-बादर०-तेठबादरतेठअपञ्च०-सुहुमतेठ०-सुहुमतेठपञ्चचापञ्चत्-
 बा०-बादरबा०-बादरबा०अपञ्च०-सुहुमबा०-सुहुमबा०पञ्चचापञ्चत्-सव्यवपफदि
 सव्यविगोद-भोराखियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदमएयापि०-असंभद०-किपइ-भीम-
 का०-अमभसि०-मिच्छादिदि-असपिया०-अणाहारि ति । बादरबा०पञ्च० ज० अम०
 खेगस्स संसे०भागो ।

एवं सेचाणुगमो समचो ।

§ १०३ पोसणाणुगमो दुविहो—अइएणामो उक्कस्समो चेदि । उक्कसे पयदं ।
 दुविहो णिहोसो—ओपे भादेसे०। ओपेण मोह० उक्कस्साणुभागविहृतिपहि केवडियं
 सेत्तं पोसिदं ? सोग० असंसे०भागो अहचोइसमागा वा देसणा सव्यखेगो वा ।
 अणुक० सम्भलोगो ।

यिक अपर्याप्त, तैजस्कायिक, बादर तैजस्कायिक बादर तैजस्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्का-
 यिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक,
 बादर वायुकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक
 अपर्याप्त सब वनस्पतिकायिक, सब निगोहिया, औदारिकमिमकाययोगी, कामंयाकाययोगी मति-
 अज्ञानी, सुवअज्ञानी असंयत कृप्यशेरबावासे नीलसेरबावासे, कापेतसेरबावासे, अमम्य
 मिष्यादृष्टि, अस्तंही और अनाहारकमि जानना बाहिए । बादर वायुकायिक पर्याप्त बीबोंमे
 अमम्य और अमम्य अणुभागविहृतिवास बीबोंका क्षेत्र लोकके संख्यातर्षे माग प्रमाय है ।

विशेषार्थ—आपसे अपम्य अणुभागका सब रूपक सूक्ष्मसाम्पराधिकके अन्विम समय
 में होता है, अतः ओपसे अपम्य अणुभागवासोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातर्षे माग और
 अमम्य अणुभागवासोंका क्षेत्र सबलोक कहा है । जिन मागवासोंमें बीबोंका क्षेत्र सब लोक है
 तथा अपम्य अणुभाग मी ओपकी तरह होता है उनमें ओपकी तरह क्षेत्र कहा है । जैसे अम-
 योगी अन्वि । आधेरासे नरकगतिसे लेकर संही पर्यन्त जिन मार्गवासोंमें बीबोंका क्षेत्र लोकका
 असंख्यातर्षे माग है उनमें अपम्य और अमम्य अणुभागवासोंका क्षेत्र लोकका असंख्यातर्षे
 माग कहा है । तथा सामान्य तिर्यंकोंमें और एकेन्द्रियसे लेकर अनाहारक पर्यन्त जिन मार्गवासों
 में बीबोंका क्षेत्र सर्व लोक है तथा अपम्य अणुभाग इतसमुत्पतिकर्मा एकेन्द्रिय बीबके पाया
 जाता है उनमें अपम्य और अमम्य अणुभागवासोंका क्षेत्र सर्व लोक कहा है । केवल बादर
 वायुकायिकपर्याप्तक बीबोंमें दोनो विमक्तियोंका लोकका संख्यातर्षे माग क्षेत्र कहा है, क्योंकि
 इस मार्गवासका क्षेत्र ही इतना है ।

इय प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ११ स्पर्शानुगम दो प्रकारका है—अपम्य और अकृष्ट । अकृष्टसे प्रयोजन है ।
 निर्देरा दो प्रकारका है—ओपनिर्देरा और आधेरानिर्देरा । ओपसे मोहनीयकमकी अकृष्ट
 अणुभागविमक्तियासे बीबोंके कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातर्षे माग क्षेत्रका,
 लोकके बीबह मतों मे से कुछ कम आठ माग प्रमाय क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया
 है । अणुकृष्ट अणुभागविमक्तियासे सब लोकका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—ओपसे अकृष्ट अणुभागवासोंमे मार्गान्तिक और अपपारकी अपेक्षा सर्व लोक

१०४. आदेशेण णेरडएमु उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० केव० ? लोग० असंखे०-
भागो छचोदसभागा वा देसूणा । पढमपुढवि० खेत्तभंगो । विट्ठियादि जाव सत्तमि
त्ति मोह० उक्क० अणुक्क० लोग० असखे०भागो एग०--३-तिण्ण--त्तारि--पंच-ञ्च-
चोदस० देसूणा ।

१०५. तिरिक्खेसु मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सच्चलोगो वा ।
अणुक्क० ओघं । सच्चपंचिदियतिरिक्ख०-सच्चमणुस्स० उक्कस्साणुक्कस्स० लोग० असंखे०-
भागो सच्चलोगो वा । णवरि पंचिदियतिरिक्ख-मणुस्सअपज्जत्ताणमृक्क० खेत्तभंगो ।
देव० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० केव० ? लोग० असंखे०भागो अट्ट-णव चोदसभागा
देसूणा पोसिदा । एवं सच्चदेवाणं । णवरि सग-सगपोसणं जाणिय वत्तच्चं ।

क्षेत्रका स्पर्शन किया है, तथा वेदना, कपाय, विहारवनस्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातकी
अपेक्षा वर्तमान कालमें लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है और अतीत कालमें कुछ
कम आठ वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागवाले चूँकि सर्व लोकमें
पाये जाते हैं, अत उन्हींमें सम्भव पदोंके द्वारा सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

१०४ आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वालोंने कितने क्षेत्रका
स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकके चौदह भागोंमें से कुछ कम
छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भग है। दूसरीसे लेकर
सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वालोंने लोकके अस-
ख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पाँच
और छह भागोंका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और
अतीत स्पर्शन कुछ कम छह वटे चौदह राजुप्रमाण है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें वर्तमान स्पर्शन
तो इतना ही है और अतीत स्पर्शन क्रमसे कुछ कम एक वटे चौदह राजुप्रमाण आदि है। यत
इन दोनों प्रकारके स्पर्शनके समय मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है,
अत. इनका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान ही है, अत इसमें
दोनों प्रकारकी विभक्तित्वालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

१०५ तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले जीवोंने लोकके अस-
ख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वालोंका
स्पर्शन ओघके समान है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च
और सब मनुष्योंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है। इतनी
विशेषता है कि उत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकों
का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले देवोंने कितने क्षेत्रका
स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और
कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें स्पर्शन कहना चाहिये।
इतनी विशेषता है कि अपने अपने स्पर्शनको जानकर कथन करना चानिये।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके समय भी मोहनीयकी

१०६ एइन्द्रियसु मोह० उच्छस्ताणु० क० स्वेत पोसिर्द ? लाग० अर्सस० भागो सम्बन्धो वा । अधुक्स्ताणु० सम्बन्धो । एवं बादरेइन्द्रिय-बादरेइन्द्रियपञ्जता पञ्च-सुहृमइन्द्रिय-सुहृमइन्द्रियपञ्चषापञ्जताणं । सम्बन्धिगल्लिन्द्रिय-पंचिन्द्रियमपञ्च० तसमपञ्चताणं च पंचिन्द्रियतिरिक्त्वापञ्चतर्पणा । पंचिन्द्रिय-पंचि०पञ्च० उच्छस्ताणु उच्छस्ताणुभाग० क० स्वत पोसिर्द ? लाग० अर्सस० भागा मह० पाइस० सम्बन्धो वा । एवं तस-तसपञ्च०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्यि० पुरिस०-वक्त्तु० सपिणा पि ।

उच्छ्र अनुभागविभक्ति सम्भव है, इसलिये इनमें उच्छ्र अनुभागविभक्तियाँ लोका स्पर्शन साकके असंख्यातबे भागप्रमाण कहकर भी सब साक कहा है । इनमें अनुच्छ्र अनुभागविभक्तियाँ लोका स्पर्शन आपके समान सब साकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । सब पञ्चेन्द्रिय तियञ्च और सब मनुष्योंमें शानों प्रकारका स्पर्शन साकके असंख्यातबे भागप्रमाण और सब साकप्रमाण स्पर्शन इसी प्रकार पठित कर सना चाहिए । मात्र पञ्चेन्द्रियतियञ्चअपयार्त और मनुष्य अपयार्तकोमें ऐसे जीवोंके ही उच्छ्र अनुभागविभक्ति सम्भव है या अनुभागका पात किये बिना इन पयायोमें उत्पन्न हुए हैं । यतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन साकके असंख्यातबे भागसे अधिक सम्भव नहीं है, अतः इन शानों मार्गशाश्रोमें उच्छ्र अनुभागविभक्तियाँ लोका जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । शोमें और उनका अन्तर्गत शेषोंमें आ उनका अपना स्पर्शन है वह यहाँ शानों विभक्तियोंकी अपघा बन जाता है, इसलिये वह उच्छ्रप्रमाण कहा है ।

१०६ एकेन्द्रियोमे माहनीपकमयी उच्छ्र अनुभागविभक्तियाँ लोके कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? साकके असंख्यातबे भाग और सब साकका स्पर्शन किया है । अनुच्छ्र अनुभागविभक्तियाँ लोके सब साकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार बादर एकन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय पयास बादर एकेन्द्रिय अपयार्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय सूक्ष्म एकेन्द्रिय पयार्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपयातकोके जानना पर्यये । सब विच्छ्रेन्द्रिय पञ्चेन्द्रियअपयार्त और त्रसअपयातकोमें पञ्चेन्द्रियतियञ्चअपयार्तकोके समान मंग है । उच्छ्र और अनुच्छ्र अनुभागविभक्तियाँ लोका पञ्च त्रियों और पञ्च त्रियपयातकोके कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? साकके असंख्यातबे भाग और मागोमेंसे कुछ कम अल्प माग और सब साकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार त्रस, त्रसपयात यौवो ममायागी यौवो वचनयागी श्रीवरी पुण्यवरी पशुहरानचाल और संती जीवों में स्पर्शन जानना चाहिए ।

विश्वार्थ-आ मनुष्य या तियञ्च उच्छ्र अनुभागका वचनकर तथा हमका पाल किये बिना उच्छ्र एकन्द्रियोंमें उत्पन्न होत हैं इन्हींके उच्छ्र अनुभाग सम्भव है । एष जीवोंका बनवान स्पर्शन साकके असंख्यातबे भागप्रमाण होता है इसलिये वह उच्छ्रप्रमाण कहा है । किन्तु एषे एकन्द्रियोंका अतीत स्पर्शन सब साक है, इसलिये वह उच्छ्रप्रमाण कहा है । इनमें अनुच्छ्र अनुभाग के वचन जीवोंका अथ साकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है । विच्छ्रप्रय और त्रस अपयार्तको का मात्र पञ्च त्रियतियञ्चअपयार्तकोके समान है यह भी स्पष्ट है । यौवो पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पयातकोका वचन स्पर्शन साकके असंख्यातबे भागप्रमाण ही है किन्तु विच्छ्रविहृती अपघा इनका अतीत समान कुछ कम अल्प अल्प और अनुपमान और मारण्यनिक परकी अपघा सब साकप्रमाण बन जाता है, इसलिये इनमें माहनीयक उच्छ्र अनुभागके वचन जीवोंका स्पर्शन उच्छ्र हीन प्रकारका कहा है । इसी प्रकार त्रस अथि आ शर मागमात्रे मूनमें गितार्त हैं इनमें भी यह स्पर्शन पठित कर लेना पर्यये । इन पञ्चेन्द्रिय अथि मागमात्रोमें माहनीयक अनुच्छ्र

§ १०४. आदेशेण णेरइएसु उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० केव० ? लोग० असंखे०-भागो छचोदसभागा वा देसूणा । पढमपुढवि० खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति मोह० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो एग०--वे--तिण्ण--त्तारि--पंच-छ-चोदस० देसूणा ।

§ १०५. तिरिख्वेसु मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अणुक्क० श्रोथं । सव्वपंचिदियतिरिख्व०-सव्वमणुस्स० उक्कस्साणुक्कस्स० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । णवरि पंचिदियतिरिख्व-मणुस्सअपज्जत्ताणमुक्क० खेत्तभंगो । देव० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० केव० ? लोग० असंखे०भागो अट्ट-णव चोदसभागा देसूणा पोसिदा । एवं सव्वदेवाणं । णवरि सग-सगपोसणं जाणिय वत्तव्वं ।

क्षेत्रका स्पर्शन किया है, तथा वेदना, कषाय, विहारवत्स्वस्थान और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा वर्तमान कालमें लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है और अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागवाले चूँकि सर्व लोकमें पाये जाते हैं, अत उन्हींमें सम्भव पदोंके द्वारा सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ १०४ आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भग है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वालोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पाँच और छह भागोंका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण है। द्वितीयादि पृथिवियोंमें वर्तमान स्पर्शन तो इतना ही है और अतीत स्पर्शन क्रमसे कुछ कम एक बटे चौदह राजुप्रमाण आदि है। यत इन दोनों प्रकारके स्पर्शनके समय मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, अतः इनका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान ही है, अत इसमें दोनों प्रकारकी विभक्तित्वालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

§ १०५ तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकर्मके उत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वालोंका स्पर्शन श्रोषके समान है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है। इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकों का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तित्वाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सब देवोंमें स्पर्शन कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपने अपने स्पर्शनको जानकर कथन करना चानिये।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके समय भी मोहनीयकी

काय-सम्बन्धिगोदात्मैर्दियमंगा । बादरवगपफदिकइयपत्तेयसरीरपञ्चसापञ्चतानं
बादरपुडविकाइयमंगो ।

१०८ शोगाणु० कायमोगि० उक्त० शोग० असंसे० भागो महचोइस० सम्ब
सोगो वा । अणुक्त० सम्बलोगो । एयपोरात्रियकायमोगि० । णवरि अहचोइसभागा पत्तिय ।
ओरात्रियमिस्त० उक्तस्ताणु० के० ख० पा० १ शोग० असंसे० भागो सम्बसागो वा ।
अणुक्तस्ताणु० सम्बसोगो । एय कम्पाइय०-णवुंस-चचारिकसाय-मदि-मुदअण्णाण०
असंमद०-अचवसु०-किरइ-णील-काच० मवसि०-अमवसि०-मिच्छादिदि-मसयिया०
आहारि अणाहारि चि । पठम्बिय० उक्तस्ताणुक्तस्ताणु० क० से० पो० १ शोग०

स्पर्शन किया है । सब बन्स्पतिकप्रतिक और सब निग्पादियोंमें एकेन्द्रिकके समान मंग है ।
बादर बन्स्पतिकप्रतिक प्रत्येकरापीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्तोंमें बादर पृथिवीकायिकके
समान मंग है ।

निष्पेपार्थ-एकेन्द्रियोंमें माहनीबके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागके कन्धकोंका जिस
प्रकार स्पर्शन पतित करके बतला आये हैं वही प्रकार पृथिवीकायिक, अन्नकायिक, अग्निकायिक
और वायुकायिकमें तथा इन चारोंके सूक्ष्मोंमें और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्तोंमें पतित
कर सेना चाहिए । उत्कृष्ट अनुभागविमिच्छितसे पुक्त बादर पृथिवीकायिक और इनके पर्याप्त और
अपर्याप्त जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके अस्तंभ्यात्तर्षे भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन तीबरे
कुञ्ज कम बह और ऊपर कुञ्ज कम सात रासु कुत कुञ्ज कम वेगह बटे चौदह रज्जु प्रभाव होनेसे
पह उत्कृष्टप्रमाण कहा है । इनके अनुरक्त अनुभागविमिच्छितासोंका स्पर्शन लोकके अस्तंभ तर्षे
भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ तक जा स्पर्शन पतित करके बतलाया
है उसे ध्यानम लेकर स्वात्वरकप्रतिक जीवोंके शेष मेंही मी स्पर्शन पतित कर सेना चाहिए ।
मात्र बादर अन्निकायिक पर्याप्त जीवोंका स्पर्शन वा प्रकारसे बतलाया है । प्रथम वा उत्कृष्ट
अनुभागविमिच्छितकी अपेक्षा लोकके अस्तंभ्यात्तर्षे भागप्रमाण स्पर्शन बतलाया है । सो यह स्पर्शन
बतलाते समय बादर अन्निकायिक पर्याप्त जीव सब पृथिवियोंमें उपलब्ध होते हैं यह दृष्टि
मुक्य नहीं है तथा दूसरी अपेक्षासे जो कुञ्ज कम वेगह बटे चौदह रज्जुप्रमाण स्पर्शन कहा है
सो ऐसा कहते समय उन आबाबोंका अमिमाय मुक्य रहा है जा वह मानते हैं कि बादर
अन्निकायिक पर्याप्त जीव सब पृथिवियोंमें उपलब्ध होते हैं । शेष कवन मुक्य है ।

१०८ शोगकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविमिच्छितासे कायवागियोंमें लोकके अस्तंभ्यात्तर्षे
भागका, चौदह भागमेंसे कुञ्ज कम आठ भागका और सर्वलोकका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट
अनुभागविमिच्छितासोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार औदरिककाययोगियोंमें
मानना चाहिए । किन्तु इतनी विरोधता है कि इनमें चौदह भागमेंसे कुञ्ज कम आठ भागप्रमाण
स्पर्शन नहीं है । उत्कृष्ट अनुभागविमिच्छितासे औदरिकमिन्नकाययोगियोंमें कितने क्षेत्रका
स्पर्शन किया है ? लोकके अस्तंभ्यात्तर्षे भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट
अनुभागविमिच्छितासोंने सर्व लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार कर्मण्यकाययोगी मनुसकवरी,
कोधी, मान्दी मायावी सोमी मतिधज्जानी जलधज्जानी अस्तंभ अचभुदरागवाले कृष्णलेख-
बासे, श्रील्लेखवालासे कापात्लेखवाले मन्त्र अमन्त्र, मिच्छादृष्टि अस्तंभी आहारक और
अनाहारकोंमें मानना चाहिए । उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविमिच्छितासे वैश्वविककाययोगियोंमें

§ १०७. कायाणुवादेण पुढवि० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असखे०भागो सव्वलोगो वा । अणुक० सव्वलोगो । एव सुहुमपुढवि सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-सुहुमआउ०--सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त--तेउ०--सुहुमतेउ०--सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-आउ०--सुहुमवाउ०--सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्ता ति । वादरपुढवि० वादर-पुढविअपज्ज० मोह० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असखे०भागो तेरहचोदसभागा वा देसूणा पोसिदा । अणुक० लोग० असखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं वादरपुढविपज्जताण । वादरआउ०--वादरआउपज्जत्तापज्जताणं उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असखे०भागो सव्वलोगो वा । एवमणुकस्साणुभागस्स वि वत्तव्वं । वादरतेउ-वादरतेउअपज्जत्ताण वादरपुढविभंगो । वादरतेउपज्ज० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असखे०भागो । सव्वपुढवीसु अत्थित्तं भणताणं अहिप्पाएण तेरहचोदसभागा । वादरवाउ-वादरवाउअपज्ज० वादरआउभंगो । वादरवाउ०पज्ज० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असखे०भागो सव्वलोगो वा । अणुक० लोगस्स संखे०भागो सव्वलोगो वा । सव्ववणप्फदि-
अनुभागके बन्धक जीवोंका यह स्पर्शन उत्कृष्टके समान ही घटित कर लेना चाहिये ।

§ १०७ कायकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले पृथिवीकायिक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने सब लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिकअपर्याप्त, अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिकपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिकअपर्याप्त, तैजसकायिक, सूक्ष्म तैजसकायिक, सूक्ष्म तैजसकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजसकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तकोमे जानना चाहिए । मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकोमे जानना चाहिए । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर अप्कायिक और वादर अप्कायिक पर्याप्तक तथा वादर अप्कायिक अपर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने भी स्पर्शन कहना चाहिये । वादर तैजसकायिक और वादर तैजसकायिक अपर्याप्तकोमे वादर पृथिवीकायिकको समान भग है । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर तैजसकायिक पर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । जो सब पृथिवियोंमें उनका अस्तित्व मानते हैं उनके मतसे चौदह भागों मेंसे तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वादर वायुकाय और वादर वायुकाय अपर्याप्तको मे वादर अप्कायके समान भग है । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर वायुकायिक पर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके सख्यातवें भाग और सब लोकका

काश्य-सम्बन्धिगोदात्म्येईदियर्मगो । बादरवणपफदिकाश्यपधेयसरीरपञ्जतापस्वताम
बादरपुडविकाश्यर्मगो ।

§ १०८ नोगाणु० कायनोगि० उक्त० लो० अर्ससे० भागो अहचोरस० सम्ब
ल्येगो वा । अणु० सम्बन्धो० एषमोराखियकायनोगि० । एवरि अहचोरसभागा गत्यि ।
ओराखियमिस्स० उक्तसाणु० के० से० पा० । लो० अर्ससे० भागो सम्बन्धगो वा ।
अणुकस्ताणु० सम्बन्धो० । एवं कम्पइय० जर्जुस-वचारिकसाय-मदि-मुदअणुगाण०-
मर्सबद०-अचकस्तु०-किरइ-गीख-कास० मवसि०-अमवसि० मिच्छादिदि-असपिष्ठा०
आहारि अणाहारि चि । वेदविय० उक्तसाणुकस्ताणु० के० ख० पो । लो०

स्पर्शन किया है । सब बन्धनप्रतिक्रमिक और सब निगादिवोंमें एकेत्रियके समान मंग है ।
बादर बन्धनप्रतिक्रमिक प्रत्येकरावीर तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्तोंमें बादर प्रविष्टिक्रमिकके
समान मंग है ।

विशेषार्थ-एकेत्रियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागके बन्धनोंका जिस
प्रकार स्पर्शन पटित करके बतला आने हैं वसी प्रकार प्रविष्टिक्रमिक, मल्लक्रमिक अम्लिक्रमिक
और वायुक्रमिकमें तथा इन चारोंके सूक्ष्मोंमें और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्तोंमें पटित
कर लेना चाहिये । उत्कृष्ट अनुभागविमल्लिकसे कुछ बादर प्रविष्टिक्रमिक और इनके पर्याप्त और
अपर्याप्त जीवोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके अर्धव्यातर्बे भागप्रमास्य और अतीत स्पर्शन नीचे
कुछ कम बह और ऊपर कुछ कम सात रासु कुछ कुछ कम तरह बट चौबह रासु सम्भव होनेसे
यह उत्कृष्टप्रमास्य फरा है । इनके अनुकृष्ट अनुभागविमल्लिकालोंका स्पर्शन लोकके अर्धव्यातर्बे
भागप्रमास्य और सब साकप्रमास्य है, यह स्पष्ट ही है । यहाँ तक जा स्पर्शन पटित करके बतलाबा
है उसे ध्यानमें लेकर स्वावरकमिक जीवोंके शेष भेदोंमें भी स्पर्शन पटित कर लेना चाहिए ।
मात्र बादर अम्लिक्रमिक पर्याप्त जीवोंका स्पर्शन वा प्रकारसे बतलाबा है । प्रथम वा उत्कृष्ट
अनुभागविमल्लिकी अपेक्षा लोकके अर्धव्यातर्बे भागप्रमास्य स्पर्शन बतलाबा है । सा यह स्पर्शन
बतलाते समय बादर अम्लिक्रमिक पर्याप्त जीव सब प्रविष्टियोंमें उफलाध्य होते हैं यह दृष्टि
सुख्य नहीं है तथा बूसरी अपेक्षासे जो कुछ कम तरह बटे चौबह रासुप्रमास्य स्पर्शन फरा है
सो ऐसा करते समय उन आधावोंका अमिप्राब सुख्य रहा है जो यह मानते हैं कि बादर
अम्लिक्रमिक पर्याप्त जीव सब प्रविष्टियोंमें उफलाध्य हाते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ १०९ योगकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविमल्लिकाल काययागिवोंमें लोकके अर्धव्यातर्बे
भागका, चौबह भागमेंसे कुछ कम आठ मंगका और सर्वलोकक स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट
अनुभागविमल्लिकालोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार औदारिककाययागिवोंमें
जानना चाहिये । किन्तु इतनी शिरोयता है कि उनमें चौबह भागमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमास्य
स्पर्शन नहीं है । उत्कृष्ट अनुभागविमल्लिकाले औदारिकमिप्रकाययागिवोंने कितने क्षेत्रका
स्पर्शन किया है ? लोकके अर्धव्यातर्बे भागका और सर्वलोकका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट
अनुभागविमल्लिकालोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार कर्मसकलयोगी नृपुंसकवेदी,
श्लेषी, मान्नी मायावी शामी मतिअज्ञानी भ्रुतअज्ञानी अर्धव्यात अणुधुराननाले इत्यादिदेवता-
वाले, नीलसेरवावाले कापोत्सेरवावाले मध्य अमध्य मिच्छादृष्टि, अर्धव्यात आहारक और
अनहारकोंमें जानना चाहिये । उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविमल्लिकाले वैदिकिककावयोगिवोंने

§ १०७. कायाणुवादेण पुढवि० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सच्चलोगो वा । अणुक० सच्चलोगो । एवं सुहुमपुढवि-सुहुमपुढवि-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-सुहुमआउ०--सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त--तेउ०--सुहुमतेउ०--सुहुमतेउ-पज्जत्तापज्जत्त--वाउ०--सुहुमवाउ०--सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्ता त्ति । वादरपुढवि०-वादर-पुढविअपज्ज० मोह० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो तेरहचोदसभागा वा देसूणा पोसिदा । अणुक० लोग० असंखे०भागो सच्चलोगो वा । एवं वादरपुढविपज्जत्ताण । वादरआउ०--वादरआउपज्जत्तापज्जत्ताणं उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो सच्चलोगो वा । एवमणुकस्साणुभागस्स वि वत्तव्वं । वादरतेउ-वादरतेउअपज्जत्ताण वादरपुढविभंगो । वादरतेउपज्ज० उक्कस्साणुभाग० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो । सच्च-पुढवीसु अत्थित्तं भणताणं अहिप्पाएण तेरहचोदसभागा । वादरवाउ-वादरवाउ-अपज्ज० वादरआउभंगो । वादरवाउ०पज्ज० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०-भागो सच्चलोगो वा । अणुक० लोगस्स संखे०भागो सच्चलोगो वा । सच्चवणप्फदि-अनुभागके बन्धक जीवोंका यह स्पर्शन उत्कृष्टके समान ही घटित कर लेना चाहिये ।

§ १०७ कायकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले पृथिवीकायिक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने सब लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिकअपर्याप्त, अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिकपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिकअपर्याप्त, तैजसकायिक, सूक्ष्म तैजसकायिक, सूक्ष्म तैजसकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तैजसकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तकोमे जानना चाहिए । मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर पृथिवीकायिक और वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकोमें जानना चाहिए । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर अप्कायिक और वादर अप्कायिक पर्याप्तक तथा वादर अप्कायिक अपर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने भी स्पर्शन कहना चाहिये । वादर तैजसकायिक और वादर तैजसकायिक अपर्याप्तकोमे वादर पृथिवीकायिकको समान भग है । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर तैजसकायिक पर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । जो सब पृथिवियोंमे उनका अस्तित्व मानते हैं उनके मतसे चौदह भागों मेंसे तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वादर वायुकाय और वादर वायुकाय अपर्याप्तको मे वादर अप्कायके समान भग है । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले वादर वायुकायिक पर्याप्तकोने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके सख्यातवें भाग और सब लोकका

पो० ? सो० अससे० भागो अहचोरस० देसणा । एबमोहिईस०-सम्मादिदि०-वेदय०
सहय०-सवसम०-सम्मादिदि० ति ।

११० संभदासंभद० उहस्ताणुहस्ताणु० के० से० पो० ? सोग०
अससे० भागो अहचोरस० देसणा । एबं मुहसे० । तेठ०-पम्म० सोहम्म-सण्णकुमार
यंगो । सासण० योह० उहस्ताणुहस्ताणु० क० से० पो० ? सोग० अससे० भागो
अह-बारहचोरसमाग देसणा ।

एवमुहस्तभा पोसणाणुगमो समणो ।

भुतझानी और अविज्ञानी जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातबें
मागका और बौद्ध मार्गमेंसे कुछ कम आठ भागका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार अवि-
दरान्वाले, सम्बन्धि वेदकसम्बन्धि, हायिकसम्बन्धि, उपरामसम्बन्धि और सम्बन्ध्या-
दृष्टियोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—विमङ्गलानियोंने वर्तमानमें लोकके असंख्यातबें भागप्रमाण्य क्षेत्रका बिहार
कल्पस्थानकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे बौद्ध अनुका और मारणागिक पक्की अपेक्षा सब
लोकका स्पर्शन किया है । इनके इन सब स्पर्शनोंके समय दोनों विमङ्गलों सम्भव हैं, इसलिये
इनमें दोनों विमङ्गलोंका स्पर्शन एक प्रमाण्य कहा है । आमिनिबोधिकझानी आदि जीवोंने
वर्तमानमें लोकके असंख्यातबें मागका और बिहारपक्की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे बौद्ध
अनुका स्पर्शन किया है । इनके इन दोनों प्रकारके स्पर्शनोंके समय उक्त और अनुका अनुभाग-
विमङ्गल सम्भव है, इसलिये इनमें दोनों विमङ्गलोंका स्पर्शन एक प्रमाण्य कहा है । यद्यपि इन
भाग्याओंमें उपाह पक्की अपेक्षा कुछ कम आठ बटे बौद्ध अनुप्रमाण्य स्पर्शन भी उक्त
होता है, पर इसका अन्तर्भाव कुछ कम आठ बटे बौद्ध अनुप्रमाण्य स्पर्शनमें ही जाता है,
इसलिये इसका अन्तर्भाव नित्य नहीं किया है । यहाँ मूलमें अविदरान्वाले आदि या अन्य
भाग्याएँ कहीं हैं उनमें दोनों विमङ्गलोंका स्पर्शन आमिनिबोधिकझानी जीवोंके समान प्राप्त
हानेसे यह उनके समान कहा है ।

११ उक्त और अनुका अनुभागविमङ्गलाले संवत्सर्ववर्षोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन
किया है ? लोकके असंख्यातबें मागका और बौद्ध मार्गमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण्य
क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सुद्धसेरयाबालोंमें जानना चाहिए । तेजोलेरया और पद-
लेरयाबाले जीवोंके सौम्य और सनकुमार कल्पके समान मंग हाता है । माहनीयकी उक्त और
अनुका अनुभागविमङ्गलाले साम्प्रदानसम्बन्धियाने किगमे क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके
असंख्यातबें मागका और बौद्ध मार्गमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भाग
प्रमाण्य क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—संवत्सर्ववर्षोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातबें भागप्रमाण्य और अतीव
स्पर्शन कुछ कम आठ बटे बौद्ध अनुप्रमाण्य है । इनके इन दोनों प्रकारके स्पर्शनोंके समय दोनों
विमङ्गलों सम्भव है, इसलिये इनमें दोनों विमङ्गलोंका स्पर्शन एक प्रमाण्य कहा है । सुद्धसेरया-
बालोंमें इसी प्रकार पाठित कर जाना चाहिए । पीछेसेया सौम्य और पेशान कल्पबालोंके तथा
पदलेरया सनकुमार आदि कल्पबालोंके हावी है, इसलिये इन दोनों संवत्सर्ववर्षोंमें दोनों विमङ्ग-
लोंका स्पर्शन मूलसे सौम्य और सनकुमारके देवोंके समान कहा है । सासाणसम्बन्धियों

असखे०भागो अट्ट-तेरहचोदस० देसूणा । वेजव्वियमिस्स० उक्कस्साणुक्कस्साणु० के० खे० पो० ? लोग० असखे०भागो । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाट०संजटे ति ।

§ १०६. विहंगणाणि० उक्कस्साणुक्कस्साणुभाग० के० खे० पो०? लोग० असखे० भागो अट्टचोदस० सव्वलोगो वा । आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्क० अणुक्क० के० खे०

कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भागका और चौदह भागोंसे कुछ कम तेरह और कुछ कम आठ भागका स्पर्शन किया है । उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तियाँ वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थानासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसाम्पराय-सयत और यथाख्यातसयतोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तियाँ वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजु है और ऐसे जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, अतः इस अपेक्षासे सब लोकप्रमाण स्पर्शन सम्भव है इसलिए योगकी अपेक्षा सामान्य काययोगियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तियाँ उक्त प्रमाण स्पर्शन कहा है । इनमें अनुकृष्ट अनुभागविभक्तियाँ सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है । औदारिककाययोगियोंमें इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । मात्र कुछ कम आठ वटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन देवोंके विहारस्वस्थान आदिकी मुख्यतासे कहा है पर देवोंके औदारिककाय योग नहीं होता, इसलिए औदारिककाययोगियोंमें इस स्पर्शनका निषेध किया है । उत्कृष्ट अनुभागविभक्तियाँ औदारिकमिश्रकाययोगियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भाग-प्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिये इनमें यह उक्त प्रमाण कहा है । तथा औदारिकमिश्रकाययोगका स्पर्शन सर्वलोक है, इसलिए इनमें अनुकृष्ट अनुभागविभक्तियाँ सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कहा है । कर्मणकाययोगी आदि मूलमें गिनार्ह गई अन्य मार्गणावाले जीवोंमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान ही स्पर्शन प्राप्त होता है, इसलिए इनमें औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान स्पर्शन कहा है । वैक्रियिककाययोगियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण, विहारादिकी अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजु-प्रमाण और भारणान्तिक समुद्रघातकी अपेक्षा कुछ कम तेरह बटे चौदह राजुप्रमाण है । इनके इन सब स्पर्शनोंके समय उत्कृष्ट अनुभागविभक्ति और अनुकृष्ट अनुभागविभक्ति सम्भव है, इसलिए इनमें दोनों विभक्तियाँ उक्त प्रमाण कहा है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका सब प्रकारका स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही है, इसलिए इनमें दोनों विभक्तियाँ उक्त प्रमाण कहा है । आगे मूलमें जो आहारककाययोगी आदि मार्गणाएँ गिनार्ह हैं उनका स्पर्शन भी लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, अतः उनका कथन वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

§ १०९ उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तियाँ विभगज्ञानियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भागका, चौदह भागोंसे कुछ कम आठ भागका और सब लोकका स्पर्शन किया है । उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तियाँ आभिनिबोधकज्ञानी,

११३ तिरिक्त्वेणु मह० अम० सम्बन्धो गो । एवमेइदिय-बादरेइदिय-बादरे
 इदियपञ्चतापञ्चत-सुहुमेइदिय-सुहुमेइदियपञ्चतापञ्चत पुडवि०-बादरपुडवि०-बादर
 पुडविअपञ्च०-सुहुमपुडवि०-सुहुमपुडविपञ्चतापञ्चत-भाठ०-बादरभाठ०-बादरभाठ
 अपञ्च०-सुहुमभाठ०-सुहुमभाठपञ्चतापञ्चत-तेठ०-बादरतेठ०-बादरतेठअपञ्च०
 सुहुमतेठ०-सुहुमतेठपञ्चतापञ्चत-भाठ०-बादरभाठ०-बादरभाठअपञ्च०-सुहुमभाठ०
 सुहुमभाठपञ्चतापञ्चत-सम्बन्धपञ्चदि--सम्बन्धिगोद०-ओरासियमिस्स०-कम्महाय०
 मदिअञ्जा०-सुदअञ्जा०-असंमद्-किण्ह-मील-काठ०-ममवसि०-मिच्छादिहि
 असाग्नि-अणाहारि सि ।

११४ सम्बन्धिदियतिरिक्त्वं मज्जसअपञ्च० न० अम० भोग० अर्त्सं० भागो
 सम्बन्धो गो वा । एवं सम्बन्धिगतिदिय-र्न्धिदियअपञ्च०-बादरपुडविपञ्च०-बादरभाठ-
 पञ्च०-बादरतेठपञ्च०-बादरवगण्ठदिपत्तेयसरिीरपञ्च०-तसमपञ्चतापं ।

११५ तिर्यन्धोमे' अथम्य और अरुपम्य अनुभागविंशतिवर्त्तमाने सप्त लोकस्य स्पर्शन
 किया है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय बाहर पञ्चेन्द्रिय बाहर पञ्चेन्द्रिय पयात् बाहर पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त
 सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त पृथिवीकायिक बाहर पृथिवी-
 कायिक, बाहर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म
 पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अलकायिक, बाहर अलकायिक बाहर अलकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म अल-
 कायिक सूक्ष्म अलकायिक पर्याप्त सूक्ष्म अलकायिक अपर्याप्त वैश्वकायिक, बाहर वैश्वकायिक,
 बाहर वैश्वकायिक अपर्याप्त सूक्ष्म वैश्वकायिक सूक्ष्म वैश्वकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वैश्वकायिक
 अपर्याप्त वायुकायिक बाहर वायुकायिक, बाहर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म
 वायुकायिक पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त सब वनस्पतिकयिक, सब निगोधिया, औरारिक-
 मिमकाययोगी कार्मकाययोगी मतिअज्ञानी सुतअज्ञानी अर्त्सयत् कृष्य शेरयावाश्ले, नील
 शेरयावाश्ले अपोत् शेरयावाश्ले, अमम्य मिध्याद्यदि अर्त्संघी और अनाहारकोमे जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-तिर्यन्धोमे जो सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीव इतसमुत्पत्तिकर्मवाश्ले होते हैं
 उनको मोहनीयका अथम्य अनुभाग होता है और ये जिनमें इस अनुभागके साम्य उत्पन्न होते हैं
 उनमें भी अथम्य अनुभाग होता है । यत् ऐसे जीवो का स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण्य सम्भव है, अतः
 तिर्यन्धोमे अथम्य अनुभागवाश्लोका सर्व लोकप्रमाण्य स्पर्शन कहा है । तथा तिर्यन्धो सर्व लोकमें
 पाये जाते हैं, अतः इनमें अथम्य अनुभागवाश्लोका स्पर्शन भी सब लोकप्रमाण्य कहा है । यहाँ
 तिर्यन्धोके समान अथम्य जिन मार्गाणाधोमे मोहनीयके अथम्य और अरुपम्य अनुभागवाश्लोके
 स्पर्शनके जाननेकी सूचना की है वहाँ इसी प्रकार पठित कर लेना चाहिए ।

११६ अथम्य और अरुपम्य अनुभागविंशतिवर्त्तमाने सप्त पञ्चेन्द्रियतिर्यन्धो और मनुष्य
 अपर्याप्तकेनि लोकके अर्त्संभवात्सर्वे भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब
 विकसेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त बाहर पृथ्वीकायिक पर्याप्त बाहर अलकायिक पयात् बाहर
 वैश्वकायिक पर्याप्त बाहर वनस्पतिप्रत्येकापीर पर्याप्त और प्रस अपर्याप्तकोडे जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-जो इतसमुत्पत्तिकर्मवाश्ले सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यन्धोमें और
 मनुष्य अपर्याप्तका में उत्पन्न होते हैं और वही वहाँमें अनुभागको नहीं बढ़ावा है वा उनके
 अथम्य अनुभाग होता है । ऐसे जीवो का वर्त्तमान स्पर्शन लोकके अर्त्संभवात्सर्वे भागप्रमाण्य और

§ १११. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो—ओघे० आदेसे०। ओघेण मोह० जहण्णाणुभाग० केव० खे० पो० १ लोग० असंखे०भागो । अज० सव्वलोगो । एवं कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस० चत्तारिकसाय-अचक्खु०-भवसि०-आहारि ति ।

§ ११२. आदेसेण णेरइएसु जह० खेत्तभंगो । अज० लोग० असंखे०भागो छच्चोइस० देसूणा । पढमपुढवि० खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति जह० खेत्त-भंगो । अज० सगपोसणं ।

का वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण, विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है। इनके इन सब स्पर्शनोंके समय दोनों विभक्तियाँ सम्भव हैं, इसलिए इनमें दोनों विभक्तिवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ १११ अब प्रकृतमे जघन्यसे प्रयोजन है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारकोंमे जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयका जघन्य अनुभाग क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिकसयत जीवोंके होता है, इसलिए इनका स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है और अजघन्य अनुभाग अन्य सब मोहकी सत्तावाले जीवोंके होता है, इसलिए इनका स्पर्शन सब लोक कहा है।

§ ११२ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमे जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका भङ्ग क्षेत्रके समान है। अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागका और चौदह भागोंमे से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है पहिली पृथ्वीमें क्षेत्रके समान भङ्ग है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवाँ तक जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले असङ्गी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं इनके मोहनीयका जघ य अनुभाग होता है। यत ऐसे जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः सामान्यसे नारकियोंमें मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके असख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है। तथा सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह राजुप्रमाण है, अतः इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। प्रथम नरकमें दोनों प्रकारके अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। दूसरे आदि नरकोंमें जो जीव अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करते हैं उनके जघन्य अनुभाग होता है। यत ऐसे जीवोंका मारणान्तिक पदकी अपेक्षा भी स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता, अतः द्वितीयादि नरकोंमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है और जिस नरकका जो स्पर्शन है वह वहाँ अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है।

११३ तिरिकसेतु जइ० अत्र० सम्बलोगो । एवमेइदिय-बादरेइदिय-बादरे
 इदियपञ्चतापञ्च-सुहुमेइदिय-सुहुमेइदियपञ्चतापञ्चत पुडवि० -बादरपुडवि०--बादर
 पुडविअपञ्च०-सुहुमपुडवि०-सुहुमपुडविपञ्चतापञ्चत-आठ०-बादरआठ०-बादरमात
 अपञ्च०-सुहुममाठ०-सुहुममाठपञ्चतापञ्चत-तेब०-बादरतेब०-बादरतेबअपञ्च०
 सुहुमतेब०-सुहुमतेबपञ्चतापञ्चत-बाठ०-बादरबाठ०-बादरबाठअपञ्च०-सुहुमबाठ०
 सुहुमबाठपञ्चतापञ्चत-सम्बपण्फदि-सम्बणिगोद०-मोराखियमिस्त०-कम्मइय०
 मदिमण्णा०-सुदमण्णा०-असमद०-किण्ह-बील-काच०-अमपसि०-मिण्णादिदि
 असण्णि-अणाहारि वि ।

११४ सम्बपण्दिदियतिरिक्ख मजुसमपञ्च० अ० अम० मोग० अससे० मागो
 सम्बलोगो वा । एवं सम्बदिगलिदिय-पण्दिदियअपञ्च०-बादरपुडविपञ्च०-बादरआठ
 पञ्च०-बादरतेबपञ्च०-बादरबण्फदिपत्तेयसरीरपञ्च०-तसमपञ्चतापण् ।

११३ तिरिक्खोमे अण्य और अजण्य अनुभागविंशतीपलो सब लोकक स्पर्शन
 किया है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय बादर एकेन्द्रिय पचास बादर एकेन्द्रिय अपर्षात,
 सूक्ष्म एकेन्द्रिय सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्षात सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्षात, पृथिवीकप्रियक, बादर पृथिवी-
 कप्रियक, बादर पृथिवीकप्रियक अपर्षात, सूक्ष्म पृथिवीकप्रियक, सूक्ष्म पृथिवीकप्रियक पर्षात, सूक्ष्म
 पृथिवीकप्रियक अपर्षात जलकप्रियक बादर जलकप्रियक बादर जलकप्रियक अपर्षात सूक्ष्म जल
 कप्रियक सूक्ष्म जलकप्रियक पर्षात, सूक्ष्म जलकप्रियक अपर्षात तैजस्कप्रियक, बादर तैजस्कप्रियक
 बादर तैजस्कप्रियक अपर्षात, सूक्ष्म तैजस्कप्रियक, सूक्ष्म तैजस्कप्रियक पर्षात, सूक्ष्म तैजस्कप्रियक
 अपर्षात वायुकप्रियक, बादर वायुकप्रियक, बादर वायुकप्रियक अपर्षात सूक्ष्म वायुकप्रियक, सूक्ष्म
 वायुकप्रियक पर्षात सूक्ष्म वायुकप्रियक अपर्षात, सब वनस्पतिकप्रियक, सब निगोदिया, औदारिक-
 मिषकायबोगी, कर्मण्यययोगी मतिअज्जानी भुतअज्जानी, असंयत, कृष्य क्षेत्रयाबाले नील
 क्षेत्रयाबाले कापोत क्षेत्रयाबाले अमय्य मिण्णादिदि, असंखी और अनाहारकोमे जानन्ता बाहिय ।

विशेषार्थ-तिरिक्खोमे जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्षात जीव इतत्तमुत्पत्तिककर्मबाले होते हैं
 उनके मोहनीयका अण्य अनुभाग होता है और ये जिनमें इस अनुभागके साथ वत्पन्न होते हैं
 जिनमें भी अण्य अनुभाग होता है । यद्यपि ऐसे जीवों का स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण सम्भव है, यद्यपि
 तिरिक्खोमे अण्य अनुभागबालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन कदा है । तथा तिरिक्ख सर्व लोकमें
 पाये जाते हैं, यद्यपि इनमें अण्य अनुभागबालोंका स्पर्शन भी सब लोकप्रमाण कदा है । यहाँ
 तिरिक्खके समान अण्य जिन मार्गवाकोमें मोहनीयके अण्य और अजण्य अनुभागबालोंके
 स्पर्शनेके जाननेकी सूचना की है यहाँ इसी प्रकार पठित कर लेना बाहिय ।

११४ अण्य और अजण्य अनुभागविंशतीपलो सब पञ्चेन्द्रियतिरिक्ख और मनुष्य
 अपर्षातकोमे लोकके असंस्वातर्षे मागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब
 निकलेन्द्रिय पत्तेन्द्रिय अपर्षात बादर पृथ्वीकप्रियक पर्षात बादर जलकप्रियक पत्तात बादर
 तैजस्कप्रियक पर्षात बादर वनस्पतिकप्रियकपर्षातपर्षात और त्रस अपर्षातकोमे ज्ञानता बाहिय ।

विशेषार्थ-जो इतत्तमुत्पत्तिककर्मबाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्षात पञ्चेन्द्रिय तिरिक्खोमें और
 मनुष्य अपर्षातकोमें वत्पन्न होते हैं और यदि वहाँमे अनुभागके नहीं बढ़ावा है या उनके
 अण्य अनुभाग होता है । ऐसे जीवों का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंस्वातर्षे मागप्रमाण और

§ ११५. मणुसतियम्मि ज० खेत्तभंगो । अज० लोग० असंखे०भागो सव्व-
लोगो वा । एवं पंचिदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-ईत्थि०-पुरिस०-
चक्खु०-सण्णि त्ति । णवरि विहारेण अट्ठचोदसभागा वत्तव्वा ।

११६. देवेसु ज० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ--णवचोदसभागा
देसूणा । एवं भवण०-वाण०। णवरि अज० सगपोसणं । जोदिसि० ज० खेत्तं अट्ठधुट्ठ-
अट्ठचोदसभागा देसूणा । अज० खेत्त अट्ठधुट्ठ-अट्ठ-णवचोदसभागा देसूणा । सोहम्मी-
साणे मोह० ज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोदस० देसूणा । अज० लोग० असंखे०-
अतीत स्पर्शनं सब लोकप्रमाणं सम्भव है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवालों का स्पर्शन उक्त
प्रमाण कहा है । तथा इन मार्गणाओं का स्पर्शन भी इतना ही है, अतः इनमें अजघन्य अनुभाग-
वालों का भी स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है । यहाँ सब विकलेन्द्रिय आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ
गिनाई हैं उनमें यह दोनों प्रकारका स्पर्शन बन जाता है, अतः इनका कथन पूर्वोक्त प्रकारसे
जाननेकी सूचना की है ।

§ ११५ जघन्य अनुभागविभक्तिवाले सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियामे
क्षेत्रके समान भग है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागका और सर्व
लोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी,
पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और सद्गी जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता
है कि इनमें विहारकी अपेक्षा चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग स्पर्शन कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके ही जघन्य अनुभाग होता है ।
यतः इनका स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, अतः मनुष्यत्रिकमें जघन्य अनुभागवालों
का स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है । तथा मनुष्यत्रिकका वर्तमान स्पर्शन लोकके असख्यातवें भाग-
प्रमाण और अतीत स्पर्शन सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन
उक्तप्रमाण कहा है । यहाँ पञ्चेन्द्रिय आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें मनुष्यत्रिकके
समान स्पर्शन घटित हो जाता है, अतः उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन
मनुष्यत्रिकके समान कहा है । मात्र पञ्चेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें विहारपदकी अपेक्षा कुछ
कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शन भी सम्भव है, इसलिए इन मार्गणाओंमें अजघन्य
अनुभागवाले जीवोंका स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण भी जानना चाहिए ।

§ ११६ देवोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य
अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और
कुछ कम नौ भागका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिए ।
इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने अपना अपना स्पर्शन लेना चाहिए ।
ज्योतिषी देवोंमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह राजुमें से
कुछ कम साढेतीन और कुछ कम आठ राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य
अनुभाग विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह भागोंमें से कुछ कम
साढेतीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सौधर्म और
ईशानमें मोहनीयकर्मकी जघ य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागका और चौदह
भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने
लोकके असख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग

यागो अह-जपपोहमगा देखा । सजककुमारादि जाय धारणच्युदे ति उक्तस्स-
भंगो । एवरि सेचमगो ।

११७ कायाणुवादेण वादरवाञ्छाइयपञ्चपम्पु मोह० महप्पानहण्णापु०
सोग० संसे० मागो सम्भसोगो वा ।

प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सनकुमारसे लेकर आरख्य-अनुगत तकके बेबोमें उक्त अनुमान
विमर्शितालोके समान स्पर्शन है । आगेके बेबोमें क्षेत्रके समान स्पर्शन है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे बेबोमें वा इतसमुत्पत्तिक कर्मबाले असंखी जीव मरकर उत्पन्न
हाते हैं उनके जप-व अनुमान उल्लस्य होता है ; अतः ऐसे जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान लोकके
असंख्यातबे मागसे अधिक उल्लस्य नहीं होता, अतः वह क्षेत्रके समान कहा है । तथा बेबोका
वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातबे मागप्रमाण, विहारविकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह
रजुप्रमाण और मारणान्तिक समुद्रघातकी अपेक्षा कुछ कम नी बटे चौदह रजुप्रमाण बतलावा
है । अतः इस सब प्रकारके स्पर्शनके समय मोहनीयकी अज्ञपन्य अनुमानविमर्शित सम्भव है,
अतः इनमें अज्ञपन्य अनुमानबालोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण कहा है । मन्तवासी और अन्तर
बेबोमें यह स्पर्शन इसी प्रकार प्राप्त होता है, अतः इनका भङ्ग सामान्य बेबोके समान कहा है ।
वहाँ इतनी विरापता अकरव है कि इन दोनों प्रकारके बेबोमें वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातबे
मागप्रमाण, स्वप्रत्यक्ष विहारकी अपेक्षा कुछ कम साठ तीन बटे चौदह रजु, परप्रत्यक्ष
विहार तथा बहना कषाव और वैमिषिक समुद्रघातकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह रजु
और मारणान्तिक समुद्रघातकी अपेक्षा कुछ कम नी बटे चौदह रजुप्रमाण स्पर्शन जानना चाहिए ।
क्योकि ये बेबो में अनन्तानुबन्धीकी विस्तारबोधना करनेवालोंके मोहनीयका जपन्य अनुमान
होता है । अतः ऐसे बेबो का वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातबे मागप्रमाण, स्वप्रत्यक्ष विहारकी
अपेक्षा कुछ कम साठे तीन बटे चौदह रजु और परप्रत्यक्षविहार आविकी अपेक्षा कुछ कम
आठ बटे चौदह रजुप्रमाण स्पर्शन सम्भव है, अतः इनमें जपन्य अनुमानबालोंका उक्तप्रमाण
स्पर्शन कहा है । तथा अज्ञपन्य अनुमानबालों का यह स्पर्शन वा हाता ही है । साब ही इनका
मारणान्तिक समुद्रघातके समय कुछ कम नी बटे चौदह रजुप्रमाण स्पर्शन भी सम्भव है, अतः
इनका स्पर्शन इसका मिश्राकर कहा है । सौर्न और पेरान कल्पमें वर्तमानकी अपेक्षा लोकके
असंख्यातबे मागप्रमाण विहारविकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह रजुप्रमाण और
मारणान्तिक समुद्रघातकी अपेक्षा कुछ कम नी बटे चौदह रजुप्रमाण स्पर्शन हाता है । इनमेंसे
जपन्य अनुमानविमर्शितके समय कुछ कम नी बटे चौदह रजुप्रमाण स्पर्शन सम्भव नहीं है,
क्योकि जो बेबो पकेन्द्रियमें मारणान्तिक समुद्रघात करते हैं उनके जपन्य अनुमानविमर्शित नहीं
हो सकती अतः इस अन्तरका ध्यानमें रखकर यहाँ दोन्य अनुमानबालोंका स्पर्शन कहा है ।
आगे भी इसी प्रकार स्वामिका ध्यानमें रखकर जपन्य और अज्ञपन्य अनुमानबालों का
स्पर्शन पठित कर लेना चाहिए ।

§ ११७. कायकी अपेक्षा वादर वासुकाविकरपाराकेमें साहसीयकर्मकी अज्ञपन्य और
अज्ञपन्य अनुमानविमर्शितालोका स्पर्शन लोकका संख्यातबे माग और सर्वज्ञात है ।

विशेषार्थ—वादर वासुकाविकर पर्याप्त जीव में लोकके संख्यातबे मागप्रमाण क्षेत्रका और
सब लोकका स्पर्शन किया है, इसलिये इनमें दोनों प्रकारके अनुमानबालों का स्पर्शन उक्तप्रमाण
बत जाता है, अतः वह उक्तप्रमाण कहा है ।

§ ११५. मणुसतियम्मि ज० खेतंभंगो । अज० लोग० असंखे०भागो सव्व-
लोगो वा । एवं पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-
चक्खु०-सण्णि त्ति । णवरि विहारेण अट्ठचोइसभागा वत्तव्वा ।

११६. देवेसु ज० खेतं । अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोइसभागा
देसूणा । एवं भवण०-वाण० । णवरि अज० सगपोसणं । जोदिसि० ज० खेतं अद्ध्युट्ठ-
अट्ठचोइसभागा देसूणा । अज० खेतं अद्ध्युट्ठ-अट्ठ-णवचोइसभागा देसूणा । सोहम्मी-
साणे मोह० ज० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोइस० देसूणा । अज० लोग० असंखे०-
अतीत स्पर्शनं सब लोकप्रमाणं सम्भव है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवालों का स्पर्शनं उक्त
प्रमाण कहा है । तथा इन मार्गणाओं का स्पर्शनं भी इतना ही है, अतः इनमें अजघन्य अनुभाग-
वालों का भी स्पर्शनं उक्त प्रमाण कहा है । यहाँ सब विकलेन्द्रिय आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ
गिनाई हैं उनमें यह दोनों प्रकारका स्पर्शनं बन जाता है, अतः इनका कथन पूर्वोक्त प्रकारसे
जाननेकी सूचना की है ।

§ ११५ जघन्य अनुभागविभक्तिवाले सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें
क्षेत्रके समान भग है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागका और सर्व
लोकका स्पर्शनं किया है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी,
पाँचों बचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और सञ्जी जीवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता
है कि इनमें विहारकी अपेक्षा चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग स्पर्शनं कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवोंके ही जघन्य अनुभाग होता है ।
यतः इनका स्पर्शनं लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, अतः मनुष्यत्रिकमें जघन्य अनुभागवालों
का स्पर्शनं उक्तप्रमाण कहा है । तथा मनुष्यत्रिकका वर्तमान स्पर्शनं लोकके असख्यातवें भाग-
प्रमाण और अतीत स्पर्शनं सर्व लोकप्रमाण है, इसलिए इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शनं
उक्तप्रमाण कहा है । यहाँ पञ्चेन्द्रिय आदि जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें मनुष्यत्रिकके
समान स्पर्शनं घटित हो जाता है, अतः उनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शनं
मनुष्यत्रिकके समान कहा है । मात्र पञ्चेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें विहारपदकी अपेक्षा कुछ
कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण स्पर्शनं भी सम्भव है, इसलिए इन मार्गणाओंमें अजघन्य
अनुभागवाले जीवोंका स्पर्शनं कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण भी जानना चाहिए ।

§ ११६ देवोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शनं क्षेत्रके समान है । अजघन्य
अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और
कुछ कम नौ भागका स्पर्शनं किया है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिए ।
इतनी विशेषता है कि अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने अपना अपना स्पर्शनं लेना चाहिए ।
ज्योतिषी देवोंमें जघन्य अनुभागवालोंका स्पर्शनं क्षेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह राजुमें से
कुछ कम साढ़ेतीन और कुछ कम आठ राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनं किया है । अजघन्य
अनुभाग विभक्तिवालोंका स्पर्शनं क्षेत्रके समान है तथा इन्होंने चौदह भागोंमें से कुछ कम
साढ़ेतीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनं किया है । सौधर्म और
ईशानमें मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागका और चौदह
भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शनं किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने
लोकके असख्यातवें भागका और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग

१२० संवदासंभद० झ० शोग० असंखे० मागो । अजह० हांग० असंखे०
मागो अजोहस० देवणा । तेउ०—पम्म० सोहम्म०—सहस्सारभंगो । सासण० अह०
खेच । अजह० अशुकस्सभंगो ।

एवं पोसणाजुगमो समता ।

१२१ कालाजुगमा दुविहो—महण्णमो उक्कस्समो चेदि । उक्कस्स पयदं । दुविहा
पिहो सो—भोपे० आदसे० । तत्व भोपेण मोह० उक्कस्साजु० झ० अंतोमु०, उक्क०
पल्लिवो० असंखे० मागो । अजुक्क० सम्पदा ।

है, इसलिये इनमें अथवा अनुमागवालो का स्थान शोकके असंख्यातवें भागप्रमाण्य कहा है ।
तथा आभिनितोभिकछानी आदि का ओ स्पर्शन है वही यहाँ अथवा अनुमागवालो का प्राप्त
हानिसे वह उक्तप्रमाण्य कहा है । यहाँ अथवा विवर्षानी आदि अन्य जो माग्यापरे गिनत हैं वनमें
यह स्पर्शन बन जाता है, अतः वनका मङ्ग आभिनितोभिकछानी आदिके समान कहा है । मात्र
पुल्लल्लेरयामे' कुछ कम आठ बटे चौदह गुणप्रमाण्य स्पर्शन नहीं प्राप्त होता, अतः उक्त निरेश
विशेष रूपसे किया है ।

§ १२ संवदासंभदा म' अथवा अनुमागविमिच्छिवालो ने साकडे असंख्यातवें भागप्रमाण्य
क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अथवा विमिच्छिवालो ने शोकके असंख्यातवें भाग और चौदह
भागों में से कुछ कम वह भागप्रमाण्य क्षेत्रका स्पर्शन किया है । वैशोलेरयामे' सौधम स्वगके समान
और पच्छालेरयामे सहस्रारके समान मङ्ग है । सासावन्सम्पन्टिषा म अथवा अनुमागविमिच्छि-
वालोका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अथवा अनुमागविमिच्छिवालोका स्पर्शन अनुकुष्ठ
विमिच्छिवालोके समान है ।

विशेषार्थ—संवदासंभदा मे ओ हो बार उपराममेणि पर चडकर और उठर कर सपता
संवद हुए हैं वनके अथवा अनुमाग हावा है, इसलिये इनके अथवा अनुमागवालो का स्थान
शोकके असंख्यातवें भागप्रमाण्य कहा है । तथा संवदासंभवतो का ओ स्पर्शन है वह यहाँ अथवा
अनुमागवालो का बन जाता है, अतः वह उक्तप्रमाण्य कहा है । पीठ और पच्छालेरयामे सौधम
और सहस्रार कस्यके समान स्थान है वह स्पष्ट ही है । सासावन्सम्पन्टिषा म' हो बार उपराम
मेणि पर चडकर उठरे हुए बीचके अथवा अनुमाग हावा है, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है
और अनुकुष्ठके समान इनके अथवा अनुमागवालो का स्पर्शन बन जाता है अतः वह अनुकुष्ठ
के समान कहा है ।

इस प्रकार स्पर्शानुगम समान हुआ ।

§ १२१ कालाजुगम हो प्रकारका है—अथवा और उक्कह । यहाँ उक्कहसे प्रबोधन है ।
निरेश हो प्रकारका है—आपनिरेण और आनेरनिरेण । वनमेंसे आपसे मोहनीय कर्मकी
उक्कह अनुमागविमिच्छिवा अथवा काळ अन्तर्गुह्य है और उक्कह काळ फस्योपमाके असंख्यातवें
भाग है । अनुकुष्ठ अनुमागविमिच्छिवा काळ सर्वथा है ।

विशेषार्थ—पहले मोहनीयकी उक्कह अनुमागविमिच्छिवा एक बीचकी अपेक्षा अथवा
और उक्कह काळ अन्तर्गुह्य वतता आये हैं । वह सम्भव है कि कमी कुछ ही पीठ एक साथ
उक्कह अनुमागविमिच्छिवासे हो और कमी मध्यमें अन्तर पड़े बिना अनेक बीच उक्कह अनुमाग-

११८. वेउन्विय० जह० सोहम्मभंगो । अज० अणुकस्सभंगो० । वेउन्विय-
मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स० जहण्णाजह० खेत्तभगो । एवमवगद०-अकसा०-
मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुद्धमसांपराय०-जहाक्खाट०-संजदे त्ति ।

११९. णाणाणु० विहग० मोह० ज० लो० असंखे०भागो अट्टचोइसभागा
वा देसूणा । अज० लोग० असंखे०भागो अट्टचोइस० सव्वलोगो वा । आभिणि०-
सुद०-ओहि० मोह० ज० लोग० असंखे०भागो । अज० लोग० असंखे०भागो
अट्टचोइस० देसूणा । एवमोहिदंस०-सुकले० सम्मादि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सम्मा-
मिच्छादिद्वि त्ति । णवरि सुक्कलेस्साए छचोइसभागा ।

§ ११८ वैक्रियिककाययोगियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिवालोका स्पर्शन सौधर्मस्वर्गके
समान है तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन अनुत्कृष्टविभक्तिके समान है । वैक्रियिक
मिश्रकाययोगी, आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें जघन्य और अजघन्य
अनुभागविभक्तिवालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकपायी, मन-पर्यय-
ज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्मसांपरायसयत
और यथाख्यातसयतो में जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—सौधर्मादिक कल्पो में जघन्य अनुभागका जो जीव स्वामी होता है वही
वैक्रियिककाययोगमें भी उसका स्वामी होता है, अतः वैक्रियिककाययोगवालो में जघन्य
अनुभागवालो का स्पर्शन सौधर्म कल्पके समान कहा है । वैक्रियिककाययोगियों में अजघन्य
अनुभागवालो का स्पर्शन अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी आदि
जीवों का क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इनका स्पर्शन भी इतना ही है, अतः
इनमें दोनों अनुभागवालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है । मूलमें कही गई अपगतवेदी आदि
अन्य मार्गणाओं में भी यही स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए ।

§ ११९ ज्ञानकी अपेक्षा विभगज्ञानियों में मोहनीयकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने
लोकके असख्यातवें भागका और चौदह भागों में से कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन
किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भागका, चौदह भागों में-
से कुछ कम आठ भागका और सर्व लोकका स्पर्शन किया है । आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी
और अवधिज्ञानियों में मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें
भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग
और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार अवधि-
दर्शनी, शुक्ललेख्यावाले, सम्यग्दृष्टि, ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और
सम्यग्मिथ्यादृष्टियों में जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि शुक्ललेख्यामें चौदह भागोंमें से
कुछ कम छह भागप्रमाण स्पर्शन होता है ।

विशेषार्थ—जो विभगज्ञानी एकेन्द्रियों में मारणान्तिक समुद्घात करते हैं उनके जघन्य
अनुभाग सम्भव नहीं है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवाले जीवों का स्पर्शन लोकके असख्यातवें
भागप्रमाण और कुछ कम आठ बटे चौदह राजुप्रमाण कहा है । तथा अजघन्य अनुभागवालो का
स्पर्शन लोकके असख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और सब लोकप्रमाण
कहा है । आभिनिवोधिकज्ञानी आदिमें क्षपक सूक्ष्मसांपरायिक जीवके जघन्य अनुभाग होता

१२० संभदासंभद० ज० सोग० असंस्त्रे० भागो । अग्रह० छांग० मसंस्त्रे०
यागो अघोरस० देव्या । तेष०-यम्य० सोहम्म०-सहस्सारमंगो । सासप० जह०
स्त्रेत् । मग्रह० अणुहस्तमंगो ।

एवं पोसणाशुगमो समत्वा ।

१२१ काशाशुगमो दुषिहो—अहण्जओ उक्कस्सभा वेदि । उक्कस्से पयदं । दुषिहो
शिहोसो—ओपे० आदेसे० । तत्थ ओयण माह० उक्कस्साशु० ज० अंतोसु०, उक्क०
पण्डितो० असंस्त्रे० भागो । अशुक्क० सन्नद्धा ।

है, इसलिये इनमें अथम्य अनुभागवालो का स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है ।
तथा अग्रभिनिकापिक्रान्ती आदि का स्पर्शन है वही यहाँ अग्रथम्य अनुभागवालो का प्राप्त
हामेसे वह उक्तप्रमाण कहा है । यहाँ अग्रभिनिकापिक्रान्ती आदि अन्य ओ भागप्रमाणे गिनाई हैं उनमें
यह स्पर्शन बन जाता है, अतः उनका मङ्ग अग्रभिनिकापिक्रान्ती आदिके समान कहा है । मात्र
दुष्कलेरयामे कुछ कम आठ बटे और उक्तप्रमाण स्पर्शन नहीं प्राप्त होता, अतः इसका निर्देश
विशेष रूपसे किया है ।

§ १२ संयतासंयतो मे' अथम्य अनुभागविमत्तिवालो मे लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण
क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अथम्य विमत्तिवालो मे लोकके असंख्यातवें भाग और और
माना मे से कुछ कम वह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । ऐश्वर्ययामे' चौथम स्पर्शके समान
और ऐश्वर्ययामे सहस्रारके समान मङ्ग है । सासाहनसम्बन्धितियो मे अथम्य अनुभागविमत्ति-
वालोका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अथम्य अनुभागविमत्तिवालोका स्पर्शन अनुकृष्ट
विमत्तिवालोके समान है ।

विशेषार्थ—संयतासंयता मे जो दो बार अथम्येण पर चढ़कर और उतर कर संयता-
संयत हुए हैं उनके अथम्य अनुभाग होता है, इसलिये इनके अथम्य अनुभागवाला का स्पर्शन
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । तथा संयतासंयतो का जो स्पर्शन है वह यहाँ अथम्य
अनुभागवालो का बन जाता है, अतः वह उक्तप्रमाण कहा है । पीठ और ऐश्वर्ययामे' चौथम
और सहस्रार के स्पर्शके समान स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है । सासाहनसम्बन्धितियो मे' दो बार अथम्य
येण पर चढ़कर उतरे हुए बीचके अथम्य अनुभाग होता है, अतः यह क्षेत्रके समान कहा है
और अनुकृष्टके समान इनके अथम्य अनुभागवालो का स्पर्शन बन जाता है अतः वह अनुकृष्ट
के समान कहा है ।

इस प्रकार स्पर्शानुगम समाप्त हुआ ।

§ १२१ कशाशुगम दो प्रकारका है—अथम्य और अणुहस्त । यहाँ उक्तसे प्रयोजन है ।
निर्देश दो प्रकारका है—आशुनिर्देश और अशुनिर्देश । उनमेंसे आपसे माहतीय कर्मकी
उक्त अनुभागविमत्तिका अथम्य काल अन्तमुहूर्त है और उक्त काल पशोपमके असंख्यातवें
भाग है । अनुकृष्ट अनुभागविमत्तिका काल सर्वथा है ।

विशेषार्थ—जैसे मोहनीयकी उक्त अनुभागविमत्तिका एक जीवकी अपेक्षा अथम्य
और उक्त काल अन्तमुहूर्त बतला आये हैं । यह समझ है कि कमी कुछ ही जीव एक साल
उक्त अनुभागविमत्तिले हा और कमी मध्यमे अन्तर पड़े किता अनेक जीव उक्त अनुभाग-

१२२. आदेसेण एरइएसु उक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असखे० भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस-देव-भवणादि जावँ सह-स्सारे त्ति सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०--पंचकाय०--तसअपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०--ओरालियमिस्स०--वेउव्विय०--तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-तिण्णअण्णाण-असंजद- पंचले०-सणिएण-असणिएण-आहारि त्ति । णवरि मदि-सुदअण्णाणि-असंजद० उक्क० जह० अतोमु० ।

विभक्तिवाले हो । यह देख कर यहाँ नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालो का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्यों कि एकके बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तर उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असख्यात जीव भी हो गे तो उन सबके कालका योग पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण ही होगा । मोहनीयकी अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालो का काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है ।

§ १२२ आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तियञ्च, मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी औदारिकेकाययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक-काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, तीनों अज्ञानी, असयत, शुक्के सिवा शेष पाँचो लेश्यावाले, सञ्जी, असञ्जी और आहारकोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और असयतोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले अन्य गतिके जीवों के उत्कृष्ट अनुभागके कालमे एक समय शेष रहने पर नारकियो मे उत्पन्न होने पर नरकमे नाना जीवों की अपेक्षा भी मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, इसलिए यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालो का जघन्य काल एक समय कहा है । तथा यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालो का उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण ओघके अनुसार घटित कर लेना चाहिए, क्यों कि जितनी भी असख्यात और अनन्त सख्यावाली मार्गणाएँ हैं उनमे उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बन जाता है । क रण कि ऐसी-सब मार्गणाओ मे लगातार उत्कृष्ट अनुभागवाले अस-ख्यात जीव ही होते हैं और असख्यात अन्तर्मुहूर्तका योग पल्यके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता । इनमे अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए उनका काल सर्वदा कहा है । यहाँ मूलमे सब नारकी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमे यह प्ररूपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनहे उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवालो का काल सामान्य नारकियों के समान जाननेकी सूचना की है । मात्र उत्कृष्ट अनुभाग मिथ्यादृष्टिके होता है और इसका एक जीवकी अपेक्षा भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अत यहाँ मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और असयतो मे नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागवालो का जघन्य काल अन्त-मुहूर्त कहा है, क्यों कि मिथ्यादृष्टिके जिस प्रकार अन्य मार्गणाएँ बदल सकती हैं उस प्रकार ये मार्गणाएँ नहीं बदलती ।

§ १२३ मनुसपञ्च०-मनुसिणीसु उक्त० ज० एगस०, उक्त० अंतोसु० ।
मनुसु० सम्बद्धा । मनुसअपञ्च० उक्त० अमुक्त० ज० एगस० अंतोसुदुर्ग, उक्त०
पक्षिदो० असंस्ते०भागो । एवं बेवधिन्यमिस्स० ।

§ १२४ आणदादि प्राय सम्बद्धसिद्धि ति उक्तस्ताणुक्तस्स० सम्बद्धा । एव
माभिणि०--सुद०--ओहि०--मणपञ्च०--संअद्--सामाइय-अदो०--परिहार०--संजदासंमद्
ओहिदं०-मुक्तो०-सम्मादि०-वेदग०-स्वइय०दिदि ति । गवरि--माभिणि-सुद० ओहि०
ओहिदंस०-मुक्तो०-सम्मादिदि-वेदयसम्मादिदीसु उक्त० जइ० एगसममो, उक्त०
पक्षिदो० असं०भागो ।

§ १२५ मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिबोमे उक्तस्य अनुभागविभक्तिका जपन्य काल
एक समय है और उक्तस्य काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुक्तस्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वा है ।
मनुष्य अपर्याप्तको में उक्तस्य अनुभागविभक्तिका जपन्य काल एक समय और अनुक्तस्य अनुभाग
विभक्तिका जपन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा उक्तस्य काल पस्यके असंख्यातवै भाग है । इसी
प्रकार बैक्त्रियिकमिजकययोगिया में जानना पड़िये ।

विशेषार्थ--मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिबोमे जपन्य काल एक समय नारकियो के
समान पठित कर लेना पड़िये । तथा इन दोनों मार्ग्यावाला का प्रमाण संख्यात होता है,
इसलिए इनमें उक्तस्य अनुभागवालो का उक्तस्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्या कि यहाँ संख्यात
अन्तर्मुहूर्तका योग अन्तर्मुहूर्त ही होगा । यह दोनों निरन्तर मार्ग्यापे हैं इसलिए इनमें
अनुक्तस्य अनुभागवालो का काल सर्वा कहा है । यह ठो सम्भव है कि किन्हे उक्तस्ये एक
समय काल रोप है ऐसे जीव मनुष्य अपर्याप्तके में उत्पन्न हो पर उक्तस्य अनुभागका बात
होमे पर मनुष्य अपर्याप्तको का जो काल रोप रहता है उस कालमें उनके अनुक्तस्य अनुभाग
निवमसे पाबा जाता है, इसलिए मनुष्य अपर्याप्तको में उक्तस्य अनुभागका जपन्य काल एक
समय और अनुक्तस्य अनुभागका जपन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । यहाँ इतना अपर्यय समझना
पड़िये कि मनुष्य अपर्याप्त अन्तर्मुहूर्त काल तक रहें और बादमें उनका अभाव हो जब इस
अपेक्षा यह अन्तर्मुहूर्त काल कहा है । तथा जाना जीवा की अपेक्षा मनुष्य अपर्याप्तका का
उक्तस्य काल पस्यके असंख्यातवै भागप्रमाण है, इसलिए इनमें उक्तस्य और अनुक्तस्य अनुभाग-
वालो का उक्तस्य काल पस्यके असंख्यातवै भागप्रमाण कहा है । बैक्त्रियिकमिजकययोगी यह भी
सन्तर मार्ग्या है, इसलिए इसमें उक्त सब काल पठित हो जानेसे उसकी प्रकृत्या मनुष्य
अपर्याप्तको के समान की है ।

§ १२४ आन्त स्वर्नसे जेकर सर्वायसिद्धि पर्यन्त तकके बेवो में उक्तस्य और अनुक्तस्य
अनुभागविभक्ति सर्वा पर्याप्त गती है । इसी प्रकार आमिनिबोपिक्यानी, मुत्तहानी अथविद्यानी
मन्पर्यय्यानी संयत सामायिकसंयत जेवोपस्यापनासंयत परिहारविद्युसिंसंयत संवतासंयत
अथपिपर्यय्यालो मुत्तरेरयावाले सम्मन्दिदि बेदकसम्बन्दिदि और अथिकसम्बन्दिदिमें जानना
पड़िये । इतनी विशेषता है कि आमिनिबोपिक्यानी मुत्तहानी अथविद्यानी अथपिपर्यय्यालो
मुत्तरेरयावाले सम्मन्दिदि और बेदकसम्बन्दिदिमें उक्तस्य अनुभागविभक्तिका जपन्य काल एक
समय है और उक्तस्य काल पस्यके असंख्यातवै भाग है ।

विशेषार्थ--आन्त अर्थमें उक्तस्य और अनुक्तस्य अनुभागवालो का निरन्तर सञ्चल बना

१२२. आदेसेण रोरडएसु उक्क० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असखे० भागो ।
 अणुक्क० सव्वद्धा । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस-देव-भवणादि जावं सह-
 स्सारे त्ति सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय-पंचदियअपज्ज०--पंचकाय०--तसअपज्ज०-
 पंचमण०-पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०--ओरालियमिस्स०--वेउव्विय०--तिण्णिवेद-
 चत्तारिकसाय-तिण्णअण्णाण-असंजद- पंचले०-सणिए-असणिए-आहारि त्ति । णवरि
 मदि-सुदअण्णाणि-असजद० उक्क० जह० अतोमु० ।

विभक्तिवाले हो । यह देख कर यहाँ नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्यों कि एकके बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तर उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असख्यात जीव भी हो गे तो उन सबके कालका योग पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण ही होगा । मोहनीयकी अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालों का काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है ।

§ १२२ आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भाग है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तियञ्च, मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी औदारिकेकाययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिक-काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, तीनों अज्ञानी, असयत, शुक्के सिवा शेष पाँचों लेश्यावाले, सञ्जी, असञ्जी और आहारकोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और असयतोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले अन्य गतिके जीवों के उत्कृष्ट अनुभागके कालमें एक समय शेष रहने पर नारकियों में उत्पन्न होने पर नरकमें नाना जीवों की अपेक्षा भी मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय देखा जाता है, इसलिए यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालों का जघन्य काल एक समय कहा है । तथा यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालों का उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण ओघके अनुसार घटित कर लेना चाहिए, क्यों कि जितनी भी असख्यात और अनन्त सख्यावाली मार्गणाएँ हैं उनमें उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बन जाता है । करण कि ऐसी-सब मार्गणाओं में लगातार उत्कृष्ट अनुभागवाले असख्यात जीव ही होते हैं और असख्यात अ तर्मुहूर्तोंका योग पत्यके असख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता । इनमें अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवाले सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिए उनका काल सर्वदा कहा है । यहाँ मूलमें सब नारकी आदि अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह प्रहृपणा अविकल बन जाती है, इसलिए उनमें उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवालों का काल सामान्य नारकियों के समान जाननेकी सूचना की है । मात्र उत्कृष्ट अनुभाग मिथ्यादृष्टिके होता है और इसका एक जीवकी अपेक्षा भी जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अत यहाँ मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और असयतों में नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागवालों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्यों कि मिथ्यादृष्टिके जिस प्रकार अन्य मार्गणाएँ बदल सकती हैं उस प्रकार ये मार्गणाएँ नहीं बदलती ।

§ १२३ मनुसपञ्ज०-मनुसिणीसु उक्त० ज० पगस०, उक्त० अंतोसु० ।
अनुक्त० सम्बद्धा । मनुसअपञ्ज० उक्त० मनुक्त० ज० पयस० अंतोसुहुयं, उक्त०
पस्त्रिदो० असंखे०-भागो । एवं बेसभियमिस्त० ।

§ १२४ आणदादि जाय सम्बहसिदि ति उक्तस्सापुक्तस्त० सम्बद्धा । एव
मामिणि०-मुद०-भोहि०-मणपञ्ज०-संमद-सामाश्य-अदो०-परिहार०-संमदासंमद
भोहिर्वं०-मुक्तो०-सम्मादि०-वदग०-खइय०दिदि ति । गवरि-भामिभि-मुद० भोहि०
भोहिर्वस-मुक्तो०-सम्मादिदि-वेदयसम्मादिहीसु उक्त० मह० पगसमभो, उक्त०
पस्त्रिदो० असं०-भागो ।

§ १२५ मनुष्यवर्त और मनुष्यनियोमें उक्त अनुभागविमटिका अपन्य कस्त
एक समय है और उक्त कस्त अन्तर्मुहूर्त है । अनुक्त अनुभागविमटिका कस्त सर्वथा है ।
मनुष्य अपर्षातको में उक्त अनुभागविमटिका अपन्य कस्त एक समय और अनुक्त अनुभाग
विमटिका अपन्य कस्त अन्तर्मुहूर्त है । तथा उक्त कस्त पस्त्रिका असंख्यातबे माग है । इसी
प्रकार बैकियिकमिभकाययोगिया में जानना चाहिए ।

विशेषार्थ-मनुष्य पयात और मनुष्यनियोमें अपन्य कस्त एक समय नारकियो के
समान धरित कर लेता चाहिए । तथा इन दोनों मार्ग्यावस्था का प्रमाण संख्यात होता है,
इसलिए इनमें उक्त अनुभागवस्था का उक्त कस्त अन्तर्मुहूर्त कहा है क्या कि यहाँ संख्यात
अन्तर्मुहूर्तका योग अन्तर्मुहूर्त ही होगा । यह शान्य निरन्तर मार्ग्यापे है इसलिए इनमें
अनुक्त अनुभागवस्था का कस्त सर्वथा कहा है । यह तो सम्भव है कि जिनके उक्तमें एक
समय कस्त शेष है ऐसे बीच मनुष्य अपर्षातको में उत्पन्न हो पर उक्त अनुभागका पात
हाने पर मनुष्य अपर्षातका का जो कस्त शेष रहता है उस कालमें उनके अनुक्त अनुभाग
नियमसे पाया जाता है, इसलिए मनुष्य अपर्षातको में उक्त अनुभागका अपन्य कस्त एक
समय और अनुक्त अनुभागका अपन्य कस्त अन्तर्मुहूर्त कहा है । यहाँ इतना अन्वय समझना
चाहिए कि मनुष्य अपर्षात अन्तर्मुहूर्त कस्त तक रहें और बादमें उनका अभाव हो जाय इस
अपेक्षा यह अन्तर्मुहूर्त कस्त कहा है । तथा नाना जीवा की अपेक्षा मनुष्य अपर्षातको का
उक्त कस्त पस्त्रिके असंख्यातबे मागप्रमाण है, इसलिए इनमें उक्त और अनुक्त अनुभाग-
वस्था का उक्त कस्त पस्त्रिके असंख्यातबे मागप्रमाण कहा है । बैकियिकमिभकाययोगी यह भी
सांख्य मार्ग्या है, इसलिए इसमें पक्ष सब कस्त धरित हो जानेसे इसकी प्ररूपणा मनुष्य
अपर्षातको के समान की है ।

§ १२६ आन्त त्वर्षसे लेकर सर्वाधसिदि पयन्त तकके बेचो में उक्त और अनुक्त
अनुभागविमटि सबथा पार्थ जाती है । इसी प्रकार भामिनियोधिकरानी सुतहानी अर्धधिकरानी,
मन्तर्बर्धरानी संयत सामाधिकरयत ज्ञेहापस्त्रापनार्थयत परिहारविदुदिसंयत, संयतसंयत
अर्धधिकरानिवासे सुतहोरयावामे सम्यग्दृष्टि बर्धकसम्बन्धित और वापिकसम्बन्धितियामें जानना
चाहिए । इतनी विरोधता है कि भामिनिवाधिकरानी सुतहानी, अर्धधिकरानी, अर्धधिकरानिवासे
सुतहोरयावामे सम्यग्दृष्टि और बर्धकसम्बन्धितियामें उक्त अनुभागविमटिका अपन्य कस्त एक
समय है और उक्त कस्त पस्त्रिके असंख्यातबे माग है ।

विशेषार्थ-आन्त अर्धिमें उक्त और अनुक्त अनुभागवस्तो का निरन्तर सञ्चाल बना

§ १२५. पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मोह० उक्क० ज० एगस०, उक्क० पत्तिदो० असखे० भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । एव तस-तसपज्जत्त-चक्खुदंसणि ति ।

§ १२६. आहार० मोह० उक्कस्साणुकस्साणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्त । एवमवगद०-अकसा०--सुहुमसांपराय०--जहाक्खादसंजट ति । आहारमिस्स० मोह० उक्कस्साणुकस्स० जहणुणुक० अतोमु० । अचक्खु० मोह० उक्कस्साणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पत्तिदो० असखे० भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । एव भवसि०-अभवसि०-मिच्छा-दिट्ठि ति ।

रहता है, क्यो कि यहाँ यह सम्भव है कि किसीने उत्कृष्ट अनुभागका घात न हो और यहाँ अनुकृष्ट अनुभागमे वृद्धि भी सम्भव नहीं है, अतः यहाँ उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागवालो का काल सर्वदा कहा है। यहाँ आभिनिवोधिकज्ञानी आदि अन्य जो मार्गणाएँ बतलाई हैं उनमे इसी प्रकार काल घटित कर लेना चाहिए। मात्र आभिनिवोधिकज्ञानी आदि कुछ मार्गणाएँ इसकी अपवाद हैं। बात यह है कि इन मार्गणाओ मे यथासम्भव उत्कृष्ट अनुभागवाले मिथ्या-दृष्टि भी आते हैं, अत इनमे उत्कृष्ट अनुभागवालो का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है। यदि जिनने उत्कृष्ट अनुभागमे एक समय काल शेष है ऐसे मिथ्यादृष्टि इन मार्गणाओ मे आते हैं और दूसरे समयमे उत्कृष्ट अनुभागवाले मिथ्यादृष्टि नहीं आते हैं तो इन आभिनिवोधिकज्ञानी आदिमे उत्कृष्ट अनुभागवालो का एक समय काल उपलब्ध होता है, और जिनने उत्कृष्ट अनुभागका काल अन्तर्मुहूर्त है ऐसे जीव निरन्तर आते रहते हैं तो यहाँ उत्कृष्ट अनुभागवालो का उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग-प्रमाण प्राप्त होता है। यह देखकर आभिनिवोधिकज्ञानी आदि सात मार्गणाओ मे उत्कृष्ट अनुभागवालो का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है।

§ १२५. पञ्चेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग है। अनुकृष्ट अनुभाग-विभक्तिका काल सर्वदा है। इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त और चक्षुदर्शनवालेके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—यद्यपि पञ्चेन्द्रिय जीव ही मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करते हैं, परन्तु कदाचित् ऐसा सम्भव है कि कोई पञ्चेन्द्रिय जीव मोहनीयका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध न करे और जिनके मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागके कालमें एक समय शेष हो ऐसे जीव ही शेष रहें, अत यहाँ पञ्चेन्द्रियदिकमें मोहनीयके उत्कृष्ट अनुभागवालोका जघन्य काल एक समय कहा है, तथा इनमें उत्कृष्ट अनुभागवालोका उत्कृष्ट काल पल्य असख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त और चक्षुदर्शनी जीवोंमें उक्त काल घटित कर लेना चाहिए। इन सब मार्गणाओमें अनुकृष्ट अनुभागवालोका काल सर्वदा है। यह स्पष्ट ही है।

§ १२६ आहारककाययागियो में मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्ति का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायसयत और यथाख्यातसयतोमें जानना चाहिए। आहारकमिश्रकाययागियोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अचक्षुदर्शनवालोमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग है। अनुकृष्ट का काल सर्वदा है। इसी प्रकार

§ १२७ उचमम० उकस्माणुक्स्माणु० ज० अतामु०, उक्क० पत्तिदा० भसंस०
यागा । एवं मम्मामिच्छादिदीर्घां । सासन० उकस्माणुक्स्माणु० ज० एगस०, उक्क०
पत्तिदा० भसंस० भागो । मणाहारीषु उकस्साणु० म० एगस०, उक्क० भापलि०
भसंस० भागो । अणुक० सम्वदा । एव पम्पय० ।

एवमुक्त्समो कालाणुगमो समता ।

§ १२८ जहणए पयण । दुषिहो जिरेसा—ओपे० भादस० । ओप० मार०

मम्य, अमम्य और मिध्यादृष्टियोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—आहारकालयागका जपन्य काल एक समय और उच्छृष्ट काल अन्तमुहूर्त
हानेसे इस यागवक्ष जीबोंमें मादनीयके उच्छृष्ट और अनुच्छृष्ट अनुभागवालोंका जपन्य काल
एक समय और उच्छृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है । अपगतवी आदि अन्य मार्गणाओंमें अपने
अपने स्वयमिच्छा स्थानमें रखकर इसी प्रकार उच्छृष्ट काल पठित कर लेना चाहिए । आहारकाल
कालयागका जपन्य और उच्छृष्ट काल अन्तमुहूर्त है अतः इस योगवासे जीबोंमें मादनीयके
उच्छृष्ट और अनुच्छृष्ट अनुभागवालोंका जपन्य और उच्छृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा है । अथवा
वर्तनवासेमें मादनीयके उच्छृष्ट अनुभागका जपन्य काल अन्तमुहूर्त कहनेका कारण यह है कि
यह माताका बराबर बनी रहती है, अन्य मार्गणाओंके समान यह बदलती नहीं । शेष कथन
मुगम है ।

§ १२९ उपरममम्यदृष्टियोंमें उच्छृष्ट और अनुच्छृष्ट अनुभागविविधिका जपन्य काल
अन्तमुहूर्त है और उच्छृष्ट काल पत्त्यके अर्धग्यातवें भाग है । इसी प्रकार सम्बन्धिमिध्यादृष्टियों
में जानना चाहिए । सासादनसम्बन्धिमिध्यादृष्टियोंमें उच्छृष्ट और अनुच्छृष्ट अनुभागविविधिका जपन्य काल
एक समय है और उच्छृष्ट काल पत्त्यके अर्धग्यातवें भाग है । अनाहारियोंमें उच्छृष्ट अनुभाग-
विविधिका जपन्य काल एक समय है और उच्छृष्ट काल आपनीका अर्धग्यातवें भाग है ।
अनुच्छृष्ट अनुभागविविधिका सबदा रहती है । इसी प्रकार कामणकाय यागमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—माना जीबोंकी अपेक्षा उपरममम्यवक्षका जपन्य काल अन्तमुहूर्त और
उच्छृष्ट काल पत्त्यके अर्धग्यातवें भागप्रमाण है, इसलिए इसमें उच्छृष्ट और अनुच्छृष्ट अनुभाग-
वालोंका जपन्य काल अन्तमुहूर्त और उच्छृष्ट काल पत्त्यके अर्धग्यातवें भागप्रमाण कहा है ।
इसी प्रकार सम्बन्धिमिध्यादृष्टियोंमें भी पठित कर लेना चाहिए । माना जीबोंकी अपेक्षा सामान-
सम्बन्धका जपन्य काल एक समय और उच्छृष्ट काल पत्त्यके अर्धग्यातवें भागप्रमाण है
इसलिए इसमें उच्छृष्ट और अनुच्छृष्ट अनुभागवालोंका जपन्य काल एक समय और उच्छृष्ट काल
पत्त्यके अर्धग्यातवें भागप्रमाण कहा है । अनाहारक और कामणकाय यागियोंमें उच्छृष्ट अनुभागका
कमस कम एक समय तक और अधिभूम अधिष्ठानके अर्धग्यातवें भागप्रमाण काल तक ही
ज्ञान है कारण कि निम्नर वर्ण अर्धग्यात अनाहारक आश भी उच्छृष्ट अनुभागका हो ता इस
गर्भ कालका याग आर्धग्यातवें भागप्रमाण होता है । इसलिए इसमें उच्छृष्ट अनुभाग
कापीका जपन्य काल एक समय और उच्छृष्ट काल आर्धग्यातवें भागप्रमाण कहा है ।
तथा अनाहारक वर्णका लगे ज्ञान है अतः इनमें अनुच्छृष्ट अनुभागका जो काल गहरा कहा है ।

इस प्रकार उच्छृष्ट कालानुगम समान हुआ ।

§ १३— उच उचमम प्रवाजम है । निर्रेग हा उचकारका है—आपस और आदरमे ।

जहणणाणुभाग० ज० एगस०, उक्क० संखेजा समय। अज० सव्वद्धा । एव मणुसतिय-पंचिदिय-पचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-तिणिएवेद-चत्तारिकसाय-आभिणि०-सूद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्कले०-भवसि०-सम्पाटिदि-स्वइय०-वेदग०-सणिए-आहारि ति । णवरि वेदग० जह० जहण्णेण अंतोमु० ।

§ १२६. आदेसेण णेरइएमु ज० ज० एगसमओ, उक्क० पलिटो० असंखे० भागो । अज० सव्वद्धा । एव पढमपुदवि-सव्वपचिदियतिरिक्ख०-देव०-भवण०-वाण०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-वादरपुदविपज्जत्त-वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज०-वादरवणप्फटिपत्तेयसरीरपज्जत्त-तसअपज्जत्ता ति । विट्ठियादि जाव सत्तमि ति जहण्णाजहण्णाणु० सव्वद्धा । एवं तिरिक्खोघं जोइसियादि जाव सव्वट्ट-सिद्धि०-सव्वएइदिय-सव्वपचकाय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-वेउच्चिय०-मदि-

ओघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उक्कट काल सख्यात समय है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, पञ्चेन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषपेदी, नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी, मायावी, लोभी, आभिनित्रोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, श्रवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिक-सयत, छेदोपस्थापनासयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, श्रवधिदर्शनवाले, शुद्धलेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, सज्ञी और आहारकोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ-यह सम्भव है कि क्षपकश्रेणि पर नाना जीव एक साथ चढे और दूसरे समय में अन्तर पड़ जाय और यह भी सम्भव है कि सख्यात समय तक निरन्तर जीव क्षपकश्रेणि पर आरोहण करें । यह सब देखकर यहाँ आघसे जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उक्कट काल सख्यात समय कहा है । तथा अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा है, क्योंकि मोहनीयकी सत्तावाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं । मनुष्यत्रिक आदिमें यह व्यवस्था बन जाती है इसलिए उनमें ओघके समान काल कहा है । मात्र वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें दो बार उपशमश्रेणिसे उतरें हुए कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके जघन्य अनुभाग होता है, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उक्कट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ १२६ आदेशसे नारकियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उक्कट काल पत्यका असख्यातवाँ भाग है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर अप्कायिक पर्याप्त, वादर तैजस्कायिक पर्याप्त, वादर वायुकायिक पर्याप्त, वादरवनरपति प्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रसअपर्याप्तोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथ्वी पर्यंत जघन्य और अजघन्य अनुभाग-विभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्चोंमें तथा ज्योतिषीदेवोंसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धितकके देव, सब एकेंद्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी

अप्याणि-मुदमप्याणि-विहंग्याणि परिहार०-संभदासंभद-असंभद-पंचले०-अमपसि०
मिच्छादिदि-असपिण-अप्यहारि वि ।

१३० मनुसअपञ्च० अहण्यामहण्याणु० अ० एगस० अंतोमुहुत्तं, उक्त०
पस्विदो० असंसे०भागो । एवं वरम्बियमिस्त० । आहार० मोह० अहण्यामहण्याणु०
अ० एगस०, उक्त० अंतोमु० । आहारमिस्त० अहण्यामहण्याणु० अह० अंतोमु०,
उक्त० अंतोमु० । अहणद० अहण्याणुभाग० अ० एगस०, उक्त० संसेका समय ।
अह० अह० एगस०, उक्त० अंतोमु० । एवमकसा०-मुहुमसांपराय०-अहाकत्वाद० ।
अपरि अकसा०-अहाकत्वाद० अह० उक्त० अंतोमु० । उपसमसम्मादिदि-सासण०
अहण्याणु० अ० अंतोमु० एगस०, उक्त० अंतोमु० । अह० अह० अंतोमु० एगस०,

वैदिकिक्रयवागी मतिअहानी, अतअहानी विमंगहानी, परिहारविहिसंयत संयतासंयत,
असंयत, अहणसे सिवा शेष पूर्वो लेखबाबले अमम्य, मिच्छादिदि, असंघी और अनहणरकेमें
जानना चाहिए ।

विद्येपार्थ-आ इतसमुत्पत्तिककर्मबाले असंघी मर कर नरकमें उत्पन्न होते हैं इनके
अपन्य अनुमान होता है । यह अर्थ है कि इस अनुमागका अज्ञान एक समय एक ही हा
और निरन्तर ऐसे जीव उत्पन्न हों और अन्तर्मुहुत्त तक वही अनुमाग रहें या वहाँ अपन्य
अनुमागका अज्ञान काल पस्वके असंख्यातवें मागप्रमाण प्राप्त होता है, इसलिये नरकमें जन्म
अनुमागबालोंका अपन्य काल एक समय और अज्ञान काल पस्वके असंख्यातवें मागप्रमाण
करा है । वहाँ अज्ञान्य अनुमागबालोंका काल सर्वथा है यह स्पष्ट ही है । प्रथम पृथिवीके मारकी
आदि अन्य जितनी मार्गापारं मूलमें गिनत हैं इनमें यह अज्ञान अविज्ञान बन जाता है, इसलिये
इनकी प्रकृत्या सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है । द्वितीयादि पृथिवीमें
अनन्तानुबन्धीकी जिनोंने विसंयोजना करके अपन्य अनुमाग किया है ऐसे जीव और अज्ञान्य
अनुमागबालों जीव सर्वथा पामे जाते हैं, अतः इनमें अपन्य और अज्ञान्य अनुमागबालोंका
काल सबथा करा है । सामान्य तिर्यक आदिमें अपन्य और अज्ञान्य अनुमागबालोंका यह
काल इसी प्रकार प्राप्त होता है अतः इनमें द्वितीयादि नरकोंके समान जाननेकी सूचना की है ।

१३१ मनुष्य अपर्वातोंमें जन्म्य अनुमागविमत्तिका अपन्य काल एक समय और
अज्ञान्य अनुमागविमत्तिका अज्ञान्य काल अन्तर्मुहुत्त है तथा ज्ञानोंका अज्ञान काल पस्वके
असंख्यातवें माग है । इसी प्रकार वैदिकिक्रययोगियोंमें जानना चाहिए । अज्ञानकाल्य-
वागिनेमि मोहनीवकर्मकी अपन्य और अज्ञान्य अनुमागविमत्तिका काल जन्मवसे एक समय
है और अज्ञानसे अन्तर्मुहुत्त है । आहारकर्मिक्रययोगियोंमें जन्म्य और अज्ञान्य अनुमाग-
विमत्तिका काल अपन्यसे भी अन्तर्मुहुत्त है और अज्ञानसे भी अन्तर्मुहुत्त है । अपगतपेधियोंमें
अपन्य अनुमागविमत्तिका काल अपन्यसे एक समय है और अज्ञानसे संख्यात समय है ।
अज्ञान्य अनुमागविमत्तिका काल अपन्यसे एक समय है और अज्ञानसे अन्तर्मुहुत्त है । इसी प्रकार
अज्ञान्यी सूत्रसाम्पराजसंयत और अज्ञान्यसंयतमें जानना चाहिए । इतनी विरोधता है कि
अज्ञान्यी और अज्ञान्यसंयतमें अपन्य अनुमागका अज्ञान काल अन्तर्मुहुत्त है । अपगतसंय-
तद्विद्येमें अपन्य अनुमागविमत्तिका काल अपन्यसे अन्तर्मुहुत्त है और सास्तामसम्पत्तिये

जहणणाणुभाग० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । एव
मणुसतिय-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०--तस--तसपज्ज०--पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि०--
ओरालिय०--तिरणवेद--चत्तारिकसाय--आभिणि०--सुद०--ओहि०--मणपज्ज०--संजट०--
सामाइय-छेदो०--चक्खु०--अचक्खु०--ओहिदंस०--सुकलो०--भवसि०--सम्मादिदि--खइय०--
वेदग०--सरिण-आहारि ति । णवरि वेदग० जह० जहणणेण अंतोमु० ।

§ १२६. आदेसेण णेरइएसु ज० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०
भागो । अज० सव्वद्धा । एवं पढमपुठवि--सव्वपचिंदियतिरिक्ख०--देव०--भवण०--वाण०--
सव्वधिगल्लिंदिय--पंचिंदियअपज्ज०--वादरपुठविपज्जत्त--वादरआउपज्ज०--वादरतेउपज्ज०--
वादरवाउपज्ज०--वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्त-तसअपज्जत्ता ति । विटियादि जाव
सत्तमि ति जहण्णाजहण्णाणु० सव्वद्धा । एवं तिरिक्खोघं जोइसियादि जाव सव्वद्ध-
सिद्धि०--सव्वएइदिय--सव्वपंचकाय--ओरालियमिस्स०--कम्मइय०--वेउव्विय०--मडि-

ओघसे मोहनीयकर्मकी जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल
सख्यात समय है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य,
मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों
वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी, क्रोधी, मानी,
मायावी, लोभी, अभिनित्रोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी, सयत्, सामायिक-
सयत्, छेदोपस्थापनासयत्, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्लेश्यावाले,
भव्य, सम्यग्दृष्टि, स्थायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, सज्ञी और आहारकामे जानना चाहिए ।
इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका काल जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि क्षपकश्रेणि पर नाना जीव एक साथ चढ़े और दूसरे समय
में अन्तर पड़ जाय और यह भी सम्भव है कि सख्यात समय तक निरन्तर जीव क्षपकश्रेणि
पर आरोहण करें । यह सब देखकर यहाँ ओघसे जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय कहा है । तथा अजघन्य अनुभागवालोंका काल सर्वदा
है, क्योंकि मोहनीयकी सत्तावाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं । मनुष्यत्रिक आदिमें यह व्यवस्था
बन जाती है इसलिए उनमें ओघके समान काल कहा है । मात्र वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें दो बार
उपशमश्रेणिसे उतरे हुए कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके जघन्य अनुभाग होता है, इसलिए इनमें
जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ १२६ आदेशसे नारकियोंमें जघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल एक समय है
और उत्कृष्ट काल पत्यका असख्यातवाँ भाग है । अजघन्य अनुभागविभक्तिका काल सर्वदा है ।
इसी प्रकार पहली पृथिवी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सब विकले-
न्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अष्कायिक पर्याप्त, बादर तैजस्का-
यिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादरखनस्पति प्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रसअपर्याप्तोंमें
जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथ्वी पर्यं त जघन्य और अजघन्य अनुभाग-
विभक्तिका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्चोंमें तथा ज्योतिषीदेवोंसे लेकर सर्वार्थ-
सिद्धितकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कामणकाययोगी

१३१ अंतरानुगमो बुधिहो—जईयणाओं बहस्तसमो चेदि । बहस्तसए पयर्द ।
 बुधिहो गिहोसो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण मोह० उहस्तसाणुभागतए केवचिरं
 कान्मादा होदि ? अ० एगस०, उह० असंखेजा खोगा । अणुह० णत्थि अंतरं । एवं
 सम्बणेरइय-सम्बतिगिह-सम्बमणुस्स-देव भवणादि जाव सहस्सार०-सम्बएइदिय-सम्ब
 पिगसिदिय-सम्बपंचिदिय-सम्बइहाय-पंचमण०-पंचवचि०-कायमोगि०-आरासिय०
 ओरासियमिस्स०-बबब्बिय०-बबब्बियमिस्स-कम्मइय तिष्ठियावद-वत्तारिफसाय तिष्ठिया
 मण्याया-असंजद०-चनसु०-अचनसु०-पंचले०-मभसि०-मभमसि०-मिच्छादिदि-
 सयिया मसयिया-आहारि भणाहारि चि । पवरि मणुसमपज्ज०-वर्गब्बियमिस्स०
 अणुह० जह० एगस०, उह० पसिदो० असंखे० भागो पारस सुहुत्ता ।

१३२ आपदादि भाव सम्बहसिदि चि उहस्तसाणुकस्स० णत्थि अंतरं ।

अपरमसम्बहसिदोके समान पठित कर लेता चाहिए ।

इस प्रकार कप्तानुगम समाप्त हुआ ।

१३१ अंतरानुगम वा प्रकारका है—जपम्य और उहउह । उहउहसे प्रयोजन है ।
 निर्देश वा प्रकारका है—आप और आपदा । आपसे माहनीयकर्मके उहउह अनुमागका अन्तर
 काल कितना है ? अथवा अन्तर एक समय और उहउह अन्तर असंख्यात लाकप्रमाण है । अनुकउह
 अनुमागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सब नारकी सब वियञ्च सब मनुष्य, सब मन्वन्वासीसे
 लेकर छाहस्यारस्वर्ग तकक सब सब एकेत्रिय सब विहलेत्रिय सब पञ्चेत्रिय, सब ब्राह्मों काम,
 पौत्रों मन्वावागी, पौत्रों बचनयोगी सामान्य कायवागी, औदारिककावयोगी, औदारिकमिभ-
 काययोगी, वैक्रियिककायवागी वैक्रियिकमिभकाययोगी कर्मवाक्यवागी श्रीवेदी, पुत्रपवेषी
 नपुंसकरथी श्रेणी, मानी, मायावी, लोभी, लीनों अज्ञानी असंयत पञ्चुपरान्धि, अचञ्चुपरान्ती,
 सुहुके सिवा शेष पौत्रों करयावासे, भव्य अभव्य मिथ्यादृष्टि संखी, असाक्षी आहारक और
 अनआरकोसे जानता चाहिए । इतनी विरोधता है कि मनुष्य अपप्राप्तकों और वैक्रियिकमिभ-
 काववागियोंमें अनुकउह अनुमागविमच्छिका सम्बन्ध अंतर एक समय है तथा उहउह अन्तर
 मनुष्य अपप्राप्तकोंमें एस्वके असंख्यातकों माग और वैक्रियिकमिभकायवागियोंमें चारह
 गुरु है ।

विशेषार्थ—आपसे एक समयके अन्तरसे और परियाओंके अनुसार असंख्यात लाक-
 प्रमाण आपुके अंतरसे उहउह अनु-गन्धी सत्ता सम्बन्ध है, अतः यहाँ उहउह अनुमागवास्तोंका
 सम्बन्ध अन्तर एक समय और उहउह अन्तर असंख्यात लाकप्रमाण कहा है । तथा अनुकउह
 अनुमागवास्तोंकी सब सर्वथा पके जात हैं, अतः इनके अन्तर कालका नियम किया है । ब्राह्मों
 मनुष्योंमें अन्व जितनी माग्यार्थे गिन्याई हैं वन्से यह ओपमरूपया अविभक्त पठित हो
 जाती है, अतः इनके कवनका ओपके समान कहा है । मात्र मनुष्यअपप्राप्त और वैक्रियिक-
 मिभकायवागका अपम्य अन्तर एक समय और उहउह अन्तर कम्मराः पत्यके असंख्यातके
 मागप्रमाण और चारह गुरु है, अतः इनमें अनुकउह अनुमागवास्तोंका अपम्य और उहउह
 अन्तर आपने आपने अपन्त्र और उहउह अन्तर कालके समान कहा है ।

१३२ आन्त स्वसिसे लेकर सर्वावधिदि पन्त उहउह और अनुकउह अनुमागविमच्छि-

उक्त० पल्लिदो० असंखे० भागो । सम्मामि० जहण्णाजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्त०
पल्लिदो० असंखे० भागो । णवरि जहण्णाणु० अंतोमुहुत्तं ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

एक समय है। तथा दोनोंमें उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य अनुभागविभक्तिका जघन्य काल उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अन्तर्मुहूर्त है और सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें एक समय है। उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभाग-विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जघन्य अनुभागविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जिनके जघन्य अनुभागके कालमें एक समय शेष है ऐसे जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होने पर वहाँ जघन्य अनुभागका एक समय काल उपलब्ध होता है और मनुष्य अपर्याप्तमें जघन्य अनुभागके कालके सिवा शेष अन्तर्मुहूर्त काल अजघन्य अनुभागका जघन्य काल है। तथा मनुष्य लब्धपर्याप्त जीव यदि निरन्तर उत्पन्न हों तो पल्यका असख्यातवाँ भाग काल उपलब्ध होता है, इतने काल तक इस मार्गणमें जघन्य और अजघन्य दोनों अनुभागविभक्तियाँ सम्भव हैं, इसलिए इनमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका क्रमशः जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त तथा दोनोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असख्यातवें भाग-प्रमाण कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग भी सान्तर मार्गणा है और इसमें काल सम्बन्धी प्ररूपणा मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान बन जाती है, अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगवालोंमें मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान जाननेकी सूचना की है। आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः आहारककाययोगवालोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभाग-वालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। आहारकमिश्रकाययोग-का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः आहारकमिश्रकाययोगवालोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका दोनों प्रकारका काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अपगतवेदमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय ओघके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा अपगतवेदका मोहसत्त्वकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए अपगतवेदियोंमें मोहनीयके अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिक सयत और यथाख्यातसयतोंमें अपगतवेदियोंके समान काल घटित कर लेना चाहिए। पर अकषायी और यथाख्यातसयत मोहसत्त्वकी अपेक्षा उपशान्तकपायगुणस्थानवाले होते हैं, इसलिए इनमें जघन्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। उपशमसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और सासादनका जघन्य काल एक समय है, अतः इनमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य काल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय कहा है। तथा स्वामित्वको देखते हुए इन दोनों मार्गणाओंमें जघन्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, अतः वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इन मार्गणाओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालको ध्यानमें रख कर इनमें अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको व स्वामित्व-सम्बन्धी विशेषताको ध्यानमें रखकर वहाँ भी जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है। मात्र इनमें भी जघन्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त

१११ अंतराणुगमो बुविहो—अहयशाओं उकस्तमो चेदि । उकस्तए पयदं ।
 बुविहो गिहो सो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण मोह० उकस्ताणुभागतर केवधिर्
 कामादो होदि । ज० पगस०, उक० असंखेजा लोगा । अणुक० गत्य अंतरं । एषं
 सन्वणेरइय-सन्वतिरिक्त्व-सन्वमणुस्त-द्व-भयणादि भाव सहस्तर०-सम्बुपूईदिय-सन्व
 विगन्दिदिय-सम्बपंचिदिय-सन्वअकाय-पंचयण०-पंचवधि०-कायनोगि० आराक्षिप०
 ओराक्षिपमिस्त०-वेबधिय०-वेठधियमिस्त-कम्मइय तिणियावद चत्तारिक्साय तिणिया
 अपयाया-असंमद०-अकसु०-अचकसु०-पंचल०-अवसि०-अमवसि०-मिच्छादिदि-
 सणिएण असणिएण-आहारि अणाहारि ति । जपरि मणुसमपज्ज०-अउम्भयमिस्त०
 मणुक० जह० पगस०, उक० पल्लिदो० असंखे० भागो वारस सुहुता ।

११२ आण्णादि जान सम्बद्धसिद्धि ति उकस्ताणुकस्त० गत्य अंतरं ।

उपशमसन्वच्छिन्नोके समान पटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

१११ अन्तराणुगम दो प्रकारका है—जपन्य और उकृष्ट । उकृष्टसे प्रयोजन है ।
 निर्देश हा प्रकारका है—भाष और आदेश । ओपसे माह्नीयकर्मके उकृष्ट अनुभागाका अन्तर
 क्तल कियता है ? जपन्य अन्तर एक समय और उकृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण्य है । अनुकृष्ट
 अनुभागाका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सब नारकी सब सियन्व, सब मनुष्य, इव, मवनवासीसे
 सेक सहायस्वर्ग उकृष्ट इव, सब एकेन्द्रिय सब विकसेन्द्रिय सब पञ्चेन्द्रिय, सब इहो काय,
 पौबो मन्येवागी पौबो वचनयोगी, साम्भय कायवागी औदारिककावयोगी, औदारिकमिभ-
 कायवागी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिभकायवागी, कामरुण्यकायवागी, स्त्रीरुणी पुरुषरुणी
 न्युसंकरुणी कापी मानी, मायापी सोम्यी, वीनो अहानी असंतप चत्तुवर्तनी अचत्तुवर्तनी
 शुद्धके सिवा शेष पौबो लेख्याभासे, मन्व, अमन्व मिथ्यादृष्टि संघी असंघी आहारक और
 अनाहारकोमे जानना चाहिए । इतनी विरापता है कि मनुष्य अपघातको और वैक्रियिकमिभ-
 कायवागियोंमे अनुकृष्ट अनुभागाविमल्लिका जपन्य अंतर एक समय है तथा उकृष्ट अन्तर
 मनुष्य अपघातकोमे पत्सके असंख्यातवें भाग और वैक्रियिकमिभकायवागियोंमे वारह
 सुहूर्त है ।

विशेषार्थ—आपसे एक समयके अन्तरसे और परिखामोके अनुसार असंख्यात साक-
 प्रमाण्य काके अन्तरसे उकृष्ट अनु-गकी सत्ता सम्भव है, अतः यहाँ उकृष्ट अनुभागाकोका
 जपन्य अन्तर एक समय और उकृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण्य कहा है । तथा अनुकृष्ट
 अनुभागाकोके बीच सर्वथा पक्षे जाते हैं अतः उनके अन्तर कालका नियम किया है । यहाँ
 मूलमे जपन्य अन्तनी माग्ण्यपरे गिनाइ हैं जमे यह आपमरुपया अविफल पटित हा
 जाती है, अतः उनके कथनका आपके समान कहा है । मात्र मनुष्यअपघात और वैक्रियिक-
 मिभकायवागाका जपन्य अन्तर एक समय और उकृष्ट अन्तर कम्परा पत्सके असंख्यातवें
 भागप्रमाण्य और वारह सुहूर्त है अतः इसमें अनु कृष्ट अनुभागाकोका जपन्य और उकृष्ट
 अन्तर अपने अपने जपन्य और उकृष्ट अन्तर असेके समान कहा है ।

११२ आन्व स्वान्से लेकर संघावसिद्धि पपन्त उकृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागाविमल्लि-

एवं मणपज्ज०-संजद--सामाइय-वेदो०--परिहार०--संजदासंजद-खइयसम्मादिट्ठि ति ।
 आहार० उक्कस्साणु० जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । एवमणुक्कस्सं पि वत्तव्वं ।
 एवमाहारमिस्स०-अवगद०--अकसा०-सुहुमसांपराय०--जहाक्खादसंजदे ति । णवरि
 अवगदवेद-सुहुमसांपराय० अणुक्क० उक्क० छम्मासा ।

§ १३३. आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्कस्साणु० जह० एगस०, उक्क० असं-
 खेज्जा लोगा । अणुक्क० णत्थि अंतरं । एवमोहिदंस०-सुक्कलेस्सि०-सम्मादिट्ठि०-वेदग०-
 दिट्ठि ति । उवसमसम्मा० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणुक्क०
 ज० एगस०, उक्क० सत्तरादिदियाणि । सासण० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क०
 असंखेज्जा लोगा । अधवा उहयत्थ उक्कस्संतरमसंखेज्जा लोगा ति ण सम्मवगम्मदे,
 तदो जाणिय वत्तव्वं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । सम्मामि०

का अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मन पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, वेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत और चायिकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिए। आहारककाय-योगमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका भी अन्तर कहना चाहिए। इसी प्रकार आहारक-मिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायसयत, और यथाख्यातसयतोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसयतोंमें अनुत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल छ माह है।

विशेषार्थ—आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीव सर्वदा उपलब्ध होते हैं, अत यहाँ दोनों प्रकारके अनुभागवालोंके अन्तरकालका निषेध किया है। इसी प्रकार मन पर्ययज्ञानी आदि मार्गणाओंमें जानना चाहिए। आहारककाययोगका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिए इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी आदि मार्गणाओंमें घटित कर लेना चाहिए। मात्र क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा अपगतवेदी और सूक्ष्मसाम्परायसयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, इसलिए इनमें अनुत्कृष्ट अनुभागवालोंका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है।

§ १३३ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असख्यात लोक है। अनुत्कृष्ट अनु-भागविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्लेशयावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जानना चाहिए। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असख्यात लोक है। अनुत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है। अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिमें उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है यह बात भली प्रकार अवगत नहीं है, इसलिये उनका यह अन्तर जानकर कहना चाहिए। अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यातवें

उक्त० अ० एगसमभो, उक्त० असंखेखा सोगा । मनुक्त० अ० एगस०, उक्त० पसिदो०
असंखे० मागो ।

एवमुक्तस्तमो अंतराणुगमो समप्तो ।

§ १३४ नहण्यए पपदं । इतिहो निरसे—ओपे० आदेसे० । तस्य ओपेण
मोह० नहण्णाणुवागस्त अन्तरं केपथिरं काखादो होदि । नह० एगस०, उक्त०
इत्मासा । अम० जस्य अन्तरं । एवं मनुसतिय-पंचिंदिय-पंचि० पञ्च०-तस-तसपञ्च०
पंचयण०-पंचपथि०-कायभोगि-भोराक्विप०-खोमकसा०-आमिणि०-मुद०-मोहि०-मण-
पञ्च०-संनद०-सामाहप-धेयो०-चक्खु०-अचक्खु०-आहिदंस०-मुक्खो-अपसि०
सम्मादि०-स्वह्य०-सण्णि आहारि ति । नगरि मनुस्तिणि०-मोहि०-मणपञ्चप०-मोहि
वंसणीमु नहण्णाणु० उक्तस्तंतरं वासपुपचं ।

मार्ग है । सम्बन्धित्वाद्युक्तियोंमें उक्त अनुमानविमर्शनीय अन्तर एक समय है और
उक्त अन्तर असंख्यात मात्र है । अनुक्त अनुमानविमर्शनीय अन्तर एक समय है
और उक्त अन्तर पञ्चका असंख्यातको माग है ।

विशेषार्थ—आमिनिबोधिच्छान्ती आदि मार्ग्याभोगे अन्तर कसका सुखासा ओपके
समान कर लेना चाहिए । आगेकी शेष मार्ग्याभोगे भी इसी प्रकार अन्तर कस पठित कर लेना
चाहिए । मात्र इन सब उपरामसम्बन्धित्वादि आदि मार्ग्याभोगे अनुक्त अनुमानवाशोंका वा
अपन्य और उक्त अन्तर कहा है वह उस उस मार्ग्याके अपन्य और उक्त अन्तरकसका
ध्यानमें रक्कत कर रहा है ।

इस प्रकार उक्त अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

§ १३४ अब अपन्यका प्रकरण है । निर्देश का प्रकारका है—आप और आपेरा । उनमेंसे
ओपसे मोहनीयकर्मकी अपन्य अनुमानविमर्शनीय अन्तर कस कितना है ? अपन्य अन्तर
एक समय और उक्त अन्तर क मास है । अपन्य अनुमानविमर्शनीय अन्तर नहीं है । इसी
प्रकार सामान्य मनुष्य मनुष्यपर्याप्त मनुष्यिणी पञ्चमिष्व पञ्चोद्वयपर्याप्त त्रस, त्रसपर्याप्त पौषो
मन्वेबोगी, पौषो वचनयागी कावबोगी, औदारिककाययोगी शोमी, आमिनिबोधिच्छान्ती सुखशान्ती
अधधिच्छान्ती, मन्तपर्यवशान्ती, संयत सामाधिकसंयत, धेयोपजापनासंयत चक्षुधरान्ती, अचक्षु-
धरान्ती अधधिधरान्ती सुहमेस्पात्तमे भग्य सत्यन्दि अधधिकसम्बन्धित्वादि, सही और आहारक
जीवोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विरोधता है कि मनुष्यिणी, अधधिच्छान्ती मन्तपर्यवशान्ती
और अधधिधरान्ती जीवोंमें अपन्य अनुमानका उक्त अन्तर वचपूयकत्व है ।

विशेषार्थ—अपक सूक्ष्मसाम्यरावका अपन्य अन्तर एक समय और उक्त अन्तर उह
महीना है, इसलिये ओपसे मोहनीयके अपन्य अनुमानवाशोंका अपन्य अन्तर एक समय और
उक्त अन्तर उह महीना कहा है । आपसे अपन्य अनुमानवाशोंका अन्तर कस नहीं है
वह स्पष्ट ही है । यहाँ मनुष्यिक आदि जितनी मार्ग्याभोगे निर्देश किया है उन सबमें
अपककेलिये सम्भव है, इसलिये इनकी प्रकृत्या ओपके समान जाननेकी सूचना भी है । परन्तु
मनुष्यिणी अधधिच्छान्ती मन्तपर्यवशान्ती और अधधिधरान्ती के चार मार्ग्यापे देखी हैं जिनमें

§ १३५. आदेशेण णेरइएसु मोह० जहण्णाणुभागंतरं जहएणोण एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० णत्थि अंतरं । एवं पढमपुढवि-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव-भवण०-वाण०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्ज०-वादरपुढविपज्ज० वादरआउपज्ज०-वादरतेउपज्ज०-वादरवाउपज्ज० वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्ज०-तसअपज्जते ति । विदियादि जाव सत्तमि ति जहएणाजहण्णाणुभाग० णत्थि अंतरं । एवं तिरिक्खोघं जोदिसियादि जाव सव्वट्टसिद्धि-सव्वेइ दिय-सव्वपंचकाय-वेउव्विय०-ओरोलियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-मुदअएणाणि विहंग०-असंजद०-किएह-णील काउ०-अभवसि०-मिच्छा-दिट्ठि-असएिण-अणाहारि ति ।

§ १३६. मणुसअपज्ज० जहएणाणु० ज० - एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगस०, उक्क० पत्तिदो० असंखे० भागो । एवं वेउव्वियमिस्स०-सासण०दिट्ठि

क्षपकश्रेणि कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे सम्भव है, अतः इन मार्गाणाओंमें जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है ।

§ १३५ आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकर्मके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सब विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर अष्कायिक पर्याप्त, बादर तैजस्कायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और त्रसअपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त जघन्य और अजघ य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्च, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त, सब एकेन्द्रिय, सब पाँचों स्थावरकाय, वैक्रियिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी, विभगज्ञानी, असयत, वृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिध्यादृष्टि, असङ्गी और अनाहारकोंमें जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—यह सम्भव है कि नरकमें जघन्य अनुभागवाले असङ्गी एक समयके अतर से उत्पन्न हों और असख्यात लोकके अतरसे उत्पन्न हों, अतः इनमें जघ य अनुभागवालोंका जघन्य अतर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण कहा है । इनमें अजघ य अनुभागवालोंका अन्तर काल नहीं है यह स्पष्ट ही है । यहाँ प्रथम पृथिवीके नारकी आदि अन्य जितनी मार्गाणाएँ गिनाई हैं उनमें यह अन्तर बन जाता है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान जाननेकी सूचना की है । द्वितीयादि नरकोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले सर्वदा उपलब्ध होते हैं, अतः वहाँ जघन्य और अजघन्य अनुभागवालोंके अन्तरकालका निषेध किया है ।

§ १३६ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक है । अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर प्रत्येक असख्यातवोंका भाग है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और सासादन

ति । णवरि वेठन्वियमिस्स० अजइयणाणु० पारस सुहुवा । अणवा सासण० अह० उक्खस्संतरं पल्लिदो० अस्सत्वे० मागो । आहार० मोह० अइयणाणु० अ० एगस०, उक्क० वासपुपत्त । एवमअइयणं पि । एवमाहारमिस्स० । इत्थि० अणुस० अइयणाणु० अ० एगस०, उक्क० वासपुपत्त । अज० णत्थि अंतरं । पुरिस० अह० अ० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० अत्थि अंतरं । अणवद् अह० न० एगस०, उक्क० अमासा । अज० अ० एगस०, उक्क० अमासा ।

सम्यग्प्रियोमि जाना चाहि । इतनी विरोपता है कि वैकल्पिकमिभक्त्यायोगियोमि अणुपम्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर बारह सुहुत है । अणवा सासादनसम्यग्प्रियोमि अणुपम्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पत्त्वके असंख्यातवें भाग है । आहारकक्राययोगियोमे माहनीयकर्मके अणुपम्य अनुभागका अणुपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार अणुपम्य अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए । इसी प्रकार आहारकक्राययोगी जीवोंमें जानना चाहिए । स्त्रीवही और नपुंसकवही अणुपम्य अनुभागका अणुपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । अणुपम्य अनुभागका अन्तर नहीं है । पुण्यश्रियोमे अणुपम्य अनुभागका अणुपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है । अणुपम्य अनुभागका अन्तर नहीं है । अणुपम्य अणुपम्य अणुपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बारह मास है । अणुपम्य अनुभागका अणुपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर द्वादश महीना है ।

विद्योपार्यं—मनुष्य अपयान्त्रिकमं सामान्य नाशिकोके समान अणुपम्य अनुभागवालोंके अणुपम्य और उत्कृष्ट अन्तर काजका पठित कर लेना चाहिए । तथा इस मार्गवाके अणुपम्य और उत्कृष्ट अन्तर कालका बलकर इसमें अणुपम्य अनुभागवालोंका अणुपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्त्वके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । वैकल्पिकमिभक्त्यायोगका उत्कृष्ट अन्तर बारह सुहुत है, इसलिये इसमें अणुपम्य अनुभागवालोंका उत्कृष्ट अन्तर बारह सुहुत कहा है । शय सय अन्तर काल मनुष्य अपयान्त्रिकोंके समान वन जानेसे वह उनके समान कहा है । सासादनसम्यग्प्रियोमि मनुष्य अपयान्त्रिकोंके समान अन्तर काल प्राप्त होता है यह स्पष्ट ही है । यहाँ विकल्परूपसे सासादनसम्यग्प्रियोमि अणुपम्य अनुभागवालोंका जो उत्कृष्ट अन्तर पत्त्वके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है मा इसका विचारकर जान लेना चाहिए । आहारकक्रायका अणुपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है, इसलिये इनमें शान्ते अनुभागवालोंका अणुपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है । स्त्रीवही और नपुंसकवही जीवोंमें अणुपम्य अणुपम्य अणुपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है इसलिये इनमें अणुपम्य अनुभागवालोंका अणुपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा है । तथा इनमें अणुपम्य अनुभागवालोंका अन्तर नहीं है यह स्पष्ट ही है । पुण्यश्रियोमे अणुपम्य अणुपम्य अणुपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासिक एक वर्ष है इसलिये इनमें अणुपम्य अनुभागवालोंका अणुपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासिक एक वर्ष कहा है । तथा यह निरन्तर मार्गवा है इसलिये इनमें अणुपम्य अनुभागवालोंके अन्तरकालका विषय किया है । माहनुष्य अणुपम्य अणुपम्य अणुपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर द्वादश महीना है इसलिये इनमें अणुपम्य और अणुपम्य अनुभागवालोंका अणुपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर द्वादश महीना कहा है । -

१३७. कसायाणुवादेण कोध-माण-माया० जहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० वासं सादिरेय । अज० णत्थि अंतर । अकसाय० जहण्णाजहण्णाणु० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । एव जहाक्खाड० । परिहार० जहएणाजहएणाणु० णत्थि अंतर । एव संजदासंजद० । सुहुमसांपराय० जहएणाणु० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । एव-मजहएणां पि । तेउ-पम्म० जहएणाजहएणा० णत्थि अतरं । वेदग० जहएणाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अतर । उवसम० जह० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । अज० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिदियाणि । सम्मापि० जह० अजह० जह० एगस०, उक्क० दोएहं पि पत्तिदो० असंखे० भागो ।

एवमतराणुगमो समत्तो ।

§ १३८. भाव० सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

§ १३७ कपायकी अपेक्षा क्रोध, मान और मायामें जघ य अनुभागका जघ य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अ तर कुछ अधिक एक वर्ष है । अजघ य अनुभागका अ तर नहीं है । अकषायी जीवोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार यथाख्यातसयतोमें जानना चाहिए । परिहारविशुद्धिसयतोमें जघ य और अजघ य अणुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सयतासयतोमें जानना चाहिये । सूक्ष्मसाम्परायसयतोमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है । इसी प्रकार अजघन्य अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए । तेजालेश्या और पद्मलेश्यावालोमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें जघन्य और अजघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर दोनोंका ही पत्य के असख्यातवें भाग है ।

विशेषार्थ—यहाँ क्रोध कषायसे लेकर जितनी मार्गणाओंमें अन्तर कालका विचार किया है वह सुगम है, इसलिए उसका पृथक् पृथक् स्पष्टीकरण नहीं किया है । मात्र क्रोध, मान और माया कषायमें क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिए इनमें मोहनीयके जघन्य अनुभागवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है । शेष सब स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार अन्तराणुगम समाप्त हुआ ।

§ १३८ भावसे सर्वत्र औदायिक भाव है ।

विशेषार्थ—औदायिक भावके सद्भावमें मुख्य रूपसे मोहनीयकर्मका बन्ध होता है जो उसकी सत्ताका कारण है, इसलिए यहाँ औदायिक भाव कहा है ।

§ १३६ अप्याबहुम् जीवे अस्तिदृण बुबदे । तं बुबिहं—मह० उक्त० । उक्तसे पयर्द । बुबिहो णिहो सो—आपे० आदेसे० । ओपे० सम्बत्पोबा मोह० उक्तस्ताणुभाग विहत्तिया जीवा । अणु० विहत्तिया जीवा अर्णत्तया । एवं तिरिक्त्वापम्मि । आदे सेण गेरइएत्तु सम्बत्पोबा उक्तस्ताणु० विहत्तिया जीवा । अणु० अर्सत्से० गुणा । एव सम्बगेरइएत्तु सम्बर्षिदियतिरिक्त्वात्तु—अणुस—अणुसअपञ्ज०—देव० मयणादि जाय अयराइत्तु ति । मणुसपञ्ज०—मणुसिणी—सम्बद्वसिद्धिदेवेत्तु सम्बत्पोबा मोह० उक्तस्ताणु विहत्तिया जीवा । अणु० संत्से० गुणा । एवं भागिदृण पेद्वर्त्तं जाय मप्याहारि ति ।

§ १४० अहत्तयाए पयर्द । बुबिहो णिहो सो—ओपे० आदेसे० । ओपेण सम्ब त्पोबा मोह० अहत्तयाणु० विहत्तिया जीवा । अम० अर्णत्तया । आदेसेण गेरइएत्तु सम्बत्पोबा मोह० अहत्तयाणु० विहत्तिया जीवा । अम० अर्सत्से० गुणा । एवं सम्ब गेरइएत्तु—तिरिक्त्वात्तु—सम्बर्षिदियतिरिक्त्वात्तु—मणुस०—मणुसअपञ्ज०—देव० मयणादि जाय अयराइत्तु ति । मणुसपञ्ज०—मणुसिणी०—सम्बद्वसिद्धिदेवेत्तु सम्बत्पोबा मोह० अहत्तयाणु० जीवा । अम० संत्से० गुणा । एवं भागिदृण पेद्वर्त्तं जाय मप्या हारि ति ।

एवं तेनीस अपियोगहारणि समत्तणि ।

§ १३९ अज जीवका आभय लेकर अस्पबहुल करते हैं । वह हा प्रकारका है—अपन्य और उक्त । उक्तसे प्रयोजन है । निर्देश हा प्रकारका है—ओप और आदेरा । ओपसे मोहनीयकर्मकी उक्त अणुभागविमत्तियाले जीव सबसे बाड़े हैं । अणु० अणुभागविमत्तियाले जीव उनसे अनन्तगुण्ये हैं । इसी प्रकार सामान्य तिरिक्त्वात्तु जानना चाहिये । आदेरासे मार कियेमें उक्त अणुभागविमत्तियाले जीव सबसे बाड़े हैं । अणु० अणुभागविमत्तियाले उनसे अर्सत्त्वात्तुय्ये हैं । इसी प्रकार सब मारकी सब पञ्चेन्द्रिय तिरिक्त्वात्तु सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपयत्तु ब्रह्म और भक्तवासीसे लेकर अपराजित उक्त देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त मनुष्यिनी और सर्वाय-सिद्धिके देवोंमें मोहनीयकर्मकी उक्त अणुभागविमत्तियाले जीव सबसे बाड़े हैं । अणु० अणुभागविमत्तियाले उनसे अर्सत्त्वात्तुय्ये हैं । इस प्रकार जानकर इस अल्प बहुलके अनहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ १४ अपन्यसे प्रयोजन है । निर्देश हा प्रकारका है—ओप और आदेरा । ओपसे मोहनीयकर्मकी अपन्य अणुभागविमत्तियाले जीव सबसे बाड़े हैं । अजपन्य अणुभागविमत्तिया ले जीव अनन्तगुण्ये हैं । आदेरासे मारकियेमें मोहनीयकर्मकी अपन्य अणुभागविमत्तियाले जीव सबसे बाड़े हैं । अजपन्य अणुभागविमत्तियाले अर्सत्त्वात्तुय्ये हैं । इसी प्रकार सब मारकी सामान्य तिरिक्त्वात्तु सब पञ्चेन्द्रियत्तु सामान्य मनुष्य मनुष्यअपयत्तु, देव और भक्तवासीसे लेकर अपराजित विमत्तु उक्त देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त मनुष्यिनी और सर्वाय-सिद्धिके देवोंमें मोहनीयकर्मकी अपन्य अणुभागविमत्तियाले जीव सबसे बाड़े हैं । अजपन्य अणुभागविमत्तियाले उनसे अर्सत्त्वात्तुय्ये हैं । इस प्रकार जानकर इस अल्पबहुलके अनहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

इस प्रकार तेनीस अणुयोगहार समत्त इव ।

भुजगारविहत्ती

§ १४१. भुजगारविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्वाराणि णाटन्वाणि भवन्ति—समुक्कित्तादि, जाव अप्पावहुए ति। तत्थ समुक्कित्ताणुगमेण दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण अत्थि मोह० भुजगार०-अप्पटर०-अवट्ठिद०-विहत्तिया जीवा। एव सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेवे ति। णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठिसिद्धि ति अत्थि अप्पटर०-अवट्ठिद०-विहत्तिया जीवा। एवं जाणिदूण णेद्वज्जाव अणाहारि ति।

§ १४२. सामित्ताणु० दुविहो०णिहोसो—ओघे० आदेसे०। तत्थ ओघेण मोह० भुजगार० कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छादिट्ठिस्स। अप्पटर०-अवट्ठिद० कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। एव सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव०-भवणादि जाव सहस्सारे ति। णवरि पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छादिट्ठिस्स। आणटादि जाव णवगेवज्जा ति अप्पदर०-अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा। अणुहिसादि जाव सव्वट्ठिसिद्धि ति मोह० अप्प०-अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० सम्मा

भुजगारविभक्ति

§ १४१ भुजकार विभक्तिमे ये तेरह अनुयोगद्वार जानने योग्य हैं—समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व पर्यन्त। उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मोहनीयकर्मकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोमे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे अल्पतर और अवस्थित विभक्तिवाले जीव हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारक मार्गणा तक ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—जो जीव सत्तामे स्थित मोहनीयके अनुभागको बढ़ाते हैं व भुजगारविभक्तिवाले कहे जाते हैं, जो घटाते हैं व अल्पतर विभक्तिवाले कहे जाते हैं, और जिनके मोहका अनुभाग तदवस्थ रहता है, न घटता है न बढ़ता है, व अवस्थितविभक्तिवाले जीव कहे जाते हैं। ओघसे और आदेशसे तीनों ही विभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं, किन्तु आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान पर्यन्त भुजगार विभक्तिवाले देव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि वहाँ मोहके जिस अनुभागको लेकर जीव उत्पन्न होते हैं, उसमें वृद्धि नहीं होती है।

§ १४२ स्वामित्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्ति किसके होती है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव और भवन्वासीसे लेकर सहस्वार स्वर्ग तकके देवोमे जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक और मनुष्य अपर्याप्तकोमें भुजकार, अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। आनत स्वर्गसे लेकर नवप्रैत्रेयक तकके देवोमें अल्पतर और अवस्थितविभक्ति किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होती हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकर्मकी अल्पतर और अवस्थितविभक्ति

विद्विस्स । एवं भास्सिद्धं वेद्वं नाप अणाहारि सि ।

१४३ काक्षापुगमेण दुबिहो गिबेसो—ओपेण भादसेण । ओपण मोह० सुस० अप्प० ज० एगस०, उक्क० अतोसु० । अण्ठि० केपविर कासादो होदि ? ज० एगस०, उक्क० तेवदिसागरोप्रमसदं पल्लिदो० असंसे० मागेण सादिरिये ।

१४४ आदेसेण गेरइएसु भुजगार० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । अप्पं वर० अहण्णुक्क० एगस० । अंतोसुहुचकासा गेरइएसु किण्ण सद्धो ? ज०, गेरइएसु

किन्तुके हाठी है ? किसी भी सम्यन्ट्टिके हाठी है । इस प्रकार जानकर इन विभक्तिओंके स्वामित्वको अनन्तरक मार्गशा एक से जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओपसे मोहकी मुञ्जगारविमर्शिका स्वामी तो मिध्यादृष्टि ही होता है । किन्तु अस्पतर और अचस्थितविमर्शिके स्वामी मिध्यादृष्टि भी हाते हैं और सम्यन्ट्टिके भी हाते हैं अर्थात् ओपसे मोहके सत्तामें स्थित अनुमागकी दृष्टि तो मिध्यादृष्टि ही करता है किन्तु इति और अवस्थान दोनोंके हो सकते हैं । इसी प्रकार अवेरसे भी जानना चाहिये । विशेष यह है कि पञ्चमिथ्य विर्यञ्च अपर्थातक और मनुष्यअपर्थातकमें तीनों ही विभक्तियों मिध्यादृष्टिके ही हाठी हैं क्योंकि इनमें सम्यक्त्व नहीं हाता है । तथा आन्तसे लेकर नौ प्रैत्यक तकके वेदोंमें दृष्टि सम्भव न हातेसे वहाँ अस्पतर और अचस्थित परका स्वामी मिध्यादृष्टि और सम्यन्ट्टिके दोनोंका कला है । अनुविरा और अनुतरोंमें सब सम्यक्स्वी ही हाते हैं अतः वानों विभक्तियों सम्यक्स्वीके ही हाठी हैं । इसी प्रकार अन्य मार्गशाओंमें जान लेना चाहिये ।

१४२ काक्षानुगमसे निर्देश हो प्रकारका है—आध और आधरा । ओपसे माह्वीक-कर्मकी मुञ्जगार और अस्पतरविमर्शिका अपन्य काल एक समय है और उक्कण काल अन्तर्मुहूर्त है । अचस्थितविमर्शिका किन्तुना काल है ? अपन्य काल एक समय है और उक्कण काल पत्स्यका अस्तंस्यात्तर्वा माग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है ।

विशेषार्थ—सत्तामें स्थित अनुमागके आगेके समयमें बढ़कर या बढ़ाकर पुनः बढ़कर रह जानेसे मुञ्जगार और अस्पतरविमर्शिका अपन्य काल एक समय होता है और लगातार प्रति समय बढ़ाते वा बढ़ाते आने पर उक्कण काल अन्तर्मुहूर्त हाता है । इससे अधिक काल तक न मुञ्जगारविमर्शिके हाठी है और न अस्पतरविमर्शिके । किन्तु अचस्थितविमर्शिके लगातार पत्स्यके अस्तंस्यात्तर्वा मागसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर तक रह सकती है, क्योंकि किसी मागमूनिना मनुष्य वा त्रिर्बन्धने पत्स्योपमके अस्तंस्यात्तर्वा माग आयुके शेष रहने पर प्रथमाप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करके अस्पतर किया फिर मिध्यात्वको प्राप्त होगया और अचस्थितअनुमागविमर्शिकाहाता होगया । आयुके अन्तमें बहुकसम्यन्ट्टिके हाकर हो अजासुत सागर तक बहुकसम्यन्ट्टिके व सम्यन्ट्टिके हाकर अन्तमें उपरिम प्रैत्यकमें उत्पन्न होकर मिध्यात्वका प्राप्त होगया । वहाँसे थप कर मनुष्य हुआ । इस प्रकार अचस्थित अनुमागविमर्शिके पत्स्यका अस्तंस्यात्तर्वा माग अधिक १६३ सागर काल प्राप्त हाता है ।

१४४ अवेरसे मारकियेमें मुञ्जगारविमर्शिका अपन्य काल एक समय है और उक्कण काल अन्तर्मुहूर्त है । अस्पतरविमर्शिका अपन्य और उक्कण काल एक समय है ।

अणुभागकंडाएण विणा ओघमिव अणुसमयओवट्टणाए अप्पदरस्स असभवादो । ण च एगसमएण अणुभागकंडओ णिवददि अणुभागकंडयस्स जहण्णुक्कीरणद्धाए वि अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो । वधेण अप्पदरस्स णिरंतरो अंतोमुहुत्तकालो किण्ण लब्भदे ? ण, अणुभागसंतस्स अणुसमयघादमंतरेण अप्पदराणुववत्तीदो । ण च एत्थ अणुसमय-घादो अत्थि, चारित्तमोहक्खवणाए चेव तस्स संभवादो । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । संपुण्णाणि किण्ण लब्भंति ? ण, णेरइएसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्तकालमगमिय सम्मत्तग्गहणासंभवादो । मिच्छादिट्ठिमि अवट्ठिदस्स कालो तेत्तीससागरोवममेत्तो किण्ण गहिदो ? ण, मिच्छादिट्ठीसु अंतोमुहुत्तत्तादो उवरि णिय-मेण भुजगार-अप्पदराणं संभवादो । एवं सव्वणेरइयाणं । णवरि सगट्ठिदी देसूणा ।

शंका—नारकियोंमें अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं पाया जाता, क्योंकि नारकियोंमें अनुभागकाण्डकके विना ओघके समान प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा अल्पतरविभक्ति संभव नहीं है। और एक समयमें अनुभागकाण्डकका घात होता नहीं है। क्योंकि अनुभागकाण्डककी उत्कीरणाका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

शंका—वन्धकी अपेक्षा अल्पतरविभक्तिका निरन्तर काल अन्तर्मुहूर्त क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनुभागकी सत्ताका प्रति समय घात हुए विना अल्पतर नहीं बन सकता है। और नरकमें प्रति समय घात होता नहीं है, क्योंकि चारित्रमोहनीयकी क्षपणा में ही प्रति समय घात संभव है।

अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है।

शंका—अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नारकियोंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल गये विना सम्यक्त्वका ग्रहण संभव नहीं है।

शंका—मिथ्यादृष्टिमें अवस्थितविभक्तिका काल तेतीस सागर प्रमाण क्यों नहीं ग्रहण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टियोंमें अवस्थितविभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त है। वहा अन्तर्मुहूर्तसे ऊपर उनमें नियमसे भुजगार या अल्पतरविभक्तिका होना संभव है, अतः नरकमें अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर नहीं कहा है।

इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियोंमें भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल भी एक समय है और उत्कृष्ट काल भी एक समय है, भुजगारके समान अन्तर्मुहूर्त नहीं है। इसका कारण यह है कि जब

§ १४५ विरिक्त्वेसु युज० ज० एगस०, चक्र० अंतोसु० । अप्प० महणुत्त० एमस० । अबडि ज० एगस०, चक्र० तिण्णि पत्तिदोभमाणि सादिरेयाणि । एवं पंषि दियतिरिक्त्तवियम्मि । पंषिदियतिरिक्त्तअपत्तचपसु युज०-अबडि० ज० एमस०, चक्र० अंतोसु० । अप्पदर० महणुत्त० एगस० । एवं मणुसअपत्तचार्ण । मणुसवियम्मि युज०-अप्पदर० ज० एगस०, चक्र० अंतोसु० । अबडि० ज० एगस०, चक्र० तिण्णि पत्तिदोभमाणि पुव्वक्कोवितिभागगेण सादिरेयाणि । जवरि मणुसिणीसु अंतोसुहुत्तण सादिरेयाणि ।

एक सत्तामें स्थित अनुभागका प्रति समय पाठ न हा सब एक अस्त्यरविमत्तिका काल अन्तमुहूर्त नहीं बन सकता । और यहाँ अनुभागका प्रतिसमय पाठ संभव नहीं है, क्योंकि अनुभागका प्रति समय पाठ चारित्रमोहकी सपत्तामें ही होता है । सारांश यह है कि कर्मोंके अनुभागको लेकर स्पर्शक रचना होती है । उसमें जो स्पर्शक बहुत अनुभागवासे हाते हैं उन सब स्पर्शकमें अन्तका माग लेकर अनुभागप्रमाण स्पर्शक आते हैं उनमेंसे कुछ स्पर्शकोंको जाहकर शेष स्पर्शकोंके परमाणुओंका एक भाग मात्र शेषके स्पर्शकोंमें परिखामाया जाता है । अर्थात् कुछ परमाणुओंको पहले समयमें परिखमाते हैं, कुछको दूसरे समयमें परिखमाते हैं । इस प्रकार अन्तमुहूर्त कालके द्वारा सब परमाणुओंको परिखमा कर उन रूपके स्पर्शकोंका अभाव कर दिया जाता है । इस प्रकार अन्तमुहूर्त कालके द्वारा जो कार्य किया जाता है उसका नाम काण्डकपाठ है । इस प्रकार यद्यपि काण्डकपाठमें प्रति समय अनुभागका पाठ हाता है, पर वह पश्चिन्नरूपसे ही हाता है, इसलिये काण्डकपाठके कालमें अस्त्यरविमत्तिका संभव नहीं है । वह यहाँ अन्तमुहूर्तके अन्तिम समयमें ही हाती है । अतः न केवल नारकियोंमें, किन्तु जिन भागवाओंमें चारित्रमोहकी सपत्ता नहीं होती उन सबमें अस्त्यरविमत्तिका जपन्व और ब्रह्म कर्म एक समय ही होता है । नारकियोंमें अस्त्यरविमत्तिका जपन्व काल एक समय है किन्तु ब्रह्म कर्म कुछ कम देवीस सागर है, क्योंकि अन्तमुहूर्तसे अधिक काल तक अवस्थितपन्व सम्पत्तिका ही बन सकता है और नरकमें सम्पत्तिका काल अधिकसे अधिक आदि और अन्तके तीन तीन अन्तमुहूर्त कम देवीस सागर हाता है । इस प्रकार प्रत्येक नरकमें जानना चाहिये, अन्तर केवल इतना है कि प्रत्येक नरकमें अथ व विमत्तियोंका काल जो सामान्य नारकीके समान ही हाता है, केवल अस्त्यरविमत्तिका ब्रह्म काल कुछ कम अपनी अपनी ब्रह्म स्थितिप्रमाण्य होता है ।

§ १४६ विर्यंशोमि मुजगारविमत्तिका जपन्व काल एक समय है और ब्रह्म काल अन्तमुहूर्त है । अस्त्यरविमत्तिका जपन्व और ब्रह्म काल एक समय है । अस्त्यरविमत्तिका जपन्व काल एक समय है और ब्रह्म काल कुछ अधिक तीन पश्य है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय विर्यंश, पञ्चेन्द्रियविर्यंशपरांश और पञ्चेन्द्रियविर्यंशयोनिनीमें जानना चाहिये । पञ्चेन्द्रिय विर्यंश अपरांशकीमें मुजगार और अस्त्यरविमत्तिका जपन्व काल एक समय है और ब्रह्म काल अन्तमुहूर्त है । अस्त्यरविमत्तिका जपन्व और ब्रह्म काल एक समय है । इसी प्रकार मनुष्य अपरांशकीमें जानना चाहिये । मनुष्य, मनुष्य परांश और मनुष्यविशेषमें मुजगार और अस्त्यरविमत्तिका जपन्व काल एक समय है और ब्रह्म काल अन्तमुहूर्त है । अस्त्यरविमत्तिका जपन्व काल एक समय है और ब्रह्म काल पूर्ववदिका विमता अधिक तीन पश्य है । इतनी विशेषता है कि मनुष्यविशेषमें अन्तमुहूर्त अधिक तीन पश्य है ।

§ १४६. देवेसु भुज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस०। अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । एवं भवणादि जाव सहस्सारो त्ति । णवरि सगट्ठिदी भाणिदब्बा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं चित्तिय णेदब्बं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं कालाणुगमो समतो ।

विशेषार्थ—कोई मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च देवकुरु-उत्तरकुरुमें जन्म लेकर और तीन पल्य तक रहकर मरकर देव होगया । उसके अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तीन पल्य होता है, क्योंकि भोगभूमिमें उत्पन्न होनेवाले जीवके जन्म लेनेके कुछ समय पहलेसे उत्कृष्ट अनुभागाका घात होकर अवस्थितपना सम्भव है । अपर्याप्तकके सिवा तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि यहाँ क्षपकश्रेणि होनेसे अनुभागाका प्रतिसमय घात होना सम्भव है । तथा अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है, क्योंकि कोई मिथ्यादृष्टि मनुष्य एक पूर्वकोटिका त्रिभाग शेष रहने पर मनुष्यायुका बन्ध करके, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, दर्शनमोहनीयका क्षपण करके, सम्यक्त्वके साथ पूर्वकोटिका देशोन त्रिभाग वितारकर उत्तरकुरुमें मरकर मनुष्य हुआ और वहाँ तीन पल्य तक रहकर मरकर देव होगया, तो उस मनुष्यके अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पूर्वोक्त होता है । किन्तु मनुष्यनीके अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य काल होता है जैसा कि तिर्यञ्चमें बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ १४६ देवोंमें भुजगारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है । इसी प्रकार भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । इस प्रकार विचार करके इस कालको अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंमें अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर होता है, क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है । आनतादिकमे तथा ऊपरके विमानोंमें भुजगारविभक्ति नहीं हाती । अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय होता है तथा अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण होता है । यहाँ आनतादिकमे काण्डकघात करने पर उसके अन्तमें अल्पतरविभक्ति प्राप्त होती है, इसलिए उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा काण्डकघातके समय अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । और देवोंके जीवन भर क्रिया रहित होने पर अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है, इसलिए इसका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है । अन्य मार्गणाओंमें इसी प्रकार अर्थात् गतिमार्गणाके अनुसार विचार कर काल घटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४७ अंतराणुगमेण बुविहो गिरेसो—ओपेण आवेसेण । ओपेण मोह० मुजगारविमिच्छितं चैवचिरं काळादा होदि ? नह० एगस०, उह० तेवहिसागरो पमसदं छीहि पस्विदोबमेहि सादिरेंप । अप्पद० न० अंतोसु०, उह० तेवहिसागरो पमसदं० पस्विदोबयस्स असंस्सेअदिमागेण सादिरेंप । अबहि० नह० एगस०, उह० अंतोसु० ।

§ १४८ आवेसेण जेरइपसु मोह० सुम०-अप्प० ज० एगस० अतोसु०, उह० दोणं पि तेवीसं सागरोपमाणि देसुणाणि । अबहि० न० एगस०, उह० अंतोसु० । एवं सम्मजेरुयाणं । जवरि सगडिदी दसुणा ।

§ १४९ तिरिक्खेसु मोह० सुम० न० एगस०, उह० पस्विदो० असंस्से०

§ १४० अन्तरानुगमसे निर्बेरा हो प्रकारका है—ओप और आवेश । ओप से मोहनीय-कर्मकी मुजगारविमिच्छिका अन्तर काल कितना है ? जपम्य अन्तर एक समय और उच्छ्र अन्तर तीन पस्व अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अस्पतरविमिच्छिका जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उच्छ्र अन्तर पस्वका असंख्यातर्षां भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अस्थित्व विमिच्छिका जपम्य अन्तर एक समय और उच्छ्र अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—आपसे मोहनीयकी मुजगारविमिच्छिका जपम्य अन्तर एक समय है, क्योंकि मुजगारके बाद एक समयके लिये अस्थित्व या अस्पतरविमिच्छिके हा जाने पर पुनः मुजगार विमिच्छिके जाने पर जपम्य अन्तर एक समय होता है और उच्छ्र अन्तर तीन पस्व अधिक १६३ सागर है, क्योंकि कोई मनुष्य मुजगारविमिच्छिका करके पुनः अस्पतरविमिच्छिको करके मरकर देवदुर्गमें उत्पन्न हुआ वहाँ मुजगारविमिच्छि नहीं होती । अन्त समयमें बेवकसम्यक्त्वका प्राप्त करके या त्रेसठ सागर तक सम्मक्त्व व सम्ममिप्पात्वके साथ भ्रमण कर अन्तमें उपरिम प्रवेशकर्म । ३१ सागरकी स्थिति स्केर जन्मा और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् मिथ्यादृष्टि हा गया । मिथ्यादृष्टि हो जाने पर मुजगारविमिच्छि नहीं हुई क्योंकि अशुभप्रवृत्तमें इसका निषेध है । इस प्रकार मुजगारविमिच्छिका उच्छ्र अन्तर तीन पस्व अधिक एक सौ त्रेसठ सागर होता है । अस्प-तरविमिच्छिका जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अर्थात् जिस प्रकार मुजगारविमिच्छि और अस्थित्व-विमिच्छि एक समयके बाद भी हो जाती है उस तरह अस्पतरविमिच्छि नहीं होती । तथा उच्छ्र अन्तर पहले अस्थित्वविमिच्छिका या उच्छ्र काल एक सौ त्रेसठ सागर और पस्वका असंख्या-तर्षां भाग बतलाया है जन्मा ही है । अस्थित्वविमिच्छिका जपम्य अन्तर एक समय और उच्छ्र अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि पहले मुजगार और अस्पतरविमिच्छिका आपसे इतना ही काल बतलाया है । वह वहाँ अस्थित्वका अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ १४८. आवेशरत नारकियोंमें मोहनीयकर्मकी मुजगारविमिच्छिका जपम्य अन्तर एक समय है और अस्पतरविमिच्छिका जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा शर्मोका उच्छ्र अन्तर उह० कम तेवीस सागर है । अस्थित्वविमिच्छिका जपम्य अन्तर एक समय है और उच्छ्र अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब नारकियोंके जानना चाहिए । इतनी शिरापता है कि मुजगार और अस्पतरविमिच्छिका उच्छ्र अन्तर उह० कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण सेना चाहिए ।

§ १४९. तिर्यक्कोमें मोहनीयकी मुजगारविमिच्छिका जपम्य अन्तर एक समय है और

भागो । अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि अंतोमुहुत्तेण सादि-
रेयाणि । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं पंचिदियतिरिक्खवतियस्स ।
णवरि मोह० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०
भुज०-अवट्टि० ज० एगस०, अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिमंतोमुहुत्तं ।
एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतियस्स पंचिदिय०तिरिक्खभंगो । णवरि भुज० उक्क०
पुव्वकोडी देसूणा ।

§ १५०. देवेषु मोह० भुज० अंतरं केव० ? ज० एगस०, उक्क० अट्टारस-
सागरो० सादिरेयाणि । अप्पदर० ज० अंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि ।
अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं भवणादि जाव सहस्सारो त्ति । णवरि
भुज०-अप्प० उक्क० सगट्टिदी देसूणा । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति अप्पदर० ज०
अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अवट्टि० जहण्णुक्क० एगस० । अणुदिसादि जाव
सव्वट्टिसिद्धि त्ति अप्पदर० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अवट्टि० जहण्णुक्क० एगसमओ ।
एवं जाव अणाहारि त्ति चिंतिय णेद्वं ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यावें भाग है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है
और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक
समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च-
पर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनीमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मोहनीयकी
भुजगारविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है ।
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है,
अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सब विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्त-
र्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और
मनुष्यनियोंमें पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भग है । इतनी विशेषता है कि भुजगारविभक्तिका
उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है ।

§ १५० देवोंमें मोहनीयकर्मकी भुजगारविभक्तिका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर
एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अट्टारह सागर है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य
अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अवस्थितविभक्तिका
जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इस प्रकार भवनवासीसे लेकर
सहस्रार स्वर्गपर्यन्त जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनमें भुजगार और अल्पतरविभक्तिका
उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । आनत स्वर्गसे लेकर नवप्रैवैयक तकके
देवोंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी
स्थितिप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । अनुदिशसे
लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।
अवस्थितविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा-
पर्यन्त विचार करके इस अन्तरको ले जाना चाहिये ।

१५१ गाणामीनेदि मंगविषयाणुगमेण दुमिहो गिहोसो—मोयेण आवेसेण ।
 तत्तय मोयेण मोह० झुम०-अप्पवर० अचट्टि० जिपमा अत्थि । एपं तिरिक्खोपं ।

विशेषार्थ—आवरासे सभी मार्गस्थाओंमें मुजगारविभक्तिका अथन्य अन्तरकाल एक समय है। अस्पतरविभक्ति अथन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और अवस्थितका अथन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, मीसा कि आपसे बतलाया है। विशेष्या केवल मुजगार और अस्पतरविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तरकालमें है, जा कि इस प्रकार है—सामान्य नारकियोंमें शनों विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वेतीस सागर है क्योंकि सातवें नरकका एक मिध्यादृष्टि नारकी मुजगारविभक्ति करके पुनः अस्पतरविभक्ति करके सम्बन्धित हुआ और थोड़ी आसु राय रहने पर सम्बन्धसे न्युत हाकर पुनः मिध्यादृष्टि हा गया और वहाँ बसने मुजगारविभक्ति की वो बसका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वेतीस सागर हाता है। इसी प्रकार अस्पतरविभक्तिका भी जगा सेना चाहिये। प्रत्येक नरकमें इसी प्रकार कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर हाता है। तिर्यकोंमें मुजगारविभक्ति उत्कृष्ट अन्तर पस्यक असंख्यातवें भाग है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियोंमें मुजगारका करके पुनः पञ्चेन्द्रियोंमें जन्म हाकर पस्यके असंख्यातवें भाग काल तक मुजगारके बिना अनुमागसकलमन्न करके पुनः मुजगार करने पर मुजगारविभक्ति अन्तरकाल पस्यके असंख्यातवें भाग होता है और अस्पतरविभक्ति उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पस्य है, क्योंकि कार् तिर्यक अस्पतर करके भागमूमिमें उत्पन्न हा गया और तीन पस्यकी आसुक अन्तमें काण्डकपाठ किया ता यह अन्तरकाल प्राप्त हाता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यक पञ्चेन्द्रियपर्वात और पञ्चेन्द्रियतियन्वयान्मिधियोंमें मुजगारका उत्कृष्ट अन्तर पूषकाटिपूषकत्व है, क्योंकि इनमेंसे कार् तिर्यक संदी बरामें मुजगारका करके मरकर असंदी पञ्चेन्द्रिय तिर्यक हा गया और वहाँ पूषकोटिपूषकत्व अस्त तक समान अनुमाग सत्कर्मका करके मरकर पुनः संदी पञ्चेन्द्रिय हुआ और वहाँ बसने मुजगारविभक्ति की ता ततना अन्तरकाल होता है। तीन प्रकारके मनुष्योंमें मुजगारका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वाकाटि है, क्योंकि किसी मनुष्य से आठ वर्षकी अवस्थामें मुजगारको करके पश्चात् सम्बन्धका प्राप्त किया और मृत्युसे कुछ काल पहले सम्बन्धसे न्युत हाकर पुनः मुजगारविभक्ति किया ता मुजगारका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूषकोटि होता है। यहाँ रोप कथन पञ्चेन्द्रिय तिर्यकोंक समान है। बेशामें मुजगारका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अहारहा सागर है, क्योंकि कार् संदी मिध्यादृष्टि तिर्यक या मनुष्य रातार सहस्रारमें जन्म लेकर मुजगारका करके पश्चात् सम्बन्धित हा गया मरनेके पहले सम्बन्धसे न्युत हाकर बसने पुनः मुजगारविभक्ति की ता मुजगारका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अहारहा सागर हाता है, इससे अधिक इसलिये नहीं हो सकया कि अशुभाविकमें मुजगार नहीं होता। तथा अस्पतरका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इच्छीस सागर उपरिम प्रैवेयकी अपेक्षासे जानना चाहिये। प्रैवेयके उपरके देव सम्बन्धित ही होत हैं, अतः जन्में अस्पतरका अन्तर अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता क्योंकि एक अनुमागकावककी अन्तिम फलिके पतनक समय अस्पतरविभक्ति हाती है। उसके बाद दूसरे अनुमागकावककी अन्तिम फलिके पतन होनेमें एक अन्तर्मुहूर्त काल जगाता है।

इस प्रकार अन्तरातुगम समान हुआ ।

१५१ ताता जीकोंकी अपेक्षा मंगविषय अनुगमसे भिन्ना हा प्रकारका है—मोय और आवेरा । जन्मसे मोयसे मोहनीय कर्मकी मुजाकर अस्पतर और अवस्थितविभक्तिप्राप्ति की

आदेसेण णेरइएसु मोह० भुज०-अवट्टि० णियमा अत्थि । अप्पदर० भजिदव्वा । सिया एदे च अप्पदरविहत्तिओ च १ । सिया एदे च अप्पदरविहत्तिया च २ । धुवे पक्खित्ते तिण्णि भंगा ३ । एव सव्वणेरइय-सव्वपच्चिदियतिरिक्ख-मणुस-देव-भवणादि जाव सह-स्सारो त्ति । मणुसअपज्ज० मोह० सव्वपदा भयणिज्जा । भंगा छव्वीस २६ । आण-दादि जाव सव्वट्टिसिद्धि त्ति मोह० अवट्टि० णियमा अत्थि । अप्पदर० भजियव्वा । सिया एदे च अप्पदरविहत्तिओ च १ । सिया एदे च अप्पदरविहत्तिया च २ । एत्थ धुवे पक्खित्ते तिण्णि भंगा ३ । एवं जाणिदूणं ऐदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

नियमसे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोमे जानना चाहिए । आदेशसे नारकियोंमे मोहनीयकी मुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे है । अल्पतरविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं । कदाचित् इन विभक्तिवालोकें साथ एक अल्पतरविभक्तिवाला जीव होता है । कदाचित् इन विभक्तिवालोकें साथ अनेक अल्पतरविभक्तिवाले जीव होते हैं । इस प्रकार इन दोनों भगोंमें एक ध्रुव भगके मिलानेसे तीन भंग होते हैं । इस प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सब मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयके सब पद भजनीय हैं । भङ्ग छव्वीस होते हैं । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त मोहनीयकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं । अल्पतरविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं । कदाचित् इस विभक्तिवालोकें साथ एक अल्पतरविभक्तिवाला जीव होता है १ । कदाचित् इस विभक्तिवालोकें साथ अनेक अल्पतरविभक्तिवाले जीव होते हैं २ । इस प्रकार इन दोनों भङ्गोंमें ध्रुव भङ्गके मिलानेसे तीन भङ्ग होते हैं ३ । इस प्रकार भङ्गविचयको जानकर उसे अनाहारकमार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आघसे तीनों ही विभक्तिवाले जीव नियमसे पाये जाते हैं, उनका कभी अभाव नहीं होता । आदेशसे नारकियोंमें मुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले तो नियमसे पाये जाते हैं और अल्पतरविभक्तिवाले विकल्पसे पाये जाते हैं । अत तीन भग होते हैं—मुजगार और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं, यह एक ध्रुव भग है तथा दो अध्रुव भग हैं—कदाचित् मुजगार और अवस्थितविभक्तिवालोकें साथ एक अल्पतरविभक्तिवाला जीव पाया जाता है और कदाचित् इन दोनों विभक्तिवालोकें साथ अल्पतरविभक्तिवाले अनेक जीव पाये जाते हैं । सब नारकियों, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों, सब मनुष्यों, सामान्य देवों और भवनवासीसे लेकर सहस्रारपर्यन्त तकके देवोंमें तीन भग होते हैं । किन्तु मनुष्य अपर्याप्तक सान्तर मार्गणा है, अत उसमें सभी पद विकल्पसे होते हैं और भग छव्वीस होते हैं—१ कदाचित् मुजगारविभक्तिवाला एक जीव होता है । २ कदाचित् मुजगारविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं । ३ कदाचित् अल्पतर विभक्तिवाला एक जीव होता है । ४ कदाचित् अल्पतरविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं । ५ कदाचित् अवस्थितविभक्तिवाला एक जीव होता है । ६ कदाचित् अवस्थितविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं । ७ कदाचित् मुजगारवाला एक जीव और अल्पतरवाला एक जीव होता है । ८ कदाचित् मुजगारवाला एक जीव और अल्पतरवाले अनेक जीव होते हैं । ९ कदाचित् मुजगारवाला

१ अ० प्रत्तौ अवट्टि० णियमा अत्थि सिया इति पाठ । २० ता० प्रत्तौ एव सव्वणेरइयसव्व जाणियद्वय इति पाठ ।

§ १५२ मागामागानु० दुविहो णिइ सो—ओपेण भावेसेण । ओघ० मोह०
 भ्रुज० सम्बन्धीबाणं केवडिमो भागो ? संस्ले० मागा । अप्पदर० केव० ? असंस्ले०
 मागो । अप्पदि० केव० ? संस्लेञ्जा मागा । एवमसंस्ले०—अर्णतमीपरस्तीर्णं पत्तम्बं ।
 मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भ्रुम०—अप्पदर० सम्बन्धीव० क्व० ? संस्ले० मागा । अप्पदि०
 संस्लेञ्जा भागा । आणदादि अप्प भवराइद् ति अप्पदर० सम्बन्धी० केव० ? असंस्ले०
 मागो । अप्पदि० असंस्लेञ्जा मागा । सम्बहसिद्धिदेवेसु अप्पदर० सम्बन्धीव० केव० ?

एक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है । १ कदाचित् मुजगारवाला एक जीव और
 अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं । ११ कदाचित् मुजगारवाले अनेक जीव और अवस्थितवाला
 एक जीव होता है । १२ कदाचित् मुजगारवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते
 हैं । १३ कदाचित् मुजगारवाले अनेक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है । १४ कदा-
 चित् मुजगारवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं । १५ कदाचित् अवस्थित
 वाला एक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है । १६ कदाचित् अवस्थितवाला एक जीव
 और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं । १७ कदाचित् अवस्थितवाले अनेक जीव और अवस्थित
 वाला एक जीव होता है । १८ कदाचित् अवस्थितवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक
 जीव होते हैं । १९ कदाचित् मुजगारवाला एक जीव, अवस्थितवाला एक जीव और अवस्थित-
 वाला एक जीव होता है । २० कदाचित् मुजगारवाला एक जीव, अवस्थितवाला एक जीव और
 अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं । २१ कदाचित् मुजगारवाला एक जीव, अवस्थितवाले अनेक
 जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है । २२ कदाचित् मुजगारवाला एक जीव अवस्थित
 वाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं । २३ कदाचित् मुजगारवाले अनेक जीव
 अवस्थितवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं । २४ कदाचित् मुजगारवाले
 अनेक जीव अवस्थितवाला एक जीव और अवस्थितवाले अनेक जीव होते हैं । २५ कदाचित्
 मुजगारवाले अनेक जीव अवस्थितवाले अनेक जीव और अवस्थितवाला एक जीव होता है ।
 २६ कदाचित् मुजगारवाले अनेक जीव अवस्थितवाले अनेक जीव और अवस्थितवाले अनेक
 जीव होते हैं । आन्तसे लेकर सर्वावसिद्धिपर्यन्त अवस्थितविमच्छिवाले जीव निबमसे पाये जाते
 हैं । अतः यह एक भ्रुव भंग होता है और अवस्थितको लेकर दो अभ्रुव भंग होते हैं । इस प्रकार
 तीन भंग होते हैं । यहाँ चार गतिशैली अपेक्षा ही मङ्गलविषयका विचार किया है । शेष मार्ग-
 यार्थोमि इसे ध्वान्तमे रत्नकर जान सेना चरिपे ।

इस प्रकार जाना शीशोंकी अपेक्षा मङ्गलविषयानुगम समाप्त हुआ ।

§ १५३ मागामागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आप और आवेश । आपसे
 ग्राहनीवर्त्मकी मुजगारविमच्छिवाले जीव सब शीशोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं ।
 अवस्थितविमच्छिवाले जीव सब शीशोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविमच्छि-
 वाले जीव सब शीशोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार असंख्यात और
 अनन्त जीवराशियोंका कथन करना चाहिये । मनुष्यपक्षी और मनुष्यनियोगि मुजगार और
 अवस्थितविमच्छिवाले जीव सब शीशोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविमच्छि-
 वाले जीव सब शीशोंके संख्यात बहुभाग हैं । आन्त स्वर्गसे लेकर अपरमित विमान तकके
 देशोंमें अवस्थितविमच्छिवाले जीव सब शीशोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवस्थित-
 विमच्छिवाले जीव सब शीशोंके असंख्यात बहुभाग हैं । सर्वावसिद्धिके देशोंमें अवस्थितविमच्छिवाले

संखे०भागो । अवट्टि० संखेज्जा भागा । एव जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

§ १५३. परिमाणानुगमेण दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० भुज०-अप्पदर०-अवट्टि० दव्वपमणेण केवडिया ? अणंता । एवं तिरिक्खोघम्मि ।

§ १५४. आदेसेण गेरइएसु सव्वपदवि० असखेज्जा । एवं सव्वणेरइय--सव्व-पंचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव०--भवणादि जाव अवराइदं ति । मणुस-पज्जत्त-मणुस्सिणि-सव्वट्टसिद्धिदेवेषु सव्वपदवि० संखेज्जा । एवं जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं परिमाणानुगमो समत्तो ।

जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके सख्यात बहुभाग हैं । इस प्रकार भागाभागानुगमको जानकर अनाहारकमार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे भुजगारविभक्तिवाले सब जीवोंके सख्यातवें भाग होते हैं, अल्पतर-विभक्तिवाले असख्यातवें भाग होते हैं और अवस्थितविभक्तिवाले सख्यात बहुभाग होते हैं । इसका कारण यह है कि अवस्थितविभक्तिका काल बहुत अधिक है । तथा भुजगारविभक्ति और अल्पतरविभक्तिका काल यद्यपि ओघसे समान है फिर भी अल्पतरविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल केवल क्रियाविशेषके समय ही होता है । अत काल समान होने पर भी अल्पतरविभक्तिवाले कम हैं और भुजगारविभक्तिवाले अधिक हैं । जिन मार्गणाओंमें जीवराशि असख्यात या अनन्त है उनमें इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंका प्रमाण सख्यात है, अत उनमें सख्यातैकभाग तो भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले होते हैं और सख्यात बहुभाग अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं । आनतसे लेकर अपराजित विमान पर्यन्त प्रत्येकमें जीवराशि यद्यपि असख्यात है, किन्तु उनमें भुजगारविभक्ति नहीं होती, अत असख्यातैकभागप्रमाण जीव अल्पतरविभक्तिवाले होते हैं और असख्यात बहुभागप्रमाण जीव अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं । सर्वार्थसिद्धिके देवोंका प्रमाण सख्यात है, अत उनमें सख्यातैक भाग जीव अल्पतरवाले और सख्यात बहुभाग अवस्थितवाले होते हैं ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ १५३. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले द्रव्यप्रमाणसे अर्थात् गणनाकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए ।

§ १५४ आदेशसे नारकियोंमें सब विभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंमें सब विभक्तिवाले संख्यात हैं । इस प्रकार परिमाणानुगमको जानकर उसे अनाहारक मार्गणापयन्त ले जाना चाहिये ।

§ १५५ स्वेत्ताणुगमेण दुबिहो गिहेसो—ओपेण आदेसेण । ओपेण मोह० सुन्न०-अप्य०-अपट्ठि० विहत्तिया केप० स्वेत्ते ? सम्बल्लोगे । एवं तिरिक्खोपं । सेस मग्गणासु मोह० सम्बपदा सोगस्स असंस्से०भागे । एवं चाण्डिण जेद्वन् वाव अणा हरि ति ।

एवं स्वेत्ताणुगमो समत्तो ।

§ १५६ पोसणाणु० दुबिहो० गिहेसो—ओपेण आदेसेण । ओपेण मोह० विण्णिपदविहत्तिपरि क्वद्वियं स्वत्तं पोसिदं ? सम्बल्लोगा । एवं तिरिक्खोपं । आदे सेण गेरुपसु सम्बपदविहत्तिपरि केवद्वियं स्वत्तं पोसिदं ? सोगस्स असंस्स०भागे कपोरसमागा देसणा । पढमपुदधि० स्वेत्तममो । विदियादि जाव सत्तपि ति तिण्णं पदाणं सगपोसणं वत्तम्भं । सम्बर्पच्चिदियतिरिक्ख-सम्बमणुस्साणं सुन्न०-अप्य०-अपट्ठि०

विशेषार्थ—मागाभागानुगममें तो यह बतलान्या गया था कि अणु विमत्तिबाले अपनी जीवपरिाके कितने भाग प्रमाय हैं । परिमाणाणुगममें वनका परिमाय बतलाया गया है । ओपसे तीनों ही विमत्तिबालोंका परिमाय अनन्त है । आदेरासे जिन मार्ग्याभोंमें जीवपरिा असंख्यात है वनमें प्रत्येक विमत्तिबालोंका परिमाय असंख्यात है, जिनमें जीवपरिा संख्यात है वनमें प्रत्येक विमत्तिबालोंका परिमाय संख्यात है और जिनमें जीवपरिा अनन्त है वनमें प्रत्येक विमत्तिबालोंका परिमाय अनन्त है ।

इस प्रकार परिमाणाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १५५ क्षेत्रानुगमसे निर्देश हो प्रकारका है—ओप और आदेरा । आपसे माहनीय कर्मकी मुञ्जगार, अस्पतर और अवस्थितविमत्तिबाले जीव कितने क्षेत्रमें पाये जाते हैं ? सर्व साकमें । इसी प्रकार सामान्य तिर्यग्भोंमें जानना चाहिए । रोप मार्ग्याभोंमें मोहनीयकी सब विमत्तिबाले जीव ओकके असंख्यातमें भागमें रहते हैं । इस प्रकार क्षेत्रानुगमको जानकर उसे अपनाहारी फ्यन्त ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—आपसे तीनों पदबालोंका सर्वलोक क्षेत्र सम्मम है इसलिए वह एक प्रमाय कहा है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यग्भोंमें भी पठित कर लेना चाहिए । रोप पठियोंमें कर्मान क्षेत्र लोके असंख्यातमें भागप्रमाय है वह देखकर वनमें वह अपने अपने सम्मम पदोंकी अपेक्षा एक प्रमाय कहा है । इसी प्रकार अमाहारक मार्ग्या पर्वन्त रोप मार्ग्याभोंमें क्षेत्र जानना चाहिए ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ १५६ स्थानानुगमसे निर्देश हो प्रकारका है—ओप और आदेरा । ओपसे माहनीय कर्मकी तीनों विमत्तिबाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्थान किया है ? समस्त साकका स्थान किया है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यग्भोंमें जानना चाहिए । आदेरासे पारकियोंमें सब विमत्तिबाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्थान किया है ? साकके असंख्यातमें भागका और ब्रसमाक्षीके चौदह मार्ग्येस कुब्ज कम कह भागप्रमाय क्षेत्रका स्थान किया है । पक्षी पृथिवीमें क्षेत्रके समान मंग है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्वन्त तीनों विमत्तिबाले अपना अपना स्थान करना चाहिये । सब पर्वन्तिव तियन् और सब मणुष्योंमें मुञ्जगार, अस्पतर और अवस्थितविमत्ति

संखे०भागो । अवट्टि० संखेज्जा भागा । एवं जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं भागाभागानुगमो समतो ।

§ १५३. परिमाणानुगमेण दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० भुज०-अप्पदर०-अवट्टि० दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । एवं तिरिक्खोघम्मि ।

§ १५४. आदेसेण णेरइएसु सव्वपदवि० असखेज्जा । एवं सव्वणेरइय--सव्व-पंचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव०--भवणादि जाव अवराइदं ति । मणुस-पज्जत्त-मणुस्सिणि-सव्वद्वसिद्धिदेवेसु सव्वपदवि० संखेज्जा । एवं जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं परिमाणानुगमो समतो ।

जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके सख्यात बहुभाग हैं । इस प्रकार भागाभागानुगमको जानकर अनाहारकमार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे भुजगारविभक्तिवाले सब जीवोंके सख्यातवें भाग होते हैं, अल्पतर-विभक्तिवाले असख्यातवें भाग होते हैं और अवस्थितविभक्तिवाले सख्यात बहुभाग होते हैं । इसका कारण यह है कि अवस्थितविभक्तिका काल बहुत अधिक है । तथा भुजगारविभक्ति और अल्पतरविभक्तिका काल यद्यपि ओघसे समान है फिर भी अल्पतरविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल केवल क्रियाविशेषके समय ही होता है । अतः काल समान होने पर भी अल्पतरविभक्तिवाले कम हैं और भुजगारविभक्तिवाले अधिक हैं । जिन मार्गणाओमें जीवराशि असख्यात या अनन्त है उनमें इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंका प्रमाण सख्यात है, अतः उनमें सख्यातैकभाग तो भुजगार और अल्पतरविभक्तिवाले होते हैं और सख्यात बहुभाग अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं । आन्तसे लेकर अपराजित विमान पर्यन्त प्रत्येकमें जीवराशि यद्यपि असख्यात है, किन्तु उनमें भुजगारविभक्ति नहीं होती, अतः असख्यातैकभागप्रमाण जीव अल्पतरविभक्तिवाले होते हैं और असख्यात बहुभागप्रमाण जीव अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं । सर्वार्थसिद्धिके देवोंका प्रमाण सख्यात है, अतः उनमें सख्यातैक भाग जीव अल्पतरवाले और सख्यात बहुभाग अवस्थितवाले होते हैं ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ १५३. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले द्रव्यप्रमाणसे अर्थात् गणनाकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्चोंमें जानना चाहिए ।

§ १५४ आदेशसे नारकियोंमें सब विभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चन्द्रियतिर्यश्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासीसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंमें सब विभक्तिवाले संख्यात हैं । इस प्रकार परिमाणानुगमको जानकर उसे अनाहारक मार्गणापर्यन्त ले जाना चाहिये ।

१५८ आदेशेण षेरइपसु मुज० अर्षदि० सम्बद्धा । अप्पदर० न० एगस०, उक्क० आर्षदि० असंसे० भागो । एवं सम्बणेरइय-सत्पर्षचिदियविरिजल-मशुस्त देव०-मनणादि जाव सहस्सारा ति । णवरि मशुस्तेसु अप्पदर० न० एगस०, उक्क० अर्षदि० । एवं मशुसपज्ज० मशुसिणी० । मशुसमपज्ज० मोह मुज० अर्षदि० न० एगसममो, उक्क० पत्तिदो० असंसे० भागो । अप्पदर० न० एगस०, उक्क० आर्षदि० असंसे० भागा । आणदादि जाव अवरइद ति अप्पदर०-अर्षदि० षेरइय र्भगो । सम्बद्धे अप्पदर० न० एगस०, उक्क० संखज्जा समया । अर्षदि० सम्बद्धा । एवं माणिट्ठण जेद्व्यं जाव अणाहारि ति ।

एवं आणामीवेरि कासाणुगमो समयो ।

१५८ आदेशसे नारिकेबोंमें मुजगार और अर्षदिविभक्तिका काल सर्वदा है । अर्षदिविभक्तिका अपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आर्षदिविभक्तिके असंख्यातवर्षे भाग है । इसीप्रकार सब नारिकी सब पञ्चमिद्वय तिर्यञ्च सामान्य मनुष्य सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिये । इतनी विरापता है कि मनुष्योंमें अर्षदिविभक्तिका अपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्गुह्य है । इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियतोंमें जानना चाहिये । मनुष्य अपर्षदिविभक्तिके माहसीयकी मुजगार और अर्षदिविभक्तिका अपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पस्यके असंख्यातवर्षे भाग है । अर्षदिविभक्तिका अपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आर्षदिविभक्तिके असंख्यातवर्षे भाग है । आगत स्वर्गसे लेकर अपरपतित विमान तकके देवोंमें अर्षदिविभक्तिका और अर्षदिविभक्तिका र्भग नारिकेबोंके समान है । सर्षदिविभक्तिके अर्षदिविभक्तिका अपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अर्षदिविभक्तिका काल सबदा है । इसप्रकार कासाणुगमका जामकर इसे अन्तर्गुह्यक भागया पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ-आदेशसे सभी गतियोंमें मुजगार और अर्षदिविभक्तिकाले जीव ता सबदा पाय जाये हैं, केवल मनुष्य अपर्षदिविभक्तिके इन दानों विभक्तिकाले नाना जीवोंका अपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पस्यका असंख्यातवर्षे भाग है क्योंकि यह मान्तर मार्गण है और इसका उत्कृष्ट काल पस्यके असंख्यातवर्षे भागप्रमाण होता है । परन्तु अर्षदिविभक्तिकाल नाना जीवोंका काल अपन्यम एक समय और उत्कृष्टसे आर्षदिविभक्तिके असंख्यातवर्षे भाग होता है । अपर्षदिविभक्तिके भी गतियोंमें अर्षदिविभक्तिकाल जीव कमसे कम एक समय तक और अर्षदिविभक्तिके अर्षदिविभक्तिके असंख्यातवर्षे भाग काल तक ही पाये जा सकते हैं उमक पश्चात् कुछ काल पश्चात् आजाता है जिसमें एक भी अर्षदिविभक्तिकाल जीव नहीं जाता । मात्र आभजन लेकर अपरपतित तकके देवोंमें मुजगारविभक्ति नहीं जाती । शेष दा हाती है इसलिए इनमें मुजगारके सिवा शेष दाका काल कदा है । तथा सर्षदिविभक्तिके अर्षदिविभक्तिकालोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । सामान्य तिर्यञ्चोंमें अर्षदिविभक्तिकाले भी सबदा पाये जाते हैं इसलिए इनमें तीनोंका काल सर्वदा कदा है और इसी अपदेशसे अपर्षदिविभक्तिके भी तीनोंका काल सर्वदा कदा है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपर्षदा कासाणुगम समाप्त हुआ ।

लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । देवेसु भुज०-अप्प०-अवट्ठि० केव० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ-णवचोइस० देसुणा । एवं सव्वदेवाणं । णवरि सगसगपोसणं वत्तव्वं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १५७. कालाणुगमेण दुविहो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० तिण्णिपठ० वि० सव्वद्धा । एवं तिरिक्खोघ ।

वालोकका स्पर्शन लोकका असख्यातवों भाग और सर्व लोक है । देवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवों भागका और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । इस प्रकार स्पर्शनानुगमको जानकर उसे अनाहारक मार्गणा पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—आदेशसे नरकगतिमें सब विभक्तिवाले नारकियोंने मारणान्तिक और उपपाद के द्वारा अतीत कालमें कुछ कम छह बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और शेष सभय पदोंके द्वारा अतीतकालमें तथा सभय सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असख्यातवों भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहले नरकमें सम्भव सभी पदोंके द्वारा लोकके असख्यातवों भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । दूसरे से सातवें नरक तक सभी विभक्तिवाले नारकियोंने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा अतीत कालमें दूसरे नरकमें कुछ कम एक बटे चौदह, तीसरेमें कुछ कम दो बटे चौदह, चौथेमें कुछ कम तीन बटे चौदह, पाँचवेंमें कुछ कम चार बटे चौदह, छठेमें कुछ कम पाँच बटे चौदह और सातवेंमें कुछ कम छै बटे चौदह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा सभय शेष पदोंके द्वारा अतीत कालमें और सभय सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असख्यातवों भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सब पञ्चन्द्रयतिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें तीनों विभक्तिवाले जीवोंने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा अतीत कालमें सर्वलोकका स्पर्शन किया है और सभय शेष पदोंके द्वारा अतीतकालमें तथा सभय सभी पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असख्यातवों भागका स्पर्शन किया है । सामान्य देवोंमें तीनों विभक्तिवाले जीवोंने विहार वत्स्वस्थान, वेदना, कपाय, और विक्रियापदके द्वारा अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है और मारणान्तिक पदके द्वारा अतीत कालमें कुछ कम नौ बटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा सभय पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें और स्वस्थानस्वस्थान पदके द्वारा अतीत कालमें लोकके असख्यातवों भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवोंमें अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । ओघसे सब लोकप्रमाण स्पर्शन है यह स्पष्ट ही है । इस प्रकार इस स्पर्शनको ध्यानमें रखकर भुजगार आदि पदोंकी अपेक्षा ओघसे व चारों गतियोंमें स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए । अन्य मार्गणाओंमें भी अपना अपना स्पर्शन जानकर जिस पदकी अपेक्षा जो स्पर्शन सम्भव हो उसे जान लेना चाहिए ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १५७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी तीनों विभक्तियोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए ।

§ १६० भाषाणु० सम्बन्धो मोदद्भो भाषो ।

एवं भाषाणुगमो समचो ।

§ १६१ अप्याबहुगाणु० द्विविहो णिहे सां—भाषण आदसेण । तस्य ओषेण सम्ब
स्योवा अप्यदरविहृत्तिया णीवा । सुम० विहृत्ति० असंस्ले० गुणा । अबद्धि० वि० संस्ले०
गुणा । एव चतुसु वि गदीसु । णवरि मजुसपञ्जत्त-मजुसिणीसु संस्लेऽगुणं कायम्ब ।
भाषणादि भाव अबराहर्दं ति सम्बस्योवा अप्यदरविहृत्तिया । अबद्धि० असंस्ले० गुणा ।
सम्बद्धे सम्बन्धोवा मोह० अप्यदरविहृत्तिया । अबद्धिदधि० संस्ले० गुणा । एवं भाषिद्द
जेदम्बं भाव अणाहारि ति ।

एवं सुजगाराणुगमा समचो ।

पदणिक्स्लेवो

§ १६२ पदणिक्स्लेवे सि तस्य इमाणि [तिणि] अणिमोहाराराणि—
समुच्चिन्ना सामितमप्याबहुम्बं चेदि । को पदणिक्स्लेवो ? सुमगारविसेसो । ण च
पुणरुपदा, अहणुक्स्सवङ्कि-हाणि-अवहाणेसु पदिवद्धवावो ।

§ १६३ भाषाणुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदधिक भाव है ।

इस प्रकार भाषाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १६४ अस्पष्टवृत्तानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारका है—आप और आवेरा । इनमेंसे
आपसे अस्पष्टवृत्तानुगमकी जीव सबसे पावे है । सुजगारविभक्तिवाले उनसे असंख्यातगुणे
हैं । अबस्थितविभक्तिवाले उनसे संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार चारों ही गतियोंमें जानना चाहिए ।
इतनी विरोधता है कि मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियमित असंख्यातगुणके स्थानमें संख्यातगुणा
करना चाहिये । आत्मतसे लेकर अपराधिक विमान तकके बंधोंमें अस्पष्टवृत्तानुगमकी सबसे पावे
हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले असंख्यातगुणे हैं । सर्वार्थसिद्धिमें मोहनीयके अस्पष्टवृत्तानुगमकी
सबसे पावे हैं । अबस्थितविभक्तिवाले उनसे संख्यातगुण हैं । इस प्रकार अस्पष्टवृत्तानुगम जानकर
वसे अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

इस प्रकार सुजगाराणुगम समाप्त हुआ ।

पदनिसेप

§ १६५ अब पदनिसेपका कथन करते हैं । इसमें दो अनुयागद्वार हैं—समुत्कीर्तना
स्वामित्य और अस्पष्टवृत्त ।

शब्द—पदनिसेप किसे करते हैं ?

समाधान—सुजगार विरोध पदनिसेप करते हैं ।

यदि कहा जाय कि जब पदनिसेप सुजगारका ही एक विरोध है वा उसके कथन करनेसे
पुनरुक्त बाप जाता है क्योंकि सुजगारका कथन यैव कर भाये हैं । किन्तु ऐसा करना ठीक
नहीं है क्योंकि पदनिसेपमें जयम्य और उरुत्त वृत्ति इतनी और अवस्थानका कथन किया जाता
है, अतः पुनरुक्त बाप नहीं है ।

§ १५६. अंतराणुगमेण दुविहो णिहे सो--ओघेण आदेसेण । ओघेण मोहो-
तिण्णिपदविहित्तियाण णत्थि अंतरं । एव तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइएसु भुज-
अवट्ठि० णत्थि अंतरं । अप्प० ज० एगस०, उक्क० अतोमु० । एवं सन्वणेरइय-सन्व-
पंचिदियतिरिक्ख-मणुसतिय-देव भवणादि जाव सहस्सार त्ति । मणुसअपज्ज० तिण्णि-
पदवि० ज० एगस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति
अप्प० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिदियाणि । अवट्ठि णत्थि अंतरं । अणुदिसादि
जाव सवट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० वासपुथत्तं पल्लिदो० संखे० भागो ।
अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवं जाणिट्ठण णेदव्व जाव अणाहारि त्ति ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ १५९ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी तीनो विभक्तियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चामे जानना चाहिए । आदेशसे नारकियोंमें भुजगार और अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चोन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीनों विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण है । आनत स्वर्गसे लेकर नव भ्रैवेयक तकके देवोंमें, अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन है । अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अपराजित तक वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमे पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है । अवस्थित-विभक्तिका अन्तर नहीं है । इसप्रकार अन्तरानुगमको जानकर उसे अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे व आदेशसे सामान्य तिर्यञ्चोंमें तो तीनों ही विभक्तिवाले सर्वदा पाये जाते हैं, अत अन्तर नहीं है । शेष गतियोंमें भुजगार और अवस्थितवाले सर्वदा पाये जाते हैं, अत उनका अन्तर नहीं है । किन्तु मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीनों विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण होता है, क्योंकि यह सान्तर मार्गणा है और उसका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण है । अल्पतरविभक्तिका अन्तर सब नारकियों सब पञ्चोन्द्रियतिर्यञ्चों, तीन प्रकारके मनुष्यों, सामान्य देवों और भवनवासीसे लेकर सहस्रारपर्यन्त तकके देवोंमें जघन्य से एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त होता है । आनतसे लेकर सब भ्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतरका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन होता है, क्योंकि उनमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वके अभिमुख हुए जीवके उत्कृष्ट हानि बतलाई है और प्रथम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन बतलाया है तथा अनुदिशा-दिकमेंसे अपराजित तकके देवोंमें अल्पतरानुभागविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष-पृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमे पत्यके सख्यातवें भागप्रमाण है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

जहण्णाणुभागसंतकम्मादो उक्कस्साणुभागं बंधमाणो तस्स उक्कस्सिया बड्डी । तस्सेव से काळे उक्कस्समवहाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरेण उक्कस्साणुभागसंतकम्मिएण उक्कस्साणुभागकडए इदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । एवं सन्धपेरइय तिरिक्ख पवक०-मणुस्सविय-देव भवणादि जाव सहस्सारकप्पा ति । पंचिदियतिरिक्खमपक्क० उक्क० बड्डी कस्स ? अण्णदरा भो तप्पाभोमाजहण्णाणुभागसंतकम्मादो तप्पाभोमा-उक्कस्साणुभागबंधं गदो तस्स उक्कस्सिया बड्डी । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो भा मणुस्सो मणुस्सिणी वा पंचिदियतिरिक्खपक्कत्तभोणिमा वा उक्कस्साणुभाग-संतकम्मिओ उक्कस्साणुभागकंडयं पादयमाणो पंचिदियतिरिक्खमपक्कत्तपसु उन्नवण्णा तय उक्कस्साणुभागकंडए इदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काळे उक्कस्समवहाणं । एवं मणुसअपक्कत्तार्णं । आपदादि जाव गवगवज्जा ति उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण उक्कस्साणुभागसंतकम्मिएण पडमसम्महाइसुरेण पडमाणुभागकंडयं इदं तस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काळे उक्कस्समवहाणं । अणुदिसादि जाव सम्भट्ट सिद्धि पि मोइ० उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण तप्पाभोमाउक्कस्साणु-भागसंतकम्मियवेदगसम्मादिद्धिजा अणंताणुबंधिक्खउक्कं विसमोपमाणेण पडममणु-भागकंडयं इदं तस्स उक्क० हाणी । तस्सव से काळे उक्कस्समवहाणं । एवं आणित्ठण

अपने पोष्य अन्नम अनुभागवाले सरम्भस उत्कृष्ट अनुभागका पोष्य करता है उसके उत्कृष्ट इति हाती है और वहीके अन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान हाता है । उत्कृष्ट हानि किसके हाती है ? जिस जीवके उत्कृष्ट अनुभागवाले कर्मोकी सत्ता है वह जीव जब उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका पात करता है ता उसके उत्कृष्ट हानि हाती है । इसी प्रकार सब नारकी सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्यंचयानिनी सामान्य मनुष्य मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी सामान्य इव और भवन्वासीसे लेकर सहस्रार कस्य तकके देवोंमें जानना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकर्मोंमें उत्कृष्ट इति किसके हाती है ? जिसके अपने पोष्य अन्नम अनुभागकी सत्तावाले कर्मोका अस्तित्व है वह जब अपने पोष्य उत्कृष्ट अनुभागका पोष्य करता है ता उसके उत्कृष्ट इति हाती है । उत्कृष्ट हानि किसके हाती है ? जिस मनुष्य मनुष्यिनी अथवा पंचेन्द्रियतिर्यंचके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले कर्मोका अस्तित्व है वह उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका पात करता हुआ पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्तकर्मोंमें उत्पन्न हुआ । उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका पात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि होती है और वहीके अन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान हाता है । इसीप्रकार अपर्याप्त मनुष्योंके जातता चाहिए । आन्त स्वर्गसे लेकर महादेविक तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके हाती है ? उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाला प्रथम समयकल्पके अग्निमुखा जो देव पहले अनुभागकाण्डकका पात करता है उसके उत्कृष्ट हानि हाती है और वहीके अन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान हाता है । अणुदिससे लेकर सबार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनी उत्कृष्ट हानि किसके हाती है ? अपने पोष्य उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले जिस वेदकसम्पन्नधिने अन्तस्तदुत्पन्नी उत्पन्नका विस्तारजन करते हुए प्रथम अनुभागकाण्डकका पात कर किया है उसके उत्कृष्ट हानि हाती है । वहीके अन्तर

१. वा. श्री पंचिदियतिरिक्खमोणिको इति पद्य ।

§ १६३. समुक्त्तिणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण अत्थि मोह० उक्कस्सिया वड्डी उक्क० हाणी अवट्ठाणं च । एवं चदुसु गदीसु । णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति अत्थि उक्क० हाणी अवट्ठाणं च । एव जाणिदूण णेद्व्व जाव अणाहारि ति ।

एवमुक्कस्सिया समुक्त्तिणा समत्ता ।

§ १६४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण अत्थि जहण्णिया वड्डी हाणी अवट्ठाणं च । एव चदुसु वि गदीसु । णवरि आणदादि जाव सव्वट्ठा ति अत्थि जहण्णिया हाणी अवट्ठाणं च । एवं जाव अणाहारि ति ।

एव समुक्त्तिणाणुगमो समत्तो ।

§ १६५. सामित्तं दुविह—जहण्णमुक्कसं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० उक्कस्सिया वड्डी कस्स ? अण्णदरो जो तप्पाओग्ग-

विशेषार्थ—यद्यपि पदनिक्षेप भुजगार अनुगमका ही एक भेद है फिर भी इसमें उससे अन्तर है । भुजगार अनुगममें तो भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तियोंका वर्णन है और पदनिक्षेपमें उन विभक्तियोंके कारण वृद्धि, हानि और अवस्थानका वर्णन है ।

§ १६३ समुक्तीर्तनानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे यहाँ उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और अवस्थान होता है, अर्थात् मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट वृद्धि भी होती है, उत्कृष्ट हानि भी होती है और उत्कृष्ट अवस्थान भी होता है । इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होता है, उत्कृष्ट वृद्धि नहीं होती । इसप्रकार उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थानको जानकर उसे अनाहारी तक लेजाना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट समुक्तीर्तना समाप्त हुई ।

§ १६४ अब जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होता है । इसप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होता है, वृद्धि नहीं होती । इसप्रकार अनाहारी पर्यन्त जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओघकी तरह आदेशसे भी चारों गतियोंमें उत्कृष्ट और जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान होते हैं, किन्तु आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें न उत्कृष्ट वृद्धि होती है और न जघन्य वृद्धि, क्योंकि उनमें भुजगारका अभाव है ।

इस प्रकार समुक्तीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६५ स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो

§ १६७ अप्याबहुर्ध्वं दुर्बिर्ह—अहण्यमुक्त्सं च । उक्त्से पयवं । दुर्बिर्हो णिर्हो सो—
 ओपेण आदेशेण । आपेण सव्यस्योवा मोह० उक्त्सिसया हाणी । पट्टी अयद्वाणं चं
 दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि । एवं सव्यगेरइय-सव्यतिरिक्त्स-सव्यमणुस्स-वेध०
 भवणादि आन सहस्तारो ति । गपरि पंविदियतिरिक्त्समपक्क०-मणुसमपक्क० सव्य
 स्योवा उक्त्सिसया पट्टी । हाणी अयद्वाणं च दो वि सरिसा अणत्तण्णा । माणदादि
 जाय सम्पट्टसिद्धि ति हाणी अयद्वाणं च दो वि सरिसाणि । एय जाणित्थं मेवध्वं
 जाय अणाहारि ति ।

एयमुक्त्समो अप्याबहुगाणुगमो समतो ।

विशुपार्य—आपसे अण्य वृद्धि और अण्य हानिका प्रमात्र समान है, अतः अण्य
 वृद्धिबालेका भी अण्य अवस्थान हाता है और अण्य हानिबालेका भी अण्य अवस्थान हाता
 है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें आनन्द चाहिए । किन्तु आनन्दसे लेकर सर्वायसिद्धि तकके
 बेधोंमें हानि ही होती है अतः अण्य हानिबालेके ही अण्य अवस्थान हाता है । तथा उक्त्स
 स्वामिन्के कर्ममें अनुधिराधिकमें प्रथम अनुभागकाण्डकका पाठ किये जाने पर उक्त्स हानि
 बतलाई थी, और यहाँ चरम अनुभागकाण्डकका पाठ किये जाने पर अण्य हानि बतलाई है,
 इसका कारण यह है कि चरम अनुभागकाण्डकसे प्रथम अनुभागकाण्डकमें बहुत अधिक
 अनुभागकी सृष्टा होती है ।

इस प्रकार स्वामिन्नाणुगम समाप्त हुआ ।

§ १६० अस्पबहुत्व दो प्रकारका है—अण्य और उक्त्स । उक्त्ससे प्रबोधन है । निर्देरा
 वा प्रकारका है—ओप और आदेश । ओपसे मोहमीबकी उक्त्स हानि सब सबसे बाड़ी है । उससे
 वृद्धि और अवस्थान हानों समान हाकर कुछ अधिक हैं । इसी प्रकार सब मारकी, सब विर्य
 सब मनुष्य सामान्य वेध, और भवनासीसे लेकर सहकार स्वर्ग तकके बेधोंमें आनन्द चाहिए ।
 इतनी विरोधता है कि पञ्चेन्द्रियविर्य-अपर्मात्त और मनुष्यअपर्मात्तकामें उक्त्स वृद्धि सबसे
 बाड़ी है । उससे हानि और अवस्थान हानों समान हाकर अन्तमुक्त हैं । आनन्दसे लेकर सर्वाय
 सिद्धि पयन्व हानि और अवस्थान हानों समान हैं । इस प्रकार आनन्द अन्तहारी पर्यन्त ले
 जाना चाहिये ।

विशुपार्य—ओपसे बीबक जो उक्त्स हानि होती है उसका प्रमात्र सबसे कम है, उसके
 उक्त्स वृद्धि और उक्त्स अवस्थानका प्रमात्र अधिक है, किन्तु परस्परमें दोनोंका बराबर है,
 क्योंकि स्वामिन्नाणुगममें जिसके उक्त्स वृद्धि बतलाई है उसीके उक्त्स अवस्थान भी बतलाई
 है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें आनन्द चाहिए । किन्तु पञ्चेन्द्रियविर्य-अपर्मात्त और मनुष्य
 अपर्मात्तकामें उक्त्स वृद्धिका परिमात्र कम है और उक्त्स हानिका प्रमात्र वृद्धिसे अधिक है ।
 तथा आनन्दाधिकमें वृद्धि तो हाती ही नहीं अतः उक्त्स हानिबालेके ही उक्त्स अवस्थान होनेसे
 दोनोंका परिमात्र समान कहा है ।

इस प्रकार उक्त्स अस्पबहुत्वाणुगम समाप्त हुआ ।

णेद्वं जावे, अणाहारि ति ।

एवमुक्त्स्सवट्टिसामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ १६६. जहण्णाए पयदं । दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० जहण्णाया वट्टी हाणी अणुद्वाराणं च कस्स ? अणुदरस्स अणंतभागेण वट्टिदूण वंधे जहण्णाया वट्टी । तस्मि चेव कंठयघादेण हदे जहण्णाया हाणी । एगदरस्थ अणुद्वाराणं । एवं चटुसु गदीसु । एवरि आणदादि जाव सच्चट्टसिद्धि ति जहण्णाया हाणी कस्स । अणुदरस्स अणताणुबंधिचउक्कं-विसंजोएमाणवेदगसम्मादिट्टिस्स चरिमअणुभागकंडए हदे तस्स जहण्णाया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णामवट्टाणं । एवं जाणिदूण णेद्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इस प्रकार जानकर उत्कृष्ट वृद्धि आदिको अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे अपने योग्य जघन्य अनुभाग सत्कर्मवाला जो जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है उसके, उत्कृष्ट, वृद्धि होती है और उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर उत्कृष्ट हानि हाती है । नारकियों, चार प्रकारके तिर्यञ्चों, तीन प्रकारके मनुष्यों, सामान्य देवों और भवनवासीसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपयाम्पकोमें कुछ अन्तर है जो मूलमें बतलाया ही है । विशेष बात यह है कि उनमें उत्कृष्ट हानिवालेके उत्कृष्ट अवस्थान बतलाया है । इसका कारण यह है कि उनके उत्कृष्ट वृद्धिसे उत्कृष्ट हानिका प्रमाण अधिक है और वृद्धि तथा हानिमेंसे जिसका प्रमाण अधिक होता है उसीको लेकर उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए । उनमें वृद्धि तो होती ही नहीं, हानि ही होती है और उत्कृष्ट हानिवालेके ही उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट वृद्धिका स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६६ जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान किसके होता है ? जो अन्यतर जीव अनन्तर्वे भाग अधिक अनुभागका बन्ध करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है और कण्डकघात के द्वारा उसी अनन्तर्वे भाग अनुभागका घात कर दिये जाने पर जघन्य हानि हाती है । तथा इन दोनों वृद्धि-हानियोंमें से किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थान होता है । इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए । कुछ विशेषता इस प्रकार है—आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजन करनेवाला अन्यतर वेदकसम्यग्दृष्टि देव जब अन्तिम अनुभागकाण्डकका घात कर देता है तब उसके जघन्य हानि होती है । उसीके अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ १७० तत्प समुक्तिसणाशुगमेण दुबिहो गिहो सो—ओपेण आदेसेण । ओपेण मोहणीयस्त अत्यि द्यवट्टीमो द्दहाणीमा अबट्ठिदं च । एवं चदुसु गदीसु । णवरि माण दादि नाव सम्बट्टसिद्धि ति अत्यि अणंतगुणहाणी अबट्ठिदं च । एवं जाणिदूण षेद्व्वं नाव अणाहारि ति ।

एवं समुक्तिसणाशुगमो समथो ।

§ १७१ सामिवाजु० दुबिहो गिहो सो—ओपेण आदेसेण । ओपेण मोहणीयस्त द्यवट्टीमो' पंभहाणीमो' कस्त ? अण्णद० मिच्छादिद्विस्त । अणंतगुणहाणी अबट्ठिदं च कस्त ? अण्णदरस्त सम्मादिद्विस्त मिच्छाद्विस्त वा । एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंभिदियतिरिक्त्त्वमपज्ज०—मणुसमपज्ज० द्यवट्टीमो द्दहाणीमा अबट्ठिदं च कस्त ? अण्णद० मिच्छाद्विस्त । आणदादि नाव णवगेपच्चा ति अणंतगुणहाणी अबट्ठिदं च कस्त ? अण्णद० सम्माद्विस्त मिच्छाद्विस्त वा । अनुदिसादि नाव सम्बट्ट सिद्धि ति अणंतगुणहाणी अबट्ठार्णं च कस्त ? अण्णदरस्त सम्माद्विस्त । एवं जाणि

का लेकर कथन किया है । ये मेह हैं—अनन्तमागुणद्वि असंख्यातमागुणद्वि, संख्यातमागुणद्वि, संख्यातगुणद्वि असंख्यातगुणद्वि और अनन्तगुणद्वि । इसीप्रकार हानिके भी द्वाह मेह होते हैं । तथा इनके बाद हानतासे अबस्थानका भी इसमें विचार किया गया है ।

§ १७० उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमसे निर्देरा दो प्रकारका है—आप और आवेरा । ओपसे माहनीयकर्मकी छ दृष्टियाँ छ हानियाँ और अबस्थान हाते हैं । इसीप्रकार चारों गतिबोमें जानना चाहिए । इतनी क्लिरोपता है कि आन्त स्वर्गसे लेकर सर्वाधसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणद्वि और अबस्थान हाता है । इसप्रकार जानकर अनन्तारी पर्यन्त से जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—आपकी तरह चारों गतिबोमें भी मोहनीयके अनुभागीकी द्वाहो दृष्टियाँ द्वाहो हानियाँ और अबस्थान हाते हैं । किन्तु आन्तादिधर्म केवल अनन्तगुणद्वि और अबस्थान ही हाते हैं ।

इसप्रकार समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७१ स्वामित्वानुगमसे निर्देरा दो प्रकारका है—ओप और आवेरा । ओपसे माहनीयकी छ दृष्टियाँ और पाँच हानियाँ किसके हाती हैं ? किसी एक मिच्छाद्वि जीवके हाती हैं । अनन्तगुणद्वि और अबस्थिति किसके हाती है ? अन्तर सम्बन्धि और मिच्छाद्विके हाती हैं । इसीप्रकार चारों गतिबोमें कथन करना चाहिए । किन्तु कुछ क्लिरोपता है जो इसप्रकार है—पञ्चेन्द्रियधर्म आपर्मात्त और मणुष्य अपर्मात्तधर्मो छ दृष्टियाँ छ हानियाँ और अबस्थिति किसके हाती हैं ? किसी भी मिच्छाद्विके हाती हैं । आन्तसे लेकर नवमैत्रेयक पर्यन्त अनन्तगुणद्वि और अबस्थिति किसके हाती है ? किसी भी सम्बन्धि और मिच्छाद्विके हाती है । अनुदिसासे लेकर छव धसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणद्वि और अबस्थान किसके हाते हैं ?

१ वा प्रती ओदधीयक अत्यि द्यवट्टीमो इति वाक्य । २ वा वा प्रती ओदधीयको इति वाक्य ।

§ १६८. जहण्णए पयदं । दुविटो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोहं जहण्णिया वट्ठी हाणी अवट्ठाणं च तिण्णि वि सरिसाणि । एवं चदुमु गदीमु । णवरि आणटादि जाव सच्चट्टसिद्धि ति जहण्णिया हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि । एवं जाणिदूण णेदच्चं जाव अणाहारि ति ।

एव पदणिकखेवो ति समत्तमणिओगद्दारं ।

वट्टिविहत्ती

§ १६९. वट्टिविहत्तीए तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्किणादि जाव अप्पावहुए ति । का वट्ठी णाम ? पदणिकखेवविसेसो । ण पुणरुत्तदा, सामण्णादो विसेसस्स सच्चत्थ पुधत्तुवलंभादो ।

§ १६८ जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे मोहनीयकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान तीनों समान हैं । इन्हीं प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थमिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि और अवस्थान दोनों समान हैं । इस प्रकार जानकर अनागरी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओषसे जीवके जितनी जघन्य वृद्धि होती है उतनी ही जघन्य हानि भी होती है अत तीनोंका परिमाण समान कहा है, कमती बढ़ती नहीं कहा है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें भी जानना चाहिए । किन्तु आनतादिकमें वृद्धि नहीं होती, अत वहा हानि और अवस्थानका प्रमाण समान कहा है ।

इस प्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

वृद्धिविभक्ति

§ १६९ अथ वृद्धिविभक्तिका कथन करते हैं । उसमें समु कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व-पर्यन्त तेरह अनुयोगद्वार होते हैं ।

शङ्का—वृद्धि किसे कहते हैं ।

समाधान—पदनिक्षेप विशेषको वृद्धि कहते हैं । ऐसा होने पर भी वृद्धिका कथन करनेमें पुनरुक्त दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सर्वत्र सामान्य कथनसे विशेष कथन पृथक् उपलब्ध होता है ।

विशेषार्थ—जैसे भुजगारविभक्तिका ही एक विशेष पदनिक्षेप है, वैसे ही पदनिक्षेपका एक विशेष वृद्धिविभक्ति है । पदनिक्षेपमें मोहनीयके अनुभागसत्त्वमें उत्कृष्ट और जघन्य वृद्धि, उत्कृष्ट और जघन्य हानि तथा उत्कृष्ट और जघन्य अवस्थानका कथन किया है । किन्तु वृद्धिविभक्तिमें छ प्रकारकी वृद्धि, छ प्रकारकी हानि और अवस्थानका कथन किया है । सारांश यह है कि पद निक्षेपमें वृद्धि आदिका सामान्य रूपसे कथन है और वृद्धिविभक्तिमें वृद्धि और हानिके छ छ भेदों

अबहि० ज० एगस०, उक० विष्णिपसिदा० सादिरयाणि । एवं पंचिदियतिरिक्त्वा
 पठस्स ? जवरि पंचिदियतिरिक्त्वापस्स० अबहि० ज० एगस०, उक० अंतोमुहुत्तं ।
 मजुसतिएसु ओपयंगो । जवरि अबहि० ज० एगस०, उक० विष्णिपसिदा० पुम्ब
 कोटितिमागेण सादिरयाणि । मजुस्सिणीसु अंतोमुहुत्तेण सादिरयाणि । मजुसअपस्स०
 पंचिदियतिरिक्त्वापज्जत्तयंगो । देव० भवजादि माभ सहस्सारो ति गेरइयमंगो ।
 जवरि अबहि० सगसमुक्त्स्सदिदी । भवण०-भाज०-ओदिसि० देसुणा । भाणव्वादि
 भाव सम्बद्धसिद्धि ति अणत्तमुजहाणी अहण्णुक्क० एगस० । अबहि० ज० अंतोमुहुत्त,
 उक० सगसमुक्त्स्सदिदी । एव भाणित्थम गेत्थ्वं भाव अभाहारि ति ।

एवं काष्ठाजुगमो समतो ।

इतनी बिरोपता है कि अकस्मानका अपन्य कास एक समय है और उक्त कास कुछ अधिक
 तीन पस्व है । इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियविर्यञ्च पञ्चेन्द्रियविर्यञ्च पञ्चात्, पञ्चेन्द्रियविर्यञ्च-
 बोनिनी और पञ्चेन्द्रियविर्यञ्चअपर्याप्तकौमे आन्ता बाह्य । इतनी बिरोपता है कि पञ्चेन्द्रिय-
 तिर्यञ्चअपर्याप्तकौमे अकस्मिदिका अपन्य कास एक समय है और उक्त कास अन्तर्मुहूर्त है ।
 सामान्य मनुष्य मनुष्यपञ्चात् और मनुष्यनिबोमे आपके समान मंग है । किन्तु इतनी बिरोपता
 है कि अकस्मिदिका अपन्य कास एक समय है और उक्त कास पूबकाटिका त्रिमाग अधिक
 तीन पस्व है । तथा मनुष्यनिबोमे अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पस्व है । मनुष्यअपर्याप्तकौमे
 पञ्चेन्द्रियविर्यञ्च अपर्याप्तकौमे समान मंग है । सामान्य देव व भवन्वासीसे लेकर सहस्रार
 स्वर्गलकके देवोमे नारकियोके समान मंग है । इतनी बिरोपता है कि अकस्मानका उक्त कास
 अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण्य है । किन्तु भवन्वासी अन्तर और अयोविपी देवोमे
 अकस्मानका उक्त कास कुछ कम अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण्य है । आन्त स्वर्गसे लेकर
 सर्वावसिद्धि तकके देवोमे अन्तर्मुहूर्तानिका अपन्य और उक्त कास एक समय है । अक-
 स्मानका अपन्य कास अन्तर्मुहूर्त है और उक्त कास अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण्य है ।
 इसप्रकार जानकर अन्तर्हारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विश्लेषार्थ—आपसे एक जीवके पाँचों इन्द्रियों कमसे कम एक समय तक हाठी हैं और
 अधिकसे अधिक आकस्मिके असक्यातवर्षे माग कासतक हाठी हैं । तथा अन्तर्मुहूर्त और
 अन्तर्मुहूर्तानिका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होती हैं । शेष
 पाँच इन्द्रियों एक समय तक ही होती हैं । अकस्मानका अपन्य कास एक समय और उक्त
 कास एक सौ त्रेसठ सागर और पस्यका असक्यातवर्षो माग है । इसके सम्बन्धमे मुग्गागर
 बिमर्षिमे एक जीवकी अपेक्षा कासका कथन करत हुए मिल आये हैं । आदेशस भी पाँचों
 गठियोमे अहो इन्द्रियों और अहो इन्द्रियोंका कास जोबके समान है । किन्तु नरकगति तिर्यञ्च
 गति और देवगतिमे अन्तर्मुहूर्तानिका अपन्य और उक्त कास एक समय है, क्योंकि
 अन्तर्मुहूर्त कास तक अन्तर्मुहूर्तानिका केवल चारित्रमाहकी अपर्याप्तमे ही संभव है और उसका
 इन गठियोमे अभाव है । अकस्मानका अपन्य कास तो आन्तर्मुहूर्तके सिवा सर्वत्र एक ही समय
 है, केवल उक्त कास पूबक पूबक है और उसका स्पष्टीकरण मुग्गागरबिमर्षिके कलातुगममे
 कर दिया गया है । इस प्रकार मूलमें कही गई बिरोपताका ज्ञानमे रखकर चारों गठियोमे

दूण णेदन्वं जाव अणाहारि ति ।

एवं सामित्ताणुगमो समतो ।

§ १७२. कालाणु० दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० पंचवट्टी० केवचिरं कालादो होंति ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणंतगुणवट्टि-हाणिओ केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । पंचहाणिकालो जहण्णु-क्कस्सेण एगसमओ । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसद पलिदो० असंखे० भागेण सादिरेयं ।

§ १७३. आदेसेण णेरइएसु मोह० पंचवट्टी केवचिरं कालादो होंति ? ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणंतगुणवट्टी ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । छहाणी० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसू-णाणि । एवं सव्वणेरइयाणं । णवरि सगट्टिदी देसूणा । एवं तिरिक्खेसु । णवरि

किसी भी सम्यग्दृष्टिके होते हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयके अनुभागसत्कर्ममें छहों वृद्धियों और पाँचों हानियों मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं किन्तु अनन्तगुणहानि और अवस्थान सम्यग्दृष्टिके भी होते हैं और मिथ्यादृष्टिके भी होते हैं । आदेशसे चारों गतियोंमें भी यही व्यवस्था है । किन्तु पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त चूँकि मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, अतः उनमें मिथ्यादृष्टिके ही सब वृद्धियाँ, सब हानियाँ और अवस्थान होते हैं । तथा आनतादिकमें अनन्तगुणहानि और अवस्थान ही होते हैं और आनतसे लेकर नवप्रैवेयकपर्यन्त मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, अतः अनन्तगुणहानि और अवस्थान दोनोंके ही होते हैं । किन्तु अनुदिशादिकमें सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, अतः अनन्तगुणहानि और अवस्थान सम्यग्दृष्टिके ही होते हैं ।

इसप्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७२ कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे एक जीवके मोहनीयकी पाँचों वृद्धियोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धि और अनन्तगुणहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पाँच हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यका असख्यातवों भाग अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है ।

§ १७३ आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकी पाँचों वृद्धियोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । छह हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थानका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेत्तीस सागर है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अवस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार तिर्यश्चोंमें जानना चाहिए ।

अबद्धि० ज० एगस०, उक्त० तिष्णिपसिद्धा० सादिरेयाभि । एवं पंचिदियतिरिक्त्व
 चतुष्कस्त १ नवरि पंचिदियतिरिक्त्वअपञ्च० अबद्धि० ज० एगस०, उक्त० अंतोमुहुत्तं ।
 मणुसतिपसु ओपमंगो । नवरि अबद्धि० ज० एगस०, उक्त० तिष्णिपसिद्धा० पुञ्च
 कोदितिभागेण सादिरेयाभि । मणुस्तिष्णीसु अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाभि । मणुसअपञ्च०
 पंचिदियतिरिक्त्वअपञ्चचर्मगो । देव० मबणोदि जाव सहस्सरो ति बेरइयमंगो ।
 नवरि अबद्धि० सगसयुक्तस्तद्धिदी । मबण०-वाण०-ओदिसि० देवणा । आण्वादि
 भाव सम्पद्दसिद्धि ति अणत्तुगुहाणी नइणुक्त० एगस० । अबद्धि० ज० अंतोमुहुत्त,
 उक्त० सगसयुक्तस्तद्धिदी । एव जाणिण्ण जेवम्भं भाव अणाहारि ति ।

एवं कालाणुगमो समथो ।

इतनी विरोधता है कि अबस्थानका जपन्य काल एक समय है और उक्तक काल कुछ अधिक
 तीन पन्थ है । इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पयात, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च-
 बानिनी और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्तकोमे आन्ता बाहिए । इतनी विरोधता है कि पञ्चेन्द्रिय-
 तिर्यञ्चअपर्याप्तकोमे अबस्थितिका जपन्य काल एक समय है और उक्तक काल अन्तर्मुहुत्त है ।
 सामान्य मनुष्य मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोमे ओपके समान मंग है । किन्तु इतनी विरोधता
 है कि अबस्थितिका जपन्य काल एक समय है और उक्तक काल पूर्वकोदिका त्रिभाग अधिक
 तीन पन्थ है । तथा मनुष्यिनियोमे अन्तर्मुहुत्त अधिक तीन पन्थ है । मनुष्यअपर्याप्तकोमे
 पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोमे समान मंग है । सामान्य देव व मबनवासीसे लेकर सहस्रार
 स्वर्गतकके देवोमे नरकिबोके समान मंग है । इतनी विरोधता है कि अबस्थानका उक्तक काल
 अपनी अपनी उक्तक स्थितिप्रमास्य है । किन्तु मबनवासी, म्पन्तर और ओतिपि देवोमे
 अबस्थानका उक्तक काल कुछ कम अपनी अपनी उक्तक स्थितिप्रमास्य है । आन्त स्वर्गसे लेकर
 सर्वापसिद्धि तकके देवोमे अन्तर्मुहुत्तानिका जपन्य और उक्तक काल एक समय है । अब
 स्थानका जपन्य काल अन्तर्मुहुत्त है और उक्तक काल अपनी अपनी उक्तक स्थितिप्रमास्य है ।
 इसप्रकार आन्तर अनाहारी पर्यन्त से जाना बाह्य है ।

विरोधार्थ—ओपसे एक जीवके पाँचों इन्द्रियों कमसे कम एक समय तक हाती हैं और
 अधिकसे अधिक आबसिद्धे असंख्यातवें भाग कालतक हाती हैं । तथा अन्तर्मुहुत्तिका और
 अन्तर्मुहुत्तानिका कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहुत्त तक होती हैं । रोप
 पौष्ट हानियों एक समय तक ही हाती हैं । अबस्थानका जपन्य काल एक समय और उक्तक
 काल एक ही त्रेसठ सागर और पस्यका असंख्यातवें भाग है । इसके सम्बन्धमें मुजगार
 विमत्तिमें एक बीकरी अपेक्षा कालका कबन करते हुए सिल भाये हैं । आरेरसे भी चारों
 गतियोमे ज्यों इन्द्रियों और ज्यों हानियोंका काल आपके समान है । किन्तु नरकगति तिर्यञ्च-
 गति और देवगतिमें अन्तर्मुहुत्तानिका जपन्य और उक्तक काल एक समय है, क्योंकि
 अन्तर्मुहुत्त काल एक अन्तर्मुहुत्तानिका केबस आरिजमाहकी जपन्यामे ही संग्रह है और उसका
 इन गतियोमे अभाव है । अबस्थानका जपन्य काल वा आन्तगतिकके सिवा सर्वत्र एक ही समय
 है, केवल उक्तक काल एकत्र एकत्र है और उसका स्पष्टीकरण मुजगारविमत्तिके कालानुगममें
 कर दिया गया है । इस प्रकार मूलमें कही गई विरोधताके ध्यानमें रखकर चारों गतियोमें

§ १७४.- अंतराणु० दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० पंच-वट्टि-पंचहाणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगस० अंतोमु०, उक्क० असं-खेज्जा लोगा । अणंतगुणवट्टीए अंतरं ज० एगस०, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं तीहि पल्लिदोवमेहि सादिरेयं । अणतगुणहाणीए अंतरं केव० ? जह० अंतोमु०, उक्क० तेवट्टि-सागरोवमसदं पल्लिदो० असखे० भागेण सादिरेय । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० ।

§ १७५. आदेसेण णेरइएसु छवट्टि-हाणीणमतर केव० ? ज० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं सच्चणेरइयाणं । णवरि सगट्टिदी देसूणा । तिरिक्खेसु पंचवट्टि-पंचहाणीणमंतरं

काल जान लेना चाहिए । आगे अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार कालका विचार कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७४ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी पाँचों वृद्धियों और पाँचों हानियोंका अन्तरकाल कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोंका अन्तर्मुहूर्त है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक-प्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अनन्तगुणहानिका अन्तरकाल कितना है । जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यका असख्यातवा भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अवस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—ओघसे पाचो वृद्धियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और पाचों हानियों का अन्तर्मुहूर्त है, क्यो कि अनुभागकी हानि जिन परिणामोंसे होती है वे परिणाम तुरन्त ही नहीं होजाते । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल असख्यात लोक है, क्योकि इतने कालके लिये सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायमे चले जाने पर उक्त वृद्धियाँ हानियाँ वहाँ नहीं होती । अनन्त-गुणवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय होता है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है, क्योकि तीन पल्यके लिये भोगभूमिमे, वीचमे सम्यग्मिध्यात्वके साथ रहकर छियासठ छियासठ सागर तक दो बार वेदकसम्यक्त्वमें और अन्तमे ३१ सागरके लिये प्रैवेयक्रमे चले जाने पर उतने काल तक अनन्तगुणवृद्धि नहीं हो यह सम्भव है । अनन्तगुण-हानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यका असख्यातवा भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर होता है । अधिकसे अधिक उतने काल तक अवस्थितविभक्तिके हो जानेसे अनन्तगुणहानिमें अन्तर पढ जाता है । अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर पूर्ववत् जानना चाहिए ।

§ १७५ आदेशसे नारकियोंमें छ वृद्धियो और छ हानियोंका अन्तर काल कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय तथा हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । अवस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब नारकियोंमे जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । तिर्यच्चोंमें पाँच वृद्धियों और

केव० ? ज० एगस० अ तोसु०, उक० असंस्वेजा क्षोगा । अणंतगुणबहुीए अंतरं
 केव० ? ज० एगस०, उक० पस्त्रि० असंस्वे० मागो । अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ?
 ज० अंतोसु०, उक० तिष्णि पस्त्रि० समाणि अंतोसुहुत्तण सादिरेयाणि । अणन्दि०
 ज० एगस०, उक० अंतोसु० । पंचिदियतिरिक्खतिपम्मि इणन्दि०-पंचहाणीणमतरं केव०
 पिरं ? ज० एगस अंता०, उक० पुम्बकोदि० पुपत्तं । अणंतगुणहाणीए अंतरं
 कव० ? ज० अ तोसु०, उक० तिष्णि पस्त्रि० समाणि अंतोसुहुत्तण सादिरेयाणि ।
 अणन्दि० ज० एगस०, उक० अंतोसु० । पंचिदियतिरिक्खमपज्ज०-मणुसअपज्ज०
 इणन्दि०-अणन्दि० ज० एगस०, अहाणीणमतरं ज० अ तोसु०, उक० सम्वासि अंतो
 सुहुत्त । मणुस्सतिपाण पचि०तिरिक्खतिपमंगो । जवरि अणंतगुणबहुीए अंतरं ज०
 एगस०, उक० पुम्बकोटी दसुणा ।

१७६ देवसु इणन्दि०-पंचहाणीणमतरं केव० ? ज० एगस० अंतोसु०, उक०
 अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । अणंतगुणहाणीए अंतरं केव० ? ज० अंतोसु०,

पौं व हानियोका अन्तर काल कितना है ? बुद्धियोका जपम्य अन्तर एक समय और हानियो
 का जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा शान्तोका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात् लाकप्रमाण है ।
 अनन्तगुणबुद्धिका अन्तरकाल कितना है ? जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पस्त्रके
 असंख्यात्तवे भागप्रमाण है । अनन्तगुणबुद्धिका अन्तरकाल कितना है ? जपम्य अन्तर
 अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पस्त्र है । अवस्थानका जपम्य अन्तर
 काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । पञ्चोन्त्रियतिर्यञ्च पञ्चोन्त्रियतिर्यञ्च
 पर्याप्त और पञ्चोन्त्रियतिर्यञ्चयानिनी जीवामे इह बुद्धियो और पौं व हानिय का अन्तरकाल
 कितना है ? बुद्धियोका जपम्य अन्तर एक समय और हानियोका जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त
 है । तथा शान्तोका उत्कृष्ट अन्तर पुम्बकोटीपुम्बकत्रप्रमाण है । अनन्तगुणबुद्धिका अन्तरकाल
 कितना है ? जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पस्त्र है ।
 अवस्थानका जपम्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । पञ्चोन्त्रिय
 तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकोमे इह बुद्धियो और अवस्थानका जपम्य अन्तरकाल
 एक समय है, इह हानियोका जपम्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और सपका उत्कृष्ट अन्तरकाल
 अन्तर्मुहूर्त है । सामान्य मनुष्य मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोमे पञ्चोन्त्रियतिर्यञ्च पञ्चोन्त्रिय
 तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चोन्त्रियतिर्यञ्च यान्नियोके समान मंग आमसा चाहिये । इतनी विरोधता
 है कि अन्तर्गुणबुद्धिका जपम्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर बुद्ध कम एक पूर्णकाटि है ।

विरोधार्थ-आदेशसे गतिमार्गशामे बुद्धि हानि और अवस्थानका अन्तर मुजगदर
 विमच्छिम कडे गवे मुजगदर, अस्वतर और अवस्थानविमच्छिके अन्तरकालकी ही तरह विचारकर
 जान सेना चाहिये । विरोध इतना है कि तिर्यञ्चोमे पौं व बुद्धियो और पौं व हानियोका उत्कृष्ट
 अन्तर असंख्यात् लाक है ऐसा कि पहले आपसे बतलाया है ।

१७६ देवोमे इह बुद्धियो और पौं व हानियोका अन्तरकाल कितना है ? बुद्धियोका
 जपम्य अन्तर एक समय और हानियोका जपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा शान्तोका उत्कृष्ट
 अन्तर बुद्ध अधिक अट्टारस सागर है । अनन्तगुणबुद्धिका अन्तर कितना है ? जपम्य

उक्क० एकतीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । भवणादि जाव सहस्सरो ति छवट्टि-द्धहाणीणमंतरं केव०? ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । आणदादि जाव णवगेवज्जा ति अणंतगुणहाणि० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अवट्टि० जहएणुक्क० एगस० । अणुदिस्सादि जाव सव्वट्टिसिद्धि ति अणंतगुणहाणि० जहएणुक्क० अंतोमु० । अवट्टि० जहएणुक्क० एगस० । एव जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।
एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ १७७. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण छवट्टि-द्धहाणि-अवट्टिदाणि णियमा अत्थि । एवं तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरइएसु अणतगुणवट्टि-अवट्टि० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । भंगा १७७१४७ एत्तिया वत्तव्वा । एव सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख मणुस्सतिय-देव० भवणादि जाव सहस्सरो ति । मणुस्सअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा । भंगा एत्थ एत्तिया होति १५६४३२२ । आणदादि जाव सव्वट्टिसिद्धि ति अवट्टि० णियमा

अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अवस्थानका जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । भवनवासीसे लेकर सहस्रार कल्पपर्यन्त छ वृद्धियों और छ हानियोंका अन्तर कितना है ? वृद्धियोंका जघन्य अन्तर एक समय और हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और सबका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । अवस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । आनत स्वर्गसे लेकर नव प्रवैयक तकके देवोंमें अनन्तगुणहाणिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । अवस्थानका जघन्य जौग उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणहाणिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—पहले जो ओघ और आदेशसे खुलासा किया है और स्वामित्व बतलाया है उसे देखकर यहाँ अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७७ नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छ वृद्धियों, छ हानियों और अवस्थिति नियमसे होती हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । आदेशसे नारकियोंमें अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थिति नियमसे होती हैं । शेष वृद्धियों और हानियाँ भजनीय हैं । उनके भग १७७१४७ इतने कहने चाहिए । इसीप्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सभी पद भजनीय हैं । यहाँ उनके भग १५९४३२२ होते हैं । आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके

अस्थि । अर्णस्तुणहाणि० भयणिञ्जा । सियो एदे च अर्णस्तुणहाणिविहसियो च । सिया एदे च अर्णस्तुणहाणिविहसिया च । पुवमगे पविस्वत्ते तिपिया मंगा । एव नाणिदूण वेत्थं चाव अणाहारि सि ।

एवं जाजामीवहि मंगविचयापुगमो समथा ।

बेवोमि अवस्थिति नियमसे होती है । अनन्तगुणहानि मज्जनीय है । कदाचित् अनेक जीव अवस्थित-
बाले और एक जीव अनन्तगुणहानि विमच्छिवाला हावा है । कदाचित् अनेक जीव अवस्थित-
बाले और अनेक जीव अनन्तगुणहानिविमच्छिवाले हाते हैं । इसप्रकार इन वा मागोंमें भुवमङ्गके
मिलानेसे तीन मङ्ग हाते हैं । इसप्रकार आमकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आपसे सब बृद्धि, सब हानि और अवस्थिविमच्छिवाले नाना जीव हैं ।
इसलिए वहाँ कोई पद मज्जनीय नहीं कहा है । इसी प्रकार आदेशसे सामान्य विषयोंमें ६ वृद्धि
बाले, ६ हानिबाले और अवस्थानबाले जीव नियमसे पाये जाते हैं । नायकियोंमें अनन्तगुण-
वृद्धिबाले और अवस्थानबाले जीव वा नियमसे रखते हैं, शय पदबाले जीव कदाचित् पाये जाते
हैं और कदाचित् नहीं पाये जात । इनके मंग १००१४० हाते हैं वा इस प्रकार हैं—यहाँ पर
भुवपद एक है और अभुवपद ग्यारह हैं, क्योंकि पँच बद्धिबाले और द्वाद्व हानिबाले जीव
विकल्पसे पाये जाते हैं । इन ग्यारह अभुवपदोंके विकल्प निकालनेके लिये ११ १ १० ८ ७
१ ० ३ ४ ५

१ ५ ४ ३ २ १, इस प्रकार स्थापन करके नीचे स्थित १ अंक से ऊपर स्थित ११ अंकोंमें
१ ७ ८ ९ १ ११ इस प्रकार स्थापन करके नीचे स्थित १ अंक से ऊपर स्थित ११ अंकोंमें
माग देने पर एक संयोगी ग्यारह प्रस्तार रक्षाकार्य आती है । इसी प्रकार ऊपरके ग्यारह और
दस अंकों परस्परमें गुणित करनेसे वा अष्ट आधे वसमें नीचेके एक और वा अष्टोंके
गुणनफलसे माग देने पर वा संयोगी प्रस्तार रक्षाकार्य आती है । इसी प्रकार करते जाने पर
प्रस्तार रक्षाकार्योंका प्रमाण क्रमसे ११, ५५, १६५, ३३ ४६० ४६२, ३३ १६५, ५५, ११
१ हाता है । इनमें एक संयोगी विकल्पाका २ से गुणा करना चाहिये, क्योंकि एक संयोगी—
कदाचित् अगुण हानि वा बद्धिबाला एक जीव पाया जाता है और कदाचित् अनेक जीव
पाये जाते हैं—वे वा ही मंग हाते हैं । वा संयोगी प्रस्तार विकल्पोका ४ से गुणा करना चाहिये,
क्योंकि आगे आगे गुणकारका प्रमाण दुगुना दुगुना होता जाता है । अतः पूर्वोक्त प्रस्तार
विकल्पोका २ ४ ८, १६ ३२ ६४ १२८, २५६ ५१२ १ २४ २ ४८ गुणकार्य हाते हैं । अपन
अपने गुणसे अपने अपने गुणकारको गुणा करके जोड़ वेमे पर सब मंगोंका प्रमाण १००१४६
होता है । इसमें एक भुवमंगके जाड़ देनेसे कुल मंगोंकी संख्या १००१४० हाती है । मनुष्य
अपयार्थमें वेरु ही पद विकल्पसे हाते हैं अतः ११, १० ११ १ १० ८ ७, १ ५, ४ ३,
१ ० ३, ४ ५ ६ ७ ८ ९, १, ११

इस प्रकार संघट्टि स्थापित करके ऊपर लिखे क्रमानुसार प्रस्तार रक्षाकार्योंका वलन
करके और फिर उन्हें ० ४ आदि दुगुने दुगुने गुणकार्योंसे गुणा करके सबको जोड़ देने पर
१५५४३२२ मंग होते हैं । आन्त स्वर्गसे लेकर सर्वावस्थिद्विष तक अवस्थितबाले जीव नियमसे
हाते हैं और अनन्तगुणहानिबाले जीव विकल्पसे हाते हैं अतः २ अभुव मंग और एक भुव मंग
इन लख कुल तीन मंग हाते हैं ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अयेष्टा मङ्गविचयापुगम समाप्त हुआ ।

१ वा नदी विषया जलिन विद्या इति वन्द ।

§ १७८. भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मोह० पंचवट्टि-छहाणिविहत्तिया सव्वजीवाण केवट्टियो भागो ? असंखे० भागो । अणतगुणवट्टि-विहत्ति० सखे० भागो । अवट्टि० संखेज्जा भागा । एव सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सारो त्ति । मणुस्सपज्जत्त-मणुस्सिणिसु छवट्टि-छहाणिविहत्ति० सव्वजीवाण केव० ? सखे० भागो । अवट्टि० सखेज्जा भागा । आणदादि जाव अवराइदं ति अणंतगुणहाणि० सव्वजी० केव० असंखे० भागो । अवट्टि० असखेज्जा भागा । सव्वट्टे अणतगुणहाणि० सव्वजी० संखे० भागो । अवट्टि० सखेज्जा भागा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

§ १७९. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० छवट्टि-छहाणि-अवट्टिदविहत्तिया दव्वपमाणेण केवट्टिया ? अणंता । एव तिरिक्खोघ । आदेसेण णेरइएसु सव्वपदा असखेज्जा । एव सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुस्सअपज्ज०-देव-भवणादि० जाव सहस्सारो त्ति । मणुसपज्ज०-मणुस्सिणीसु सव्वपदा संखेज्जा । आणदादि जाव अवराइदं ति दोपदा अमंखेज्जा । सव्वट्टे टोपदा संखेज्जा ।

§ १७८ भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकर्मकी पाँच वृद्धि और छह हानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवें भाग हैं । अनन्तगुणवृद्धिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके सख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके सख्यात बहुभाग हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, और भवनवासीसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्त और मनुष्यनियमोंमें छह वृद्धि और छह हानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? सख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके सख्यात बहुभागप्रमाण हैं । आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अनन्तगुणाहानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यातवें भाग है । अवस्थित-विभक्तिवाले असख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तगुणाहानिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके सख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले सख्यात बहुभागप्रमाण हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७९ परिमाणानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव द्रव्य प्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । आदेशसे नारकियोंमें सब विभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियमोंमें सब विभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । आनत स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें अनन्तगुणाहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यात हैं ।

एवं जाणित्वाणु गेदम्बं नाव अणाहारि ति ।

एवं परिमाणानुगमो समधो ।

§ १८० स्वेत्तानुगमेण दुषिहो गिरेसो—ओपेण आदेसण य । ओपेण मोह० सम्बपदनिहचिया केवडि० स्तेत्ते ? सव्वसागे । एवं तिरिक्त्वोर्षं । आदसण णरइयादि जाव सम्बडसिद्धि ति मोहणीयस्त अप्यप्पणो सम्बपदा केव० ? सोमस्त असंस्वे० मागे । एवं जाणित्वाणु गेदम्बं नाव अणाहारि ति ।

एवं स्वेत्तानुगमो समधो ।

§ १८१ पोसणाणु० दुषिहा गिरेसो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण मोह० सम्बपदानं स्वेत्तमंगो । एवं तिरिक्त्वोर्षं । आदेसेण णेरइपसु सम्बपदेहि केवडियं स्वेत्तं पोसिर्ष ? सोग० असंस्वे० मागो अच्चारसमागा वा देसणा । पडमपुइदि० स्वेत्तमंगा । विदिपादि जाव सत्तपि ति सगपोसणं कापम्बं । सम्बर्षं विदियतिरिक्त्व-सम्बपणुस्ताणं सम्बपदविहचिपदि केव० स्वे० पो० ? सोग० असंस्वे० मागो सव्वभोगा वा । देवसु सम्बपदवि० केव० स्वेत्त पोसिर्ष ? सोग असंस्वे मागो अट्ठ-णवभोरसमागा वा देसणा । एवं सम्बदेषाणं । णवरि सगपासणं जाणित्वाणु गेयम्बं । एवं णदम्बं नाव

सर्वांसिद्धिमें अनन्तरुप्यहानि और अचस्वितविमत्त्वित्वाले जीव संख्यात हैं । इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त स जाना चाहिये ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८० क्षेत्रानुगमसे निर्देश वा प्रकारका है—ओप और आदेश । आपसे मोहनीयकी सब पद विमत्त्वित्वाले जीव कितने क्षेत्रमें हैं ? सर्वसाकमें हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंके जानना चाहिये । आदेशसे नारकीसे लेकर सर्वांसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकी अपनी अपनी सब विमत्त्वित्वाले जीव कितने क्षेत्रमें हैं ? साकके असंख्यातबे भाग क्षेत्रमें हैं । इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त से जाना चाहिये ।

इसप्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८१ स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारका है—आप और आदेश । आपसे मोहनीयकी सब पद विमत्त्वित्वाले स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । आदेशसे नारकीसे लेकर सर्वांसिद्धि पर्यन्त मोहनीयकी अपने अपने सब पद विमत्त्वित्वाले कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातबे भागका और चौदह भागमें से कुछ कम अथवा भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पृथ्वी पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसरीसं लोक सारकी पृथिवी पर्यन्त अपने अपने स्पर्शनके समान रूप करना चाहिये । सब पद विमत्त्वित्वाले और सब अनुप्योंमें सब पद विमत्त्वित्वाले कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातबे भागका और सबसाकका स्पर्शन किया है । इमें सब पद विमत्त्वित्वाले कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातबे भागका और चौदह भागमें से कुछ कम अथवा और कुछ कम भी भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब क्षेत्रोंमें जानना चाहिये । किन्तु अपने अपने स्पर्शन का

अणाहारए त्ति ।

एवं पोसणाणुगमो समतो ।

§ १८२. कालाणु० दुविहो णिहं सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० सन्वपदवि० केवचिरं कालादो होंति ? सन्वद्धा । एव तिरिक्खोघं । आदेसेण णेरउण्णसु अणतगुणवड्ढि०--अवट्ठि०विहत्ति० केव० ? सन्वद्धा । सेसपदवि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं सन्वणेरइय-सन्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस्स-देव-भवणादि जात्र सहस्सारो त्ति । णवरि मणुस्सेसु अणंतगुणहाणिविहत्तियाणं ज० एगस०, उक्क० अ तोमु० । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० पचवड्ढि० जह० एगस०, उक्क० आवलि०असंखे०-

जानकर उसे घटित करना चाहिये । इस प्रकार अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघ से छहों हानि, छहों वृद्धि और अवस्थानवाले जीवोंने सर्वलोकका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार तिर्यञ्चोमे जानना चाहिए । सामान्य नारकियोमे सब विभक्तिवाले जीवोंने सभय पदोंके द्वारा वर्तमान कालमें लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है और अतीत कालमे मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है और सभय शेष पदोंके द्वारा लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है । पहले नरकके नारकियोने लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है तथा दूसरीसे लेकर मातर्वी पृथिवी तकके नारकियोने वर्तमान कालमे लोकके असख्यातवें भागका और अतीत कालमें मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा क्रमसे कुछ कम एक वटे चौदह, कुछ कम दो वटे चौदह, कुछ कम तीन वटे चौदह, कुछ कम चार वटे चौदह, कुछ कम पाँच वटे चौदह और कुछ कम छह वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सभय शेष पदोंके द्वारा लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है । सब मन्वेन्द्रिय तिर्यञ्च और सब मनुष्योंमें सब विभक्तिवाले जीवोंने अतीत कालमें मारणान्तिक और उपपादके द्वारा सर्वलोकका स्पर्शन किया है और सभय शेष पदोंके द्वारा अतीत कालमे तथा वर्तमान कालमे लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है । देवोंमे सब विभक्तिवाले जीवोंने वर्तमानमें लोकके असख्यातवें भागका तथा अतीत कालमे विहारवत्त्वधान, वेदना, वपाय और विक्रिया पदके द्वारा कुछ कम आठ वटे चौदह और मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ वटे चौदह राजु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इस प्रकार इस स्पर्शनको जानकर यहाँ स्पर्शन यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए । तथा अन्य मार्गणाओंमे भी वह जान लेना चाहिए ।

इस प्रकार स्पर्शानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८२ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आवेश । ओघसे मोहनीयकी सब पद विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । आवेशसे नारकियोंमें अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वदा है । शेष पद विभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उक्कष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, सामान्य देव और भवनवासीसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमे जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्योंमें अनन्तगुणहानिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उक्कष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें पाचों वृद्धि विभक्तिवालोंका जघन्य

मागो । पंचहापि० म० एगस०, उक्क० संस्लेखा समया । अर्णत्तुणवडि०—अवडि०
सम्बद्धा । अर्णत्तुणहापि० ज० एगस०, उक्क० अ तासुहुत्त । मणुसअपत्त० पारय
मंगो । अवडि० अर्णत्तुणवडि०—अवडि० न० एगस०, उक्क० पस्सिदो० असंस्ले० मागो ।
माणदादि० मान अवरदादो ति अर्णत्तुणहापि० न० एगस०, उक्क० आबत्ति० असंस्ले०
मागो । अवडि० सम्बद्धा । सम्बद्धे अर्णत्तुणहापि० ज० एगस०, उक्क० संस्लेखा
समया । अवडि० सम्बद्धा । एव नापिदूण भेद्वर्णं नाप अणाहारए ति ।

एवं कास्त्रयुगमो समत्तो ।

§ १८३ अंतराणु बुविहो विवेसो—ओपेण आदेसेण य । ओपे० मोह०
तेरसपदाणं गत्वि अंतरं । एवं तिरिक्खापं । आदेसेण गेरइएसु पंचवडि०—पंचहापी०
ज० एगसमओ, उक्क० असंस्लेखा सागा । अर्णत्तुणवडि०—अवडि० गत्वि अंतरं ।
अर्णत्तुणहापि० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । एवं सम्बपेरइय-सम्बपिदिदियतिरिक्ख
मणुस्सतिप—वेध—मपणादि० नाव सइस्सरो ति । मणुसअपत्त० मणुस्सोपं । जवरि
अर्णत्तुणवडि०—अवडि० ज० एगस०, उक्क० पस्सिदा० असंस्ले० मागो । माणदादि [नाप]

काल एक समय है और उक्कट काल आकलीके असंस्वातर्षे मागप्रमाण है । पांच हानिबिमिक्ति-
बाला का अपम्य काल एक समय है और उक्कट काल संस्वात समय है । अनन्तगुणवडि और
अवस्थितबिमिक्तिबालोंका काल सवदा है । अनन्तगुणहानिबिमिक्तिबालोंका अपम्य काल एक समय
है और उक्कट काल अन्तमुहूर्त है । मनुष्य अपर्वात्रयमें नारकियोंके समान मंग जानना चाहिए ।
इतनी विरोधता है कि अनन्तगुणवडि और अवस्थितबिमिक्तिबालोंका अपम्य काल एक समय
है और उक्कट काल पत्यके असंस्वातर्षे मागप्रमाण है । आन्त स्त्रांसे लेकर अपरप्रमित
बिमान तकके बीचमें अनन्तगुणहानिबिमिक्तिबालोंका अपम्य काल एक समय है और उक्कट काल
आकलीके असंस्वातर्षे मागप्रमाण है । अवस्थितबिमिक्तिबालोंका काल सवदा है । सवार्थसिद्धिमें
अनन्तगुणहानिबिमिक्तिबालोंका अपम्य काल एक समय है और उक्कट काल संस्वात समय
है । अवस्थितबिमिक्तिबालोंका काल सवदा है । इस प्रकार जानकर अनाहारी फ्यन्त क्षं
जाना चाहिए ।

इस प्रकार नाना जीवा की अपचा कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८५ अन्तगुणमकी अपचा निर्देशा वा प्रकारका है—आप और आवरा । आपसे
माह्नीयके वेरह पक्षोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोम जानना चाहिए ।
आवेशसे मारकियोंमें पंच वृद्धि और पंच हानियोंका अपम्य अन्तरकाल एक समय है और
उक्कट अन्तरकाल असंस्वात शोकप्रमाण है । अनन्तगुणवडि और अवस्थितबिमिक्तिका अन्तर
काल नहीं है । अनन्तगुणहानिबिमिक्तिका अपम्य अन्तर एक समय है और उक्कट अन्तर अन्त
मुहूर्त है । इसी प्रकार सब नारकी सब पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च सामान्य मनुष्य, मनुष्यपयात्र, मणुष्यिनी
सामान्य वेध और मन्वन्वासीसे लेकर म्हात्वार रवर्ग तकके देवों में जानना चाहिए । मनुष्य
अपर्वात्रयमें सामान्य मनुष्योंके समान मंग है । इतनी विरोधता है कि अनन्तगुणवडिबिमिक्ति और
अवस्थितबिमिक्तिका अपम्य अन्तर एक समय है और उक्कट अन्तर पत्यके असंस्वातर्षे माग-

णवगेवज्जा त्ति अणंतगुणहाणी० ज० एगस०, उक्क० सत्त राट्ठिदियाणि । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अणतगुणहाणी० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पत्तिदो० सखे०भागो । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवं जाणिदूण णेद्वं जाव अणाहारि त्ति ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ १८४. भाव० सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

§ १८५. अप्पावहुआणु० दुविहो णिदोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्वत्थोवा मोह० अणतभागहाणिविहत्तिया जीवा । असंखेज्जभागहाणि० जीवा असंखे०गुणा । सखेज्जभागहाणि० जीवा संखे०गुणा । सखे०गुणहाणि० जीवा सखे०गुणा । असंखे०गुणहाणि० जीवा असंखे०गुणा । अणतभागवट्ठि० जीवा असखे०गुणा० । असंखे०भागवट्ठि० जीवा असंखे०गुणा । सखे०भागवट्ठि० जीवा सखे०गुणा । सखेज्जगुणवट्ठि० जीवा सखे०गुणा । असखे०गुणवट्ठि०जीवा असंखे०गुणा । अणंतगुणहाणिवि० जीवा असखे०गुणा । अणंतगुणवट्ठिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि०

प्रमाण है । आनतसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवो मे अनन्तगुणहानिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कट्ट अन्तर सात रातदिन है । अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तगुणहानिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उक्कट्ट अन्तर अनुदिशासे अपराजित तकके देवोंमें वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पत्यके सख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—नाना जीवोकी अपेक्षा काल वतलाते हुए जिन विभक्तिवालोका काल सर्वदा वतलाया है उनमे अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि वे सदा पाये जाते हैं, शेषमे अन्तर है । अपर्याप्त मनुष्योमे अनन्तगुणवट्ठि और अवस्थानका जघन्य और उक्कट्ट अन्तर उतना ही वतलाया है जितना मनुष्य अपर्याप्तक मार्गणाका जघन्य और उक्कट्ट अन्तर कहा है । इसी प्रकार अन्यमें भी समझ लेना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८४ भावानुगम की अपेक्षा सर्वत्र औदायिक भाव होता है ।

§ १८५ अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघ और आदेश । आघसे मोहनीयकी अनन्तभागहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । असख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । सख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । सख्यातगुणहानिविभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । असख्यातगुणहानिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । अनन्तभागवट्ठिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । असख्यातभागवट्ठिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । सख्यातभागवट्ठिविभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । असख्यातगुणवट्ठिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । अनन्तगुणहानिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । अनन्तगुणवट्ठिविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । अवस्थितविभक्तिवाले

जीवा संस्वे०गुणा । एवं सम्बन्धोरुय-सम्बन्धिरिबल-मनुस्म-मनुस्समपञ्ज०-देव भाव सहस्सारो चि । मनुस्सपञ्ज०-मनुस्सिग्रीव एव च । एवरि जम्हि असस्वेज्जगुणं तम्हि संस्वेज्जगुणं कायव्वं । भाणदादि भाव मबराइदो चि सम्बन्धोवा अर्पेत्तगुणाहाणिचि० जीवा । मबद्धिवि० जीवा असस्वे०गुणा । एवं सम्बन्धे । एवरि संस्वेज्जगुणं कायव्वं । एवं भाणिवृण्णेयव्वं भाव अणाहारि चि ।

एवं बह्विह्वीय समप्ता ।

१२६ ठाणपस्मणाए तिण्णि अणियोगाहाराणि—पस्मणा पमाणमप्याबहुधं चदि । तत्प पस्मणा बुधदे । तं महा—एत्य अष्टममहाणाणि वंषसमुप्यसिय-इदसमुप्यसिय इदइदसमुप्यसियअष्टममहाणाणमेदेण तिनिहाणि हंति । वेसि तिनिहारणं पि अष्टममहाणाणं न् स्मत्त्वणपहुप्यायणं सा पस्मणा नाम । तत्प इदसमुप्यसियं काट्ठणच्छिद्रसुमुमणिगोद महन्णाष्टममहाणसंतहाणसमाणबन्धाणमादि काट्ठण भाव सण्णिपंचिदियपञ्जसस्युक्कस्तापु मागबंधाणे चि एतान् पदाणि असस्वे०सोममेत्तहाणाणि वंषसमुप्यसियहाणाणि चि अर्पेत्ति, वंषेण समुप्यणवादा । अष्टममहाणसंतहाणपादेण समुप्यणमष्टममहाणसंतहाणं तं पि एत्य वंषहाणमिदि पचव्वं, वंषहाणसमाणवादो । पुणो पदेसिमसस्वे०सोममेत्त हाणाणं मक्के अर्णत्तगुणाबद्धि-अर्णत्तगुणाहाणिअट्ट कुम्भंकरणं पिचालेत्त असस्वे०सोम-

जीव संस्वात्तगुणे हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य मनुष्य अपर्मात्त सामान्य देव और सहस्रार स्वर्ग तकके वर्गमें मानना चाहिये । मनुष्य प्मात्त और मनुष्यानिर्वाण इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विरोधता है कि जिस विमर्शमें असंस्वात्तगुणा कहा है उसमें संस्वात्तगुणा कर लेना चाहिये । जानवसे लेकर अपराहित विमान तकके वर्गमें अनन्त गुणह्वनि विमर्शितले जीव सबसे बाह हैं । अर्थात्पिचाले जीव असंस्वात्तगुणे हैं । इसी प्रकार सर्वाधिष्ठितमें जानना चाहिये । इतनी विरोधता है कि उसमें संस्वात्तगुणा कर लेना चाहिये । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ल जाना चाहिये ।

इस प्रकार बह्विह्वीय समप्ता हुरें ।

१२७ स्थान प्ररूपहामें तीन अनुपातकार हैं—प्ररूपका प्रमाण और अस्य बहुत्व । उनमेंसे प्ररूपकाको करते हैं । वह इस प्रकार है—इस प्रकारमें बन्धसमुत्पत्तिक, इदसमुत्पत्तिक और इदइदसमुत्पत्तिकके मेरस अनुपातस्थान तीन प्रकारके होते हैं । इन तीनों ही प्रकारके अनुपातस्थानोंका जा लक्षण कहना सो प्ररूपका है । उनमेंसे इदसमुत्पत्तिकसत्त्वको करके स्थित हुए सूक्ष्म निगादिया जीवके अचन्द अनुपातस्थान स्थानके समान बन्धस्थानसे लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके सर्वात्तुष्ट अनुपातस्थान पर्यन्त जो असंस्वात्त लोकप्रमाण पदस्थान हैं उन्हें बन्धसमुत्पत्तिकत्वाम करते हैं, क्योंकि वे स्थान बन्ध से उत्पन्न होते हैं । अनुपातस्थानके पाठसे या अनुपात-सत्त्वस्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें भी वहां बन्धस्थान ही मानना चाहिये क्योंकि वे बन्धस्थानके समान हैं । धारात यह है कि सूक्ष्म निगादिया जीवसे लेकर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव पर्यन्त इस प्रकार की हानि-वृद्धियों का शिष्य हुए या अनुपातस्थान होते हैं वे बन्धसमुत्पत्तिक-

मेतद्दृष्टाणाणि हृदसमुत्पत्तियसंतकम्मदृष्टाणाणि भण्णंति । वंधट्टाणघाटेण वंधट्टाणाणं विचालेसु ऋच्चंतरभावेण उप्पणत्ताडो । पुणो एदेसिमसग्गे लो गमेत्ताणं हृदसमुत्पत्तिय-संतकम्मट्टाणाणमणतगुणवट्टि-ट्टाणिअट्ट कुव्वंकाणं विचालेसु असंखे लो गमेत्तद्दृष्टाणाणि हृदहृदसमुत्पत्तियसंतकम्मट्टाणाणि वुच्चति, घाटेणुप्पणअणुभागट्टाणाणि वंधाणुभाग-ट्टाणेहितो विसरिसाणि घादिय वंधसमुत्पत्तिय-हृदसमुत्पत्तियअणुभागट्टाणेहितो विसरिस-भावेण उप्पाइत्ताडो । कथमेक्कादो जीवट्टवाटो अणेयाणमणुभागट्टाणकज्जाण समु-व्वधो ? ण, अणुभागवध-घाट-घाटघाटहेदुपरिणामसंजोएण णाणाकज्जाणमुत्पत्तीए विरोहाभावाटो । एदेसि तिचिहाणमवि अणुभागट्टाणाणं जहा वेयणभावविहाणे परूवणा कटा तहा एत्थ वि कायव्वा ।

एव परूवणा समत्ता ।

स्थान कहलाते हैं, क्योंकि जो स्थान वन्धसे उत्पन्न हो वह वन्धममुत्पत्तिक है । किन्तु पहले वंधे हुए कुछ अनुभागस्थानोंमें रसघात आदि होनेसे भी नवीनता आ जाती है किन्तु वे वन्धस्थानके समान होते हैं, अतः उन स्थानोंको भी वन्धस्थानमें ही सम्मिलित किया जाता है । सारांश यह है कि वधनेवाले स्थानों को ही वन्धसमुत्पत्तिकस्थान नहीं कहते किन्तु पूर्ववद्ध अनुभागस्थानोंमें भी रसघात होनेसे परिवर्तन होकर समानता रहती है तो वे स्थान भी वन्ध स्थान ही कहे जाते हैं । इन असख्यात लोकप्रमाण पदस्थानोंके मध्यमें अष्टाक और उर्वक रूप जो अनन्तगुणद्वियाँ और अनन्तगुणहानियाँ हैं उनके मध्यमें जो असख्यातलोकप्रमाण पदस्थान हैं उन्हें हृतसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थान कहते हैं, क्योंकि वन्धस्थान का घात होनेसे वन्धस्थानोंके बीचमें ये जात्यन्तररूपसे उत्पन्न होते हैं । इन असख्यात लोकप्रमाण हृतसमुत्पत्तिक सत्कर्म-स्थानोंके, जो कि अष्टाक और उर्वकरूप अनन्तगुणद्वि और अनन्तगुणहानि रूप हैं, बीचमें जा असख्यात लोकप्रमाण पदस्थान है उह हृतहृतसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थान कहते हैं । वन्धस्थानोंसे विलक्षण जो अनुभागस्थान रसघातसे उत्पन्न हुए हैं उनका घात करके उत्पन्न हुए ये स्थान वन्धसमुत्पत्तिक और हृतसमुत्पत्तिक अनुभागस्थानोंसे विलक्षणरूपसे ही वे उत्पन्न किये जाते हैं ।

शका—एक जीवद्रव्यसे अनेक अनुभागस्थानरूप कार्यों की उत्पत्ति कैसे होती है ?

समाधान—नहीं क्योंकि अनुभागवन्ध, अनुभागका घात और उस घातितके भी पुनः घातके कारण भूत परिणामोंके सयोगसे एक जीवद्रव्यसे नाना कार्यों की उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

इन तीनों ही प्रकारके अनुभागस्थानोंका जैसा कथन वेदनाभावविधानमें किया है, वैसा ग्रहा भी कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—स्थान प्ररूपणामे तीन अनुयोगोंके द्वारा अनुभागस्थानका कथन किया है । अनुभागस्थान तीन हैं—वन्धसमुत्पत्तिक, हृतसमुत्पत्तिक और हृतहृतसमुत्पत्तिक । जो अनुभागस्थान वन्धसे होते हैं उन्हें वन्धसमुत्पत्तिक कहते हैं । सूक्ष्म निगोदिया जीवके जो जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है उसके समान जो वन्धस्थान होता है वह जघन्य वन्धसमुत्पत्तिक

§ १८७ संपदि पमाणं वुषदे । तं महा—संपसमुत्पत्तिय इवसमुत्पत्तिय-इदइद
समुत्पत्तियद्वाणानं तिष्ठं पि पमाणमसंस्तज्जा लोगा । कुदा ? तकरणपरिणामाण
मसत्वेच्चनोगपमाणत्वात्ने ।

एवं पमाणाजुगमा समत्ता ।

⊗ अप्यायद्वुगात्तुगामं धत्तइत्सानो ।

§ १८८ तं महा—सम्पत्योनाणि मोडवपसमुत्पत्तियद्वाणाणि । इदसमुत्पत्तिय
संतकम्मद्वाणाणि असंस्त० गुणाणि । कुदा ? असंस्तज्जलोगमेधवसमुत्पत्तियद्वाणाण
मद कुम्पकार्णं पिष्वात्तेसु पुप पुप असंस्त० लोगमेतइदसमुत्पत्तियसंतकम्मद्वाणाणमुत्प

स्थान कहलाता है और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके जो सर्वोत्कृष्ट अनुभागवत्त्वस्थान होता है वह
इत्कृष्ट बन्धसमुत्पत्तिक स्थान होता है । जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट पर्यन्त इन वचसमुत्पत्तिक स्थानों
की संख्या अर्धस्वात साकप्रमाण है । सप्तमों स्थित अनुभागका घात कर देनेसे या अनुभाग-
स्थान हावे हैं उनमेंसे भी कुछ स्थान बन्धस्थान ही कहे जाते हैं, क्योंकि इन स्थानोंमें या अनु-
भाग पाया जाता है वह अनुभाग बन्धमान अनुभागस्थानके समान हाता है । किन्तु या अनुभाग
स्थान पावसे ही उत्पन्न हावे हैं—बन्धसे नहीं होते और जिनका अनुभाग बन्धसमुत्पत्तिकस्थानों
से मिल होता है उन्हें इतसमुत्पत्तिक कहेते हैं । ये इतसमुत्पत्तिकस्थान अनन्तगुणरुद्धि और
अनन्तगुणहानिरूप बन्धसमुत्पत्तिक अर्धस्वात साकप्रमाण पदस्थानोंमें उच्चक और अष्टांकके
बीचमें उत्पन्न हावे हैं और इनका प्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंसे अर्धस्वातगुणा हाकर भी
अर्धस्वात साकप्रमाण ही है । अनन्तगुणरुद्धि और अनन्तगुणहानिरूप इन अर्धस्वात साक-
प्रमाण इतसमुत्पत्तिक स्थानोंमें उच्चक और अष्टांकके बीचमें अनुभागका पुनः पुन घात करनेसे
या अनुभागस्थान हावे हैं उन्हें इतइतसमुत्पत्तिक कहेते हैं । पूर्ववत् इनका प्रमाण इतसमुत्पत्तिक
स्थानोंसे अर्धस्वातगुणा हाकर भी अर्धस्वात साकप्रमाण ही है । पदलक्षणगमके बन्धनाखण्डमें
बन्धनाभाषविधान नामका एक प्रकरण है उसमें इन अनुभागस्थानाका विस्तारसे वर्णन किया है ।
तथा इस पन्थक इस अनुभागविमर्षि नामक प्रकरणके अन्तमें भी यही वर्णन अचररा किया
गया है, अतः इसका विरूप स्पष्टीकरण यहाँसे जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार प्रकृत्या समाप्त हुए ।

§ १८९ अथ प्रमाण्यो कहेते हैं । वह इस प्रकार है—बन्धसमुत्पत्तिक, इतसमुत्पत्तिक
और इतइतसमुत्पत्तिक इन तीनों ही स्थानोंका प्रमाण अर्धस्वात साक है, क्योंकि इनके
कारणमूल परिणाम अर्धस्वात साकप्रमाण हैं ।

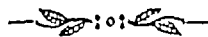
इस प्रकार प्रमाणानुगम समाप्त हुआ ।

⊗ अथ अप्यायद्वुत्सानुगामको कहेंगे ।

§ १८८ वह इस प्रकार है—साहनीयक बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबस धावे हैं । इनस
इतसमुत्पत्तिकसकर्मस्थान अर्धस्वातगुण हैं क्योंकि अष्टांक और उच्चकल्प अर्धस्वात साक
प्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक पदस्थानोंके बीचमें पूर्वकृ पूर्वकृ अर्धस्वात साकप्रमाण इतसमुत्पत्तिक-
सकर्मस्थानों की उत्पत्ति हाती है ।

तीदो । को गुणगारो ? असंखेज्जा लोगा । हदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्टाणाणि असंखेज्ज-
गुणाणि । कुदो ? असंखेज्जलोगमेत्तहदसमुप्पत्तियल्लट्टाणाणमट्ठ'कुच्चंकाणं विञ्चालेसु पुथ
पुथ असंखेज्जलोगमेत्तहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्टाणाणमुप्पत्तीदो । को गुणगारो ?
असंखेज्जा लोगा । एवं तदिय-चउत्थ-पंचमादिवारसमुप्पण्हदहदसमुप्पत्तियसंतकम्म-
ट्टाणाणं पि अणंतरहेट्ठिमहदहदसमुप्पत्तियसंतकम्मट्टाणेहिंतो अणंतरउवरिमाणमसंखेज्ज-
गुणत्तं वत्तच्चं ।

एवं मूलपयडिअणुभागविहत्ती समत्ता ।



शङ्का—यहाँ पर गुणकारका प्रमाण कितना है ?

समाधान—असख्यात लोक । अर्थात् बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंसे हतसमुत्पत्तिकस्थान
असख्यातलोकगुणे हैं ।

इनसे हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थान असख्यातगुणे हैं, क्योंकि अष्टाकसे लेकर उर्वकरूप
असख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिक षट्स्थानोंके बीचमें पृथक् पृथक् असख्यात लोक-
प्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति होती है । यहाँ पर भी गुणकार असख्यात
लोक है । इस प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें आदि वार उत्पन्न हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्मस्थानोंमें
भी अनन्तर पूर्व हतहतसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थानोंसे अनन्तर उत्तरवर्ती हतहतसमुत्पत्तिकसत्कर्म
स्थान असख्यातगुणे कहने चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मके बन्धसमुत्पत्तिक स्थान सबसे थोड़े हैं । उनसे हतसमुत्पत्तिक
अनुभागसत्कर्मस्थान असख्यातगुणे हैं, क्योंकि एक एक बन्धस्थानके मध्यमें असख्यात लोकप्रमाण
घातस्थान उत्पन्न होते हैं, अतः जब बन्धस्थान असख्यात लोकप्रमाण है और एक एक बन्धसमु-
त्पत्तिकस्थान सम्बन्धी षट्स्थानके अष्टाक और उर्वकके बीचमें असख्यात लोकप्रमाण घातस्थान
होते हैं तो बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंसे घातस्थान या हतसमुत्पत्तिकस्थान असख्यातगुणे सिद्ध होते
हैं । इसीप्रकार असख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी षट्स्थानोंके अष्टाक और
उर्वकोंके अन्तरालोंमेंसे प्रत्येक अन्तरालमें असख्यात लोकप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थान होते
हैं, अतः हतसमुत्पत्तिकस्थानसे हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका प्रमाण असख्यात लोकगुणा होता है,
इसलिये वे सबसे अधिक होते हैं ।

इस प्रकार मूलप्रकृतिअनुभागविभक्ति समाप्त हुई ।



उत्तरपयडिअणुभागविहती

⊗ उत्तरपयडिअणुभागविहति बत्तइस्सामो ।

§ १८६ मोहणीयमूलपयडीए अययबभूदमोहपयडीअणुत्तरपयडि ति बवएसो । तसिअुत्तरपयडीअणुभागस्त पिहति भदं बत्तइस्सामो ति अइबसहाइरियपइक्कामुत्तमेदं । संपदि सम्बमोहुत्तरपयडीअणुभागफइयाणं रयप्पाए अणयगयाए उवरिमअहियारा ण णप्पत्ति ति अइअण फइयरयणपरुणअइ-मुत्तरसुणं मणदि ।

⊗ पुष्पं गगिक्का इमा परुवणा ।

§ १८७ इमा मणिस्समाणफइयपरुवणा पइम संघ गायन्ना, अणगहा सम्भपादि देसपादिपगहाअ-विहाअ-तिहाअ-अउहाआदिअणुभागदियप्पाणं जाणानणोबायाभाबत्तो ।

⊗ सम्मत्तस्स पइमं देसपादिफइयमादिं कइणुण जाअ अरिमदेसपादि फइय ति एदाअि फइयाणि ।

§ १८८ सम्मत्तस्स जं पइमं फइयं सम्भमइण्णं तं देसपादि ति जाणाअणइ 'पइम देसपादिफइयं' इदि पिहिह । सम्मत्तस्स जं अरिमफइयं सम्भुक्कस्सं उदासमाण हाणं समुण्णयिय दाअमसमाअहाआबद्धिदं तं पि देसपादि ति जाणाअणइ 'अरिम देसपादिफइयं ति' ति मअिदं । पइमदेसपादिफइयमादिं कइणुण जाअ अरिमदेसपादि

उत्तरमहुतिअनुभागविमक्ति

⊗ अअ उत्तरमहुतिअनुभागविमक्तिको कइते हैं ।

§ १८९ मूल माहनीयकमकी अययबभूत मोहअणुवियोकी उत्तरमहुति संज्ञा है । उन उत्तरमहुतियोके अनुभागकी विमक्ति अर्थात् मेरोंको कइते हैं । इस प्रकार यह आचार्य प्रतिशुपमका प्रतिशारूप सूत्र है । अर्थात् इस सूत्रके द्वारा आचार्य ने उत्तरमहुतिके मेरुको कइनेकी प्रतिज्ञा की है । अअ मोहनीयकी मअ उत्तर महुतियोके अनुभागस्पर्शकोकी रचनाके जाने बिना आगेके अधिकार नहीं जाये जा सकते एसा बिचार करके स्पर्शरचनाका कथन करमेके लिये आगेका सूत्र कइते हैं—

⊗ पहले इस मरूपणाको मानना चाहिय ।

§ १९० आगे कही जानेवाली इस स्पर्शमरूपणाको पइल ही जान लेना चाहिए क्योंकि उसके जाने बिना अनुमत्तके संघपाठी देशपाठी णक्कपानिक हिम्बानिक, त्रिम्बानिक, अणुम्बानिक आदि मेरुके जानमेका कोई उपाय नहीं है ।

⊗ सम्मत्तमहुतिके मयय देशपातिस्पर्शसे लेकर अन्तिम देशपातिस्पर्श पर्यन्त ये स्पर्श कइते हैं ।

§ १९१ सम्मत्तमहुतिका सबसे अयय्य जा पठता स्पर्श है वह देशपाती है यह बतलानेके लिये 'मयय देशपातिस्पर्श' ऐसा कहा है । सम्मत्तका सबसे उक्कअ जा अन्तिम स्पर्श है जा कि सताके ममान स्वाअका इक्कअन करके हाठसमान स्वान्नें स्थित है । अर्थात् जा सतारूप न होकर बानरूप है वह भी देशपाती है यह बतलानेके लिये 'अन्तिम देशपातिस्पर्श' ऐसा कहा है । मयय देशपाती स्पर्शसे लेकर अन्तिम देशपाती स्पर्श पर्यन्त ये सब सम्मत्तके

फद्गं ति एदागि सम्मत्तस्स फद्दयाणि होंति ति घेतत्त्वं । लदासमाणजहण्णफद्दयमारिं कादूण जाव देसघादिदारुअसमाणुक्कस्सफद्दयं ति द्विदसम्मत्ताणुभागस्स कुदो देसघादित्तं ? ण, सम्मत्तस्स एगदेसं घादेताणं तदविरोहादो । को भागो सम्मत्तस्सं तेण घाइज्जदि ? थिरत्तं णिक्कक्खत्तं ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादिआदिफद्दयमारिं कादूण दारुअसमाणस्स अणंतभागे णिट्ठिदं ।

§ १६२. सम्मत्तुक्कस्सफद्दयस्स अणंतरउवरिमफद्दयं तं सव्वघादि सम्मत्तुक्कस्सफद्दयादो अणंतगुणं, तप्पाओग्गळ्ळट्ठाणगुणगारेसु पविट्ठेसु उप्पणत्तादो । एदं फद्दयमारिं कादूण जाव दारुसमाणस्स अणंतिमभागो ति एदमिह अंतरे अवट्ठिद सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं । सम्मामिच्छत्तफद्दयाणं कुदो सव्वघादिचं ? णिस्सेससम्मत्तघायणादो । ण च सम्मामिच्छत्ते सम्मत्तस्स गधो वि अत्थि, मिच्छत्तस्पर्धक होते हैं ऐसा अर्थ यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

शंका—लतरूप जघन्य स्पर्धकसे लेकर देशघाती दारुरूप उत्कृष्टस्पर्धक पर्यन्त स्थित सम्यक्त्वका अनुभाग देशघाती कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यक्त्वप्रकृतिका अनुभाग सम्यग्दर्शनके एकदेशको घातता है, अतः उसके देशघाती होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—सम्यक्त्वके कौनसे भागका सम्यक्प्रकृति द्वारा घात होता है ?

समाधान—उसकी स्थिरता और निष्काञ्चताका घात होता है । अर्थात् उसके द्वारा घाते जानेसे सम्यग्दर्शनका मूलसे विनाश तो नहीं होता किन्तु उसमें चल मलादिक दोष आ जाते हैं ।

विशेषार्थ—शक्तिकी अपेक्षासे कर्माके अनुभागस्थानके चार विकल्प किये जाते हैं—लतारूप, दारुरूप, अस्थिररूप और शैलरूप । लताभाग और दारुका अनन्तर्वो भाग देशघाती कहलाता है और दारुका शेष बहुभाग तथा अस्थिर और शैलरूप अनुभाग सर्वघाती कहा जाता है । सम्यक्त्व प्रकृतिके स्पर्धक लता भागसे लेकर दारुके अनन्तर्वो भाग तक होते हैं, क्योंकि यह देशघाती है और इसके देशघाती होनेका सबूत यह है कि यह सम्यक्त्वको नहीं घातती, क्योंकि इसके उदयमें वेदकसम्यक्त्व होता है ।

❀ सम्यग्मिध्यात्वप्रकृतिका अनुभागसत्कर्म प्रथम सर्वघाती स्पर्धकसे लेकर दारुके अनन्तर्वोभाग तक होता है ।

§ १९२ सम्यक्त्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे अनन्तरवर्ती जो आगेका स्पर्धक है वह सर्वघाती है जो कि सम्यक्त्वके उत्कृष्ट स्पर्धकसे अनन्तगुणी शक्तिवाला है क्योंकि उसके योग्य षटस्थान गुणकारोंके होने पर उसकी उत्पत्ति हुई है । अर्थात् अपने पूर्वके स्थानसे यह स्थान अपने योग्य षटस्थानद्विधियोंको लिये हुए है । इस स्पर्धकसे लेकर दारुभागके अनन्तर्वोभाग पर्यन्त इस बीचमें जो स्पर्धक अवस्थित हैं वह सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका अनुभाग सत्कर्म है ।

शङ्का—सम्यग्मिध्यात्वके स्पर्धक सर्वघाती कैसे हैं ?

सम्पत्तेर्हितो भर्षतरमावजुष्यणे सम्मामिच्छते सम्मत्त-मिच्छताणमत्यतविरोहादो ।

⊗ मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जम्मि सम्मामिच्छत्तस्स अणुभाग संतकम्मं षिद्धिदिषं तपो अर्षतरफलयमाहत्ता उच्चरि अप्पडिसिद्ध ।

। १६३ जम्मि च सं दाहमसमाणस्स अजत्तिमागे सम्मामिच्छत्तस्स अणुभाग संतकम्मं णिद्धिं तत्थ सम्मामिच्छत्तस्स सम्बपादिचत्तस्स फलयं होदि । त्तो अर्षतर सुधरिमिच्छत्तनहण्णफलयं सम्मामिच्छत्तुक्त्तस्स फरयादो अर्षतगुणं समाहत्ता तमारिं क्खत्त उच्चरि अप्पडिसिद्ध मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं हादि । सम्मामिच्छत्तस्स चत्तस्स फरयादो अर्षतगुणमिच्छत्तनहण्णफलयमारिं क्खत्त उच्चरि पडिसैहेण विणा दाहम-समाणाणुभागस्स अर्षते मागे अट्टिसमाण-सैलसमाणद्वाणाम् सपलफरयाणि च गत्तुण मिच्छत्ताणुभागसंतकम्ममपडिदिं ति भण्णिं होदि ।

समाधान—क्योंकि वे सम्पूर्ण सम्बन्धका प्राप्त करते हैं। सम्बन्धित्वात्के उदयमें सम्बन्धकी गंध भी नहीं रहती क्योंकि मिथ्यात्व और सम्बन्धकी अपेक्षा आत्यन्तररूपसे उत्पन्न हुए सम्बन्धित्वात्के सम्बन्ध और मिथ्यात्के अस्तित्वका विषय है। अर्थात् उस समय न सम्बन्ध ही रहता है और न मिथ्यात्व ही रहता है, किन्तु मित्रा हुआ वही-मुझके समान एक विचित्र ही मित्रभाव रहता है।

विशेषार्थ—सम्बन्धप्रकृतिके उत्कृष्ट देशपाती स्पर्शके अन्तरवर्ती जपम्य सर्षपाती स्पर्शकेसे लेकर हाइके अनन्तरें भाग तक सम्बन्धित्वात्के स्पर्श होते हैं, क्योंकि यह प्रकृति आत्यन्तर सर्षपाती है। इसका उदाहरण है न ता सम्बन्धरूप ही परिखाम हाते हैं और न मिथ्यात्वरूप ही परिखाम हाते हैं, किन्तु मित्ररूप परिखाम हाते हैं।

⊗ जिस स्थानमें सम्बन्धित्वात्का अनुभागसंतकर्म समाप्त हुआ उसके अनन्तर वर्ती स्पर्शकेसे लेकर आगे बिना प्रतिपन्नके मिथ्यात्वात्कर्म होता है

। १९३. दाह्यरूप अणुभागके अनन्तरें मागरूप जिस स्थानमें सम्बन्धित्वात्का अनुभाग संकर्म समाप्त हुआ है उस स्थानमें सम्बन्धित्वात्का सर्षपाती उत्कृष्ट स्पर्श हाता है और उससे ऊपर आगेका अनन्तरवर्ती स्पर्श मिथ्यात्वात्का जपम्य स्पर्श है या सम्बन्धित्वात्के उत्कृष्ट स्पर्शकेसे अनन्तरगुणी शक्तिबला है। उससे लेकर आगे बिना किसी क्लेशवदके मिथ्यात्वका अनुभागसंतकर्म हाता है। आशय यह है कि सम्बन्धित्वात्के उत्कृष्ट स्पर्शकेसे मिथ्यात्वात्का जपम्य स्पर्श अनन्तरगुणा है। उस स्पर्शकेसे लेकर आगे बिना किसी क्लेशवदके अर्थात् दाह समान अनुभागका अनन्त बहुभाग तथा अस्थिररूप और शैलरूप स्वामीके समस्त स्पर्शकेका व्याप्त कर्मके मिथ्यात्वात्का अनुभागसंतकर्म स्थित है। अर्थात् सम्बन्धित्वात्के उत्कृष्ट स्पर्शकेसे लेकर शैल समान अनुभागके वरम स्पर्श पर्यन्त सब स्पर्श मिथ्यात्वात्के हैं।

विशेषार्थ—दाहके जिस भाग तक सम्बन्धित्वात्क प्रकृतिके स्पर्श बतलाये हैं उससे अनन्तरवर्ती स्पर्शकेसे लेकर आगेके सब स्पर्श मिथ्यात्व प्रकृतिके हात हैं। अर्थात् दाहका अचरित्त सब भाग, अस्थिररूप और शैलरूप सब स्पर्श मिथ्यात्वप्रकृतिके हाते हैं।

१ या प्रती कर्षणरवाद्युपेक्षयो इति वाच्य ।

❀ वारसकसायाणमणुभागसंतकम्मं सव्वघादीणं दुट्ठाणियमादि-
फहयमादिकादूणं उवरिमप्पडिसिद्धं ।

§ १६४. वारसकसायाण चि वुत्ते अणंताणुवंधि--अपच्चक्खण-पच्चक्खण-
कोह-माण-माया-लोहाणं गहणं । कुदो ? अण्णासिं वारसपयडीणं सव्वघादीण-
मभावादो । सव्वघादीणं दुट्ठाणियमणुभागमादिं कादूणे चि भणिदे सम्मामिच्छत्तस्स
जहण्णफहयसरिसफहयमादिं कादूणे चि घेत्तव्वं । एदं कुदो णव्वदे ? सव्वघादीण
दुट्ठाणियमादिफहयं इदि सुत्तवयणादो । मिच्छत्तस्स जहण्णफहयमादिं कादूणे चि
किण्ण वुच्चदे ? ण, मिच्छत्तजहण्णफहयस्स दुट्ठाणियसव्वघादिफहएसु जहण्णत्ताभावादो ।
एदमादिं कादूण उवरि अप्पडिसिद्धमिदि वुत्ते दारुअसमाणफहयाणमणंते भागे अट्ठि-
सेलसमाणफहयाणि च संपुण्णाणि गंतूण वारसकसायाणमणुभागसंतकम्ममवट्ठिटं ति
घेत्तव्वं ।

❀ चटुसंजलण--णवणोकसायाणमणुभागसंतकम्मं देसघादीणमादि-
फहयमादिं कादूण उवरि सव्वघादि चि अप्पडिसिद्धं ।

* वारह कपायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघातियोंके द्विस्थानिक प्रथम स्पर्धकसे
लेकर आगे बिना प्रतिषेधके होता है ।

§ १९४ वारह कपाय ऐसा कहने पर अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान
और क्रोध, मान, माया लोभका ग्रहण होता है, क्योंकि अन्य कोई वारह प्रकृतियों सर्वघाती
नहीं हैं । सर्वघातियोंके द्विस्थानिक स्पर्धकसे लेकर ऐसा कहने पर उससे सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य
स्पर्धकके समान स्पर्धकसे लेकर ऐसा लेना चाहिये ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि उक्त वाक्यसे ऐसा आशय लेना चाहिये ।

समाधान—सर्वघातियोंके द्विस्थानिक स्पर्धकसे लेकर ऐसा जो सूत्रका वचन है उससे
जाना जाता है कि उसका ऐसा आशय लेना चाहिये ।

शंका—उसका मिथ्यात्वके जघन्य स्पर्धकके समान स्पर्धकसे लेकर ऐसा अर्थ क्यों नहीं
कहते हो ?

समाधान—नहीं क्योंकि मिथ्यात्वका जघन्य स्पर्धक द्विस्थानिक सर्वघाती स्पर्धकोमे
जघन्य नहीं है ।

इस स्पर्धकसे लेकर आगे बिना प्रतिषेधके हाता है, ऐसा कहने पर दारुरूप स्पर्धकोके
अनन्त बहुभाग तथा सम्पूर्ण अस्थिरूप और शैलरूप स्पर्धकोके अन्त तक सब स्पर्धक मिलकर
वारह कपायोंका अनुभागसत्त्वकर्म अवस्थित है, ऐसा अर्थ लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, अप्रत्याख्यानानावरण क्रोध, मान,
माया और लोभ तथा प्रत्याख्यानानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन वारह कपायोंके सब
स्पर्धक सर्वघाती हैं । तथा दारुके जिस भागसे सर्वघाती स्पर्धक प्रारम्भ होते हैं उस भागसे लेकर
शैल पर्यन्त उनक स्पर्धक होते हैं ।

* चार सज्वलनो और नव नोकपायोंका अनुभागसत्त्वकर्म देशघातियोंके प्रथम

१ आ० प्रती 'सतकम्मवादीण दुट्ठाणियमादिफहय कादूण' इति पाठः । १ आ० प्रती—माकि-
फहयसरिसफहयमादि इति पाठः ।

१६४ वसपादीजमादिफलद्वय इति युवा सम्पत्तस आदिफलद्वयसरिस फलद्वयस गहनं । अदि एवं तो 'वसपादीज' इदि बहुवचनणिद्वयेसो न पददे ? तेरस पयडीसु एकित्से पयडीए अणुभागे जिरुदे सैसतेरसपयडीसो पेनिसदूण पयडीजमिदि बहुवचनयुवपचीदो । एवं फलममादिं कादूण उपरि सम्बपादि चि अप्पडिसिदं इदि युव सदासमाज नहम्मफलयमार्दिं कादूण उपरि लदा-दारु-अडि-सेससमाणफलद्वयाणि सम्बाणि गतूण पदासिं तेरसपयडीजमणुभागसंतकम्म होदि चि पेचम्म ? उपरि सम्बपादि चि युगे वसपादिदारुसमाणं मोत्तूण सम्बपादिदारुसमाणफलपहि सइ अडिसेससमाणफलद्वयाणि चि पेपंति ति कुदा नम्मदे ? उपरिं द्वाणसम्पापरुवणाए बहुसंज्ञणाणुभागसंतकम्मं पगहाणिय वा दुहाणियं वा तिहाणियं वा बहुहाणियं वा चि सुत्तादो नम्मद । संपहि मिच्छपादीखं सम्बकम्माखं अदि चि फलयणि उपरि अप्पडिसिदाणि चि युवं ता चि न तसिं सम्बेसिं चि चरियफलयाणि सरि साणि । तं कुदो नम्मद ? महावचसुत्तसिद्धप्पाबहुभादा । तं जहा—मिच्छसुत्तस द्वाणपरिमफलपादो सेससमाणपादो अणुतायुर्षधिकोभचरिमाणुभागफलद्वयमर्गतयुष्णीणं ।

स्पर्शकसे लेकर आगे बिना प्रतिपेक्षके सर्वपाती पर्यन्त है ।

१९५ बेराप्रतिबोका प्रथम स्पर्शक ऐसा करनेपर उससे सम्बन्ध प्रकृतिके प्रथम स्पर्शकसे समान स्पर्शकका ग्रहण करना चाहिये ।

संज्ञा—यदि 'वसपातियोंके' इस पदसे कबल एक सम्बन्धप्रकृतिका ग्रहण करत हा ता 'वसपातियोंके' ऐसा बहुवचनका निर्देश नहीं बनता है ।

समाधान—नहीं क्योंकि तेरह प्रकृतिवा मसे एक प्रकृतिके अनुभागक विच्छिन्न हानपर राय तेरह प्रकृतियाँक देखते हुए 'प्रकृति के' इस प्रकार बहुवचन निर्देश बन जाता है ।

इस स्पर्शकसे लेकर आगे बिना प्रतिपेक्षके सर्वपाती पर्यन्त है ऐसा करनेपर उससे लतारूप अल्प स्पर्शकसे लेकर आगे लतारूप दारुह रूप अस्थिररूप और रीतारूप सब स्पर्शकोंका ग्राहण करके इन तेरह प्रकृतियोंका अनुभागसत्कर्म है ऐसा जना चाहिये ।

संज्ञा—आगे सर्वपाती है ऐसा करनेसे दारुह रूप बेरापाती स्पर्शकोंका ग्राहण, सब पाती दारुह रूप स्पर्शकोंके साथ अस्थिररूप और रीतारूप स्पर्शकोंका भी ग्रहण करते हैं यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अपम स्वान्तर्भाव कबल करत समय 'आर सम्बन्धनोंका अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक, द्विस्थानिक त्रिस्थानिक और चतुः स्थानिक द्वारा है' इस सूत्रसे जाना जाता है कि यहाँ सर्वपाती वस्तुमान स्पर्शकोंके साथ अस्थिर और रीतारूपसमान स्पर्शकोंका भी ग्रहण किया है । यहाँ अर्थात् ऐसा कहा है कि मिच्छात्व आदि सब कर्मोंके स्पर्शक आगे बिना प्रतिपेक्ष हैं ता भी इन सबके अन्तिम स्पर्शक समान नहीं हैं ।

संज्ञा—यह कैसे जाना जाता है कि मिच्छात्व आदि सब कर्मोंके अन्तिम स्पर्शक समान नहीं हैं ?

समाधान—महावचन नमक सूत्रमन्वसे सिद्ध अल्पबहुत्वसे जाना जाता है । यथा—मिच्छात्वके उत्कृष्टस्वान रीतारूपसमान अन्तिम स्पर्शकसे अनन्ततायुष्णी लोमका अन्तिम अनुभाग

लोभचरिमाणुभागफद्दयादो मायाए चरिमाणुभागफद्दयं विसेसहीणं । तसो कोध-
 चरिमफद्दयं विसेसहीणं । कोधचरिमफद्दयादो माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं ।
 अणताणुवंधिमाणचरिमफद्दयादो लोभसंजलणचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । तसो
 तस्सेव मायाचरिमफद्दयं विसेसहीणं । तदो तस्सेव कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं ।
 तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीण । माणसजलणचरिमफद्दयादो पच्चक्वाणा-
 वरणलोभचरिमफद्दयमणतगुणहीण । तदो तस्सेव मायाचरिमफद्दयं विसेसहीणं, तदो
 तस्सेव कांधचरिमफद्दयं विसेसहीणं । तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं ।
 पच्चक्वाणावरणमाणचरिमफद्दयादो अपच्चक्वाणवरणलोभचरिमफद्दयमणतगुणहीण।
 तदो तस्सेव मायाचरिमफद्दयं विसेसहीणं । तदो तस्सेव कोधचरिमफद्दयं विसेसहीणं
 तदो तस्सेव माणचरिमफद्दयं विसेसहीणं । अपच्चक्वाणावरणमाणचरिमफद्दयादो णउं-
 सयवेदचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । अरदिचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं ।
 सोगचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीण । भयचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । दुगुंछा-
 चरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । इत्थिवेदचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीण । पुरिस-
 वेदचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । रदीए चरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । हस्स-
 चरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । सम्मामिच्छचरिमाणुभागफद्दयमणतगुणहीणं । सम्मच-

स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । लोभके अन्तिम अनुभागस्पर्धकसे मायाका अन्तिम अनुभागस्पर्धक
 विशेषहीन है । उससे क्रोधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । क्रोधके अन्तिम स्पर्धकसे मानका
 अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । अनन्तानुबन्धी मानके अन्तिम स्पर्धकसे सज्वलनलोभका
 अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । उससे
 उसीके क्रोधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । उससे उसीके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन
 है । सज्वलनमानके अन्तिम स्पर्धकसे प्रत्याख्यानावरण लोभका अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा
 हीन है । उससे उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । उससे उसीके क्रोधका अन्तिम
 स्पर्धक विशेषहीन है । उससे उसीके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । प्रत्याख्यानावरण
 मानके अन्तिम स्पर्धकसे अप्रत्याख्यानावरण लोभका अन्तिम स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे
 उसीकी मायाका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । उससे उसीके क्रोधका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन
 है । उससे उसीके मानका अन्तिम स्पर्धक विशेषहीन है । अप्रत्याख्यानावरण मानके अन्तिम
 स्पर्धकसे नपुंसकवेदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे अरतिका अन्तिम
 अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे शोकका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन
 है । उससे भयका अन्तिम अनुभाग स्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे जुगुप्साका अन्तिम
 अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे स्त्रीवेदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा
 हीन है । उससे पुरुषवेदका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे रतिका अन्तिम
 अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे हास्यका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन
 है । उससे सम्यग्मिध्यात्वका अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है । उससे सम्यक्त्वका
 अन्तिम अनुभागस्पर्धक अनन्तगुणा हीन है ।

चरिमाणुमागफहृदयमर्थात्पुनरीजमिदि । एवं मोहणीयपदिवद्धत्तादो महाब्रह्मप्याबहुर्भ
 न होदि चि स्यासकषिञ्जं, महाब्रह्मसद्विदियमप्याबहुभगवमधिजिग्यस्स तपो
 विजिग्यत्तं पदि अबिरोहादो ।

एवं फहृदयपक्ष्मणा समगा ।

⊗ तस्य बुबिधा सयणा धाविसयणा द्ढाथसयणा च ।

§ १६६ क्त्सेपि बुत्ते अणेण विहाणेण बुत्ताणुमागफहृदपसु चि पंचम्यं । सण्णा
 नाम अहिहाजमिदि एपदो । सा बुबिहा-ध्यादिसण्णा ठाजसण्णा वेदि । एदसिं मोहाफु-
 मागफहृदयार्णं धादि चि सण्णा जीमत्तुजघायजसीसत्तादो । एदेसिं चेष फहृदयार्थं
 ङायमिदि च सयणा छद्-दाक-मडि-सेस्रणं सहापम्मि अबद्धायादो । मा सा धादि

संज्ञा—यह अस्पष्टत्व केवल मोहनीयकर्मसे मन्वद्य है, अतः यह महाब्रह्मका अस्पष्टत्व नहीं हो सकता ।

समाधान—एसी आराद्धा नहीं करनी चाहिये क्योंकि यह अस्पष्टत्व महाब्रह्मके भीतर
 प्रतिक अस्पष्टत्वके भीतरसे निकला है, अतः इसे महाब्रह्मसे निकला हुए माननेमें कोई
 विरोध नहीं आता है ।

विद्येपार्य—संवलन रूप मान, भावा और लोम तथा नव नाकपायो के स्पर्शक देशपाठीसे
 लेकर सर्वपाठी पर्यन्त होते हैं । अर्थात् लता समान अपत्य स्पर्शकसे लेकर लतारूप, दाडरूप,
 अस्थिररूप और रौद्ररूप अनुभाग सत्कर्म इन चारों महत्त्वोंके होते हैं । बृहिसूत्रमें केवल इतना
 कहा गया है कि इन चार महत्त्वोंके अनुभागसत्कर्म देशपाठीके प्रथम स्पर्शकसे लेकर आगे
 सर्वपाठीपर्यन्त होते हैं । इस परसे यह राका होती है कि सर्वपाठीसे रौद्रपर्यन्तका मह्य कबों
 किया गया ? सर्वपाठीसे दाडके सबपाठी स्पर्शकके समान स्पर्शकका भी तो मह्य हा सकता है ।
 इसका उत्तर यह दिया गया है कि आगे स्थानसंज्ञाके प्रकरणमें चार संवलन कपायोंका
 अनुभाग सत्कर्म एक स्थानिक, दो स्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुस्थानिक होता है । ऐसा कहा
 है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सर्वपाठी से रौद्रपर्यन्तका ही मह्य इष्ट है । यहाँ इतना
 विरोध ज्ञातम् है कि यद्यपि मिथ्यात्व बाह्य कपाय चार संवलन और नौ नाकपायोंका अनुभाग
 सत्कर्म रौद्रपर्यन्त कहा है फिर भी इन सबके अग्रेष्ठ स्पर्शक समान नहीं हैं इनके अनुभाग
 सत्कर्ममें अन्तर है जैसा कि आगे दिखे गये महाब्रह्म नामक सिद्धांतप्रबन्धके अस्पष्टत्वसे स्पष्ट
 होता है । इस परसे यह राका भी गई है कि महाब्रह्म नामक सिद्धांतप्रबन्धमें सभी कर्मोंका
 निरूपण है और यह अस्पष्टत्व केवल मोहनीयकर्मका है अतः इसे महाब्रह्मका अस्पष्टत्व नहीं
 कहा जा सकता । हा इसका यह समाधान किया गया कि १४ स्थानोंके भीतरसे केवल
 मोहनीयक यह अस्पष्टत्व निकला है, अतः इसे महाब्रह्मका ही जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्पर्शक प्ररूपका समाप्त हुई ।

⊗ इनमें संज्ञा दो प्रकार की है—धातिसंज्ञा और स्थानसंज्ञा ।

§ १९६ कर्ममें देसा क्त्तसे इत्त विभित्ते क्त्ते गणे अनुभागस्पर्शकमें देसा अर्ध लेन्य
 चाहिये । संज्ञा नाम और अधिभाल ये शब्द एकार्थक हैं । यह संज्ञा दो प्रकारकी है—धाति संज्ञा
 और स्थानसंज्ञा । इन मोहनीयके अनुभागस्पर्शकोंकी धाती यह संज्ञा है क्योंकि बीचके गुणोंको
 वातना इनका स्वभाव है । तथा इन्हीं स्पर्शकोंकी स्थान यह संज्ञा भी है, क्योंकि वे लतारूप
 दाडरूप, अस्थिररूप और रौद्ररूप स्वभावमें अवस्थित हैं । यह धातिसंज्ञा भी सबपाठी और

सण्णा सा दुविहा—सव्वघादि-दंसघादिभेएण । ठाणसण्णा चउव्विहा लदा-दारु अदि-सेलभेएण ।

❀ ताओ दो वि एकदो णिज्जंति ।

§ १६७. जाओ दो वि सण्णाओ पुव्वं परुविदाओ ताओ एकदो एकवार चव णिज्जंति कहिज्जति परुविज्जंति ति वेत्तव्वं ।

❀ मिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्मं जहण्णयं सव्वघादि दुट्ठाणियं ।

§ १६८. सेमकम्मपडिसेहफलो मिच्छत्तणिद्देसो । द्विदि-पदेससंतकम्मादिपडि-सेहफलोअणुभागासंतकम्मणिद्देसो । उक्कस्सपडिसेहफलो जहण्णयं ति णिद्देसो । दंस-घादिपडिसेहफलो सव्वघादिणिद्देसो । मिच्छत्ताणुभागफद्दयरयणाए मिच्छत्तस्स जहण्ण-फद्दय सव्वघादि ति पुव्वं परुविदं चव । कुदो ? सव्वघादित्तणेण सक्खा [सखा] परुविदसम्माभिच्छत्तुक्कस्सफद्दयं पेक्खिदूण अणतगुणत्तादो । तदो मिच्छत्तजहण्णाणु-भागसंतकम्मं सव्वघादि ति ण वत्तव्वमिदि ? एत्थ परिहारो बुच्चदे—फद्दयरयणा णाम सव्वघादित्तमसव्वघादित्तं च ण परुवेदि किंतु केवल फद्दयरयण चव परुवेदि, देशघातीके भेदसे दो प्रकारकी है । तथा म्यानसज्जा लता, दारु, अमिय और शैलके भेदसे चार प्रकारकी है ।

* आगे उन दोनों संज्ञाओंको एक साथ कहते हैं ।

§ १९७ जो दो सज्ञाएँ पहले कही हैं, उन्हें एक साथ ही बतलाते हैं अर्थात् कहते हैं प्ररूपणा करते हैं ऐसा अर्थ यहाँ लेना चाहिये । अर्थात् आगे उन दोनों संज्ञाओंका एक साथ कथन करते हैं ।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्मके अनुभागस्पर्धको की दो सज्ञाएँ हैं—घाती और स्थान । यत व अनुभागस्पर्धक जीवके गुणो का घात करते हैं, अत उन्हें घाती कहते हैं और यत वे लता, दारु, अस्थि और शैलका जैसा स्वभाव है वैसे स्वभावको लिए हुए हैं, अत उन्हें स्थान कहते हैं । घातीसज्ञाके दो भेद हैं—सर्वघाती और देशघाती । तथा स्थानसज्ञाके चार भेद हैं—लता दारु, अमिय और शैल । आगे इन दोनों संज्ञाओं का एकसाथ कथन करते हैं ।

* मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक है ।

§ १९८ शेष कर्मोंका प्रतिषेध करनेके लिये मिथ्यात्व पदका निर्देश किया है । स्थिति सत्कर्म और प्रदेशसत्कर्म आदिका प्रतिषेध करनेके लिये अनुभागसत्कर्म पदका निर्देश किया है । उल्लुप्तका प्रतिषेध करनेके लिये जघन्यपदका निर्देश किया है । देशघातीका प्रतिषेध करनेके लिये सर्वघाती पदका निर्देश किया है ।

शंका—मिथ्यात्वके अनुभागस्पर्धकोकी रचनासे मिथ्यात्वका जघन्य स्पर्धक सर्वघाती है ऐसा पहले कहा ही है, क्योंकि पहले सर्वघातिरूपसे कहे गये सम्यग्मिथ्यात्वके उल्लुप्त अनुभागकी अपेक्षा इसका अनुभाग अनन्तगुणा है, अत यहाँ मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग मत्कर्म सर्वघाती है ऐसा नहीं कहना चाहिए ?

समाधान—यहाँ परिहार करते हैं—स्पर्धकरचना सर्वघातित्व और असर्वघातित्वको नहीं बतलाती है, किन्तु केवल स्पर्धकरचनाका ही कथन करती है, क्योंकि उसीसे उसका व्यापार

सिस्से सत्य वाचारादो । जटि वि जुत्तीए सम्बधाटित्तमवगयं तो वि सा एत्थ ण पहाणा,
 अहेववायम्मि तण्णिहसिस्साणं तस्य अणुमाहकारित्तामावादो । तदा मिच्छत्तजहण्णाणु
 मागसत्तकम्मं सव्वपादिं ति वत्तन्न वेव । किं च अहा चारित्तमोहकत्ववणाए चट्टुए
 संजम्णाणं पुम्बफइदयाणि आहइयि तेसिं नहण्णफइदयादो अणंतगुणहीणाणि अपुम्ब
 फइदयाणि काऊण पुणो ताणि वि घाइय सगजहण्णफइदयादो अणंतगुणहीणामो
 किट्ठिओ कदाओ, उहा एत्थ वंसणमोहणीयकत्ववणाए मिच्छत्ताणुमागस्स अपुम्बफइद
 यादिकिरियाओ काऊण वंसघाइनिहाणं पत्थि ति जाणावणह वा सव्वधादिणिइदसो
 कदा । सुद्धमणिगात्तस्स मिच्छत्तजहण्णाणुमागसत्तकम्मादो अणंतगुणेषेण अणुमागसंत
 कम्मोण वंसणमोहकत्ववणाए किट्ठीकरणादिबिहाणण विणा मिच्छत्तं स्वविज्जदि ति भाणा
 वणह वा । दाससमाणाणुमागफइदयाणमणंतियभागं सुद्धमणिगोदेसु मण मिच्छत्ताणु
 भागसत्तकम्मं जहण्णं जादं सेण तं दुद्धाणियं । एवण एगहाण-तिहाण-अवहाणाणं पठि
 सेहा कदा । मिच्छत्ताणुमागस्स दास-अट्ठि-सेहासमाणाणि ति तिण्णि वेव हाणाणि
 सत्तासमाणफइदयाणि उल्लपिय दाससमाणम्मि अवट्ठिदसम्मामिच्छत्तुकस्सफइदयादो
 अणंतगुणभाषण मिच्छत्तजहण्णफइदयस्स अवहाणादो । तदो मिच्छत्तस्स जहण्णाणु
 भागसत्तकम्मं दुद्धाणियमिदिं वुत्त वारु-अट्ठि-समाणफइदयाणं गहणं कायम्बं, अएयाहा

है । यद्यपि भुक्तिसे हमका सर्वप्रथित्व ज्ञान लिया गया है तो भी यहाँ भुक्ति प्रधान नहीं है,
 क्योंकि अहेतुबाद् रूप आगममें अद्या रत्ननेवाले मिष्योंका भुक्ति कोई उपकार नहीं कर
 सकती । अतः भिष्यारका अथन्य अनुभागसत्कर्म सर्वपाठी है' ऐसा यहाँ कहना ही चाहिये ।
 दूसरे जैसे अद्वित्रमाहकी जप्यामें पाय संकलनकापापोंके पूर्वस्पर्शकोका अपकवण
 करके उनके अथन्य स्पर्शसे भी अनन्तगुण्ये हीन अपूर्वस्पर्शक किये जाते हैं और फिर अपूर्व
 स्पर्शको भी पाठ करके अपूर्वस्पर्शके अथन्य स्पर्शसे भी अनन्तगुणी हीन कृष्टियां की जाती
 हैं इसी प्रकार यहाँ दशानमाहनीयकी जप्यामें अपूर्वस्पर्शक आदि क्रियाओंका करके मिष्यात्क
 अनुभागका वेगघातिविधान नहीं है । अर्थात् मिष्यात्क अनुभागका क्रियाद्वारा वेगपातीरूप
 नहीं किया जा सकता है, वह सर्वपाठी ही रहता है, यह बातलामेके लिये सूत्रमें सबपाठी फक्का
 निर्देश किया है । अथवा दशानमाहक जपय कर्ममें सूत्र्य निगादिया जीवके मिष्यात्क अथन्य
 अनुभागसत्कर्मसे अनन्तगुण्य अनुभागसत्कर्मके रहत हुए कृष्टिकरण्य आदि क्रियाके विना ही
 मिष्यात्कका जपय करता है यह बातलामेके लिये सूत्रमें सर्वपाठी फक्का दिया है । अतः सूत्र्या
 निगादिया जीवों में मिष्यात्कका अनुभागसत्कर्म अथन्य है और वह वास्तवमान अनुभागस्पर्शका
 के अनन्तर्भ भागमें स्थित है अतः वह शिम्भानिक है । इससे वह एक स्थानिक शिम्भानिक और
 अणुम्भानिक है अतः वातका निषेध कर दिया है ।

हुंका-मिष्यात्क अनुभागक वातक समान अस्थिके समान और सैजदे समान इस
 प्रकार हीन ही स्थान है क्या कि जहासमान स्पर्शका का बलवर्धन करके वास्तवमान अनुभागमें
 स्थित रास्यमिष्यात्कके इच्छु स्पर्शकस मिष्यात्कका अथन्य स्पर्शक अनन्तगुण्य है । अतः
 मिष्यात्कका अथन्य अनुभागसत्कर्म शिम्भानिक है एसा कहने पर वास्तवमान और अस्थिममान
 स्पर्शका का महत्व करना चाहिये अन्यथा यह शिम्भानिक नहीं बन सकता है ।

तस्स दुहाणियत्ताणुववत्तीदो ? ण एस दोसो, वणसिववभावेण दारुसमाणफट्टयाणं केवलाण पि दुहाणियत्तुववत्तीदो । कुतो व्यपदेशिवद्भावः ? लता-दारुसमानस्थानाभ्यां केनचिदंशान्तरेण समानतया एकत्वमापन्नस्य दारुसमानस्थानस्य तद्व्यपदेशोपपत्तेः । समुदाये प्रवृत्तस्य शब्दस्य तदवयवेषुपि प्रवृत्त्युपलम्भाद्वा ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्यों कि व्यपदेशिवद्भावसे केवल दारुसमान स्पर्धकोंका भी द्विस्थानिकपना बन जाता है ।

शंका—व्यपदेशिवद्भाव से है ?

समाधान—किसी अशान्तरकी अपेक्षा समान होनेके कारण लतासमान और दारुसमान स्थानोंसे दारुसमान स्थान अभिन्न है, अतः उसमें द्विस्थानिक व्यपदेश ही सकता है । अथवा जा शब्द समुदायमें प्रवृत्त होता है उसके अवयवमें भी उसकी प्रवृत्ति दृग्गी जाती है, अतः केवल दारुसमान स्थानको भी द्विस्थानिक कहा जा सकता है ।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका सर्वघाता और द्विस्थानिक कहा है । इस पर यह शंका की गई कि मिथ्यात्वके अनुभागस्पर्धकोंकी रचनाका कथन करते हुए सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति) अनुभागस्पर्धकोंको स्पष्टरूपसे सर्वघाती बतलाकर उससे आगेके सूत्रमें सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागस्पर्धकोंके अनन्तरवर्ती स्पर्धकोंसे लेकर आगेके सब स्पर्धकों मिथ्यात्वके बतलाये हैं । इसमें सिद्ध है कि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है, अतः उक्त सूत्रमें पुनः उसका सर्वघाती बतलाना व्यर्थ है । इसका समाधान तीन प्रकारसे किया गया है । पहला—स्पर्धकोंकी रचनाका उद्देश केवल स्पर्धकरचनाको बतलाना है, सर्वघातित्व और असर्वघातित्वको बतलाना उसका उद्देश्य नहीं है । यद्यपि युक्तिसे यह मालूम होजाता है कि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागस्पर्धकोंके सर्वघाती है किन्तु इस आगमिक ग्रन्थमें युक्ति प्रधान नहीं है, किन्तु कठोक्तसे जो कहा जाय वही प्रधान है, अतः मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है यह बचन कहना ही चाहिये । दूसरे, जैसे चारित्रमोहकी क्षणमें सञ्चलनकषायोंका पूर्वस्पर्धकों, अपूर्वस्पर्धकों और कृष्टीकरणके द्वारा देशघातिविधान बतलाया है वैसे दर्शनमोहकी क्षणमें मिथ्यात्वके अनुभागका देशघातिविधान नहीं होता यह बतलानेके लिये मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मको सर्वघाती बतलाया है । तीसरे, सूक्ष्मनिगोदिया जीवके मिथ्यात्वका जो जघन्य अनुभागसत्कर्म रहता है उससे अनन्तगुण अनुभागसत्कर्मके रहते हुए मिथ्यात्वका क्षण होता है यह बतलानेके लिये मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती होता है यह बतलाया है । तथा मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक होता है क्यों कि सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म दारुरूप होता है और उसके अनन्तरवर्ती स्पर्धकोंसे मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म प्रारम्भ होता है अतः वह भी द्विस्थानिक है । इस पर यह शंका की गई कि मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म दारुरूप है और यतः उसे द्विस्थानिक कहा है अतः दो स्थानोंसे दारु और अस्थिका ग्रहण करना चाहिये, लताका तो ग्रहण हो ही नहीं सकता, क्योंकि मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म लतारूप नहीं बतलाया है । इसका यह समाधान किया गया है कि जो स्पर्धकोंके केवल दारुसमान हैं उन्हें भी द्विस्थानिक कह सकते हैं, क्योंकि द्विस्थानिक सज्ञा लतासमान और दारुसमान स्पर्धकोंकी है । किन्तु जो स्पर्धकोंके केवल दारुसमान हैं वे दारुरूपसे लता-दारु स्थानके समान हैं । अर्थात् उनकी परम्परसे दारुरूपसे समानता है अतः लता-दारु समान स्पर्धकोंके लिये व्यवहृतकी जानेवाली द्विस्थानिक सज्ञा केवल

§ १६६. लदा-दाक-अडि-सैखसण्णामो माणाणुभागफरुपणं सपामो, कर्प मिच्छत्तम्मि पयट्ति ? ण, माणम्मि अरुद्धिद्वदुण्णं सण्णाणमणुभागाविभागपलिच्छे-
 देहि समाणत्त पेक्खिसूण पयडिबिरुद्धमिच्छत्तादिफरुपसु वि पयुत्तीए विरोडामावादा ।

⊙ उक्तस्तपमणुभागसंतकम्मं सम्बन्धादिचकुट्टाणिय ।
 § २०० उक्तस्तपिहेसां नहण्णपडिसेइफला । अणुभागसत्कम्मणिहेसो द्विदि-
 पदेसपडिसेइफलो । सम्बन्धादिणिह सो देसपादिपडिसेइफलो । चतुहाणियणिहे सो तिहा
 णादिपडिसेइफलो । मिच्छत्तम्मं ति अइकंतसुत्तादो अणुबट्टदे । कुरो सम्बन्धादिहं ?
 सम्मत्तासेसावयवविणासणं । अणुत्तस्स सम्मत्तपञ्चायस्स कर्पं सावयवत्तं ? ण,
 सायारसावयवमीयद्वयं सम्बन्धजा पडिगहिय अरुद्धिद्वस्स गिरपयवजिराभारसविरो-
 दादो । सदासमाणफरुपरि विणा कर्पं मिच्छत्ताणुभागस्स चतुहाणियत्त ? अ, पुण्यं व

वाक्य स्वर्गके लिये भी व्यग्रहृत हा सकती है । अथवा लता और वाकके समुदायमें व्यग्रहृत
 जानेवाली द्विस्वानिक संज्ञाका व्यग्रहृत उसके एक अंश वाकमें भी हा सकता है ।

१९९- शंका-लता, वाक- अस्त्रि और शैल संज्ञाय मानकपायके अनुभागस्वर्गकेमें
 की गज हैं परी वामे वे संज्ञार्ये मिथ्यात्वमें कैसे प्रयुक्त हा सकती हैं ?

समाधान-मर््या क्या कि मानकपाय और मिथ्यात्वके अनुभागके अविभागीप्रतिच्छेदा
 की परस्परमें समानता रहकर मूलकपायमें होनेवाली वाय संज्ञाया की मानकपायसे विरुद्ध
 प्रकृतियाके मिथ्यात्वविक स्पर्शका में भी प्रयुक्ति हममें कई विराय मर््या है ।

विशेषार्थ-अर्थापि कठोरता यह मानकपायका गुण है, अन्य प्रकृतिया में यह धर्म मर््या
 पाया जाता तथापि मानकपाय इ समान शक्तिवाला अन्य प्रकृतिया के स्पर्शक होते हैं यह बेवकूर
 यहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंक स्पर्शका की लतासमान अर्थापि संज्ञार्ये रली हैं यह उक्त कथनका
 तात्पर्य है ।

⊙ मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्म सर्वापाती और चतुः स्थानिक है ।

अपत्यका प्रतिषेध करनेके लिये उत्कृष्ट पक्ष निर्देश किया है । स्थिति और
 मन्दाका प्रतिषेध करनेके लिये अनुभागासत्कर्म पक्ष निर्देश किया है । देशपत्नीका प्रतिषेध
 करनेके लिये मन्दापाती पक्ष निर्देश किया है । द्विस्वानिक आदिका प्रतिषेध करनेके लिये चतुः
 स्थानिक पक्ष निर्देश किया है । मिथ्यात्व इस पक्षकी विज्ञान सूत्र से अनुवृत्ति हाती है ।

शंका-यह मन्दापाती क्यों है ?

समाधान-क्योंकि यह सम्यक्त्वके सब अवयवोंका विनाश करता है, अतः सर्वापाती है

शंका-सम्यक्त्व पचाय अमूर्त है अतः उसका अवयव कैसे हा सकते हैं ?

समाधान-परी शंका करना ठीक नहीं है क्योंकि वा सम्यक्त्व साकार और सावयव
 जीव इत्येता सर्वात्मना पकड़ करके बैठा हुआ है उसक निरवयव और निराकार होनेमें विराय
 है । अर्थात् जब इत्ये साकार और सावयव है, अतः उससे अधिभ या तत्संबन्ध सम्यक्त्व
 मन्दा निरवयव और निराकार मर््या हा सकता ।

शंका-अथ मिथ्यात्वके स्पर्शक लतासमान मर््या हात ता इमका अनुभाग चतुःस्थानिक
 कैसे है ?

दोहि पयारेहि चदुट्टाणियत्तसिद्धीदो । अधवा मिच्छत्तुकस्सफइयम्मि लदा-दारु--अट्टि-सेलसमाणट्टाणाणि चत्तारि वि अत्थि, तेसि फइयाविभागपलिच्छेदाण संखाए एत्थु-वत्तभादो । ण च बहुएसु अविभागपलिच्छेदेसु थोवाविभागपलिच्छेदाणमसंभवो, एगादिसंखाए विणा तस्स बहुत्ताणुववत्तीदो । तम्हा मिच्छत्तुकस्सफइयम्मि चत्तारि वि ट्टाणाणि अत्थि त्ति तस्स चदुट्टाणियत्तं ण विरुज्झटे । मिच्छत्तुकस्साणुभागसंतकम्मं चदुट्टाणियमिदि वुत्ते मिच्छत्तेगुकस्सफइयस्सेव कथं गहणं ? ण, मिच्छत्तुकस्सफइय-यचरिमवगणाए एगपरमाणुणा धरिदअणताविभागपलिच्छेदणिप्पण्णअणतफइयाण-मुक्कस्साणुभागसंतकम्मववएसादो । ण च तत्थ अवट्टिटाविभागपलिच्छेदेसु फइयाणि णत्थि अविभागपलिच्छेदुत्तरकमेण वट्टिविरहियाणमणंताविभागपलिच्छेदे अतरिय अणतवारवट्टियाणं फइयभावविरोहादो । एसो अत्थो उवरि सन्वत्थ जहावसरं संभरिय वत्तव्वो ।

समाधान—जिस प्रकार पहले दो तरीकेसे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मको द्विस्थानिक सिद्ध किया है वैसे ही उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म भी चतुःस्थानिक सिद्ध होता है । अथवा, मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकमें लतासमान, दारुसमान, अस्थिसमान और शैलसमान चारों ही स्थान हैं, क्योंकि उनके स्पर्धकोंके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी सख्या यहाँ पाई जाती है और बहुत अविभागप्रतिच्छेदोंमें स्तोक अविभागप्रतिच्छेदोंका होना असंभव नहीं है, क्योंकि एक आदि सख्याके बिना अविभागीप्रतिच्छेदोंकी सख्या बहुत नहीं हो सकती है । अर्थात् बहुत सख्यामें थोड़ी सख्या होती ही है, अन्यथा वह बहुत ही नहीं हो सकती अतः, मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकमें चारों ही स्थान होते हैं, इसलिये उसके चतुःस्थानिक होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शका—मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतुःस्थानिक है ऐसा कहने पर मिथ्यात्वके एक उत्कृष्ट स्पर्धकका ही ग्रहण कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धककी अन्तिम वर्णामें एक परमाणुके द्वारा धारण किये गये अनन्त अविभागी प्रतिच्छेदोंसे निष्पन्न अनन्त स्पर्धकोंकी उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म यह सहा है । यदि कहा जाय कि उत्कृष्ट स्पर्धककी अन्तिम वर्णामें जो अविभागी प्रतिच्छेद हैं उनमें स्पर्धक नहीं हैं, सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्त अविभागी प्रतिच्छेदोंका अन्तर दे दे कर उत्तरोत्तर अविभागीप्रतिच्छेदके क्रमसे अनन्तवार जिनमें वृद्धि नहीं होती उनके स्पर्धक होनेमें विरोध है । ऊपर सर्वत्र प्रसंगानुसार इस अर्थका स्मरण करके कथन कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें कहा है कि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है । इसपर जब यह शका की गई कि मिथ्यात्वके अनुभागमें लता समान स्पर्धक तो पाये नहीं जाते तब वह चतुःस्थानिक कैसे है ? तो कहा गया कि मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्पर्धकमें लतासमान, दारुसमान, अस्थिसमान और शैलसमान चारों स्पर्धक पाये जाते हैं । इस समाधान परसे यह शका की गई कि सूत्रमें तो मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको चतुःस्थानिक कहा है और समाधानमें कहा गया है कि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्पर्धक चतुःस्थानिक है तो उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मसे एक उत्कृष्ट स्पर्धकका ही ग्रहण क्यों किया गया है ? इसका जो

समाधान किया गया है उसे समझनेके लिये स्वर्णकछा स्वरूप जानना आवश्यक है जा इस प्रकार है—एक अनुभागस्थानके सब परमाणुओंका एक जगह स्थपित करके उनमेंसे सबसे उच्चतम अनुभागबाल परमाणुका सा। उस परमाणुमें पाये जानेवाले रूप रस और गंधका झाड़कर स्पर्शयुक्त बुद्धिके द्वारा छद्म कर। छद्म करते करते जा अन्तिम अक्षय्य स्पण्ड अवस्थाप रहे उसकी अविभागीप्रतिच्छद्म संज्ञा है। उस अविभागी प्रतिच्छद्मरूपसे स्पर्शयुक्तका छद्म करने पर एक परमाणुमें सब जीवोंसे अनन्तगुणो अविभागीप्रतिच्छद्म पाये जाते हैं। उन सबका वर्ग कहत हैं। यद्यपि एक वर्गमें अनन्त अविभागीप्रतिच्छद्म हातें हैं तथापि समझनेके लिये उनकी संख्या ८ कल्पना कर लेनी चाहिये। पुनः उन परमाणुओंमेंसे बस एक परमाणुके समान दूसर परमाणुका सा। उसके स्पर्शयुक्तके भी पहलेके समान बुद्धिके द्वारा छद्म करन पर उसमें भी वतन ही अविभागीप्रतिच्छद्म पाये जाते हैं। इस दूसर वर्गकी सङ्ख्यानी भी ८ समझना चाहिये। इस क्रमसे उन परमाणुओंमेंसे पहले परमाणुके समान एक एक परमाणुका लकर उनमेंसे प्रत्येकके अविभागी प्रतिच्छद्म करने पर एक एक वर्ग उत्पन्न हाता है उनकी संदष्टि इस प्रकार समझनी चाहिये ८, ८, ८, ८। अर्थात् अविभागीप्रतिच्छद्मोंके समूहका वर्ग कहत हैं और वृत्ति एक एक परमाणुमें अनन्त अविभागीप्रतिच्छद्म पाये जाये हैं अतः प्रत्येक परमाणु एक एक वर्ग है। इन वर्गोंके समूह का वर्गसा कहत हैं। इस वर्गसाका एक बार स्थपित करके उन परमाणुओंमेंसे पुन एक परमाणु का सा और बुद्धिके द्वारा पहलेकी तरह उसका छद्म कर। छद्म क्रम पर इस परमाणुमेंसे पहले परमाणुओंसे एक अधिक अविभागीप्रतिच्छद्म पाये जात हैं जिसकी सङ्ख्यानी ९ है। इस एक वर्ग का अक्षय्य स्थापित कर। इस क्रमसे इस एक परमाणुका समान कितने परमाणु उन परमाणुओं मेंसे पच बारों कहें लकर और बुद्धिके द्वारा प्रत्येकका छद्म करके वर्गोंकी उत्पत्ति कर लेनी चाहिये। उनका प्रमाण इस प्रकार है—९, ९, ९। यह दूसरी बगला हुई। इस प्रकार एक एक अधिक अविभागीप्रतिच्छद्मबाल परमाणुओंसे तीसरी चौथी पाँचवीं आदि वर्गसाएँ उत्पन्न कर लेनी चाहिये। इसप्रकार उत्पन्न की गई अक्षय्यराशिसे अनन्तगुणी और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण बगलाओंका एक स्वर्णक हाता है। इस स्वर्णकका प्रबन्ध स्थापित करके पूर्वोक्त परमाणुओंमेंसे पुनः एक परमाणुका ला। बुद्धिके द्वारा उसका छद्म करनपर सब जीवोंमें अनन्तगुण अविभागीप्रतिच्छद्मोंका अन्तर दकर दूसरे स्वर्णकका प्रथम वर्ग उत्पन्न हाता है। संदष्टिरूपमें इसका प्रमाण १६ समझना चाहिये। इस क्रमसे अक्षय्यराशिसे अनन्तगुण और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण अविभागीप्रतिच्छद्मबाल परमाणुओंका प्रहय करके परमाणुमात्र वर्गाक उत्पन्न करने पर दूसरे स्वर्णककी प्रथम प्रमाणा हाती है। इस प्रथम स्वर्णकका अन्तिमबगलाक भाग अनन्तबाल दकर स्थापित करना चाहिये। इस क्रमसे वर्ग वर्गसा और स्पर्शका जानकर सब एक स्वर्णक उत्पन्न करना चाहिये सब एक पूर्वोक्त परमाणु समान न हा जाय। इसप्रकार स्वर्णक रचनाक करनपर अक्षय्यराशिसे अनन्तगुण और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्वर्णक और बगलाएँ उत्पन्न हाती हैं। इनमेंसे अन्तिम बगलाक एक परमाणुमें जा अनुभाग पाया जाता है इसीका अनुभागस्थान करते हैं। इस परस यह संका हा सङ्गीत है कि अविभागी प्रतिच्छद्मोंके समूहका वर्ग वर्गाक समूहका बगला बगलाओंके समूहका स्वर्णक और स्वर्णकोंके समूहका अनुभागस्थान करते हैं, किन्तु ऊपर अन्तिम स्वर्णककी अन्तिम बगलाक एक परमाणुमें जा अनुभाग पाया जाता है इस ही अनुभागस्थान बयों कहा है। इसका समाधान यह है कि प्रथम-वर्गसे लकर क्रमसे बहुत दृष्ट मय अविभागीप्रतिच्छद्म उस एक परमाणुमें पाये जात हैं अतः सब अनुभागका स्थान इनसे अन्तिम स्वर्णककी अन्तिम बगलाक एक परमाणु अनुभागस्थान कहा जाता है। जेम् माइन्डियरुमेंकी उत्पत्ति सिद्ध १७ फाटी फाटी मागर हाती है। यह उत्पत्तिमति

❀ एव वारसकसायञ्जण्णोकसायाण ।

१२०१. कुदो ? जहण्णाणुभागसत्कम्मं सव्वघादिदुद्वाणियं उक्कसाणुभागसत्कम्मं सव्वघादिचदुद्वाणियमिच्चेदेण एदासिमणुभागस्स मिच्चत्ताणुभागादो भेदाभावा । वारसकसायजहण्णाणुभागस्स सव्वघादित्तं होदु, णाम, तेसिं जहण्णफद्दयप्पहुडि जाव उक्कस्सफद्दय ति सव्वघादित्तं मोत्तूण तेसु देसघादिताणुवलंभादो । किंतु छण्णोकसायफद्दयाण सव्वघादित्तं ण जुज्जदे ? सम्मतजहण्णफद्दयसमाणफद्दयाणुभागप्पहुडि उवरि दास्समाणफद्दयाणमणतिमभागो ति णिरतर तत्थ देसघादिफद्दयाण पि उवलभादो ति ? ण एस दोसो, अणियट्टिक्खवण्ण वादिदावसिद्धछण्णोकसायचरिमफालीए चरिमफद्दयचरिमवग्गेणपरमाणुणा धरिदाविभागपलिच्छेदाण सगहिदासेसफद्दयभावेण दुद्वाणियत्तमुवगयाणमहियाविभागपलिच्छेदसंबंधेण सव्वघादित्तं

मव निपेकोकी नहीं होती किन्तु अन्तिम निपेककी होती है फिर भी वह सब निपेकोकी स्थिति रूही जाती है क्योंकि उसमें सब निपेकोकी स्थिति गर्भित है, वैसे ही अन्तिमस्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुके अविभागीप्रतिच्छेद में शेष सब परमाणुओंके अविभागीप्रतिच्छेद गर्भित हैं, अतः वही अनुभागस्थान है और उसमें द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा वर्ग-वर्गणा और स्पर्धक सभी बन जाते हैं । इसपर पुन यह शक्या हो सकती है कि जब अन्तिमस्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जा अनुभाग है उमीका अनुभागस्थान कहते हैं ता इसप्रकार पृथक् पृथक् स्पर्धक रचना क्या की जाती है ? इसका समाधान यह है कि इस एक परमाणुमें जो अनुभागस्पर्धक पाये जाते हैं उसीके अविभागी प्रतिच्छेदोका कथन उक्तप्रकारसे किया जाता है । उमी कारणसे चूर्णिसूत्रमें आये उक्त अनुभागसत्कर्मपदसे एक उक्तस्पर्धकका ही ग्रहण किया है । आगे भी जहाँ कहीं इसप्रकारका कथन आये वहाँ उसका यही अर्थ समझना चाहिये ।

* इसीप्रकार वारह कपाय और छ नोकपायोंका अनुभागसत्कर्म है ।

१२०१ क्योंकि उनका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक है तथा उक्त अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतु स्थानिक है, इस दृष्टिसे उन १२ अनुभागका मिथ्यात्वके अनुभागसे कोई भेद नहीं है ।

शक्या—वारह कपायोंका जघन्य अनुभाग सर्वघाती होआे क्योंकि जघन्य स्पर्धकसे लेकर उक्त स्पर्धक पर्यन्त सर्वघातीपने १२ सिवाय उनमें देशघातिपना नहीं पाया जाता है । किन्तु छह नोकपायों १२ स्पर्धकोंका सर्वघातीपना नहीं बनता है, क्योंकि सम्बन्ध १२ जघन्य स्पर्धकके समान स्पर्धकके अनुभागसे लेकर आगे दासमान स्पर्धकोंके अनन्तवे भाग पर्यन्त उनमें निरन्तर देशघाती स्पर्धक भी पाये जाते हैं ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि नौवें गुणस्थानवती क्षपकके द्वारा घात किये जानेसे अवशिष्ट रहे छह नोकपायोंकी अन्तिम फालीसे अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुके सम्बन्धसे जिनमें अविभागप्रतिच्छेद स्वीकार किये गये हैं, अशेष स्पर्धकपनेका सग्रह हानेसे जो द्विस्थानिकउनेका प्राप्त हैं और अधिक अविभागप्रतिच्छेदोके सम्बन्धसे जा सर्वघाति-

पतजहण्णफइदयाणं जहण्णहाणत्तम्हुवगमादो ।

⊗ सम्मतस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादि एगटठाणियं वा बुटठाणियं वा ।

§ २०२ देसणमोहणीयकत्ववणाए मिच्छल-सम्माभिच्छताणि स्वइय पुजा सम्मतं पि विणासिय कइकरणिज्जो होइण तस्स कइकरणिज्जस्स चरिमसमए सम्मतस्स जहण्णमणुभागसंतकम्मं त च देसघादि एगहाणियं उक्कस्सं पुज देसघादि विहाणियं । वारुसमाणसम्मतचरिमफइदयचरिमवभाजेगपरमाणुम्मि अविभागपक्खिदेद संत्वाए सदासमाणफइदयाणं पि संभवादो बुहाणियत्तं ण विरुक्कद । 'सम्मतस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं देसघादि एगहाणियं । उक्कस्साणुभागसंतकम्मं देसघादि वेहाणियं' ति एवममणिदणु सम्मतस्स अणुभागसंतकम्मं देसघादि एगहाणियं वा बुहाणियं वा ति किमिदि पुत्तं ? सम्मतानुभागसंतकम्मस्स जमहण्णस्स अनत्पाविसंसपहुप्पायणह । तं महा—अं सम्मतस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कइकरणिज्जस्स अपच्छिमउदयणिसेग द्विदमणुसमयमोवइणाए पादिवावसिद्धं तं देसघादि एगहाणियं । अं बुण जमहण्णं तं देसघादि एगहाणियं पि अत्थि, जइयस्सट्ठिदिसंतकम्मो सम्मतम्मि सेसे कइणुभागसंत

फ्लेको प्राप्त हुए हैं ऐसे अपन्य स्वर्लोकोंका नहीं अपन्य स्वान रबीकार किया गया है ।

⊗ सम्यक्त्वका अनुभागसत्कर्म देशपाती है और एक स्थानिक तथा द्विस्थानिक है ।

§ २१ वरान्तमोहनीयकी अणुभाके समय मिच्छाल और सम्मभिच्छालका जय करे पुन सम्मक्त्व प्रकृतिका भी नारा करके कृतकृत्य होकर, उस कृतकृत्यक अस्थिम समयमें सम्यक्त्वका अपन्य अनुभाग सत्कर्म हाता है । यह अपन्य अनुभागसत्कर्म देशपाती और एक-स्थानिक होता है तथा कृतकृत्य अनुभागसत्कर्म देशपाती और द्विस्थानिक हाता है । सम्यक्त्वका हासमान अस्थिम स्वर्लोककी अस्थिम वर्गोंका एक परमाणुमें या अविभागी प्रविच्छद्योंकी संख्या है उसमें सताममान स्पष्टक भी संभव हैं अतः उसके द्विस्थानिक हानन काइ विरोध नहीं है ।

संज्ञा—सम्यक्त्वका अपन्य अनुभागसत्कर्म देशपाती और एकस्थानिक है और कृतकृत्य अनुभागसत्कर्म देशपाती और द्विस्थानिक है ऐसा न कहकर सम्यक्त्वका अनुभागसत्कर्म देशपाती और एकस्थानिक तथा द्विस्थानिक है ऐसा क्यों कहा है ?

समाधान—सम्यक्त्वके अणुअपन्य अनुभागसत्कर्मकी अवस्था विरोध बतलानेके लिये उम प्रकार नहीं कहा है । यह अवस्था विरोध इस प्रकार है—कृतकृत्य जीवक सम्यक्त्वका जो अपन्य अनुभागसत्कर्म उदयप्राप्त अस्थिम निषेकमें स्थित है या कि प्रथिममय अन्तर्गतके द्वारा प्राप्त हावे हावे अचरित रहता है यह देशपाती और एकस्थानिक है । किन्तु या अपन्य अनुभाग सत्कर्म है यह देशपाती और एकस्थानिक भी है, क्योंकि सम्यक्त्वमें आठ वर्ष प्रमाण स्थिति-सत्कर्मके राय रह जाने पर उसका अनुभागसत्कर्म सताममान स्वर्लोकमें ही स्थित पाया जाता है, किन्तु उससे ऊपरक स्थिति सत्कर्मोंमें सम्यक्त्वका अनुभागसत्कर्म है या देशपाती ही किन्तु द्विस्थानिक है । मारंसा यह है कि सम्यक्त्वका अपन्य अनुभागसत्कर्म या देशपाती और एक स्थानिक ही है किन्तु अपन्य अनुभागसत्कर्म देशपाती होने पर भी एकस्थानिक भी है

कम्मस्स लदासमाणफट्ठणसु चेव अवट्ठाणुवलंभादो । तद्वरिमट्ठिट्ठिसंतकम्मेषु सम्म-
त्ताणुभागसतकम्म देमघादि चेव कित्तु वेट्ठाणियं । एवविट्ठिमेषजाणावणट्ठं ण कट्ठ
जहण्णुकस्सविसेसणं ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स अणुभागसंतकम्म सव्वघादि दुट्ठाणिय ।

१ २०३. एत्थ जहण्णुकस्साणुभागसतकम्मविसेसणं क्खिण्ण कय ? ण, तस्स
फलाभावादो । सम्मामिच्छत्ते खविज्जमाणे चरिमाणुभागकट्ठए सम्मामिच्छत्तस्स जह-
ण्णमणुभाग-सतकम्म त पि सव्वघादि दुट्ठाणिय चेव । तदणुभागफट्ठएसु अस्खवणा-
वत्थाए खवणावत्थाए वा देसघाटीए फट्ठयाणमभावादो । उक्खस्साणुभागसंतकम्मं पि
सव्वघादि दुट्ठाणिय चेव, तेण जहण्णुकस्साणुभागाण दुट्ठाणियसव्वप्रादित्तणंदि विसेसो
णत्थि त्ति ण कय जहण्णुकस्सविसेसण ।

❀ एकक चेव ट्ठाणं सम्मामिच्छत्ताणुभागस्स ।

२०४. एकक दास्समाणाणुभागट्ठाण चेव होदि, लदा--अट्ठि--सेलसमाणाणु-
भागफट्ठयाण तत्थ अभावादो । एगट्ठाणमिट्ठि वुत्ते सव्वत्थ लदासमाणफट्ठयाण चेव
जेण गहणं तेणेत्य वि 'एकक चेव ट्ठाण' इदि वुत्ते लदासमाणफट्ठयाण गहणं किरएण
कीरटे ? ण, अणतराडक्कतमुत्तेण 'सम्मामिच्छत्ताणुभागसंतकम्मं सव्वघादि दुट्ठाणिय'

और द्विस्थानिक भी है । सम्यग्भवकी आठ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रहनेपर एकस्थानिक होता है,
और उससे अधिक स्थिति शेष रहने पर द्विस्थानिक होता है । यह विशेष बतलानेके लिये जघन्य
और उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाये ।

* सम्यग्मिथ्यात्वका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक है ।

२०३. शंका—यहाँ अनुभागसत्कर्मके साथ जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण क्यों नहीं लगाये ?
समाधान—नहीं, क्योंकि उसका कुछ फल नहीं है ।

§ २०३ सम्यग्मिथ्यात्वका क्षण करने पर अन्तिम अनुभागकाण्डकमे सम्यग्मिथ्यात्वका
जो जघन्य अनुभागसत्कर्म है वह भी सर्वघाती और द्विस्थानिक ही है । उसके अनुभागस्पर्धकोंमें
अक्षणवस्थामे अथवा क्षणवस्थामे देशघाती स्पर्धकोंका अभाव है । तथा उत्कृष्ट अनुभाग
सत्कर्म भी सर्वघाती और द्विस्थानिक ही है । अतः जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागोंमें द्विस्थानिकपने
और सर्वघातिपनेकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों ही अनुभाग सर्वघाती और
द्विस्थानिक हैं, इसलिये जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाये ।

* सम्यग्मिथ्यात्वके अनुभागका एक ही स्थान होता है ।

§ २०४ सम्यग्मिथ्यात्वका एक दाससमान अनुभागस्थान ही होता है क्योंकि लतासमान,
अस्थिसमान और शैलसमान अनुभाग स्पर्धकोंका उसमे अभाव है ।

शंका—'एकस्थान' ऐसा कहने पर उससे सब जगह लतासमान स्पर्धकोंका ही ग्रहण
होता है अतः यहाँ पर भी 'एकही स्थान' ऐसा कहनेसे लतासमान स्पर्धकोंका ग्रहण क्यों नहीं
किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा अर्थ ग्रहण करने पर पहले कहे गये 'सम्यग्मिथ्यात्वका

इच्छेदेण सह विरोहादो । न च सदासमाणफइदपसु सम्बन्धादिचमत्स्य, वराजुर्णभादो । तेज 'एकं चैव द्वानं' इति युते दाससमाणफइदयार्ण चैव गइणं कायम् । अदिसमाण-फइदयार्णं सैतसमाणफइदयार्णं वा गइणं कियण कौरडे ? न, अर्पातरादीदसुचम्मि ससुइदददुहाणियगिइदेसेण सह विरोहादो । अदि अदिसमाणमेकद्वानमिदि पेप्पदि तो सम्मामिच्छवाजुभागसंतकम्मं तिद्वानियं होज्ज, सदा-दास-अदिसमाणफइदयार्ण-भागविभागपकिच्छेत्सत्त्वाप पइसिं पइच्च फइदयभापसुनगयार्णं कसुपलभादो । अदि सैससमाणद्वानमेकं द्वानमिदि पप्पदि तो पि तेण सह विरोहो, चदुहाणियसस दुहाणियचविरोहादो । अदि सम्मामिच्छवाजुभागसंतकम्मं दुहाणियं चप तो 'एकं चैव द्वानं' इति किमदं भण्णवे ? सम्मामिच्छचफइदपसु सदासमाणफइदयार्णं पदि सेइद । अदि एवं तो मिच्छचमइप्पाजुभागसंतकम्मसस सम्बन्धादिदुहाणियसस पि एकं द्वानमिदि पत्तम् ? न, एदम्भादो चैव मिच्छच-मारसकसायार्णं जइययाणुभागसस एम-द्वानपत्तं जम्बदि चि क्त्य कदजुवदसादो ।

अनुमान संकर्म सर्वाधी और द्विस्थानिक हाता है इस सूत्रके साथ विरोध आता है । यदि कहा जाय कि लतासमान स्पर्शक्रमे मी सर्वाधीपना है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि लता-समान स्पर्शक्रमे सर्वाधीपना नहीं पाया जाता है । अतः 'एक ही स्थान' हाता है ऐसा कहने पर शकसमान स्पर्शकोका ही ग्रहण करना चाहिये ।

शुद्धा—'एक स्थान' से अस्थिसमान स्पर्शकोका अथवा शैलसमान स्पर्शकोका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं क्योंकि इस कथनका अन्तर अतीव सूत्रमें कह गये द्विस्थानिक निरेश क साथ विरोध आता है । इतीको स्पष्ट करते हैं—यदि एक स्थानसे अस्थिसमानका ग्रहण किया जाता है वा सम्मामिच्छात्वका अनुभागसकर्म त्रिस्थानिक वा मायगा क्योंकि लतासमान शकसमान और अस्थिसमान स्पर्शकोके अनुभागके अविभागीप्रविच्छदोकी संख्यामें पची हुई रश्मि-अपेक्षा स्पर्शक्रमावका प्राप्त हुए निरेश कहां पाये जाते हैं । यदि एक स्थानसे शैलसमान स्थानका ग्रहण किया जाता है वा मी पूव सूत्रकथनक-साथ इसका विरोध आता है क्योंकि बहुत स्थानिक द्विस्थानिक ज्ञानमें विराय है ।

शुद्धा—यदि सम्मामिच्छात्वका अनुभागसकर्म द्विस्थानिक ही है वा सूत्रम 'एक ही स्थान' ऐसा क्यों कहा है ?

समाधान—सम्मामिच्छात्वक स्पर्शक्रमे लतासमान स्पर्शकोका प्रतिपेध करनेक सिद्धे ऐसा कहा है ।

शुद्धा—यदि ऐसा है वा मिच्छात्वका अपन्य अनुभागसकर्म मी सर्वाधी और द्विस्थानिक है अतः इसका भी 'एकस्थानिक' ऐसा कहना चाहिये ।

समाधान—नहीं क्योंकि इतीसे मिच्छात्व और वाह्य कयार्णको अपन्य अनुमान एक स्थानिक है, यह जान लिया जाता है अतः उसका कथन करते समय इस बातका निरेश नहीं किया है ।

❀ चदुसंजलणाणमणुभागसंतकम्मं सव्वघादी वा देसघादी वा एणं-
ट्टाणियं वा दुट्ठाणियं वा तिट्ठाणियं वा चउट्ठाणियं वा ।

§ २०५. एत्थ जहण्णकस्सविसेसणमणुभागसतकम्मस्स काऊण पस्सवणा किण्ण
कदा ? ण, अणुभागसंतस्स विसेसपदुप्पायणट्ठं तदकरणादो । खवणाए किट्ठीकरणादो
हेट्ठा सव्वत्थ संसारावत्थाए चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं सव्वघादी चेव, संतकम्मचरिम-
फइयचरिमक्कणाए एगपरमाणुधरिदाविभागपलिच्छेदाणं गहणादो । तेण चदुसंजल-
णाणुभागसंतकम्मं सव्वघादि त्ति सुत्तवयणं सुसमंजसं । खवगसेट्ठीए किट्ठिकरणे णिट्ठिदे
मोहणीयसुवरि सव्वत्थ जेण देसघादी तेणं चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मं देसघादि त्ति
सुत्तम्मि परुविदं । खवगसेट्ठीए पुव्वापुव्वफइएसु णवकवंधवज्जेसु किट्ठिसरूवेण परिण-
देसु ततो प्पहुट्ठि लदासमाणुभागसंतकम्म चेव जेणुवल्लब्भट्ठि तेण एगट्टाणियमिट्ठि
चदुसंजलणसंतकम्मं परुविद । हेट्ठा अणुभागसतकम्मघाटवसेण एगट्टाणियं मोत्तूण
सेसट्टाणाणि लब्भंति त्ति दुट्टाणियं तिट्टाणियं चउट्टाणियं वा त्ति भणिट । सव्वे 'वा'
सद्दा 'च' सइत्थे दइत्त्वा ।

❀ इत्थिवेदस्स अणुभागसंतकम्मं सव्वघादी दुट्टाणियं वा तिट्टाणियं

* चार संज्वलन कपायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और देशघाती तथा
एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है ।

§ २०५ शंका—यहाँ अनुभागसत्कर्मके साथ जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण लगाकर कथन
क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनुभागसत्कर्मका विशेष बतलानेके लिये उसके साथ जघन्य और
उत्कृष्ट विशेषण नहीं लगाये हैं ।

क्षपणावस्थामें कृष्टिकरणक्रिया करनेके पूर्व सर्वत्र ससार अवस्थामें चार संज्वलन
कपायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती ही होता है, क्योंकि यहाँ सत्कर्मके अन्तिम स्पर्शककी
अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें स्थित अविभागीप्रतिच्छेदोंका ग्रहण किया है । अतः चार
संज्वलन कपायोंका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है यह सूत्रवचन बिल्कुल ठीक है । तथा क्षपक-
श्रेणीमें कृष्टिकरणक्रियाके निष्पन्न हो जाने पर आगे सर्वत्र मोहनीयकर्म देशघाती ही होता है,
अतः चार संज्वलन कपायोंका अनुभागसत्कर्म देशघाती है ऐसा सूत्रमें कहा है । क्षपकश्रेणीमें
नवकवधका छोडकर शेष पूर्व स्पर्शक और अपूर्व स्पर्शकोंका कृष्टिरूपसे परिणामन हो जाने पर
वहाँसे लेकर उनमें लता समान अनुभाग सत्कर्म ही पाया जाता है, अतः चार संज्वलन कपायोंके
अनुभागसत्कर्मको एकस्थानिक कहा है । तथा इससे पूर्व अनुभागसत्कर्मका घात हो जानेके
कारण जो एकस्थानिक अनुभाग होता है उसे छोडकर शेष स्थान पाये जाते हैं, इसलिये उसे
द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक कहा है । सूत्रमें आये हुए सब 'वा' शब्द 'च' शब्दके
अर्थमें जानने चाहिये ।

* त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म सर्वघाती तथा द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और

वा अठद्वाणियं वा ।

§ २०६ इत्यिवदस्साणुभागसंतकम्मं सम्बत्थ सम्बधादी चेव । कुदो ? अणियहि स्ववगस्स इत्यिवदधरिमाणुभागकडयप्पहुडि हेहा सम्भावत्थासु हिदमीनिस्स इत्यिवदाणु भागम्मि प्रादिअंतम्मि वि देसपादिचाणुपलभादो । किमह पादिअमाणं पि इत्यिव वेदाणुभागसंतकम्म दसपादिअमाणुहे सं ण पावदि ? सहावदो । ण सहावो पडिनोयणा ऋओ, सहावो ण वडनोयरो ति आरिसादो । सम्ब 'वा' सहा 'व' सहात्था ति । सं सम्ब पादी इत्यिवेदाणुभागसंतकम्मं दुहाणियं च तिहाणियं च चदुहाणियं चेदि संबंधो कायम्भा । एगहाणिय किण्ण हादि ? ण, तस्य सम्बपादिताभाषादा । इत्यिवेदाणुभागणं नहण्णेण वि सम्बधादिणा होदम्भं, अर्गतमिस्सिपदाणुभागो सम्बधादी चेव ति जिस्स- विदत्तादो । इत्यिवदाणुभागसंतकम्मं सम्बधादी चदुहाणियमिदि सुत्तां कायम्भं, चदुहाणिय संतकम्मम्मि एगहाणिय-दुहाणिय-तिहाणियाणुभागसंतकम्माणुपलभादो ति ? ण, एवं सुत्ते संत इत्यिवदाणुभागसंतकम्मस्स सम्बकासं चदुहाणियत्थपसंगादो । ण च एवं, संसारावत्थाए इत्यिवेदाणुभागसंतकम्मस्स कया वि दुहाणियस्स कया वि तिहाणियस्स चदुहाणियस्स वा उपलभादो । एदस्स सुत्तस्स विसयपकमणह चयरसुत्तं मणदि—

अनुस्थानिक होता है ।

§ २०६ स्त्रीवदका अनुमागसत्कर्म सवधसर्षपाती ही है, क्योंकि आमागुत्तिकरत्त रूपकके स्त्रीवदके अन्तिम अनुमागकण्डकेसे छेकर पूर्वकी सब अवस्थाओंमें स्थित जीवके स्त्रीवदके अनुमागकण्ड भाव होनेपर भी देशपातीपना नहीं पाया जाता है ।

प्रश्ना— पात होने पर भी स्त्रीवदका अनुमागसत्कर्म देशपातिस्पर्षकोके स्थानको क्यों नहीं पाता है ?

समाधान— उसका ऐसा स्वभाव ही है । और स्वसत्क विषयमें प्रश्न नहीं किया जा सकता क्योंकि 'स्वभाव तर्कका विषय नहीं है' ऐसा कार्यवचन है ।

सूत्रमें आये हुए सब वा शब्दोंका अर्थ और है । अतः स्त्रीवदका वह सर्षपाती अनुमाग-सत्कर्म त्रिस्थानिक त्रिस्थानिक और अतु-स्थानिक है ऐसा सम्बन्ध जगाना चाहिये ।

प्रश्ना— एकस्थानिक क्यों नहीं है ?

समाधान— नहीं क्योंकि एकस्थानिकमें सर्षपातीपनेका अभाव है । तथा स्त्रीवदका अपन्य अनुमाग भी सर्षपाती हाना चाहिये क्योंकि अन्यतर ही 'स्त्रीवदका अनुमाग-सवधपाती ही है' ऐसा कह आये हैं ।

प्रश्ना— 'स्त्रीवदका अनुमागसत्कर्म सवधपाती और अतु-स्थानिक होता है' ऐसा सूत्र बनाना चाहिये; क्योंकि अतु-स्थानिक अनुमागसत्कर्ममें एकस्थानिक, त्रिस्थानिक और त्रिस्थानिक अनुमागसत्कर्म पाये ही जाते हैं ।

समाधान— नहीं; क्योंकि ऐसा सूत्र हानेपर 'स्त्रीवदके अनुमागसत्कर्मका सहा अतु-स्थानिक होनेका प्रसंग आता है । किन्तु वह सदा अतु-स्थानिक नहीं होता, क्योंकि संसार व्यवस्था में स्त्रीवदका अनुमागसत्कर्म कभी त्रिस्थानिक, कभी त्रिस्थानिक और कभी अतु-स्थानिक पाया

१ वा मदी च (३) निवेदाद्यमोच वा मदी चरिच वेदाद्यमोच इति वाक ।

❀ मोत्तूण खवगचरिमसमयइत्थिवेदयं उदयणिसेगं ।

§ २०७. मोत्तूण सञ्चमित्थिवेदपदेससतकम्मं परसस्सेण सकामिय अविद्विजे चरिमसमयइत्थिवेदओ णाम त मोत्तूण हेदा इत्थिवेदाणुभागसतकम्मं सञ्चत्य सञ्चघादी दुहाणिय तिहाणिय चदुहाणिय वा होदि । चरिमसमयइत्थिवेदियस्स अणुभागसंतकम्मसरूपरूपणद्वमुत्तरमुत्ता भणदि —

❀ तस्स देसघादी एगट्ठाणिय ।

§ २०८. तस्स चरिमसमयसवेदयस्स इत्थिवेदाणुभागसंतकम्मं देसघादी एगट्ठाणिय च होदि, उदयमस्सत्तादो । उदयणिसेगाणुभागसतकम्मं देसघादि ति कुट्ठो णव्वदे ? ण, संजदासजदप्पहुदि उवरिमगुणट्ठाणेमु चदुसंजलण-णवणोऋसायाणुभागसंतकम्मस्स देसघादिफइयाणमुदयाभावे तत्थ अणुव्वय-महव्वयाणमन्यित्तिगोहादो । एगट्ठाणियमिदि कुट्ठो णव्वदे ? अतरररणरूढपढमसमए मोहणीयस्स एगट्ठाणियो वधो एगट्ठाणियो उदओ ति मुत्तणिहं सादो ।

जाता है । अथ इस सूत्रका विषय कहनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* मात्र अन्तिम समयवर्ती क्षपक स्त्रीवेदीके उदयगत निषेकको छोड़कर शेष अनुभाग सर्वघाती तथा द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है ।

§ २०७ छोड़कर. अर्थात् क्षपकश्रेणिमें स्त्रीवेदका जा प्रदेशसत्कर्म पररूपसे सकामित होकर स्थित है उसे अन्तिमसमयवर्ती स्त्रीवेद कहते हैं, उसे छोड़कर इसमें पूर्व स्त्रीवेदका जो अनुभागसत्कर्म है वह सर्वत्र सर्वघाती तथा द्विस्थानिक त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक होता है । अथ अन्तिम समयवर्ती स्त्रीवेदके अनुभागसत्कर्मका स्वरूप बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु उसका अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है ।

§ २०८ उसका अर्थात् अन्तिम समयवर्ती सवेदरूपा स्त्रीवेदमन्वन्धी अनुभागसत्कर्म देशघाती और एकस्थानिक होता है, क्योंकि वह उदयस्वरूप है ।

शका—उदयप्राप्त निषेकका अनुभागसत्कर्म देशघाती होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सयतासयतसे लेकर आगेके गुणस्थानोंमें चार सञ्चलन और नव नोकपायोंके अनुभागसत्कर्मके देशघाती स्पर्धकोंके उदयके आभावमें अणुव्रत और महाव्रतका अस्तित्व नहीं हो सकता । अर्थात् यदि इन गुणस्थानोंमें सञ्चलन और नौ नोकपायोंके देशघाती स्पर्धकोंका उदय न होता तो उनमें अणुव्रत और महाव्रत भी न होते । इससे जाना जाता है कि अन्तिम समयवर्ती सवेदकके स्त्रीवेदके उदयगत निषेक देशघाती होते हैं ।

शका—वह अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तरकरण कर चुकनेके प्रथम समयमें मोहनीय कर्मका एकस्थानिक बन्ध और एकस्थानिक उदय होता है इस सूत्र वचनके निर्देशसे जाना जाता है कि अन्तिम समयवर्ती सवेदकके स्त्रीवेदका उदयगत निषेक एकस्थानिक होता है ।

☉ पुरिसवेदस्स अणुभागसत्कम्म जहयस्यं देसपादी एगद्धाणियं ।
 १ २०६ कुदो ? पुरिसवेदोदण खवगसेहिमास्सेण चरिमसमपसवेदण वदे
 अनुभागसत्कम्ममि पुरिसवेदस्स जहण्णाम्हाणादो । दुचरिमादिसमपसु वद्धाणु
 भागसत्कम्मं जहण्णमिदि किण्ण गहिदं ? ण, चरिमसमयवद्धअणुमागादा दुचरिमादि
 समपसु वद्धाणुमागाणमणंतणुणत्तादो । तं कुदो णव्वदे ? चरिमसमयवद्धाणुमागादो
 त्तयेव उदयगदगोवुच्छाए अणुभागसत्कम्ममणंतणुणं, ततो सवेदयस्स दुचरिमाणु
 भागबंधो मणत्तणुणो, त्तयेव उदयगदगोवुच्छाए अणुभागसत्कम्ममणंतणुणं । एवं हेत्ता
 कमेण ओदारोदम्बं भाव पइमसमयअणुमकरणेण सि एवम्हादो मप्पावहुअसुत्तादो ।
 पुरिसवेदचरिमाणुभागकट्टयचरिमफासीए जहण्णमणुभागसत्कम्ममिदि किण्ण घप्पदि ?
 ण, तत्त्वणणुमागासस सव्वधादिवेद्धानिपस्स जहण्णत्ताणुवपणीदो । पुरिसवदचरिमबंधो
 देसपादी एगद्धाणिओ सि कुदो णव्वदे ? अंतरकरणकदपइमसमयप्पहुदि मोहणीपस्स
 बंधो वदओ च देसपादी एमहाणिओ सि सुत्तादो ।

☉ पुरुषवेदका अनन्य अनुभागसत्कर्म दक्षपाती और एकस्वानिक होता है ।

१ २ ९ क्योंकि पुरुषवेदके व्यवसे उपक्रमेण्य पर वद हुए अन्तिम समयवर्ती सर्ववृत्त
 द्वारा बोधा गया भा अनुभागसत्कर्म है इसमें पुरुषवेदका अनन्यपत्ता उपक्रम्य हाता है ।

संज्ञा—उपक्रम्य आदि समयमें बोधा गया जो अनुभागसत्कर्म है वह उपक्रम्य है एसा क्यों
 नहीं प्रह्य किया ?

समाधान—नहीं क्योंकि अन्तिम समयमें वद अनुभागसे द्विपरम आदि समयमें
 कर्मका प्राप्त हुआ अनुभाग अनन्तगुणा होता है, अतः इसका प्रहण नहीं किया ।

संज्ञा—वह कैसे जाना कि अन्तिम समयमें जानेवाले अनुभागवन्धसे क्यान्त्य समयम
 होनेवाला अनुभागकर्म अनन्तगुणा है ?

समाधान—अन्तिम समयमें वद अनुभागसे वही एवगत गोपुच्छाका अनुभागसत्कर्म
 अनन्तगुणा है । इससे द्विपरम समयमें जानेवाला अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है । इससे वही
 वदमत गोपुच्छाका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है । इस प्रकार अपूर्वकरक प्रथम समय पर्यन्त
 क्रमसं नीचे बतारना चाहिये । इस अस्पष्टताको बतानेवाले सूत्रसे जाना कि अन्तिम समयमें
 होनेवाले अनुभागवन्धसे क्यान्त्य समयमें जानेवाला अनुभागवन्ध अनन्तगुणा है ।

संज्ञा—पुरुषवेदके अन्तिम अनुभागकाण्डकी अन्तिम फासीमें जा अनुभागसत्कर्म है वह
 उपक्रम्य है एसा क्यों नहीं प्रह्य किया ?

समाधान—नहीं क्योंकि इसमें जो अनुभाग है वह सर्वपाती और द्विस्वानिक है अतः वह
 उपक्रम्य नहीं हो सक्या ।

संज्ञा—पुरुषवेदका अन्तिम वन्ध देशपाती और एकस्वानिक है यह किस प्रमाणसे
 जाना ?

समाधान—अन्तरकरण ५२ पुरुषके प्रथम समयसे लेकर माह्नीयका वन्ध और उदय
 देशपाती और एकस्वानिक हाता है इस सूत्रसे जाना ।

१ वा प्रती चरिमसमयवदण्ण इति वत्ता । २ वा प्रती दुचरिमतमपसु इति वत्ता ।

❀ उक्त्साणुभागसंतकम्म सञ्चघादी चतुद्दणियं ।

§ २१०. जहण्णुक्त्सविसेणमकाऊण इत्थिवेदस्सेव किण्ण वुत्त ? ण, एग-
द्दणियाणुभागस्स संभवे संते दुद्दण--तिद्दण--चउद्दणअणुभागसंतकम्माण णियमेण
संभवो अत्थि त्ति तद्दविहपरूवणाए फलाभावाटो । जदि एवं तो इत्थिवेद-चदुसंजल-
णाणं पि तद्द परूवणा ण फायव्वा, एगद्दणियाणुभागस्स अत्थित्त पडि विसेसा-
भावादो त्ति ? ण एस दोसो, तेहि सुत्तेहि अवसेसे जाणाविदे सते पुणो तद्दपरूवणाए
फलाभावादो । सेसं सुगमं ।

❀ णवुंसयवेदयस्स अणुभागसतकम्म जहण्णयं सञ्चघादी दुद्दणियं ।

§ २११. एदमोधजहण्णं' ण होदि कित्तु आदेसजहण्ण, णवुंसयवेदोदएण खवग-
सेहिमारूढस्स चरिमसमयसवेदियस्स उदयगदेगगोवुञ्छम्मि जहण्णाणुभागत्ताटो । एदं
जहण्णाणुभागसंतकम्म पुण कत्थ गहिदं ? णवुंसयवेदचरिमाणुभागकंडयम्मि । एत्थेव
गहिदमिदि कुदो णव्वदे ? देसघादी एगद्दणिय त्ति अभणिदूण सञ्चघादी दुद्दणिय-

* तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और चतुःस्थानिक होता है ।

§ २१० शंका—जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण न लगाकर स्त्रीवेदके समान निर्देश क्यों नहीं
किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पुरुषपदमे एकस्थानिक अनुभागके सभव होने पर द्विस्थानिक,
त्रिस्थानिक और चतुःस्थानिक अनुभागसत्कर्म नियमसे संभव है, इसलिए उसप्रकारसे कथन करने
में कोई फल नहीं होनेसे वैसा निर्देश नहीं किया ।

शंका—यदि ऐसा है तो स्त्रीवेद और चार सञ्ज्वलनकपायोंका भी उसप्रकारसे कथन नहीं
करना चाहिए, क्योंकि एकस्थानिक अनुभाग उनमें भी सभव है, इसलिये एकस्थानिक अनुभागके
अस्तित्वकी अपेक्षा उनमें और पुरुषपेदमें कोई अन्तर नहीं है । अर्थात् पुरुषपेदकी तरह स्त्रीवेद
और सञ्ज्वलनकपायमें भी एकस्थानिक अनुभाग पाया जाता है और जिसमें एकस्थानिक अनुभाग
संभव है उसमें द्विस्थानिक आदि अनुभाग नियमसे सभव हैं, अतः स्त्रीवेद और चार सञ्ज्वलनोंके
अनुभागसत्कर्मका कथन जिसप्रकार पिछले सूत्रोंमें कर आये हैं उसप्रकार नहीं करना चाहिए था ।

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि उन सूत्रोंसे अवशेष वातोंका ज्ञान करा देनेपर
पुनः उस प्रकारसे कथन करनेमें कोई फल नहीं है । शेष सुगम है ।

* नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और द्विस्थानिक होता है ।

§ २११ यह शोध जघन्य नहीं है किन्तु आदेश जघन्य है, क्योंकि ओघसे नपुंसक वेदके
उदयसे नपुंसकश्रेणी पर चढ़े हुए अन्तिम समयवर्ती सपेदी जीवके उदयगत एक गोपुच्छामें जघन्य
अनुभाग होता है ।

शंका—ता फिर यह सूत्रोक्त जघन्य अनुभागसत्कर्म कहा ग्रहण किया है ।

समाधान—नपुंसकवेदके अन्तिम अनुभागकाण्डकमें यह जघन्य अनुभागसत्कर्म ग्रहण
किया है ।

शंका—उसे यहाँ ही ग्रहण किया है यह किस प्रमाणसे जाना ?

मिदि यणिव्वादो ।

⊗ उहस्सपमणुभागसत्तकम्मं सम्भवादी चठट्ठाणियं ।

§ २१२ सुगममेदं, असई पक्खिव्वादो ।

§ २१३ संपहि वुवदोसुघाणं विसयपक्खणदुवारेण अपवावपरूपणहमुत्तरसुत्त मज्झि—

⊗ षव्वरि खव्वगस्स चरिमस्समयणुसुपवेवपस्स अणुभागसत्तकम्म वेसवादी एगट्ठाणियं ।

§ २१४ कुदो ? परिमफासि परसस्सेण संकामिय उवयगत्तएग्गुणसेव्विगो पुष्पाए द्विदमणुभागसत्तकम्मस्स ग्गहणादो ।

§ २१५ एवं मइपसहाइरियपक्खिव्दमहणुक्कस्साणुभागविसयपादिसण्णाद्वाण सण्णाणं पक्खणं काऊण संपहि उव्वारणाइरियवत्तसाणकम्मं^१ पक्खेमो—

§ २१६ तस्य सण्णा दुविहा—पादिसण्णा द्वाणसण्ण, वेदि । पादिसण्णा दुविहा—महण्णा उहस्सा वेदि । उहस्सए पयटं । दुविहो गिहे सो—ओपेण आद सेण । तस्य आपेण मिच्छत्त सम्मामि चारसक०—इण्णोक० उह० मणुक्क० सम्भवादी । सम्भ० उह० मणुक्क० वेसपादी । चहुसंजसण-विण्णिवेद० उह० सम्भवादी मणुक्क०

समाधान—क्योंकि सूत्रम देशपाठी और एकस्थानिक न कह कर सभपाठी और द्विकस्थानिक कहा है इससे जाना कि यह सूत्रोक्त कथन्य अनुभाग नपुंसकवचके अन्तिम अनुभागकाण्डकर्म प्रत्यक्ष किया है ।

⊗ तथा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वभाषी और क्तुःस्थानिक होता है ।

§ २१० इस सूत्रका अर्थ सुगम है क्योंकि अनेक बार उसे कह चुके हैं ।

§ २१२ अब उक्त वा सूत्र के विषयकी प्रकृत्याके द्वारा अपवावका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र करते हैं ।

⊗ इतना विशेष है कि अन्तिम समयवर्ती नपुंसकवचदी सभपाठी अनुभागसत्कर्म देशपाठी और एकस्थानिक होता है ।

§ २१४ क्योंकि अन्तिम फलीका पररूपसे संकमाकर उवयगत एक गुणमेव्विगोपुष्पामे स्थित अनुभागसत्कर्मका वहाँ प्रत्यक्ष किया है ।

§ २१५ इस प्रकार आचार्य अतिदुपमके द्वारा प्ररूपित जपम्य और उत्कृष्ट अनुभाग विषयक पादिसंज्ञा और स्थानसंज्ञाका कथन करके अब उव्वारणाचार्यके द्वारा किये गये व्याख्यानकर्मको करते हैं—

§ २१६ संज्ञा दो प्रकारकी है—वापिसंज्ञा और स्वाणसंज्ञा । वापिसंज्ञा वा प्रकारकी है—उव्वय्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देरा दो प्रकारका है—ओप और आत्थेरा । इनमेंसे ओपसे मिच्छात्त सम्पयिमिच्छात्त चारु कपाव और इ नोक्कवावोक्क उत्कृष्ट और अनुक्क अनुभागसत्कर्म सर्वभाषी है । सम्पक्कप्रकृतिवा उत्कृष्ट और अनुक्क अनुभागसत्कर्म

सव्वघादी वा देसघादी वा ।

१ २१७. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसं पयढीणमुक्क० अणुक्क० सव्वघादी । सम्मत्त० उक्क० अणुक्क० देसघादी । सम्मामि० उक्क० सव्वघादी । अणुक्कस्साणुभागसंतकम्मं णत्थि, दंसणमोहक्खवणं भोत्तण अण्णत्थ सम्मत्त--सम्मामिच्छताणमणुभागकंडयघादा-भावादो । एवं पढमपुढ्वि-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव०-सोह-म्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति । विद्यादि जाव सत्तमि ति एव चेव । णवरि सम्मत्त० अणुक्क० णत्थि, कदकरणिज्जाण तत्थुववादाभावादो । एव पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-पंचि०तिरि०अपज्ज०--मणुसअपज्ज०-भवण०--वाण०--जोदिसिय ति । मणुसतिपस्स ओघभंगो । णवरि मणुसपज्जत्तएसु इत्थि० उक्क० अणुक्क० सव्वघादी । कुदो ? परोदएण खवगसेठीए णिल्लेविदत्तादो । मणुस्सिणीसु पुरिस०-णवुंस० उक्क० अणुक्क० सव्व-घादी । कुदो ? खवगसेठीए परोदएण णट्ठत्तादो । एव जाणिदृण णेट्ठवं जाव अणाहारि ति ।

१ २१८. जहण्णए पयदं । दुवि०—ओघे० आदे० । तत्थ ओघेण मिच्छत्त०-सम्मामि०--वारसक०--छण्णोक० ज० अज० सव्वघादी । सम्मत्त० ज० अज० देस-घादी । पुरिस०-चदुसंज० ज० देसघादी । अज० देसघादी सव्वघादी वा । चदुण्हं

देशघाती है । चार सज्वलन कपाय और तीनों वेदोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती और देशघाती है ।

१ २१७ आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयकी छव्वीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनु-भाग सत्कर्म सर्वघाती है । सम्यक्त्वप्रकृतिका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म देशघाती है । सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है । किन्तु नरकमें उसका अनुत्कृष्ट अनुभाग-सत्कर्म नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहके क्षणके सिवाय अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका अनु-भागकाण्डकघात नहीं होता । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यश्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च पर्याप्त, देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक भी ऐसा ही समझना चाहिये । किन्तु इतना विशेष है कि यहा सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता, क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंका वहा उत्पाद नहीं हाता । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यश्चयोनितो, पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए । तीन प्रकारके मनुष्योंमें ओघके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है, क्योंकि इनके क्षणकश्रेणीमें परादयसे उसका विनाश होता है । तथा मनुष्यनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म सर्वघाती है, क्योंकि इनके क्षणकश्रेणीमें परादयसे उन दोनोंका विनाश होता है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

१ २१८ अब जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमें से ओघसे मिध्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व, वारह कषाय और छ नोकषायोंका जघन्य और अजघन्य अनुभाग सत्कर्म सर्वघाती है । सम्यक्त्वका जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्म देशघाती है ।

संज्ञकभाष्यं किञ्चित्प्रमाणमपि विण्हायमजहण्णाशुभागस्तु होतु गाम वसपादित्त, ण पुरिसवेदस्स, फरयसकवेण विण्हावातो ? ण, पुरिसवदस्स वि दुसमपूणवोमावक्षिय मेत्तकालं देसयादिमजहण्णाशुभागफरयाणमुत्तभादो । इत्थि०-णवुंस० अह० देस घाटी । अजहण्णं सम्भपादी । एवं मणुसतियम्मि । णवरि मणुसपञ्च० इत्थि० अहण्णा महण्ण० सम्भपादी मणुसिणीसु पुरिस०-णवुंस० अहण्णामहण्ण० सम्भपादी ।

§ २१६. आदेशेण भिरयादि भाव सम्बद्धसिद्धि चि उक्तस्तर्भगो । णवरि अहण्णाप्रहण्णं ति भाणित्त्वं । एवं भाणित्त्वं णपञ्चं भाव अणाहारि ति ।

§ २२. द्वापसण्णा दुबिहा—अहण्णा उक्तस्ता चेदि । उक्तस्तप पपई । दुबिहो णिहोसो—ओषेण आदेशेण य । ओषेण मिच्छत्त—धारसक०—अण्णोक० उक्त० चउ द्वाणियं । अणुक्त० चउद्वाणियं तिद्वाणियं वेद्वाणियं वा । सम्भत्त० उक्त० वेद्वाणियं । अणुक्त० वेद्वाणियं एगद्वाणियं वा । सम्भामि० उक्तस्ताणुक्तस्तं० वेद्वाणियं । चतुष्पं संमल्लणार्णं तिण्णं वेद्वाणमुक्त० चतुद्वाणियं । अणुक्त० चतुद्वाणियं वा तिद्वाणियं वा विद्वाणियं वा एगद्वाणियं वा । एवं मणुसतिये । णवरि मणसपञ्च० इत्थिवदस्स एग-

पुठपवेद और चार संज्ञकन कपायोल्ल अहण्ण अनुभाग देरपाती है और अज्ञपन्थ अनुभाग देरपाती और सर्वपाती है ।

शिक्षा—चारों संज्ञकन कपाय कृष्टिपनेत्र प्राप्त होकर नष्ट जाती हैं अतः उनका अज्ञ पन्थ अनुभाग देरपाती शब्दा क्रिस्तु पुठपवेदका अज्ञपन्थ अनुभाग देरपाती नहीं है सकला क्योंकि पर्वकुरुते उक्तका निगारा हाहा है ।

समाधान—नहीं क्योंकि पुठपवेदके भी वा समब कम दो भावली मात्र कल तक देरपाती अज्ञपन्थ अनुभागस्यर्षक पावे जाते हैं ।

स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका अज्ञपन्थ अनुभागसत्कर्म देरपाती है और अज्ञपन्थ अनुभागसत्कर्म सर्वपाती है । इसी प्रकार मनुष्यके तीन भेदोंमें जानना चाहिए । इतना किरोप है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका अज्ञपन्थ और अज्ञपन्थ अनुभागसत्कर्म सर्वपाती है और मनुष्यनिधियोंमें पुठपवेद और नपुंसकवेदका अज्ञपन्थ और अज्ञपन्थ अनुभागसत्कर्म सर्वपाती है ।

§ २१९. आदेशसे मरकसे से इर सर्वांसिद्धि उक्तके जीवोंमें उक्तउक्ते समान मङ्ग है । इतना किरोप है कि उक्तउक्ते और अतुरकृष्टके स्वानमें अज्ञपन्थ और अज्ञपन्थ कहना चाहिए । इस प्रकार जानकर अनाहारी पन्थ से जामा चर्हिये ।

§ २. स्वानसंज्ञा वा प्रकारकी है—अज्ञपन्थ और उक्तउक्ते । यहाँ उक्तउक्ते प्रयासन है । निर्वेरा वा प्रकारका है—आंध और आदेश । ओषसे मिच्छत्त चारु कपाय और वृ नाकपायों का उक्तउक्ते अनुभागसत्कर्म चतुस्वपनिक है । अनुक्तउक्ते अनुभागसत्कर्म चतुस्वपनिक, त्रित्पानिक और त्रित्पानिक है । सम्भपत्तका उक्तउक्ते अनुभागसत्कर्म द्वित्पानिक है । अनुक्तउक्ते अनुभाग सत्कर्म द्विराधनिक और एकस्वपनिक है । सम्भमिच्छत्तका उक्तउक्ते और अनुक्तउक्ते अनुभागसत्कर्म द्वित्पानिक है । चार संज्ञकन कपाय और तीन वेदोंका उक्तउक्ते अनुभागसत्कर्म चतुस्वपनिक है । अनुक्तउक्ते अनुभागसत्कर्म चतुस्वपनिक त्रित्पानिक द्वित्पानिक और एकस्वपनिक है । इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चर्हिये । इतनी किरोपता है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें

द्वाणियं णत्थि । मणुसिणीसु पुरिस०-णउंसय० एगद्वाणियं णत्थि ।

§ २२१. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० चउद्वाणिय । अणुक० चउद्वाणियं तिद्वाणियं विद्वाणियं वा । सम्मत० उक्क० विद्वाणियं । अणुक० एगद्वाणियं । सम्मामि० उक्कसाणुकस्स० वेद्वाणियं । एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिदिय-तिरिक्ख-पचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव सहससारो ति । विटियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सम्मत० अणुक० एगद्वाणं णत्थि । एवं पंचिदियतिरिक्ख-जोणिणी-पचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसिए ति । आण-दादि जाव सव्वट्टसिद्धि ति छ्वीसं पयहीणं उक्क० अणुक० वेद्वाणियं । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताण देवोघभंगो । एव जाणिदूण णेट्ठवं जाव अणाहारि ति ।

§ २२२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिइ सो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-चारसक०-छण्णोक० जहण्णाणु० वेद्वाणियं । अज० वेद्वाणियं तिद्वाणिय चउद्वाणियं वा । सम्मत० ज० एगद्वाणियं । अज० एगद्वाणिय विद्वाणियं वा । सम्मामि० जहण्ण० अजहएणं पि विद्वाणियं । पुरिस०-चदुसज० जह० एगद्वाणियं । अज० एगद्वाणियं विद्वाणियं तिद्वाणिय चउद्वाणिय वा । इत्थि०-णवुंस० ज० एगद्वाणिय । अज० वेद्वाणियं

स्त्रीवेदका अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक नहीं है । तथा मनुष्यनियोंमें पुरुषवेद और नपुसक-वेदका अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक नहीं है ।

§ २२१ आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोंका उत्कृष्ट अनु-भागसत्कर्म चतु स्थानिक है और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म चतु स्थानिक, त्रिस्थानिक और द्विस्थानिक है । सम्यक्त्वका उत्कृष्ट अणुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है और अनुत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्म एकस्थानिक है । सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौवर्ग स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक नहीं है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जानना चाहिए । आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त छव्वीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सामान्य देवोंके समान भग है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ २२२ जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, बारह कपाय और छह नोकपायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है । अजघन्य अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतु स्थानिक है । सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग सत्कर्म एकस्थानिक है और अजघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक और द्विस्थानिक है । सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य और अजघन्य भी अनुभागसत्कर्म द्विस्थानिक है । पुरुषवेद और चार सज्वलन कषायोंका जघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक है और अजघन्य अनुभागसत्कर्म एकस्थानिक, द्विस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतु स्थानिक है । स्त्रीवेद और नपुसकवेदका जघन्य

तिहाणिय चवहाणिय वा । एयं मणुसतिय० । जवरि मणुसपक्कत्तेसु इत्थिबंद० अहण्ण० वेहाणियं । अजहण्ण० वेहाणियं तिहाणियं चवहाणियं वा । मणुसिणीसु पुरिस० प्पुंस० ज० वेहाणियं । अज० वेहाणियं तिहाणियं चवहाणियं वा ।

१ २२३ आदेसेण जेरइपसु इम्भीस पयडीयं ज० विहाणियं । अज० विहाणियं चवहाणियं वा । सम्मत्त० ज० एगहाणियं । अज० एगहाणियं विहाणियं वा । सम्मामि० ओयं । जवरि अहण्णामहण्णमेदा जत्थि । एयं पडमपुडवि-तिरिक्ख-पंचि दिवतिरिक्ख-पंचि० तिरि० पक्क०-वेय-सोइम्मादि भाष सहस्सारकप्पो ति । विदियावि भाष मत्तमि ति एयं वेव । जवरि सम्मत्त० अहण्णं गत्थि । एयं जोपिणी-पंचि० तिरि० अपक्क०-मणुसमपक्क भवण०-बाण०-ओदिसिओ ति । आणदादि भाष सम्बट्ट सिद्धि ति इम्भीसं पयडीयं ज० अज० वेहाणियं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोयमंगो । एयं जाणिरूप जेत्थं भाव अपाहारि ति ।

हाणसण्या समाप्ता ।

१ २२४ उत्तरपपट्टिअणुभागविहरीय तस्य इमाणि अभियोगहाराणि । तं महा-सम्भाणुभागविहरी जोसम्भाणुभागविहरी उक्खस्ताणुभागविहरी अणुक्खस्ताणुभागविहरी

अनुभागसत्कर्म एकस्वग्रन्थि है । अजप्रत्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतु-स्थानिक है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य मनुष्य परमेश और मनुष्यनिय में जानना चाहिए । इतना विशेष है कि मनुष्यपयात्रकोमें बीबेरका जपस्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक है । अज-प्रत्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतु-स्थानिक है । मनुष्यनियमोंम पुठपवेव और मनुसकवेवका जपस्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक है । अजप्रत्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक, त्रिस्थानिक और चतु-स्थानिक है ।

१ २२५ आदेशेन नार्यकियोमं प्रस्थास महुतियोका जपस्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक है । अजप्रत्य अनुभागसत्कर्म त्रिस्थानिक और चतु-स्थानिक है । सम्मत्तका जपस्य अनुभागसत्कर्म एकस्वग्रन्थि है । अजप्रत्य अनुभागसत्कर्म एकस्वग्रन्थि और त्रिस्थानिक है । सम्मत्तध्यात्व का आषके समान जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ इसमें जपस्य और अजप्रत्यका मेव नहीं है । इसी प्रकार पइली पृथिवी सामान्य तिर्यं पञ्चेन्द्रियतिर्यं, पञ्चेन्द्रियतिर्यं पर्याप्त एव और सौधम स्वर्गसे लेकर उरुसार कस्य तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीस अकर सातवीं पृथिवी तकके अरुकिपोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्मत्त महुतिका जपस्य मेव नहीं है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यं-ध्यामिणी पञ्चेन्द्रियतिर्यं अपयात्र मनुष्य अपयात्र भवनवासी ध्यन्तर और ध्यातिर्यियोंम जानना चाहिए । ध्यात स्वर्गसे लेकर सार्धपिद्धि तकके देवोंमें इम्भीस महुतियोका जपस्य और अजप्रत्य अनुभाग सत्कर्म त्रिस्थानिक है । सम्मत्त और सम्मत्तध्यात्वका भग आषक समान है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पयस्य तं जाना चाहिये ।

स्वानसंज्ञा समाप्त है ।

१ २२६ उत्तरपपट्टि अनुभागविहरीयें ये अनुभागद्वार हाव हैं । यथा-सहस्रानुभागविहरीय मासहानुभागविहरी, इह्य अनुभागविहरी, अनुरइह अनुभागविहरी, जपस्य अनुभागविहरी,

जहण्णाणुभागविहत्ती अजहण्णाणुभागविहत्ती सादियअणुभागविहत्ती अणादियअणु-
भागविहत्ती धुवाणुभागविहत्ती अद्धुवाणुभागविहत्ती एगजीवेण सामिचं फालो अंतरं
णाणाजीवेहि भगविचओ भागाभागाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो
काळो अतरं सएियायासो भावो अप्पावहुअं चेदि । भुजगार-पदणिकखेव-वड्डिविहत्ति-
ट्टाणाणि त्ति ।

§ २२५, तत्थ सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण
आदेसेण य । ओघेण अट्टावीसं पयहीणं सव्वाणि फदयाणि सव्वविहत्ती । तदूणाणि
णोसव्वविहत्ती । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ २२६, उक्कस्सविहत्ति-अणुकस्सविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण
आदेसेण य । ओघेण अट्टावीसं पयहीणं सव्वुक्कस्सचरिमफदयचरिमवग्गणाणुभागो उक्कस्स-
विहत्ती । तदूणो अणुकस्सविहत्ती । एव जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ २२७, जहण्णाजहण्णविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण
य । ओघेण सव्वासिं पयहीणं सव्वजहण्णट्टाणस्स चरिमवग्गणाणुभागो चरिमकिट्ठि-
अणुभागो वा जहण्णविहत्ती । तदुवरिमजहण्णविहत्ती । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव
अणाहारि त्ति ।

§ २२८, सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदे-
सेण । ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०--अट्ठक० उक्क० अणुक० ज० अज० किं

अजघन्य अनुभागविभक्ति, सादि अनुभागविभक्ति, अनादि अनुभागविभक्ति, ध्रुव अनुभागविभक्ति,
अध्रुव अनुभागविभक्ति, एक जीव की अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा
भङ्गावेचय, भागाभागानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, काल, अन्तर, सन्निकर्ष,
भाव और अल्पबहुत्व । तथा भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धिविभक्ति और स्थान ।

§ २२५ उनमेंसे सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्तिक अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका
है—ओघ और आदेश । ओघसे अट्टाईस प्रकृतियोंके सब स्पर्धक सर्वविभक्ति हैं । उनसे कम
स्पर्धक नोसर्वविभक्ति हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ २२६ उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका
है—ओघ और आदेश । ओघसे अट्टाईस प्रकृतियोंके सबसे उत्कृष्ट अन्तिम स्पर्धकोंकी अन्तिम
वर्गणाओंका अनुभाग उत्कृष्टविभक्ति है । उससे कम अनुभाग अनुत्कृष्टविभक्ति है । इस प्रकार
जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

§ २२७ जघन्य और अजघन्य विभक्तिअनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—
ओघ और आदेश । ओघसे सब प्रकृतियोंके सबसे जघन्य स्थानकी अन्तिम वर्गणाका अनुभाग
अथवा अन्तिम कृष्टिका अनुभाग जघन्य विभक्ति है । उससे ऊपरका अनुभाग अजघन्यविभक्ति
है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ २२८, सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—
ओघ और आदेश । ओघसे मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और आठ कषायोंका उत्कृष्ट,
अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य अनुभाग क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या

सादिमो किमणादिमो किं ध्रुवो किमइध्रुवो वा ? सादी अइध्रुवो । षदुसंमस०—गम
 षोक्तसाय० सक० अणुक० ज० किं सादिया किमणादिया किं ध्रुवा किमइध्रुवा ?
 सादि अइध्रुवा । अम० किं सादिया किमणादिया किं ध्रुवा किमइध्रुवा ? अणादिया
 ध्रुवा अइध्रुवा वा । अर्णताणु० षसक० उक० अणुक० ज किं सादिया अणादिया
 ध्रुवा अइध्रुवा ? सादि-अइध्रुवा । अम० किं सादि० अणादि० ध्रुवा अइध्रुवा ?
 सादि० अणादि० ध्रुवा अइध्रुवा वा । आवेसम्मि सम्बपपदीण सम्बपदा० सादि
 अइध्रुवा । एवं नाणित्थं पेद्व्वं आम अणाहारि ति ।

⊗ पगजीबेण सामित्त ।

§ २२६. सम्बधिहृत्पिअहियारे अमणित्थं पगजीवेण सामित्त च व किमिदि
 अइसहाइरिपो अणादि ? ग, अइणुकुस्तसामित्तेसु पक्खिदेसु तसि पि अबममा हादि
 ति त्थपस्सपादा । ज च अवगयमत्थपस्सवयं सुत्तं भवदि, अइणसंगादो ।

⊗ मिक्कत्तस्स उक्कत्ताणुभागासंतकम्मं कस्स ?

§ २३० एदं पुष्पासुत्तं सम्बमगाणाहि सम्भागाहणाहि विसेसिदमीव
 पवेनसदे । सेसं सुगमं ।

क्या अभुव है ? सादि और अभुव है । चार संभ्रसन और नव श्लोकपायोंका उत्कृष्ट, अनुकृष्ट और
 अल्प अन्तुमाग क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या भुव है अथवा क्या अभुव है ? सादि और
 अभुव है । अल्प अन्तुमाग क्या सादि है क्या अनादि है, क्या भुव है अथवा क्या अभुव है ?
 अणादि भुव और अभुव है । अनन्तानुत्तं भां अनुकृष्टा उत्कृष्ट अनुकृष्ट और अल्प अन्तुमाग
 क्या सादि है, क्या अनादि है क्या भुव है अथवा क्या अभुव है ? सादि और अभुव है । अल्प-
 अन्तुमाग क्या सादि है, क्या अनादि है क्या भुव है अथवा क्या अभुव है ? सादि, अनादि
 भुव और अभुव है । आवेरासे सब महत्तियोंके सब पक्ष सादि और अभुव हैं । इस प्रकार जान-
 कर अमाहारी पर्यन्त से जाना चाहिये ।

⊗ एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वका प्रकरण है ।

§ २२९ सुक्का—सबविमत्ति आदि अभिकारोंको न कहकर आचार्य यतिरूपम एक जीवकी
 अपेक्षा स्वामित्वका ही क्यों कहते हैं ?

समाधान—न्हीं क्योंकि अल्प और उत्कृष्ट स्वामित्व का कथन कर देने पर छन्द भी
 ज्ञान हावाता है, इसलिये शेष अभिकाराका प्ररूपण नहीं किया है । यदि कहा जाय कि
 स्वामित्व के प्ररूपसे जनका ज्ञान हाजाने पर भी उनका कथन कर द्य ता क्या हानि थी ।
 किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि यह सूत्र मन्व है और जा जान हुए अर्थ का कथन
 करता है यह सूत्र नहीं हा सक्ता अथवा अतिप्रसंग शेष आवेगा अथवा यदि जाने हुए अर्थ
 का कथन करनेवाला मन्व भी सूत्र कहा जा सक्ता है ता पित्त कई मर्वादा ही नहीं ररगी ।

⊗ मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अनुभागासत्त्वर्ष किसके हाता है ?

§ २३ यह पुष्पासूत्र सब मार्ग्याधों और सब अर्थाहानियों से मुक्त जीव की कपसा
 करता है । अथवा सामान्य जीव की अपेक्षा करता है । शेष अर्थ सुगम है ।

❀ उक्स्साणुभागं बधिदूण जाव ण हणदि ।

§ २३१. उक्स्ससकिलेसेण उक्स्समणुभाग बधिदूण जाव तं कडयघादेण ण हणदि ताव तस्स उक्स्साणुभागसतकम्मं होदि । सो उक्स्साणुभागवधो कस्स होदि ? सण्णिपंचिदियपज्जत्तसव्वुक्स्ससकिलेसमिच्छाइट्ठिस्स । जदि एवं तो एवविधो उक्स्साणुभागबंधओ त्ति किण्ण परूविदं ? ण, अवुत्ते वि आइरिओवदेसादेव जाणिज्जदि त्ति तदपरूवणादो । सो जाव तमुक्स्साणुभागसंतकम्मं कंडयघादेण ण हणदि ताव तेण कत्थ कत्थ उप्पज्जदि त्ति वुत्ते तण्णिण्णयत्थमुत्तरसुत्तं भणदि ।

❀ ताव सो होज्ज एइदिओ वा वेइदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा ।

§ २३२. तेणुक्स्ससंतकम्मेण सह काल कादूण एइदिओ होज्ज, वीइंदिओ तीइदिओ चउरिदिओ असण्णिपंचिदिओ सण्णिपंचिदिओ वा होज्ज; उक्स्साणुभागसंतकम्मेण सह एदेसिं विरोहाभावादो । एइदिया बहुविहा वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-भेयेण । तत्थ केसिं गहणं ? सव्वेसिं पि । कुदो ? सुत्तम्मि विसेसणिदे साभावादो । एवं वेइंदियादीणं पि वत्तव्वं । एदस्स सुत्तस्स अपवादट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि ।

❀ जो उत्कृष्ट अनुभागका बध करके जब तक उसका घात नहीं करता है ।

§ २३१ उत्कृष्ट सक्केशसे उत्कृष्ट अनुभागका बध करके जब तक उसे काण्डकघातके द्वारा नहीं घातता है तब तक उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है ।

शंका—वह उत्कृष्ट अनुभागबन्ध किसके होता है ?

समाधान—सर्वोत्कृष्ट सक्केशवाले सञ्जी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टिके होता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो 'जो इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका बधक है उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है' इस प्रकार क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नहीं कहने पर भी अचार्यके उपदेशसे ही यह बात ज्ञात हो जाती है, अतः उसका कथन नहीं किया है ।

वह जीव जब तक उस उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मको काण्डकघातके द्वारा नहीं घातता है तब तक वह कहाँ कहाँ उत्पन्न होता है ऐसा प्रश्न करने पर उसका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ तव तक वह एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी अथवा संज्ञी होता है, उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है ।

§ २३२ उत्कृष्ट अनुभाग मत्कर्मके साथ मरण करके वह जीव एकेन्द्रिय होता है, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अथवा सञ्जी पञ्चेन्द्रिय होता है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्मके साथ इन पर्यायोंका कोई विरोध नहीं है ।

शंका—वादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे एकेन्द्रिय जीव अनेक प्रकारके हैं । उनमेंसे किसका ग्रहण किया है ?

समाधान—सभीका ग्रहण किया है, क्योंकि सूत्रमें किसी विशेषका निर्देश नहीं है ।

इसी प्रकार दोइन्द्रियादिकके सम्बन्धमें भी कहना चाहिये । अब इस सूत्रके अपवादके

❁ असत्वेऽवस्तावप्यसु मणुस्तोषवादिपदेवेषु च पस्थि ।

§ २३३ असत्वेऽवस्तावप्यसु चि बुधे भागभूमिपतिरिक्त्व-मणुस्साणं गहणं, ण दम-गेरइयणं । कुद्रो ? रुडिबसादो । भोगमूर्म सु आसप्यिणी-उसप्यिणीगमवसाणे आदीए च संसेऽवस्तावमतिरिक्त्व-मणुस्साणं पि अद्रा चेष असत्वेऽवस्तावअर्ष । बुप्यतिभिरवक्त्वा असत्वेऽवस्तावअसदो भोगभूमिपतिरिक्त्व-मणुस्सेसु संसज्ज वस्तावप्यसु असत्वेऽवस्तावप्यसु च बहदि चि मणिर्दं हादि ।

§ २३४ मणुस्तोषवादिपदेवेषु चि बुधे माणदादिज्वरिमसम्पदषाणं गहणं, मणु स्सेसु चेष तेसिमणुपतीदो । कुद्रोचहारणोबलद्धी ? मणुम्मोषवादिपदेवेषु चि बिसेसणादो । तं महा—सम्भे देवा मणुस्साववादिवा, पडिसहाभावादा । तद्रो फलाभावादा ण बिससर्णं

लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❁ किन्तु यह असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें और कथम मनुष्योंमें उत्पन्न होने वाले देवोंमें उत्पन्न नहीं होता है ।

§ २३३ असंख्यात वर्षकी आयुवालोंमें ऐसा कहने पर हमसे भागभूमिया विर्यञ्च और मनुष्योंका प्रश्न होता है, वेच और मारुकिबोंका नहीं क्योंकि रुडि ही ऐसी है । भागभूमियोंमें अबसर्पिणी कालके अन्तमें और वसर्पिणी कालके आदिमें हागेशले संख्यात वर्षकी आयुवाले विर्यञ्च और मनुष्य भी इसी सूत्रके बलसे असंख्यातवर्षायुक्त कहे जाते हैं । तात्पर्य यह है कि मनुष्यिकी अपेक्षा न करके यह असंख्यातवर्षायुक्त शब्द संख्यात वर्षकी आयुवाले और असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमिया विर्यञ्च और मनुष्योंमें रहता है ।

विशेषार्थ—‘असंख्यातवर्षायुक्त’ शब्दसे भागभूमिबोंका प्रश्न किया जाता है । किन्तु भरत और पेटवतमें अबसर्पिणी और वसर्पिणी कालका परिखमन सदा होता रहता है तथा अबसर्पिणी कालके प्रारम्भके तीन कालोंमें और वसर्पिणी कालके अन्तके तीन कालोंमें भागभूमि रहती है, अतः जब अबसर्पिणी कालका तीसरा काल समाप्त होने लगता है या उस समयके विर्यञ्च मनुष्योंकी आयु असंख्यात वर्षकी न होकर संख्यात वर्षकी होने लगती है । इसी प्रकार वसर्पिणी कालके चौथे कालके प्रारम्भमें भी जब कि भागभूमि प्रारम्भ होती है भरत और पेटवतके विर्यञ्च और मनुष्योंकी आयु संख्यात वर्षकी होती है अतः असंख्यातवर्षायुक्त शब्दका वा व्युत्पत्ति अर्थात् असंख्यात वर्षकी आयुवाला किया है, यदि यह अर्थ लिया जाता है या संख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमिबोंका प्रश्न नहीं होता है, अतः मनुष्यिकी अपेक्षा न करके असंख्यातवर्षायुक्त शब्दसे भोगभूमिया मनुष्य और तियबोंका प्रश्न करना चाहिये चाहे व संख्यात वर्षकी आयुवाले हों या असंख्यात वर्षकी आयुवाले हों । धर्म मिथ्यात्वके अन्तर्गत अणुमागधी सत्तावाला जीव जन्म नहीं लेता ।

§ २३४ मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें पंसा कहने पर आन्त स्वर्गसे लेकर ऊपरके सब देवोंका प्रश्न होता है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति मनुष्योंमें ही होती है ।

अर्थ—मनुष्योंमें ही उत्पन्न होनेवाले देवोंका प्रश्न किया है, इस प्रकारका अवधारण्य कहसि लिया ।

समाधान—मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंमें इस विरोप्यके । इसका कुलास्ता इस प्रकार है—सभी देव मनुष्योंमें उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि मनुष्योंमें उनकी उत्पत्तिका निषेध नहीं है,

फलवंतमिदि । ण च णिप्फलं मुत्तं होदि, अण्ववत्थावत्तीदो । तम्हा अवहारणस्स अत्थिस्स-
मवगम्मदि ति । एदेसु उक्कस्साणुभागसंतकम्म णत्थि, तं घादिय विट्ठाणियं करिय पच्छा
एदेसुप्पत्तीदो । ण च तत्थ उक्कस्साणुभागवधो वि अत्थि, तेज-पम्म-सुकलेस्साहि
तिरिक्ख-मणुस्सेसु सुकलेस्साए देवेसु च उक्कस्साणुभागवंधाभावादो ।

❀ एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं ।

§ २३५. जहा मिच्छत्तउक्कस्साणुभागस्स सामित परुविदं तहा सोलसकसाय-
णवणोकसायाण पि परुवेदव्वं, विसेसाभावादो । एत्थ 'च' सहो समुच्चयदो किण्ण
परुविदो ? ण, तेण विणा वि तददोवलद्धीदो ।

❀ सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसतकम्मं कस्स ?

§ २३६. मुगममेदं ।

❀ दंसणमोहक्खवगं मोत्तूण सव्वस्स उक्कस्सयं ।

§ २३७. कुदो ? दसणमोहक्खवयं मोत्तूण अण्णत्थ सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताण-
मणुभागखंडयघादाभावादो । पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अणंताणुवंधिविसजोयणाए चारित्तमोह-

अत दूसरा कोई फल न होनेसे विशेषण निष्फल हो जायगा । और सूत्र निष्फल नहीं होता,
क्योंकि इससे अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है, इसलिए इस सूत्रमें अवधारणके अस्तित्वका
ज्ञान होता है ।

इन जीवों में उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं है, क्योंकि उसका घात करके उसे द्विस्थानिक
कर लेनेके पश्चात् ही इनमें उत्पत्ति होती है । और उनमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध भी नहीं होता ।
इसका कारण यह है कि भोगभूमिमें पर्याप्त अवस्थामें तीन शुभ लेश्याए ही हैं और
आनत स्वर्ग से लेकर ऊपरके देवों में केवल शुद्ध लेश्या ही है । तथा तेज, पद्म और शुक्लेश्या
के रहते हुए तिर्यञ्च मनुष्योंमें और शुक्लेश्या के रहते हुए देवोंमें उत्कृष्ट अनुभागवन्ध नहीं
हो सकता ।

* इसी प्रकार सोलह कपाय और नव नोकपायोंके भी स्वामित्वका कथन कर
लेना चाहिये ।

§ ३३५ जैसे मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके स्वामीका कथन किया उसी प्रकार सोलह
रूपाय और नव नोकपायोंके स्वामित्वका भी कथन कर लेना चाहिये, उससे इसमें कोई भेद
नहीं है ।

शंका—इस सूत्रमें समुच्चयार्थक 'च' शब्द क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसके विना भी उसके अर्थका ज्ञान हो जाता है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २३६ यह सूत्र सरल है ।

* दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर शेष सबके उत्कर्ष अनुभागसत्कर्म होता है ।

§ २३७ क्योंकि दर्शनमाहके क्षपकको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके
अनुभागका काण्डरूपात नहीं होता है ।

शंका—प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना और चरित्रमोहकी

ब्रह्मसाधनाए सन्धयपदीर्णं द्विदि-अष्टुभागकंडपसु भिन्नमापेसु क्यमेदासि दोषं येव
पयदीणमष्टुभागघादो णत्वि ? ण, मिष्णमाइवादो । अपुम्ब-अणियहिभावेण सरिस
परिणामेईतो क्यं मिष्णार्णं कज्जार्णं समुप्पची ? ण, कज्जमेदण्णहाजुववचीदो कर
णार्णं पि मेदसिद्धीए ।

एवमुक्त्वाअष्टुभागसामिचं समत्तं ।

❁ मिष्णत्तस्स जह्यस्ययमणुभागसतकम्मं कस्स ?

§ २३८ सुगममेदं ।

❁ सुहुमस्स ?

§ २३९. एइदियमाइणमेत्थ किण्ण कयं ? ण, एइदिए मोलूण अण्णत्थ सुहुम
मादो णत्वि चि एइदियमिष्णाणुप्पचीदा । अदि एयं, तो णिगोदगइयां कायम्बं,
अण्णत्थ अइण्णाणुभागसतकम्माभावादो ? ण, सुहुमणिइसादो येव तदुबल्लंमादो ।
तं अइ—जां सुहुमेइदिमो चि भुत्ते पासिदियणाणेण सुहुमणामकम्मोदएण च नो सुहुमत्त

बपरामनामे जब सब प्रकृतियोंके स्थितिकाण्डके और अनुभागकाण्डकेका भाव हावा है ता इन
वा प्रकृतियोंके अनुभागका पाठ क्यों नहीं होता ?

समाधान—यहाँ क्योंकि अन्य प्रकृतियोंसे इन्हीं अपि भिन्न है ।

श्रीका—अपूर्वकरय और अनिर्दिष्टकरयारूप सट्टा परिखामोसे भिन्न कार्योकी उत्पत्ति
कैसे हावी है । अर्थात् बर्तनमोइके अरणमें भी ये परिखाम होते हैं और प्रथम सन्धयस्वकी
उत्पत्ति आदि के समय भी ये परिखाम हाते हैं । किन्तु एक जगह ता ये परिखाम सभी प्रकृतियोंके
स्थिति—अनुभागका पाठ करते हैं और दूसरी जगह नहीं करते ऐसा मेह क्यों है ?

समाधान—यहाँ जगहके कार्यमें मेह है । इससे सिद्ध है कि कारणमें भी मेह अक्षय है,
दोनों जगहके परिखामो में मेह न होता वा कार्यमें मेह न होता । अर्थात् बर्तनमोइके अण्ण-
कक्षमें जैसे परिखाम हाते हैं वैसे परिखाम प्रथम सन्धयस्वकी उत्पत्ति आदिमें अन्यत्र नहीं हाते ।

इस प्रकार उक्त अनुभागका स्वामिच समाप्त हुआ ।

❁ मिष्णत्तस्स जपन्य मनुषामसत्कर्म किसके होवा है ?

§ २४०—अइ सूत्र सुगम है ।

❁ सूस्म बीवके होला है ।

§ २४१ श्रीका—इस सूत्रमें एकेत्रिब पदका प्रश्न क्यों नहीं किया ?

समाधान—यहाँ क्योंकि एकेत्रिबको जाइकर अन्यत्र सूस्मपना नहीं है, इसलिये 'सूस्म'
पदसे ही एकेत्रिबका ज्ञान हो जाता है, अत एकेत्रिब पदका प्रश्न नहीं किया ।

श्रीका—बदि पंसा है वा निग्रयका प्रश्न करना आदिसे क्योंकि निगोदियाके सिवा
अन्यत्र उपन्य अनुभागसत्कर्मका अभाव है ।

समाधान—यहाँ क्योंकि 'सूस्म' पदके निरंतरसे ही उक्त प्रश्न हो जाता है । इसका
जुलासा इस प्रकार है—यहाँ सूस्म एात्रिब ऐसा कर्मसे स्पर्शन इत्रिबअन्य ज्ञानसे और
सूस्म नामकर्मके बचसे जा सूस्मपने को प्राप्त है अर्थात् जो ज्ञानसे भी सूस्म है और पर्यापसे

पत्तो तस्स एत्थ ग्गहण कदं । ण च सुहुमणिगोदं मोत्तूण अण्णत्थ दोण्हं पि सुहुमत्तं संभवदि, अणुवलंभादो । तम्हा सुहुमणिगोदएइंदियस्से त्ति सिद्धं । तो क्वहहि अपज्जत-ग्गहणं कायव्वं ? ण, तस्स वि सुहुमणिहेसादो चेव सिद्धीदो । जदि सव्वविसुद्ध-सुहुमेइंदियअपज्जतयस्स जहण्णाणुभागवंधो जहण्णाणुभागो त्ति घेप्पदि तो अपज्जत-विसोहीदो पज्जतविसोही अणंतगुणा त्ति सुहुमेइंदियपज्जतजहण्णाणुभागवंधो किण्ण घेप्पदि ? ण, घादिदूण सेसअणुभागसंतकम्मस्स एत्थ ग्गहणादो । ण च एत्थ पच्चग्ग-बंधस्स पहाणत्तं, जहण्णाणुभागसंतकम्मं पेक्खिदूण तस्स अणंतगुणहीणत्तादो । सुहुमे-इंदियपज्जतयस्स अपज्जतविसोहीदो अणंतगुणविसोहिणा हदावसेसाणुभागो किण्ण घेप्पदि ? ण, जादिविसेसेण सुहुमणिगोदअपज्जतयस्स थोवविसोहीए घादिदावसिद्धानु-भागस्स सुहुमपज्जतजहण्णाणुभाग पेक्खिदूण अणंतगुणहीणत्तादो । जादिविसेसेण थोव-विसोहीए वि अणुभागघादेण थोवमणुभागसंतकम्मं कीरदि त्ति कुदो णव्वदे ? दसण-मोहक्खवणाए मिच्छत्तस्स जहण्णाणुभागसतकम्ममभिण्णदूण सुहुमणिगोदेसु परूविय-

भी सूक्ष्म है उसका ग्रहण किया है । सूक्ष्म निगोदिया को छोड़कर अन्यत्र दोनों प्रकार की सूक्ष्मता संभव नहीं है, क्योंकि वह अन्य जीवमें नहीं पाई जाती । अतः सूक्ष्मका अर्थ सूक्ष्म निगोदिया एकेन्द्रिय जीव है ऐसा सिद्ध हुआ ।

शंका—तो फिर यहा अपर्याप्त पदका ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म पदके निर्देशसे ही उसके ग्रहणकी सिद्धि हो जाती है ।

शंका—यदि सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवके जो जघन्य अनुभागवन्ध होता है उसे जघन्य अनुभाग स्वीकार करते हो तो अपर्याप्त जीवकी विशुद्धसे पर्याप्त जीवकी विशुद्धि अनन्तगुणी होती है, अत सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके जो जघन्य अनुभागवन्ध हाता है उसे क्यों नहीं स्वीकार करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि घाते गये अनुभागमे बचे हुए शेष अनुभागसत्कर्मका यहाँ ग्रहण किया है । यहाँ पर नवीन बंधकी प्रधानता नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभागसत्कर्मका देखते हुए वह अनन्तगुणा हीन है ।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके अपर्याप्त जीवकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा घात करनेसे बचा हुआ जो शेष अनुभाग है उमका क्यों नहीं ग्रहण किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जातिविशेषके कारण सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त जीवके थोडी विशुद्धिके होने पर भी घात करनेसे जो अनुभाग शेष रहता है वह सूक्ष्म पर्याप्तके जघ य अनुभागको देखते हुए अनन्तगुणा हीन है, अत यहाँ सूक्ष्म पर्याप्तके अनुभागका ग्रहण नहीं किया ।

शंका—थोडी विशुद्धिके होते हुए भी जातिविशेषके कारण अपर्याप्त जीव अनुभाग घातके द्वारा अपना अनुभागसत्कर्म थोडा कर लेता है यह कैसे जाना ?

समाधान—सूत्रमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म दर्शनमोहकी क्षणामे न बतला-कर जो सूक्ष्मनिगोदियाके बतलाया है उससे जाना जाता है कि अपर्याप्त निगोदिया जीव अनुभाग घातके द्वारा थोडा अनुभाग कर लेता है ।

सुखादो गन्धदे । संपदि एदेण अहण्णाणुभागसंतकम्ममेण सह उप्पस्सयाणजीवदित्सेस पस्समणहमुत्तरमुत्तं भणदि—

⊗ इदसमुप्पत्तियकम्मेष अणणदरो एइदिमो वा बेइदिमो वा तेइ दिमो वा चउरिदिमो वा असण्णी वा सण्णी वा सुहुमो वा वादरो वा पञ्जत्तो वा अपञ्जत्तो वा जहण्णाणुभागसंतकम्मिभो होदि ।

§ २४० इते वाकिते समुत्पत्तिर्यस्य तद्वत्समुत्पत्तिकं' कर्म । अणुभागसंत-
कम्मे चादिदे अणुम्भरिदं अहण्णाणुभागसंतकम्मं तस्स इदसमुप्पत्तियकम्ममिदि सण्णा
त्ति भणिदं होदि । तेण इदसमुप्पत्तियकम्मेष सह अण्णदरो एइदिमो वा अण्णदरो
बेइदिमो वा अण्णदरो तेइदिमो वा अण्णदरो चउरिदिमो वा अण्णदरो असण्णी वा
अण्णदरो सण्णी वा अण्णदरो सुहुमो वा अण्णदरो वादरो वा अण्णदरो पञ्जत्तो वा
अण्णदरो अपञ्जत्तो वा होदि । एवं भादे सो जीवो जहण्णाणुभागसंतकम्मिमो वापदे ।
एदं सम्भे वि जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स सामिणो हंति चि भणिदं होदि । देवा णेरइया

विशेषार्थ—सूक्ष्म निगाहिया अर्थात् जीव अब मिथ्यात्वके अनुभागसत्कर्मका पात कर
वेता है वा उसके मिथ्यात्वका अपन्य अनुभाग पाया जाता है । यद्यपि उस जीवके भा अनुभाग-
बन्ध हुआ है वह सत्तामें स्थित अनुभागसे अनन्तगुणा हीन होता है किन्तु इस अनुभागविभक्तिमें
सत्तामें स्थित अनुभाग की ही विभक्ता है, अतः उसका प्रहण नहीं किया है । तथा यद्यपि सूक्ष्म
एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवके अर्थात् जीवसे विरोध विद्युद्धि हाटी है तथापि बाकी विद्युद्धिके हाते
रूप भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय अर्थात् जीव वातिविराफके कारण पर्याप्त जीवकी अपेक्षा अनुभागका
अधिक भाव कर डालता है और वह भाव इससे सिद्ध है कि मिथ्यात्वका अपन्य अनुभागसत्कर्म
वर्तनगोहके लपकके न बतलाकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय अर्थात्कके बतलाया है ।

अब इस संबन्ध अनुभागसत्कर्मके साथ उत्पन्न होनेवाले जीवके विषयमें विरोध कबन
करनेके लिये आनेछ सूत्र करते हैं—

⊗ साथ ही अब यह इतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ अन्यतर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय,
तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी, अथवा संज्ञी, सूक्ष्म, अथवा वादर, पर्याप्त अथवा अपर्याप्त
जीव होता है तब यह भी अपन्य अनुभागसत्कर्मवादा होता है ।

§ २४ इत् अर्थात् पात किसे जाने पर जिसकी उत्पत्ति होती है उस कर्मके इत्समु-
त्पत्तिकर्म करते हैं । आराम यह है कि अनुभागसत्कर्मका पात होने पर आ अपन्य अनुभाग-
सत्कर्म अक्षरित्त खाता है उसकी 'इत्समुत्पत्तिक कर्म' संज्ञा है । उस इत्समुत्पत्तिकर्मके साथ
कार्य भी एकेन्द्रिय अथवा कोई भी वा इन्द्रिय अथवा कोई भी तेइन्द्रिय अथवा कोई भी चौइन्द्रिय
अथवा कोई भी असंज्ञी अथवा कार्य भी संज्ञी कोई भी सूक्ष्म अथवा कार्य भी वादर कार्य भी
पर्याप्त अथवा कोई भी अपर्याप्त होता है । ऐसा होने पर यह जीव अपन्य अनुभागसत्कर्मवादा
होता है । सारांश यह है कि अपन्य अनुभागसत्कर्मवाला सूक्ष्म निगाहिया जीव भरकर एक
एकेन्द्रियविभक्तिमें उत्पन्न हो सकता है, अतः वे सब जीव अपन्य अनुभागसत्कर्मके स्वागी होये

१ वा गरी तत्तमुत्पत्तिकं वा गरी अनुत्पत्तियत्तिकं इति वादा ।

असंख्वेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्सा च मिच्छत्तजहण्णाणुभागस्स ण होंति सामिणो,
तत्थ सुहुमेइंदियाणमुप्पत्तीए अभावादो ।

❀ एवमट्ठकसायाणं ।

§ २४१. जहा मिच्छत्तजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स परूवणा कदा तथा अट्ठकसायाणं
जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स वि परूवणा कायन्वा, अविसेसादो । अट्ठकसायाणं खवणाए
जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जदि ? ण, अंतरे अकदे जाणि कम्माणि विण्ढाणि तेसि-
मणुभागसंतकम्मं पेक्खिदूण सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स जादिविसेसेण अणंत-
गुणहीणत्तुवलंभादो ।

❀ सम्मत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २४२. सुगमं ।

❀ चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ २४३. दंसणमोहक्खवणाए अधापमतकरण-अपुव्वकरणाणि करिय अणियट्ठि-

हैं । देव, नारकी और असख्यातवर्ष की आयुवाले तिर्यश्च और मनुष्य मिथ्यात्वके जघन्य
अनुभागके स्वामी नहीं होते, क्योंकि उनमें सूक्ष्म एकेन्द्रियोकी उत्पत्ति नहीं होती ।

* इसी प्रकार आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी कहना चाहिये ।

§ २४१. जैसे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कथन किया है वैसे ही आठ कषायोंके
जघन्य अनुभागसत्कर्मकी भी प्ररूपणा कर लेनी चाहिये, क्योंकि दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है ।

शंका—आठ कषायोंकी क्षणवस्थामें उनके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व क्यों
नहीं बतलाया ? अर्थात् आठ कषायोंका क्षण करनेवाले जीव को जघन्य अनुभागसत्कर्मका
स्वामी क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तरकरण किये बिना जो कर्म नष्ट होते हैं उनके अनुभाग
सत्कर्मको देखते हुए सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवका जघन्य अनुभागसत्कर्म जातिविशेषके कारण
अनन्तगुणा हीन पाया जाता है ।

विशेषार्थ—उदय प्राप्त प्रकृतिके नीचे और ऊपरके निषेकोंको छोड़कर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण
बीचके निषेकों को अपने स्थानसे उठाकर नीचे और ऊपरके निषेकोंमें क्षण करनेके द्वारा उनके
अभाव कर देने को अन्तरकरण कहते हैं । इस अन्तरकरण कालमें हजारों अनुभागकाण्डक
घात होते हैं, अत यह अन्तरकरण हुए बिना ही जिन प्रकृतियोंका विनाश होता है उनका क्षण-
कालमें जितना अनुभाग पाया जाता है उससे सूक्ष्म एकेन्द्रियमें अनुभागका घात कर चुकने
पर कम अनुभाग पाया जाता है, अत आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी
सूक्ष्म एकेन्द्रियको बतलाया है ।

* सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २४२. यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तिम समयवर्ती अक्षीणदर्शनमोही जीवके सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग
सत्कर्म होता है ।

§ २४३. दर्शनमोहके क्षयके लिये अध प्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको करके अनिवृत्ति-

अद्वाए संलेख्नेसु मागेसु गरेसु मिच्छत सम्मामिच्छतम्मि संसुभिय पुणो सम्मा मिच्छत्तं पि अंतोसुहृतेषु सम्पत्तम्मि संसुदिय अहपरस्सियं हिदिदिसंतकम्म फारुण अणु समयभोवहणाए सम्मत्ताणुभागसंतकम्मं ताव धादेदि आन चरिमसमयअवस्तीणत्तंसण मोहणीभो ति । तस्स उदयमागदपरगुणसेडिगाणुच्छाए अणुमागो महणाओ, सम्पुक्कस्स प्यदं पापिय हिदत्तादो ।

⊗ सम्मामिच्छत्तस्स जहयण्यपमणुभागसंतकम्म कस्स ?

§ २४४ सुगमं ।

⊗ अबयिज्जमाणए अपच्छिमे अणुभागकंडए बट्टमाणस्स ।

§ २४५ अनगिज्जमाणए अपच्छिमे हिदिकंडए ति किण्ण पुत्त ? ग, उब्बे हणपरिमहिदिसंखयपरिमफालीए पि बहुमाणस्स महणाणुभागत्तप्यसंगादा । ग प

करवके कालमें संस्कार माग बीतने पर मिच्छात्वका सम्पत्तिप्राप्तमें शेषण कर पुनः अन्त-मुहूर्तमें सम्पत्तिप्राप्तका भी सम्पत्तयमें शेषण कर, सम्पत्तय प्रकृतिके स्थितिकर्मको भाठ बर्ष प्रमाण करके प्रति समय अपवर्तनाके द्वारा सम्पत्तयके अनुभागसत्कर्मका तब तक भावता है जब तक उस अक्षीयवर्तनमाहीके वर्तनमोहके शेषणका अन्तिम समय आता है उस चरम समयवर्ती अक्षीयवर्तनमाहीके उदयको प्राप्त एक गुणभेदिगाणुच्छाका अनुभाग अपन्य हाता है क्योंकि सम्पत्तयके अनुभागसत्कर्मका सर्वोत्कृष्ट भाव हाते हाते वह अनुभाग अवशिष्ट रहता है ।

विशेषार्थ—अनिच्छिक्कण्यके कालमेंसे संस्कार माग बीत जाने पर जब वर्तनमोहको हण्य का प्रत्यापक जीव मिच्छात्वका सम्पत्तिप्राप्तमें और सम्पत्तिप्राप्तका सम्पत्तयप्रकृति म सत्कर्मस्य करके सम्पत्तय प्रकृतिकी स्थितिको घटाकर भाठ बर्ष प्रमाण कर लेता है वा सम्पत्तय विस्थानिक अनुभागको एक स्वाधिकरूप करतेके सिधे प्रति समय अपवर्तनपात करता है । अर्थात् पहले वा अन्तमुहूर्त कालके द्वारा अनुभागका काण्डकपात करता वा अब उसका उपसंहार करके सम्पत्तयके अनुभागको प्रति समय अनन्तगुणा हीन अनन्तगुणा हीन करता है । जिसका यह अर्थात् हुआ कि पिछले अनन्तवर्ती समयमें जो अनुभागसत्कर्म वा वर्तमान समयमें उदयावली बाह्य अनुभागसत्कर्मका वससे अनन्तगुणा हीन करता है । उदयावली बाह्य अणु मागसत्कर्मसे उदयावली के भीतर प्रविष्ट अनुभागसत्कर्मको अनन्तगुणा हीन करता है और वससे उदयकालमें प्रविष्ट हानेवाले अनुभागसत्कर्मका अनन्तगुणा हीन करता है । ऐसा करते हुए जिस अन्तिम समयके परभाव ही जीव शायिकसम्पत्ति हो जाता है उस समयमें सम्पत्तय प्रकृतिके जा लियेक उदयम आते हैं जमें सबसे कम अनुभाग हाता है, क्योंकि वह अनुभाग सबसे अधिक पाता जाकर अवशिष्ट रहता है, अतः सम्पत्तय प्रकृतिक अपन्य अनुभागका स्वामी चरम समयवर्ती अक्षीयवर्तनमाही जीव हाता है ।

⊗ सम्पत्तिप्राप्तका अपन्य अनुभागसत्कर्म किसक होता है ?

§ २४६ एह सूत्र सुगम है ।

⊗ अपनीयमान अन्तिम अनुभागकाण्डकर्म वर्तमान जीवके सम्पत्तिप्राप्तका अपन्य अनुभागसत्कर्म होता है ।

§ २४७ श्लोक—अपनीयमान अन्तिम स्थितिकाण्डकमें ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—क्योंकि ऐसा कहने पर अज्ञानका प्राप्त हुए अन्तिम स्थितिकाण्डक की

एवं, अणुभागखंडयघादाभावेण तत्थ उक्कस्साणुभागसंतकम्मियम्मि जहण्णत्तविरोहादो । तम्हा अत्रणिज्जमाणए अपच्छिमे अणुभागखडए वट्टमाणयस्से त्ति सुहासियं ।

❀ अणंताणुवधीणं जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २४६. सुगमं ।

❀ पढमसमयसंजुत्तस्स ।

अन्तिम फालीमें भी वर्तमान जीवके जघन्य अनुभागका प्रसग आता है। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि अनुभागकाण्डकका घात न होनेसे वहा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म पाया जाता है, अत वह जघन्य नहीं हो सकता। इसलिये 'अपनीयमान अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान जीवके' यह सूत्रवचन ठीक है।

विशेषार्थ—स्थितिको घटानेके लिये स्थितिका काण्डकघात किया जाता है और अनुभागको घटानेके लिये अनुभागका काण्डकघात किया जाता है। काण्डकघातका विधान इस प्रकार है—कल्पना काजिये कि उद्यस्वरूप किसी कर्म की स्थिति ४८ समय की है और चू कि एक समयमें एक निषेकका उद्य होता है, अतः उसके ४८ ही निषेक हैं। अब उसमेंसे २ समयकी स्थिति घटानी है तो ऊपरके ८ निषेकोंके परमाणुओंको लेकर शेष ४० निषेकोंमेंसे आठ निषेकोंके पासके दो निषेकोंको छोड़कर बाकीके ३८ निषेकोंमें मिलाना चाहिये। कुछ परमाणु पहले समयमें मिलाये, कुछ दूसरे समयमें मिलाये। इस तरह अन्तर्मुहूर्त काल तक ऊपरके आठ निषेकोंके परमाणुओंको नीचेके निषेकोंमें मिलाते मिलाते उनका अभाव कर देनेसे प्रकृत कर्म की स्थिति ४८ समयसे घटकर ४० समयकी रह जाती है। यह एक स्थितिकाण्डक घात हुआ। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। जैसे स्थितिकाण्डकके द्वारा स्थितिका घात किया जाता है वैसे ही ऊपरके अधिक अनुभागवाले स्पर्धकोंका नीचेके कम अनुभागवाले स्पर्धकोंमें क्षेपण करके अनुभागकाण्डकके द्वारा अनुभागका घात किया जाता है। तथा प्रथम समयमें जितने द्रव्यको अन्य निषेकोंमें मिलाया जाता है उसे प्रथम फाली कहते हैं और दूसरे समयमें जितने द्रव्यको अन्य निषेकोंमें मिलाया जाता है उसे द्वितीय फाली कहते हैं। इसी प्रकार अन्तिम समयमें जितने द्रव्यको अन्य निषेकोंमें मिलाया जाता है उसे चरम फाली कहते हैं।

मूलमें बतलाया है कि जब मिश्र प्रकृतिके अन्तिम अनुभागकाण्डकका अपनयन किया जाता है तो उस समयमें उसका जघन्य अनुभाग होता है, इस पर यह शका की गई कि जब अन्तिम स्थितिकाण्डकका घात किया जाता है तब मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभाग क्यों नहीं होता ? तो इसका यह समाधान किया गया कि यदि ऐसा माना जायगा तो मिश्र प्रकृति की उद्वेलना करनेवाले मिथ्यादर्शित जीवके भी जब वह मिश्र प्रकृतिके अन्तिम स्थितिकाण्डक की अन्तिम फालीमें वर्तमान रहता है तब मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभाग हो जायगा, किन्तु ऐसा नहीं है, उसके स्थिति जरूर घट जाती है किन्तु अनुभाग नहीं घटता। अत दर्शनमोहका क्षण करनेवाला जीव जब मिश्रप्रकृतिके अन्तिम अपनीयमान अनुभागकाण्डकमें वर्तमान रहता है तब उसके मिश्र प्रकृतिका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है।

* अनन्तानुवन्धीका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २४६ यह सूत्र सुगम है।

* प्रथम समयवर्ती सयुक्त जीवके होता है।

§ २४७ सुद्धमेईदियसु नहण्णसामिन् किण्ण दिण्णं ? ण, पढमसमयसंयुत्तस्स पधमाणुभागवर्षं पेक्खिदूय सुद्धमणिगोदमहएणाणुभागसत्तकम्मस्स अर्णत्तणुणादा । पढमसमयसंयुत्तस्स पधमाणुभागम्मि ससकसायाणुभागफएणु संकंतपसु अर्णत्तणु-
वपीणमणुभागो सुद्धमेईदियनहएणाणुभागसत्तकम्मादो अर्णत्तणुणो किण्णं होदि ? ण,
'बंघे संकमदि' चि वज्जकमाणाणुभागसत्तनेण संकमिज्जमाणाणुभागस्स परिणामिज्ज
माणत्तादो । संयुत्तविदियसमए नहण्णसामिन् किण्णं दिज्जदि ? ण, पढमसमए वट्ठाणु-
मागादो विदियसमए अर्णत्तणुसंकिण्णसेण वज्जकमाणाणुभागस्स अर्णत्तणुणादादो ।

१२४७ शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें जघन्य अनुमागका स्वामीपना क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं क्योंकि प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त हुए जीवक जा नवीन अनुमागवन्ध हाता है उसे देखते हुए सूक्ष्म निगाविया जीवका जघन्य अनुमागसत्कर्म अनन्त गुणा है ।

शंका—प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त हुए जीवके नवीन अनुमागमें शेष कपायों के अनुमाग स्वर्णकोका संकमख हाने पर अनन्तानुबन्धीका अनुमाग सूक्ष्म एकेन्द्रिय के जघन्य अनुमागसत्कर्मसे अनन्तगुणा क्यों नहीं हाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'बन्ध अजस्वामे ही संकमण हाता है' इस नियमके अनुसार जिस अनुमागका संकमख हाता है वह बन्धमान अनुमागरूपसे ही परिणामा विया जाता है, इसलिए उस समय अनन्तानुबन्धीका अनुमाग सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य अनुमागसत्कर्मसे अनन्तगुणा नहीं हो सकता ।

शंका—अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होनेके दूसरे समयमें अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुमाग का स्वामीपना क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रथम समयमें बँपनेवासे अनुमागसे दूसरे समयमें अनन्तगुणसे संकसेरासे बँपनेवासा अनुमाग अनन्तगुणा होता है ।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धी कपावका विसंबोजन करनेके पश्चात् जो जीव सिध्वात्मको प्राप्त होता है उसके वद्यपि पहले समयसे ही अनन्तानुबन्धीका बन्ध हाने लगता है तथा अन्य कपावकोंके सत्कर्मों स्थित तियेक मी अनन्तानुबन्धीरूपसे संकमिज्ज हाने लगते हैं, फिर मी उसके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जो अनुमागसत्कर्म होता है वह सबसे जघन्य हाता है । मूलमें एकेन्द्रिय का लंकर जो शंका समाधान किया गया है उससे ऐसा प्रतीत हाता है कि वद्यपि वह अनुमानबन्धका प्रकरख नहीं है किन्तु अनुमागकी सत्ताका प्रकरख है, फिरमी वहाँ जघन्य अनुमागसत्कर्मोंके स्थितिबको बतलाते हुये संयुक्त जीवके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जो नवीन अनुमागवन्ध हाता है उसीकी मुख्यता है जो अन्य कपावकोंके परमाणु अनन्तानुबन्धीरूप परिणामन करते हैं उनकी मुख्यता नहीं ली गई है, क्योंकि जब यह शंका की गई कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवको अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुमागसत्कर्मोंका स्वामी क्यों नहीं कहा हा उसका समाधान किया गया कि संयुक्त जीवके प्रथम समयमें जो नवीन अनुमागवन्ध होता है उसको देखते हुए सूक्ष्म निगे वियाका जघन्य अनुमागसत्कर्म अनन्तगुणा है । तब पुन यह शंका की गई कि संयुक्त जीवके जो नवीन अनुमागवन्ध पहले समयमें हाता है उसमें शेष कपावकोंके अनुमागस्वर्णक मी ता संकमिज्ज होते हैं, अत नवीन अनुमाग और संकमिज्ज अनुमाग मिलकर एकेन्द्रियके अनुमागसे अधिक

❀ क्रोधसंजलणस्स जहणणयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २४८. सुगम ।

❀ खवगस्स चरिमसमयअसंकामयस्स ।

§ २४९. क्रोधोदण खवगसेहिं चट्ठिय अस्सकण्णकरणद्धाए अपुव्वफइयाणि

करिय पुणो किट्ठीकरणद्धाए पुव्वापुव्वफइयाणि वारहसंगहकिट्ठीओ काऊण पच्छा क्रोधपढम--विदिय--तदियकिट्ठीओ वेदयमाणो समय पढि अंतोमुहुत्तकालं वंध-संताणु-भागानमणंतगुणहारिणं कादूण तदो तदियकिट्ठिवेदयचरिमसमए जं वद्धमणुभागसंतकम्मं तं समयूणदोआवलियमेत्तद्धाणमुवरि गंतूण चरिमसमयपवद्धस्स चरिमाणुभागफालि धरेदूण द्विदखवगो चरिमसमयअसंकामओ णाम तस्स जहणणयमणुभागसंतकम्मं । परोदण खवगसेहिं चट्ठिदस्स जहणणमणुभागसंतकम्मं ण होदि, तत्थ चरिमाणुभाग-फालीए सव्वधादिफइयभावेण किट्ठीहिंतो अणंतगुणाए जहणणत्तविरोहादो । सुत्तम्मि सोदण खवगसेहिं चट्ठिदस्से त्ति [किं] ण वुत्तमिदि णासकणिज्जं, चरिमसमय-

हो जायेंगे तो उत्तर दिया गया कि शेष कपायोंका जो अनुभाग अनन्तानुबन्धीरूप सक्रमण करता है उसका परिणामन बंधनेवाले अनुभागके अनुरूप ही हाजाता है अर्थात् सक्रान्त अनुभाग उतना ही हो जाता है जितना वद्ध अनुभाग होता है, अत अनुभाग वढ नहीं पाता । किन्तु वात ऐसी नहीं है, क्योंकि सत्ताके प्रकरणमें बन्धकी मुख्यता नहीं हा सकती । यथार्थमें तो जो अन्य कपायोंके परमाणु अनन्तानुबन्धीरूप सक्रान्त होते हैं उनमें जो अनुभाग होता है उसीकी मुख्यता है, किन्तु उसका अनुभाग उतना ही रहता है जितना उस समयमें बंधनेवाले परमाणुओंमें होता है, अत. अनुभागबन्धको लक्ष्यमें रखकर शका-समाधान करना पड़ा है ।

* क्रोधसंज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २४८ यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तिम समयवर्ती असक्रामक क्षपकके होता है ।

§ २४९ क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणि चढकर, अश्वकर्णकरणके कालमें अपूर्वस्पर्धकोंको करके पुन कृष्टिकरणके कालमें पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकोंकी वारह समग्र कृष्टियाँ करके पश्चात् क्रोध की पहली, दूसरी और तीसरी कृष्टियोंका वेदन करता हुआ जीव प्रति समय अन्तर्मुहूर्त काल तक अनुभागबन्ध और अनुभागसत्त्व की अनन्तगुणी हानि करनेके पश्चात् तीसरी कृष्टिका वेदन करनेके अन्तिम समयमें जो बाँधा हुआ अनुभागसत्कर्म है उससे एक समयकम दो आत्रलीमात्र काल जाकर अन्तिम समयप्रवद्ध की अन्तिम अनुभागफाली को ग्रहण कर स्थित है उस क्षपक को अन्तिम समयवर्ती असक्रामक कहते हैं । उसके क्रोध सज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । जो क्रोधके सिवा किसी अन्य कपायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके क्रोध सज्वलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता, क्योंकि उसकी अन्तिम अनुभागफालीमें सर्वघातिस्पर्धक होनेसे वह कृष्टियों की अपेक्षा अनन्तगुणी होती है, अत उसके जघन्य होनेमें विरोध आता है ।

शंका—चूर्णिसूत्रमें 'स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढनेवालेके' ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—ऐसी आशका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि 'चरम समयवर्ती असक्रामकके' इस

असंक्रामयस्ते चि मुत्तादा सोदएण नइएण होदि चि अइगमुप्पचीदो । तं नहा—
 सो चरिमसमभो असंक्रामभो गाम भो सोदएण त्वगसेदिं चदिदो, ततो चरि संक्रा
 मयाणममाभादो । परोदएण चदिदो पुण न चरिमसमयसंक्रामभो, ततो चरिं पि
 संक्रामयाणमुपसंभादो । सोदए-परोदयकयमेदियिक्त्वाए विणा संक्रामयसामणमेव
 एस्य विपक्खियमिदि कसो गम्भदे ? अण्णहा नइएणताणुववचीदो । दुचरिमसमय
 संक्रामियम्मि नइएणसामिन् किण्ण दिक्खदि ? न, चरिमसमयसंभाणुमागादो दुचरिम-
 समयसंभाणुभागस्स अणत्तुणस्स त्त्युपसंभादा । समयं पदि अणत्तरहंदिमहंदिममभु-
 मागसंभाणमणत्तुणत्त कुदो गम्भदे ? महमाणसंभादो अणत्तुणवहमाभुदयं पेक्खिहूए
 अणत्तरहंदिमवचस्स अणत्तुणत्तादो । उदयाणमणत्तुणहीणत्तं कसो गम्भद ? समयं पदि
 विसोहीए अणत्तुणत्तयणहाणुववचीदो ।

सूत्रसे ही यह बात हा जाता है कि स्वादयसे अग्नि चक्षुमेवात्रेक अथन्य अनुभागसत्कर्म होता है। सुत्रासा इस प्रकार है—ओ स्वोदयसे उपकमेयि पर चढ़ा है वह चरमसमयवर्ती असंक्रामक कइजाता है क्योंकि उससे आगे संक्रमण करनेवालोंका अभाव है। किन्तु ओ परोदयसे अग्नि पर चढ़ा है वह चरम समयवर्ती संक्रामक नहीं है क्योंकि उसके ऊपर भी संक्रमण करनेवाले पाये जाते हैं।

शंका—स्वादय और परोदयद्वय मेवकी विभक्त्याके बिना यहाँ संक्रामक सामान्य की ही विवक्षा है यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि ऐसा न होता तो उसके अथन्य अनुभागसत्कर्म नहीं बन सकता था।

शंका—चरम समयसे पूर्व समयवर्ती संक्रामकको अथन्य अनुभागत्वा स्वामी क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चरम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धसे द्विचरम समयमें होने-वाला अनुभागबन्ध यहाँ अनन्तगुणा पाया जाता है।

शंका—चरम समयसे लगातार पूर्व पूव प्रतिसमय क्षान्वासा अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हाता है यह कैसे जाना ?

समाधान—वर्तमान बन्धसे वर्तमान चक्षुका अनन्तगुणा देखाकर अनन्तर पूव समय-वर्ती बन्ध अनन्तगुणा होता है, यह जाना।

शंका—प्रति समय चक्षु अनन्तगुणा हीन हाता है यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि चक्षु अनन्तगुणा हीन न हाता था प्रतिसमय अनन्तगुणी विद्युत्ति नहीं हाती इससे जाना कि प्रति समय चक्षु अनन्तगुणा हीन हाता है।

विशेषार्थ—ओ जीव क्राम कपायके चक्षुसे उपकमेयि पर चढ़ा वह अनित्यिकरण गुण स्वान्मे माकपाशोऽत्र उपस्य करके और अपगतवही हाकर संस्कृतम क्रामका उपस्य करनेके सिधे सबसे प्रथम अथकर्म्य नामका करण कराता है। अथान् जैसे अथ अथान् पाडेका कण-कान मूलसे लेकर क्रमसे घटना हुआ देखा जाता है वसी प्रकार यह करण भी क्राम संस्कृतनसे लेकर क्षामसंस्कृतन पश्च अनुभागश्चर्यको का क्रमसे अनन्तगुणा हीन करनेम कारण है, इससिधे वसे अथकर्म्यकरण करते हैं। इस करणके प्रथम समयसे ही अपूव त्वपकोऽत्र हाता आरम्भ हो जाता है। जा अनुभागव्यर्षक पहले कमी प्राप्त नहीं हुए, उपकमेयिमें अथकर्म्यकरण कात्रके द्वारा

ही जिनकी प्राप्ति होती है तथा पूर्व स्पर्धकोंसे जिनमें अनन्तगुणा हीन अनुभाग पाया जाता है उन्हें अपूर्व स्पर्धक कहते हैं। अश्वकर्णकरण कालके समाप्त होनेके अनन्तर समयसे ही कृष्टि करण काल प्रारम्भ हो जाता है। कृष्टिकरणके प्रथम समयसे ही क्रोधकषायके पूर्व स्पर्धक और अपूर्व स्पर्धकोंमेंसे असख्यातवें भाग प्रदेशों का अपकर्षण करके क्रोधकी कृष्टिया करता है। वे कृष्टिया अपूर्व स्पर्धककी प्रथम वर्गणासे अनन्तवें भाग हीन होती हैं। तथा एक एक कषायकी तीन तीन कृष्टिया होनेसे चारों कषायों की बारह समग्रकृष्टियां होती हैं। जिस समय यह जीव कृष्टियोंको करता है उस समय पूर्वस्पर्धक और अपूर्वस्पर्धकोंका तो वेदन करता है किन्तु कृष्टियोंका वेदन नहीं करता है। कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें वेद्यमान उदयस्थिति को छोड़कर उससे ऊपर क्रोध सञ्चलनकी प्रथम स्थिति आवलिप्रमाण शेष रहने पर कृष्टिकरणकाल क्रमसे समाप्त हो जाता है। पीछे कृष्टियोंका वेदनकाल प्रारम्भ होता है। कृष्टिवेदनके प्रथम समयमें अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता हुआ कृष्टिवेदक जीव बारहों समग्र कृष्टियों में से उत्कृष्ट कृष्टिसे लेकर एक एक समग्र कृष्टिके असख्यातवें भाग अनन्त कृष्टियोंको अपवर्तन घातके द्वारा एक समय में नष्ट कर देता है, अर्थात् ऊपर की कृष्टियों का अपवर्तन घात करके उन्हे नीचे की कृष्टिरूपसे परिणत कर देता है। और इस प्रकार पहले की गई कृष्टियों के नीचे और उनके अन्तरालमें अन्य अपूर्व कृष्टिया करता है। ये कृष्टिया मान, माया और लोभकी प्रथम तीन समग्रकृष्टियोंमें तो बधनेवाले और सक्रमित होकर आनेवाले प्रदेशोंसे बनती हैं और क्रोध की प्रथम समग्रकृष्टिमें बध्यमान प्रदेशोंसे ही बनती हैं, क्योंकि उसमें सक्रमित होकर आनेवाले प्रदेशों का अभाव है। तथा शेष समग्रकृष्टियोंमें सक्रमित होकर आनेवाले प्रदेशोंसे ही बनती हैं। इस प्रकार कृष्टियोंका वेदन करते हुए क्रोधकी प्रथम समग्रकृष्टिमें दो समय कम दो आवली मात्र नवक समयप्रबद्ध और उच्छिष्टावली छोड़कर शेष द्रव्य दूसरी समग्रकृष्टिमें सक्रमित हो जाता है। बादको नवकबन्ध तथा उच्छिष्टावलीका द्रव्य भी यथाक्रम दूसरी समग्रकृष्टिमें सक्रमित हो जाता है। जिस विधिसे क्रोधकी प्रथम समग्रकृष्टिका वेदन करता है उसी विधिसे दूसरी और तीसरी समग्रकृष्टिका वेदन करता है। तीसरी कृष्टिके वेदनकालके अन्तिम समयमें जो अनुभागसत्कर्म बद्ध होता है, समय कम दो आवली मात्र कालके पश्चात् उसे अन्तिम अनुभाग फालीमें जव डाल देता है तो वह क्षणिक अन्तिम समयवर्ती सक्रामक कह जाता है, क्योंकि उसके पश्चात् क्रोधका अन्त हो जाता है, उसके क्रोध सञ्चलनका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है। यहाँ जो क्रोध कषायके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है उसीका ग्रहण किया है, जो अन्य कषायके उदयसे क्षणिकश्रेणिपर चढ़ता है उसका ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि अन्य कषायके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाला जीव उसी स्थानमे चरिम समयवर्ती सक्रामक नहीं होता जिस स्थानमे स्वोदयसे चढ़नेवाला जीव चरिम समयवर्ती सक्रामक होता है, क्योंकि क्रोधकषायके उदयसे चढ़नेवाला जीव जिस स्थानमे अश्वकर्णकरण करता है मानकषायके उदयसे चढ़नेवाला जीव उस स्थानमें क्रोधका क्षणिक करता है। क्रोधके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवालेका जो कृष्टिकरणकाल है मानकषाय के उदयसे चढ़नेवालेका वह अश्वकर्णकरणकाल है। क्रोधसे चढ़नेवालेका जो क्रोधका क्षणिककाल है, मानके उदयसे चढ़नेवालेका वह कृष्टिकरण काल है। इसी प्रकार क्रोधसे चढ़नेवाला जहाँ अश्वकर्णकरण करता है मायाके उदयसे चढ़नेवाला वहाँ क्रोधका क्षणिक करता है। क्रोधसे चढ़ने वाला जहाँ कृष्टिया करता है मायासे चढ़नेवाला वहाँ मानका क्षणिक करता है। अत अन्य कषाय के उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवाला चरिमसमयवर्ती सक्रामक आगेआगे होता है। तथा अन्य कषायके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवाले के क्रोधका स्पर्धकरूपसे ही विनाश होता है कृष्टिरूपसे विनाश नहीं होता, अत अन्य कषायके उदयसे श्रेणिपर चढ़नेवालेके क्रोधका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता।

⊗ एव मास्य-मायासजस्रपाण ।

§ २५० महा क्रोहसंमल्लगस्त परिमसमयमसंक्रामयन्मि नहृण्यसामिधं वृत्त
तथा माण-मायासंनस्रपाणं पि यत्तन्मं । जवरि सोदपण इद्विमक्तसामोदपण च स्वर्ग
सेहिं चरिदस्त नहृण्यसामिध यत्तन्मं ।

⊗ लोमसजस्रपाणस्त जहृण्ययमणुभागसतकर्म कस्त ?

§ २५१ सुगमं ।

⊗ स्वर्गस्त परिमसमयसकसायिस्त ?

§ २५२ कुतो ? बादरकृष्टीहिंतो मर्षत्पुणहीनसुदुमकृष्टीए अनुसमयओद
पाए अंत्येसुदुमेतकाम्पणंताणहीणाए सेहीए पचाणंतमागचावाए सुदुमसांपराइए
परिमसमए वट्टमाणाए सुदुदु मोवचादो ।

⊗ इसी प्रकार संवत्सनमान और संवत्सनमायाके अपन्य स्वामित्वका कथन
कर लेना चाहिये ।

§ २५ जैसे संवत्सन कायके अपन्य अनुभागका स्वामी अन्तिम समयवर्ती असंक्रामक
का बटलाया है, वैसे ही संवत्सन मान और संवत्सन मायाका भी कहना चाहिये । इतना विरोध
है कि स्वायत्तसे और पूर्व की कपायके वयसे अफकभेसि पर चढ़नेवाले जीके अपन्य स्वामित्व
कहना चाहिये ।

विशुपार्य—जैसे संवत्सन कायका अपन्य अनुभागसत्कर्म स्वोदपसे अफकभेसि पर चढ़ने
वाले परिम समयवर्ती संक्रामक बटलाया है वैसे ही मान और मायाका भी समझना
चाहिए । विरोधता कबल इतनी है कि आ स्वायत्तसे अफकभेसि पर चढ़ा है या पूर्वकी कायदि
कपायके वयसे अफकभेसि पर चढ़ा है, दोनोंके अपन्य अनुभागसत्कर्म होता है, क्योंकि क्रोप
कपायके वयसे अफकभेसि पर चढ़नेवाला जिस कालमें मान माया और सामका अफक करता है,
मान माया और लोमक वयसे अ फि पर चढ़नेवाला भी उसी कालमें मान माया और लोमका
अफक करता है, दोनोंमें कालका अन्तर नहीं पड़ता ।

⊗ संवत्सन सोयका अपन्य अनुभागसत्कर्म किसका होता है ?

§ २५१ यह सूत्रसुगम है ।

⊗ अन्तिम समयवर्ती सकपाय अफकके होता है ।

§ २५२, क्योंकि, एक तो सूक्ष्म कृष्टि बादर कृष्टियोंसे अनन्तगुणी हीन होती है दूसर
कालमें प्रति समय अपवर्तनपाठ होता है और इस प्रकार अनन्तपूर्व काल तक अनन्तगुणी हीन
गुणसे शिरुप्ते इसके अनन्तभाग अनुभागका पाठ हो जाता है । इस प्रकार सूक्ष्मसांप्रदायिकके
अन्तिम समयमें वर्तमान वह सबसे स्थाक है, इसलिये सूक्ष्मसांप्रदायिकके अन्तिम समयमें
संवत्सन सामका अपन्य अनुभागसत्कर्म कहा है ।

विशुपार्य—जैसे अपूर्व रपर्षभेस नीच अनन्तगुणा बटला हुआ अनुभाग लिये काय की
प्रथम संवत्कृष्टि होती है वैसे ही बादर कृष्टिसे नीच अनन्तगुणा बटला हुआ अनुभाग लिये
सूक्ष्मकृष्टिकी रचना होती है । साम की द्वितीय कृष्टिका वेदन करते हुए जब उसकी प्रथम

❀ इत्थिवेदस्स जहणणयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २५३. सुगमं ।

❀ खवयस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स ।

§ २५४. जो इत्थिवेदोदण खवगसेठिं चढिदो अंतरकरणं काऊण अंतो-
मुहुत्तकालेण पुरिसवेदम्मि सकामिदणवुंसयवेदो सवेददुचरिमसमयम्मि इत्थिवेदविदिय-
ट्ठिदि धरेदूण उवरिमसमए कयणिस्सतो इत्थिवेदस्स उदयगदगोवुञ्छावसेसो तस्स जह-
णयमणुभागसंतकम्मं । कुदो ? देसघादिएगहाणियत्तादो । ण चेदमसिद्धं, अंतरकरणे
कदे मोहणीयस्स एगहाणिओ वधो एगहाणिओ उदओ ति सुत्तादो । तस्स सिद्धीए
दुचरिमसमयसवेदम्मि जहणणसामित्त किएण दिण्णं ? ण, तत्थ सच्चघादिदुहाणिय-
अणुभागस्स जहणणतविरोहादो ।

❀ पुरिसवेदस्स जहणणणुभागसंतकम्मं कस्स ?

स्थितिमें समय अधिक आवली शेष रहती है तो लोभ की तीसरी कृष्टिका सब द्रव्य सूक्ष्मकृष्टिमें
सक्रान्त हो जाता है तथा द्वितीय समग्रकृष्टिका उच्छ्रष्ट्रावली तथा समय कम दो आवली मात्र
नवक समयप्रवद्धको छोड़कर शेष द्रव्य सूक्ष्म कृष्टियोंमें सक्रान्त हो जाता है । तब जीव सूक्ष्म-
साम्परायगुणस्थानमें आता है । वहाँ सूक्ष्मकृष्टि सम्बन्धी द्रव्य को अपकर्षण भागहारका भाग
देकर एक भागकी गुणश्रेणि करता है । इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए । इस तरह
करते करते जब सूक्ष्मसाम्परायका जितना काल शेष रहता है उतना ही लोभका स्थितिसत्त्व
रहता है और वह प्रति समय अपवर्तनघातके द्वारा सूक्ष्मकृष्टिरूप अनुभागको प्राप्त होता है ।
उसके एक एक निषेक को एक एक समय भोगते भोगते जब वह जीव सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम
समयको प्राप्त होता है तब उसके सञ्ज्वलनलोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है ।

* स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५३ यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तिम समयवर्ती क्षपक स्त्रीवेदी जीवके होता है ।

§ २५४ जो स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढा है और जिसने अन्तरकरण करके
अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा पुरुषवेदमें नपुसवेदका सक्रमण किया है तथा सवेद भागके उपान्त्य समय
में स्त्रीवेदकी द्वितीय स्थितिको ग्रहण कर आगेके समयमें उसे निःसत्त्व कर दिया है और जिसके
स्त्रीवेदका केवल उदय प्राप्त गोपुच्छ बाकी रहा है उसके स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म
होता है, क्योंकि उसके देशघाती एकस्थानिक स्पर्धक होते हैं । और यह बात असिद्ध नहीं है,
क्योंकि 'अन्तरकरण करने पर मोहनीयका एकस्थानिक बन्ध होता है और एकस्थानिक उदय
होता है' इस सूत्रसे सिद्ध है ।

शंका—जब यह बात सिद्ध है तो सवेदभागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका
स्वामित्व क्यों नहीं दिया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्विचरम समयमें सर्वघाती द्विस्थानिक अनुभागका सत्त्व है,
अतः उसे जघन्य माननेमें विरोध आता है ।

* पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५५ सुगम ।

⊗ पुरिसवेदेय ठबडिवस्स चरिमसमयअसंकामयस्स ।

§ २५६ पुरिसपदोदपण त्थगसेदिं पडिय अहकसाए त्थविदूण अंतोसुहुत्तेण अंतरकरणं करिय पुणा अंतोसुहुत्तेण जणुंसयवेदं पुरिसवेदमि संहुदिय त्थो चपरि अंतोसुहुत्तं गत्तुण इत्थिवेदं पि पुरिसवेदस्वरूढेण सकामिय त्था उपरि अंतोसुहुत्तं गत्तुण अणुपाकसाएहि सह पुरिसबदचिराणसंतकम्म कोमसंअरणे संकामिय समयुणदो आबस्सियमेत्तकास्सुवरि पडिदूण द्विदो चरियसमयअसंकामयो जाम । तस्स अहय्याय मज्जुमागसंतकम्म । कुदो ? देसादिपगहाणियत्तादो । दुचरिमसमयअसंकामयमि किय्या अहय्यासामितं दिय्यां ? ज, चरिमाशुभागबंधं पेत्थिदूण दुचरिमादिअशु-भागबंधाभमणंअणुभत्तादो । परोदपण किय्या दिय्यां ? ज, तस्य चरिमसमयअसंका मयस्स सम्भवादिपेहाणियअशुभागस्स अहणत्तविरोहादो । एत्थ पुरिसवेदेण एवद्विदस्से ति न बत्तम्भं, कोमसंअरणस्सेव चरिमसमयअसंकामयस्से ति बत्तम्भं ? ण एस दोसो, विसेसात्थंअणुए सोदयमाहणेण विणा अहय्यायाशुभागसिद्धी चरिमसमयअसंकामयमि

§ २५५ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ पुरुषवेदके उद्यसे उत्पन्नभोगि पर यह हुए अन्तिम समयवर्ती असंक्रामकक होता है ।

§ २५६ पुरुषवेदके उद्यसे उत्पन्नभोगि पर यहकर, आठ कपायोंका जपस करके अन्त-सुहुत्तमें अन्तरकरण करके पुनः अन्तसुहुत्तमें नपुंसकवर्गको पुरुषवर्गमें रूपण करके, उसके बाद अन्तसुहुत्तं विनाकर स्त्रीवेदको भी पुरुषवेदरूपमें संक्रामकर, उसके बाद अन्तसुहुत्तं विना करके अणुपायोंके साथ पुरुषवेदके मानीन सत्कर्मका संकलन अर्थमें संक्रमण करके जो एक समय कम वा अत्यन्तहीमात्र काल उपर यहकर नियत है उसे अन्तिम समयवर्ती असंकामक कहते हैं । उसके पुरुषवेदका अपन्य अनुभागसंतकर्म होता है, क्योंकि यह वैरापाती और एकस्थानिक होता है ।

प्रश्न—उपन्य समयवर्ती असंकामकके अपन्य अनुभागका स्वामित्व क्यों नहीं दिया ? समाधान—नहीं क्योंकि अन्तिम अनुभागकम्पन्न वेत्तत हुए उपन्य आदि समयमें होनेवाला अनुगतअन्य अन्तसुहुत्ता होता है ।

प्रश्न—परके उद्यसे भोगि पर यहवेत्तको पुरुषवेदका अपन्य स्वामित्व क्यों नहीं दिया ? समाधान—नहीं क्योंकि यहाँ चरिमसमयवर्ती संक्रामकक सर्वपाती द्विस्थानिक अनुभाग रहता है अतः इसके अपन्य अनुभागक होनेमें विरोध आता है ।

प्रश्न—यहाँ पुरुषवेदके उद्यसे भोगि पर यहवेत्तको ऐसा नहीं कहना चाहिए, किन्तु संकलन रूपमें समान 'अन्तिम समयवर्ती असंकामकके' ऐसा कहना चाहिये ।

समाधान—यह कार्य बाप नहीं है, क्योंकि विरोधकी विद्वष्टामें 'स्वाद्यसे' ऐसा प्रहय कये बिना अन्तिम समयवर्ती असंकामकमें अपन्य अनुभागकी सिद्धि नहीं होती है अतएव जप तक यह स्वाद्यसे भोगि पर नहीं चलेगा तब तक उसके अन्तिम समयवर्ती असंकामक अर्थस्थामें अपन्यअनुभाग नहीं पाया जावेगा, यह बतलानेके लिए ही विरोध प्रकारका अवसम्भन लिखा है ।

ण होदि त्ति पदुप्पायणफलत्तादो ।

❀ णवु सयवेदयस्स जहण्णाणुभागसंतकम्मं कस्स ?

§ २५७. सुगमं ।

❀ खवगस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स ?

§ २५८. एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा इत्थिवेदस्स परुविदो तथा परुवेदब्बो ।

णवरि णवुसयवेदोदण खवगसेदि च्चिदिय चरिमसमयणवुंसयवेदस्स जहण्णासामित्तं वत्तव्वं ।

अर्थात् 'अन्तिम समयवर्ती असक्रामकके' न कहकर 'पुरुषवेदके उदयसे श्रेणी पर चढनेवाले अन्तिम समयवर्ती असक्रामकके' कहा है ।

* नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ?

§ २५७ यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तिम समयवर्ती क्षपक नपुंसकवेदीके होता है ।

§ २५८ जैसे स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वका कथन किया है वैसे ही इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये । इतना विशेष है कि नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढनेपर अन्तिम समयवर्ती नपुंसकवेदीके जघन्य अनुभागका स्वामित्व कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—तीनों मेंसे किसी भी वेदके उदयसे क्षपक श्रेणीपर जीव चढ सकता है । क्षपक श्रेणीपर चढनेपर अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण होते ही हैं । अनिवृत्तिकरणमे चार सज्वलन और नव नोकपायो का अन्तरकरण करता है । नीचे और ऊपरके निपेको को छोड़कर बीचके अन्तर्मुहूर्तमात्र निपेको के अभाव करनेको अन्तरकरण कहते हैं । अन्तरकरण जब तक नहीं करता तब तक तो तीनों मेंसे किसी भी वेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढनेवाले जीवका सब कथन समान ही जानना चाहिए । अन्तरकरण करने पर जो जिम वेद और जिस सज्वलनकपायके उदयसे श्रेणी पर चढता है उसकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थापित करके अन्तरकरण करता है । जैसे स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणी पर चढनेवाला जीव स्त्रीवेदकी ही प्रथम स्थिति स्थापित करता है । उस प्रथम स्थितिका प्रमाण पुरुषवेदके उदय सहित श्रेणी पर चढनेवाले जीवके जितना नपुंसक वेदके क्षपणकाल सहित स्त्रीवेदका क्षपणकाल होता है उतना है । पुरुषवेदके उदयसे श्रेणी पर चढने वाला जीव तो पुरुषवेदके उदयसे युक्त होता हुआ ही सात नोकपायोंके क्षपण कालमें सात नोकपायोंका क्षपण करता है । बादको एक समय कम दो आवलिकालमें पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धोंको खपाता है । किन्तु स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणी पर चढनेवाला जीव वेदके उदयसे रहित होकर ही सात नोकपायोंका क्षपण करता है । अतः पुरुषवेदकी प्रथम स्थिति नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छ नोकपायोंका जितना क्षपणकाल है उतनी होती है । जो जीव स्त्रीवेदके उदयसे श्रेणी पर चढता है वह जब स्त्रीवेदका अन्तरकरण करके सवेद भागके उपान्य समयमें स्त्रीवेदकी द्वितीय स्थितिको खपाकर अन्तिम समयमें पहुँचता है और उसके स्त्रीवेदका केवल उदयगत गोपुच्छ अवशेष रहता है तब उसके स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । किन्तु अन्त समयसे पहले समयमें उसके स्त्रीवेदके सर्वघाती द्विस्थानिक निषेक रहते हैं अतः उसमें जघन्य सत्त्व नहीं बतलाया । तथा पुरुषवेदके उदयसे श्रेणी पर चढनेवाला नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छ नोकपाय और पुरुषवेदका सक्रमण करके, पुरुषवेदके नवक समयप्रबद्धोंको खपानेके लिए जब एक समय कम दो आवलिकालके अन्तिम समयमें वर्तमान रहता है तब उसके पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है ।

● ह्युप्यसौकसायाय जह्यप्याणुभागसंतकर्म कस्त ?

§ २५६ सुगम ।

● स्ववगस्त चरिमे अणुभागण्डए बट्टमाथयस्त ।

§ २६० परिमाणुभागण्डयस्त चरिमफालीए बट्टमाणस्ते ति किञ्च युतं ? न,

परिमाणुमामलंडयसम्भफालीसु अनुभागस्त विसैसाभावादो । सम्बुक्तसविसाहिस्ते ति किय्या युत ? न, अभियट्टिपरिणामार्ण समाप्तसमयबट्टमाणसम्भजीषेसु समाप्तवादो ।

● चिरयगवीए मिच्छस्तस्त जह्यप्याणुभागसंतकर्म कस्त ?

§ २६१ सुगम ।

● असत्थिणस्त इदसमुत्पत्तियकम्मेष आगवस्त ।

§ २६२ नाव हेहा संतकम्मस्त वंपदि ताव इदसमुत्पत्तियकम्म विसोहीए

यहाँ पुढके वक्रे उदयसे ही भेषि पर बड़नेवालेके पुढपवेवका जपन्य अनुभागसत्कर्म बतसानेक यह कारख है कि इतर वेवके उदयसे भेषि पर बड़नेवाला अपने वेवका जब अन्तिम संकम्मण करता है तब पुढपवेवका उसके सर्वाधी डिस्थानिक अनुभाग रहता है और सर्वाधी डिस्थानिक अनुभाग जपन्य हो नहीं सकता अतः पुढपवेवके उदयसे भेषि पर बड़नेवाला जब पुढपवेवका अन्तिम संकम्मण करेगा तबत होता है तब उसके पुढपवेवका जपन्य अनुभागसत्कर्म होता है । श्री वेवके समान ही मरुसकवेवका भी समझना चाहिये ।

● जह नोकपायोका जपन्य अनुभागसत्कर्म कितके हावा है ?

§ २५९. यह सूत्र सुगम है ।

● अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान सपकके होवा है ।

§ २६० हांका—अन्तिम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फलिसमें वर्तमान सपकके होवा है पेसा क्वो नहीं कहा ?

समाधान—नहीं क्योंकि अन्तिम अनुभागकाण्डककी सब फलिसमें जा अनुभाग है उसमें कोई अन्तर नहीं है । जैसा एक फलिसमें अनुभाग है वैसा ही दूसरीमें है, इसलिये अन्तिम अनुभागकाण्डककी अन्तिम फलिसमें वर्तमान सपकके होवा है पेसा नहीं कहा ।

हांका—सर्वोत्कृष्ट विद्युदिवाले जीवके जपन्य अनुभाग होवा है पेसा क्वो नहीं कहा ?

समाधान—नहीं क्योंकि अन्तिमवृत्तिकरण गुणस्थानसे होनेवाला परिणाम समान समकर्वी सब जीवा के समान ही हावे हैं, अतः सर्वोत्कृष्ट विद्युदिवाले जीवके जपन्य अनुभाग होवा है पेसा नहीं कहा ।

● मरकगतिमें मिथ्यात्वका जपन्य अनुभागसत्कर्म कितक होवा है ?

§ २६१ यह सूत्र सुगम है ।

● इदसमुत्पत्तिक कर्मके साथ जो असंघी भाकर नारघी हुआ है उसके होवा है ।

§ २६२ हांका—उत्तामें स्थिति कर्मोंके अनुभागासे जब तक जीव कम अनुभागाबंध करता है तबतक ही विद्युद परिणामोंसे इदसमुत्पत्तिककर्म उत्पन्न होवा है । पेसी अबस्थामें विद्युद हात

१ ता श्री नाव हेहा संतकम्मस्त वंपदि ताव इवेवए वृत्तंत्वेन विट्टिइए ।

उपपज्जदि । पुणो सो विसुद्धो संतो कथं गेरइएसु समुपपज्जदे ? ण, पुव्ववद्दणिरयाउअस्स संकिलेस-विसोहिअद्धासु कमेण परियट्ठंतस्स विसोहिअद्धाए भ्मीणाए तप्पाओग्ग-संकिलेसेणाणुभागबंधवुट्ठीए विणा खीणभुंजमाणाउअस्स गेरइएसु उपपत्तिं पडि विरोहा-भावादो । जदि एवं तो सणिएणपंचिदिओ सव्वविसुद्धो जहएणाणुभागसंतकम्मिओ मिच्छादिट्ठी किएणा उप्पाइदो ? ण, सणिएणमिच्छाइट्ठिजहएणाणुभागसंतकम्मं पेक्खिदूण अणिएणजहएणाणुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणहीणत्तादो । तं कुटो णव्वदे ? विसंजोडद-अणंताणुबंधवचउक्कम्मि गेरइयसम्माइट्ठिम्मि मिच्छत्ताणुभागस्स जहएणासामिचमदादूण अणिएणपच्छायदमिच्छादिट्ठिम्मि सामिचं पटुप्पाययसुत्तादो । ण च हदसमुपपत्तिय-कम्मो विसुद्धो चेव होदि त्ति णियमो, संकिलिट्ठस्स वि सगजहएणाणुभागसंतकम्मादो' हेट्ठा बंधमाणस्स हदसमुपपत्तियकम्मचं पडि विरोहाभावादो । जाव सतकम्मस्स हेट्ठा बंधदि तावे त्ति किमट्ठं कालणिहंसो कदो ? जहएणाणुभागसंतकम्मेण सह गेरइएसु अंतोमुहुत्तमच्छदि त्ति जाणावणट्ठं ।

हुआ वह हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जीव नरकमें कैसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिसने पहले नरायुका वध कर लिया है वह जीव क्रमसे सङ्केश और विशुद्धिके कालमें परिभ्रमण करता हुआ अर्थात् सङ्केशसे विशुद्धिमें और विशुद्धिसे सङ्केशमें परिवर्तन करता हुआ विशुद्धिकालके क्षीण हो जाने पर तत्प्रायोग्य सङ्केशवश अनु-भागवन्धमें वृद्धि हुए बिना भुज्यमान आयुके क्षीण होने पर नरकगतिमें उत्पन्न होता है इसमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—यदि ऐसा है तो सबसे विशुद्ध और जघन्य अनुभागसत्कर्मकी सत्तावाले सञ्जी पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टिको क्यों नहीं उत्पन्न कराया । अर्थात् असञ्जीको नरकमें उत्पन्न कराकर जो उसे मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका स्वामी बतलाया है उसकी अपेक्षा सञ्जीको नरकमें उत्पन्न कराकर उसके जघन्य स्वामित्व क्यों नहीं बतलाया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि सञ्जी मिथ्यादृष्टिके जघन्य अनुभागसत्कर्मकी अपेक्षा असञ्जीका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसयोजना कर चुकनेवाले नारक सम्यग्दृष्टिमें मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका स्वामित्व न बतलाकर असञ्जी पर्यायसे आये हुए नारक मिथ्या-दृष्टिमें स्वामित्व बतलानेवाले सूत्रसे जाना ।

तथा हतसमुत्पत्तिककर्मवाला जीव विशुद्ध ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि अपने जघन्य अनुभागसत्कर्मसे कम बाँधनेवाले सक्लिष्ट जीवके भी हतसमुत्पत्तिककर्म हो सकता है इसमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—‘जब तक सत्कर्मसे कम बाँधता है तभी तक’ इस प्रकार कालका निर्देश क्यों किया है ?

समाधान—जघन्य अनुभागसत्कर्मके साथ जीव नारकियोंमें अन्तर्मुहूर्त काल तक

⊗ एव चारसकसाय-यवप्योकसायाय ।

§ २६३ महा मिच्छतस्त असपियापञ्चायद्वदसमुप्यतियकम्मेण भागदस्त
अप्यसासामिपं पस्विदं तथा पदासिं पि पयवीणं पस्वेदम्भं, अनिसेसादो ।

⊗ सम्मशास्त जहयशाणुभागासंतकम्म कस्त ?

§ २६४ सुगम ।

⊗ चरिमसमपअकलीयावसपमोहणीयस्त ।

§ २६५ सुगमोदं सुतं, ओपम्मि पस्विदत्तादो । शिरयार्ई दंसपमोहणीय

रत्ता है यह बतलानेके लिये किया है ।

विशेषार्थ—सा असंखी पञ्चत्रिंश पक्षे नरकमुक्ता कम्प करके पीछे सत्तामें स्थित
मिप्यात्वके अनुभागका पाव कर जाता है यह जब मरकर नरकमें जन्म लेता है वा उसके
मिप्यात्व का अपन्व अनुभागसत्कर्म तब तक जाता है जब तक वह मिप्यात्वके सत्तामें स्थित
अनुभागसे अधिक अनुभागका कम्प नहीं करता । जब वह अधिक अनुभागकम्प करने लगता है
वा फिर उसके अपन्व अनुभाग नहीं रहता । अतः नरकमें मिप्यात्वके अपन्व अनुभागी सत्ता
अन्तर्गुह्यं काठ तक ही रहती है । इस पर एक राह्य यह भी गई है कि सत्तामें स्थित अनुभागका
पाव विदुषः परिणामोंसे जाता है अतः विदुषः परिणामवाला मरकर नरकमें जैसे उत्पन्न हो
सकता है ! इसका यह समाधान किया गया है कि पहले ता वह जीव मरक भी आसु बांध
चुक्ता है, अतः जब मुख्यमान आसु भीय हावी है वा अन्य संक्षेप परिणामोंसे मरकर नरकमें
जन्म लेता है । किन्तु इतना स्मरण रखना चाहिये कि उसके संक्षेप परिणामोंसे नहीं हावे
जिनसे सत्तामें स्थित मिप्यात्वके अनुभागसे अधिक अनुभागकम्प हो । दूसरी राह्य यह भी
गई है कि असंखी पञ्चत्रिंश मिप्यादृष्टिके परिणाम अधिक विदुषः होचें हैं, अतः उससे उसके
अपन्व अनुभागसत्कर्म अधिक हीन होंगे, इसलिये सैनी मिप्यादृष्टिका नरकमें उत्पन्न क्यों नहीं
कराया । सा इसका समाधान यह किया गया है कि संखी मिप्यादृष्टिके अपन्व अनुभाग
सत्कर्मसे असंखी पञ्चत्रिंशका अपन्व अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन जाता है और इन्का
संबन्ध यह है कि अनन्तानुपन्वीचतुष्क भी किंसयाजना कर देनेवाले सम्प्रादृष्टि नारकीम
मिप्यात्वका अपन्व अनुभागसत्कर्म त बल्लाकर असंखी पर्यायसे आकर नरकमें जन्म लेनेवाले
मिप्यादृष्टिके उसका अपन्व अनुभाग बतलाया है, अतः सिद्ध है कि संखी मिप्यादृष्टिसे असंखी
पञ्चत्रिंशका अपन्व अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है ।

⊗ इसी प्रकार चारह कपाय और नव भोक्तापोंके अपन्व अनुभागक
स्वामित्वका कथन करना चाहिये ।

§ २६३ जैसे इतसमुत्पत्तिक कर्मवाले असंखी जीवक नरकमें उत्पन्न होने पर उसके
मिप्यात्वके अपन्व अनुभागकस्वामित्वका कथन किया है जैसे ही इन प्रकृतियोंका भी कथन कर
लेना चाहिये, क्यों कि उससे इनमें कोई किरापता नहीं है ।

⊗ सम्यक्सत्का अपन्व अनुभागसत्कर्म किसके जाता है ?

§ २६४ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ दर्शनमोहनीयका छत्र करनवालाक अन्तिम समयमें जाता है ।

२६५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि आप प्रकल्पमें इसका कथन कर आये हैं ।

खवणाभावादो पेदं घडदि ति णासंकणिज्जं; ढंसणमोहणीयं मणुस्सेसु खविय कद-
करणिज्जो होदूण णेरइएसुप्पएणास्स जहण्णाणुभागुवलंभादो । जहा सम्मत्तं पुव्वबद्ध-
दीहाउट्ठिदिं छिदिदूण देसूणसागरोवममेत्तं संखेज्जवाससेत्तं वा करेदि तथा णिरआउस्स
णिम्मूलविणासं किएणा करेदि ? ण, तस्स तहाविहसत्तीए अभावादो । ण च सहाओ
पडिबोहणारुहो, अइप्पसंगादो ।

❀ **सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णायं णत्थि ।**

§ २६६. कुदो ? ढंसणमोहखवणं मोत्तूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमएणात्थ अणु-
भागखंडयघादाभावादो । पढमसम्मत्तुप्पत्तीए अणंताणुवंधीणं विसंजोयणाए चारित्तमोह-
णीयस्स उवसामणाए च सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं द्विद्विखंडयघादे संते कधमणुभाग-
खंडयस्सेव घादो णत्थि ? ण, भिएणाजाइत्तणेण एगसहावत्तविरोहादो । अविरोहे वा
अणुभागघादे संते णियमेण द्विदिघादेण वि होद्व्वं । ण च एव, खवणाए एगद्विदि-

शंका—नरकगतिमे दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं होता है, अतः यह स्वामित्व नरकमे
घटित नहीं होता ?

समाधान—ऐसी आशका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि मनुष्योंमें दर्शनमोहनीयका क्षय
करके, कृतकृत्य होकर जो नारकियों में उत्पन्न होता है उसके सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग पाया
जाता है ।

शंका—जैसे सम्यक्त्वकी पहले बाधी हुई लम्बी स्थितिका छेदन करके उसे कुछ कम
सागर प्रमाण अथवा सख्यातवर्ष प्रमाण करता है वैसे ही बाधी हुई नरकायुका निर्मूल विनाश
क्यों नहीं करता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसमें इस प्रकारकी शक्ति नहीं है । यदि कोई कहे कि शक्ति
क्यों नहीं है तो उसका यह प्रश्न ठीक नहीं है क्योंकि शक्तिका होना न होना पदार्थोका स्वभाव
सिद्ध धर्म है और स्वभाव प्रतिबोधनके अयोग्य है, उसमें इस प्रकारका तर्क नहीं किया जा सकता
कि ऐसा क्यों है ? यदि स्वभावके विषयमें भी इस प्रकारका तर्क किया जाने लगे तो अतिप्रसंग
दोष उपस्थित होगा । वस्तुमात्रके स्वभाव के विषयमें इस प्रकारका तर्क किया जाने लगेगा ।

❀ **सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं है ?**

§ २६६ **शंका**—सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि दर्शनमोहके क्षणको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मि-
थ्यात्वका अनुभागकाण्डकघात नहीं होता । और नरकगतिमें दर्शनमोहका क्षण नहीं होता ।
इसलिए वहा सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका निषेध किया है ।

शंका—प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन और चरित्रमोहनीयकी
उपमशानाके समय जब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिकण्डकघात होता है तो वहा
अनुभागकाण्डकघात ही क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्थिति और अनुभाग भिन्न जातीय हैं, अत दोनोंका एक स्वभाव
होनेमें विरोध है । यदि विरोध न हो तो अनुभागका घात होने पर नियमसे स्थितिका घात भी

मंदपवर्हीरुगकानर्म्यतर मंसजगदरम्ममशुभागावदव्याणं पदगविराहादा । अनुभागाभा
 वदशाण अनुभागात्मैव द्विदीए वि होदम्भं, पगमहावगादा । ण प एव, तदाशुबलभादा ।

○ अथताणुपपीणमोष ।

२६७ महा आपम्मि संतुनपदममपण अंशताणुबंधीणं तदप्यासाभिर्न बुतं
 तथा ष्य वि वगर्भं ।

○ एष सत्पत्य षोदप्य ।

१ २६८ पदग वपणग तदरमहाइरिएण पदस्म सुतस्म दसामामिपत्तं आगा
 शिं । मंषि ष्युह सं उषारणा पुषद्—

१ २६९ गामिताणुगमा दृषिहा—तदण्णभा उरुस्तथा षदि । उरुस्मए षयं ।

दृषिरा गिर मा—आपण आदसण । आपण मिषदण-सालसक०-णरगाक० उरुस्ता

हाना आदिप । किन्तु एता मदी हे बवोकि एता मानन पर उरुतावधामे एक ग्यिनिहाण्डक
 उरुतावधु वावक भीतर मंसयात उरुता अनुभाग काण्डकोकारनन हानमे विगप आता हे ।
 तथा षदि ग्यिनि और अनुभागका एक ग्यवाव हे ता शिम प्रकार प्रति ममप अनुभागका अष
 बनन पात हाता हे उम तदह ग्यिनिहा भी हाना आदिपे बवोकि हाने उरुतावधु है । किन्तु
 एता हाना मदी हे बवोकि बैसा ताया मदी जाता ।

विशुषार्थ-मंसयिप्याव महतिहा त्रपय अनुभागावधम अनुभागकाण्डकपाल हूप
 बिना मदी हाता । और मंसयिप्यावद अनुभागका काण्डकपाल हानमादके उरुतावधु विहा
 अयव हाता मदी तथा मरुवधिमै हानमादका उरुता मदी हाता अत मरुवध मंसयिप्याव
 महतिहा त्रपय अनुभागावधम मदी हाता । इम पर वर मदी की मदी कि मंसयिप्यावकी
 ग्यिनिहा काण्डकपाल ता अयव अशमो पर भी हाता हे तब अनुभागका ही काण्डक
 पाल वया कवन हानमादक उरुतावधु ममप ही हाता हे अयवत्र मदी हाता ? इमहा गमापान
 दिहा गया कि ग्यिनि और अनुभाग हाने वा तुही भीत्रे है अत एउक हान पर उरुतावधु हाता
 आदिनामदी मदी हे । या इतना विराय जानना आदिपे कि मंसयिप्याव उरुतावधु मंसयिप्याव
 मंसयिप्याव मंसयिप्याव मंसयिप्याव है किन्तु वा उरुतावधु हानम परने ही मंसयिप्याव
 अनुभागावधम वर सेना ट अत मरुवध मदी हा गदना ।

● अनन्तनुवर्तीक त्रपय अनुभागका मंसयिप्याव आपक गमान करना आदिपे ।

१ २७० अम आपम अनन्तनुवर्तीक अनुन तात्रेद वधम ममपम अनन्तनुवर्तीक
 त्रपय अनुभागका मंसयिप्याव वरा हे वेगा ही मरुवध भी करना आदिपे ।

○ इमी प्रकार मरु भागनाभोमै मारतीपदी महतिपौव त्रपय अनुभागक
 मंसयिप्याव करना आदिपे ।

१ २७१ इत उरुतावधु कावधु मंसयिप्याव वर वरुतावधु है । वर मरुवध उरुतावधु है ।
 अत इत विरुवध उरुतावधु वरुतावधु है ।

१ २७२ मंसयिप्याव अनुन वा वरुतावधु है-मंसयिप्याव और वरुतावधु । मंसयिप्याव वरुतावधु है । मंसयिप्याव
 वरुतावधु है-कावधु और वरुतावधु । अत इत विरुवध उरुतावधु वरुतावधु और वरुतावधु वरुतावधु

गुभागसंतकम्मं कस्स ? अण्णदरस्स जो तप्पाओग्गजहण्णाणुभागसंतकम्मिओ तेण उक्कस्साणुभागो बंधे जाव तं ण हणदि ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा सएणी वा असएणी वा पज्जतो वा अपज्जतो वा सखेज्जवस्साउओ वा असंखेज्जवस्साउओ वा । असंखेज्जवस्साउअतिरिक्ख-मणुस्से मणुस्सोववादियदेवे च मोत्तूण । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणमुक्क० कस्स ? अण्णदरस्स संतकम्मियस्स दसणमोहक्खवयं मोत्तूण ।

§ २७०. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणमुक्क० कस्स ? अण्णद० जेण उक्कस्साणुभागो पवद्धो सो जाव तएण हणदि ताव । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणमोघं । एवं पढमाए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव सोहम्मीसाणादि जाव सहस्सारकप्पो ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सम्मामिच्छत्तस्सेव सम्मतस्स णत्थि अणुक्कस्ससंतकम्मं । एव पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-पंचि०तिरि०-

उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? ऐसे किसी भी जीवके होता है जो अपने योग्य जघन्य अनुभागकी सत्तावाला जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक वह एकेन्द्रिय हो, द्वीन्द्रिय हो, तेइन्द्रिय हो, चौइन्द्रिय हो, सञ्जी हो, असञ्जी हो, पर्याप्त हो, अपर्याप्त हो, सख्यात वर्षकी आयुवाला हो या असख्यात वर्षकी आयुवाला हो, उसके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। किन्तु असख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यञ्चों और मनुष्योंको तथा जहाँके देव केवल मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं उन देवोंको छोड़कर अन्य सबके यह उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर उनकी सत्तावाले किसी भी जीवके होता है।

विशेषार्थ—अपने अपने योग्य जघन्य अनुभागसत्कर्मवाला जो जीव उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके जब तक उसका घात नहीं करता तब तक वह किसी भी पर्यायमें सख्यातवर्ष या असख्यात वर्षकी आयुके साथ जन्म ले उसके मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभाग रहता है। किन्तु भोगमूमिज तिर्यञ्च और मनुष्य तथा आनतादिक कल्पके देवोंमें मोहनीयकी उतर प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका सत्त्व नहीं होता, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए। पर यह कथन मोहनीयकी २६ प्रकृतियोंकी अपेक्षासे किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षासे कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन दोका बन्ध नहीं होता, अत इनकी सत्तावालेके इनका उत्कृष्ट अनुभाग रहता है। केवल दर्शनमोहके क्षपकको छोड़ देना चाहिये, क्योंकि उसके इनका जघन्य अनुभाग भी होता है और बादको ये नष्ट हो जाती हैं। ओष की ही तरह आदेश से भी जानना चाहिए। उसमें जो विशेषता है सो मूलमें बतलाई ही है।

§ २७० आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जिसने उत्कृष्ट अनुभागका बध किया वह जब तक उसका घात नहीं करता है तब तक उस जीवके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व ओषके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च,, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म ईशान स्वर्गसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार स्वामित्व है। इतना विशेष है कि वहा सम्यग्मिथ्यात्वके समान सम्यक्त्वका भी अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। इसी प्रकार

अपञ्च०-मणुसमपञ्च०-यवण०-वाण०-जोदिसिए ति । णपरि पंषिदियतिरिबत्त्-
अपञ्च०-मणुसअपञ्च० उक्त्वासाणुभागसंतकम्मिओ तिरिबत्त्वा मणुस्तो वा अप्पिद्व
अपञ्चत्तएणु सप्यच्चिदूण भाव तं ण इणदि ताव सो उक्त्वासाणुभागस्त सामिमा ।

१ २७१ मणुस-मणुसपञ्च०-मणुसिणी० मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवणोक० उक्त्वा-
स्ताणु० कस्त ? अण्णद० उक्त्वासाणुभागं वंषिदूण मान ण इणदि ताव । सम्मत
सम्मायिच्छत्तार्ण उक्त्वासाणुभाग० कस्त ? दंसणमोहकत्त्ववणं मोचूण सम्भस्त संत-
कम्मियस्त । आणद्विदि भाव उपरिमगवत्त्व ति मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवणोक० उक्त्वा-
कस्त ? अण्णदरो ओ दब्बसिंगी तप्याभोगाउक्त्वासाणुभागसंतकम्मण उववण्णो सो
भाव ण इणदि ताव उक्त्वासाणुभागसंतकम्मिओ । सम्मत० मोषं । सम्मामि देषोषं ।
अणुसिसादि मान सम्भद्विसिद्धि ति मिच्छत्त-सोत्तसक० णवणोक० उक्त्वा० कस्त ?
अण्णद वेदयसम्माद्विस्त उक्त्वासाणुभागसंतकम्म्येण उववण्णत्तयस्त भाव ण इणदि
ताव । सम्मत० भाषं । सम्मामि० देषोषं । एवं जाणित्तूण पेद्वत्तं भाव अणाहारि ति ।

१ २७२ अण्णए पयदं । दुबिहो णिह सो—ओपेण आवेसेण । ओपेण मिच्छत्त
अद्वक० जह० मणु० संतकम्मं कस्त ? अण्णद० सुहमेईदियस्त कद्वदससुप्पविय

पञ्च शिब शिब पानिन्दी पञ्चोत्त्रिय शिब शिब अपयात्त, मनुष्य अपर्चात्त भवनवादी व्यस्तर
और श्रोत्रिणी देवोंमें जानना चाहिए। पञ्चोत्त्रिय शिब शिब अपर्चात्त और मनुष्य अपर्चात्तकेमें इतना
विरोध है कि उक्त अनुभागकी सचावाला शिब शिब अपर्चा मनुष्य शिब शिब अपर्चात्तकेमें उक्त
हाकर अब तक बसका पाठ नहीं करता है तब तक वह उक्त अनुभागसत्कर्मका स्वामी है।

१ २७१ सामान्य मनुष्य मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीमें सिध्यात्त्व सोलह कपाय, और
नव नोकपायोका उक्त अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो उक्त अनुभागको वांचकर अब
तक बसका पाठ नहीं करता है तब तक बसके उक्त अनुभागसत्कर्म होता है। सम्भक्त्व और
सम्भमिष्वात्तका उक्त अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? इरानमोहक कपका जाकर
सम्भक्त्व और सम्भमिष्वात्तकी सचावाले सब जीवोंके हाता है। आनत स्वसि लेकर उपरिम
प्रेवक उक्तके देवोंमें सिध्यात्त्व सोलह कपाय और नव नोकपायोका उक्त अनुभागसत्कर्म
किसके होता है ? जा इम्मसिन्दी मुनि अपने धाम्य उक्त अनुभागसत्कर्मका लेकर बहां कल्प
हुमा है वह अब तक बसका पाठ नहीं करता है तब तक बसके उक्त अनुभागसत्कर्म होता है।
सम्भक्त्वके उक्त अनुभागसत्कर्मका स्वामी आपकी तरह समझना चाहिए। सम्भमिष्वात्तका
मज्ञ सामान्य देवोंके समान है। अणुसिसासे लेकर सर्वांसिद्धि तकके देवोंमें सिध्यात्त्व सोलह
कपाय और नव नोकपायोका उक्त अनुभागसत्कर्म किसके हाता है ? उक्त अनुभागसत्कर्मके
साव कल्प हुमा जो वेदसम्भद्वि जीव अब तक बसका पाठ नहीं करता तब तक बसके
उक्त अनुभागसत्कर्म होता है। सम्भक्त्वके उक्त अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व ओपकी तरह
है। सम्भमिष्वात्तके उक्त अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वका मज्ञ सामान्य देवोंकी तरह है। इस
प्रकार जालकर अणुसिसा पर्यन्त लेनाम्य चाहिए।

१ २७२ अब जम्भका प्रकरण है। भिरेण सो प्रकारका है ओप और आवेसा। आपसे
सिध्यात्त्व और आठ कपायोका जम्भ अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जिस सुत्त पकेत्त्रिय

कम्मस्स, सो तेण जहण्णाणुभागसंतकम्मेण एइदिओ वा वेइदिओ वा तेइदिओ वा चउरिदिओ वा सण्णी वा असण्णी वा सुहुमो वा वादरो वा पज्जतो वा अपज्जतो वा होदि जाव तण्ण वडुदि ताव तस्स विहत्तिओ । सम्मत० जहण्णाणु० कस्स ? अण्णद० चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । सम्मामि० जहण्णाणु० कस्स ? अण्णद० दंसणमोहणीयक्खवयस्स अपच्छिमे अणुभागखंडए वट्टमाणस्स । अणंताणु० चउक्क० जहण्णाणु० कस्स ? विसजोएदूण पढमसमयसंजुत्तस्स तप्पाओग्गविमुद्धस्स जहण्णाणु-भागसंतकम्म होदि । कोध-माण-मायासजलण० जह० कस्स ? अण्णद० कोध-माण-मायावेदयक्खवगस्स चरिमसमयअणुभागवंधं पडि चरिमसमयअसंकामयस्स । लोभ-संजल० जहण्णाणु० कस्स ? खवगस्स चरिमसमयसकसायिस्स । पुरिसवेदस्स जह-ण्णाणुभागसंतकम्म कस्स ? पुरिसवेदक्खवयस्स चरिमसमयअणुभागवंधं पडि चरिम-समयअसंकामयस्स । इत्थि० ज० कस्स ? अण्णद० खवयस्स इत्थिवेदोदएण उवट्ठि-दस्स चरिमसमयइत्थिवेदयस्स । णवुंसयवेद० जह० कस्स ? अण्णद० णवुंसयवेदोदएण उवट्ठिदस्स चरिमसमयणवुंसयवेदयस्स । छण्णोकसाय० ज० कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमे अणुभागखंडए वट्टमाणस्स ।

§ २७३. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जह० कस्स ? जो

जीवने अनुभागका घात करके जघन्य अनुभागसत्कर्म उत्पन्न किया है उसके होता है । तथा वह उस जघन्य अनुभागसत्कर्मके साथ मरकर एकेन्द्रिय अथवा दोइन्द्रिय, अथवा तेइन्द्रिय, अथवा चौइन्द्रिय, अथवा असङ्गी, अथवा सङ्गी, सूक्ष्म अथवा वादर, पर्याप्त अथवा अपर्याप्त होकर जब तक उसे नहीं बढ़ाता है तब तक उसका स्वामी होता है । सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अक्षीणदर्शनमोहीके अन्तिम समयमें होता है । सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान दर्शनमोहके क्षणके होता है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके पुनः उससे संयुक्त हुए तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले प्रथम समयवर्ती जीवके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । सज्वलन क्रोध, सज्वलन मान और सज्वलन मायाका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? क्रोध, मान और मायाका वदन करनेवाले तथा अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धकी अपेक्षा अन्तिम समयवर्ती असक्रामक क्षणक जीवके होता है । सज्वलन लोभका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम समयवर्ती क्षणक सकषायिक जीवके होता है । पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम समयमें होनेवाले अनुभागबन्धकी अपेक्षा अन्तिम समयवर्ती असक्रामक पुरुषवेदीके होता है । स्त्रीवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? स्त्रीवेदके उदयसे क्षणकश्रेणी पर चढ़नेवाले अन्तिम समयवर्ती स्त्रीवेदी क्षणक जीवके होता है । नपुंसकवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणी पर चढ़नेवाले अन्तिम समयवर्ती नपुंसकवेदी क्षणक जीवके होता है । छ नोकषायीका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान क्षणकके होता है ।

§ २७३ आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नव नोकषायीका जघन्य

१ आ० प्रती चरिमसमय असकामयस्स । लोभसजल० जइयणाणु० कस्स० पुरिसवेदक्खवयस्स इत्ति पाठ ।

असंख्यी इदसमुप्यवियकम्मोण आगदो भाव संतकम्मादो इडा पंपदि ताव वस्स
 जहण्ययमपुभागसंतकम्मं । सम्मतं जहं कस्स ? परिमसमयअक्खीण्वंसणमोहणी-
 यस्स । सम्मामिच्छवस्स जहण्णापुभागो गत्थि । अर्णत्वापु० ज० कस्स ? अण्णद०
 पइमसमयसंजुवस्स तप्याओम्मविसुद्धस्स । एवं पइमाए पुइपीए । विदियादि भाव
 सत्तमि ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ञ० कस्स ? अण्णद० सम्माइडिस्स अर्णत्वापु-
 वधिचउत्तं विसंभोइदस्स । अर्णत्वापु० पउत्त० ज० कस्स ? अण्णद० पइमसमय
 संजुवस्स तप्याओम्मविसुद्धस्स ।

§ २७४ तिरिक्लमदीए तिरिक्लेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० ञ० कस्स ?
 अण्णद० सुइमेइदियस्स इदसमुप्यवियकम्मियस्स भाव ण वडुवेदि ताव । सम्मतं
 ओपं । सम्मामिच्छवस्स जत्थि जहण्णं । अर्णत्वापु० पउत्त० ओपं । पंथिदियविरिक्ल
 पंथि० तिरि० पज्ज० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जहं क० ? अण्णद० सुइमेइदिय
 पच्छायदस्स इदसमुप्यवियकम्मियस्स भाव ण वडुदि ताव । सम्मतं—अर्णत्वापु०
 पउत्त० तिरिक्लोपं । सम्मामिच्छत्त० जहण्णं गत्थि । एवं भोगिणी० । जपरि सम्मत०

अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो असंखी जीव इतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ नरकमें जन्मा
 है वह जब तक सत्तमें स्थित अनुभासके कर्म अनुभासका जन्म करता है तब तक उसके जपन्य
 अनुभागसत्कर्म होता है । सम्भवत्तका जपन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? इरंनगाइका
 जब करनेवाले जीवके अन्तिम समयमें होता है । सम्ममिच्छात्तका जपन्य अनुभागसत्कर्म
 नरकमें नहीं होता । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जपन्य अनुभागसत्कर्म किसके हाता है ? अन-
 न्तानुबन्धीका विसंभोजन करके पुन ठससे संयुक्त हुए तत्प्रायोम्म विद्युत्त परिणामवाले प्रथम
 समसकती जीवके होता है । इसी प्रकार पइसी पृथिवीमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं
 पृथिवी तकके नारकिमें मिच्छात्त, बारह कपाव और नव नोकपावोंका जपन्य अनुभागसत्कर्म
 किसके होता है ? जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंभोजना की है ऐसे अन्यतर सम्यदृष्टिके
 हाता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जपन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीकी
 विसंभोजना करके पुन ठससे संयुक्त हुए तत्प्रायोम्म विद्युत्त परिणामवाले प्रथम समयकती जीवके
 होता है ।

§ २७५ तियञ्चगतिमें तियञ्चोंमें मिच्छात्त, बारह कपाव और नव नोकपावोंका जपन्य
 अनुभागसत्कर्म किसके हाता है ? जो इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय जीव जब तक
 जपन्य अनुभागसत्कर्मको नहीं बढ़ाता है तब तक उसके हाता है । सम्भवत्तके जपन्य अनुभाग
 सत्कर्मका स्वामी भोजकी तरह है । सम्ममिच्छात्तका जपन्य अनुभागसत्कर्म तिर्यञ्चगतिमें
 नहीं होता । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जपन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी भोजकी तरह है । पञ्चे
 न्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तमें मिच्छात्त बारह कपाव और नव नोकपावोंका
 जपन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला जीव सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय
 पर्याप्तसे भरकर आता है वह जब तक वर्तमान अनुभागको नहीं बढ़ाता है तब तक उसके
 जपन्य अनुभागसत्कर्म होता है । सम्भवत्त और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जपन्य अनुभाग
 सत्कर्मका स्वामी सामान्य तिर्यञ्चके समान है । सम्ममिच्छात्तका जपन्य अनुभागसत्कर्म पहाँ
 नहीं होता । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च वाक्लिनी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इसका विराप है कि

जहणं णत्थि । पंचिन्द्रियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छन्त-सोलसक०-णवणोक्क० पंचिन्द्रियतिरिक्खभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्क० सुद्धमेइन्द्रियपच्छायदस्म णदसमु-
प्पत्तियकम्मियस्स जहणं वत्तव्वं ।

§ २७५, मणुमगदीण मणुस्सेमृ ओंघं । णवरि मिच्छन्त-अट्टकसायाणं पंचि-
न्द्रियतिरिक्खभंगो । मणुसपज्ज० एव चेव । णवरि इत्थि० छण्णोक्कसायभंगो । मणु-
सिणीसु मणुस्सोघ । णवरि पुरिस-णनुसयवेदाण छण्णोक्कसायभंगो ।

§ २७६, देवगाद० देवाणं पढमपुढविभंगो । एवं भवण०-वाण० । णवरि
सम्मत्त० जहणं णत्थि । जोदिसिय० विद्रियपुढविभंगो । सोहम्माटि जाव उवरिम-
गेवज्जा त्ति मिच्छन्त० ज० कस्स ? अण्णद० जो चउवीससंतकम्मिओ दोवारं कसाए
उवसामिदूण अप्पणो देवेसु उववणो तस्स जहणयं । वारसक०-णवणोक्क० ज०
कस्स ? अण्णद० जो वेदयसम्माइटी दंसणमोहणीयमुवसामिय दोवारमुवसमसेदि-
मारूढो पच्छा दसणमोहणीय गवेदूण अप्पणो देवेसु उववणो तस्स जहणमणुभाग-
संतकम्मं । सम्मत-अणताणु०चउक्क० देवाण भंगो । अणुदिसाटि जाव सव्वदिसिद्धि
त्ति एवं चेव । णवरि अणंताणु०चउक्क० ज० कस्स ? अण्णद० अणताणु० चउक्क०

उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता । पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य
अपर्याप्तकोमि मिथ्यात्व, मोलह कपाय और नव नोकपायोके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व
पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चके समान होता है । इतना विशेष है कि अनन्तानुवन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभाग
सत्कर्मका स्वामी सूक्ष्म एकेन्द्रियसे मरकर आये हुए हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले जीवके कहना
चाहिये ।

§ २७५ मनुष्यगतिमे मनुष्योंमे ओघके समान समझना चाहिए । इतना विशेष है कि
मिथ्यात्व और आठ कपायोके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चके समान
है । मनुष्य पर्याप्तकोमि इमी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमे स्त्रीवेदका भद्र
छह नोकपायोके समान है । मनुष्यनियोमें सामान्य मनुष्योंके समान स्वामित्व है । इतना विशेष
है कि इनमें पुरुषद और नपुसकवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व छह नोकपायके
समान है ।

§ २७६ देवगतिमें देवोंमे पहली पृथिवीके समान भग है । इसी प्रकार भवनवासी और
व्यन्तरोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं
होता । ज्योतिषीदेवोंमे दूसरी पृथिवीके समान भग है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवैयक
तकके देवोंमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुवन्धीचतुष्कके
सिवाय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव दो बार कपायोका उपशमन करके उन उन
देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । बारह कपाय और नव नोकपायोका
जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो वेदकसन्धगृष्टि जीव दर्शनमोहनीयका उपशम
करके दो बार उपशम श्रेणीपर चढा, पीछे दर्शनमोहनीयका क्षय करके उन उन देवोंमें उत्पन्न हुआ
है उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्कका भग सामान्य
देवोंके समान होता है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार होता है । अनन्तानु-

विसंशोपतस्त षरिम अणुभागकंडप बहुमापस्त । एवं माण्डूण येरुम्बं जाय अणा हारि ति ।

⊗ काळाणुगमेय ।

१ २७७ सामितं भणिय संपदि एगभीनपडिबद्धं कालपरुषणं कस्सामो ति पण्वासुत्तमेदं ।

⊗ मिच्छत्तस्त उद्धस्साणुभागसत्तकम्मिओ केवधिर काळापो होवि ?

१ २७८ सुगम ।

बन्धीबन्धुपुष्के अधन्य अनुभागके स्वामित्वके विषयमें इतना विरोध है कि अनन्तानुबन्धीबन्धुपुष्क का विसंशोजन करनेवाला जीव जब अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान होता है तब उसके जन्म अनुभागसत्कर्म होता है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आपसे माइतीयकी उत्तर प्रकृतियोंके अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व जैसे पहले बतला आये हैं वैसे ही जानना चाहिये । और आदेशसे भी प्रायः उसी प्रकार है किन्तु इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पहले नरकके सिवा अन्य नरकोंमें जन्म नहीं लेता अतः दूसरे आदि नरकोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव माकषायोंके अधन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी अनन्तानुबन्धीबन्धुपुष्ककी विसंवाजना करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है । सामान्य तिर्यंशोंमें सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला स्वामी होता है । शेष तिर्यंशोंमें मरकर जन्म लेनेवाला बही इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय जीव स्वामी होता है । सामान्यसे चारों ही गणियों में अनन्तानुबन्धीबन्धुपुष्के अधन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामी अनन्तानुबन्धीका विसंशोजन करनेवाला जब पुनः अनन्तानुबन्धीसे संबुद्ध होता है तब उसके प्रथम समयमें होता है । किन्तु तिर्यंश अपर्षात और मनुष्य अपर्षातमें अनन्तानुबन्धीका विसंवाजन नहीं होता, अतः जो इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला सूक्ष्म पञ्चेन्द्रिय जीव मरकर उनमें जन्म लेता है वही स्वामी होता है । तथा देवगणितमें अनुविरादिक विमानोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंवाजना करनेवाला जब अनन्तानुबन्धीके अन्तिम अनुभागकाण्डककी विसंवाजना करता है तब उसके अनन्तानुबन्धीका अधन्य अनुभागसत्कर्म होता है क्योंकि वही अनन्तानुबन्धीका पुनः संवाजन संभव नहीं है । सम्बन्धिध्यात्व का जन्म अनुभागसत्कर्म केवल मनुष्यगणितमें ही होता है क्योंकि सम्बन्धिध्यात्वका रूपण मनुष्य ही करता है । सम्यक्त्व प्रकृतिका अधन्य अनुभागसत्कर्म पहले नरकमें सामान्य तिर्यंश पञ्चेन्द्रियतिर्यंश और पञ्चेन्द्रिय पर्यात तिर्यंशोंमें सामान्य मनुष्य मनुष्य पर्यात और मनुष्यनिर्षोम तथा भवन्धिकका बाइकर शेष देवोंमें होता है क्योंकि इनमें वा ता कृतकृत्यवदक-सम्यग्दृष्टी उत्पन्न हो सकती है । या इनमेंसे किन्हींमें होता है । वैश्वानर देवोंमें मिथ्यात्व बारह कषाय और नव माकषायोंके अधन्य अनुभागसत्कर्मके स्वामित्वक विषयम जा विरोधता वह सूक्ष्म बतलाय ही है ।

⊗ कालका प्ररूपण करत है ।

१ २७९ स्वमित्तका कइकर एव एक जीवकी अपवा कालका कथन करत है । यह मणिआ सूत्र दे अमान् इस सूत्रमें कालका कथन करनेकी प्रविश की गय है ।

⊗ मिथ्यात्वक उत्कृष्ट मनुभागसत्कर्मका कितना वाय है ?

१ २८०. यह सूत्र सुगम है ।

जहणं णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि अणंताणु०चउक० सुहुमेइंदियपच्छायदस्स हदसमु-
पत्तियकम्मियस्स जहणं वत्तव्वं ।

§ २७५. मणुसगदीए मणुस्सेसु ओघं । णवरि मिच्छत्त-अट्टकसायाणं पंचि-
दियतिरिक्खभंगो । मणुसपज्ज० एवं चेव । णवरि इत्थि० छण्णोकसायभंगो । मणु-
सिणीसु मणुस्सोघं । णवरि पुरिस-णवुसयवेदाणं छण्णोकसायभंगो ।

§ २७६. देवगाद० देवाणं पढमपुढविभंगो । एवं भवण०-वाण० । णवरि
सम्मत्त० जहणं णत्थि । जोदिसिय० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव उवरिम-
गेवज्जा त्ति मिच्छत्त० ज० कस्स ? अण्णद० जो चउवीससंतकम्मिओ दोवारं कसाए
उवसामिदूण अप्पणो देवेसु उववणो तस्स जहणयं । वारसक०-णवणोक० ज०
कस्स ? अण्णद० जो वेदयसम्माइटी दंसणमोहणीयमुवसामिय दोवारमुवसमसेदि-
मारूढो पच्छा दसणमोहणीय खवेदूण अप्पणो देवेसु उववणो तस्स जहणमणुभाग-
संतकम्मं । सम्मत्त-अणताणु०चउक० देवाण भंगो । अणुदिसादि जाव सव्वट्टसिद्धि
त्ति एवं चेव । णवरि अणंताणु०चउक० ज० कस्स ? अण्णद० अणंताणु० चउक०

उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य
अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व
पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान होता है । इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभाग
सत्कर्मका स्वामी सूक्ष्म एकेन्द्रियसे मरकर आये हुए हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले जीवके कहना
चाहिये ।

§ २७५. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें ओघके समान समभक्ता चाहिए । इतना विशेष है कि
मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान
है । मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमें स्त्रीवेदका भङ्ग
छह नोकषायोंके समान है । मनुष्यनियोंमें सामान्य मनुष्योंके समान स्वामित्व है । इतना विशेष
है कि इनमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मका स्वामित्व छह नोकषायके
समान है ।

§ २७६. देवगतिमें देवोंमें पहली पृथिवीके समान भग है । इसी प्रकार भवनवासी और
व्यन्तरोमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं
होता । ज्योतिषीदेवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भग है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम प्रवेयक
तकके देवोंमें मिथ्यात्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीचतुष्कके
सिवाय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव दो बार कषायोंका उपशमन करके उन उन
देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । बारह कषाय और नव नोकषायोंका
जघन्य अनुभागसत्कर्म किसके होता है ? जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहनीयका उपशम
करके दो बार उपशम श्रेणीपर चढ़ा, पीछे दर्शनमोहनीयका क्षय करके उन उन देवोंमें उत्पन्न हुआ
है उसके जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भग सामान्य
देवोंके समान होता है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त इसी प्रकार होता है । अनन्तानु-

विसर्गोपतस्त चरिमे अणुभागवद्वयं बहूमागस्त । एवं भाषित्वाणो जेत्स्व्यं जाय अणा
हारि सि ।

⊗ कालाणुगमेण ।

‡ २७७ सामिर्तं भणिय सपहि एगजीवपडिबद्धं कालपरुषणं कस्सामा सि
परस्सासुत्तमे ।

⊗ मिच्छुत्तस्त उक्कस्साणुभागसत्तकम्मिओ केयबिरे कालावो होवि ?

‡ २७८ सुगम ।

बन्धीबन्धुत्कके जपन्य अनुभागके स्वामित्वके विषयमें इतना विरोध है कि अनन्तानुबन्धीबन्धुत्क
का विसर्गजनन करनेवाला जीव जब अन्तिम अनुभागकाण्डकमें वर्तमान होता है तब उसका
जपन्य अनुभागमन्त्रक्यं होता है । इस प्रकार जनकर बनाहायी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशुपार्य—भाषसे माहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंके अनुभागसत्कमका स्वामित्व जैसे पहले
बतला चाये हैं वैसे ही जानना चाहिये । और चायेसे भी प्रायः उसी प्रकार है किन्तु इतसमु
त्पत्तिक कर्मबाला अर्धही पञ्चेन्द्रिय पहल नरकके सिवा अन्य नरकोंमें जन्म नहीं लेता अत
दूसरे चादि नरकोंमें मिथ्यात्व बारह कपाय और भव भाकपायोंके जपन्य अनुभागसत्कमका
स्वामी अनन्तानुबन्धीबन्धुत्ककी विसर्गजाता सम्पत्ति होता है । सामान्य तिर्यचोंमें
सूक्ष्म एकेन्द्रिय इतसमुत्पत्तिक कर्मबाला स्वामी होता है । शप तिर्यचोंमें मरकर जन्म लेनेवाला
बही इतसमुत्पत्तिक कर्मबाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव स्वामी होता है । सामान्यस चारों ही गतियों
में अनन्तानुबन्धीबन्धुत्कके जपन्य अनुभागसत्कमका स्वामी अनन्तानुबन्धीका विसर्गजनन
करनेवाला जब पुनः अनन्तानुबन्धीसे संयुक्त होता है तब उसका प्रथम समयमें होता है । किन्तु
तिर्यच अपर्वाप्त और मनुष्य अपर्वाप्तमें अनन्तानुबन्धीका विसर्गजनन नहीं होता अत जो इत-
समुत्पत्तिक कर्मबाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव मरकर उनमें जन्म जाता है बही स्वामी होता है । तथा
वेवागतिमें अनुविरादिक विभागोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसर्गजाता करनेवाला जब अनन्तानुबन्धी
के अन्तिम अनुभागकाण्डककी विमवाजना करता है तब इसके अनन्तानुबन्धीका जपन्य अनु
भागमन्त्रक्यं होता है क्योंकि बहो अनन्तानुबन्धीका पुनः संयोजन संभव नहीं है । सम्पत्तिप्यात्व
का जपन्य अनुभागसत्कम केवल मनुष्यगतिमें ही होता है, क्योंकि सम्पत्तिप्यात्वका उपपन्न
मनुष्य ही करता है । सम्पत्ति प्रकृतिका जपन्य अनुभागसत्कम पहल नरकमें सामान्य तिर्यच
पञ्चेन्द्रियतिर्यच और पञ्चेन्द्रिय पर्वाप्त तिर्यचोंमें, सामान्य मनुष्य मनुष्य पपाप्त और
मनुष्यनिर्यचोंमें तथा भवत्रिकका छाडकर शप र्बोमें होता है क्योंकि इनमें या ना कुलद्वयवद्द-
सम्पत्ति उत्पन्न हो सकता है । या इनमें किन्हींमें होता है । वैमानिक र्बोमें मिथ्यात्व
बारह कपाय और भव भाकपायोंके जपन्य अनुभागसत्कमके स्वामित्वके विषय जा विरायता
का मूलमं बतलाय ही है ।

⊗ कालका मरुपण करत ह ।

‡ २७९ स्वामित्वका कहकर अथ एक जीवकी अपभ्रंश कालका कथन करत है । यह
मन्त्रा सूत्र है अथा इत सूत्रमें कालका कथन करनेकी प्रतिष्ठा की गय है ।

⊗ मिथ्यात्वर उक्कट अनुभागमन्त्रक्यं कितना काय है ?

‡ २८० यह सूत्र सुगम है ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तां ।

§ २७६. उक्कस्साणुभागं वंधिय सव्वजहण्णेण कालेण घादिदस्स जहण्णकालो सव्वुक्कस्सेण कालेण घादिदस्स सव्वुक्कस्सकालो त्ति घेतत्त्वं ।

❀ अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मं केवचिरं कालादो होदि ?

§ २८०. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तां ।

§ २८१. कुदो ? उक्कस्साणुभागं घादिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमच्छिय पुणो उक्कस्साणुभागे पवद्धे तदुवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण असंखेज्जा पोगलपरियट्टा ।

§ २८२. कुदो ? उक्कस्साणुभागसंतकम्मं घादियूणं अणुक्कस्सम्मि णिवदिय अणुक्कस्साणुभागसंतकम्मेण पंचिदिपसु तप्पाओग्गुक्कस्सकालमच्छिय पुणो एइंदिपसु गंतूण असंखे०पोगलपरियट्टे गमिय पच्छा पंचिदियं गतूण वड्ढुक्कस्साणुभागस्स तदुवलंभादो ।

* जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २७९. उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके यदि उसका घात सबसे जघन्य कालमें अर्थात् जल्दी ही कर दिया जाता है तो जघन्य काल होता है और यदि उसका घात सबसे उत्कृष्ट काल में किया जाता है तो सबसे उत्कृष्ट काल होता है, ऐसा अर्थ लेना चाहिये ।

* अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ।

§ २८० यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २८१ शंका—मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त काल तक क्यों रहता है ?

समाधान—उत्कृष्ट अनुभागका घात करके सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर पुन उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करने पर अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ।

§ २८२ शंका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल असंख्यातपुद्गल परावर्तनप्रमाण कैसे है ?

समाधान—उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका घात करके, अनुत्कृष्टम गिरकर अनुत्कृष्ट अनुभाग के साथ पञ्चेन्द्रियोंमें अधिकसे अधिक जितने काल तक रह सकते हैं उतने काल तक ठहरकर पुन एकेन्द्रियोंमें जाकर असंख्यात पुद्गल परावर्तन काल बिताकर पीछे पञ्चेन्द्रिय होकर जो उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करता है उसके उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण पाया जाता है ।

⊗ एव सोखसकस्ताय-यवयोकस्तायाय ।

§ २०३ महा मिच्छतस्त जहण्युक्तस्तकात्मयस्मया कदा तथा एवेति पशु
 विसकसायागं कायम्भा, वितेसाभावाद्यो ।

⊗ सम्मत्त-सम्भामिच्छतापशुक्तस्तायुभागसतकम्मिओ केवचिर
 कासायो होयि ?

§ २०४ सुगम ।

⊗ जहयणेण अतोमुहुत्त ।

§ २०५ जिससंठकम्मियमिच्छादिदिग्गिणा पहले सम्मत्ते पडिबप्यो सम्मत्त-सम्भामिच्छतागशुक्तस्तायुभागस्त आदी जादा । पुणो अतोमुहुत्तकात्मच्छिय उवसम सम्मत्तकात्मवतरे अर्णताशुर्बिचरक' विसंभोइय वेवर्गं गंतूण सम्भजहण्यकालेण ईसण्णमोहणीयं त्ववेतेण अणुप्यकरणद्वाए पहले अणुभागत्वंइगे इदे सम्मत्त-सम्भामिच्छतायुभागो जेण अणुक्तस्तो होदि तेण वक्तस्तायुभागकाखो जहणेण अतोमुहुत्तमेतो होदि । अर्णताशुर्बिचरक विसंभोए तस्त आउमवत्तायं कम्मार्णं डिदिअणुभागत्वंइए भिवदाम्भे सम्मत्त-सम्भामिच्छतागं येव किमिदि अणुभागत्वंइओ ष भिवदि ? ष,

⊗ इसीमकार सोखइ कपाय और नव नोकपायोका जानना चाहिये ।

§ २०२ जैसे मिष्प्यात्वके वक्तृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागसत्कर्मका अपन्य और वक्तृष्ट कासका कवन किया है वैसे ही इन पचीस कपायोका भी कर लेना चाहिये । इनमेंसे कोई विशेषता नहीं है ।

⊗ सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्यात्वके वक्तृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना कास है ?

§ २०४ वह सूत्र सुगम है ।

⊗ अपन्य कास अन्तर्गृह्य है ।

§ २०५ जिस मिष्प्यादिष्टके सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्यात्व की सत्ता नहीं है वसके प्रथमापरम सम्पत्त्वके प्राप्त करने पर सम्बन्ध और सम्पत्तिप्यात्वके वक्तृष्ट अनुभागका प्रारम्भ हुआ । पुनः अन्तर्गृह्यका एक ठहरकर उपरामसम्पत्त्वके कासके अन्तर ही अवन्तानु-वन्धीवतुष्पका विसंभोजन करके, वेवकसम्पत्त्वको प्राप्त करके वस जीवने सबसे अवन्त कासमें अर्थात् कितना शीघ्र हो सकता था वतना शीघ्र वरणिमाहनीयका वपण्य करते हुए अपूर्णकण्यके कासमें प्रथम अनुभागकाण्डकका पाठ किया । वस जीवके सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्यात्वका अनुकृष्ट अनुभाग हावा है, अतः वक्तृष्ट अनुभागका अवन्त कास अन्तर्गृह्य मात्र हावा है ।

इंका-अन्तानुवन्धीवतुष्पकी विसंभोजना करनेवालेके जब आयुर्कर्मको जाइकर शेष कर्मोंके शिषिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका पाठ होता है तब सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्यात्वके ही अनुभागकाण्डकका पाठ क्यों नहीं हावा ?

साहावियादो ।

❀ उक्त्सेण वेद्यावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ २८६. कुदो ? छ्वीससंतकम्मियमिच्छाइट्टिस्स पढमसम्मत्तं घेत्तूणुप्पाइद-
सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसतकम्मस्स तत्थ अतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय पढम-
द्यावट्टि गमिय पुणो सम्मामिच्छत्तं गतूण तत्थ अतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वेदगसम्मत्त
घेत्तूण विदियद्यावट्टि भमिय तत्थ अतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गंतूण पलिदो० असंखे०
भागमेत्तकालेण उव्वेल्लिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तस्स पलिदो० असंखे० भागेण भहिय-
वेद्यावट्टिसागरोवमेत्ततदुक्त्सकालुवलंभादो । अथवा तीहि पलिदोवमस्स असंखे०-
भागेहि सादिरेयाणि वेद्यावट्टिसागरोवमाणि त्ति के वि आइरिया भणंति । तं जहा—
उवसमसम्मत्तं घेत्तूण पुणो मिच्छत्त पडिवज्जिय एइदिएसु सम्मत्तट्टिदि पलिदो०
असंखे० भागमेत्तं ठविय पुणो असण्णिपंचिदिएसुप्पज्जिय तत्थ अतोमुहुत्तेण देवाउअ
बंधिय कमेण काल करिय दसवस्ससहस्साउअदेवेसुप्पज्जिय पुणो पज्जत्तयदो होदूण
उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय पढमद्यावट्टि भमिय मिच्छत्तं गंतूण पुणो दीहुव्वेल्लणकालेण
सम्मत्तट्टिदिं चरिमफालिमेत्तं ठविय पुणो उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय विदियद्यावट्टिं
भमिय मिच्छत्तं गंतूण दीहुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिदे तीहि

समाधान—नहीं होता, क्योंकि ऐसा उसका स्वभाव है ।

❀ उत्कृष्ट काल कुछ अधिक दो छियासठ सागर है ।

§ २८६ शका—सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल
उक्त प्रमाण कैसे है ?

समाधान—माहनीय की छ्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिध्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्व
को ग्रहण करके, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्ताको उत्पन्न करके प्रथम सम्यक्त्वमे
अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर विताता है ।
पुन तीसरे गुणस्थानमें जाकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त तक ठहरकर पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण
करके दूसरे छियासठ सागरमे जब अन्तर्मुहूर्त काल बाकी रह जाता है तो मिध्यात्वको
प्राप्त करके पत्यके असख्यातवें भागमात्र कालमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलना कर
देता है, अत उसके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागसे अधिक दो
छियासठ सागर पाया जाता है । अथवा किन्हीं आचार्योंका कहना है कि पत्यके तीन असख्यात
भागसे अधिक दो छियासठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल है । वह इस प्रकार है—उपशमसम्यक्त्व
को ग्रहण करके पुन मिध्यात्वको प्राप्त करके एकेन्द्रियोंमे सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थितिको पत्यके
असख्यातवें भागमात्र काल प्रमाण करके पुन असशी पञ्चेन्द्रियोंमे उत्पन्न होकर वहाँ अन्त-
र्मुहूर्तमे देवायुका बध करके, क्रमसे काल पूरा करके दस हजार वर्ष की आयुवाले देवोंमें उत्पन्न
हुआ । वहाँ पर्याप्तक होकर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर काल तक
भ्रमण करके मिध्यात्वमे जाकर पुन दीध उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व की स्थिति अन्तिम
फाली प्रमाण करके, पुन उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरे छियासठ सागर काल तक
भ्रमण करके, मिध्यात्वमे जाकर दीर्घ उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी

पस्त्रियो० असंसे० भागेरि सादिरयाणि वेद्वापदिसामरोषयाणि । अपवा अंतोमुहुत्सेण सादिरेयाणि चि के वि मर्गति । एदं सन्नं पि नाणिय मत्तव्वं ।

⊗ अणुत्तस्सअणुभागसत्तकम्मिओ केवपिरं काखावो होवि ?

‡ २८७ सुगमं ।

⊗ जहम्मणुत्तस्सेअ अंतोमुहुत्त ।

‡ २८८ दंसपमोहणीयं स्रवतेण अपुव्वकरणत्ताए पइमे अनुभागसंबए यादिव

सम्मत्त-सम्मामिच्छताणमणुत्तसमणुभागसंतकम्मं । त्थो पणुवि अंतोमुहुत्तकसमणुत्तसंत्तं चेष अनुभागसंतकम्मं होदि भाव सम्मत्त-सम्मामिच्छताणि पिच्छेपिदाणि चि ।

‡ २८९ संपहि उचारणमस्सिहण कालाणुगमं भगिस्सामो । कालाणुगमो हुविहो—अहण्णमो उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पपदं । हुविहो पिहं सो—ओपेण आवेसेण । ओपेण मिच्छत्त-सोखसक्कं जवणोक्कं उक्कं अनुभागं केवपिरं ? अहण्णुक्कं अंतोमु० । अनुक्कं म० अंतोमु०, उक्कं अर्जतकालसमसंसेव्वा पोग्गसपरियट्ठा ।

सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० म० अंतोमु०, उक्कं वेद्वावदिसागरो० सादिरेयाणि । अनुक्कं अहण्णुक्कं अंतोमुहुत्त ।

‡ २९० आवेसेण जेरइपमु इत्थीसं पयडीणं उक्कं म० एगसं, उक्कं

अज्ञान कर देने पर पन्वके तीन असंख्यावर्षे भागसे अधिक हो विद्यासठ सागर प्रमाण उच्छ्र काल जाता है । अथवा निर्वाका अज्ञाना है कि अन्तमुहुत्त अधिक हो विद्यासठ सागर उत्कृष्ट काल है । इस सबका ज्ञानकर कथन करना चाहिये ।

⊗ अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?

‡ २८० यह सूत्र सुगम है ।

⊗ अपण्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त है ।

‡ २८८ इरानमोहनीयका अपण्य करनेवाले जीवके द्वारा अपूर्वकरके कालमें प्रथम

अनुभागसत्कर्मका पाठ कर देने पर सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्काल अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म होता है । और तबसे लेकर सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्काल बितारा होते तक अन्तमुहुत्त काल पर्यन्त अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म ही रहता है अतः अपण्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त है ।

‡ २८९ अथ उचारणसहितिका अपण्य कर कालानुगमका कथन । कालानुगम का प्रकारका है—अपण्य और उत्कृष्ट । प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश वा प्रकारका है—आव और आवंश । ओपसे मिच्छत्त, सोसह कपाव और त्व नाकपापोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ? अपण्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अपण्य काल अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काल अन्तकाल अपात् असंख्यावत् पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ।

सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्काल उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अपण्य काल अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काल पुद्गल अधिक वा विद्यासठ सागर प्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अपण्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहुत्त है ।

‡ २९ आवेरासे नायकियेमे इत्थीम प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अपण्य

अंतोमु० । अणुक० ज० एगस०, उक० तेतीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । सम्मत० उक० ज० एगस०, उक० तेतीसं सागरोवमाणि सगलाणि । अणुक० ज० एगस०, उक० अतोमु० । सम्मामि० उक० मिच्छताणुकस्सभंगो । अणुकस्सं णत्थि । एवं पढमादि जाव सत्तमि ति । णवरि सगसगुक्स्सट्ठिदी वत्तवा । त्रिदियादि जाव सत्तमि ति सम्मत० अणुक० णत्थि ।

§ २६१. तिरिक्खेसु छ्वीसं पयठीणमुक० ज० एगस०, उक० अंतोमु० । अणुक० ज० एगस०, उक० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । सम्मत० उक० अणुभाग० ज० एगस०, उक० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे० भागेण सादिरेयाणि । अणुक० णेरइयभंगो । सम्मामि० उक० अणुभाग० ज० एगस०, उक० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदो० असंखे० भागेण सादिरेयाणि । अणुक० णेरइयभंगो । सम्मामि० उक० अणुभा० जह० एगस०, उक० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण सादिरेयाणि । अणुकस्स णत्थि । पंचिदियतिरिक्खतियम्मि छ्वीसंपयठीणं उक० तिरिक्खभंगो । अणुक० ज० एगस०, उक० सगट्ठिदी । सम्मत० सम्मामि० उक० अणुभाग० जह० एगसमओ, उक० सगट्ठिदी । सम्मत० अणुक० ज० एगस०, उक० अतोमु० । णवरि जोणिणीसु सम्मत० अणुक० णत्थि ।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है । सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल मिध्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागके कालकी तरह है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नरकमे नहीं होता । इस प्रकार पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं तक होता है । इतना विशेष है कि प्रत्येक पृथिवीमे अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग नहीं रहता ।

§ २९१. तिर्यञ्चोमे छ्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल अर्थात् असख्यात पुद्गल परावर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यका असख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य है । अनुत्कृष्टका नारकियोंके समान भग है । सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यका असख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोमे छ्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल सामान्य तिर्यञ्चोके समान है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इतना विशेष है कि तिर्यञ्चयोनिनियोंमें

पंथिदियतिरिक्त्वा० अपञ्च० मनुस्सअपञ्च० अद्वावीसं पयदीणं उक्त्साणुमाग० अ०
एगस०, उक्त्वा० अंतोसु० । अणुक्त्वा० अहणुक्त्वा० अतोसु० । गवरि सम्मत्त०-सम्मामि०
अणुक्त्वा० अत्थि । मणुसत्थिय० पंथिदियतिरिक्त्वात्तियमंगो । गवरि सम्मत्त०-सम्मामि०
अणुक्त्वा० ओपं । मणुसपञ्चतेसु सम्मत्त० अणुक्त्साणुमाग० अ० एगस० ।

१२२२ देवाण गेरुयमंगो । एवं मवणादि भाव सहस्सार ति । गवरि
सगसगुक्त्साहिदी वयन्ना । मवण०-वाण०-जोदिसि० सम्मत्त० अणुक्त्वा० अत्थि ।
माणदादि भाव पवगेषञ्जा ति मिच्छस-वारसक०-अवणोक्त्वा० उक्त्साणुक्त्वा० अ०
अंतोसु०, उक्त्वा० सगहिदी । सम्मत्त० उक्त्साणुमाग० अ० एगस०, उक्त्वा०
सगहिदी । एवं सम्मामि० । सम्मत्त० अणुक्त्वा० देवोपं । अणुताणु० अणुक्त्वा० उक्त्वा०
अह० अंतोसु० एगसमओ, उक्त्वा० सगहिदी । अणुविसादि भाव सम्मत्तसिद्धि ति
अद्वावीसं पयदीणं उक्त्साणुक्त्साहिदी० अ० अंतोसु०, उक्त्वा० सगहिदी । सम्मत्त० उक्त्वा०
अ० अहणुक्त्वाहिदी, उक्त्वा० उक्त्साहिदी । अणुक्त्वा० अ० एगस०, उक्त्वा० अंतोसु० । एवं
सम्मामि० । गवरि अणुक्त्वा० अत्थि । एवं भावियद्वय गेद्वयं भाव अणाहारि ति ।

सम्बन्धका अनुकृत्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता । पञ्चेन्द्रियतिर्यक् अवर्षात और मनुष्य-
अवर्षातकर्म अद्वावीस प्रकृतिबोधके उक्त्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल एक समय और
उक्त्य काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य और उक्त्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।
इतना विरोध है कि इनमें सम्बन्ध और सम्बन्धिका अनुकृत्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता ।
सामान्य मनुष्य मनुष्यवर्षात और मनुष्यनिर्षोमें पञ्चेन्द्रियतिर्यक्, पञ्चेन्द्रियवियवर्षात और
पञ्चेन्द्रियवियवर्षातयोनिनीके समान मंग है । इतना विरोध है कि इनमें सम्बन्ध और सम्बन्धिका
के अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका काल आपकी तरह है । मात्र मनुष्यवर्षातकर्ममें सम्बन्धके
अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल एक समय है ।

१२२२ सामान्य देवोंमें नायकियोंके समान मंग है । इसी प्रकार मवन्नासीसे लेकर
सहस्रार स्वर्गके देवोंमें जानना चाहिये । इतना विरोध है कि अपनी अपनी उक्त्य स्थिति कर्त्तनी
चाहिये । मवन्नासी अन्तर और अन्तियियोंमें सम्बन्धका अनुकृत्य अनुभागसत्कर्म नहीं
हवा । जानत स्वर्गसे लेकर नवमैवेयक तकके देवोंमें मिष्यात्व, बायु कपाय और नव नोकपावोंके
उक्त्य और अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उक्त्य काल अपनी अपनी
स्थितिप्रमाण है । सम्बन्धके उक्त्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल एक समय और उक्त्य काल
अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार सम्बन्धिका समस्त चाहिये । सम्बन्धके
अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका काल सामान्य देवोंकी तरह जानना चाहिये । अन्तानुबन्धीअनुकृत्यके
उक्त्य और अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल समस्त अन्तर्मुहूर्त और एक समय है और
उक्त्य काल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनुकृत्यसे लेकर सर्वाधिक उक्त्य देवोंमें अद्वावीस
प्रकृतियोंके उक्त्य और अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उक्त्य काल
अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्बन्धके उक्त्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल अपनी स्थितिप्रमाण
और उक्त्य काल उक्त्य स्थितिप्रमाण है । अनुकृत्य अनुभागसत्कर्मका अपन्य काल एक समय
और उक्त्य काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सम्बन्धिका जानना चाहिये । इतना विरोध है
कि कर्त्तका अनुकृत्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता । इस प्रकार जानकर अन्तही पर्यन्त
के ज्ञान चाहिये ।

❀ मिच्छ्रत्तस्स जह्यणाणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २६३. सुगम ।

विशेषार्थ—छब्बीस प्रकृतियोंमें से किसी का भी उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके मरकर नरकमें जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें ही उसका घात कर देता है या नरकमें अन्तिम समय उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके दूसरे समयमें अन्य गतिमें चला जाता है तो नरकमें उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय होता है। और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक उनका उत्कृष्ट अनुभाग नहीं ठहरता। तथा कोई नारकी उत्कृष्ट अनुभागका घात करके यदि आयुके क्षय हो जानेसे दूसरे समयमें मर जाता है तो उसके उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है तथा उत्कृष्ट काल सामान्य से सम्पूर्ण तेतीस सागर जानना चाहिए और विशेषसे प्रत्येक नरककी जितनी जितनी उत्कृष्ट स्थिति है उतना जानना चाहिए। सम्यक्त्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय उद्वलनाकी अपेक्षासे होता है और उत्कृष्ट काल नरकमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल जानना चाहिए। सम्यग्मिध्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृतिका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म दर्शनमोहके क्षणके अपूर्वकरण कालमें प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर होता है, अतः कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरकर नरकमें जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें सम्यक्त्वका क्षण कर देता है तो सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय होता है, अन्यथा अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि नरकमें भी कृतकृत्यवेदकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म केवल मनुष्यगतिमें ही सम्भव है, क्योंकि कृतकृत्य होने पर ही मरण होता है और सम्यग्मिध्यात्वका क्षण इससे पहले हो चुकता है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल असख्यात पुद्गल परावर्तनप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका घात करके, अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मके साथ पञ्चेन्द्रियोंमें उनके योग्य उत्कृष्ट काल तक रहकर, पुन एकेन्द्रियोंमें जाकर असख्यात पुद्गल परावर्तन तक रह कर, पीछे पञ्चेन्द्रिय होकर, उत्कृष्ट अनुभागबन्ध कर लेने पर उतना काल होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल पत्यका असख्यातवर्षों भाग अधिक तीन पत्य है, क्योंकि कोई तिर्यञ्च उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके पुन मिध्यात्वमें आकर एकेन्द्रियों में कुछ कम पत्यके असख्यातवर्षों भाग काल तक ठहर कर, पुन पञ्चेन्द्रिय होकर उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके मिध्यात्वमें जाकर तीन पत्यकी स्थिति लेकर भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ पर वेदकसम्यग्दृष्टि होगया। फिर भोगभूमिसे निकलकर वह देव होगा, अतः तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभाग का उत्कृष्ट काल पत्यका असख्यातवर्षों भाग अधिक तीन पत्य होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मूलमें कहे अनुसार जानना चाहिए तथा उन्हींके समान मनुष्यत्रिकमें समझ लेना चाहिए। देवगतिमें भी पूर्वमें कही गई प्रक्रियाके अनुसार कालकी योजना कर लेनी चाहिए। अनुदिशादिकमें जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय न बतलाकर अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण बतलाया है उसका कारण यह है कि वहाँ इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना नहीं होती, क्योंकि इनकी उद्वेलना मिध्यात्वमें ही होती है।

❀ मिध्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?

§ २५३ यह सूत्र सुगम है।

⊗ जहण्णुक्खस्सेण भतोसुहुत्त ।

१ २६४ कुदो ? सुहुमस्स इदसमुप्पत्थियकम्मोणावट्ठाणकालस्स जहण्णुक्खस्स पिसेसिदस्स गण्णादो ।

⊗ एव सम्मामिच्छत्त अट्ठकसाय-छुय्योक्कसायाण ।

१ २६५ जहा मिच्छवत्तस्स जहण्णामुभागकालसपस्सणा कदा तहा एवेसिं पि कायम्हा, पिसेसामानादो ।

⊗ सम्मत्त-अप्यतापुबधि यदुसजज्जय-तिप्पियवेदाण जहण्णायुभाग सतकम्मिओ केपचिरं काळादो होवि ?

१ २६६ सुगम ।

⊗ जहण्णुक्खस्सेण एगसमओ ।

१ २६७ सम्मत्तस्स परिमत्तमयअक्खीणवसणओहणीयम्मि कोप-माण-माया संमसणार्ण तेसिं चरिमत्तमयपवद्धस्स चरिमत्तमयसंक्कामियम्मि ओभत्तंसज्जस्स चरिमत्तमयसकसायम्मि इत्थि-ज्वुंसयवेदाणं चरिमत्तमयसवेदम्मि पुरिसवेदस्स चरिमत्तमय-जवक्कवसंसकामयम्मि ओज जएण्णायुभागसंतकम्म जादं तेण्णेसिं जहण्णुक्खस्सेण एगसमओ ति सुज्जे । गार्णतापुबधीणं, तेसिं विदियादिसमए संतविणासामावादो ति ? ज एस

⊗ जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्गृह्यते है ?

१ २६४ क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके इतन्मुत्पत्तिक कर्मके साथ रहनेके जपन्य और उत्कृष्ट काल का नहीं ग्रहण किया है ।

⊗ इसी प्रकार सम्यग्मिच्छपात्त्व, माठ कपाय और बह नोकपायोंके जपन्य अनुभागसत्कर्मका काल कहना चाहिये ।

१ २९८ जैसे मिच्छात्त्वके अथवा अनुभागसत्कर्मके कालका कवन किया है वैसे ही इनके भी कालका कथन करना चाहिये । इससे इनमें कोई विरोधा नहीं है ।

⊗ सम्यक्त्व, अनन्त्यानुबन्धिचतुष्क, संवत्तनचतुष्क और तीनों बंदोंके जपन्य अनुभागसत्कर्मका कितना काल है ?

१ २९६ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

१ २६७. हुंका-क्योंकि सम्यक्त्वका अथवा अनुभागसत्कर्म वरानिमाहका अथ करमे वालेके अन्तिम समयमें हाता है, संवत्तन काय मान और मावाका अथवा अनुभागसत्कर्म इनके अन्तिम समयमें बद्धका संक्रमण करनेवालेके अन्तिम समयमें हाता है, संवत्तन कामका अथवा अनुभागसत्कर्म सूक्ष्मसागराय गुणस्वानके अन्तिम समयमें हाता है । स्त्रीवेद और नपुंसक वेदका अथवा अनुभागसत्कर्म जका वेदत करनेवालेके अन्तिम समयमें हाता है और पुंसक वेदका अथवा अनुभागसत्कर्म पुंसकेबंदके मये समयमें बद्धका संक्रमण करनेवालेके अन्तिम समयमें हाता है, अतः इनका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पुष्ट है । किन्तु अनन्त्यानुबन्धीका एक समय काल पुष्ट नहीं है क्योंकि एक समयके परवान् द्वितीय अथि समयमें इनकी सत्ताका

दोसो, समयं पढि अणंतगुणाए सेढीए तदणुभागबंधे बहुमाणे संजुत्तविदियादिसमएसु जहण्णाणुभागाणुववत्तीदो । संजुत्तपढमसमए सेसकसाएहिंतो अणंताणुबंधीसु सकताणु-भागं' पेक्खिदूण विदियादिसमएसु संकंताणुभागो सरिसो त्ति जहण्णाणुभागकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो किएण जायदे ? ण, 'बंधे संकमदि' त्ति सेसकसायाणुभागस्स अणंता-णुबंधीणमणुभागसरूवेण परिणयस्स पहाणत्ताभावादो । जहा वज्झमाणटहरट्ठिदीए उवरि संकममाणमहल्लसंतंठिदीए बंधट्ठिदिसरूवेण परिणामो णत्थि तथा अणुभागसंतस्स वि वज्झमाणानुभागसरूवेण परिणामो णत्थि त्ति किएण घेप्पदे ? ण, ट्ठिदिसंतादो अणुभागसतस्स भिएणजादित्तादो । जं जाए जाईए पडिवएणं तं ताए चेव जाईए होदि त्ति अब्भुवगंतुं जुत्तं, ण अएणत्थ, अइप्पसंगादो । अणुभागम्मि ट्ठिदिकमो णत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? पढमसमयसंजुत्तस्से त्ति सामित्तमुत्तादो णव्वदे । ट्ठिदिसंतोवट्टणाए विणा अणुभागसंतस्स जदि वज्झमाणानुभागसरूवेण संकममाणस्स अणतगुणहीण-विनाश न्हीं होता है ?

समाधान—यह दोष उचित नहीं है क्योंकि जब प्रति समय अनन्तगुणश्रेणीरूपसे अनन्तानुबन्धीका अनुभागबन्ध हो रहा है तो अनन्तानुबन्धीसे सयुक्त होनेके दूसरे आदि समयोंमें उसका जघन्य अनुभाग नहीं बन सकता ।

शंका—सयुक्त होनेके प्रथम समयमें शेष कषायोंसे अनन्तानुबन्धी कषायोंमें सक्रान्त हुए अनुभागको देखते हुए दूसरे आदि समयोंमें जो अनुभाग सक्रान्त होता है वह पहलेके समान है अतः अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागका काल अन्तर्मुहूर्त क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'बन्ध अवस्थामे सक्रमण होता है' ऐसा कहा है । अतः शेष कषायोंको जो अनुभाग अनन्तानुबन्धीके अनुभागरूपसे परिणमन करता है उसकी यहाँ प्रधानता नहीं है । अर्थात् यद्यपि द्वितीयादि समयोंमें सक्रान्त होनेवाला अनुभाग भी प्रथम समय के अनुभागके समान नहीं है किन्तु सक्रान्त हुए अनुभागकी वहाँ प्रधानता नहीं है अपितु अनन्तानुबन्धीके अनुभागकी प्रधानता है ।

शंका—जैसे जघन्य स्थितिका बन्ध होते हुए, ऊपर सक्रमित होनेवाली सत्तामे विद्यमान बन्धनेवाली स्थितिके रूपमे परिणमन नहीं होता है उसीप्रकार सत्तामे विद्यमान बन्धमान अनुभागरूपसे परिणमन नहीं होता ऐसा क्यों नहीं मानते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्थितिसत्त्वसे अनुभागसत्त्वकी जाति भिन्न है । जो वात जिस स्थितिमे होती है ऐसा मानना योग्य है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि एक जाति के अनुभागके माननेपर अतिप्रसङ्ग दोष आता है ।

शंका—अनुभागोंमें स्थितिका क्रम नहीं है यह कैसे जाना ?

समाधान—अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागसकर्म सयुक्त जीवके प्रथम समयमे होता

अनुभागके क्रमसे जाना ।

अनुभागके क्रमसे विद्यमान स्थितिकी अपवर्तनाके विना सत्तामे विद्यमान अनुभाग

अनुभाग इति पाठः ।

समेण परिणामो होदि तो अणुभागसंताप्री वज्रकमाणुभागो अर्णतगुणे संते संतहिदीए अणुभागेण अणतगुणेण हादम्भमिदि सरुव, इच्छिञ्जमाणतादो । एन हादि ति कुवो णम्भदे ? सत्रोगिकेवक्खिम्ह पुम्भकोविपिहरिदम्मि सावावेदणीयस्स उक्खस्साणुभाग्यव संतादा । सुद्धुमसांपराइयस्स उक्खस्साणुभागेण सह वज्रकमाणुपरिमहिदिबंयो वारस सुद्धुसामघो । तम्मि वारससुद्धुत्तेसु अपहिदिगलणाए गल्लिदंसु उक्खस्साणुभागामायेण पि होदम्भं, पदसेहि पिणा अणुभागस्स अत्यतविरोहादो । अत्थि च उक्खस्साणुभागो सत्रोगिम्हं, तदो णम्भद महा संतहिदिपदसा वज्रकमाणुभागसरुवण उक्खिञ्जति ति तम्हा अर्णताणुबंपीणं वि एगसमपत्तं सुञ्जदि पि । एवं जुग्णिमुत्तमस्सिद्धं ओप-
कासाणुगमं परुभिय संपहि उच्चारणमस्सिद्धं परुवेमो ।

व्ययमान अणुभागरूपसे संक्रमण करता है और इस तरह वह अनन्तगुण्ये हीन रूपसे परिणामन करता है अर्थात् इसका अणुभाग अनन्तगुण्ये हीन हो जाता है तो सत्तामें विद्यमान अणुभागसे व्ययमान अणुभाग आन्तगुण्ये होने पर सत्तामें स्थित अणुभाग अनन्तगुण्ये हो जाना चाहिये । अर्थात् जब व्ययमान अणुभागरूपसे परिणामन करनेपर सत्तामें स्थित अणुभाग पद सत्ता है या बढ़ना भी चाहिये ?

समाधान—आपका कहना सत्य है । यह तो इष्ट ही है ।

शंका—अणुभाग बढ़ भी जाता है यह कैसे जाना ?

समाधान—एक पूर्णकाटि एक विहार करनेवाले सयागकेवलीमे सावावेदनीयका उच्छ्र अणुभाग पत्ता जाता है । इसका सुजासा इसप्रकार है—सूक्ष्मसाम्यवयव नामक इसमें गुण्य-स्थानवर्षी नीचके उच्छ्र अणुभागके साथ बधनेवाला सावावेदनीयका अन्तिम स्थितिक्रम्य वारु सुहूर्त मात्र होता है । अधवस्थितिगलनाके द्वारा इन वारु सुहूर्तोंका लय हो जानेपर उच्छ्र अणुभागका भी अभाव हाथ आदिऐ; क्योंकि प्रहरोक विना अणुभागकी उच्छा नह रह सकती । किन्तु सयागकेवलीमे उच्छ्र अणुभाग रहता है, अतः जाना जाता है कि सत्तामें विद्यमान स्थितिवत्कर्म व्ययमान अणुभागरूपसे उत्कर्षको प्राप्त हो जाते हैं, अतः अनन्तगुण्ये भी एक समय काल मुक्त है ।

इस प्रकार बुधिसूत्रका आश्रय लेकर आपसे कालानुगमका कहकर अब उच्चारणाका आश्रय लेकर कामका करते हैं—

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धी कथावका विसंवाजन करके सम्यक्त्वसे च्युत होकर जो अनन्तानुबन्धीका बन्ध करता है उसके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका अपत्य अणुभागमरकर्म होता है । इसका काम एक समय है क्योंकि दूसरे समयमें उच्छ्रराउं पद जायेस अणुभागवय तीव्र होने लगता है । इसपर शर्काकारका कहना है कि प्रथम समयमें ही सत्तामें स्थित व्यय कथायोके परमाणु अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमण करने लगते हैं सा जैसे प्रथम समयमें संक्रमण करते हैं वैसे ही दूसरे समयमें संक्रमण करते हैं इनके अणुभागमें कोई अन्तर नहीं है अतः अपत्य अणुभागकी सत्ताका काल अन्तमुहूर्त क्या नहीं कहा या हमका वार विषा गया कि यहाँ संक्रमित अणुभागकी प्रधानता नहीं है किन्तु व्ययमान अणुभागकी प्रधानता है । अर्थात् संक्रमित अणुभाग व्ययमान अणुभागरूपसे परिणामन करता है, व्ययमान अणुभाग अनन्त

§ २६८. जहण्णए पयटं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छक--अट्ठक० जहण्णाणु० जहण्णुक० अतोमु० । अजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस० । अजहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरोवमाणि तिण्णि पत्तिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि सादिरेयाणि । सम्मामि० जहण्णाणु० जहण्णुक० अंतोमु० । अज० सम्मत्तभंगो । अणंताणु० चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगसमओ । अज० तिण्णि भंगा । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स ज० अंतोमु०, उक्क० उवट्ठुपोग्गलपरियट्ठं । चट्ठुसज०-तिण्णिआवेद० जहण्णाणु० जहण्णुक० एगस० । अज० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो । छण्णाक० जहण्णाणु० जहण्णुक० अंतोमु० । अज० कोधसंजलणभगो ।

अनुभागरूपसे नहीं परिणमन करता । आगे इसीके मन्बन्धमें जो शका-समाधान किया गया है वह स्पष्ट है । अतः अनन्तानुबन्धीके जघन्य अनुभागसत्कर्मके जघन्य और उत्कृष्ट दोनो काल एक समय मात्र हैं ।

§ २९८ जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असख्यात लोक प्रमाण है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्योपमके तीन असख्यात भागोंसे अधिक दो छियासठ सागरप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्म का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका भङ्ग सम्यक्त्वके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागसत्कर्ममे तीन भङ्ग हाते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । उनमे से जो सादि-सान्त भङ्ग है उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । चार सज्वलन कषाय और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य अनुभागसत्कर्म अनादि अनन्त और अनादि-सान्त है । छ नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका भङ्ग सज्वलनक्रोधके समान है ।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, आठ कषाय, अनन्तानुबन्धी, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व के जघन्य अनुभागका काल चूर्णिसूत्रमें वतलाये गये कालके अनुसार समझ लेना चाहिये । तथा अजघन्य अनुभागका काल उत्कृष्ट अनुभागके कालकी ही तरह जानना । अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागसत्कर्ममें तीनों विकल्प होते हैं, क्योंकि उसका विसंयोजन होकर भी पुन बन्ध हो सकता है । किन्तु चारो सज्वलन और तीनों वेदोंमे सादि-सान्त भग नहीं होता, क्योंकि इनका विनाश क्षपकश्रेणिमें ही होता है । ६ नोकषायो के जघन्य अनुभागसत्कर्मका काल भी पूर्ववत् जानना ।

§ २६६. आदसेण जखपसु मिच्छत्त-भारसक०-णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० दसपस्ससहस्ताणि अंतोमुहुत्तुणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोचमाणि संपुण्याणि । सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णाणु० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरा० संपुण्याणि । एवमर्णताणु० चउक्क०। सम्मामि० सम्मत्त भंगो । जवरि जहण्णाणि गत्थि । एवं धर्वायं । पढमपुडधि० एवं चव । जवरि सगहिदी माणिदम्भा । विदिपादि जाप सधमि चि धारीसपपदीणं जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० सगहिदी देवूणा । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगहिदी संपुण्या । सम्मत्त० सम्मामि० उक्कस्सभंगा । अर्णताणु० चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णाणु० मायं । अज० ज० एगस०, सत्तमीए अंतोमुहुत्तु, उक्क० सगहिदी ।

§ ३००. तिरिक्खत्तु मिच्छत्त-भारसक०-णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तु। अज० ज० एगसममो, उक्क० असंस्वज्जा लागा । सम्मत्त० जहण्णाणु० जहण्णाणु० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० विपिणा पण्डिदावमाणि पण्डिदा० असंसे० मागण सादिरयाणि । एवं सम्मामि० । जवरि जहण्णाणि गत्थि । अर्णताणु० चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णाणु० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अर्णत्त-

§ २९९. आदसे नारकियोम मिच्छत्त, बारद कपाव और नव नाकपायोके जपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य काल एक समय दे और उच्छ्रुत् काल अन्तमुहूर्त दे । अत्रपस्य अनुभाग मन्त्रमका जपस्य काल अन्तमुहूर्त कम इस इकार बप और उच्छ्रुत् काल सम्पूर्ण तेतीम मागण प्रमाण दे । मन्मन्त्रके जपस्य अनुभागसत्कमका जपस्य और उच्छ्रुत् काल एक समय दे । अत्रपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य काल एक समय और उच्छ्रुत् काल सम्पूर्ण तेतीम सागर प्रमाण दे । इसी प्रकार अगन्तानुबन्धीबन्धुकेका मन्त्र दे । सम्मामिध्यात्म मन्मन्त्रक ममान भंग दे । इतना विशेष है कि मन्त्रम इतका जपस्य अनुभागसत्कम नहीं रहता । सामान्य ब्रह्मोम इसी प्रकार ममाना चाहिए । पहली पृथिवीम इसी प्रकार हाता है । इतना विशेष है कि वहाँ आ अपनी स्थिति है बनी कहनी पड़िये । इसीसे सत्कर सातवीं पृथिवी पयस्य पाईस प्रकृतियोंके जपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य काल अन्तमुहूर्त और उच्छ्रुत् काल बुद्धकम अपनी स्थिति प्रमाण दे । अत्रपस्य अनुभागसत्कमका जपस्य काल अन्तमुहूर्त और उच्छ्रुत् काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति प्रमाण दे । मन्मन्त्र और मन्मामिध्यात्मके उच्छ्रुत् अनुभागसत्कमक ममान भंग है । अन्तानुबन्धीबन्धुके जपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य और उच्छ्रुत् काल आप की तरह जानना चाहिए । अत्रपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य काल एक समय और सातवीं पृथिवीम अन्त मुहूर्त है तथा उच्छ्रुत् काल अपनी स्थितिप्रमाण दे ।

§ ३१. तिर्यञ्चोमि मिच्छत्त बारद कपाव और नव नाकपायोके जपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य काल एक समय और उच्छ्रुत् काल अन्तमुहूर्त दे । अत्रपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य काल एक समय और उच्छ्रुत् काल असंख्याके साकप्रमाण है । मन्मन्त्रके जपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य और उच्छ्रुत् काल एक समय दे । अत्रपस्य अनुभागमन्त्रमका जपस्य काल एक समय और उच्छ्रुत् काल पयस्य असंख्याके मागण अपिच तीन पयस्य दे । इसी प्रकार मन्मामिध्यात्म जाकना चाहिए । इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोमि इतका जपस्य अनुभाग नहीं हाता । अगन्तानुबन्धीबन्धुके जपस्य अनुभागसत्कमका जपस्य और उच्छ्रुत्

कालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । पंचिंदियतिरिक्खतिय० गेरइयभंगो । गवरि मिच्छत्त-
वारसक०-णवणोक० अज० ज० अंतोमु० । सम्मत्त-अणताणु०चउक्क० अज० ज०
एगस०, उक्क० सव्वेसिं सगट्ठिदी । गवरि जोणिणीमु सम्मत्त० ज० णत्थि । सम्मामि०
सम्मत्तभगो । गवरि जहएणां णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-
सोलसक०-णवणोक० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० जहएणुक०
अतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्सभगो ।

§ ३०१. मणुसतिय० मिच्छत्त-अट्ठकसाय० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क०
अतोमु० । अज० ज० अतोमु०, उक्क० तिण्णिण पलिदोवमाणि सगदालपुव्वकोडीहि
सादिरेयाणि । गवरि [मणुस-] पज्जत्त-मणुसिणीमु पएणारस-सत्तपुव्वकोडीहि सादिरे-
याणि । सम्मत्त०-अणताणु०चउक्क० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । सम्मामि० ज० जह-
एणुक० अतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । चदुसंज०-तिण्णिणवेद० ज०
जहण्णुक० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी ।
अएणोक० जहण्णाणु० जहण्णुक० अतोमु० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०,

काल एक समय है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल
अनन्तकाल अर्थात् असंख्यत पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च
पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंमें नारकियोंके समान भग है । इतना विशेष है कि
मिध्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल
अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य
काल एक समय और सबका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय
तिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता । सम्यग्मिध्यात्वमें सम्यक्त्वके
समान भग है । इतना विशेष है कि उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता है । पञ्चेन्द्रिय
तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिध्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके
जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य
अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्टके
समान भग है ।

§ ३०१ सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिध्यात्व और आठ
कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।
अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल सेंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन
पत्य है । इतना विशेष है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें पन्द्रह पूर्वकोटो अधिक तीन पत्य है और मनु-
ष्यनियोंमें सात पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका पञ्चेन्द्रिय
तिर्यञ्चके समान भग है । सम्यग्मिध्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल
अन्तर्मुहूर्त है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी
स्थितिप्रमाण है । चार सञ्चलन और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य काल सामान्य मनुष्यमें क्षुद्रभव
ग्रहणप्रमाण और मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । तथा उत्कृष्ट काल
अपनी स्थितिप्रमाण है । छ नोकषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त

उक्त० सगह्विदी । णवरि मञ्जुसपन्न० इत्थि० इत्सर्मगो । मञ्जुसिणी० पुरिस०-मञ्जुस०
इत्सर्मगो ।

‡ ३०२ मरण०-जाण० पडमपुडबिर्मगो । णवरि सगह्विदी । सम्मत्त जहय्यां
णत्थि । नोदिसि० विदियपुडबिर्मगा । सोहम्मादि जाव णवगेवत्ता ति मिच्छत्त०-
वारसक०-म्वणोक्क० महण्णाजहण्णाणुमाग० जहण्णुक्कस्सह्विदी । सम्मत्त०-अर्णताणु०
वडक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक्क० एगस० । मज० म० एगस०, उक्क० सगह्विदी । सम्मामि०
उक्कस्सर्मगो । मञ्जुसिसादि जाव सम्मत्तसिद्धि ति मिच्छत्त०-वारसक०-जणोक्क०
जहण्णाजहण्णाणु० जहण्णुक्क०-ह्विदी । सम्मरा० जहय्याणु० जहय्याणु० एगस० ।
मज० ज० एगस०, उक्क० सगह्विदी । अणताणु०-वडक्क० जहण्णाणु० म० उक्क०
अर्णतोसु० । अज० म० अर्णतोसु०, उक्क० सगह्विदी । एणं जाणिरूण णेत्थंमं जाव अणा
हारि ति ।

१ । अजपप अनुभागसत्कर्मका सामान्य मनुष्योमि दुःखमजप्रहयप्रमास्य और मनुष्यपर्याप्त तथा
मनुष्यमियोमि अन्तर्मुहूर्त है । उक्त काल अपनी स्थितिप्रमास्य है । इतना विरोध है कि मनुष्य-
पर्याप्तकोमि जीवेइके अनुभागका काल इत्सर्फी तरह जानना चाहिए और मनुष्यनिर्धोमि पुढपवेइ
और नपुस्रवेइके अनुभागका काल इत्सर्फी तरह जानना चाहिए ।

‡ ३२ मजनवासी और व्यन्तरो मे' पहले नरकके समान मज्ज होता है । इतना विरोध
है कि इनमे नरककी स्थितिके स्थानमे अपनी स्थिति लेनी चाहिए । तथा सम्यक्त्वका अजाय
अनुभागसत्कर्म मर्फी हावा । क्याविपी वेद्य मे वृत्तरी वृत्तबिडे समान मज्ज होता है । सौधर्मसे
मज्जवेइके उक्तके वेद्यो मे मिच्छाल्क बारह कपाय और नव नोकपाया के जपन्य और अजपम्य
अनुभागसत्कर्मका काल अपनी जपन्य और उक्त स्थितिप्रमास्य है । सम्यक्त्व और अन्त-
नुबन्धीचतुष्के जपन्य अनुभागसत्कर्मका जपन्य और उक्त काल एक समय है । अजपम्य
अनुभागसत्कर्मका जपन्य काल एक समय और उक्त काल अपनी स्थितिप्रमास्य है । सम्य-
कमिच्छाल्क उक्तके समान मज्ज है । अनुदरासे सेकर सर्वांसिद्धिउक्तके वेद्योमे मिच्छाल्क
बारह कपाय और नव नोकपायोके जपन्य और अजपम्य अनुभागसत्कर्मका अपनी अपनी जपन्य
और उक्त स्थिति प्रमास्य है । सम्यक्त्वके जपन्य अनुभागसत्कर्मका जपन्य और उक्त काल
एक समय है । अजपम्य अनुभागसत्कर्मका जपन्य काल एक समय और उक्त काल अपनी
स्थितिप्रमास्य है । अन्त-वानुबन्धीचतुष्के जपन्य अनुभागसत्कर्मका जपन्य और उक्त काल
अन्तर्मुहूर्त है । अजपम्य अनुभागसत्कर्मका जपन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उक्त काल अपनी
स्थितिप्रमास्य है । इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त मे जाना चाहिये ।

विद्योपार्थ-आदेशसे मारकियोमि मिच्छाल्क बारह कपाय और नव नोकपायोका जपन्य
अनुभागसत्कर्म इवचतुष्पणिक कर्मवाला जा असंही पन्वेत्रिज कम्य सेता है उक्तके होता है
अतः उक्तका जपन्य काल एक समय और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त पूर्ववत् जानना । अन्तर्मुहूर्त
उक्त जपन्य अनुभाग रहकर पुनः अधिक अनुभागजपन्य करने पर अजपम्य अनुभाग हाता है
जो कि भानुके अन्त उक्त रहता है, अतः अजपम्य अनुभागका जपन्य काल अन्तर्मुहूर्त कम
रस हजार वर्ष हावा है और उक्त काल नरककी पृथी अतु प्रमास्य होता है । सम्यक्त्व प्रकृषिका
जपन्य अनुभाग वरान्तयोइके जपन्यके अन्तिम समयमे होता है अतः उक्तका जपन्य और

उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य अनुभागका काल उत्कृष्ट अनुभागके कालकी तरह जानना। दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक पर्यन्त हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असङ्गी पञ्चेन्द्रिय तो उत्पन्न हो नहीं सकता अतः अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टिके बाईस प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग होता है। अतः उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका केवल अजघन्य अनुभाग ही होता है। उसका काल उत्कृष्ट अनुभागके काल की तरह जानना। अनन्तानुबन्धी कपायका जघ य अनुभाग विसंयोजन करके पुनः उसका वध करनेवालेके प्रथम समयमें होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाला आयुके दो समय शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो गया वह सयुक्त होनेके प्रथम समयमें जघन्य और दूसरे समयमें अजघन्य अनुभाग करके मरणको प्राप्त हो गया अतः अजघन्यका जघन्य काल एक समय होता है परन्तु सातवीं पृथिवीसे सासादनसे निर्गमन नहीं होता और मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः सातवीं पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। सामान्य तिर्यश्चोमें सभी प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल पूर्ववत् विचार लेना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय-तिर्यश्चत्रिकमें नारकियोंके समान काल होता है किन्तु उनकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त होनेसे बाईस प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यश्च योनिनियोंमें दर्शन मोहका क्षरण नहीं होता और न कृतकृत्यवेदक उनमें उत्पन्न ही होता है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग उनमें नहीं होता। हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला एकेन्द्रिय जीव पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्त या मनुष्य अपर्याप्तमें जन्म लेकर यदि दूसरे समयमें अनुभागको बढ़ा लेता है तो जघ य अनुभागका जघन्य काल एक समय होता है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। अजघन्य अनुभागका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है जितनी कि अपर्याप्तक की जघन्य या उत्कृष्ट स्थिति होती है। मनुष्यत्रिकमें अजघन्यानुभागका जो उत्कृष्ट काल कहा है सो सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनी मार्गणाका एक जीवकी अपेक्षा जितना काल होता है उतना ही कहा है, उतने काल तक मनुष्यके बराबर अजघन्य अनुभाग रह सकता है। जो सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षण कर रहा है उस मनुष्यके अन्तिम अनुभागकाण्डक अनुभागकाण्डक का काल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा होता है। चारों सञ्चलन और तीनों वेदों का जघन्य अनुभाग क्षणकश्रेणियों अपने अपने क्षण कालके अन्तिम समयमें होता है अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। छ नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है सो सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागके कालकी तरह घटा लेना चाहिये। अजघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपना जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है। हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असङ्गी पञ्चेन्द्रिय भवनवासी और व्यन्तरोंमें ही जन्म लेता है, ज्योतिष्कोंमें जन्म नहीं लेता। अतः भवनवासी और व्यन्तरोंमें प्रथम नरकके समान काल कहा है और ज्योतिष्क देवोंमें दूसरे नरकके समान काल कहा है। सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त बाईस प्रकृतियोंके दोनों अनुभागोंका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है जो कि पहले बतलाये गये स्वामित्वसे स्पष्ट है। सम्यक्त्वप्रकृतिके दोनों अनुभागोंका काल पूर्ववत् जानना। सौधर्मसे लेकर नवप्रैवेयक पर्यन्त अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके पुनः उससे सयुक्त होनेवालेके प्रथम समयमें होता है, अतः उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। किन्तु अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करनेवाला जब उसके अन्तिम अनुभाग

⊗ अंतर ।

§ ३०३ कालाभियोगारं पस्विय संपहि मदमेहाभिजनाशुग्गहमतरं पस्वमि
पि भण्दि होदि ।

⊗ मिच्छुत्त सोखसकसाय-एषषोकसापाय्यमुक्त्स्ताणुभागासतकम्मि
यतरं केवपिर काळापो होदि ?

§ ३०४ सुगम ।

⊗ जह्यपोस असोमुहुत्तं ।

§ ३०५ चकस्साशुभागसंतकम्मिएण तमशुभागत्तंइयपादेण पादिय अणुक
स्साशुभागेण सम्भमहण्णमथोमुहुत्तकालमतरिय संकिञ्चसमावूरिय चकस्साशुभागे पपदे
सम्भमहण्णमथोमुहुत्तमेतन्तरफाल्लुपलभादो ।

⊗ ठक्त्सेष असत्सेज्जा पोग्गखपरिपट्टा ।

§ ३०६, चकस्साशुभागसंतकम्मियस्त तं पादिय अणुकस्साशुभागसंतकम्म-
सुबणमिय एरुदिपुत्तपञ्चिय मानसिपाए अस्तस्व०भागमेतपोग्गसपरियट्टे परिपट्टिण

काण्डकमे क्तमान रहता है तब अनन्तानुबन्धीका जपम्य अनुभाग होता है, क्योंकि पहाँ
विसंयाजन करके पुनः संयाजन नहीं होता अतः इसका जपम्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त
है। सौपर्याधिकमे अनन्तानुबन्धीके अजपम्य अनुभागका जपम्य काल एक समय मर्यादा
अपेक्षासे है, क्योंकि संयुक्त होनेके प्रथम समयमें अजपम्य अनुभाग होता है। दूसरे समयमें अजपम्य
अनुभाग करके यदि मर जाये वा एक समय काल जाता है। तथा अमुदिराधिकमे अन्तर्मुहूर्त काल
बड़ा है क्योंकि अजपम्य अनुभागबाला देव पर्याप्त शक्ति यदि अनन्तानुबन्धीका विसंयाजन
कर डालता है वा जपम्य काल अन्तर्मुहूर्त जाता है।

⊗ अथ अन्तर कथं है ।

§ ३०७. कालानिभागकारको करके अथ मन्त्रबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये अन्तर कथता
हू ऐता इस सूत्रका तात्पर्य है ।

⊗ मिथ्यात्, सोलह कपाय भार नष नाकपायोक् उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका
अन्तरकाल कितना है ?

§ ३०८ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ अजपम्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३०९. उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताबाला जीव उस उत्कृष्टका अनुभागकाण्डकपातके द्वारा
पात करके अणुक अनुभाग करता है और सबसे अजपम्य अन्तर्मुहूर्त काल तक इसका अन्तर
देकर संस्तरा परिश्रम करके पुनः उसका द्वारा उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध करके पर उत्कृष्ट
अनुभागका अन्तर काल सबसे अजपम्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण पाया जाता है ।

⊗ उत्कृष्ट अन्तर अस्तम्यात् पुद्गलपरापर्वतनममाण है ।

§ ३१०. उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ताबाला जीव उत्कृष्ट अनुभागका पात करके इसे अनुग्रह
अनुभागसत्कर्म बनाकर एकेत्रियेमें उत्पन्न हुआ। वहाँ आबनीके अर्भकपातके भाग मात्र पुराण

ततो णिप्फिडिय पंचिदिएसु उप्पज्जिय संकिलेसमावूरिय वद्धुक्कस्साणुभागस्स असंखेज्ज-
पोगलपरियट्टमेत्तुक्कस्संतरकालुवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहापयडि अंतरं ।

§ ३०७. जहा पयडीणं पयडिविहत्तीए अंतरं परूविदं तथा एत्थ परूवेयव्वं । तं
जहा—जहण्णेण एगसमओ, उक्क० उवहुपोगलपरियट्टं । एवं चुण्णिमुत्तमस्सिदूण
अंतरपरूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण अंतरपरूवणं कस्सामो ।

§ ३०८. अंतरं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सयं चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो
णिहो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० उक्कस्साणुभागंतरं
के० ? ज० अतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगलपरियट्टा । अणुक्क० जहण्णुक्क०
अंतोमु० । एवमणंताणु०चउक्क० । णवरि अणुक्क० ज० अतोमु०, उक्क० वेद्धावट्टिसाग०
देसूणाणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्टं
देसूणं । अणुक्क० णत्थि अंतरं ।

परावर्तन काल तक भ्रमण करके, वहाँसे निकलकर पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर सञ्चेश परिणामोंको
करके उसने उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध किया । इस प्रकार उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर काल
असख्यात पुद्गलपरावर्तन मात्र पाया जाता है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका अन्तर प्रकृति के समान है ।

§ ३०७ जैसे प्रकृतिविभक्ति नामक अधिकारमें प्रकृतियोंका अन्तर कहा है वैसे ही यहाँ
भी कहना चाहिये । यथा—जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल
परावर्तन प्रमाण है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे सामान्य अन्तरका कथन करके अब
उच्चारणके आश्रयसे अन्तरका कथन करते हैं ।

§ ३०८ अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो
प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिध्यात्व, वारह कषाय और नव नोकषायोंके उत्कृष्ट
अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल
अनन्तकाल अर्थात् असख्यात पुद्गलपरावर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और
उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अन्तरकाल कहना चाहिए । इतना
विशेष है कि अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछकम
दो छियामठ सागरप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य
अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ।
अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—वाइस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर जैसे चूर्ण
सूत्रमें बतलाया है वैसे ही जानना चाहिए । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर
अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि किसी अनुत्कृष्ट अनुभागवाले जीवने उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध किया और
अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् उसका घात करके फिर अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया तो अनुत्कृष्ट
अनुभागका अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है । अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर
कुछ कम दो छियासठ सागर है, क्योंकि कोई उपशमसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यक्त्वी होकर छियासठ

§ ३०६ आदेशेण णेरइपसु मिच्छत्त-सोखसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज० अंतोसु०, उक्क० तेधीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अणुक्क० जइणुक्क० अंतोसु० । णवरि अर्णताणु० उक्क० अणुक्क० ज० अंतोसु०, उक्क० तेधीसं सागरो० देसूणाणि । सम्मत्त-सम्मापि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० तेधीसं सागरो० देसूणाणि । सम्मत्त० अणुक्क० णत्ति अंतरं । एवं पढमपुट्ठपि० । णवरि सागरोवम देसूणं । एवं द्दसु पुट्ठवीसु । णवरि सगत्तगहिदी वसूणा । सम्मत्त० अणुक्कस्साणुभागो णत्ति ।

§ ३१० विरवत्तेसु मिच्छत्त-सोखसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज० अंतोसु०, उक्क० अर्णतकालमसंसेका पोगलपरियहा । अणुक्क० जइणुक्क० अंतोसु० । णवरि

सागर काल बिताकर, तीसरे गुणस्वाममें छाकर, अन्तर्मुहूत काल तक उद्भरकर, पुन पक्क सम्यक्त्व प्राप्त करके दूसरी बार त्रियासठ सागर काल बिताये । अब उसमें अन्तर्मुहूत काल रोप रहे वा मिष्वाद्यष्टि हाकर अनन्तानुक्कीका जप्य करके दूसरे समयमें अनुद्भूत अमभागवाला हा जाये वा अन्तर्मुहूत अनुभागका उद्भूत अन्तर कुछ कम वा त्रियासठ सागर हाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्वात्त्व प्रकृतिके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जप्य अन्तर एक समय है, क्योंकि इन दोनोंकी सत्तावाप्ता कई मिष्वाद्यष्टि इन दोनों प्रकृतियोंके उद्भेदन कालमें अन्तर्मुहूर्त बाकी रहने पर उपरान्त सम्यक्त्वके अभिमुख हाकर मिष्वात्त्वकी प्रथम स्थितिके द्विपरिम समयमें सम्यक्त्व वा सम्यग्मिष्वात्त्वकी उद्भेदना करके अन्तिम समयमें उनसे रहित हाकर उपरान्तसम्यक्त्वका प्रकृत्य करके पुनः दोनोंकी सत्ताको उरपन्न करता है अतः एक समय अन्तर पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अथवापुद्गलपरवर्तन है, क्योंकि अनादि मिष्वाद्यष्टि अर्धपुद्गलपरवर्तन कालके प्रथम समयमें उपरान्तसम्यक्त्वका प्रकृत्य करके इस क्षणो प्रकृतियों की सत्ताका उत्पन्न करता है । उसके बाद सबसे जप्य पत्त्यापमके असंख्यातर्षे भाग कालमें इनकी उद्भेदना करके इनका अभाव पर होता है, अर्धपुद्गलपरवर्तन तक प्रकृत्य करके जब संसारका अन्त होनेमें अन्तर्मुहूर्त काल बाकी रहे वा उपरान्त सम्यक्त्वका प्राप्त करके पुनः सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्वात्त्वके उत्कृष्ट अनुभागवाला हा जाता है । इस तरह उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अथवापुद्गल परवर्तन हाता है । इन दोनों प्रकृतियोंका अनुत्कृष्ट अनुभाग वर्तनमाहके क्षण्य कालमें हाता है, अतः उसका अन्तर नहीं है ।

§ ३११ आदेशसे नारकियोंमें मिष्वात्त्व साहाइ कपाय और मव नाकपायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जप्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तटीस सागर है । अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जप्य और उत्कृष्ट अन्तर काल अणुत्कृष्ट है । इतना विराप है कि अमन्तामुक्कीकहाउक्क अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जप्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तेधीस सागर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्वात्त्वके उत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्मका जप्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तटीस सागर है । सम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्त अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार पृथ्वीमें जानना बाहिय । इतना विरोप है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम एक सागर है । इसी प्रकार स पृथिवीमें जानना बाहिय । इतना विरोप है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है तथा सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं नहीं है ।

§ ३१० विरवत्तेसु मिष्वात्त्व, साहाइ कपाय और मव नाकपायोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जप्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल अमान् असंख्यात पुद्गल

अणंताणु०चउक्क० अणुक० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देमृणाणि । सम्मत-
सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० अद्धपोगलपरियट्टं देमृणं । अणुव० गत्थि
अंतरं । णवरि सम्मामि० अणुकस्सं गत्थि ।

§ ३११. पंचिदियतिरिक्खतियम्मि मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु०
ज० अंतोमु०, उक्क० पुच्चकोडिपुत्तं । अणुक० जहणुक्क० अंतोमु० । णवरि अणं-
ताणु०चउक्क० अणुक० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देमृणाणि । सम्मत-
सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुच्चकोडिपुत्तेण-
व्हियाणि । अणुक० गत्थि अंतरं । णवरि सम्मामि० अणुकस्सं गत्थि । जोणीणीसु
सम्मत्त० अणुकस्साणुभागो गत्थि । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-
सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणुकस्साणुभागं गत्थि अंतरं । एव सम्मत-सम्मामिच्छ-
त्ताणं पि । णवरि अणुक० गत्थि । मणुसतिय० पंचिदियतिरिक्खतिगभंगो । णवरि
सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्साणु० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक०
गत्थि अंतरं ।

§ ३१२. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्साणु० ज०
परावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त
है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्पके अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल
अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम तीन पत्य है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके
उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम
अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है। इतना विशेष है
कि सम्यग्मिध्यात्वका अनुत्कृष्ट तिर्यञ्चोमे नहीं होता।

§ ३११ पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोमे
मिध्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्त-
र्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य
और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्पके अनुत्कृष्ट अनुभाग-
सत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है। सम्यक्त्व और
सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्व-
कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पत्य है। अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अन्तर नहीं है। इतना विशेष है
कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वका अनुत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म नहीं होता। तथा तिर्यञ्च योनिनियोमे
सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग भी नहीं होता। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तको
में मिध्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागको लेकर अन्तर
नहीं है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भी जानना चाहिए। इतना विशेष है कि
उनका अनुत्कृष्ट अनुभाग इन जीवोंमें नहीं होता। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्य-
नियोमे पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिोके समान भग है।
इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तरकाल
एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनुत्कृष्टका अन्तर नहीं है।

§ ३१२ देवगतिमें देवोमे मिध्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोके उत्कृष्ट अनुभाग

अंतोमु०, उक्त० महारस सागरो० साविरेयाणि । अणु० महणु० अंतोमुहुत् ।
 जपरि अणताणु० उक्त० अणु० ज० अंतोमु०, उक्त० एकवीस सागरो० देस
 गाणि । सम्पत्-सम्मामि० उक्तस्ताणु० ज० एगस०, उक्त० एकवीस सागरो० देस
 गाणि । जपरि सम्मामि० अणु० गत्यि । एवं भषणादि भाष सहस्सारो षि ।
 जपरि सगहिदी देसणा । मवण०-वाण०-आइसि० सम्पत्० अणु० गत्यि । भाषादि
 भाष जवगेबन्ना षि मिच्छत्-साससक०-जवणोक० उक्तस्ताणु० उक्तस्ताणुभाग० गत्यि अंतर ।
 जपरि अणताणु० उक्त० अणु० ज० अंतोमु०, उक्त० सगहिदी देसणा । सम्पत्०-
 सम्मामि० उक्तस्ताणु० ज० एगसमओ, उक्त० सगहिदी देसणा । अणु० गत्यि
 अंतर । जपरि सम्मामि० अणु० गत्यि । अपवा सम्मामिच्छत्अणु० उक्तस्तामाषे
 सम्पत्स्य उक्तस्तं षि जत्यि षि मत्तम्, ताजमण्णोणसम्पत्पेक्कत्तादो । एसो उचारणाइरि
 यस्ताइप्पायो सज्जत्त जोजेपम्भो । अणुविसादि भाष सम्पत्सिद्धि षि महावीस
 पयदीस उक्तस्ताणु० उक्तस्ताणुभाग० गत्यि अंतर । एवं भाणिदूण जेदम्भं भाष अणा
 हारि षि ।

का जपन्व अन्तर अन्तमुहुत् है और उक्त अन्तर उक्त अर्थक अठारह सागर है । अनुकृत
 अनुभागसत्कर्मका अपन्व और उक्त अन्तर अन्तमुहुत् है । इतना विराप है कि अनन्ताणु
 बन्धीयानुके अन्तमुहुत् अनुभागसत्कर्मका जपन्व अन्तरे अन्तमुहुत् है और उक्त अन्तर
 उक्त कम इक्कीस सागर है । सम्पत्त और सम्पत्तिध्यात्वके उक्त अनुभागसत्कर्मका जपन्व
 अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर उक्त कम इक्कीस सागर है । इतना विराप है कि
 सामान्य वेधोमें सम्पत्तिध्यात्वका अनुकृत अनुभागसत्कर्म नहीं होता । इसी प्रकार मन्तवासी
 से लेकर सहस्रार कस्य तकके वेधोमें जानना चाहिये । इतना विराप है कि इनमें अन्त अन्तर
 उक्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । मन्तवासी अन्तर और व्यापिणी वेधोमें सम्पत्तका
 अनुकृत अनुभागसत्कर्म नहीं होता । अन्तसे लेकर नव प्रैकयक तकके वेधोमें सिध्यात्व साहाइ
 कपाय और नव नोकपायोके उक्त और अनुकृत अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है ।
 इतना विराप है कि अन्तानुबन्धीयानुके अनुकृत अनुभागसत्कर्मका जपन्व अन्तर अन्त
 मुहुत् है और उक्त अन्तर उक्त कम अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्पत्त और सम्पत्तिध्यात्वके
 उक्त अनुभागसत्कर्मका जपन्व अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर उक्त कम अपनी
 स्थिति प्रमाण है । अनुकृत अनुभागका अन्तर नहीं है । तथा सम्पत्तिध्यात्वका अनुकृत यहाँ
 नहीं होता । जबवा सम्पत्तिध्यात्वके अनुकृतके अभावमें सर्वत्र उक्तका उक्त भी नहीं होता
 ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि उक्त और अनुकृत दोनों परस्पर सापेक्ष हैं जहाँ एक नहीं होगा
 वहाँ दूसरा भी नहीं होता । उचारणाचार्यका यह अभिप्राय सर्वत्र स्रगा सेना चाहिये । अनपिरासे
 लेकर सर्वापेक्षि पर्यन्त अष्टादस प्रकृतियोंके उक्त और अनकृत अनुभागसत्कर्मका लेकर
 अन्तरकाल नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आचारासे गारिकोमें उक्कीस महविचोके उक्त अनुभागका उक्त अन्तर
 उक्त कम वेडीस सागर है, क्योंकि उक्त अनुभागवाला कई गारकी उक्त अनुभागका घाट
 करके अनुकृत अनुभागवाला हुआ और अन्तमें उक्त अनुभागका बन्ध करके पुनः उक्त
 अनुभागवाला हो गया ता उक्त अन्तर पाया जाता है । अनुकृत अनुभागका जपन्व और

❁ जहण्णाणुभागसंतकम्मयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ३१३. सुगमं ।

❁ मिच्छत्त अट्टकसाय-अणुताणुबंधीणं च मोत्तणं सेसाणं एत्थि अंतरं ।

§ ३१४. कुदो ? सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-चदुसंजलण-णवणोकसायाणं खवणाए

जहण्णाणुभागसंतकम्मस्स णिम्मूल विणट्टस्स पुणरुप्पट्ठिवज्जियस्स अंतरावणे उवाया-

उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त तो स्पष्ट ही है। विशेष यह है कि अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि अनुत्कृष्ट अनुभागवाला जीव अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके वेदकसम्यक्त्वी हुआ, अन्तमे सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यादृष्टि होकर पुन अनन्तानुबन्धीका बन्ध करके अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हां गया। इसी प्रकार प्रत्येक नरकमें लगा लेना चाहिये। सामान्य तिर्यश्चोमे भी इसी प्रकार घटा लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य उत्कृष्ट भोगभूमिमें विसयोजनाकी अपेक्षा नरककी तरह घटा लेना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चत्रिकमे छव्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है सो एक जीवकी अपेक्षा इन तीनों मार्गाणाओं का जितना काल है उसमें तीन पत्य कम उतना ही अन्तर होता है, क्योंकि भोगभूमिमें उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका अभाव है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पत्य है सो इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च आदिमें से किसी एकमें जन्म लेकर इनकी उद्वेलना कर दे और इस प्रकार इनसे रहित होकर कुछ कम उक्त काल पर्यन्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च आदिमें ही भ्रमण करता रहे। अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न करके पुन उक्त दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाला हो जाये। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर आता है। मनुष्य अपर्याप्त और तिर्यश्च अपर्याप्त में अन्तर नहीं होता, क्योंकि इनमें उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध नहीं होता। पूर्वभवसे उत्कृष्ट अनुभाग लाया जा सकता है मगर उसका घातकर देनेपर पुन उसका सत्त्व सम्व नहीं है। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट अनुभागमें भी समम् लेना चाहिये। देवगतिमें देवोमे छव्वीस प्रकृतियाके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक अठारह सागर है, क्योंकि देवगतिमें उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध और सत्त्व बारहवें स्वर्ग तक ही पाया जाता है और उसकी उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक अठारह सागर है, अत उत्कृष्ट अनुभागवाला कोई जीव बारहवें स्वर्गमें जन्म लेकर उत्कृष्ट अनुभागका घात करके अनुत्कृष्ट अनुभागवाला हुआ। जब थोड़ी आयु शेष रही तो पुन उत्कृष्ट अनुभागबन्ध करके उत्कृष्ट अनुभागवाला हो गया। इस तरह उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर होता है। अनन्तानुबन्धीके अनुत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर नव प्रैवेयककी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि आगे तो सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं अत वहाँ अन्तर होता ही नहीं है। इसी तरह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका भी अन्तर जानना चाहिए।

* जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल कितना है ?

§ ३१३ यह सूत्र सुगम है।

* मिथ्याव, आठ कषाय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कको छोड़कर शेष प्रकृतियों के जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है।

§ ३१४ क्योंकि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार सज्वलन कषाय और नव नेकषायोंका क्षण होने पर जघन्य अनुभागसत्कर्म मूलसे ही नष्ट हो जाता है, उसकी पुन उत्पत्ति नहीं

मायादो । गिस्तकम्मियमि अंतरसुखसम्मदि चि ण पच्चपहादु शुत्त, पुम्भुत्तरजह
 ण्णाप्पुमाणाणं विचारम्मतर । ण च तमेत्थस्थि, स्वविद्वद्दहणाणुभागस्स पुणरुप्पत्तीए
 ममाबादो । स्वविदाणमप्यत्ताणुबंधीणं व पुणरुप्पत्ती एदासि पयडीणमपुभागस्स
 किण्ण मायदे ? ण, अर्णताणुबंधीणं व संमल्लणादीणं विसंजायणाभावण पुणरुप्पत्तीए
 विरोहादो । ण स्वविदाणं पुणरुप्पत्ती, गिम्भुआर्णं पि पुणो संसारित्तप्पसंगादो । ण च
 एणं, पिरासबाण संसारुप्पत्तिविरोहादो । अर्णताणुबंधीणं पि स्वपणा चेष ण विसंभोयणा,
 सुक्खलणमदापुबल्लमादो । ण कम्मंतरमायेण कम्मएण परिणामो विसंभोयणा, संखोहण
 स्वविदासैसकम्मणं पि विसंजायणप्पसंगादा । ण च एव, तेसिमर्णताणुबंधीणं व पुणरु-
 प्पत्तिप्पसंगादो । ण च अकम्मसकमेण परिणामो विसंभोयणा, लोमसंमल्लणास्स वि
 विसंभोयणत्तप्पसंगादो चि । एत्थ परिहारो बुच्चवे—कम्मंतरसरुक्खणसंज्ञमिय अपह्वाणं

होती अतः उसके अन्तरका प्राप्त करमेका कार्य उपाय नहीं है । जिन प्रकृतियों की सत्ताका
 अभाव हा जाता है जन्में भी अन्तर पाया जाता है, ऐसा निश्चय करना मुक्त नहीं है, क्योंकि
 पहलेके जपन्व अनुभाग और बादके जपन्व अनुभागके बीचका जो फरक होता है उसे
 अन्तर करते हैं । अर्थात् पहले जपन्व अनुभाग हुआ वह नष्ट हा गया । पुनः कालान्तरमें
 जपन्व अनुभाग हुआ । इन दोनोंके बीचमें जपन्व अनुभाग रहित वा फल हाता है उसे
 अन्तरकाय करते हैं । वह अन्तर यहाँ नहीं है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके जपन्व अनुभागका चय
 हो जाने पर इसकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती ।

शंका—जैसे अन्तस्तानुबन्धीका जपन्व हा जाने पर इसकी पुनः उत्पत्ति हो जाती है वैसे
 इन प्रकृतियोंके अनुभाग की पुनः उत्पत्ति क्यों नहीं होती ?

समाधान—यहाँ क्योंकि अन्तस्तानुबन्धी कर्मायों की तरह संज्ञान्न आदिक विसंवाजन-
 का अभाव हाकर इनकी पुनः उत्पत्ति जानेमें विरोध है । यदि कहा जाय कि मष्ट होने पर भी
 इनकी पुनः उत्पत्ति हो जाय तो क्या ज्ञानि है ? किन्तु ऐसा कहना योग्य नहीं है, क्योंकि इसको
 प्राप्त हुई प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती, बरि होने लगे वा मुक्त हुए जीवोंका पुनः
 संसारी होनेका प्रसंग ब्यर्थित्त होगा । किन्तु मुक्त जीव पुनः संसारी नहीं हावे क्योंकि जिनके
 कर्मोंका आभाव नहीं हाता इनके संसार की उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है ।

शंका—अन्तस्तानुबन्धी कर्मायोंकी भी जपसा ही होती है, विसंयोजना नहीं होती क्योंकि
 जपसा और विसंयोजनाके लक्षणमें भेद नहीं है । हायद् कहा जाय कि कर्मोंका कमान्तर रूपसे
 वा परिणामन हाता है उसे विसंवाजना करते हैं, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस
 प्रकार वा एक प्रकृतिके भेदद्वेषका अन्य प्रकृतिके जेपख करमेस नष्ट हुए सभी कर्मों की विसंवा
 जनाका प्रसंग ब्यर्थित्त होगा । किन्तु अन्य प्रकृतियों की विसंवाजना नहीं होती यदि हा वा
 अन्तस्तानुबन्धी की तरह इनकी भी पुनः उत्पत्तिका प्रसंग आयेगा । हायद् कहा जाय कि अकर्म
 रूपसे परिणामन हमेका विसंवाजना करते हैं सा भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि विसंवाजनाका
 ऐसा लक्षण करमेसे संज्ञान्न ज्ञानका भी विसंयोजनाका प्रसंग ब्यर्थित्त हागा ।

समाधान—अब परिहार करते हैं—किन्हीं कर्मोंका ज्मर कर्मरूपमें संज्ञान्न करके टहरे

विसंजोयणा, णोकम्मसरुवेण परिणामो खवणा त्ति अत्थि दोण्हं पि लक्खवणभेदो ।
ण च अणंताणुवंधीण व संबोहणाए वि णट्टासेसकम्माणं विसंजोयणं पडि भेदाभावादो
पुणरुप्पत्ती, आणुपुञ्चीसंकमवसेण लोभभावं गंतूण अकम्मसरुवेण परिणमिय खवण-
भावमुवगयाणं पुणरुप्पत्तिविरोहादो । अणंताणुवंधीणं व मिच्छत्तादीणं विसंजोयण-
पयडिभावो आइरिएहि किण्ण इच्छिज्जदे ? ण, विसंजोयणभावं गंतूण पुणो णियमेण
खवणभावमुवगमंति त्ति तत्थ तदणुवमुवगमादो । ण च अणंताणुवंधीणु विसजोइटासु
अतोमुहुत्तकालव्भतरे तासिमकम्मभावगमणियमो अत्थि जेण तासि विसंजोयणाए
खवणसण्णा होज्ज । तदो अणंताणुवंधीणं व सेसविसंजोइटपयडीणं ण पुणरुप्पत्ती अत्थि
त्ति सिद्धं ।

❀ मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहणणाणुभागसंतकम्मियंतरं केवचिरं
कालादो होदि ?

रहना विसयोजना है । और कर्मका नोकर्म अर्थात् कर्माभावरूपसे परिणमन होना क्षण है ।
इसप्रकार दोनोंके लक्षणोंमें भेद है । यदि कहा जाय कि प्रदेश क्षेपणसे नष्ट हुए अणुप कर्मोंमें
विसयोजनाके प्रति कोई भेद नहीं है अत अनन्तानुवन्धीकी तरह उन कर्मोंकी भी पुन उत्पत्ति
हो जायेगी सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि आनुपूर्वसक्रमके कारण लोभपनेको प्राप्त
होकर अकर्मरूपसे परिणमन करके नष्ट हुईं उन प्रकृतियोंकी पुन उत्पत्ति होनेमें विरोध है ।

शंका—अनन्तानुवन्धीकी तरह मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंको भी आचार्याने विसयोजना
प्रकृति क्यों नहीं माना ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व आदि प्रकृतियाँ विसयोजनपनेको प्राप्त होकर अनन्तर
नियमसे क्षय अवस्थाको प्राप्त होती हैं, इसलिये उनमें विसयोजनपना नहीं माना गया । किन्तु
अनन्तानुवन्धी कषायोंका विसयोजन होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर उनके अकर्मपनेको प्राप्त
होनेका नियम नहीं है जिससे उनकी विसयोजनाकी क्षणसंज्ञा हो जाय । अत अनन्तानुवन्धीकी
तरह शेष विसयोजित प्रकृतियोंकी पुन उत्पत्ति नहीं होती, यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, चार सज्वलन
और नव नोकषायोंमें नहीं होता, क्योंकि इनका जघन्य अनुभाग क्षणकालमें होता है अत एक
वार नष्ट होकर पुन. वह उत्पन्न नहीं हो सकता । इस पर यह शका की गई कि अनन्तानुवन्धीकी
तरह इन प्रकृतियोंका क्षण हो जाने पर भी पुन उत्पत्ति हो जानी चाहिये । इसका उत्तर दिया
गया कि अन तानुवन्धीकी क्षणता नहीं होती, विसयोजना होती है । तब पुन शका हुई कि दोनों
में अन्तर क्या है तो उत्तर दिया गया कि एक कर्मके अन्य कर्मरूपसे सक्रमण करके अवस्थित
रहनेको विसयोजना कहते हैं, और कर्मका अभाव हो जानेको क्षणता कहते हैं । यद्यपि सज्वलन
क्रोध मानरूपसे, मान मायारूपसे और माया लोभ रूपसे सक्रमण करते हैं किन्तु सक्रमण करके
वे अवस्थित नहीं रहते किन्तु उनका विनाश हो जाता है परन्तु अनन्तानुवन्धीमें यह घात नहीं है
अत अनन्तानुवन्धीकी तरह उक्त पन्द्रह प्रकृतियोंकी पुन उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये उनके
जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तर भी नहीं होता ।

* मिथ्यात्व, और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल
कितना है ?

§ ३१५ सुगम ।

⊗ जह्यथेषु अतोमुद्भुत ।

§ ३१६ कुतो ? अहण्णाणुभागसंतकम्मिपण सुद्धमभिगोदेण मिच्छतइकसा याणमजहण्णाणुभागं बंधिदण अंतरिदण अनुभागसंतकर्म पादिय पुणा अहण्णाणुभाग संतकम्मे कदे पुब्बुत्तरमहण्णाणुभागसंतकम्मार्ज विधासस्त सम्पजहण्णतोमुद्भुत्तमेवस्स उषसंमादो ।

⊗ उक्खस्सेय असस्सेखा खोगा ।

§ ३१७ अहण्णाणुभागसंतकम्मिपस्स सुद्धमेइदियस्स परिणामपचएण बद्ध मिच्छतइकसापमजहण्णाणुभागसंतकम्मस्स असस्सेखलोगमेवधादहाणपरिणामेत्तु असं स्सेखलोगमेवकालं परिममिय पुणो अहण्णाणुभागद्वाणपाभोमापादपरिणामेहि अनु भागसंतकम्मं पादिय अहण्णाणुभागसंतकम्मसख्येण परिणयस्स असंस्सेखलोगमेव अंतरकालुवत्तंमादो ।

⊗ अयत्ताणुपपीय जह्यथाणुभागसंतकम्मिपत्तर केवचिरं कालाधो होवि ?

§ ३१८ सुगमं ।

⊗ जह्यथेषु अतोमुद्भुत ।

§ ३१५. यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जपन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३१६ क्योंकि जपन्य अनुभागसंतकर्मसे कुछ सूत्र निगाहिया जीवके मिथ्यात्व और आठ कृपायोंका अजपन्य अनुभाग बंधकर अनुभागका काण्डकपात करके पुनः जपन्य अनु भागसंतकर्म करने पर पूर्व जपन्य अनुभागसंतकर्म और उत्तर जपन्य अनुभागसंतकर्मके बीचमें सबसे जपन्य अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तरकाल पाया जाता है ।

विशेषार्थ—इन कर्मोंका जपन्य अनुभाग सूत्र निगाहिया जीव करता है । अन्तर यह अजपन्य अनुभागका बन्ध कर और पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर इसका पात करके जपन्य अनुभाग कर सकता है, इसलिए इन नौ कर्मोंके जपन्य अनुभागसंतकर्मका जपन्य अन्तर अन्तर् मुहूर्त क्या है ।

⊗ वस्तुतः अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ३१७ जपन्य अनुभागसंतकर्मबाधा सूत्र एकत्रिय जीव परिणामोंके द्वारा मिथ्यात्व और आठ कृपायोंके अजपन्य अनुभागसंतकर्मका बंध करके असंख्यात लोक मात्र धातस्थान रूप परिणामोंमें असंख्यात लोकमात्र कासतक भ्रमण करके पुनः जपन्य अनुभागस्थानक धाम्य धातस्थ परिणामोंसे अनुभागसंतकर्मका पात करके जपन्य अनुभागसंतकर्म रूपसे परिचित हुआ । उसके असंख्यात लोकमात्र अन्तरकाल पाया जाता है ।

⊗ अनन्तानुबन्धी कृपायोंके जपन्य अनुभागसंतकर्मका अन्तरकाल कितना है ?

§ ३१८ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जपन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३१६. कुदो ? अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्तपढमसमए तेसिमणं-
ताणुबंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मं कादूण विट्ठियसमए अंतरिय सच्चजहण्णमंतोमुहुत्त-
मच्छिय सम्पत्तं घेतूण तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्त-
पढमसमए वद्धजहण्णाणुभागस्स अंतोमुहुत्तमेत्तजहएणंतरकालुवलभादो ।

❀ उक्कस्सेण उचट्टुपोग्गलपरियट्ट ।

§ ३२०. कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिमि समयविरोहेण पडिवण्णपढमसम्म-
त्तमि पढमसम्मत्तकालभंतरे अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय संजुत्तपढमसमए अणताणु-
बंधिचउक्काणुभागं जहण्ण काऊण विट्ठियसमए अंतरिय कमेण उचट्टुपोग्गलपरियट्टं
परियट्टिय त्थोवावसेसे संसारे पढमसम्मत्तं घेतूण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय
सजुत्तपढमसमए अंतरमुप्पाइय पुणो अंतोमुहुत्तेण णिव्वुअम्मि उचट्टुपोग्गलपरियट्ट-
मेत्तंतरकालुवलंभादो । एवं देसामासियच्चुण्णिण्णसुत्तमवलंविण्य जहण्णाणुभागंनपरूवणं
काऊण संपहि उच्चारणमस्सिदूण परूवेमो ।

§ ३२१. जहएणए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण
मिच्छत्त-अट्टकं जहण्णाणुं ज० अंतोमु०, उक्कं असंखेज्जा लोगा । अज० जह-
ण्णुकं अंतोमु० । सम्पत्त-सम्पामि० जहण्णाणुं णत्थि अंतरं । अज० ज० एगसं०,

§ ३१९. क्योंकि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसयोजन करके पुनः सयुक्त होनेके प्रथम
समयमें उन अनन्तानुबन्धी कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मको करके, दूसरे समयमें अन्तर
आरम्भ करके सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक ठहर कर, सम्यक्त्वको ग्रहण करके, सम्यक्त्व
दशामे अन्तर्मुहूर्त तक रहकर, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसयोजन करके पुनः सयुक्त होनेके
प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभागबन्ध करनेपर अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर-
काल पाया जाता है ।

❀ उत्कृष्ट अन्तरकाल कुञ्जकम अर्धपुद्गलपरावर्तनप्रमाण है ?

§ ३२०. क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके आगमके अविरुद्ध प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त
करके, प्रथम सम्यक्त्वके कालके भीतर अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसयोजन करके, सयुक्त होनेके
प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभाग करके तथा दूसरे समयमें अन्तर आरम्भ
करके कमसे कुञ्जकम अर्धपुद्गलपरावर्तन कालतक परिभ्रमण करके, सप्ताह भ्रमणका काल
थोड़ा अवशेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके, अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसयोजन
करके, पुनः सयुक्त होनेके प्रथम समयमें जघन्य अनुभागके अन्तरकालको उत्पन्न करके पुनः
अन्तर्मुहूर्त बाद मोक्ष चले जानेपर कुञ्जकम अर्धपुद्गल परावर्तन मात्र अन्तरकाल पाया जाता
है । इस प्रकार देशामर्षक चूर्णिसूत्रोंका अवलम्बन लेकर जघन्य अनुभागसत्कर्मके अन्तरका
कथन किया । अब उच्चारणाका अवलम्बन लेकर कहते हैं ।

§ ३२१ प्रकृतमें जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश ।
ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और
उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट
अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल

एक० अक्षपोमासपरियह देस्यं । अर्गतापु० चक्रक० अहण्या० अ० अंतोसु०, एक० अक्षपोमासपरियह । अक्ष० अ० अंतोसु०, एक० वेदावहिसागरो० देस्यमि । अक्षुसंभस्य-अवजो० अहण्याअहण्यापु० नत्सि अंतर ।

§ ३२२ आदेशेण पेरइएसु मिच्छच-वारसक०-अवजो० अहण्याअहण्यापु० पत्सि अंतर । अर्गतापु० चक्रक० अहण्याअहण्यापु० अ० अंतोसु०, एक० तेतीस सागरो० देस्यमि । सम्मच० अहण्यापु० नत्सि अंतर । सम्मच०-सम्मामि० अक्ष० अ० एगस०, एक० तेतीस सागरो० देस्यमि । एवं पडमाए । अवरि सगद्विदी देस्यमि । विदियादि आव सचमि ति मिच्छच-सोससक०-अवजो० अहण्याअहण्यापु० अ० अंतोसु०, एक० सगद्विदी देस्यमि ।

§ ३२३ तिरिक्कगर्पे तिरिक्कसेसु मिच्छच-वारसक०-अवजो० अहण्यापु० अक्ष० अंतोसु०, एक० अस्तसेखा लोमा । अक्ष० अहण्यापु० अंतोसु० । सम्मच० अ० पत्सि अंतर । सम्मच०-सम्मामि० अक्ष० अ० एगस०, एक० अक्षपोमासपरियह देस्यं । अर्गतापु० चक्रक० अक्ष० अ० अंतोसु०, एक० अक्षपो०परियह देस्यं ।

मार्ति है । अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर एक समय है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम अर्धपुरगसपर्यवर्तनप्रमास्य है । अन्तानुक्म्बीचतुष्के जपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर अन्तमु हृत है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम अर्धपुरगसपर्यवर्तनप्रमास्य है । अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर अन्तमु हृत है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम दो त्रिपासठ सागर है । चारो संखलन कथायो और नव नोकपायोके जपत्य और अक्षपत्य अनुमागका अन्तर मर्ति है ।

§ ३२२ आदेशसे मारुकिभोमि मिच्छात्स, चारु कथाय और नव नोकपायोके जपत्य और अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका अन्तर मर्ति है । अन्तानुक्म्बीचतुष्के जपत्य और अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर अन्तमु हृत है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम तेतीस सागर है । सम्बत्सके जपत्य अनुमागसत्कर्मका अन्तर मर्ति है । सम्बत्स और सम्यमिच्छात्सके अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर एक समय है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम तेतीस सागर है । इसी प्रकार पहली प्रथिबीमें जानता चाहिए । इतना विरोध है कि एकत्र अन्तर कुञ्जकम अपनी स्थितिप्रमास्य है । दूसरीसे लेकर सातवीं प्रथिबी तकके मारुकिभोमि मिच्छात्स, चारु कथाय और नव नोकपायोके जपत्य और अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर अन्तमु हृत है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम अपनी अपनी स्थितिप्रमास्य है ।

§ ३२३ तिर्यङ्गतिमें तिर्यङ्गोमि मिच्छात्स, चारु कथाय और नव नोकपायोके जपत्य अनुमागका जपत्य अन्तर अन्तमु हृत है और एकत्र अन्तर असंख्यात साकप्रमास्य है । अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य और एकत्र अन्तर अन्तमु हृत है । सम्बत्सके जपत्य अनुमागका अन्तर मर्ति है । सम्बत्स और सम्यमिच्छात्सके अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर एक समय है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम अर्धपुरगसपर्यवर्तनप्रमास्य है । अन्तानुक्म्बी चतुष्के जपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर अन्तमु हृत है और एकत्र अन्तर कुञ्जकम अर्धपुरगसपर्यवर्तनप्रमास्य है । अक्षपत्य अनुमागसत्कर्मका जपत्य अन्तर अन्तमु हृत है और

अज० ज० अंतोमु०, उक० तिणिएण पलिदोवमाणि देसूणाणि । पंचिदियतिरिक्ख-
तिय० मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०
जहण्णाणु० णत्थि अंतरं । [सम्मत्त-सम्मामि०] अज० ज० एगस०, उक० सगट्ठिदी ।
अणंताणु०चउक० जहएणाणु० ज० अंतोमु०, उक० सगट्ठिदी० । अज० ज०
अंतोमुहुत्तं, उक० तिणिएण पलिदो० देसूणाणि । णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० जहण्णाणु०
णत्थि । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज०
अज० णत्थि अंतरं । मणुसतिय० पंचिदियतिरिक्खतियभंगो । णवरि सम्मामि०
सम्मत्तभगो ।

§ ३२४. देवगदीए देवेसु मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु०
णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जहएणाणु० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० अज० ज०
एगस०, उक० एकतीस सागरो० देसूणाणि । अणंताणु०चउक० जहण्णाजहएणाणु०
ज० अंतोमु०, उक० एकतीस सागरो० देसूणाणि । भवण०-वाण० णेरइयभंगो । णवरि
सगट्ठिदी । सम्मत्तस्स जहण्णं णत्थि । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । णवरि सगट्ठिदी ।
सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णाणु०

उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय
तिर्यञ्च योनिनी जीवोमे मिथ्यात्व, वारह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य
अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल
नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय
है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागसत्कर्म
का जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य अनुभाग
सत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है । इतना विशेष
है कि पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिन्या में सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म नहीं होता । पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य
और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । मनुष्यके शेष तीन भेदों में पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यञ्चत्रिकके समान भग है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भग सम्यक्त्वके समान है ।

§ ३२४ देवगतिमें सामान्य देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, और नव नोकषायोंके जघन्य
और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसत्कर्मका
अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य
अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क
जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर
कुछ कम इकतीस सागर है । भवनवासी और व्यन्तरोंमें नारकियोंके समान भग है । इतना
विशेष है की उत्कृष्ट अन्तर अपनी स्थितिप्रमाण है । वहाँ सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म
नहीं होता । ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीकी तरह भग है । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर
ज्योतिषी देवोंकी स्थितिप्रमाण है । सौधर्मसे लेकर उपरिमप्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, वारह
कषाय और नव नोकषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागसत्कर्मका अन्तरकाल नहीं है ।

जति अंतर । अणुताजु० पठक० जहण्णामहण्णायु० ज० अंतोसु०, पके० सगडिदी
 वेसुया । सम्मत्त० अहपणायु० जति अंतर । सम्मत्त-सम्पामि० अम० ज० एगस०,
 उक० सगडिदी वेसुया । अणुविसादि बाध सम्पट्टसिद्धि वि सम्पपयडीप अहपणा-
 जहण्णायु० जति अंतर । एवं आणिरुण वेद्व्यं जाम अणाहारि वि ।

⊗ पायाजीवेहि भंगविषयो ।

१ ३२५ अहियारसंभासणमुत्तमेदं । सुगमं ।

अन्तस्तानुबन्धीयतुच्छके अण्य और अजण्य अनुभागसंस्कारका अण्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है
 और उच्छुद्ध अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्पत्त्वके अण्य अनुभागसंस्कारका
 अन्तरकाल नहीं है । सम्पत्त्व और सम्पत्तिप्राप्तके अजण्य अनुभागसंस्कारका अण्य
 अन्तर एक समय है और उच्छुद्ध अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अणुविरासे लेकर
 सर्वांसिद्धि तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके अण्य और अजण्य अनुभागका अन्तरकाल नहीं
 है । इस प्रकार आन्तर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आवेशसे सामान्य मारकियोंमें बाहंस प्रकृतियोंके अण्य और अजण्य
 अनुभागका अन्तर नहीं है, क्योंकि अण्य अनुभाग या अंसही पञ्चमिन्द्रिय नरकम अन्त लेता है
 उसके होता है अतः जब वह नरकमें अन्त लेकर उस अनुभागको बड़ा लेता है तो पुनः अण्य नहीं
 कर सकता, अतः अन्तर नहीं है । अन्तस्तानुबन्धीके अण्य और अजण्य अनुभागका अन्तर
 वहीके उच्छुद्ध और अमुच्छुद्ध अनुभागके अन्तरकी तरह जानना चाहिये । तथा सम्पत्त्व और
 सम्पत्तिप्राप्तके अजण्य अनुभागका अन्तर वहीके उच्छुद्ध अनुभागके अन्तरकी तरह जानना
 चाहिये । इतर व्याधि नरकमें जन्मीस प्रकृतियोंके अण्य और अजण्य अनुभागका अन्तर
 अण्यसे अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि इनका अण्य अनुभाग अन्तस्तानु बन्धीकी विसंयोजना करनेवाले
 सम्पत्ति मारकीके हाता है अतः अण्य अनुभागवाला सम्पत्तिसंयुक्त होकर अजण्य
 अनुभागवाला होकर सबसे अण्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहरकर पुनः सम्पत्त्व का प्राप्त करके
 अन्तस्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अण्य अनुभागवाला हा गया वा अण्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त
 हुआ । इसी प्रकार अजण्य अनुभागका भी अण्य अन्तर विचार लेना चाहिये । सामान्य विषयों
 में वा बाहंस प्रकृतियोंके अण्य और अजण्य अनुभागका अन्तर होता है, क्योंकि हममें इनका
 अण्य अनुभाग इतसमुत्पत्तिक कर्मवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके होता है, अतः छूटकर पुनः प्राप्त
 हो सकनेके कारण नहीं अन्तराल संभव है किन्तु पञ्चेन्द्रियविषय आदि तीन भेषाम उन प्रकृतियों
 के उच्छुद्ध अनुभागका अन्तर नहीं है, क्योंकि इनका अण्य अनुभाग या इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला
 एकेन्द्रिय हममें जन्म लेता है वहीके होता है, अतः इन पदार्थोंमें अण्य अनुभागका बड़ा लेने पर
 पुनः उच्छुद्ध अण्य जाना संभव नहीं है इसलिये अन्तर नहीं है । इसी प्रकार इनके अपचांस तथा
 मनुष्योंमें भी पटा लेना चाहिये । देवगणोंमें सामान्य देवोंमें तथा सौधर्मसे लेकर अपरिम प्रेयेक
 पर्यन्त बाहंस प्रकृतियोंके तथा इतर सभी प्रकृतियोंके अण्य और अजण्य अनुभागका अन्तर
 नहीं है, क्योंकि हममें अण्य अनुभागके जन्म होनेपर पुनः उसकी उत्पत्ति नहीं होती या
 मारकमें जो अनुभाग रहता है अन्ततक बरी रहता है । अण्य प्रकृतियोंके अन्तरका पहले कहे
 गये उच्छुद्ध-अमुच्छुद्ध अनुभागके अन्तरकी तरह पटा लेना चाहिये ।

⊗ माना बीजों की अपेक्षा भंगविषयका अधिकार है ।

१ ३२६ अधिकारकी सन्ध्याके लिए यह सूत्र आया है । इतका अर्थ सुगम है ।

❀ तत्थ अट्ठपदं ।

§ ३२६. तत्थ णाणाजीवभंगविचए अट्ठपदं बुचदे । किमट्ठपदं णाम ? जेण अवगएण भंगा अवगम्मंति तमट्ठपदं ।

❀ जे उक्कस्साणुभागविहत्तिया ते अणुक्कस्सअणुभागस्स अविहत्तिया ।

§ ३२७. कुदो ? उक्कस्साणुक्कस्साणुभागणं सहाणवट्ठानलक्खणविरोहादो ।

❀ जे अणुक्कस्सअणुभागस्स विहत्तिया ते उक्कस्सअणुभागस्स अविहत्तिया ।

§ ३२८. अणुक्कस्साणुभागम्मि उक्कस्साणुभागस्स संभवविरोहादो ।

❀ जेसिं पयडी अत्थि तेसु पयदं, अकम्मे अव्ववहारो ।

§ ३२९. जेसि जीवाण मोहउत्तरपयदीओ अत्थि तेसु जीवेसु पयदं अहि-यारो । अकम्मे मोहकम्मवज्जिए अव्ववहारो व्वहारो णत्थि^१ खीणकसायादिउवरिम-जीवेहि णत्थि व्वहारो, मोहणीयकम्माभावादो त्ति भणिदं होदि ।

❀ एदेण अट्ठपदेण ।

* उसमें यह अर्थपद है ।

§ ३२६ उसमें अर्थात् नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय नामके अधिकारमें अर्थपदको कहते हैं ।

शंका—अर्थपद किसे कहते हैं ।

समाधान—जिसके जान लेने पर भगोंका ज्ञान हो जाता है उसे अर्थपद कहते हैं ।

* जो उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव हैं वे अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं होते ।

§ ३२७ क्योंकि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागोंमें सहानवस्थान रूप विरोध पाया जाता है । अर्थात् ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं ।

* जो अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव हैं वे उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं हैं ।

§ ३२८ क्योंकि अनुत्कृष्ट अनुभागके रहते हुए उत्कृष्ट अनुभागके होनेमें विरोध है ।

* जिन जीवोंके मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियों पाई जाती हैं वे प्रकृत हैं । जो मोहसे रहित हैं उनमें व्यवहार नहीं होता ।

§ ३२९ जिन जीवोंके मोहनीय की उत्तर प्रकृतियों हैं उन जीवोंका प्रकरण है अर्थात् उनका अधिकार है । जो मोहकर्मसे रहित हैं उनका अव्यवहार है अर्थात् उनका व्यवहार नहीं है । तात्पर्य यह है कि बारहवें गुणस्थानसे लेकर ऊपरके जीवोंकी अपेक्षा व्यवहार नहीं है, क्योंकि उनके मोहनीयकर्मका अभाव है ।

* इस अर्थपदके अनुसार—

§ ३३० एतेन अर्जतरं पक्षविद्वज्जपदेन करणभूदेन भाषानिबिहि मंगविषयो बुधदे ।

⊗ सम्बे जीवा मिष्यत्तस्स उहस्सअणुभागास्स सिया सम्बे अविहसिया ।

§ ३३१ मिष्यत्तस्से ति जिहेसेण सेसकम्मपडिसेहो कवो । उहस्सअणुयामस्से ति जिहेसो अणुहस्साणुभागादीणं पडिसेहफलो । सिया कम्मि वि काले सम्बे जीवा मिष्यत्तस्स उहस्साणुभागास्स अविहसिया होति, उहस्साणुयामसंतकम्मेण सह अणुहस्साणुकाखदो तेण विणा अणुहस्साणुकाखस्स बहुबुवत्तामादा । सम्बे जीवा सम्बे अविहसिया ति दोवारं सम्बजिहेसो ण कायम्मो, पणजवत्तिदोसप्पसगादो ति ? ण एस दोसो, दोणं सम्बसहाणं पुणभूदमत्थेषु बहुमाणाण पणजवत्तिपत्तविरोहादो । तं अहा—पडमो सम्बसहो जीवाणं विसेसणं, पिदिमो अविहसियाणं विसेसणं । ण च मिष्यात्वाहारवहुत्ते बहुमाणाणं दोणं सम्बपदाणमेयत्थे बुधी, अणुपसमादो । ण च जीवाविहसियाणमेयत्थं, मिष्याविसेसणविसेसिहाणमेयत्तविरोहादो । विसेसिह्यमाणममत्थ एयमिदि बुजवत्तदोसो किय्या जापदे ? होतु जाम तहाविह

§ ३३ इस पहले कहे गये करणभूत अर्थपरके अनुसार माना जीवों की अवेद्या मंगविषयको करते हैं ।

⊗ कदाचित् सब जीव मिष्यात्वकी उच्छृष्ट अनुमागअविमक्तिवासे हैं ।

§ ३३१ मिष्यात्वपरके निर्देशसे शेष कर्मोंका प्रतिषेध कर दिया । उच्छृष्ट अनुमाग' परके निर्देशसे अनुच्छृष्ट अनुमागादिकका प्रतिषेध कर दिया । सिया अर्थात् किसी भी समस्त सब जीव मिष्यात्व की उच्छृष्ट अनुमागअविमक्तिवासे होते हैं, क्योंकि उच्छृष्ट अनुमाग कर्मोंके साथ रखनेका मिथना कल है उस कलसे इसके बिना रखनेका कल बहुत पाया जाता है ।

शुद्ध—'सम्बे जीवा सम्बे अविहसिया । इस प्रकार शेष चार 'सर्व' शब्दका निर्देश नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करनेसे पुनश्चिदावका प्रसङ्ग आया है ।

समाधान—पुनश्चिद शेष नहीं आता है, क्योंकि मित्र मित्र अर्थमें वर्तमान शेष 'सर्व' शब्दोंके पुनश्चिद होनेमें विरोध है । बुद्धासा इस प्रकार है—पहला 'सर्व' शब्द जीवोंका विरोध है और दूसरा 'सर्व' शब्द अविमक्तियों का विरोध है । इस प्रकार अब शेष 'सर्व' शब्द मित्र मित्र अर्थके बहुत्वमें विद्यमान हैं तो इनकी एक अर्थमें इति नहीं हो सकती अथवा अविमक्त शेष आयेगा । अर्थात् यदि मित्र मित्र अर्थमें वर्तमान शब्द भी एकार्थरूपि कहे जायेंगे तो यह पद अवि समी शब्द एकार्थरूपि हो जायेंगे और उस अवस्थामें यह पद शब्दके भी एक साथ कहनेसे पुनश्चिद शेषका प्रसङ्ग उपस्थित होगा । यदि कहा जाय कि जीव शब्द और अविमक्ति शब्द एक हैं तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जो शब्द मित्र मित्र विरोधोंसे विशिष्ट हैं अर्थात् अब इन दोनोंके साथ आसग आसग विरोधयुक्त लगा हुआ है तो इनके एक होनेमें विरोध है ।

विवक्त्वाए, ण पुण एत्थ, पहाणीकयविसेसणत्तादो, तम्हा ण पुणरुत्तदोसो त्ति सद्दहेय्वं ।

❀ सिया अविहृत्तिया च विहृत्तिओ च ।

§ ३३२. कम्हि वि काले मिच्छत्तउक्कस्साणु०अविहृत्तिगेहि सह एकस्स-उक्कस्साणुभागविहृत्तियजीवस्स संभवो होदि, णिम्मूलाभावे उवलभमाणे एकस्स उक्कस्साणुभागविहृत्तियजीवस्स संभवं पढि विरोहाभावादो ।

❀ सिया अविहृत्तिया च विहृत्तिया च ।

§ ३३३. कम्हि वि काले उक्कस्साणुभागस्स अविहृत्तिएहि सह उक्कस्साणुभाग-विहृत्तियजीवाण सभवो होदि, विरोहाभावादो ।

❀ अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहृत्तिया ।

§ ३३४. पुव्वसुत्तादो मिच्छत्तस्से त्ति अणुवट्टे । अणुक्कस्सअणुभागस्से त्ति णिद्दोसो उक्कस्साणुभागपडिसेहफलो । कम्हि वि काले मिच्छत्तस्स अणुक्कस्साणु-भागस्स सव्वे जीवा विहृत्तिया चेव होंति, उक्कस्साणुभागसत्तकम्मियाणं जीवाण सांतर-भावेण पउत्तिदसणादो ।

❀ सिया विहृत्तिया च अविहृत्तिओ च ।

शका—दोनो जगह विशेष्य तो एक ही है अत पुनरुक्त दोष क्यों नहीं आता ?

समाधान—उस प्रकारकी विवक्षाके होने पर पुनरुक्त दोष होओ, किन्तु यहाँ वह नहीं है, क्योंकि यहाँ विशेषण ही प्रधान हैं, अत. पुनरुक्त दोष नहीं है ऐमा श्रद्धान करना चाहिये ।

* कदाचित् नाना जीव अविभक्तिवाले हैं और एक जीव विभक्तिवाला है ।

§ ३३२ किसी भी समय मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले जीवोंके साथ एक उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला जीव संभव है, क्योंकि जब कदाचित् उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाले जीवोंका कतई अभाव पाया जाता है तो एक उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवके रहनेमें कोई विरोध नहीं है । अर्थात् उनके निर्मूल अभावमें भी कमसे कम एक जीव उत्कृष्ट अनुभागवाला रह सकता है ।

* कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले है और बहुत जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं ।

§ ३३३ किसी भी समय उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले जीवों के साथ उत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाले जीव होते हैं इसमें कोई विरोध नहीं है ।

* कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं ।

§ ३३४. पहलेके सूत्रसे मिथ्यात्व पद की अनुवृत्ति हाती है । उत्कृष्ट अनुभागका निषेध करनेके लिए अनुत्कृष्टअनुभागका निर्देश किया है । किसी भी समय सब जीव मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले ही होते हैं, क्यो कि उत्कृष्ट अनुभाग की सत्तावाले जीवों की प्रवृत्ति सान्तर रूपसे देखी जाती है ।

* कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाला है ।

१ ३३५ कुदो ? बहुपरि मिच्छताणुकस्ताणुभागविहतिपरि सह एकस्त मिच्छतुक्स्ताणुभागविहतिपमीवस्मुपलमादो ।

⊗ सिया विहतिपा य अबिहतिपा य ।

१ ३३६ मिच्छतस्त मणुकस्ताणुभागविहतिपरि सह बहुभाणुकस्ताणुभाग विहतिपायं संभववर्षमादो ।

⊗ एषं सेसाय कम्माय सम्मत्तसम्मानिमिच्छतवञ्जाणं ।

१ ३३७ महा पिच्छतस्त मंगणं पीमांसा कदा तदा सम्मत्त-सम्मानिमिच्छत-वञ्जाणं सेसकम्माणं पि कायञ्जा, विसंसाभानादा ।

⊗ सम्मत्तसम्मानिमिच्छताणुदुद्धरसअणुभागरस सिया सव्वे जीया विहतिपा ।

१ ३३८ सम्मत सम्मानिमिच्छताणुदुद्धस्ताणुभागसंतकम्मियाणं व अबिहतिपाणं पि सम्मकास्तंसंभयो अस्थि, सप्पीसंतकम्मियाणं जीनाणं सम्मकालमाणंतियमाणेण अबिहतिपाणमुपलमादो ति ? ण, अकम्मे भवहारो णत्ति ति पुणं परुनिदत्तादो । मिच्छता

१ ३३५ कयांकि मिध्यात्व की अनुकृत्य अनुभागविमक्तिवासे बहुत जीवा के साथ मिध्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागविमक्तिवाला एक जीव पाया जाता है ।

⊗ कदाचित् बहुत जीव अनुकृत्य अनुभागविमक्तिवाले और बहुत जीव अनुकृत्य अनुभागविमक्तिवाले हैं ।

१ ३३६ कयांकि मिध्यात्वकी अनुकृत्य अनुभागविमक्तिवाले के साथ बहुतसे उत्कृष्ट अनुभागविमक्तिवाले जीव पाये जाते हैं ।

⊗ इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर शप कर्मोंका भी जान लेना चाहिये ।

१ ३३७ जैसे मिध्यात्वके मंग की मीमांसा की है वैसे ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके द्वाड़कर शप कर्मों की कर लनी चाहिये कयांकि वसते इसमें कुछ बिराप नहीं है ।

⊗ सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व की अपेक्षा कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट अनुभागविमक्तिवाले होते हैं ।

१ ३३८ शंका—सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावास जीवा के समान उत्कृष्ट अनुभागकी अबिमक्तिवाले जीव भी महा संभव हैं कयांकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके सिवाय माहतीयकी शीघ्र लुपतीस प्रवृत्तिवादी सनावाले जीव महा अल्पसंख्यके अक्षरिपत पाये जाते हैं । अतः उत्कृष्ट अनुभागसे सहित जीवोंके समान क्रम रहित जीवोंका भी कहना चाहिये ।

समाधान—नहीं कयांकि पहले कह चाये हैं कि त्रिन जीवोंके माहतीयकी प्रवृत्तिवादी नहीं

१ वा त्ती अनुकृत्यविहतिपरि इति वाच्यः । २ वा त्ती अनुकृत्यविहतिपरि इति वाच्यः ।

पुक्कसाणुभागस्स विहत्तिया इव अविहत्तिया वि सच्चकालमरिय ति तत्थ एगो चैव भंगो किण्ण परूविदो ? अकम्मोहि ववहाराभावेण एगभंगाणुप्पत्तीए ।

❀ एवं तिण्णि भंगा ।

§ ३३६. सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च । सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । एवमेदे मूलिल्लभंगेण सह तिण्णि भंगा ।

❀ अणुक्कस्सअणुभागस्स सिया सच्चे अविहत्तिया ।

§ ३४०. खवण मोत्तूण अण्णत्थ सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताणमणुक्कसाणुभागस्स संभवाभावादो । ण च दंसणमोहणीयखववया सच्चकालमरिय, तेसमुक्कस्सेण छम्मासंतखवलभादो ।

❀ एवं तिण्णि भंगा ।

§ ३४१. सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च । सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च । एवं पुव्विल्लभंगेण सह तिण्णि भंगा । देसामासियं चुण्णिचुत्तमस्सियूण

है उनका यहा अधिकार नहीं है । अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी मत्तासे रहित जीवोंकी अपेक्षा भङ्ग नहीं घटलाया ।

शका—मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंकी तरह अनुत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले जीव भी सदा रहते हैं, अतः वहा एक ही भङ्ग क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मसे रहित जीवोंमें भङ्गका व्यवहार नहीं होता, अतः एक भङ्ग नहीं होता ।

* इस प्रकार तीन भङ्ग होते हैं ।

§ ३३९. कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं और एक जीव उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाला है । कदाचित् अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं और अनेक जीव उत्कृष्ट अनुभाग अविभक्तिवाले हैं । इस प्रकार ये दोनों पहले कहे हुए मूल भङ्गके साथ मिलकर तीन भङ्ग होते हैं ।

* कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले हैं ।

§ ३४०. क्योंकि क्षण अवस्थाको छोड़कर अन्यत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका अभाव है । शायद कहा जाय कि दर्शनमोहनीयका क्षण करनेवाले जीव सदा रहते हैं, अतः सभी जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिसे रहित नहीं हो सकते, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि दर्शनमोहके क्षणको का उत्कृष्टसे छमास अन्तरकाल पाया जाता है ।

* इस प्रकार तीन भङ्ग होते हैं ।

§ ३४१ कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला है । कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागअविभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले हैं । इस प्रकार पहले कहे गए एक भङ्गके साथ ये दो भङ्ग

जाणाजीवभंगविधयपरूपणं करिय सपदि उच्चारणमस्तिदूषणं जाणाजीवभंगविधयपरूपणं कस्तामा—

§ ३४२ जाणाजीवेहि भंगविचक्षा दुबिहो—महएणभा उक्कस्सभा चदि । उक्कस्सए पयदं । दुबिहो जिए सो—आपण भादेसेण । ओपण मिच्छत्तस्स उक्कस्साणु भागविहत्तिया भमियम्भा । अणुक्कस्सविहत्तिया गियमा भत्तिय । सिया एदे च उक्कस्साणु भागविहत्तिया च । सिया एदे च उक्कस्साणुभागविहत्तिया च । पुबभंग पक्खित्ते तिणिण भगा । एवमणुक्कस्सत्त वि । जपरि भिबरीयं वचम्भं । एवं सोत्तसक०-णपणोफ-सापाळ । सम्मघ सम्मामि० उक्कस्साणुभागस्स सिया सम्भे जीवा विहत्तिया । सिया विहत्तिया च अविहत्तियो च । सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । पुदेण सह तिप्पिया भंगा । अणुक्कस्सत्त सिया सम्भे जीवा अविहत्तिया । एवमेत्थ वि तिणिण भंगा वत्तम्भा । मणुसत्तियम्मि ओपभंगा ।

§ ३४३ भादेसेण गेरएणु एवं पेन । णहरि सम्मामिच्छत्तस्स अणुक्कस्सं पत्थि । एव पढमपुडवि-तिरिक्कल-पंविदिपतिरिक्कल-पंवि०तिरि०पल्ल०-देव-सोहम्मादि

मिळानेसे तीन मज्ज हाते हैं । वेरामयंके बुद्धिस्वरुके आश्रयसे नाना जीवो की अपेक्षा मज्जविचक्ष का कथन करके अब उच्चारणके आश्रयसे नाना जीवो की अपेक्षा भंगविधयका कथन करते हैं—

§ ३४२ नाना जीवा की अपेक्षा मज्जविचक्ष वा प्रकारका है—अपन्व और उक्कट । प्रकृतम उक्कटस प्रवाजन है । निर्देरा वा प्रकारका है—आप और भादेरा । आपसे मिष्यात्वके उक्कट अनुभागविभक्तिवाले जीव ममित्तम्भ हैं—कदाचित् हाते मी हैं और कदाचित् नही मी हाते । अणुक्कट अनुभागविभक्तिवाले जीव निबमसे हाते हैं । कदाचित् अनेक जीव अणुक्कट विभक्तिवाले और एक जीव उक्कट अनुभागविभक्तिवाला हाता है । कदाचित् अनेक जीव अणुक्कट अणु भागविभक्तिवाला और अनेक जीव उक्कट अनुभागविभक्तिवाला हाते हैं । इन वा मज्जा म अणुक्कट विभक्तिवाले निबमसे हाते हैं । इस भूब मज्जेके मिलानेसे तीन मज्ज हाते हैं । इसी प्रकार अणुक्कटके मी तीन मज्ज हाते हैं । इतना विरोध है कि इन मज्जा के उक्कट मज्जा से विरहीत रहना चाहिये । अर्थात् कदाचित् सब जीव अणुक्कट अनुभागविभक्तिवाले हाते हैं । कदाचित् एक जीव उक्कट अणु भागविभक्तिवाला और अनेक जीव अणुक्कट अनुभाग विभक्तिवाले हाते हैं । कदाचित् अनेक जीव उक्कट अनुभागविभक्तिवाले और अनेक जीव अणुक्कट अनुभागविभक्तिवाले हाते हैं । इसी प्रकार उल्लेखरुपाय और नव नारुपाया के मज्ज हाते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्वकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव उक्कट अनुभागविभक्तिवाले हाते हैं । कदाचित् अनेक जीव उक्कट अनुभागविभक्तिवाले और एक जीव उक्कट विभक्तिवाले रहित हाता है । कदाचित् अनेक जीव उक्कट अनुभागविभक्तिवाले और अनेक जीव उससे रहित हाते हैं । भूब मज्जेके साथ तीन मज्ज हाते हैं । अणुक्कटकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अणुक्कट अनुभागविभक्तिवाले रहित हाते हैं । इस प्रकार अणुक्कटके मी तीन मज्ज कहने चाहिये । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पयात और मनुष्यनिवासे आपके समान मज्ज हाते हैं ।

§ ३४३ आदरास भादेसिया मे इसी प्रकार मज्ज हाते हैं । इतना विरोध है कि अनेक सम्यग्मिष्यात्वके अणुक्कट अनुभाग नही हाता । इसी प्रकार परती पृथिवी, सामान्य विर्येण पन्थे

जाव सहस्सारो त्ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सम्पत्तस्स एक्को चेव भंगो, अणुक्कस्साणुभागाभावादो । एवं पंचिन्द्रियतिरिक्खजोणिणी-पंचित्तिरि०-अपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसि० । मणुसअपज्ज० छ्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु-भागस्स अट्ठ भंगा वतत्त्वा । सम्पत्त-सम्मामिच्छत्ताण उक्कस्साणुभागस्स दो भंगा । आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति छ्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु० णियमा अत्थि । सम्पत्तस्स ओघभगो । सम्मामि० उक्कस्साणु० णियमा अत्थि । भंगो एक्को चेव । एवं जाणिदूण पेडव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ३४४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकसा० जहण्णाजहण्णाणु० णियमा अत्थि । सम्पत्त०-सम्मामि०-अणताणु-चउक्क०-चदुसज०-णवणोक्क० जहण्णाणुभागस्स सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया । एत्थ तिण्णि भगा । अज० अणुभागस्स सिया सव्वे जीवा विहत्तिया । एत्थ वि तिण्णि भंगा वतत्त्वा ।

§ ३४५. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीस पयडीण जहण्णाजहण्णाणुभागस्स तिण्णि भगा । एव पढमपुडवि-पंचिन्द्रियतिरिक्ख-पंचित्तिरि०पज्ज० देवोपं च । विदियादिन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौवर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवों में जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवाँ पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका एक ही भङ्ग होता है, क्यों कि इन नरकों में उसका अनुकृष्ट अनुभाग नहीं होता । इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तको में छ्वीस प्रकृतियों के उक्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागके आठ भङ्ग कहने चाहिए । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उक्कृष्ट अनुभागके दो भङ्ग होते हैं । आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त छ्वीस प्रकृतियों का उक्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभाग नियमसे होता है सम्यक्त्वके भग ओघ की तरह होते हैं । सम्यग्मिध्यात्वका उक्कृष्ट अनुभाग नियमसे होता है । भग एक ही है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ३४४ अत्र जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिध्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवाले नियमसे होते हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुक्क, चारो सञ्जलन और नव नोकषायो के जघन्य अनुभाग के कदाचित् सब जीव अविभक्तिक अर्थात् जघन्य अनुभागसे रहित होते हैं । यहाँ तीन भग होते हैं—एक भग पूर्वोक्त और दो ये—कदाचित् अनेक जाव जघन्य अनुभागविभक्तिसे रहित और एक जीव उससे सहित होता है । कदाचित् अनेक जीव उससे रहित और अनेक जीव उससे सहित होते हैं । अजघन्यकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले हैं । यहाँ भी तीन भग कहने चाहिये ।

§ ३४५, आदेशे नारकेया मे सताईस प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागके तीन भग होते हैं । कदाचित् सब जाव जघन्य अनुभागसे रहित, कदाचित् अनेक जीव रहित और एक जाव सहित, कदाचित् अनेक जाव रहित और अनेक जीव सहित । अजघन्यके इससे

चाप सप्तमि ति मिच्छत-वारसक०-गणगोक० महण्णामहण्णाणु० गियमा अत्वि । सम्मत्त-सम्मामि० एको षव मंगो, अत्रहण्णाणुमागविहृतिएहि मात्तुण अण्णैसि तस्सा मावायो । तत्त्व महण्णाणुमागेण विणा कपममहण्णत्तमणुभागस्त । ण, षवएसिपग्मा षेय तत्त्व तस्त सिद्धिन्तो । अण्णताणु० षवक० ओपं । एणं ओदिसि० । तिरिक्त्वा एणं षेव । णवरि सम्मत्त० ओपं । जोणिणी० पंदिदियतिरिक्त्वामंगा । णवरि सम्मत्त० महण्णं गत्वि । पंदिदियतिरिक्त्वापत्त०-मणुसअपत्त० उक्त्तसमंगो । षवण०-वाण० पटमपुहमि०-मंगो । णवरि सम्मत्त० महण्णं अत्वि । सोहम्मादि चाप सम्बडसिद्धि ति मिच्छत-वारसक०-गणगोक० महण्णामहण्ण० गियमा अत्वि । सम्मत्त-अण्णताणु० षवक० ओपं । एणं चाभिदूण पेदम्भं आत्त अणाहारए ति ।

§ ३४६ भागाभागो दुविहो—महण्णमो उक्त्तसओ चेदि । उक्त्तसे पपदं । दुविहो भिरे सा—भाषेण आदेसेण य । ओषेण अन्वीसपयहीणसुक्त्ताणुमागविह

विपीत समानता । इसी प्रकार पक्षी पृथिवी पशुविय तिर्यक्, पशुविय तिर्यक् पर्याप्त और समान्य षेयो मे जानता चाहिये । दूसरीसे लेकर सत्तवीं पृथिवी पर्यन्त सिध्दात्त बाध कपाय और नव गोकपायो का अग्रम्य और अग्रम्य अनुभाग नियमसे होता है । सम्बन्ध और सम्बन्धित्वात्क एक ही मंग हाता है, क्या कि अग्रम्य अनुभागाप्रविमण्णसे उचित जीवो को छोड़कर अन्य मंगो का कहीं अभाव है ।

प्रश्न—कव अग्रम्य अनुभागका अभाव है या उसके बिना कहींके अनुभागात्त अग्रम्य पना कैसे सम्भव है ?

समाधान—येही शंका उचित नहीं है, क्योंकि व्यवहारिकज्ञातसे आवां अग्रम्य अनुभागके समाप्त अनुभागमें अग्रम्यका व्यवहार कर देनेसे कहीं अजगद्य अनुभाग पद अभाव है । अन्वयानुबन्धीचतुष्कके मंग ओषके समान होते हैं । इसी प्रकार व्याधिषिर्षोमं जानता चाहिये । तिर्यक्में मी इसीप्रकार मंग होते हैं । इतना विशेष है कि सम्बन्धके मंग ओषकी तरह जान लेना चाहिये । तिर्यक्पोषिर्षोमि पशुविय तिर्यक्के समान मंग होते हैं । इतना विशेष है कि इनमें सम्बन्धका अग्रम्य अनुभाग नहीं होता । पशुवियतिर्यक् अर्थात् और मनुष्य अर्थात्पशुमें उक्त्तके समान मंग होते हैं । मन्ववासी और अन्वयोंमें पक्षी पृथिवीके समान मंग होते हैं । इतना विशेष है कि इनमें सम्बन्धका अग्रम्य नहीं होता । सौषर्म स्वर्गसे लेकर सत्तवींसिद्धि पर्यन्त सिध्दात्त बाध कपाय और नव गोकपायोका अग्रम्य और अग्रम्य अनुभाग नियमसे होता है । सम्बन्ध और अन्वयानुबन्धीचतुष्कका मंग ओषके समान है । इस प्रकार जानकर आताहारी पर्यन्त से जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—यद्यपि अग्रम्य और अग्रम्य दोनों आपस हैं और इसलिये अग्रम्यका अभावसे अग्रम्यका व्यवहार नहीं हो सकता तथापि दूसरे आदि मरुतोंमें सम्बन्ध और सम्बन्धित्वात्त प्रकृतिका या अनुभवा पाया जाता है वह अग्रम्य पाये जानशते अग्रम्य अनुभागके समाप्त होता है, अतः उसे अग्रम्य कह देते हैं ।

§ ३४७ भागाभाग वा मकारका है—अग्रम्य और अहृत् । मङ्गलमें उक्त्तसे मवाजत है । निर्देय हो मकारका है—आप और आदेत । आपसे आशेष मङ्गलियोंकी उक्त्त अनुभागाविहृतिसे जोह सर जोहाके किन्ते भागप्रमात्त हैं ? अन्वयमें भागप्रमात्त हैं और अनुकृत्त

तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणत्तिमभागो । अणुक० अणता भागा । सम्मत-सम्मामि० उक्कसाणुभागविहत्तिया सव्वजीवाण केवडिओ भागो ? असखेज्जा भागा । अणुक० केव० ? असखे०भागो । एवं तिरिक्खाणं । णवरि सम्मामि० णत्थि भागाभाग ।

§ ३४७. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसप्पयडीणमुक्कसाणु० सव्वजीवा के० ? असखे०भागो । अणुक० असखेज्जा भागा । सम्मत० ओव । सम्मामि० णत्थि भागाभागं । एवं पढमपुढवि-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मदि जाव अवराइदो ति । विद्यादि जाव सत्तमि ति एव चैव । णवरि समत्त० भागाभागं णत्थि । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी--पंचिंदियतिरि०अपज्ज०--मणुस्सअपज्ज०--भवण०-वाण०-जोदिसिए ति । मणुस्साणं णेरइयभंगो । णवरि सम्मामि० ओत्रं । एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुस्सिणीसु । णवरि संखेज्जं कायव्वं । एवं सव्वट्टसिद्धि ति देवाणं । णवरि सम्मामिच्छत्तवज्जं । एवं जाणिदूण णेटव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ३४८. जहएणए पयद । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओवेण मिच्छत्त-सम्मत-सम्मामि०-अट्टकसाय० जहएणाणु० सव्वजी० के० ? असखे०भागो ।

अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असख्यात बहुभागप्रमाण हैं । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असख्यातवे भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोमे जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमे सम्यग्मिध्यात्वके अनुभागकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है ।

§ ३४६ आदेशसे नारकियोमे छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असख्यातवे भागप्रमाण हैं । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवाले असख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सम्यक्त्वका भागाभाग ओघकी तरह जानना चाहिए । सम्यग्मिध्यात्वका भागाभाग नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमे जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोमे इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमे सम्यक्त्वका भागाभाग नहीं है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमे जानना चाहिए । सामान्य मनुष्योंमे नारकियोंकी तरह भग है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वका भागाभाग ओघकी तरह है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोमे जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ असख्यातकी जगह सख्यात करना चाहिये । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमे जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वको छोड़ देना चाहिए । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—जहाँ सम्यक्त्व या सम्यग्मिध्यात्वका अनुभाग ही पाया जाता है वहाँ उनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं बतलाया है, जैसे नरकमे ।

§ ३४७ अब जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिध्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब

अम० अणुपणो सव्यजी० के० ? असंसेजा भागा । अणताणु० चरक०-चदुसंभ०
 नवणोक० नहण्याणु० अणतिममागा । अम० अणता भागा ।

१ ३४६ आदेशेण जेरइपसु सचाबीस पयदीण जहण्याणु० असंसे० मागो ।
 अम० असंसेजा भागा । सम्मामि० णत्थि भागाभाग । एवं पइमपुडवि-पंचिदिय
 तिरिक्ख-पंचि तिरि० पज्ज०--देव-साहम्मादि भाव अघराइदा ति । विदियादि भाव
 सवमि चि एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तर्मा । एवं जोपिणी-पंचिदिय
 तिरिक्ख०-अपज्जत्त-मणुस्सअपज्ज० भवण० वाण मोदिसिण्णि ।

१ ३४० तिरिक्ख मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक० जणणोक० महण्याणु० के० ?
 असंसे० मागो । अम० असंसेजा भागा । अणताणु० चरक० नहण्याणु० अणतिम-
 मागो । अम० अणता भागा । मणुस्स० अट्टाबीस० नहण्याणु० असंसे० मागो । अम०
 असंसेजा भागा । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी० । णवरि संसेज्जं कापय्यं । एवं सम्भइ
 सिद्धिदेवाणं । णवरि सम्मामिच्छत्तवज्जं । एवं भापिदूण णेद्वयं भाव अभाहारि ति ।

जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अजण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव
 सब जीवों के कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क चारों
 संख्यात कपाव और नव नाकपावोंके जण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें
 भागप्रमाण हैं और अजण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं ।

१ ३४९ आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके जण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव
 सब जीवोंके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं और अजण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात
 बहुभाग प्रमाण हैं । सम्यग्मिच्छत्तका भागामाग नहीं है । इसी प्रकार पृथ्वी पञ्चेन्द्रिय
 तिर्यक् पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् पर्याप्त सामान्य वेव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर अपर्यक्त बिमान
 तकके देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी इसी
 प्रकार जानना चाहिये । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका भागामाग सम्यग्मिच्छत्त की तरह
 है । इसी प्रकार तिर्यक्चानिणी पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्त मनुष्य अपर्याप्त मबनबासी अन्तर
 और स्योतिषी देवों जानना चाहिये ।

१ ३५ सामान्य तिर्यक्चोंमें मिच्छत्त सम्यक्त्व, वारह कपाव और नव नाकपावोंकी
 जण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अजण्य
 अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क की जण्य
 अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अजण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अनन्त
 बहुभाग प्रमाण हैं । मनुष्योंमें अट्टाईस प्रकृतियों की जण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव अंश
 क्वातवें भागप्रमाण हैं । अजण्य अनुभागविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं ।
 इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मणुसिणियोंमें जानना चाहिये । इतना विशेष है कि असंख्यातके
 स्थानमें संख्यात कर लेना चाहिये । इसी प्रकार सत्ताईसिद्धि देवोंमें जानना चाहिये । इतना
 विशेष है कि सम्यग्मिच्छत्तका जाइ देना चाहिये । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना
 चाहिये ।

१ अथ प्रती तिरिक्ख मणुस्स इति पदम् ।

§ ३५१. परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सयं चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण छ्वीस पयडीणमुक्कस्साणुभागविहत्तिया केत्तिया ? असंखेज्जा । अणुक्कस्साणुभागविहत्तिया दव्वपमाणेण केवडिया ? अणंता । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागविहत्तिया दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेज्जा । अणुकं संखेज्जा । एवं तिरिक्खोघं । णवरि सम्मामि० अणुक्कस्साणु० णत्थि ।

§ ३५२. आदेसेण णेरइएसु छ्वीसं पयडीणमुक्कस्साणुक्कस्साणु० के० ? असंखेज्जा । सम्मत० ओघं । एवं पढमपुढवि-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मादि जाव अवराइद त्ति । एवं विदियादि जाव सत्तमि त्ति । णवरि सम्मत० सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं जोणिणी-पंचिदियतिरिक्ख० [अपज्जत्त-] मणुसअपज्ज०-भवण-वाण०-जोदिसिए त्ति । मणुस्साणं णेरइयभंगो । णवरि सम्मामि० ओघं । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि सव्वपयडीणमुक्क० अणुक० संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ-सिद्धिदेवाणं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ३५३. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त०-अट्ठक० ज० अज० दव्वपमाणेण केव० ? अणंता । सम्मत०-सम्मामि० ज०

§ ३५१ परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छ्वीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यश्चोमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तिर्यश्चोमें सम्यग्मिथ्यात्वके अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले नहीं हैं ।

§ ३५२. आदेशसे नारकियोंमें छ्वीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभाग-विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वका ओघ की तरह भङ्ग जानना चाहिए । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर अपराजित-विमान तकके देवोंमें जानना चाहिए । इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्व की तरह है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चयोनिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें जानना चाहिए । सामान्य मनुष्योंमें नारकियोंके समान भग है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वमें ओघ की तरह भङ्ग है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें जानना चाहिए । इस प्रकार जानकर अनाहारी पयन्त लेजाना चाहिये ।

§ ३५३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव संख्यात

संसेक्षा । अज० असंसेक्षा । अर्णतापु० चतक० जहण्णापु० केधिया ? असंसेक्षा । अज० अ० अर्णता । चतु० संज०-णवणोक० जहण्णापु० संसेक्षा । अज० अर्णता ।

§ ३५४ आदेशेण वेरइएसु मिच्छत्त-सोससक०-णवणोक० जहण्णाजहण्णापु० असंसेक्षा । सम्मत० जहण्णापु० संसेक्षा । अज० असंसेक्षा । सम्मामि० अज० असंसेक्षा । एवं पइमपुइदि०-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पख०-देव-सोइम्मादि जाय अवराइदो पि । विदियादि जाय सत्तमि चि एवं चेव । णवरि सम्मत० सम्मा मिच्छत्तयंगो । एवं षोणिणी-पंचिदियतिरिक्खअपख०-मणुसअपख० मवण०-वाण० षोदिसिए चि ।

§ ३५५ तिरिक्ख० मिच्छत्त-चारसक०-णवणोक० जहण्णामहण्णापु० केधिया ? अर्णता । अर्णतापु० चतक० जहण्णापु० असंसेक्षा । अज० अर्णता । सम्मत० अ० संसेक्षा । अज० असंसेक्षा । सम्मामि० अज० असंसेक्षा ।

§ ३५६ मणुस्सेसु मिच्छत्त-अट्ठक० जहण्णामहण्णापु० असंसेक्षा । सम्मत-सम्मामि०-अर्णतापु० चतक०-चतुसंज०-णवणोक० जहण्णापु० संसेक्षा । अज०

हैं । अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जपण्य अनुमाग विमर्शिताले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । चार संख्यलन और नव नोकपायोकी जपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव संख्यात हैं । अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव अनन्त हैं ।

§ ३५७ आदेशेण नारकियोमिं मिच्छत्त, सोसह कपाय और नव नोकपायोकी जपण्य और अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी जपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव संख्यात हैं । अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं । सम्यग्मिध्यात्वकी अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार पक्षी प्रविष्टी पञ्चेन्द्रियतिर्बन्ध पञ्चेन्द्रियतिर्बन्ध पश्चात्, सामान्य देव और सौपर्य स्वर्गसे लेकर अपरमित विमान तकके देवोमें जानना चाहिए । इसी प्रविष्टीसे लेकर साठवीं प्रविष्टी तकके नारकियोमिं ऐसे ही जानना चाहिए । इतना विरोध है कि सम्यक्त्वका मङ्गल सम्यग्मिध्यात्वके समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्बन्ध शोनिनी पञ्चेन्द्रियतिर्बन्ध अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, सबन्तवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी इवोमिं जानना चाहिए ।

§ ३५८ सामान्य तिर्यञ्चोमिं मिच्छत्त, चारह कपाय और नव नोकपायोकी जपण्य और अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं । अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव अनन्त हैं । सम्यक्त्वकी जपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव संख्यात हैं । अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं । सम्यग्मिध्यात्वकी अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं ।

§ ३५९ सामान्य मणुजोमिं मिच्छत्त और आठ कपायोकी जपण्य और अजपण्य अनुमागविमर्शिताले जीव असंख्यात हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार संख्यलन और नव नोकपायोकी जपण्य अनुमागविमर्शिताले, जीव संख्यात हैं । अजपण्य

असं खेज्जा । मणुसपज्जत्त मणुसिणीसु अट्ठार्वस पयडीणं जहण्णाजहण्णं संखेज्जा । एवं सव्वट्ठसिद्धिमि । णवरि सम्मामिं जहण्णाणुभागो णत्थि । एवं जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ३५७, खेतं दुविहं—जहण्णमुक्करसयं चेदि । उक्करसे पयदं । दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीसं पयडीणमुक्करसाणुं विहत्तिया जीवा केवडि खेत्ते ? लोगरस असंखे० भागे । अणुक्क० वे० खेत्ते ? सव्वलोगे । सरमत्त-सम्मामिं उक्करसाणुक्करसविहत्तिया के० ? लोग० असंखे० भागे । एवं तिरिवखोघं । णवरि सम्मामिं अणुक्करसाणुं णत्थि । सेससव्वादेसपदेसु सव्वपयडीणमुक्करसाणुक्करसाणुभागविहत्तिया जीवा केवडि खेत्ते ? लोग० असंखे० भागे । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण पदविसेसो जाणियव्वो । एवं जाव जणाहारि ति ।

§ ३५८, जहण्णए पयदं । दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकं जहण्णाजहण्णाणुं के० खेत्ते ? सव्वलोए । सम्मत्त सम्मामिं जहण्णा-जहण्णाणुं के० खेत्ते ? लोग० असंखे० भागे । अणंताणुं चउक्कं-चदुसंजं-णवणोकं जहण्णाणुं के० खे० ? लोगस्स असंखे० भागे । अजं सव्वलोगे । एवं तिरिवखोघं ।

अनुभागविभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्यामिं अट्ठार्वस प्रवृत्तियोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ३५७ क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छ्वीस प्रवृत्तियों की उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है सर्व लोक क्षेत्र है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सम्यग्मिथ्यात्व की अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्ति नहीं है । आदेश की अपेक्षा शेष सब स्थानोंमें सब प्रवृत्तियों की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाले जीवों का कितना क्षेत्र है ? लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र है । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पदों में कुछ विशेषता है सो जान लेना चाहिये । इस प्रकार अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

§ ३५८ जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायों की जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सर्व लोक क्षेत्र है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य और अजघन्य अनुभाग विभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । अनन्तानुबन्धी चतुष्क, चार सज्वलन और नव नोकषायोंकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका कितना क्षेत्र है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवाले जीवोंका सर्व लोक-प्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि चार

गवरि बहुसंज्ञ० षड्भोजसायाणं मिच्छतर्भगो । सम्मामि० महर्षेण गत्यि । सैतमग्न
 गामु सम्बपयदीर्णं नहण्यनहण्यणु० खोग० असंसे० भागे । एवं जाणिदूण गेद्व्यं
 नाव अनाहारि वि ।

§ ३५६. पोसणं दुविहं—महण्यमुक्त्सं च । उक्त्से पयर्दं । दुविहो जिहे सो—
 मोषेण आदेसेण य । मोषेण इन्वीसं पयरीणमुक्त्साणुभागविहविपहि केवडियं स्वर्तं
 पोसिर्दं ? खोग० असंसे० भागो अद्दु बोहसमागा वा दसूणा सम्बखोगो वा । अणु
 क्त्सविहविपहि के० स्व० पोसिर्दं ? सम्बसागो । सम्मत-सम्मामि० उक्त्स० खोग०
 असंसे० भागो अद्दुबोह० दसूणा सम्बखोगो वा । अणुक० खोग० असंसे० भागो ।

§ ३६०. आदसण जेरइपसु इन्वीसंपयरीणं उक्त्स० अणुक० खोग० असंसे०
 भागो इबोहसमागा वा देसूणा । सम्मामि० उक्त्स० खोग० असंसेभागो इषारस०
 देसूणा । सम्मत० उक्त्स० खोग० असंसे० भागो इबोहस० देसूणा । अणुक० खोग०

सम्बखन और नव मोकपायोका मिष्यत्वकी तरह मंग है । वहाँ सम्मामिष्यात्वका अन्वय अनुभाग
 नहीं है । रोप मार्गशास्त्रोंमें सब प्रकृतियोंकी जबन्ध और अज्ञपन्ध अनुभागविमर्षिवासे मीर्षाका
 लोकाके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त क्षं ज्ञाना चाहिये ।

§ ३५९. स्पर्शन दो प्रकार का है—जपन्ध और उक्त्स । उक्त्सका प्रकार है । निर्बेध दो
 प्रकारका है—आव और आदेरा । मोषसे इन्वीस प्रकृतियाकी उक्त्स अनुभागविमर्षिवासे जीवोंने
 किये क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकाके असंख्यातवें भागप्रमाण चौदह भागोंमें से कुछ कम
 आठ भागप्रमाण और सर्वलाकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुक्त्स अनुभागविमर्षिवासे
 किये क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? सर्वलाकका स्पर्शन किया है । सम्बन्ध और सम्मामिष्यात्वकी
 उक्त्स अनुभागविमर्षिवासे लोकाके असंख्यातवें भाग चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग
 और सर्व लोकाप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुक्त्स अनुभागविमर्षिवासे लोकाके
 असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—मोषसे इन्वीस प्रकृतियोंके उक्त्स अनुभागसत्कर्मक स्वामी एकत्रियसे
 होकर पन्धेन्द्रिय तक हाते हैं, अतः मोषसे मारसन्धित और उपपादकी अपेक्षा सर्वलाक बिहार
 क्लेशस्वाम, वेदना कषाम और विक्रिवाकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह रज्जु और इतरकी
 अपेक्षा लोकाके असंख्यातवें भाग स्पर्शन है । अनुक्त्स अनुभागवासे जीव सर्वत्र पाये जाते हैं,
 अतः इनका स्पर्शन सर्वलोक है । सम्बन्ध और सम्मामिष्यात्व प्रकृतिके उक्त्स अनुभागवासे
 का स्पर्शन पूर्ववत् लोकाके असंख्यातवें भाग आठ बटे चौदह रज्जु और सर्वलोक है । तथा
 अनुक्त्स अनुभागवासे स्पर्शन लाकाके असंख्यातवें भाग है, क्योंकि इनका अनुक्त्स अनु-
 भागसत्कर्म दर्शनमोहके उपकके ही हाता है ।

§ ३६१. आदेरासे गारकिर्षिं इबोस प्रकृतियोंकी उक्त्स और अनुक्त्स अनुभागविमर्षि-
 वासा न लोकाके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन
 किया है । सम्मामिष्यात्वकी उक्त्स अनुभागविमर्षिवासा ने लोकाके असंख्यातवें भाग और
 चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्बन्धकी उक्त्स अनुभाग-
 विमर्षिवासा ने लोकाके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका

असखे०भागो । पढमपुढवि० खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमि ति छव्वीसंपयडीणं उक्क-
स्साणुक्कस्स० लोग० असंखे०भागो एक्कवे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छव्वोदसभागा वा देसुणा ।
सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० उक्कस्साणुभागस्स मिच्छत्तभंगो ।

§ ३६१. तिरिक्खेसु छव्वीसपयडीणमुक्कस्साणु० लोग० असंखे०भागो सब्ब-
लोगो वा । अणुक्क० सब्बलोगो । सम्मत्त० उक्क० मिच्छत्तभंगो । अणुक्क० लोग०
असखे०भागो । सम्मामि० उक्क० सम्मत्तभंगो । पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-
पंचि०तिरि०जोणिणीसु छव्वीसपयडीणमुक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सब्ब-
लोगो वा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तं तिरिक्खोघ । णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० अणु-
क्कस्सा० णत्थि । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०छव्वीसपयडीणमुक्कस्साणु० लोग० असंखे०-
भागो । अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सब्बलोगो वा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणु०
लोग० असंखे०भागो सब्बलोगो वा । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिय०पंचिदियतिरिक्ख-

स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका
स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान भग है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके
नारकियो में छव्वीस प्रकृतियों की उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके
असख्यातवें भागप्रमाण और चौदह भागो में से क्रमश कुञ्ज कम एक, दो, तीन, चार, पाच
और छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभाग
विभक्तिवालोक स्पर्शन मिध्यात्व की तरह है ।

§ ३६१ तिर्यञ्चोमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्या-
तवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने
सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोक स्पर्शन
मिध्यात्वकी तरह है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका
स्पर्शन किया है । सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोक स्पर्शन सम्यक्त्वकी तरह है ।
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयानिनियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी
उत्कृष्ट और अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोक-
प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोकी
तरह है । इतना विशेष है कि योनिनी तिर्यञ्चोमें सम्यक्त्वका अनुकृष्ट अनुभाग नहीं है ।
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोमें छव्वीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके
असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अनुकृष्ट अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके
असख्यातवें भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और
सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और सर्व
लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तको में जानना चाहिए ।
सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियो म पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त और
पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च यानिनिया के समान भग है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वका स्पर्शन

१. आ० प्रवो सब्बलोगो वा । सम्मामि० उक्क० सम्मत्तभंगो । पंचिदियतिरिक्ख पंचि० तिरि०
पज्ज० सम्मत्त इति पाठः ।

वियर्गो । णवरि सम्मापि० सम्मत्तर्गो ।

१ ६६२ देनेसु छम्भीसपयवीणं चकस्साणुक्कस्स० लोग० अस्तंसे०भागा आ णवबोहसमाग वा दग्गणा । सम्मत्त-सम्मापि० चकस्साणु० लोग० अस्तंसे०भागा आ पय आहस० देग्गणा । सम्मत्त० अणुक्क० लोग० अस्तंसे०भागो । एवं सम्पदेवार्ण णवरि सग-सगपोसर्णं पत्तम्भं । मवण०-माण०-मोदिसि० सम्मत्त० अणुक्क० णत्सि एवं माणिट्ठणं जेत्थं चाप अणाहारि चि ।

१ ३६३ अहएण प पयदं । दुमिहो जिहेसो—आपण आहसेण य । ओप मिच्छंत्त-अट्ठकसाय० अहएणाअहएणा० सम्मलोगो । सम्मत्त-सम्मापि० अह० सेत्तं अग० लोग० अस्तंसे०भागा अट्ठवाहसभागा वा दग्गणा सम्मसागो वा । संसपयवी

सम्पत्त्वकी तरह है ।

१ ३६२ देवोमिं छम्भीस प्रहृषिको वरुणु और अनुकट अनुभागविमक्तिशास्त्रोने साक अस्तंस्वातर्वे भाग प्रमाण और और मागोमसे कुट्ट कम आठ और नव भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन किया है । सम्पत्त्व और सम्पत्तिव्याप्त की वरुणु अनुभागविमक्तिशास्त्रोने साक अस्तंस्वातर्वे भाग प्रमाण और और मागोमसे कुट्ट कम आठ और भी भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्शन किया है । सम्पत्त्व की अनुकट अनुभागविमक्तिशास्त्रोने साकके अस्तंस्वातर्वे भा प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सब देवोमिं जानना चाहिये । इतना विरोध है कि सबमें एक एक अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । मवनवासी, अम्वत्त और अवातिवी देवो सम्पत्त्वका अनुकट अनुभाग नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पयत्त लेजाना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारिकेलोमिं छम्भीस प्रहृषिको होतो अनुभागवत्त जीवोने तथा सम्पत्त्व और सम्पत्तिव्याप्तके वरुणु अनुभागवत्त जीवोने अतीवकालमें मारण्यन्तिक और उपपाद पद द्वारा कुट्ट कम अट्ठ वट और वट्ट स्पर्शन किया है और अतीव तथा वर्तमान कालमें समव श पशुके द्वारा साकके अस्तंस्वातर्वे भागका स्पर्शन किया है । सम्पत्तिव्याप्तका अनुकट अनुभाग नरकमें नहीं होता । सम्पत्त्वका अनुकट अनुभाग कंठ मवम नरकमें होता है अतः अस्त स्पर्शन साकका अस्तंस्वातर्वे भाग है । दूसरेस लंकर सत्तर्वे नरक तक छम्भीस प्रहृषिको वरुणु अनुभागवत्त जीवोका स्पर्शन साकका अस्तंस्वातर्वे भाग पूर्ववत् है तथा अतीवकालमें मारण्यन्तिक और उपपाद पदके द्वारा मवम एक वट और वट्ट आदि ममा है । इसी प्रकार विर्यं च औ वसके अह प्रमेवोमिं अवापय साकका अस्तंस्वातर्वे भाग और सर्वज्ञाक स्पर्शन समम्भ चाहिये । देवोमिं छम्भीस प्रहृषिको वरुणु अनुभागवत्त तथा सम्पत्त्व और सम्पत्तिव्याप्त वरुणु अनुभागवत्तका स्पर्शन अतीवकालमें विहारकालस्थान अहम कणम और विक्रिया पशु द्वारा कुट्ट कम आठ वट और वट्ट अनु और मारण्यन्तिक पदक द्वारा नीच वा ऊपर साठ इस तरह कुट्ट कम नौ वट और वट्ट है और अतीव तथा वर्तमान कालमें शय समव पशुके द्वारा साकका अस्तंस्वातर्वे भाग स्पर्शन है ।

१ ३६३ जपम्भका प्रकरण है । जिहेरा वा प्रहारका है—आप और आरेरा । आपां मिध्यात्त और आठ कणयोकी जपम्भ और अजपम्भ अनुभागविमक्तिशास्त्रोने सबज्ञाक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्पत्त्व और सम्पत्तिव्याप्त की जपम्भ विमक्तिशास्त्रोका स्पर्श क्षेत्र की तरह है अतीव वा वनका क्षेत्र है वहा रहती है । इनके अजपम्भ अनुभागवत्त साकके अस्तंस्वातर्वे भाग और मागोमसे कुट्ट कम आठ भाग और सर्वे साक प्रमाण क्षेत्रक

जहएणाणु० खेत्तं । अज० सव्वलोगो । णवरि अणंताणु०चउक्क० जहएणाणु० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद० देसूणा । अज० सव्वलोगो ।

§ ३६४. आदेसेण णेरएसु छव्वीसंपयडीणं जहएणाणु० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो छचोदसभागा देसूणा । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सत्तिमि ति छव्वीसं पयडीणं जहएणाणु० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो एक-वे-तिणिण-चचारि-पंच-छचोदसभागा देसूणा । सम्मत्त-सम्मामि० अजह० उक्कस्सभंगो ।

§ ३६५. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त--वारसक०--णवणोक० जहएणा-जहएणाणु० सव्वलोगो । सम्मत्त० ज० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं सम्मामि० । णवरि जहएण णत्थि । अणताणु०चउक्क० ज० लोग० असंखे०-

स्पर्शन किया है । शेष प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रकी तरह है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लाकके असख्यातवें भाग और चौदह भाग मेसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभाग विभक्तिवालोंने सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—श्रोधसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन सर्वलोक है, क्यो कि हतसमुत्पत्तिक कर्मवाले एकेन्द्रिय जीवके उस पर्यायमें तथा जहाँ जहाँ वह जन्म लेता है उन उन पर्यायों में जघन्य अनुभागसत्कर्म होता है और उसको बढ़ा लेने पर अजघन्य अनुभागसत्कर्म होता है सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन उन्हींके उत्कृष्ट अनुभागवालो क स्पर्शनकी तरह है । शेष कथन स्पष्ट ही है ।

§ ३६४ आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियों की जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें क्षेत्र की तरह स्पर्शन है । दूसरीसे सातवाँ पृथिवी तकके नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियों की जघन्य अनु भागविभक्तिवालोंने स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके अस-ख्यातवें भाग और चौदह भागोंमेसे क्रमश कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पाँच और छः भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अजघन्य अनुभागविभक्ति-वालोंने स्पर्शन उत्कृष्ट की तरह है ।

§ ३६५ तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चामे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने स्पर्शन क्षेत्रकी तरह है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सम्यग्मि-थ्यात्वका स्पर्शन जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य अनुभाग-विभक्ति नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क की जघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालोंने सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका

भागो । अत्र० सम्बन्धो गो वा । पंचिदियतिरिपत्तियमि कम्भीसं पयडीपं महण्णाजह
 ण्णाजु० लो० असत्से० मागो सम्बन्धो गो वा । जवरि अर्णत्तापु० पत्तक० म० स्तेत् ।
 सम्पत्त०-सम्मापि० तिरिक्त्तोपं । जवरि जोगिणीसु सम्पत्त० महण्णं जत्थि । पंचि०
 तिरि० अपज्ज०-मजुसमपज्ज० कम्भीसं पयडीपं महण्णाजहण्णाजु० लो० असत्से०
 भागो सम्बन्धो गो वा । सम्पत्त सम्मापि० अज० एकस्समगो ।

§ ३६६ मजुसत्थियमि मिच्छत्त अट्ठक० महण्णाजहण्णाजु० लो० असत्से० मागो
 सम्बन्धो गो वा । सेत्ताणं पयडीपं ज० स्तेत् । अज० लो० असत्से० मागो सम्बन्धो गो वा ।

§ ३६७ देवेसु मिच्छत्त-सम्पत्त-वारसक०-जवणोक्क० मह० स्तेत् । अज०
 लो० असत्से० मागो अट्ठ-जवचोदसभागा देसुणा । अर्णत्तापु० पत्तक० ज० लो०
 असत्से० मागो अट्ठचोदसभागा देसुणा । अज० लो० असत्से० मागो अट्ठ-जवचोदस
 भागा वा देसुणा । एवं जवण-जप० । जवरि समपोसणं । सम्पत्त० महण्णं जत्थि ।
 जोदिसियदेवेसु कम्भीसं पयडीपं महण्णाजु० लो० असत्से० मागो अट्ठ-महचो०

स्पर्शन किया है । पञ्चेन्द्रियविषय पञ्चेन्द्रियविषय-अपवात्त और पञ्चेन्द्रियविषय-अपवात्तियों की शक्ति में
 कम्भीस प्रकृतियों की अपत्य और अजपत्य अनुभागविमत्तिवास्तोने लोकके अर्धस्वातर्षे भाग और सर्व
 लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्क की अपत्य अनुभागविमत्तिवास्तोका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सम्बन्ध और सम्बन्धि-
 ध्यात्वका स्पर्शन सामान्य विषय की तरह है । इतना विशेष है कि अनिनिषो में सम्बन्ध की
 अपत्य अनुभागविमत्ति नहीं है । पञ्चेन्द्रिय विषय-अपवात्त और मनुष्य अपवात्तका में कम्भीस
 प्रकृतियों की अपत्य और अजपत्य अनुभागविमत्तिवास्तो ने लोकके अर्धस्वातर्षे भाग और
 सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्बन्ध और सम्बन्धिध्यात्व की अजपत्य अनु-
 भागविमत्तिवास्तो का स्पर्शन एकट्ट अनुभागविमत्तिवास्तो की तरह है ।

§ ३६६ सामान्य मनुष्य मनुष्य पवात्त और मनुष्यनियो में मिध्यात्व और आठ कपावा
 की अपत्य और अजपत्य अनुभागविमत्तिवास्तो ने लोकके अर्धस्वातर्षे भाग और सर्वलोक
 प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । शेष प्रकृतियों की अपत्य अनुभागविमत्तिवास्तो का स्पर्शन
 क्षेत्र की तरह है । अजपत्य अनुभागविमत्तिवास्तो ने लोकके अर्धस्वातर्षे भाग और सर्व लोक
 प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

§ ३६७ शो में मिध्यात्व सम्बन्ध वारह कपाव और नव लोकपावों की अपत्य
 अनुभागविमत्तिवास्तो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजपत्य अनुभागविमत्तिवास्तो ने लोकके
 अर्धस्वातर्षे भाग और चौदह भाग मेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका
 स्पर्शन किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क की अपत्य अनुभागविमत्तिवास्तोने लोकके अर्धस्वातर्षे भाग
 और चौदह भाग मेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजपत्य अनुभाग-
 विमत्तिवास्तो ने लोकके अर्धस्वातर्षे भाग और चौदह भाग मेंसे कुछ कम आठ और कुछ
 कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार जन्तवासी और ध्यन्तवयम जानना
 चाहिए । इतना विशेष है कि जन्में अपना अपना स्पर्शन करना चाहिए । जन्में सम्बन्ध की
 अपत्य अनुभागविमत्ति नहीं है । स्वातर्षे देवों में कम्भीस प्रकृतियों की अपत्य अनुभाग

देसूणा । अज० लोग० असंखे०भागो अद्दुह--अद--णवचोदसभागा देसूणा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेवं चेव । णवरि जहण्णं णत्थि । सोहम्मीसाणदेवेसु छ्वीसंपयडीणं जहण्णाणु० लोग० असखे०भागो अदुचोदस० देसूणा । अज० लोग० असंखे०भागो अदु-णवचोदसभागा देसूणा । सम्मत्त० देवोघ । एवं सम्मामि० । सणक्कुमारादि जाव अच्चुदकप्पो ति एवं चेव । णवरि सगपोसणं । उवरि खेत्तभगो । एवं जाणिदूणं णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

विभक्तिवालो ने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागो मेसे कुछ कम साढे तीन तथा कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असंख्यातवें भाग तथा कुछ कम साढे तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्पर्शन इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि इनमें उनका जघन्य नहीं है । सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवो में छ्वीस प्रकृतियों की जघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागोमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह भागो मेसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वका स्पर्शन सामान्य देवो की तरह है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका जानना चाहिए । सानत्कुमार स्वर्गसे लेकर अच्युतकल्प पर्यन्त स्पर्शन इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए । अच्युत कल्पसे ऊपर क्षेत्रके समान स्पर्शन है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियो में अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन उत्कृष्ट अनुभागवालो के स्पर्शनकी तरह घटा लेना चाहिये । सामान्य तिर्यचो में छ्वीस प्रकृतियों के दोनो अनुभागवालो का स्पर्शन सर्वलोक ओघकी तरह जानना चाहिए । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागवालो ने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा सर्वलोक और शेषके द्वारा लोरुका असंख्यातवों भाग स्पष्ट किया है । पञ्चेन्द्रियतिर्यचत्रिकमें छ्वीस प्रकृतियों के दोनो अनुभागवालोंने वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवों भाग और अतीतकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है । मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व और आठ कषायो के दोनो अनुभागवालो ने तथा शेष प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवालो ने स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और विक्रिया पदके द्वारा लोकका असंख्यातवों भाग और मारणान्तिक तथा उपपाद पदके द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया है । देवो में छ्वीस प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवों भाग है और अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और विक्रियाकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा नौ बटे चौदह राजु है । ज्योतिष्क देवो मे छ्वीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवालो और अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवों भाग है और अतीतकालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और विक्रिया पदके द्वारा चौदह राजुमेसे कुछ कम साढे तीन अथवा कुछ कम आठ राजु है तथा अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन मारणान्तिक पद के द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजु है । इसी प्रकार सौधर्मादिकमे भी लगा लेना चाहिये ।

⊗ शायाजीवेहि काखो ।

§ ३६८ अहिपारसंभक्षणमुत्तमेदं । सुगमं ।

⊗ मिच्छतस्त उहस्ताणुभागकम्मसिया केवचिर काखावो होति ?

§ ३६९ एवं पि सुत्तं सुगमं, पुब्बासुत्तादो ।

⊗ जहपणेण अतोमुहुरां ।

§ ३७० कुदो ? सत्तदमीवेसुं संघुहस्ताणुभागेषु सम्बनहण्णेर्णतोमुहुत्तकालेण

भाविदाणुभागस्संघसु उहस्ताणुभागस्स सम्बनहण्णतोमुहुत्तमेत्तकासुपत्तामादो ।

⊗ उहस्सेय पलिवोबमस्स असलेअबिभागो ।

§ ३७१ कुदो ? एगमीवस्स उहस्ताणुभागसंत्तकम्मत्तमंतामुहुत्तमेत्तं उविय

पलिवो० असले०भागमेत्ताहि उहस्ताणुभागपवेससलागाहि गुणिहे पलिवो० असले०

यागमेत्तकासुवर्त्तमादो ।

⊗ एव सेसाय कम्माय सम्मत्त सम्माभिच्छुत्तवजाय ।

§ ३७२ महा मिच्छतुहस्ताणुभागस्स जाणाजीवे अरिसत्तण महण्णुहस्सकाल

पकम्मा कदा तथा सेसकम्मार्णं पि कायम्मा, निससाभाषादो । सम्मत्त-सम्माभिच्छुत्त

⊗ नाना जीवों की अपेक्षा कालका अपिकार है ।

§ ३६८ अपिकार की सम्बन्ध करना इस सूत्रका कार्य है । इसका अर्थ सुगम है ।

⊗ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवासे जीवोंका कितना काल है ।

§ ३६९ यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि यह पुब्बासूत्र है ।

⊗ जपन्य काल अन्तर्गृह्यते है ।

§ ३७० क्या कि सात आठ जीवों के उत्कृष्ट अनुभागका बंध करके और सबसे जपन्य अन्तर्गृह्यते कालके द्वारा अनुभागकाण्डका का पात कर देने पर उत्कृष्ट अनुभागका सबसे जपन्य अन्तर्गृह्यते काल पाया जाता है ।

⊗ उत्कृष्ट काल पन्थके अस्तक्यात्वे भागममात्र है ।

§ ३७१ क्योंकि एक जीवके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका काल अन्तर्गृह्यते मात्र है और उत्कृष्ट अनुभागमें प्रवेश करनेकी शक्ताकार्ये पन्थके अस्तक्यात्वे भागममात्र है अर्थात् अगत्वार इतनी बार जीव उत्कृष्ट अनुभागमें प्रवेश कर सकते हैं, अतः अन्तर्गृह्यते मात्र कालका पन्थके अस्तक्यात्वे भागमें गुणा करने पर माना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका उत्कृष्ट काल पन्थके अस्तक्यात्वे भाग मात्र पाया जाता है ।

⊗ सम्यक्त्वं और सम्यग्मिथ्यात्व का छोड़कर इसी प्रकार शेष कर्मों के अनुभागसत्कर्मका काल करना चाहिये ।

§ ३७२ जैसे माना जीवों की अपेक्षा मिथ्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागके जपन्य और उत्कृष्ट कालका क्याम किया है वैसे ही शेष कर्मोंका भी कवन कर सेवा चाहिये, क्योंकि शान्त में वार्त्त अन्तर नहीं है ।

देमूणा । अज० लोग० असखे० भागो अद्दुट्ट--अट्ट--णवचोइसभागा देमूणा । सम्मत्त-
सम्मामिच्छत्ताणमेवं चेव । णवरि जहण्णं णत्थि । सोहम्मीसाणदेवेसु छ्वीमंपयडीणं
जहण्णाणु० लोग० असखे० भागो अट्टचोइस० देमूणा । अज० लोग० असखे० भागो
अट्ट-णवचोइसभागा देमूणा । सम्मत्त० देवोध । एव सम्मामि० । सणवकुमाराटि जाव
अच्छुदकप्पो ति एवं चेव । णवरि सगपोसण । उवरि खेत्तभगो । एवं जाणिदूणं णेदब्बं
जाव अणाहारि ति ।

विभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग और चौदह भागों में से कुछ कम साठे तीन तथा कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग तथा कुछ कम साठे तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्पर्शन इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि इनमें उनका जघन्य नहीं है । सौधर्म और ईशान स्वर्गके देवों में छ्वीम प्रकृतियों की जघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग और चौदह भागों में से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य अनुभागविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग और चौदह भागों में से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वका स्पर्शन सामान्य देवों की तरह है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका जानना चाहिए । सानत्कुमार स्वर्गसे लेकर अन्युतकल्प पर्यन्त स्पर्शन इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि अपना अपना स्पर्शन जानना चाहिए । अन्युत कल्पसे ऊपर क्षेत्रके समान स्पर्शन है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियों में अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन उत्कृष्ट अनुभागवालो के स्पर्शनकी तरह घटा लेना चाहिये । सामाय तिर्यचो में छ्वीस प्रकृतियों के दोनों अनुभागवालो का स्पर्शन सर्वलोक ओघकी तरह जानना चाहिए । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागवालो ने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा सर्वलोक और शेषके द्वारा लोकका असख्यातवों भाग स्पष्ट किया है । पञ्चेन्द्रियतिर्यचत्रिकमें छ्वीस प्रकृतियों के दोनों अनुभागवालोंने वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असख्यातवों भाग और अतीतकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है । मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व और आठ कपायों के दोनों अनुभागवालो ने तथा शेष प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागवालो ने स्वस्थान स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रिया पदके द्वारा लोकका असख्यातवों भाग और मारणान्तिक तथा उपपाद पदके द्वारा सर्वलोक स्पर्श किया है । देवों में छ्वीस प्रकृतियों के अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असख्यातवों भाग है और अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रियाकी अपेक्षा कुछ कम आठ वटे चौदह राजु और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा नौ वटे चौदह राजु है । ज्योतिष्क देवों में छ्वीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभागवालो और अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकका असख्यातवों भाग है और अतीतकालकी अपेक्षा विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कपाय और विक्रिया पदके द्वारा चौदह राजुमेंसे कुछ कम साठे तीन अथवा कुछ कम आठ राजु है तथा अजघन्य अनुभागवालो का स्पर्शन मारणान्तिक पद के द्वारा कुछ कम नौ वटे चौदह राजु है । इसी प्रकार सौवर्मादिकमें भी लगा लेना चाहिये ।

१ ३७६ आदेशेण गेरुपसु द्व्यधीसंपयडीणसुक्कस्ताणुभागो केव० ? ज० एगस०, उक्क० पस्सियो० असत्से० भागो । अणुक्क० सम्बद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सम्बद्धा । सम्मत० अणुक्क० म० एगसमभो, उक्क० अंतोसु० । एवं पढमपुढवि० तिरिकत्ततिय-सोहम्मादि जाव सहसारे ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं वेव । गवरि सम्मत० अणुक्क० गत्ति । एवं भोगिणी-पंचिदियतिरिक्कअपज्ज०-भयण०-बाम०-भोदिसिए ति ।

१ ३७७ मणुस्ससु सम्मपयडीणसुक्क० अणुक्क० ओपं । गवरि उक्क० महण्णेज एगसमभो द्व्यधीसंपयडीणं । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु द्व्यधीसंपयडीणसुक्क० म० एगस०, उक्क० अंतोसु० । अणुक्क० सम्बद्धा । सम्मत-सम्मामि० उक्क० सम्बद्धा । अणुक्क० महण्णुक्क० अंतोसु० । गवरि मणुसपज्जत्तपसु सम्मत० अणुक्क० ज० एगस० । मणुसिणीसु सम्मतमणुभागस्त एगसमभो गत्ति । मणुसअपज्ज० द्व्यधीसं पयडीणं उक्क० ज० एगस० । अणुक्क० म० अंतो०, उक्क० दोणं पि पस्सियो० असत्से० भागो । भाजशदि जाव सम्बहसिदि ति द्व्यधीसं पयडीणं उक्कस्ताणुक्कस्ताणुभाग० सम्बद्धा । सम्मत सम्मामि० देशोपं । एवं भाजिण्ण गेरुक्कं जाव अजाहारि ति ।

१ ३७८ आदेशसे नारकियो में द्व्यधीस प्रकृतियों के उक्त अनुभागका कितना काल है ? अथवा काल एक समय है और उक्त काल परमके अंतकालमें मागप्रमाण है । अनुक्त अनुभागका काल सर्वथा है । सम्बन्ध और सम्मिध्यात्त्वके उक्त अनुभागका काल सर्वथा है । सम्बन्धके अनुकूल अनुभागका अथवा एक समय है और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पृथ्वी, सामान्य विषय पञ्चोत्थिर्व विषय, पञ्चोत्थिर्व विषय पर्याप्त, सामान्य देव और सौवर्ग स्वर्गसे लेकर सहसारे कर तकके देवों में जानना चाहिये । इसीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियों में इसी प्रकार जानना चाहिये । इतना विरोध है कि सम्बन्धका अनुकूल अनुभाग नहीं महीं होता । इसी प्रकार पञ्चोत्थिर्व विषयपौमिणी, पञ्चोत्थिर्व विषय अपर्वात्, मदनवासा इन्तर और कौत्थिर्व देवों में जानना चाहिये ।

१ ३७९ सामान्य मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंके उक्त और अनुक्त अनुभागका काल आप ही तरह है । इतना विरोध है कि द्व्यधीस प्रकृतियोंके उक्त अनुभागका अथवा काल एक समय है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्मोमें द्व्यधीस प्रकृतियों के उक्त अनुभागका अथवा काल एक समय है और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुक्त अनुभागका काल सर्वथा है । सम्बन्ध और सम्मिध्यात्त्वके उक्त अनुभागका काल सर्वथा है । अनुक्त अनुभागका अथवा और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है । इतना विरोध है कि मनुष्यपर्याप्तमें सम्बन्धके अनुकूल अनुभागका अथवा काल एक समय है । मनुष्यनिर्मोमें सम्बन्धके अनुभागका एक समय काल नहीं है । मनुष्य अपर्वात्कमें द्व्यधीस प्रकृतियोंके उक्त अनुभागका अथवा काल एक समय है । अनुक्त अनुभागका अथवा काल अन्तर्मुहूर्त है और दोतोंका उक्त काल परम के अंतकालमें मागप्रमाण है । आन्त स्वर्गसे लेकर सर्वांतसिद्धि तकके देवोंमें द्व्यधीस प्रकृतियोंके उक्त और अनुक्त अनुभागका काल सर्वथा है । सम्बन्ध और सम्मिध्यात्त्वका काल सामान्य देवोंकी तरह है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्याप्त से जाना चाहिये ।

वज्जाणं इति ण परूवेदच्चं, उवरिममुत्तादो चैव तव्वज्जणावगमादो ? ण, उतावलसिस्स-
मइनाउलविणासणद्धं तप्परूवणादो ।

❀ सम्मत्त—सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिया केवचिरं
कालादो होति ?

§ ३७३. सुगमं० ।

❀ सव्वद्धा ।

§ ३७४. कुदो ? एगजीवस्मि उक्कस्साणुभागम्मि अवट्टाणकालं पेक्खिदूणं तं
पडिवज्जमाणजीवाणमंतरकालस्स असंखे०गुणहीणत्तदंसणादो । संपहि चुण्णिमुत्तमस्सि-
दूण उक्कस्साणुभागकालपरूवणं करिय उच्चारणमस्सिदूण कस्सामो ।

§ ३७५. कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयद । दुविहो
णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसंपयहीणं उक्कस्साणुभागस्स कालो
केवचिरं ? जह० अंतोमु०, उक्क० पट्टिदो० असंखे०भागो । अणुक्क० सव्वद्धा । सम्मत्त-
सम्मामि० उक्क० सव्वद्धा । अणुक्क० ज० उक्क० अंतोमु० ।

शंका—सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि
आगेके सूत्रमें जो उन दोनोंके कालका अलगसे प्ररूपण किया है उससे ही ज्ञात हो जाता
है कि यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व को छोड़ दिया है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि उतावले शिष्यों की बुद्धिकी व्याकुलताको नष्ट करनेके लिये यह
कथन किया है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका
कितना काल है ?

§ ३७३ यह सूत्र सुगम है ।

* सर्वदा है ।

§ ३७४. क्योंकि एक जीवमें उत्कृष्ट अनुभागके अवस्थान कालको अपेक्षा उसको प्राप्त
करनेवाले जीवों का अन्तरकाल असंख्यातगुणा हीन देखा जाता है । अर्थात् एक जीवके उत्कृष्ट
अनुभागमें रहनेका जितना काल है उसकी अपेक्षा उसके उत्कृष्ट अनुभागमें न रहनेका काल
असंख्यातगुणा हीन है, अतः जब अवस्थान कालसे अन्तर काल बहुत कम है तो नाना जीवोंकी
अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभाग सर्वदा बना रह सकता है । अब चूर्णिसूत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट अनुभाग
कालका कथन करके उच्चारणकी अपेक्षा उसका कथन करते हैं ।

§ ३७५ काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टके कथनका अवसर है । निर्देश
दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका कितना
काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।
अनुत्कृष्ट अनुभागका काल सर्वदा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका
काल सर्वदा है । अनुत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१ ३७६ आदत्तेण णेरइएसु ङ्खीसंपयडीणमुक्कस्ताणुभागो केव० ? ज० एगस०, उक्क० पस्सिओ० असत्ते० भागो । अणुक्क० सम्बद्धा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सम्बद्धा । सम्मत० अणुक्क० ज० एगसममो, उक्क० अंतोसु० । एवं पडमपुडवि० विरिक्खतिप-सोहम्मादि आष सहसारे ति । विदिपादि आष सत्तमि ति एवं केप । णवरि सम्मत० अणुक्क० गत्थि । एवं भोणिणी-पंथिदिपविरिक्खअपक्क०-मपण०-बाण०-ओदिसिय ति ।

१ ३७७ मणुस्सेसु सम्मपयडीणमुक्क० अणुक्क० ओपे । णवरि उक्क० जहण्येण एगसममो ङ्खीसंपयडीण । मणुसपक्कत्त-मणुसिणीसु ङ्खीसंपयडीणमुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । अणुक्क० सम्बद्धा । सम्मत-सम्मामि० उक्क० सम्बद्धा । अणुक्क० जहण्युक्क० अंतोसु० । णवरि मणुसपक्कत्तएसु सम्मत० अणुक्क० ज० एगस० । मणुसिणीसु सम्मतअणुभागस्स एगसममो गत्थि । मणुसअपक्क० ङ्खीसंपयडीण उक्क० ज० एगस० । अणुक्क० ज० अंतो०, उक्क० दोणं पि पस्सिओ० असत्ते० भागो । माणशदि आष सम्बद्धसिद्धि ति ङ्खीसंपयडीण उक्कस्ताणुक्कस्ताणुभाग० सम्बद्धा । सम्मत-सम्मामि० देवोपे । एवं जाभिइण जेइणं आष अणाहारि ति ।

१ ३७६ आवेरासे नायिका में ङ्खीस प्रकृतियों के उक्कत्त अनुभागका कितना काल है ? जपन्य काल एक समय है और उक्कत्त काल पत्न्यके असंख्यात्वे भागप्रमाणा है । अणुक्कत्त अनुभागका काल सर्वथा है । सम्यक्त्व और सम्बन्धिभावके उक्कत्त अनुभागका काल सर्वथा है । सम्यक्त्वके अनुकूल अनुभागका जपन्य एक समय है और उक्कत्त काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पृथ्वी पृथिवी सामान्य तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पचास, सामान्य देव और सौपर्ण स्वर्गसे लेकर सहस्रार कर तकके देवों में जानना चाहिये । इसीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नायिकों में इसी प्रकार जानना चाहिये । इतना विरोध है कि सम्यक्त्वका अनुकूल अनुभाग नहीं नहीं होता । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोमिती पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्षात मदनबासा, इन्धर और वीथिवी देवों में जानना चाहिये ।

१ ३७७ सामान्य मनुष्यों में सब प्रकृतियोंके उक्कत्त और अनुकूल अनुभागका काल ओप की तरह है । इतना विरोध है कि ङ्खीस प्रकृतियोंके उक्कत्त अनुभागका जपन्य काल एक समय है । मनुष्यपर्षात और मनुष्यनिर्घोमें ङ्खीस प्रकृतियोंके उक्कत्त अनुभागका जपन्य काल एक समय है और उक्कत्त काल अन्तर्मुहूर्त है । अणुक्कत्त अनुभागका काल सर्वथा है । सम्यक्त्व और सम्बन्धिभावके उक्कत्त अनुभागका काल सर्वथा है । अणुक्कत्त अनुभागका जपन्य और उक्कत्त काल अन्तर्मुहूर्त है । इतना विरोध है कि मनुष्यपर्षातमें सम्यक्त्वके अनुकूल अनुभागका जपन्य काल एक समय है । मनुष्यनिर्घोमें सम्यक्त्वके अनुभागका एक समय काल नहीं है । मनुष्य अपर्षातमें ङ्खीस प्रकृतियोंके उक्कत्त अनुभागका जपन्य काल एक समय है । अनुकूल अनुभागका जपन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और योगोंका उक्कत्त काल पत्न्य के असंख्यात्वे भाग-प्रमाणा है । आमत स्वर्गसे लेकर सर्वांसिद्धि तकके देवोंमें ङ्खीस प्रकृतियोंके उक्कत्त और अनुकूल अनुभागका काल सर्वथा है । सम्यक्त्व और सम्बन्धिभावका काल सामान्य देवोंकी तरह है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त से जाना चाहिये ।

❀ मिच्छन्त-अट्टकसायाणं जहणणाणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होति ।

§ ३७८. सुगमं ।

❀ सव्वद्धा ।

§ ३७९. कुदो ? एदेसिं वुत्तम्मण जहणणाणुभागस्स तिसु वि कालेसु विरहाभावादो ।

❀ सम्मत्त-अणंताणुबंधिचत्तारि-चटुसंजलण-तिवेदाणं जहणणाणुभाग-कम्मंसिया केवचिरं कालादो होति ।

§ ३८०. सुगम ।

❀ जहणणेण एगसमओ ।

§ ३८१. कुदो ? सम्मत्त-चटुसंजलण-तिवेदाणं णिल्लेविज्जमाणचरिमसमए उप्पणजहणणाणुभागस्स एगसमयावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो । संजुत्तपढमसमए सम्मु-प्पणजहणणाणुबंधिचउक्क० जहणणाणुभागस्स वि एगसमयावट्ठाणं पडि विरोहाभावादो ।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियों में सम्यक्त्व प्रकृतिके अनुकृष्ट अनुभागवालो का काल जघन्यसे एक समय है, क्यों कि जो कृतकृत्यवेदक मरण करके नरकमें जन्म लेते हैं उनके सम्यक्त्वका अनुकृष्ट अनुभाग होता है। एक साथ कई एक कृतकृत्यवेदक मरकर नरकमें उच्यन्न हुए, दूसरे समयमें सम्यक्त्व प्रकृति नष्ट करके वे क्षायिकसम्यक्त्री हो गये, अतः एक समय जघन्य काल हुआ। और उ कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सामान्य मनुष्यों में सब प्रकृतिया के उकृष्ट अनुभागवालो का काल जघन्यसे एक समय कहा है सो छव्वीस प्रकृतियों के उकृष्ट अनुभागका दूसरे समयमें घात करनेकी अपेक्षा और सम्यक्त्व व सम्यग्मिध्यात्नका उद्वेलनाकी अपेक्षा जानना चाहिए। शेष कथन स्पष्ट ही है।

* मिध्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ?

§ ३७८ यह सूत्रसुगम है।

* सर्वदा है।

§ ३७९ क्योंकि इन उक्त कर्मोंके जघन्य अनुभागका तीनों ही कालों से विरह नहीं होता है।

❀ सम्यक्त्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चारों सज्वलन कषाय और तीनों वेदोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ?

§ ३८०. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य काल एक समय है।

§ ३८१ क्या कि सम्यक्त्व, चार सज्वलन और तीन वेदोंका जघन्य अनुभाग क्षणके अन्तिम समयमें हाता है अत उसके एक समय तक रडनेसे कोई विरोध नहीं है। तथा विसयो-जनके पश्चात् अन्य कषायोंके प्रदेशों को पुनः अनन्तानुबन्धी रूप परिणामानेके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अनुभाग उत्पन्न होता है, अत उसके भी एक समय तक

⊗ उद्धस्तेषु सस्तेजा समया ।

§ ३२२ कुदो ? संस्तेजेसु जीवसु क्रमेण पुत्रकर्मण महण्णाशुभाग कुण्माणेसु संस्तेजाणं क्व समयार्ण महण्णाशुभागसर्वधीणसुबलभादो । असंस्तेजा जीवा क्रमेण महण्णाशुभागं किण्ण पडिबज्जति ? ण, मणुसपज्जवाणमसंस्तेजाणमभादो । ण स मणुसपज्जवे मोत्तूण अण्णत्थ कम्मार्ण लवणा अत्थि, विरोहादो ।

⊗ षडरि अण्णताणुवधीणसुद्धस्तेषु आवल्लियाए असस्तेजादिभागो ।

§ ३२३ कुदो ? अण्णताणुवधीणसुद्धस्तेषु विसंभोइदसम्माइहीहिंत्तो क्रमेण संशु ज्जमाणेणसुबलमण्णसुस वद्धस्सत्त आवल्लियाए असंस्ते०भागपमाणपुपलभादो । संस्तेजावलिपमेसो किण्ण होदि ? ण, एणं विइसुवाशुपलभादो ।

⊗ सम्मामिच्छत्त-द्वयस्योक्तसायाण जहण्णपाणुभागकम्मसिया केवधिरं काळापो णोति ?

§ ३२४ सुगमं ।

⊗ जहण्णसुद्धस्तेषु अतोमुद्धतं ।

उद्धरनेमें कोई विरोध नहीं है ।

⊗ उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ?

§ ३२० क्योंकि उत्कृष्ट कर्मों का जपन्य अनुभाग लगातार संख्यात जीव ही करते हैं, अतः जपन्य अनुभाग सम्बन्धी काल संख्यात समय ही पाया जाता है ।

संज्ञा—असंख्यात जीव जपन्य अनुभागको कर्मों मर्गों प्राप्त करते हैं ।

समाधान—नहीं, क्योंकि मनुष्य पर्याप्त असंख्यात नहीं है । और मनुष्य पर्याप्तको जानकर अन्धके कर्मों का स्रपण नहीं होता है, क्या कि अन्यत्र उसके हानेमें विरोध है ।

⊗ किन्तु अनन्तानुबन्धियोंके जपन्य अनुभागसत्कर्मपाल जीवोंका उत्कृष्ट काल जापसीके असंख्यातें भागपमाण है ।

§ ३२३ क्योंकि अनन्तानुबन्धीवस्तुष्का विसंभोजन करनेवाला सम्बन्धियोंमेंसे कर्मसे अन्य कर्मायोंके परमाणुओंका पुनः अनन्तानुबन्धी रूप परिणामनशासकों कर्ममयका उत्कृष्ट काल जापसीके असंख्यातवें मान प्रमाथ पाया जाता है । अर्थात् यदि विसंभोजक सम्बन्धित लगातार एक एक करके अनन्तानुबन्धीका पुनः संभोजन करें वा जापसीके असंख्यातवें भाग काल तक ही ऐसा कर सकते हैं, अतः उसके जपन्य अनुभागका उत्कृष्ट काल लाना ही है ।

संज्ञा—संख्यात जापसी प्रमाथ काल कर्मों नहीं है ?

समाधान—नहीं क्योंकि इस प्रकारका सूत्र नहीं पाया जाता है जो इतना काल बतलाता हो ।

⊗ सम्पत्तिप्यात्व और ज्ञः मोक्षायोंके जपन्य अनुभागसत्कर्मपाल जीवोंका] कितना काल है ?

§ ३२४ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जपन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३८५. कुदो अप्पणो खवणाए चरिमाणुभागखंडयम्मि जादजहण्णाणु-
भागस्स अंतोमुहुतं मोत्तूण अहियकालाणुवलंभादो । तं पि कुदो ? उक्कीरणद्दाए उक्क-
स्साए वि अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो । उक्कस्सकालो असंखेज्जावलियमेत्तो किण्ण होदि ?
ण, संखेज्जुक्कीरणद्दाणं समूहम्मि असंखेज्जावलियाणं संभवविरोहादो । त पि कुदो
णव्वदे ? अंतोमुहुत्तमिदि सुत्तणिदेसादो । एव चुरिएणसुत्तमस्सिदूण जहएणाणुभाग-
कालपरुवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण कस्सामो ।

§ ३८६. जहएणाए पयद । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण
मिच्छन्न-अट्ठक० जहएणाजहएणाणु० सव्वद्धा । सम्मत्त० जहएणाणु० ज० एगस०,
उक्क० सखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । सम्मामि० जहएणाणु० जहएणुक्क०
अंतोमु० । अज० सव्वद्धा । अणंताणु०चउक्क० जह० ज० एगस०, उक्क० आवलि०
असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा । छण्णोक्क० जहएणाणु० जहएणुक्क० अंतोमु० ।
अज० सव्वद्धा । चदुसज०-तिण्णवेद० जहएणाणु० ज० एगस०, उक्क०
सखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा ।

§ ३८५ क्योकि अपनी अपनी क्षणवस्थाके अन्तिम अनुभागकाण्डकमें इन प्रकृतियों-
का जघन्य अनुभाग होता है, अब उसका काल अन्तमुहूर्तसे अधिक नहीं पाया जाता है ।

शंका—उसका काल अन्तमुहूर्तसे अधिक क्यों नहीं पाया जाता है ।

समाधान—क्योंकि उत्कीरणका उत्कृष्ट काल भी अन्तमुहूर्त प्रमाण ही है ।

शंका—उत्कृष्ट काल असख्यात आवली प्रमाण क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सख्यात उत्कीर्णकालोंके समूहमें असख्यात आवलियाँ नहीं हो
सकती हैं ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—क्योंकि सूत्रमें अन्तमुहूर्त कालका निर्देश किया है ।

इस प्रकार चुरिणसूत्रके आश्रयसे जघन्य अनुभागके कालका कथन करके अब उच्चारणके
आश्रयसे कथन करते हैं ।

§ ३८६. जघन्यके कथनका अवसर है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश ।
ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है ।
सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय
है । अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है । सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागका जघन्य और
उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है । अन्तानुबन्धीचतुष्कके
जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भाग
प्रमाण है । अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है । छह नोकषायोंके जघन्य अनुभागका जघन्य
और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है । चार सञ्जलन और
तीन वेदोंके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय
है । अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है ।

§ ३८७ आदेशेण गेरुपसु मिच्छत-मारसक०णवगोक० अहस्याणु० ज० एगस०, चक० पस्विदो० असंखे०भागो । अज० सम्बद्धा । सम्मत्-अर्णताणु० चरक० ओर्ष । सम्मामि ओर्ष । जवरि अहष्णाणु० गत्यि । एवं पद्मपुडवि० पंचिदियतिरिक्त्स्व-पंचि०तिरि०पञ्ज०-देशाद्यं चि । विदियादि भाव सचमि चि बाषीस पयडीण जहष्णाजहष्णाणु० सम्बद्धा । अर्णताणु०चरक० ओर्ष । सम्मत्-सम्मामि० ओर्ष । जवरि अहस्याणु० गत्यि । एवं जोदिसि० ।

§ ३८८ तिरिक्त्स्वेणु बाषीसपयडीणं अहष्णाजहष्णाणु० सम्बद्धा । सम्मत् अर्णताणु०चरक० ओर्ष । सम्मामि० ओर्ष । जवरि अहष्णं गत्यि । पंचिदियतिरिक्त्स्व-ओभिणीणं पद्मपुडविभंगो । जवरि सम्मत्० ज० गत्यि । एव भवण०-भाष्येतरा चि । प्रचि०तिरि०अपञ्ज० इम्बीसपयडीणं जहष्णाणु० ज० एगस०, चक० पस्विदो० असंखे०भागो । अज० सम्बद्धा । सम्मा०-सम्मामि० ओभिणीभंगो ।

§ ३८९ मणुस्तेसु मिच्छत-अहक० जहष्णाणु० ज० एगस०, चक० पस्विदो० असंखे०भागो । सम्मत् अहक०-तिरिप्प्यावेद० जहष्णाणु० ज० एगसमभो, चक० संखेजा समया । सम्मामि०-खण्णाक० जहष्णाणु० ज० चक० अंतोसु० । सम्वासि

§ ३८० आदेशसे भारिक्योमिं मिष्यात्, बारह कपाय और नव नाकपायोंके अथव्य अनुभागका अथव्य काल एक समय है और अष्टक काल पस्यके अर्धस्वातर्षे भागप्रमाण है । अत्रअथव्य अनुभागका काल सर्वथा है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका मङ्ग ओष की तरह है । सम्यग्मिष्यात्का मङ्ग ओष की तरह है । इतना विरोध है कि नरकमें उसका अथव्य अनुभाग नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय विषय और पञ्चेन्द्रिय विषय पर्याप्त और सामान्य क्षेत्रमें जानना चाहिए । दूसरीसे सफर सातवीं पृथिवी तकके नारिक्योमिं बारस प्रकृतिषोके अथव्य और अत्रअथव्य अनुभागका काल सर्वथा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका मङ्ग ओष की तरह है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्का मङ्ग ओष की तरह है । इतना विरोध है कि इनमें अथव्य अनुभाग नहीं है । इसी प्रकार म्यातिपी क्षेत्रोंमें जानना चाहिए ।

§ ३८८ सामान्य विषयोंमें बारस प्रकृतिषोके अथव्य और अत्रअथव्य अनुभागका काल सर्वथा है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका मङ्ग ओष की तरह है । सम्बन्धिमिष्यात्का मङ्ग ओष की तरह है । इतना विरोध है कि विषयोंमें उसका अथव्य अनुभाग नहीं है । पञ्चेन्द्रियविषयपर्याप्तिकोमिं पहली पृथिवीके समान मंग है । इतना विरोध है कि इनमें सम्यक्त्वका अथव्य अनुभाग नहीं है । इसी प्रकार भवतवासी और भ्य तर्षेमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रियविषयपर्याप्तिकोमिं इम्बीस प्रकृतिषोके अथव्य अनुभागका अथव्य काल एक समय है और अष्टक काल पस्यके अर्धस्वातर्षे भागप्रमाण है । अत्रअथव्य अनुभागका काल सर्वथा है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्यात्का मङ्ग योनिभिमिषोके समान है ।

§ ३८९ मणुष्योमिं मिष्यात् और आठ कपायके अथव्य अनुभागका अथव्य काल एक समय है और अष्टक काल पस्यके अर्धस्वातर्षे भागप्रमाण है । सम्यक्त्व आठ कपाय और तीनों वर्षोंके अथव्य अनुभागका अथव्य काल एक समय है और अष्टक काल संस्वात समय है । सम्यग्मिष्यात् और अष्ट नोकपायोंके अथव्य अनुभागका अथव्य और अष्टक काल अथव्य

मज० सन्वद्धा । एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुसिणीणं । णवरि जम्हि पल्लिदो० असंखे० भागो तम्हि अंतोमु० । मणुसपज्ज० इत्थि० जहण्णाणु० जहण्णुक० अंतोमु० । मणु-सिणी० पुरिस०-णवुंस० छण्णोक० भंगो । मणुसअपज्ज० छवीसंपयडीणं जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो ।

§ ३६०. सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति वावीसंपयडीणं जहण्णाजहण्णाणु० सन्वद्धा । सम्मत्त अणंताणु० चउक्क० ओघं । एवमणुदिसादि जाव अचराइद त्ति । णवरि अणंताणु० चउक्क० जहण्णाणु० ज० अंतोमु०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । एवं सन्वद्धे । णवरि अणंताणु० चउक्क० जहण्णाणु० जहण्णुक० अंतोमु० । एवं जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

मुहूर्त है। सब प्रकृतियोंके अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि जिसका काल पत्यके असख्यातवें भाग बतलाया है उसका यहाँ अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए। मनुष्यपर्याप्तकोंमें स्त्रीवैदक जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यनियोंमें पुरुषवैदक और नपुसकवैदका भङ्ग छह नोकषायों की तरह है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छवीस प्रकृतियोंके जघन्य अनुभागका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है। अजघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है।

§ ३९० सौधर्म स्वर्गसे लेकर नव प्रैवेयक तकके देवों में बाईस प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग ओषके समान है। इसी प्रकार अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवों में जानना चाहिए। इतना विशेष है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार जानकर अनादारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—आदेशसे सामान्य नारकियों में बाईस प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग मरकर नरकमें जन्म लेनेवाले हतसमुत्पत्तिककर्मा असही पञ्चेन्द्रियके होता है। एक साथ अनेक ऐसे जीव जन्म लें और दूसरे समयमें अनुभागको यदि वढ़ा लें तो जघन्य काल एक समय होता है और यदि लगातार ऐसे जीव उत्पन्न हाते जाय तो उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण होता है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तको मे लगा लेना। मनुष्यों में मिथ्यात्व आदि नौ प्रकृतियों के जघन्य अनुभागके जघन्य और उत्कृष्ट कालको भी इसी तरह घटा लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग सयुक्त होनेके प्रथम समयमें होता है, अतः नाना जीवों की अपेक्षा भी उसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है। देवों में अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अनन्तानुबन्धीका जघन्य अनुभाग विसयोजकके होता है, अतः उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपराजित पर्यन्त पत्यका असख्यातवें भाग है और सर्वार्थसिद्धिमें अन्तर्मुहूर्त है।

⊗ षाषाजीयेहि अंतरं ।

§ ३६१ सुगममेदं, अहियारसंमालणवदो ।

⊗ मिच्छुत्तस्स उहस्साणुभागसत्कम्मसिपाणमतरे केवचिरकाखावो होयि ?

§ ३६२ सुगममेदं ।

⊗ जहयणेण एगसमभो ।

§ ३६३ कुदो ? उहस्साणुभागेण विणा तिहुवणासेसमीवेसु एगसमयमच्छि वेसु विदियसमप तत्व कचिपरि वि उहस्साणुभागे वंसे एगसमयअंतवसवर्त्तमादो ।

⊗ उहस्सेण असस्सेजा जोगा ।

§ ३६४ कुदो ? उहस्साणुभागेण विणा असंसे०खोगमेत्तकखामच्छिय पुजो तिहुवणमीनेसु कचिपसु वि उहस्साणुभागसुवगपसु असंसेज्जखोगमेत्तुहस्संतस्सवर्त्तमादो । अर्णतमतरं किष्ण भादं ? ण, परिणामेसु आणंतिवाभावादो । अणुभागवंपवक्क वसाणहाणाणि असंसेज्जखोगमेत्ताणि वेसे वि कुदो णव्वदे ? अणुभागवंपवहाणाण मसंसेज्जखोगमाजत्तणहाणुववचीदो । ण च कारणेसु अर्णतेसु संतेसु कखाणि असंसेज्ज-

⊗ नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका प्रकरण है ।

§ ३९१ यह सूत्र सुगम है, क्या कि इसके द्वारा अधिकारकी सम्हाल की गई है ।

⊗ यिप्पात्सके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मवासोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ३९२ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ जपन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ३९३ क्योंकि तीनों लोकोंके समस्त जीवोंके एक समय तक उत्कृष्ट अनुभागके विना रहने पर और दूसरे समयमें इनमेंसे कितने ही जीवोंके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध करने पर एक समय अन्तर पाया जाता है ।

⊗ उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ३९४ क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागके विना असंख्यात लोकप्रमाण काल तक रहने पर, पुनः तीन लोकके जीवोंमें से कुछके उत्कृष्ट अनुभागका वन्ध कर देने पर असंख्यात लोक मात्र उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

संज्ञा—अनन्त काल अन्तर क्यों नहीं हाता ?

समाधान—नहीं क्योंकि परिणाम अनन्त नहीं हैं ।

संज्ञा—अनुभागवन्धाव्यवसाय स्थान असंख्यात लोक मात्र ही हैं यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि अनुभागवन्धाव्यवसाय स्थान असंख्यात लोकप्रमाण न होते तो अनुभागवन्धके स्थान असंख्यात लोकप्रमाण नहीं हाते । यदि कहा जाय कि अनुभागवन्धाव्यवसाय स्थान अनन्त रहे और अनुभागवन्धस्थान असंख्यात लोक मात्र रहे । किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है, क्योंकि कारणके अनन्त होने पर कार्य असंख्यात लोकप्रमाण नहीं हा सकते क्योंकि

१ वा श्लो अर्थात्तिय (वा) अन्तरों का परी आर्थात्तियवन्धाव्यवसाय इति पाठ्य ।

लोगमेत्ताणि चेव होंति, विरोहादो ।

❀ एवं सेसकम्माण'

§ ३६५. जहा मिच्छत्तस्स जहण्णमुक्कस्सं च उक्कस्साणुभागंतरं परुविद तहा सेसा-
सेसकम्माणं परुवेदव्व, विसेसाभावादो । एत्थतणविसेसपरुवणदृमुत्तरसुत्तं भणदि ।

❀ णवरि सम्मत्त-सम्माभिच्छ्रुत्ताणं एत्थि अंतर ।

§ ३६६. कुदो ? सम्मादिट्ठीहितो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणणमंतर पेक्खिय
सम्मत्तसंतकम्मेण मिच्छाइट्ठीणं सम्माइट्ठीणं च अच्छणकालस्स असखेणुणत्तादो ।
एवं चुरिणासुत्तमस्सिदूणंतरपरुवण करिय संपहि उच्चारणमस्सियूण अतरपरुवण
कस्सामो ।

§ ३६७. अंतर दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिदोसो-
ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीसंपयडीणमुक्कस्साणुअंतरं केव ? ज० एगस०,
उक्क० असंखेज्जा लोगा । अणुक० णत्थि अतर । सम्मत्त-सम्माभिच्छ्रुत्ताणमुक्क०
णत्थि अंतरं । अणुक० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा ।

§ ३६८. आदेसेण णेरइएसु एवं चेव । णवरि सम्मत्त० अणुक० ज० एगस०,

अनन्त कारणोंसे असख्यात कार्योंके होनेमें विरोध है ।

* इसी प्रकार शेष कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागवालोंका अन्तरकाल कहना चाहिये ।

§ ३९५. जैसे मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहा वैसे ही
वाकीके सभी कर्मोंका कहना चाहिये, उससे इनके अन्तरकालमें कोई विशेष नहीं है । जो कुछ
विशेष हैं उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तरकाल
नहीं है ।

§ ३९६. क्योंकि सम्यग्दृष्टियोंमें से मिध्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्तरकालकी
अपेक्षा सम्यक्त्वकी सत्ताके साथ मिध्यादृष्टियों और सम्यग्दृष्टियोंके रहनेका काल असख्यात
गुणा है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रके आश्रयसे अन्तरको कहकर अब उच्चारणके आश्रयसे अन्तरका
कथन करते हैं—

§ ३९७. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्ट अवसर प्राप्त है । निर्देश
दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छ्वीस प्रकृतियोंके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर
कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है । अनुकृष्ट
अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका अन्तर नहीं
है । अनुकृष्ट अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ।

§ ३९८. आदेशसे नारकियोंमें इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वके अनुकृष्ट
अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथक्त्व प्रमाण है । सम्यग्मि-

उक्त० वासपुपुर्ष । सम्मामि० उक्त० जस्य अंतरं । एवं पद्मपुडधि-तिरिक्त्वपिय
 देवोर्षे सोहम्मादि भाव सहस्तारो षि । निदियादि भाव सचमि षि एवं षेप ।
 जवरि सम्मत्त० अणुक्त्साणु० जस्य । एवं जोगिणी-पिदिपतिरिक्त्वअपज्जव
 मवण०-वाण०-ओदिसिओ षि ।

१ ३६६. मनुसविय० ओर्ष । जवरि मनुसिणीसु सम्मत्त-सम्मामि० अणुक्त०
 न० एगस०, उक्त० वासपुपुर्ष । मनुसमपञ्च० इन्धीसंपयदीर्ण उक्त० ओर्ष । अणुक्त०
 सम्मत्त-सम्मामि० उक्त० न० एगस०, उक्त० पस्सिदो० असत्से०मागो ।

१ ४००. आणदादि भाव सम्बद्धसिद्धि षि इन्धीसंपयदीर्णमणुक्त० अणुक्त०
 जस्य अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्त० जस्य अंतरं । सम्मत्त० अणुक्त जह०
 एगस०, उक्त० वासपुपुर्ष । जवरि सम्मत्ते पस्सिदो० असत्से०मागो । एवं आणिदूण
 पेत्तम्भा ज्ञाप मजाहारि षि ।

ध्यात्वके उक्त अणुमागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार पद्मी प्रथिषी, सामान्य विद्यत्त पक्षे
 निरुपविर्षत्त पक्षेनिरुपविर्षत्त पक्षे सामान्य देव और सीधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके
 देवोंमें जानना चाहिये । इसीसे लेकर सातवीं प्रथिषी तकके नारकियोंमें भी इसी प्रकार जानना
 चाहिये । इतना विरोध है कि सम्मत्तका अणुक्त अणुमाग इनमें नहीं है । इसी प्रकार पक्षे
 निरुपविर्षत्त योनिनी पक्षेनिरुपविर्षत्त अपर्षात्त मन्वासी अन्तर और क्यापिषिषोमें जानना
 चाहिये ।

१ ३९९. सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्षात्त और मनुष्यिनियोमें ओषकी तरह मन्व है । इतना
 विरोध है कि मनुष्यिनिया में सम्मत्त और सम्मत्तध्यात्वके अणुक्त अणुमागका अपक्ष अन्तर
 एक समय है और उक्त अन्तर अपक्षत्व प्रमाण्य है । मनुष्य अपर्षात्तमें इन्धीस प्रकृतियों के
 उक्त अणुमागका अन्तर ओषकी तरह है । उनके अणुक्त अणुमागका तथा सम्मत्त और
 सम्मत्तध्यात्वके उक्त अणुमागका अपक्ष अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर पक्षके
 असम्भारत्त भागप्रमाण्य है ।

१ ४ आन्त स्वर्गसे लेकर सर्षात्तसिद्धि तकके देवों में इन्धीस प्रकृतियोंके उक्त और
 अणुक्त अणुमागका अन्तर नहीं है । सम्मत्त और सम्मत्तध्यात्वके उक्त अणुमागका
 अन्तर नहीं है । सम्मत्तके अणुक्त अणुमागका अपक्ष अन्तर एक समय है और उक्त
 अन्तर अपक्षत्वप्रमाण्य है । इतना विरोध है कि सर्षात्तसिद्धिमें उक्त अन्तर पक्षके असम्भार-
 त्त भागप्रमाण्य है । इस प्रकार जानकर अन्तर्ही पर्यन्त ज्ञानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओषसे सम्मत्त और सम्मत्तध्यात्वका अणुक्त अणुमाग इरानमोहके उक्त
 के होता है, अतः मन्वा जीषो की अपेक्षा उक्तका जितना अन्तर है इतना ही अन्तर इनके अणु
 उक्त अणुमागका भी होता है । आर्षात्तसे नारकिया में सम्मत्त प्रकृतिके अणुक्त अणुमागका
 अन्तर अपक्षसे तो एक ही समय है किन्तु उक्तसे अपक्षत्व है, अर्थात् कोई उक्तत्वके उक्त
 इतने काल तक नरकमें नहीं पाया जाता । मनुष्यिनिया में भी उक्त अन्तर इतना ही है, क्योंकि कि
 मनुष्यिनियो में उक्तका भी अन्तरअन्त इतना ही उक्तलाया है । मनुष्य अपर्षात्तमें इन्धीस प्रकृ-
 तिकाके अणुक्त अणुमागका तथा सम्मत्त और सम्मत्तध्यात्वके उक्त अणुमागका अपक्ष
 अन्तर एक समय और उक्त अन्तर पक्षके असम्भारत्त भाग है, तथा कि यह अन्तर मार्गवा

❀ जहणणाणुभागकम्मसियंतरं णाणाजीवेहि ।

§ ४०१. सुगममेद अहियारसंभालणमुत्तत्तादो ।

❀ मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं एत्थि अंतरं ।

§ ४०२. कुदो ? आणतियादो ।

❀ सम्मत्त--सम्माभिच्छत्त--लोभसंजलण-लुण्णोकसायाण जहणणाणु-
भागकम्मसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४०३. सुगमं ।

❀ जहणणेण एगसमओ ।

§ ४०४. सुगम ।

❀ उक्खस्सेण लुम्मासा ।

§ ४०५. खवगसेदीए एदासिं पयडीणं जहणणाणुभागसमुप्पत्तीदो । का खवग-
सेदी णाम ? कम्मखवणपरिणामपंती । जदि एवं तो अणताणुवंधिचउक्क० विसंजोयण-
परिणामपंतीए वि खवगसेदी सण्णा पावदे ? ण, तेसि पुणरुप्पज्जमाणसहावाणं

है और उसका अन्तरकाल भी इतना ही बतलाया है । आन्तसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक छन्द्रीस प्रकृ-
तियों का उत्कृष्ट तथा अनुत्कृष्ट अनुभाग और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग
सदा पाया जाता है, अतः अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट अनुभागका जद्यय अन्तर एक
समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है जो कि वहा उत्पन्न होनेवाले वृत्तकृत्यवेदक सम्यग्मि-
दृष्टियों की अपेक्षा जानना, क्यो कि उन्हींके सम्यक्त्वका अनुत्कृष्ट अनुभाग होता है । इतना
विशेष है कि सर्वार्थसिद्धिमें यह अन्तरकाल पल्यके असख्यातवर्ष भागप्रमाण है ।

* नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर कहते हैं ।

§ ४०१ यह सूत्र सुगम है, क्यो कि इसमें अधिकारको सम्भाला गया है ।

* मिथ्यात्व और आठ कषायोंके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर नहीं है ।

§ ४०२ क्यो कि इनका प्रमाण अनन्त है ।

* सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सज्वलन लोभ, और छ नोकषायोंके जघन्य
अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ४०३ यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ४०४ यह सूत्र सुगम है ।

* उत्कृष्ट अन्तर छह मास है ?

§ ४०५ क्यो कि इन प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग क्षपकश्रेणीमे उत्पन्न होता है ।

शंका—क्षपकश्रेणी किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्मोंके क्षपणके कारणभूत परिणामो की पत्तिको क्षपकश्रेणी कहते हैं ।

शंका—यदि क्षपकश्रेणीका यह लक्षण है तो अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसयोजन करने-
लेपरिणामो की पत्तिको भी क्षपकश्रेणी नाम प्राप्त होता है ?

स्त्रीणत्वविरोहादौ ।

⊗ अण्यताण्यधीण जह्यप्याण्यभागसतकस्मियतर केचिचर काशादौ होदि ?

§ ४०६ सुगमं ।

⊗ जह्यप्येष एगसमञ्चो ।

§ ४६७ सुगमं ।

⊗ उच्यस्सेष असंख्येष्वा षोगा ।

§ ४०८ कुदो ? संसृज्जमाणपरिणामाणमसंख्येष्वांगपमाणत्वादा । ण च सम्बेदि परिणामेदि संसृज्जतस्स महण्णाणुभागो होदि, सख्यविमुदपरिणाम मोत्तुण अस्यास्य उदणुवत्तामादो ।

⊗ इत्थि-एणु सयवेदजह्यप्याण्यभागसतकस्मियाणमतरे केचिचर काशादौ होदि ?

§ ४०९ सुगमं ।

⊗ जह्यप्येष एगसमञ्चो ।

४१० सुगमं ।

⊗ उच्यस्सेष सख्येष्वापि वस्साणि ।

ममापान-न्हीं क्या कि वे पुन्य एतन्म स्वमात्मवाली हैं अतः उन्हें शीघ्र मानतेमें बिराध पाता है ।

⊗ अनन्तानुबन्धी कनापोंके मपन्य अनुभागसत्कर्मबास्त्रोंका अन्तर कस कितना है ?

§ ४११ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ मपन्य अन्तर एक समय है ।

§ ४१२ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ४०८. कसो कि अनन्तानुबन्धीके संपादनके कारणभूत परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं । और समी परिणामोंसे संयुक्त हाथेबास्त्रोंके अनन्तानुबन्धीका मपन्य अनुभाग नहीं हावा क्या कि सर्वविद्वद परिणामका छोड़कर अन्यत्र यह नहीं पाया जाता है ।

⊗ स्त्रीवेद और नपु सकवेदके मपन्य अनुभागसत्कर्मबास्त्रोंका अन्तरकस कितना है ।

§ ४१३ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ मपन्य अन्तर एक समय है ।

§ ४१४ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्प है ।

§ ४११. कुदो ? इत्थि-णवुंसयवेदोदएण खवगसेहिमारुहंताण वासपुधत्तंतरुव-
लभादो ।

❀ तिसंजलण-पुरिसवेदाणं जहणणाणुभागसंतकम्मियाणमंतर केवचिरं
कालादो होदि ?

§ ४१२. सुगमं ।

❀ जहणणेण एगसमओ ।

§ ४१३. सुगमं ।

❀ उक्कस्सेण वस्सां सादिरेयं ।

§ ४१४. पुरिसवेदस्स ताव उच्चदे । त जहा—पुरिसवेदोदएण खवगसेहिं चट्ठिय
तस्स जहणणाणुभागसंतकम्मं काऊण छम्मासमतरिय पुणो इत्थिवेदेण खवगसेहिं चट्ठिय
छम्मासमंतरिय पुणो णवुंसयवेदोदएण खवगसेहिं चढावेदव्वो । एवं संखेज्जेसु वारेसु
गदेसु पच्छा पुरिसवेदोदएण खवगसेहिं चट्ठिय तस्स जहणणाणुभागसंतकम्मे कदे
सादिरेगेगवस्समेत्तमुक्कस्संतरं होदि । संखेज्जाणि वस्साणि किण्णं होंति ? ण, सव्वेसि-
मतराण छम्मासपमाणत्ताभावादो । सव्वाणि अणताणि छम्मासपमाणाणि ण होंति
त्ति कुदो णव्वदे ? वास सादिरेयमंतरमिदि सुत्तणिदेसादो । एवं तिण्ह सजलणाणं

§ ४११. क्यो कि खीवेद तथा नपुसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढनेवालो का अन्तर
वर्षपृथक्त्व पाया जाता है ।

* तीन सज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसत्कर्मवालोंका अन्तर काल
कितना है ?

§ ४१२ यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ४१३ यह सूत्र सुगम है ।

* उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है ।

§ ४१४ पहले पुरुषवेदका अन्तर कहते हैं, जो इस प्रकार है—पुरुषवेदके उदयसे क्षपक
श्रेणि पर चढकर और उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म करके क्षपकश्रेणिका छह मासका अन्तर
दिया पुन. खीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढकर छह मासका अन्तर दिया पुन नपुसकवेदके
उदयसे श्रेणिपर चढाना चाहिए । इस प्रकार सख्यात वार होनेपर पीछे पुरुषवेदके उदयसे
क्षपक श्रेणिपर चढकर पुरुषवेदका जघन्य अनुभागसत्कर्म होनेपर पुरुषवेदके जघन्य अनु-
भागका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष होता है ।

शंका—सख्यात वर्ष अन्तर क्यो नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्यो कि सभी अन्तरोंका प्रमाण छ मास नहीं है ।

शंका—सभी अन्तरोंका प्रमाण छः मास नहीं है यह कैसे जाना ?

वचस्व, सादिरैयवस्संतरत्तेण भित्तेसामाभादो । कोपसंनलपस्स दो वस्साणि अंतरं
 किण्ण होदि ? ण, सम्भेसिततराणमेगाविसंनोगमणिदांणं छम्मासणियमाभादो ।
 एव सुण्णिमुत्तमस्सिदूण अंतरपरुणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण परुवेमो ।

१४१५ महण्णप पयदं । दुबिहो जिहेसो—मोधण आदसेण य । मोपेण
 मिच्छत्तमह-कसा० महण्णामहण्णाणु० णत्थि अंतरं । सम्मघ-सम्मामि०-ओमसज०
 छण्णोक्क० महण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । अज० णत्थि अंतरं । अणं
 ताणुपवक्क० महण्णाणु० ध० एगस०, उक्क० मसंत्से० खोगा । अज० णत्थि अंतरं ।
 तिण्णिसंम० पुरिस० महण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० पासं सादिरयं । अज० णत्थि
 अंतरं । इत्थि-णवुंस० महण्णाणु० ध० एगस०, उक्क० पासपुपणं । अज० णत्थि अंतरं ।
 एवं मणुस्सोचं । जपरि मिच्छत्त-महकसा० मह० ज० एगस०, उक्क० मसंत्से०-खोगा ।

४१६ आदेसेण गेरइएसु छम्भीसं पयडीणं महण्णाणु० ज० एगस०, उक्क०

समाधान—क्या कि सूत्रों पुरुषवेदके जपन्य अनुभागसरकर्मका उत्कृष्ट अन्तर एक वर्षसे
 कुछ अधिक बढलावा है । इससे जाना कि समी अन्तरों का प्रमास्य छ मास नहीं जाता । इसी
 प्रकार तीना संवत्सन कथायोंका भी अन्तर कइना चाहिये, क्योंकि सप्रधिक एक वर्षप्रमास्य
 अन्तरसे छत्रमे कुछ विरोधता नहीं है ।

शंका—संवत्सन मोधका अन्तर वा वर्ष क्या नहीं है ?

समाधान—नहीं क्या कि एकादि संयोगसे उत्पन्न हुए समी अन्तर छह मासप्रमास्य
 होते हैं ऐसा कौन नियम नहीं है । तात्पर्य यह है कि अथ मान मास और लोमके वयसे
 छह छह माहके अन्तरसे जपक्रमेण पर बढ़ता है ऐसा कार्य नियम नहीं है, अतः तीनों
 संवत्सनों के जपन्य अनुभागका उत्कृष्ट अन्तर वा वर्ष न कइ कर सप्रधिक एक वर्ष कहा है ।

इस प्रकार वृत्तिसूत्रके आशयसे अन्तरका कथन करके अब उच्चारणके आशयसे अन्तर
 का कथन करते हैं—

१४१५ जपन्वका कथन अबसर प्राप्त है । निर्देश वा प्रकारका है—मोष और आरेरा ।

मोषसे मिष्यात्व और आठ कथायोंके जपन्य और अजपन्व अगुमागका अंतर नहीं है ।
 सन्धक्त्व सन्धमिष्यात्व, संवत्सन्धलोम और छह नोकथायोंके जपन्य अनुभागका जपन्य अन्तर
 एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह मास है । अजपन्व अनुभागका अन्तर नहीं है । अन्तता-
 नुबन्धीचतुक्कके जपन्व अनुभागका जपन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अर्धव्याप्त
 लोकप्रमास्य है । अजपन्व अनुभागका अन्तर नहीं है । तीन संवत्सन कथाय और पुरुषवेदके
 जपन्व अनुभागका जपन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक एक वर्ष है ।
 अजपन्व अनुभागका अन्तर नहीं है । ओषेव और नपुंसकवेदके जपन्य अनुभागसरकर्मका
 जपन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रवृत्तप्रमास्य है । अजपन्व अनुभागका
 अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्योंमें जानता चाहिये । इतना विशेष है कि मिष्यात्व
 और आठ कथायोंके जपन्व अनुभागका जपन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर
 अर्धव्याप्त लोकप्रमास्य है ।

४१६ आरेरसे नावकियोंमें छम्भीस प्रवृत्तियोंके जपन्य अनुभागका जपन्य अन्तर

असंखे० लोगा । अज० णत्थि अंतरं । सम्मत० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वास-
पुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । सम्मामि० अज० णत्थि अंतरं । एवं पढमपुढवि०-पंचि-
दियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोधं ति । विद्यादि जाव सत्तमि ति मिच्छत्त-
वारसक०-णवणोक० जहण्णाजिहण्णाणु० णत्थि अंतरं । अणताणु०चउक्क० जहण्णाणु०
ज० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा । अज० णत्थि अंतरं । एव जोदिसि० ।

- ४१७. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु वावीसंपयडीण जहण्णाजहण्णाणु० णत्थि
अंतरं । सम्मत० जहण्णाणु० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं ।
एवं सम्मामि० । णवरि जहण्ण णत्थि । अणताणु०चउक्क० जहण्णाणु० ज० एगस०,
उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० णत्थि अंतरं । एवं सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा ति ।
जोणिणी० छव्वीसंपयडीण जहण्णाणु० जह० एगस०, उक्क० असंखे० लोगा । अज०
णत्थि अंतरं । सम्मत-सम्मामि० अज० णत्थि अंतर । एवं पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-
भवण०-वाणवेंतराण । मणुसपज्ज० मणुस्सोघ । णवरि इत्थि० इस्सभगो । मणुसिणी०
एव चेव । णवरि खवगपयडीणमतरं वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० छव्वीसंपयडीण ज०
जह० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे०-

एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च पर्याप्त और सामान्य देवो में जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियो में मिथ्यात्व, वारह कपाय और नव नोकपायो के जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार ज्योतिपीदेवो में जानना चाहिए ।

‡ ४१७ तिर्यश्चगतिमें तिर्यश्चो में वाईस प्रकृतियों के जघन्य और अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तिर्यश्चो में उसका जघन्य अनुभाग नहीं होता । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सौधर्म स्वर्गसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवो में जानना चाहिए । यानिनियो में छव्वीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभागका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोक प्रमाण है । अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य अनुभागका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्त, भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिए । मनुष्य-पर्याप्तको में सामान्य मनुष्यो के समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि स्त्रीवेदके जघन्य अनुभागका अन्तर हास्यके समान है । मनुष्यिनियो में भी इसी प्रकार है । इतना विशेष है कि इनमें तपक-श्रेणिमें जिन प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग होता है उनका अन्तर वर्षपृथक्त्व है । मनुष्य अपयाप्तको में छव्वीस प्रकृतियों के जघन्य अनुभागसत्कर्मका जघन्य अन्तर एक समय है और

भागो । अनुविसादि भाव सम्बद्धसिद्धि चि मिच्छत्-वारसक०-जपणोक० म० मञ्ज०
 न्तिय अंतरं । सम्मत्-अर्णतापु० चरक० महण्णापु० ज० एगस०, चक० वासपुषत् ।
 सम्बद्धे पद्धिदो० संसे० भागो । अमह० न्तिय अंतरं । एवं वाणिर्ण जेद्वं भाव
 अभाहारि चि ।

§ ४१= सण्णियासो बुबिहो—महण्णमो चकस्समो चेदि । चकस्से पयदं । बुबिहा
 गिहे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्तस्स जो चकस्सापुमागविहत्तिमो सो
 सम्मत्-सम्मामिच्छत्ताणं सिया विहत्तिमो सिया अविहत्तिमो । यदि विहत्तिमो णियमा
 चकस्सविहत्तिमो । सोलसक०—जपणोक० णियमा विहत्तिमो । तं तु इद्धानपदिदो ।
 एवं सोलसक०—जपणोकसायाणं । सम्मत्० चकस्सापुमागस्स जो विहत्तिमो सो
 सम्मामिच्छत्तस्स णियमा चकस्सविहत्तिमो । मिच्छत्-वारसक०—जपणोक० णिय०

उक्त अन्तर असंख्यात लोक है । अत्रपन्थ अनुभागका अन्वय अन्तर एक समय है और
 उक्त अन्तर पन्थके असंख्यातके भाग प्रमाण है । अनुविरासे लेकर सर्वावसिद्धि तकके देवोंमें
 सिध्यात्व, वाह्य कथय और नव नोकपायोंके जपन्थ और अजपन्थ अनुभागका अन्तर नहीं
 है । सम्पत्त्व और अस्तानुबन्धीपदुक्तके जपन्थ अनुभागका अन्वय अन्तर एक समय है
 और उक्त अन्तर वर्षपूषकत्वप्रमाण है । सर्वावसिद्धिमें इनका उक्त अन्तर पन्थके संख्यातके
 मूलप्रमाण है । अजपन्थ अनुभागका अन्तर नहीं है । इस प्रकार जानकर अभाहारी पर्यन्त
 जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जपन्थ अनुभागसत्कर्माका अन्तर जिस प्रकार बृहिसूत्रोंमें कहा है वैसे ही
 ओपसे और आदेशसे भी जानना चाहिये । आदेशसे कहीं कहीं कुछ विरोधा है, जैसे
 तिर्यन्वोजिनियमों और मनुष्य अपर्याप्तकेमें इन्धीस प्रकृतियोंके जपन्थ अनुभागसत्कर्माका
 जपन्थ अन्तर एक समय और उक्त अन्तर असंख्यात लोक कहा है सो इन प्रकृतियोंका जपन्थ
 अनुभाग इन पर्यायोंमें मरकर जन्म लेनेवाले इतसमुत्पत्तिकर्मा पचाबोम्य पकेगिरुवादि
 जीवोंके हाता है, ऊर्ध्वी कल्पितकी अपेक्षासे वह अन्तर काल कहा है । सम्पत्त्व प्रकृतिके
 जपन्थ अनुभागका जपन्थ अन्तर एक समय और उक्त अन्तर वर्षपूषकत्व तृती प्रकृतिके
 अनुक्त अनुभागके अन्तरकी तरह जानना ।

§ ४१८, सनिकर्प दो प्रकारका है—जपन्थ और उक्त । उक्तका अवसर है । निर्देश
 दो प्रकारका है—ओप और आदेश । ओपसे वा जीव सिध्यात्वकी उक्त अनुभागविभक्ति-
 वाक्ता है वह कदाचित् सम्पत्त्व और सन्धिमिध्यात्वकी विभक्तिवाक्ता होता है कदाचित् अविभक्ति-
 वाक्ता होता है । यदि विभक्तिवाक्ता होता है तो नियमसे उक्त विभक्तिवाक्ता होता है । तथा वह
 खेलाह कथय और नव नोकपायोंकी अनुभागविभक्तिवाक्ता नियमसे होता है किन्तु वह उक्त
 भी होती है और अनुक्त भी । यदि अनुक्त होती है तो नियमसे पदुत्तानपरित होती है ।
 इसी प्रकार खेलाह कथय और नव नोकपायों की अपेक्षा जानना चाहिये । जो जीव सम्पत्त्वके
 उक्त अनुभागकी विभक्तिवाक्ता है वह नियमसे सन्धिमिध्यात्वकी उक्त विभक्तिवाक्ता होता
 है । तथा वह सिध्यात्व वाह्य कथय और नव नोकपायोंकी अनुभागविभक्तिवाक्ता नियमसे होता
 है जो उक्त और अनुक्त अनुभागविभक्तिवाक्ता होता है । यदि अनुक्त अनुभागविभक्तिवाक्ता

तं तु छद्वाणपदिदो । अणंताणु०चउक० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । जदि विहत्तिओ तं तु छद्वाणपदिदो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स । णवरि सम्मत० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । जदि विहत्तिओ णियमा उकस्सविहत्तिओ । एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं ।

§ ४१६. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त० उक० जो विहत्तिओ सो सम्म०-सम्मामि० सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ । जदि विहत्तिओ णियमा उकस्सविहत्तिओ । सोलसक०-णवणोक० णियमा० तं तु छद्वाणपदिदो । एवं सोलसक०-णवणोकसायाणं । सम्मत० जो उक० विहत्तिओ सो सम्मामि० णियमा उक० विहत्तिओ । मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० तं तु छद्वाणपदिदो । अणंताणु०चउक० सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । तं तु छद्वाणपदिदो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि । णवरि सम्मतस्स सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । जदि विहत्तिओ णियमा उकस्सविहत्तिओ । एवं पढमपुढवि-तिरिक्खतिय--देवोयं सोहम्मादि जाव सहस्सार

होता है तो वह पटस्थान पतित होता है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी कदाचित् विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है यदि विभक्तिवाला होता है तो वह उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट होता है तो वह पटस्थान पतित होता है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्ष जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वह कदाचित् सम्यक्त्वकी विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है । यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्टविभक्तिवाला होता है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें कहना चाहिये ।

§ ४१९ आदेशसे नारकियोंमें जो मिध्यात्वकी उत्कृष्ट अनुभागविभक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनुभागविभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है । यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है । वह सोलह कपाय और नव नोकपायों की नियमसे विभक्तिवाला होता है । किन्तु वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है, और अनुत्कृष्टविभक्तिवाला होता है । यदि अनुत्कृष्टविभक्तिवाला होता है तो वह पटस्थान पतित होता है । इसी प्रकार सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष होता है । जो सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट अनुभाग विभक्तिवाला है वह नियमसे सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है । वह मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंकी नियमसे विभक्तिवाला होता है । किन्तु वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्टविभक्तिवाला भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह पटस्थान पतित होता है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी कदाचित् विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है । यदि विभक्तिवाला होता है तो वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह पटस्थान पतित विभक्तिवाला होता है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा भी जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला कदाचित् सम्यक्त्वकी विभक्तिवाला होता है और कदाचित् अविभक्तिवाला होता है । यदि विभक्तिवाला होता है तो नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय

चि । विदियादि भाव सत्त्वमि वि एव चेव । एषं जोभिजी०--पंचिदियतिरिपत्त्वमपञ्ज०
मणुसमपञ्ज० मवण-माण०-जोदिसिया चि । जवरि पंचिदियतिरिपत्त्व-मणुसमपञ्ज०
सम्मच०-सम्मामि० चकस्साणु०विहसि० अणंताणु०चवक० बारसकसायमंगा ।

§ ४२० आण्दादि भाव उवरिमगेवञ्जा वि मिच्छत्त० चकस्साणुभागविहसिओ
सम्मच-सम्मामि० सिया विहसिआ सिया मविहसिओ । अदि विहसिओ णियमा
चकस्सा । सोससक०-णवणोक० किमुक० मणुक० ? णियमा चक० । एषं सोससक०
यावणोकसायाणं । सम्मच० चक० विहसि० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किमुक०
मणुक० तं तु अणंतगुणहीणा । अणंताणु० चवक० सिया विहसिओ सिया मविहसिओ ।
अदि विहसिओ तं तु अणंतगुणहीणा । सम्मामि० णियमा चक० विहसिओ । एषं
सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तम् । जवरि सम्मतस्स सिया विहसियो सिया मविहसिओ ।
अदि विहसिओ णियमा चकस्सविहसिओ ।

§ ४२१ अणुविसादि भाव सम्बद्धसिद्धि वि मिच्छत्त० चकस्साणुभागविहसिओ

विमल पर्याप्त, सामान्य देव और सौधम स्वर्गसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना
चाहिए । वृत्तीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके मार्कमोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इसी
प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च यानिनी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त मनुष्य अपर्याप्त, मवन्तासी,
व्यन्तर और व्यपतिपी देवोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त
और मनुष्य अपर्याप्तमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी वस्तुएं अनुभागविमलविमलविमलके
अनन्तानुबन्धीवस्तुएकत्र मत्र बारह कपायोंके समान है ।

§ ४२० आनन्त स्वर्गसे लेकर उपरिम प्रैत्रेयक तकके देवोंमें जो मिध्यात्वकी वस्तुएं
अनुभागविमलविमल है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी विमलविमल है वा है
और कदाचित् विमलविमल है वा है । यदि विमलविमल है वा है तो निबमसे वस्तु विमलविमल
बाला होता है । सातह कपायों और मत्र नाकपायकी क्या वस्तुएं विमलविमल है वा है अथवा
अनुकृत विमलविमल है वा है ? निबमसे वस्तु विमलविमल है वा है । इसी प्रकार सातह कपाय
आर मत्र नाकपायोंकी अपर्याप्त जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी वस्तुएं विमलविमल मिध्यात्व बारह
कपाय और नव नाकपायोंकी क्या वस्तुएं विमलविमल है वा अनुकृत विमलविमल है वा है ?
वह वस्तुएं विमलविमल भी होता है और अनुकृत विमलविमल भी होता है यदि अनुकृत
विमलविमल है वा है तो वह अनन्तगुणी हीन विमलविमल है वा है । अनन्तानुबन्धी वस्तुएकी
कदाचित् विमलविमल है वा है और कदाचित् विमलविमल है वा है । यदि विमलविमल होता
है वा वस्तुएं विमलविमल भी होता है और अनुकृत विमलविमल भी होता है । यदि अनुकृत
विमलविमल है वा है तो वह निबमसे अनन्तगुण हीन विमलविमल है वा है । तथा वह निबमसे
सम्यग्मिध्यात्वकी वस्तुएं विमलविमल है वा है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी अपर्याप्त भी
सन्निकर्ष करन चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वकी वस्तुएं विमलविमल कदाचित्
सम्यक्त्वकी विमलविमल है वा है और कदाचित् विमलविमल है वा है यदि विमलविमल
है वा है तो निबमसे वस्तुएं विमलविमल है वा है ।

§ ४२१ अनुविसासे लेकर सर्वव्यसिद्धि तकके देवोंमें मिध्यात्वकी वस्तुएं अनुभाग विमलवि-

सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क०? णियमा उक्कस्सविहत्तिओ । एवं सोलसकसाय--णवणोकसायाणं । सम्मत्त० उक्क० विहत्तिओ मिन्द०--वारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? तं तु अणंतगुणहीणा । अणंताणु०४ मिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि त तु अणंतगुणहीणा । सम्मामि० णियमा उक्कस्सविहत्तिओ । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वरव्वं । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ४२२. जहण्णए पयदं । दूविहो णिद्दो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्तस्स जो जहण्णाणुभागविहत्तिओ तस्स सम्मत्त--सम्मामिच्छत्ताणि सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि णियमा अजहण्णा अणंतगुणव्वभहिया । अणंताणु०चउक्क०-चदुसंज०-णवणोक० णियमा अज० अणंतगुणव्वभहिया । अद्वक० णियमा तं तु व्वट्ठाण-पदिदा । एवं अद्वकसायाणं । सम्मत्त० जहण्णाणु०विहत्ति० वारसक०--णवणोक० णियमा अज० अणंतगुणव्वभहियां । सेसपयदीओ णत्थि । सम्मामि० जहण्णाणु०विहत्ति० सम्मत्त०--वारसक०--णवणोक० णियमा अज० अणंतगुणव्वभहिया । अणंताणु०कोध०

वाला सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व, सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है या अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? वह नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है । इसी प्रकार सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट विभक्तिवाला मिध्यात्व, बारह कपाय और नव नोकपायोंकी क्या उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है या अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है ? वह उत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है और अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है तो वह अनन्तगुण हीन विभक्तिवाला होता है । उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् होता है कदाचित् नहीं होता । यदि होता है तो वह उत्कृष्ट भी होता है और अनुत्कृष्ट भी होता है । यदि अनुत्कृष्ट होता है तो वह अनन्तगुण हीन होता है । वह सम्यग्मिध्यात्वकी नियमसे उत्कृष्ट विभक्तिवाला होता है । इसी प्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा भी कहना चाहिए । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

§ ४२२ अब जघन्य अवसरप्राप्त है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे जो मिध्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवाला है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते । यदि होते हैं तो नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होते हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क, चार सञ्चलन और नव नोकपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होते हैं । आठ कपाय नियमसे होती हैं किन्तु वे जघन्य भी होती हैं और अजघन्य भी होती हैं । यदि अजघन्य होती हैं तो नियमसे षट्स्थान पतित अनुभागको लिये हुए होती हैं । इसी प्रकार आठ कपायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके बारह कपाय और नव नोकपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं । उसके शेष प्रकृतिया अर्थात् अनन्तानुबन्धी चतुष्क, मिध्यात्व और सम्यग्मिध्यात्व ये प्रकृतियों नहीं होती । सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सम्यक्त्व, बारह कपाय और नव नोकपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी

अहण्याणु० विहृति० मिच्छत्त-सम्पत्त-सम्प्राप्ति०-भारसक०-अमजोक० गियमा अम० अर्णतगुणम्भरिया । माण-माया-सोमार्ण किं न० किमम० ? तं तु ब्रह्माणपदिदा । एवं सैसविण्ई कसायाणं । कोपसंमत्त० अहण्याणु० विहृति० विण्ई संमत्त० किं अ० अम० ? गि० अम० अर्णतगुणम्भरिया । माणसंमत्त० अ० विहृति० माया-सोमसंमत्त० किं न० अम० ? गियमा अम० अर्णतगुणम्भरिया । कोपसंमत्तणादिहेहिमपयडीमो णत्थि । माणसंमत्त० अ० विहृति० सोमसंमत्त० गियमा अम० अर्णतगुणम्भरिया । सोमसंमत्त० अहण्याणु० सैसपयडीमो णत्थि । इत्थि० अहण्याणु० सत्तणोक०-चदुसंमत्त० गियमा अम० अर्णतगुणम्भरिया । एवं णवुंसयवेदस्स । पुरिसं अहण्याणु० विहृति० चदुसंमत्त० गियमा अम० अर्णतगुणम्भरिया । इत्थं-अहण्याणु० वि० पुरिसं-चदुसंमत्त० वि० अम० अर्णतगुणम्भरिया । पंचणोक० वि० अहण्याणु० । एवं पंचणोकसायाणं ।

§ ४२३ आदसेण णेरइएणु मिच्छत्त० अहण्याणु० सम्पत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि । अदि अत्थि गि० अम० अर्णतगुणम्भरिया । अर्णताणु० अरक० वि० अम० अर्णतगुणम्भरिया । बारसक०-अमजोक० किं अ० अम० ? तं तु ब्रह्माणपदिदा ।

अथस्य अनुभागविमर्शितालेके मिच्छत्तस्य सम्पत्तस्य, सम्पत्तिप्यात्वात् बारसकपाय और तत्र माकपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजपन्म अनुभागका लिये हुए होती हैं । उसके अनन्तानुचयी मान, माया और सोमका क्या अथस्य अनुभाग हाता है या अजपन्म अनुभाग होता है ? उनका अथस्य भी होता है और अजपन्म भी हाता है । यदि अजपन्म होता है या पदस्थानप्रवित अनुभाग हाता है । इसी प्रकार शेष तीन कपायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । संश्लसन अथस्यकी अथस्य अनुभागविमर्शितालेके मान, माया और साम संश्लसनका क्या अथस्य हाता है या क्या अजपन्म हाता है ? नियमसे अजपन्म अनुभाग होता है या अनन्तगुणा अधिक हाता है । मान संश्लसनकी अथस्य विमर्शितालेके माया संश्लसन और साम संश्लसनका क्या अथस्य होता है या अजपन्म हाता है ? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजपन्म होता है । नीचकी क्रमे संश्लसन आदि प्रवृत्तियों उसके मर््या होती । माया संश्लसनकी अथस्य विमर्शितालेके साम संश्लसन नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजपन्म अनुभागको लिये हुए हाता है । सोम संश्लसनकी अथस्य अनुभागविमर्शितालेके शेष प्रवृत्तियों मर््या हाती । नीचेकी अथस्य अनुभागविमर्शितालेके सात माकपाय और चारों संश्लसन कपाय नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजपन्म अनुभागको लिये हुए हाती हैं । इसी प्रकार मनुसकवदकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । पुरुषवेदकी अथस्य अनुभागविमर्शितालेके चार संश्लसनकपाय नियमसे अनन्तगुण अधिक अजपन्म अनुभागका लिये हुए हाती हैं । बारसकी अथस्य अनुभागविमर्शितालेके पुरुष वद और चारों संश्लसन नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजपन्म अनुभागका लिये हुए हाती हैं । पांच माकपाय नियमसे अथस्य हाती हैं । इसी प्रकार शेष पाँचों माकपायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए ।

§ ४२३ आदसेण बारसकपायोंमें मिच्छत्तकी अथस्य अनुभागविमर्शितालेके सम्पत्तस्य कवपिन् हाता है कवपिन् मर््या हाता । यदि हाता है या नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजपन्म अनुभागका लिये हुए हाता है । अनन्तानुचयी अनुचय नियमसे अनन्तगुण अधिक अजपन्म अनुभागका लिये हुए हाता है । बारस कपाय और तत्र माकपायका क्या अथस्य हाता है या

एवं वारसक०-णवणोकसायाणं । सम्मत्त० जहएणाणु० वारसक०-णवणोक० कि ज० अज० ? णि० अज० अणंतगुणव्हिया । अणंताणु०कोध० जहएणाणु० मिच्छत्त०-सम्मत्त०-वारसक०-णवणोक० णि अजहएणा अणतगुणव्हिया । तिएणक० तं तु छट्टाणपदिदा । एवं तिहमएणंताणुवंधीणं । पढमपुढवि० देवोधं । भवण०-वाणवेंतराणं णेरइयभंगो । णवरि भवण०-वाणवे० सम्म० जहएणं णत्थि ।

§ ४२४. विद्यादि जाव सत्तमि चि मिच्छत्त० जहएणाणु० अणंताणु०चउक० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं ज० अज० ? तं तु छट्टाणपदिदा । वारसक०-णवणोक० णियमा जहएणा । एव वारसक०-णवणोकसायाणं । अणंताणु०कोध० जह० मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । माण-माया-लोभ० किं ज० किमज० ? तं तु छट्टाणपदिदा । एवं माण-माया-लोभाणं ।

§ ४२५. तिरिक्खगदीए तिरिक्ख--पंचिदियतिरिक्ख--पंचि०तिरि०पज्ज० मिच्छत्त० जहएणाणु० सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि णियमा अज०

अजघन्य होता है ? वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी होता है । यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है । इसी प्रकार बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके बारह कषाय और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य होता है, । अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका जघन्य भी हाता है और अजघन्य भी होता है । यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है । इसी प्रकार शेष तीन अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । पहली पृथिवी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तरोमें नारकियोंके समान भग होता है । इतना विशेष है कि भवनवासी और व्यन्तरोमें सम्यक्त्वका जघन्य अनुभाग नहीं होता ।

§ ४२४ दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता । यदि होता है तो जघन्य होता है या अजघन्य ? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थानपतित होता है । बारह कषाय और नव नोकषाय नियमसे जघन्य अनुभागको लिये हुए होती हैं । इसी प्रकार बारह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके मिथ्यात्व, बारह कषाय, और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होता है । अनन्तानुबन्धी मान, माया और लोभका क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? वह जघन्य होता है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होता है तो वह षट्स्थान पतित होता है । इसी प्रकार मान, माया और लोभकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ४२५ तिर्यग्भगतिमें सामान्य तिर्यग्, पञ्चेन्द्रियतिर्यग् और पञ्चेन्द्रियतिर्यग् पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभागविभक्तिवालेके सम्यक्त्व कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता । यदि होता है तो नियमसे अनन्तगुणे अधिक अजघन्य अनुभागको लिये हुए होता है ।

अर्णतगुणम्भिया । अर्णताणु० चरक० गियमा अम० अणतगुणम्भिया । बारसक०-गव
 शोक० किं न० अम० ? तं तु ब्रह्माणपदिदा । एवं बारसक० अनशोकसायार्ण । सम्मत्त०
 अहण्णाणु० बारसक० णवणोक० किं न० अम० ? गियमा अम० अर्णतगुणम्भिया ।
 अर्णताणु० कोष० अहण्णाणु० मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० किं न० अम० ?
 गि० अम० अर्णतगुणम्भिया । तिग्गिकसाय० किं न० किमम० ? तं तु ब्रह्माणपदिदा ।
 एवं सिसत्तिण्णमर्णताणुर्बपीणं । एवं जोगिणी० । णवरि सम्मत्त० अहण्णं पत्ति ।
 पंचिं तिरी० अपञ्च० मिच्छत्त० अहण्णाणु० सोत्तसक०-णवणोक०-गियमा तं तु
 ब्रह्माणपदिदा । एवं सोत्तसक०-गवशोक० । मणुसमपञ्चराणं पंचिंदियतिरिक्त्त
 अपञ्चचर्मगो ।

§ ४२६ मणुस्ताणमोष । मणुसपञ्च० एवं पेद । णवरि इत्तिनेद-अहण्णाणु
 भागविद्विधियस्त णवुंस० सिया अत्ति सिया गत्ति । यदि अत्ति गियमा अम०
 अर्णतगुणम्भिया । मणुसिणीणमोषं । णवरि णवुंस० अहण्णाणु० इत्ति० गि० अम०
 अर्णतगुणम्भिया । पुरिस० अण्णोकसायर्मगो ।

अनन्तानुबन्धी अणुष्का नियमसे अनन्तगुणा अधिक अज्ञप्य अनुभाग होता है । बारह
 कपाय और नव नोकपायका क्या अज्ञप्य होता है वा अज्ञप्य ? वह अज्ञप्य होता है और
 अज्ञप्य भी । यदि अज्ञप्य हाता है वा वह पदस्थान पठित होता है । इसी प्रकार
 बारह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेक्षा सभिकर्ष जानना चाहिए । सम्यक्त्वकी अज्ञप्य
 अनुभागविमर्शिलोके बारह कपाय और नव नोकपायोंका क्या अज्ञप्य होता है वा अज्ञप्य ?
 निम्नसे अनन्तगुणा अधिक अज्ञप्य अनुभाग होता है । अनन्तानुबन्धी अज्ञप्यकी अज्ञप्य
 अनुभागविमर्शिलोके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व बारहकपाय और नव नोकपायोंका क्या अज्ञप्य होता
 है वा अज्ञप्य ? नियमसे अनन्तगुणा अधिक अज्ञप्य अनुभाग हाता है । अनन्तानुबन्धी
 मान मावा और होमका क्या अज्ञप्य हाता है वा अज्ञप्य ? वह अज्ञप्य होता है और
 अज्ञप्य भी । यदि अज्ञप्य हाता है वा वह पदस्थान पठित हाता है । इसी प्रकार
 शेष तीन अनन्तानुबन्धिकपायोंकी अपेक्षा सभिकर्ष जानना चाहिए । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय
 तिर्यक् चानिनी जीर्षोमें जानना चाहिए । इतना विरोध है कि इतने सम्यक्त्वका अज्ञप्य
 नहीं होता । पञ्चेन्द्रियतिर्यक् अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी अज्ञप्य अनुभागविमर्शिलोके सोलह
 कपाय और नव नोकपायोंका अनुभागसत्त्वमें नियमसे होता है किन्तु वह अज्ञप्य भी होता है
 और अज्ञप्य भी । यदि अज्ञप्य हाता है वा वह पदस्थान पठित होता है । इसी प्रकार
 सोलह कपाय और नव नोकपायोंकी अपेक्षा सभिकर्ष जानना चाहिए । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें
 पञ्चेन्द्रियतिर्यक् अपर्याप्तकोंके समान मंग है ।

§ ४२६ सामान्य मनुष्योंमें अज्ञप्य जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार
 जानना चाहिए । इतना विरोध है कि अज्ञप्यकी अज्ञप्य अनुभाग विमर्शिलोके मनुष्यके अज्ञ-
 प्य हाता है और अज्ञप्य नहीं होता । यदि हाता है तो नियमसे अनन्तगुण अधिक अनु-
 भागके लिए हुए अज्ञप्य हाता है । मनुष्यनिर्षोमें अज्ञप्य जानना चाहिए । इतना विरोध है कि
 मनुष्यके अज्ञप्य अनुभाग विमर्शिलोके अज्ञप्यका नियमसे अनन्तगुणे अधिक अनुभागको
 लिए हुए अज्ञप्य होता है तथा पुरुषके अज्ञप्य नव नोकपायके समान है ।

§ ४२७, जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि० जाव णवगेवज्ज० मिच्छत्त० जहएणाणु० सम्मत्त-वारसक०-णवणोक० णि० अज० अणंतगुणब्भहिया । सम्मत्त० जहएणाणु० वारसक०-णवणोक० किं ज० किमज० ? तं तु अणंतगुण-ब्भहिया । अणंताणु०कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-णवणोक० णि० अज० अणंतगुणब्भहिया । तिण्हमणंताणुबंधीणं तं तु छट्ठाणपदिदा । एवं सेसतिण्हमणंताणु-बंधीणं । अपच्चक्खाणकोध० ज० एकारसक० णवणोक० णि० जहएणा । सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि तं तु अणंतगुणब्भहियं । एवमेकारसक० णवणोकसायाणं । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि ति एवं चेव । णवरि अणंताणु-कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-वारसक०-णवणोक० णियमा० अज० अणंतगुणब्भहिया । तिण्हसक० णि० जहएणा । एवं सेसतिण्हं कसायाणं । एवं जाणिदूण णेद्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ४२८, भावाणु० सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

❀ अप्पाषहुअमुक्कस्सयं जहा उक्कस्सबंधो तहा ।

§ ४२७, ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर नव ग्रहैयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अनन्तगुणो अधिक अनुभागको लिए हुए अजघन्य होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके बारह कषाय और नव नोकषायोंका क्या जघन्य होता है या अजघन्य ? वह जघन्य भी होता है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होता है तो वह अनन्तगुणो अधिक अनुभागको लिए हुए होता है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अजघन्य होता है जो अनन्तगुणो अधिक अनुभागको लिए हुए होता है । शेष तीनों अनन्तानुबन्धी कषायोंका जघन्य भी होता है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होता है तो वह षट् स्थान पतित होता है । इसी प्रकार शेष तीनों अनन्तानुबन्धियोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके शेष ग्यारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे जघन्य होता है । सम्यक्त्व कदाचित् होता है कदाचित् नहीं होता । यदि होता है तो जघन्य भी होता है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होता है तो वह अनन्तगुणो अधिक अनुभागको लिए हुये होता है । इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नव नोकषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें ऐसे ही जानना चाहिये । इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य अनुभाग विभक्तिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंका नियमसे अनन्तगुणा अधिक अजघन्य अनुभाग होता है । शेष तीनों अनन्तानुबन्धियोंका नियमसे जघन्य होता है । इसी प्रकार शेष तीनों अनन्तानुबन्धी कषायोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

§ ४२८ भावानुगमकी अपेक्षा सब विभक्तिवालोंके औद्दयिक भाव होता है ।

* जैसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अल्पबहुत्व है वैसे ही उत्कृष्ट सत्कर्मका अल्प-

§ ४२६ महा उक्तस्ताणुभागबंध उक्तस्ताणुभागस्त अप्पाबहुर्ध परुषिर्दे तथा परुषयम्ब, विससामाबादो । तं महा—सम्बतिम्बो मिच्छत्तुक्तस्ताणुभागबंधो । अणं ताणुबंधिखोमाणुभागबंधो अणंताणुणीणो । मायाए उक्तस्ताणुभागबंधो विसेसहीणो । कोषुक्तस्ताणु० विसेसहीणो । माणुक्तस्ता० विसेसहीणा । लोमसजलणउक्तस्ताणुभागबंधो अणंतणुणीणो । मायाए उक्तस्ताणु० विसेसहीणो । पञ्चपत्ताणल्लोभ० अणंतणुणीणो । माया० विसेसहीणो । कोषुक्त० विसेसहीणा । माणुक्तस्ता० विसेसहीणो । अपञ्चपत्ताणल्लोभुक्तस्ताणु० अणंतणुणीणा । माया० विसेसहीणा । कोषुक्त० विसेसहीणो । माणुक्तस्ता० विसेसहीणो । जवुंस० उक्तस्ताणु० अणंतणुणीणो । अरविउक्त० अणंतणुणीणो । सोग० उक्तस्ताणु० अणंतणुणीणा । मय० उक्त० अणंतणुणीणो । बुगुंभाए उक्त० अणंतणुणीणो । इत्थि० उक्त० अणंतणुणीणो । पुरिस० उक्त० अणंतणुणीणो । रदीए उक्त० अणंतणुणीणा । इस्त० उक्त० अणंतणुणीणो । पदुक्तस्ताणुबंधस्त अप्पाबहुर्ध उक्तस्ताणुभागसंतस्त कर्षं होदि ? कप च ण होदि ? बंधावधिपादिबर्धतद्धिदीर्घं च अण्णोययासंक्रमेया अणुभागस्त सरिसत्तुबर्धमादो ।

बहुत्व है ।

§ ४२९ जैसे उक्तुष्ट अनुभागबंधमें उक्तुष्ट अनुभागका अस्वबहुत्व कहा है वैसे ही यहाँ भी कहा जाहिए । शान्त में कोई अन्तर नहीं है । यह अस्वबहुत्व इस प्रकार है—मिप्यात्वका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध सबसे तीव्र है । उससे अगन्तानुगामी लोमका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे मायाका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे ज्ञाभका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे मानका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे संज्वलन लोमका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे माबाका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे श्लोभका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे मानका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे प्रपाकमानावरण लोमका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे मायाका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे ज्ञाभका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे मानका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे अप्रत्याख्यानावरण लोमका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणाहीन है । उससे माबाका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे कोभका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे मानका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध विरोध हीन है । उससे नर्पुंसकबंधका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे अरतिका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे श्यकका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अगन्तगुणा हीन है । उससे मयका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे जुगुप्साका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे शीबर्धका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे पुरुष बर्धका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । उससे रतिका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अगन्तगुणा हीन है । उससे हास्वका उक्तुष्ट अनुभागबन्ध अनन्तगुणा हीन है ।

संज्ञा—यह वा उक्तुष्ट अनुभागबन्धका अस्वबहुत्व है । यह अल्प बहुत्व उक्तुष्ट अनुभाग संक्रमका वैसे ही सञ्चता है ?

समाधान—न्या नहीं है सञ्चता ? जैसे बन्धावलीसे बाध कर्मकी स्थितिर्था परस्परके

होदु णाम संक्रमेण वधावल्यादिकं तद्विदीणं सरिसत्तं णाणुभागस्स सगवज्जमाणाणु-
भागसरूवेण संकामिज्जमाणपदेसाणुभागणं परिणामुवलंभादो । वंधाणुसारी अणु-
भागसंतकम्मो त्ति कुदो णव्वदे ? जहा उक्कस्सबंधो तथा उक्कस्साणुभागअप्पावहुअं
णेदव्वमिदि चुण्णिमुत्तादो । वंधप्पावहुआदो एदस्स अप्पावहुअस्स विसेसपरूवणद्व-
मुत्तरमुत्तं भणदि ।

❀ एवरि सव्वपच्छा सम्मामिच्छत्तमणंतगुणहीणं ।

§ ४३०. सव्वपच्छा वंधुक्कस्साणुभागसव्वप्पावहुएहिंतो पच्छा हस्सुक्कस्साणु-
भागादो सम्मामिच्छत्तुक्कस्साणुभागो अणंतगुणहीणो त्ति वत्तव्वं । कुदो ? सम्मामि-
च्छत्तुक्कस्साणुभागसंतकम्मं दारुसमाणफइयाणमणंतिमभागे अवट्ठिदं हस्सुक्कस्साणुभाग-
बंधो पुण सेल्लसमाणफइएसु अवट्ठिदो तेण हस्सुक्कस्साणुभागादो सम्मामिच्छत्तुक्कस्सा-
णुभागो अणंतगुणहीणो । वंधे सम्मामिच्छत्तप्पावहुअं किण्ण कयं ? ण, सतपयदीए
बंधम्मि अहियाराभावादो ।

सक्रमणसे समान हो जाती हैं वैसे ही वन्धावलीसे वाह्य अनुभाग भी परस्परके सक्रमणसे समान
हो जाता है । यदि कहा जाय कि सक्रमणसे वन्धावलीसे वाह्य स्थितियाँ भले ही समान हो
जाओ, किन्तु अनुभाग समान कैसे हो सकता है, सो यह एकहना भी ठीक नहीं है । क्योंकि
सक्रमणको प्राप्त होनेवाले प्रदेशो का अनुभाग, बंधनेवाले अपने कर्मोंके अनुभागरूपसे परिणामन
करता हुआ उपलब्ध होता है । तात्पर्य यह है कि विवक्षित कर्मका बन्ध होते समय वन्धावलि
वाह्य विवक्षित कर्मका द्रव्य सक्रमण करता है, इसलिए उसमें अनुभागसक्रमण भी हो जाता है,
इसमें कोई वाधा नहीं है ।

शंका—अनुभागसत्कर्म अनुभागबन्धके अनुसार ही होता है यह किसप्रमाणसे जाना ?

समाधान—जैसे उत्कृष्ट अनुभागबन्धका अल्प बहुत्व है वैसे ही उत्कृष्ट अनुभाग-
सत्कर्मका अल्पबहुत्व जानना चाहिए इस चूर्णि सूत्रसे जाना ।

उत्कृष्ट अनुभागबन्धके अल्पबहुत्वसे इस अल्पबहुत्वका अन्तर वतलानेके लिये आगेका
सूत्र कहते हैं—

* किन्तु सबसे अन्तिम अनुभागसे सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग
अनन्तगुणा हीन है ।

§ ४३० सवपश्चात् अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागबन्धके सब अल्पबहुत्वोंमें अन्तिम हास्यके
उत्कृष्ट अनुभागसे सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ऐसा कहना चाहिये,
क्योंकि सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म दारु समान स्पर्धकोंके अनन्तवर्षभागोंमें अवस्थित
है और हास्यका उत्कृष्ट अनुभागबन्ध शैल समान स्पर्धकोंमें अवस्थित है; अतः हास्यके उत्कृष्ट
अनुभागसे सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ।

शंका—बन्ध प्रकरणमें सम्यग्मिध्यात्वका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं कहा, क्योंकि सत्व प्रकृतिका बन्धमें अधिकार नहीं है । अर्थात् सम्य-
ग्मिध्यात्व प्रकृतिका बन्ध नहीं होता किन्तु वह सत्व प्रकृति है, अतः उसका बन्धमें कथन नहीं
किया ।

⊗ सम्मत्तमप्यतगुणहीन ।

१४३१ कुदा ? सम्मामिच्छतमहण्णाप्रुभागफरयादो देहा अणत्तुणहीन होदुण सम्पत्तुक्कस्तफरयस्त अणत्तुणदो । अया ओपप्याबहुमं पक्खिदं तथा बहुसु वि गदीसु पेयस्सं, पिसेसाभावादो । एवमुपरि भाणित्तुण णेदस्सं आय अणाहारि ति ।

⊗ जहय्याणुभागसत्तकम्मसियदंअणो ।

१४३२ महण्णाप्रुयागसंत्तकम्मंसियत्रीवाणमपुभागमस्सिदुण अण्णाबहुम दंडओ कीरदि ति भणित्तं होदि ।

⊗ सम्मववाणुभाग लोभसंजख्यस्त अणुभागसत्तकम्म ।

१४३३ कुदा ? कोपकिट्टिमेदयपहमसमयप्यहुदि अणत्तुणहीनाए सेदीए अणुसमयमोवहण्णापादसुवणमिय पुणा सुहुमसांपरायवरिमसमए सुहुमकिट्टिसरुवापु मामम्मि अहण्णत्तुवर्त्तमादो ।

⊗ मायासजख्यस्त अणुभागसंत्तकम्ममर्यांतगुण्यां ।

१४३४ कुदा ? मायावेदगवरिमसमयम्मि बद्धस्त मायावेदगतदियवात्तर संगहकिट्टिसरुवस्त णमगबंधस्त गहणादो । लोभवात्तरविष्णिसंगहकिट्टीहिंती अणत्त-

⊗ सम्पत्तकका उत्कृष्ट अनुभाग अनन्तगुणा हीन है ।

१४३१ क्योंकि सम्मामिच्छात्तके जपन्व अनुभाग एवको से नीचे अनन्तगुणे हीन होकर सम्पत्तकके उत्कृष्ट अनुभागस्पर्शक अर्थात्सिद्ध हैं । अर्थात् सम्पत्तकके उत्कृष्ट अनुभाग एवको सम्मामिच्छात्तके जपन्व अणुभागस्पर्शका से भी नीचे अर्थात्सिद्ध हैं और वह भी अनन्त गुणे हीन होकर, अतः उत्तका उत्कृष्ट अनुभाग सम्मामिच्छात्तके उत्कृष्ट अनुभागसे अनन्त गुणा हीन है । जैसे आपस अस्पृश्यत्व कहा है वैसे ही आरेरसे भी चारो ही गणियोंमें जानना चाहिये, उनमें कोई विरोधता नहीं है । इस प्रकार जानकर आगे अनाहारी पर्यन्त खोजना चाहिये ।

⊗ जपन्व अनुभागसत्कर्मबाधे जीवोंके आश्रयसे इच्छक करते हैं ।

१४३२ जपन्व अनुभागसत्कर्मबाधे जीवोंके अनुभागका आश्रय लेकर अस्पृश्यत्व-एवम्कहा कथन करते हैं, ऐसा इस सूत्रका अभिप्राय है ।

⊗ लोभ संजख्यस्तकका अनुभागसत्कर्म सबसे मन्द अनुभागवाक्य है ।

१४३३ क्योंकि लोभहृदिक वेदकके मज्जम समयसे लेकर प्रति समय अनन्तगुण हीन भेषि रूपसे अकथन वातको प्राप्त होकर सूक्ष्म साम्प्रदायके अन्तिम समयमें सूक्ष्म हृदिकल्प अनुभागत्वं करते हुए जपन्वपना पाया जाता है, अतः वह सबसे मन्द है ।

⊗ सबसे संख्यखनमायाका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

१४३४ क्योंकि वहाँ पर माया वेदक कालके अन्तिम समयमें बाँबा गया जो मन्त्रक समयमत्त है जो कि माया वेदककी तीसरी वात्तर संख्यहृदिक स्वरूप है उत्तका महत्त्व किया है । क्योंकि माया वेदक कालके अन्तिम समयमें कदा मन्त्रक समयमत्तका अनुभाग लोभ कथय की तीनों वात्तर संख्य हृदिकोंसे अनन्तगुणा है और सामकी जम तीनों वात्तर संख्य हृदिकोंसे

गुणो मायावेदगचरिमसमयणवक्रबंधाणुभागो तेहितो अणंतगुणहीणलोभसुहुमकिट्टि पेक्खिदूण णिच्छएणं अणंतगुणो ति घेत्त्वं ।

❀ माणसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं ।

§ ४३५. कुदो ? तदियमाणसगहकिट्टिवेदगचरिमसमयम्मि वद्धणवक्रबंधम्मि माणसजलणाणुभागस्स जहणत्तवधुवगमादो । मायासजलणजहण्णाणुभागादो माणसंजलणजहण्णाणुभागस्स अणंतगुणत्तं कुदो णव्वदे ? किट्टीणमप्पावहुआदो । त जहासव्वत्थोवो मायासंजलणचरिमसमयणवक्रबंधाणुभागो । मायाए तदियविदियपढमसगहकिट्टीणमणुभागो जहाकमेण अणंतगुणो । मायावेदगपढमसंगहकिट्टिअणुभागादो माणवक्रबंधाणुभागो अणंतगुणो ति ।

❀ कोधसंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं ।

४३६. कुदो ? चरिमसमयक्रोधवेदगेण वद्धाणुभागस्स गहणादो । एत्थ वि अणंतगुणत्तं पुव्व व किट्टीणमप्पावहुआदो साहेय्वं ।

❀ सम्मत्तस्स जहण्णाणुभागसंतकम्ममणंतगुणं ।

लोभ की सूक्ष्मदृष्टि अनन्त गुणी हीन है । अत लोभ कपायके सूक्ष्म कृष्टिरूप जघन्य अनुभागसे सज्वलन मायाका जघन्य अनुभागस कर्म नियमसे अनन्तगुणा है ऐसा यहाँ समझना चाहिये ।

* उससे सज्वलन मानका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

§ ४३५ क्योंकि मान कपाय की तीसरी समग्र कृष्टिके वेदक कालके अन्तिम समयमें वद्ध नवक समय प्रवद्धमे जो अनुभाग है उसे जघन्य माना गया है ।

शंका—माया सज्वलनके जघन्य अनुभागसे मान सज्वलनका जघन्य अनुभाग अनन्त गुणा है यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—कृष्टियोंके अल्प बहुत्वसे जाना । खुलासा इस प्रकार है—अन्तिम समयमें माया सज्वलनका जो नवक बन्ध होता है, उसका अनुभाग सबसे थोडा है । उससे माया की तीसरी, दूसरी और पहली समग्र दृष्टियोंका अनुभाग क्रमश अनन्त गुणा है । और मायाके वेदक कालकी प्रथम समग्र कृष्टिके अनुभागसे मान कपायके नवकबन्धका अनुभाग अनन्त गुणा है ।

* उससे सज्वलन क्रोधका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है ।

§ ४३६ क्योंकि क्रोधका वेदन करनेवाले क्षपकके द्वारा अन्तिम समयमें जो अनुभागबन्ध किया जाता है उसका यहाँ ग्रहण किया जाता है । यहाँ परभी पहलेकी तरह कृष्टियोंके अल्पबहु वसे अनन्तगुणत्व साथ लेना चाहिये । अर्थात् जैसे पहले मायासज्वलनके जघन्य अनुभागसे मानसज्वलनके जघन्य अनुभागको अनन्तगुणा सिद्ध किया है, वैसेही यहाँ परभी सिद्ध करना चाहिए ।

* उससे सम्यक्त्वका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्त गुणा है ।

१४३७ कुयो ? कोपवावरकिट्टिणवकवंपाणुमागं पेमित्त्वद्वं सम्मतनहण्णा-
 णुमागस्स फइयगदस्स अणत्तुणत्वं पडि विरोहाभावादी । अणत्तुणहीणकमेणं अतो
 सुहृत्तकम्मजुसमपमापण्णाए पत्तपादो सम्मथाणुमागो सगजहण्णपइयादो किट्टीण-
 मजुमागो च्च हेहा णिवददि दास्समाणस्सणत्तिममाणो उदासमाणफइएसु च अट्टाणाण
 ममाभादो । अ च अट्टाणेहि विगा अणत्तुण्णहाणीए भादिज्जमाणाणुमागां फइयभावं
 पडिवज्जदि, विरोहादो चि ? ण एस दोसो, तस्य वि अणेयाण अट्टाणाणं संमथादो ।
 सम्मतस्स वंधाभावे कवं तस्य अट्टाणाणं संमथो ? ण, मिच्छत्तकम्मकवंधाणं विसोहि
 वंसंज पादं पाविदया अणत्तुयाहीणाणुमागेण परिणामिय सम्मतकम्मभावसुभयामया
 काळे चेर तेषां सरुपेया अणट्टाणादो । किंच ण देसमादिफइयाणुमागा अणुसमय
 मोपट्टणाए पादिज्जमापो सगजहण्णफइयादा इहा पाचददि, चारित्तमोहक्त्तवयाए
 चहुसंसख्खापक्कमवंधपोदयाणमजुसमयमोमइयाए पादिज्जमाणाणं पि किट्टित्तपसंगादो ।
 या च एवं तहाणुवत्तंभादो ।

⊗ पुरिसवेदस्स जइय्याणुमागो अणत्तुण्यो ।

१४३८ स्वगसेहीए अणुक्ककरयापइमसमयपण्डुदि अणत्तुयाहीणाकमथा

१४३९. क्यांकि कांचकी वावर कुट्टिके अन्तमें होनेवाले नूर्ककम्मके अनुमागकी अपेक्षा
 सम्यक्त्वके लक्षण्य स्पर्शकमें पावा आनेवाला अनुमाग अनन्तगुणा है इसमें कोई विरोध
 नहीं है ।

शुद्धा—जैसे प्रतिसमय अनन्तगुणें हीन क्रमसे होनेवाले अपवर्तन भावके द्वारा कुट्टियोंका
 अनुमाग उत्तरात्तर होत होकर नीचे गिरता है वैसेही अन्तर्गुणें काकृतक अनन्तगुणें हीन क्रमसे
 प्रति समय अपवर्तनाके द्वारा पावको प्राप्त होने पर सम्यक्त्वका अनुमाग अपने लक्षण्य स्पर्शकसे
 नीचे गिर जाता है अर्थात् उससे भी कम हो जाता है हाव समानके अनन्तमें मात्रमें तथा क्षता
 समान स्पर्शकमें पटस्थान नहीं हाव है और पटस्थानोंके बिना अनन्तगुण हानिके द्वारा पावा
 हुआ अनुमाग स्पर्शक अपनेको नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि ऐसा होनेम विराम है ।

समाधान—यह शोप ठीक नहीं है क्योंकि सम्यक्त्वके अनुभागमें भी अनेक पटस्थानों
 का हाना संभव है

शुद्धा—जब सम्यक्त्व महत्त्वका बन्ध ही नहीं हावा तो उसम पटस्थान कैसे हो सकते हैं ।

समाधान—नहीं निम्नान्तके कर्मस्वरूप विद्युत्परिष्कारोंके बरासे धाते जाकर अनन्तगुणें
 हीन अनुमागरूपसे परिणामन करके अत्र समय सम्यक्त्वकर्मपनेक प्राप्त हावे हैं वसी समय
 वे पटस्थानरूपसे अस्थित रहते हैं । दूसरे बेरापाटीस्पर्शकोंका अनुमाग प्रति समय अपवर्तनाके
 द्वारा पावा जाकर अपने लक्षण्य स्पर्शकसे नीचे नहीं जाता । यदि ऐसा हो ता चारित्रगाहकी
 उपायमें चारो संज्ञककर्मोंके त्वक बन्ध और उद्वकके भी प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा पावे
 जाकर कुट्टि रूपत्वके प्राप्त होनेका प्रसंग उचित हागा । किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि बैसा
 पाया नहीं जाता है ।

⊗ पुरुषवेदका लक्षण्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

१४४० शुद्धा—अणुक्कमेयिमें अणुक्ककरक प्रथम समयसे लेकर अनन्तगुण हीन क्रमसे

हाइदूण गदसवेदिचरिमसमय पुरिसवेदएवकबंधो कथं सम्मत्तजहणणाणुभागादो अणंत-
गुणो ? एण, पुरिसवेदएवकबंधस्स अणुसमयओवट्टणाकालादो सम्मत्तअणुसमय-
ओवट्टणाकालस्स संखेज्जगुणत्तादो ।

❀ इत्थिवेदस्स जहणणाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४३६. कुदो ? पुरिसवेदस्स जहणणाणुभागेण विसईकयसमय पेक्खिदूण
हेट्ठा अंतोमुहुत्तमोसरिय द्विदइत्थिवेदुदयाणुभागगहणादो । त जहा, चरिमसमयसवेदेण
वद्धपुरिसवेदाणुभागो थोवो । तत्थेव तस्सेव वेदस्स उदयाणुभागो अणंतगुणो । ततो
दुचरिमबंधो अणंतगुणो । तत्थेव तदुदओ अणंतगुणो । ततो तिचरिमतबंधो अणंत-
गुणो । तत्थेव उदओ अणंतगुणो । एदेण कमेण हेट्ठा गंतूण इत्थिवेदजहणणाणुभागेण
विसयीकयसमए पुरिसवेदोदएण खवगसेहिं चद्धिदस्स पच्चगबंधो उवरिमतदुदयादो
अणंतगुणो । तत्थतणो चेव पुरिसवेदोदओ अणंतगुणो । ततो इत्थिवेदोदएण खवग-
सेहिं चद्धिदस्स चरिमसमयउदओ अणंतगुणो, मुम्मुरगिसमाणत्तादो । तेण पुरिस-
वेदजहणणाणुभागादो इत्थिवेदजहणणाणुभागो अणंतगुणो त्ति सिद्धं ।

कम ऋके सवेद भागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जो नवऋक्वन्ध प्राप्त होता है वह सम्यक्त्वके
जघन्य अनुभागसे अन तगुणा कैसे हो सकता है ? अर्थात् पुरुषवेदका वन्ध अपूर्वकरणगुण
स्थानके पहले समयसे ही अनन्तगुण हीन अनन्तगुण हीन अनुभागको लेकर होता है तब
सवेदभागके अन्तिम समयमें उसका जो नवऋक्वन्ध होता है वह सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे
अनन्तगुणा कैसे है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि पुरुषवेदके नवऋक्वन्धका प्रति समय अपवर्तन घात होनेका
जितना काल है उससे सम्यक्त्वके प्रति समय अपवर्तन घात होनेका काल सख्यातगुणा है । अत
सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

❀ उससे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४३९. क्योंकि जिस समयमें पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग होता है उससे पीछे एक अन्त
मुहूर्त जाकर उदय प्राप्त स्त्रीवेदका जो अनुभाग पाया जाता है उस अनुभागका यहाँ पर ग्रहण
किया है । खुलासा इस प्रकार है—सवेदी जीवके द्वारा अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जो अनुभाग
बंधता है वह थोड़ा है । उससे वहीँपर पुरुषवेदका जो अनुभाग उदयमें आता है वह अनन्त
गुणा है । उससे द्विचरम समयमें जो अनुभाग बंधता है वह अनन्तगुणा है । उससे वहीँपर
पुरुषवेदका जो अनुभाग उदयमें आता है वह अनन्तगुणा है । उससे त्रिचरम समयमें होनेवाला
पुरुषवेदका अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । उससे वहीँपर उदयागत अनुभाग अनन्त गुणा है ।
इस क्रमसे पीछे जाकर, जिस समयमें स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग होता है उस समयमें पुरुषवेदके
उदयसे क्षणिक श्रेणि चढ़नेवाले जीवके जो नवीन अनुभागबन्ध होता है वह उससे अगले समयमें
उदयागत पुरुषवेदके अनुभागसे अनन्त गुणा है । उससे उसी समयमें होनेवाला पुरुषवेदका
उदय अनन्त गुणा है । उससे स्त्रीवेदके उदयसे क्षणिकश्रेणि चढ़नेवाले जीवके अन्तिम समयमें
होनेवाला अनुभागोदय अनन्त गुणा है । क्योंकि स्त्रीवेद कण्ठे की अग्निके समान है । अत
पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, यह सिद्ध हुआ ।

⊗ षष्ठु सयवेदस्त अह्यप्याणुभागो अयतगुणो ।

§ ४४० अथ इत्येवेदोदपथ स्वर्गसिद्धिं षड्विदस्त मह्यणाणुभागो इत्येवेदस्त जादो । अदि वि तत्वेव षड्वसयवेदोदपथा स्वर्गसिद्धिं षड्विदस्त षड्वसयवेदाणुभागो मह्यणो जादो तो वि अणंतगुणो, इष्टाभिगसमाखसादो । तं पि कुदो ? पयदि विसैसादो ।

⊗ सम्मामिच्छत्तस्त अह्यप्याणुभागो अयंतगुणो ।

§ ४४१ कुदो ? सम्भवादिषट्ठाणियत्तादा । षड्वसयवेदमह्यणाणुभागा जण देसपादी एगट्टाणिमो तेण सम्भवादि-षट्ठाणियसम्मामिच्छत्तमह्यणाणुभागो अणंत-गुणो वि भणिदं होदि ।

⊗ अणताणुयपिमाणजह्यप्याणुभागो अयतगुणो ।

§ ४४२ सम्मामिच्छत्तमह्यणाणुभागो अय अर्जताणुयपिमायाणुभागो सम्भवादी विट्टाणिमो संतो कयमणंतगुणो जादो ? उचचद—सम्मामिच्छत्तमह्यणाणुभागफरयप्यहुदि अणंता णुयपिमायाणुयपिमायाणुभागो सम्भवादी विट्टाणिमो संतो कयमणंतगुणो जादो । तेण पडमसमयसंशुत्तस्त मह्यणाणु भागमर्षफरयण रचना वि सम्मामिच्छत्तमह्यणाणुभागफरयप्यहुदि होदि । हौती वि

⊗ असस नपु सकवेदका जपन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४४ मिस स्थानमें श्रीवेदके षड्वसे जपक भेषि चड्वमेनाले श्रीवेके श्रीवेका जपन्य अनुभाग होता है यद्यपि वही स्थानमें तपुसकवेदके षड्वसे तपकभेषि चड्वनेनाले श्रीवेके तपुसक वेदका जपन्य अनुभाग हाता है । फिर भी श्रीवेदके जपन्य अनुभागसे तपुसकवेदका जपन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि तपुसकवेद इष्ट पाककी अग्निसे समान हाता है ।

हुंका—तपुसकवेद इष्ट पाककी अग्निसे समान क्यों हाता है ?

समाधान—क्योंकि वह एक विशेष प्रकृति है ।

⊗ अससे सम्भविमप्यात्वका जपन्य अनुभाग अनन्त गुणा है ।

§ ४४१ क्योंकि वह सर्वपाती और द्विस्थानिक होता है । तात्पर्य यह है कि तपुसकवेद का जपन्य अनुभाग वैरापाती और एकस्थानिक है, और सम्भविमप्यात्वका जपन्य अनुभाग सर्वपाती और द्विस्थानिक है अतः वह अससे अनन्तगुणा है ।

⊗ अससे अनन्तानुबन्धिमामका जपन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४४२ हुंका—सम्भविमप्यात्वके जपन्य अनुभाग की तरह सर्वपाती और द्विस्थानिक हाता हुंका भी अनन्तानुबन्धी मामका जपन्य अनुभाग अनन्तगुणा कैसे है ?

समाधान—सम्भविमप्यात्वके जपन्य रूपकेसे लेकर अनन्तानुबन्धी कृपायोंकी रचनक रचना आकरिथत है, क्योंकि वह सर्वपाती है । अतः अनन्तानुबन्धीमे संयुक्त हमेके प्रथम समयमें जपन्य अनुभागवन्धके रूपकेकी रचना भी सम्भविमप्यात्वके जपन्य अनुभागरूपकेसे प्रारम्भ होती है । इस प्रकार प्रारम्भ होकर भी अनन्तानुबन्धी कृपायोंके जपन्य अनुभाग

मिच्छत्तजहण्णफइयादो उवरिमणंताणि फइयाणि गतृणाणंताणुवंधीणं जहण्णाणुभाग-
 ट्ठाणस्स फइयरयणा परिसमप्पदि । कुटो एट्ठ णव्वदे ? उवरिमआटेसप्पावहुअमृत्तादो ।
 सम्मामिच्छत्तउक्कस्साणुभागो पुण मिच्छत्तजहण्णफइयाणुभागादो अणंतगुणहीणो; तत्तो
 हेट्ठिमउव्वक्कावट्ठाणादो । सम्मामिच्छत्तजहण्णाणुभागो पुणो सगुक्कस्साणुभागादो अणत-
 गुणहीणो, सखेज्जेसु अणंतगुणहाणिऊट्ठएसु पदिदेसु पत्तजहण्णभावादो । तदो सम्मा-
 मिच्छत्तजहण्णाणुभागादो अणताणुवधिमाणजहण्णाणुभागो अणतगुणो त्ति सिद्ध ।

☉ कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४४३. केत्तियमेत्तेण ? अणतफइयमेत्तेण । सेसं सुगम ।

☉ मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४४४. केत्तियमेत्तो विसेसो ? अणंतफइयमेत्तो ।

☉ लोभस्स जहण्णाणुओ अणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४४५. केत्तियमेत्तो विसेसो ? अणतफइयमेत्तो । कुटो ? साभावियादो ।

स्थानके स्पर्धकोंकी रचना मिथ्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे ऊपर अनन्त स्पर्धक जाकर समाप्त होती है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना ?

समाधान—आगे आदेश की अपेक्षा अल्पबहुत्वका प्रतिपादन करनेवाले सूत्रसे जाना ।

सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अनुभाग तो मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागस्पर्धकसे अनन्तगुणा
 हीन है, क्योंकि वह उससे अधस्तन उर्ध्वमे अवस्थित है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य
 अनुभाग अपने उत्कृष्ट अनुभागसे अनन्तगुणा हीन है, क्योंकि सत्यात् अनन्तगुणाहानि काण्डकों
 के होनेपर उसे जघन्यपना प्राप्त होता है । अर्थात् उत्कृष्ट अनुभागमें जब सख्यात् अनन्तगुण
 हानि काण्डक होते हैं तब वह उत्कृष्ट अनुभाग जघन्यपनेको प्राप्त होता है अतः उससे वह
 अनन्तगुण हीन है । अतः सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य
 अनुभाग अनन्त गुणा है यह सिद्ध हुआ ।

* उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४४३ शंका—अनन्तानुबन्धी मानके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य
 अनुभाग कितना अधिक है ?

समाधान—अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है ।

शेष सुगम है ।

* उससे अनन्तानुबन्धि मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४४४ शंका—कितना अधिक है ।

समाधान—अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है ।

* लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४४५ शंका—कितना विशेष अधिक है ?

समाधान—अनन्त स्पर्धकमात्र अधिक है ? क्योंकि ऐसा होना स्वाभाविक है ।

॥ इस्सस्स जहयणाणुभागो अणत्तगुणो ।

§ ४४६ कुदो ? पुम्भिन्नस्स पच्चमापंचादो । स्ववगसेवीए अणत्तगुणहाणि-
 क्कमेण संस्संजचार पच्चपादइस्साणुमागादो अणत्ताणुबंधिसोमजहण्णाणुभागो कबमणत्त-
 गुणहीणो ? ज, इस्सस्स अणत्तगुणहाणिवारेहिंतो अणत्ताणुबंधिसांभाणुभागवपस्स
 अणत्तगुणहाणिवाराणमसंस्संजगुणत्तहो । तं जहा—सुद्धमअणत्ताणुबंधिसोमसव्यमह
 ण्णाणुभागबंधादो त्त्पाओमाभिसुद्धवादरेइदियस्स अणत्ताणुबंधिसोमजहण्णाणुभागबंधो
 पइमसमइओ अणत्तगुणहीणो । विदियसमए तस्सेव जहण्णाणुभागबंधो ततो अणत्त-
 गुणहीणो । एवं जेद्वं चाव चवरि अंतोसुद्धत्त गंतुण हिदसम्भिसुद्धवादरेइदियपरिम
 समयसक्कस्सदिसोहीए वद्वसोमजहण्णाणुभागबंधो ति । ततो त्त्पाओमाभिसुद्धवेइ
 दियजहण्णाणुभागबंधो अणत्तगुणहीणो । एवं विदियसमयप्यहुदि अंतोसुद्धत्तकासमणत्त
 गुणहीणाए सेहीए जेद्वं चाव सम्भिसुद्धवेइदिएव वद्वजहण्णाणुभागबंधो ति । एवं
 वेइदिय-चवरिदिय-असण्णिपबंधिदिएसु पादेअंतोसुद्धत्तकासमणत्तगुणहीणाए सेहीए

॥ वससे हास्यका अप्पय अनुमाग अनन्तगुणा है ।

§ ४४६ क्योंकि अमन्तानुबन्धी लोमका न्हीन अनुमागबन्ध है इसलिय वसका हास्यसे
 अप्पय अनुमाग अनन्तगुणा है ।

शुद्धा—अप्य मेषीमें अमन्तगुणवर्णनाक्रमसे संख्यातचार पाठके प्राप्त हुए हास्यके अनु-
 मागसे अमन्तानुबन्धी लोमका अप्पय अनुमाग अमन्तगुणा हीन कैसे है ?

समाधान—न्ही क्योंकि हास्यमें किततीचार अनन्तगुणहानि हायी है उन चारोंसे अन-
 न्तानुबन्धी लोमके अनुमागबन्धमें अनन्तगुणहानि हानेके चार असंख्यातगुणों हैं । सुत्तासा इस
 प्रकार है—सुद्धम एकेन्द्रिय बीजके अनन्तानुबन्धी लोमका वा सबसे अप्पय अनुमागबन्ध होता
 है वससे अपने योग्य विद्वत् परिणामवाले बादर एकेन्द्रियके प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धी लोमका
 ओ अप्पय अनुमागबन्ध होता है वद्व अनन्तगुणा हीन है । दूसरे समयमें क्सा वादर एन्द्रिय
 बीजके ओ अप्पय अनुमागबन्ध होता है वद्व प्रथम समयमें हावेवाला अनुमागबन्धसे अनन्त-
 गुणा हीन है । इस प्रकार इस क्रमसे ऊपर एक एक समय बढ़ते बढ़ते अन्तर्मुहूर्त प्रमाय्य समय
 बिताकर स्थित हुए सबसे विद्वत् बादर एकेन्द्रियके अन्तिम समयमें हानेवाली एकद्व विद्वत्तिसे
 बाँचे गये लोमके अप्पय अनुमागबन्ध पर्यन्त ले जाता चाहिये । सबसे विद्वत् बादर एकेन्द्रियके
 अन्तिम समयमें एकद्व विद्वत्तिसे आमका वा अप्पय अनुमागबन्ध होता है वससे अपने योग्य
 विद्वत् परिणामी वा इन्द्रिय बीजके प्रथम समयमें होवेवाला अप्पय अनुमागबन्ध अनन्तगुणा
 हीन है । इसी प्रकार दूसरे समयमें लेकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाय्य समय बिताकर स्थित हुए सबसे
 विद्वत् वा इन्द्रिय बीजके द्वारा बाँचे गये अप्पय अनुमागबन्ध पर्यन्त अनन्तगुणी हीन श्रेणिरूप
 से ले जाता चाहिये । अर्थात् एक प्रकारके दो इन्द्रियके प्रथम समयमें हानेवाले अप्पय अनुमाग-
 बन्धसे दूसरे समयमें हानेवाला अप्पय अनुमागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । वससे तीसरे समय
 में होवेवाला अप्पय अनुमागबन्ध अनन्तगुणा हीन है । इसी प्रकार आगे भी अन्तिम समय
 पर्यन्त आमना चाहिये । इस प्रकार वेन्द्रिय, बीन्द्रिय और असंक्षिप्येन्द्रियसे प्रत्येक

१ वा प्रती इहो इति चो बोधित । २ वा प्रती अर्बत्तगुणा एवं इति पाठः । ३ वा प्रती
 अर्बत्तगुणाए सेहीए इति पाठः ।

अणुसंधिय णेदन्व जात्र असण्णिपंचिदियमव्युत्सविमोहीण वद्धजहण्णाणुभागवंगो
त्ति । पुणो असण्णिपंचिदियचरिमविसोहीण वद्धजहण्णाणुभागवंगो तप्पाओग्गविमुद्द-
सण्णिपंचिदिण पढमसमयसजुत्तेण वद्धजहण्णाणुभागो अणतगुणहीणो त्ति । एटासि
पंचएहमद्धाण जत्तिया समया तत्तिया चेय जेण अणंतगुणहाणिवारा तेण ततो असंखेज्जा-
गुणत्तं सिद्ध । इस्साणुभागस्स अतरकरणे कट्टे पन्ना मृहुमणिगोट्टजहण्णाणुभागेण
सरिसत्तमुवगयस्स अणतगुणहाणिवारा अमखेज्जा क्किण्ण हांति ? ण, इस्साणुभागसत्तस्स
अणुसमओवट्टणाए अभावादो । ण च कइयघादेण समुप्पण्णअणतगुणहाणीण चारा
असंखेज्जा अत्थि, खवगसेदिअद्धाए असंखेज्जाअणुभागकंडयउकीरणद्धानमभावादो ।

❀ रवीए जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४४७. कुदो ? पयडिविसेसेण ससागवत्थाए अणंतगुणक्कमेण अवहाणादो ।

❀ दुगुंछ्राए जहण्णाणुभागो अणतगुणो ।

§ ४४८. कुदो ? पयडिविसेसादो ।

❀ भयस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४४९. सुगम ।

प्रथम समयसे लगाकर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त, अनन्तगुणहीन गुणश्रेणि क्रमसे होनेवाले जघन्य अनुभागबन्धको असक्षी पञ्चेन्द्रियके सर्वोत्कृष्ट त्रिशुद्धिसे बाधे गये जघन्य अनुभागबन्ध पर्यन्त ले जाना चाहिये । पुन असक्षी पञ्चेन्द्रियके अन्तिम त्रिशुद्धिसे बाधे गये जघन्य अनुभाग-बन्धसे तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणामवाले सक्षी पञ्चेन्द्रियके द्वारा संयुक्त होनेके प्रथम समयमें बाधा गया जघन्य अनुभाग अनन्तगुण हीन होता है । एकेन्द्रियमे लेकर पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त इन पाँचो अन्तर्मुहूर्तोंके जितने समय हाते हैं यत उतने ही अनन्तगुणहानिके वार है अतः हास्यकी अनन्तगुणहानिके वारोसे अनन्तानुबन्धी लोभके जघन्य अनुभागबन्धकी अनन्तगुणहानिके वार असख्यातगुणे हैं यह सिद्ध हुआ ।

शंका—हास्यके अनुभागका अन्तरकरण करने पर पाँछे वह अनुभाग सूक्ष्म निगोदिया जीवके जघन्य अनुभागके समान हो जाता है, अत उसकी अनन्तगुणहानिके वार असख्यात क्यो नही होते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि हास्यके अनुभागसत्कर्मका प्रति समय अपवर्तनघात नहीं होता है । और काण्डकघातसे उत्पन्न अनन्तगुणहानिके वार असख्यात हो नहीं सकते, क्योंकि क्षणिक-श्रेणिके कालमें असख्यात अनुभागकाण्डकोंके उत्कीरणकालका अभाव है ।

❀ उससे रतिका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४४७. क्योंकि प्रकृति विशेष होनेके कारण ससार अवस्थामे रतिकर्म अनन्तगुणरूपसे अवस्थित है ।

❀ उससे जुगुप्साका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४४८. क्योंकि जुगुप्सा भी एक प्रकृति विशेष है ।

❀ उससे भयका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४४९. यह सूत्र सुगम है ।

⊗ सोगस्त जह्यप्याणुभागो अयतगुणो ।

। ४५० सुगम ।

⊗ अरवीए जह्यप्याणुभागो अयतगुणो ।

। ४५१ एदेसि ऋणोक्तसायायां नदि वि एकस्मि चेव द्वाने जह्यप्याणुभाग-
संतकम्प भादं तो वि अण्णोण पेक्खिऊण अणंतगुणा जादा, पयडिमिसैसादो । मह
द्वानुभागायां महल्ल मज्जुभागसंहरप पदिदे वि मयसेसाणुभागो स्ववगसेहीए वि
अयांतगुणक्रमेण वेददि ति मणिदं होदि ।

⊗ अपयक्खलाधमाधस्त जह्यप्याणुभागो अयतगुणो ।

। ४५२ कुदो ? सुदुमणिगोदेसु पचनहण्णाणुभागत्तादो । स्ववगसेहीए मह
कसायायां महण्णसामित किण्ण दिण्णं ? अंतरकरणे अह्ये चेव विण्णत्तादो । अंतर
करणे कदे जाणि कम्माणि अण्णंति त्थेसिमणुभागसंतकम्प सुदुमेइदिपसण्णनहण्णाणु
भागसंतकम्मादा अणंतगुणहीण होदि, ण अण्णेसिमिदि मणिदं होदि ।

⊗ कोपस्त जह्यप्याणुभागो विसैसाहिणो ।

। ४५३ केत्तियमेत्तेण ? अणतकरपमेत्तेण ।

⊗ अससे शोकका अपन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

। ४५४ यह सूत्र सुगम है ।

⊗ अससे अरतिका अपन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

। ४५५ यद्यपि इत ज नोकपायोका अपन्य अनुभागसंतकर्म एक ही स्थानपर हो जाता है
तो भी एक दूसरेके देखते हुए अनन्तगुणा है, क्योंकि मल्लेक भवति मिल है । तात्पर्य यह है कि
बड़े अनुभागका बड़े अनुभाग काण्णकोमिं शेष्य कर देने पर भी बाकी बचा हुआ अनुभाग अपक
कोहीमें भी अनन्तगुणे रूपसे ही स्थित रहता है ।

⊗ अससे अमत्याख्यानावरण मानका अपन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

। ४५६ क्योंकि सूत्रमिमादिद्या जीवोमिं वसका अपन्य अनुभाग पाया जाता है । अर्थात्
ज नोकपायोका अपन्य अनुभाग अण्णकोमिं पाया जाता है और अमत्याख्यानावरण मानका
अपन्य अनुभाग सूत्रमिमादिद्या पाया जाता है अत यह अनन्तगुणा है ।

द्वंका—आठ कपायोका अपन्य स्वमित्त्व अण्णकोमिं कयो न्ही दिया ?

समाधान—क्योंकि अंतरकरण किसे बिना ही भाठो कपाय नष्ट हो जाती हैं । तात्पर्य यह
है कि अंतरकरण करनेपर जो कम रहत हैं उनका अनुभागसंतकर्म सूत्रमिमादिद्या जीवके सबसे
अपन्य अनुभागसंतकर्मसे अण्णकोमिं हीन है, अण्णको न्ही ।

⊗ अससे अमत्याख्यानावरण कोपका अपन्य अनुभाग विशुप अपिक है ।

। ४५७ द्वंका—कितना अपिक है ?

समाधान—अनन्त रूपकमात्र अपिक है ।

❀ मायाए जहणणाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५४. सुगम ।

❀ लोभस्स जहणणाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५५. सुगमं ।

❀ पच्चक्खाणभाणस्स जहणणाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४५६. कुदो ? देससजमघादिअपच्चक्खाणावरणाणुभागादो पच्चक्खाणावरणाणुभागस्स अणंतगुणत्ताभावे तस्स देससंजमादो अणंतगुणसयलसंजमघाइत्ताणुववत्तीदो ।

❀ क्रोधस्स जहणणाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५७. केत्तियमेत्तेण ? अणंतफहयमेत्तेण ।

❀ मायाए जहणणाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५८. सुगम ।

❀ लोभस्स जहणणाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४५९. सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स जहणणाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६०. पच्चक्खाणावरणाणुभागादो मिच्छत्ताणुभागेण समाणेण होद्वं, सब्ब

* उससे अप्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५४ यह सूत्र सुगम है ।

* उससे अप्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५५ यह सूत्र सुगम है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४५६ क्यो कि देशसयमके घाती अप्रत्याख्यानावरण कषायके अनुभागसे प्रत्याख्यानावरण कषायका अनुभाग यदि अनन्तगुणा न हो तो वह देशसयमसे अनन्तगुणे सकलसयमका घाती नहीं हो सकता है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५७ शका—कितना अधिक है ?

समाधान—अनन्त स्पर्धक मात्र अधिक है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५८ यह सूत्र सुगम है ।

* उससे प्रत्याख्यानावरण लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४५९ यह सूत्र सुगम है ।

* उससे मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४६० शका—मिथ्यात्वका अनुभाग प्रत्याख्यानावरणके अनुभागके समान होना चाहिए,

द्वयपञ्चविसयसम्मत्त-संज्ञमपादित्तयेण दोषं समाजसुबलमादो षि । ण एस दोसो, सत्ति पइच्च मर्णत्तुणत्त पटि निरोहाभावादो । कञ्जदुवारेण दोषमणुभागानं समाजत्ते संते सत्तीए सगकञ्जमकुण्ठीए अस्मित्त कुदो गम्भदे । पमेयादो सम्पपञ्चपस्स मर्णत्त-गुणात्त म भिणवयणादो गम्भद ।

⊗ शिरयगईए जहण्णयमणुभागसत्तकम्म ।

। ४६१ सुगममेदं, महियारसंभावाणहत्तादो ।

⊗ सम्भवमाणुभागं सम्मत्त ।

। ४६२ कुदो ! अणुसमयमोवट्टणकुण्ठुप्पण्णकदकरणिञ्जपरिसमयसम्म-

त्ताणुभागसत्त गुणसेट्ठिचरिमभित्सेगावट्ठिवस्स गहणादा ।

⊗ सम्मामिञ्छत्तस्स जहवणाणुभागो अणत्तगुणो ।

। ४६३ कुदो ! सम्भवादिबिहाणियत्तादो । सम्मत्तमहण्णाणुभागो षि सम्भवादी बिहाणियो षि नासंक्कभिञ्जं, तस्स देसपादिपगट्ठाणियत्तादो । कयमेत्य सम्मा मिञ्चत्तुकस्साणुभागसत्त महण्णवपत्तो षि नासंक्कभिञ्जं, ववप्सिभव्यापमस्सिरुणवस्स तन्ववपत्तोववत्तीदो ।

क्योंकि मिथ्यात्व सब द्रव्य और पर्यायोंका विषय करनेवाले सम्यक्त्वका घातक है और प्रत्याख्यानावरण कृपाय सब द्रव्य-पर्यायविषयक संयमका घातक है, अतः शर्मोमें सम्मानता पाई जाती है।

समाधान—यह शेष ठीक नहीं है क्योंकि शक्तिही अपेक्षा प्रत्याख्यानावरणके अनुभागसे मिथ्यात्वके अनुभागके अन्तगुणसे हमें कोई विरोध नहीं है।

संज्ञा—कार्यही अपना जब शान्तों कर्मोंका अनुभाग समान है तो मिथ्यात्वम वत्त शक्तिका अस्तित्व कैसे जाना जा सकता है या कि अपना कार्य ही नहीं करती है।

समाधान—जैसे मिनवचनसे पर्यायों से उत्पत्ती सब पर्यायों का अन्तगुणत्व जाना जाता है वही प्रकार वही मिनवचनसे यह भी जाना जाता है।

⊗ अब नरकगतिमें अपन्य अनुभागसत्कर्मको कहते हैं।

। ४६१ वह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकार की सम्हाल करना इसका काय है।

⊗ सम्यक्त्व प्रकृतिकर अपन्य अनुभाग सबसे मन्द है।

। ४६० क्योंकि यहाँ पर प्रति समव अपवर्तन घातके करनेसे कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वका या अनुभाग बरतन होता है अर्थात् शेष बचता है या कि गुण शेषके अन्तिम नियममें अवस्थित है, इसका ग्रहण किया है।

⊗ वससे सम्यग्मिथ्यात्वका अपन्य अनुभाग अनन्तगुणा है

। ४६३. क्योंकि वह सर्वपाती और त्रिस्वयनिक है। सम्यक्त्वका अपन्य अनुभाग भी सर्वपाती और त्रिस्वयनिक है ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि वह देशपाती और एकस्वयनिक है। पूर्वोक्तमें सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तगुण अनुभागका अपन्य शक्तसे व्यपदेशा क्यो किवा ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि व्यपदेशित्वाच की अपेक्षा एकदृशका अपन्य

❀ अयंताणुबंधिमाणस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो ।

§ ४६४. सम्मामिच्छत्तुक्स्सफदयाणुभागादो अणंतगुणो होदूणावट्ठिमिच्छत्त-
जहण्णफदएण समणं होदूण पुणो उवरि वि अणतेसु फदएसु अणंताणुबंधिमाणु-
भागस्स फदयरयणाए उवलंभादो । ण च संजुत्तपढमसमए वज्झमाणजहण्णाणुभागो^१
जहण्णेगफदयमेत्तो, असखेज्जलोगमेत्तद्धाणसहियस्स एगफदयत्तविरोहादो ।

❀ कोधस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६५. सुगमं ।

❀ मायाए जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६६. सुगमं ।

❀ लोभस्स जहण्णाणुभागो विसेसाहिओ ।

§ ४६७. सुगमं ।

❀ सेसाणि जघा सम्मादिट्ठीए बंधे तथा ऐदब्वाणि ।

§ ४६८. एदस्स अत्थो वुच्चदे, त जहा—सम्मादिट्ठिअणुभागबन्धस्स जहा

शब्दसे व्यपदेश हो सकता है अर्थात् उत्कृष्टमें जघन्यपनेका आरोप करके उत्कृष्ट को जघन्य कह दिया है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है ।

§ ४६४ क्योंकि सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागस्पर्धकोंके अनुभागसे अनन्तगुणा होकर अवस्थित हुए मिध्यात्वके जघन्य स्पर्धकसे समान होकर पुन आगे भी अनन्त स्पर्धकोंमें अनन्तानुबन्धी मानके अनुभागकी स्पर्धक रचना पाई जाती है, अत सम्यग्मिध्यात्वके जघन्य अनुभागसे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । शायद कहा जाय कि अनन्तानुबन्धीका पुन संयोजन होनेके प्रथम समयमें बंधनेवाला जघन्य अनुभाग जघन्य एक स्पर्धकमात्र है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जो अनुभाग असख्यात लोक मात्र षट्स्थान सहित है उसके एक स्पर्धक मात्र होनेमें विरोध है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी क्रोधका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४६५ यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी मायाका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४६६. यह सूत्र सुगम है ।

❀ उससे अनन्तानुबन्धी लोभका जघन्य अनुभाग विशेष अधिक है ।

§ ४६७ यह सूत्र सुगम है ।

❀ शेष कर्मोंका जैसे सम्यग्दृष्टिके बन्धमें अल्पबहुत्व है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिये ।

§ ४६८ इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—सम्यग्दृष्टि के अनुभागबन्धका

१. ता० प्रतौ जहयणाणुभागे (गो), आ० प्रतौ जहयणाणुभागेण इति पाठः ।

अप्याबहुभं परुविदं तथा एत्य वि परुवेपथं, अपिसेसादो । संपहि संप्रप्याबहुभादो
 श्लेषयरविसेसाशुविदं सतकम्मप्याहुअमेपमशुगंतध्वं । तं अहा—अर्णताशुबंधिलीम
 अहण्णाशुभागस्सुवरि इस्सअहण्णाशुभागा अर्णत्तुणो, असण्णिपच्छायदपेरइपइद-
 ससुप्पत्थियमहण्णाशुभागम्महादो । रदीए अहण्णाशुभागा अर्णत्तुणो । पुरिसं
 अहण्णाशुभागो अर्णत्तुणो । इत्थि० अहण्णाशुभागा अर्णत्तुणो । इत्थंदा०
 अहण्णाशुभागो अर्णत्तुणो । मय० अह० अर्णत्तुणो । सोम० अह०
 अर्णत्तुणो । अरइ० अह० अर्णत्तुणो । जसुंसयवेइस्स अह० अर्णत्तुणो ।
 अपयवत्ताणमाण० अह० अर्णत्तुणो । कोह० अहण्णाशुभागो विसेसाहिमो ।
 माया० अह० विसे० । सोम० अह० विसे० । पयवत्ताणमाण० अहण्णाशुभागो
 अर्णत्तुणो । कोह० अह० विसेसाहिमो । माया० अह० विसे० । सोम० अह०
 विसे० । माणसंभसण० अहण्णाशुभागो अर्णत्तुणो । कोइसंभस० अहण्णाशुभागो
 विसेसाहिमो । मायासंभ० अह० विसे० । सोमसंभ० अह० विसे० । मिच्छत्तअह
 ण्णाशुभागो अर्णत्तुणो । एवं पुत्थिसुत्थस्सिदूण अहण्णाशुभागस्स अप्याबहुभ-
 परुवणं करिय संपहि उच्चारम्मस्सिरुण परुवेमो ।

मिस प्रकार अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये, क्योंकि शून्यमें कोई अन्तर
 नहीं है। फिर भी अनुभागबंधके अल्पबहुत्वसे बोधी ही विरोधवाको लिये हुए अनुभागसत्कर्मक
 अल्पबहुत्व जानना चाहिये। पना—अनन्तानुबन्धी कामके अथव्य अनुभागके ऊपर हास्यका
 अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि यहाँ असंखी पन्नेत्रिकसे आकर उत्पन्न हुए मारकीके
 इतसुत्पत्तिके अथव्य अनुभागका महत्व किया है। उससे रथिका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा
 है। उससे पुत्रवेइका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे स्त्रीवेइका अथव्य अनुभाग
 अनन्तगुणा है। उससे भुगुप्ताका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे मयका अथव्य
 अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे शोकका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अरथिका
 अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे न्युंसकवेइका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे
 अप्रत्याख्यानावरण मानका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे अप्रत्याख्यानावरण श्लेषका
 अथव्य अनुभाग विरोध अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण माया का अथव्य अनुभाग विरोध
 अधिक है। उससे अप्रत्याख्यानावरण सोमका अथव्य अनुभाग विरोध अधिक है। उससे
 प्रत्याख्यानावरण मानका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे प्रत्याख्यानावरण श्लेषका
 अथव्य अनुभाग विरोध अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण मायाका अथव्य अनुभाग विरोध
 अधिक है। उससे प्रत्याख्यानावरण सोमका अथव्य अनुभाग विरोध अधिक है। उससे संज्ञकृत
 मानका अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। उससे संज्ञकृत श्लेषका अथव्य अनुभाग विरोध
 अधिक है। उससे संज्ञकृत मायाका अथव्य अनुभाग विरोध अधिक है। उससे संज्ञकृत सोमका
 अथव्य अनुभाग विरोध अधिक है। उससे मिच्छात्व का अथव्य अनुभाग अनन्तगुणा है। इस
 प्रकार बुद्धिसूत्रके आशयसे अथव्य अनुभागके अल्पबहुत्वका कथन करते अथ उच्चारणाका
 आशय लेकर कथन करते हैं।

§ ४६६. जहएणए पयद । दुविहो णिदोसो—ओवेण आदेसेण य । तत्थ ओघमस्सिदूण भएणमाणे जहा चुण्णिणसुत्ते परूपणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो । एवं मणुसतियस्स । णवरि मणुसपज्जत्तप्पावहुए भएणमाणे पुरिस-वेदजहण्णाणुभागस्सुवरि णवुंसय० जहएणएणुभागो अणंतगुणो । सम्मामि० जह० अणंतगुणो । अणताणुवंधिमाण० जहएणएणुभागो अणंतगुणो । कोधे० विसेसा० । मायाए विसे० । लोहे० विसे० । तदो हस्सादिपरिवाडीए छण्णोकसाया जहाकम-मणतगुणा होऊण पुणो इत्थि० जहएणएणुभागो अणतगुणो । कुदो ? चरिमाणुभाग-खंडए जादजहएणएणुभागत्तादो । अपच्चक्खाणमाणजहएणएणुभागो अणंतगुणो । सेसं पुव्वं व । मणुसिणीसु सम्मत्तजहएणएणुभागस्सुवरि इत्थि० जहएणएणुभागो अणंतगुणो । सम्मामि० जह० अणंतगुणो । अणताणुवंधिमाण० जह० अणतगुणो । कोहे० विसे० । मायाए विसे० । लोहे० विसे० । तदो छएणोकसायहस्सादिपरि-वाडीए जहाकमणंतगुणा होऊण पुणो पुरिस० जहएणएणुभागो अणंतगुणो । णवुस० जह० अणंतगुणो । अपच्चक्खाणमाण० जह० अणतगुणो । उवरि णत्थि विसेसो ।

§ ४७०. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु जहा चुण्णिणसुत्तम्मि णेरइओघप्पा-वहुअपरूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो । एव पढमपुढवि०-तिरि-

§ ४६९ जघन्यके कथनका अवसर है । निर्देश दो प्रकारका है—आंध और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कथन करने पर जैसा चूर्णिसूत्र में कथन किया है वैसा ही यहाँ भी करना चाहिये । उससे इसमें कोई अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु मनुष्यपर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्वका कथन करते हुए इतना विशेष जानना चाहिए कि पुरुषवेदके जघन्य अनुभागसे आगे नपुसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे क्रोधका विशेष अधिक है । उससे मायाका विशेष अधिक है । उससे लोभका विशेष अधिक है । उससे हास्य आदिके क्रमसे छ नोकषायोंका जघन्य अनुभाग क्रमानुसार अनन्तगुणा अनन्तगुणा होता हुआ पुन. स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है, क्योंकि उसका अन्तिम अनुभागकाण्डकमें जघन्य अनुभाग प्राप्त होता है । उससे अप्रत्याख्यानावरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । शेष पूर्ववत् जानना चाहिए । मनुष्यनियोंमें सम्यक्त्वके जघन्य अनुभागसे आगे स्त्रीवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे अनन्तानुबन्धी मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे क्रोधका विशेष अधिक है । उससे मायाका विशेष अधिक है । उससे लोभका विशेष अधिक है । उससे हास्य आदिके क्रमसे छह नोकषायों का जघन्य अनुभाग क्रमानुसार अनन्तगुणा होता हुआ पुन. पुरुषवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे नपुसकवेदका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । उससे अप्रत्याख्याना-वरण मानका जघन्य अनुभाग अनन्तगुणा है । आगे कोई विशेषता नहीं है ।

§ ४७०. आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें जैसे चूर्णिसूत्रमें सामान्य नारकियोंमें अल्प-बहुत्वका कथन किया है वैसा ही यहाँ भी करना चाहिये, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

क्लोपं पंचिदियतिरिक्त्वदुर्ग [देव] सोहम्मादि जाव सम्बद्धसिद्धि ति । विदियादि जाव सत्वमि ति एवं चेत् । नवरि सम्बत्त० अहण्यं णस्यि । एव पंचितिरि० भोगिणी-पंचि०तिरि०अपञ्ज०-मजुसमपञ्ज० भवण०-भाण०-जाइसिए ति ।

एवमप्यत्पहुमाजुगमो समतो ।

॥ जहा वषे भुजगार-पदणिकसेव-बहुीभो तथा सतकम्मे वि काय व्याधो ।

॥ ४७१ अष्टमागवषे जहा भुजगार-पदणिकसेव-बहुीण पक्षणा कदा तथा एव वि कायव्या, विसैसामानादा । एवं बुध्णिणसुतेण सूइदमत्वाणं उचारणमस्सि-दूण पक्षणं कस्सामो । भुजगारनिहत्तोए तस्य इमाणि तेरस अजियोगहाराणि पाद व्याणि मवंति—समुच्चितादि जाव अप्याइए ति । तस्य समुच्चिताए बुध्दिहो जिहोसो—ओषेण आदेसण य । ओषेण मिच्छत्-वारसक०-णवणो० अस्सि भुज० अप्यदर०-अवह्दि० । सम्बत्त०-सम्भामि० अस्सि अप्यदर-अवह्दि०-अवत्तव्व० । अण-साजु०-वत्तक० अस्सि भुज०-अप्यदर० अवह्दि०-अवत्तव्व० ।

॥ ४७२ आइसेण जेरइएसु सत्तावीसपयडीणधोपं । सम्भामि० अस्सि अवह्दि०-अवत्तव्व० । एवं पदमजुइदि०-तिरिक्त्वतिय-देवोपं सोहम्मादि जाव सहस्तारो ति ।

इसी प्रकार पहली पृथिवी सामान्य विषय पञ्चेन्द्रिय विषय पञ्चेन्द्रियविषय पर्याप्त, सामान्य देव और सौपर्य स्वर्गसे लेकर सर्वसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वका अल्प अनुमान नहीं होता । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियविषयमानिती पञ्चेन्द्रियविषय अपत्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त मन्वन्तरी व्यन्तर और स्वोत्थी देवोंमें जानना चाहिए ।

इस प्रकार अस्पष्टतुलानुगम समाप्त हुआ ।

॥ जैसे वनमें सुन्नकार, पदनिक्षेप और इन्द्रिका कर्मण किया जैसे ही सत्तामें भी करना चाहिए ।

॥ ४७१ अनुमानाकर्ममें जैसे सुन्नकार, पदनिक्षेप और इन्द्रिका कर्मण किया जैसे ही पूर्वो भी करना चाहिए, वान्तोंमें जैसे विशेष मर्त्त है । इस प्रकार बुध्दिस्वसे सुधित कर्मण कथाव्याका अमन्वन्त लेकर कर्मण करते हैं । सुन्नकार विमर्त्तमें वे तरह अनुबोधहार जानने चाहिये—समुत्थीवमासे लेकर अस्पष्टतुल्यपर्यन्त । वनमेंसे समुत्थीवना की अपेक्षा निर्देरा ही प्रकारका है—ओष और आवेरा । ओषसे मिष्मत्त्व, बाह्य कपाव और नव माकपावों की सुन्नकार, अस्पष्ट और अवस्थितविमर्त्तिया होती हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिष्मत्त्वकी अस्पष्ट, अवस्थित और अवत्तव्वविमर्त्तिया होती हैं । अन्तःतुल्यवत्तुत्त्व की सुन्नकार, अस्पष्ट, अवस्थित और अवत्तव्वविमर्त्तिया होती हैं ।

॥ ४७२ आवेरासे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतिवों की ओषके समान विमर्त्तिया होती हैं । सम्यग्मिष्मत्त्व की अवस्थित और अवत्तव्व विमर्त्तिया होती हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवी, सामान्य विषय पञ्चेन्द्रियविषय पञ्चेन्द्रिय विषय पर्याप्त सामान्य देव और सौपर्य स्वर्गसे

‡ ४७४ सामिताणुगमेण दुबिहो भिहोसो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण मिच्छत्त-वारसक०-ज्वणोक्क० सुम० कस्त ? अणुदरस्त मिच्छाइडिस्त । अप्प वर०-अबडि० कस्त ? अणुदर० सम्मादिडिस्त मिच्छाइडिस्त वा । सम्पत्त-सम्मा मिच्छत्ताणं अप्पदर०-अवत्तव्व० कस्त ? सम्माइडिस्त । अबडिद० अणुद० सम्मा दिडिस्त मिच्छाइडिस्त वा । अणताणु० चत्तक० मिच्छत्तमंगा । णपरि अवत्तव्व० कस्त ? मिच्छादिडिस्त ।

‡ ४७५ आदसण णेरइएमु सत्तापीसंपयडीणमोपमंगो । सम्मामि० अबडि० अबत्तव्व० ओपमंगो । एवं पडमजुडिभि० तिरिक्खविप-देवोपं सोहम्मादि षाष सह स्तारे ति । विदियादि षाष सत्तमि पि एवं पेव । णपरि सम्पत्तस्त सम्मामिच्छत्त मंगा । एवं पंविदियतिरिक्खमोणिणी-भवण०-वाण०-ओदिसिण ति । पंविदिय तिरिक्खअपज्ज -मजुसअपज्ज० लम्बीसंपयडीणं सुम०-अप्पदर०-अबडि० सम्पत्त सम्मामिच्छत्ताणमवडि० कस्त ? अणुद० मिच्छादिडिस्त । मजुसविपस्त ओपमंगो । आणदादि षाष णवगेवज्जा ति मिच्छत्त-वारसक०-ज्वणोक्क० अप्पद०-अबडि० ओपं । सम्पत्त-सम्मामिच्छत्त० देवोपं । अणताणु० चत्तक० सुम०-अवत्तव्व० कस्त ? मिच्छा

विमक्ति नहीं होती और अनुबिरा से लेकर सर्वव्यतिरिक्त तक ता केवल दो ही विमक्तियाँ होती हैं अस्वप्न और अवस्थित ।

‡ ४७६ स्वामित्तल्लुगमकी अपेक्षा निर्देरा दो प्रकारका है—ओप और आदेरा । ओपसे मिष्वात्व बाराह कपाय और नव नोकपायोंकी मुञ्जकारविमक्ति किसके होती है ? किसी एक मिष्पाएडि जीवके हाती है । अस्वप्न और अवस्थित विमक्ति किसके होती है ? किसी भी सम्पत्तएडि अथवा मिष्पाएडि जीवके होती है । सम्पत्त और सम्पत्तिष्वात्वकी अस्वप्न और अवत्तव्यविमक्ति किसके हाती है ? सम्पत्तएडि जीवके होती है । अवरियतविमक्ति किसी भी सम्पत्तएडि अथवा मिष्पाएडि जीवके हाती है । अमन्ताणुलम्बीअणुज्जकार मङ्ग मिष्पात्वकी तरह है । इतना किरोप है कि अवत्तव्यविमक्ति किसके हाती है ? मिष्पाएडिके हाती है ।

‡ ४७७ आदेरासे नारकिबोंमें सत्तारस प्रवृत्तियोंका ओप के समान है । सम्पत्तिष्वात्वकी अवस्थित और अवत्तव्यविमक्तिका मङ्ग ओपके समान है । इसी प्रकार पृथ्वी पृथिवी सामान्य तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त सामान्य देव और सीर्म्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्गलकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकिबोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना किरोप है कि सम्पत्त प्रवृत्तिका मङ्ग सम्पत्तिष्वात्वके समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपानिनी मन्वन्तासी अस्वप्न और न्याविपी देवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अर्थात् और मनुष्य अर्थात्तर्म्ममें लम्बीस प्रवृत्तियोंकी मुद्गगार अस्वप्न और अवस्थित तथा सम्पत्त और सम्पत्तिष्वात्वकी अवस्थितविमक्ति किसके हाती है ? किसी भी मिष्पाएडि जीवके होती है । तीन प्रकारके मनुष्योंमें आपके समान मंग है । आन्त स्वर्गसे लेकर मन्वरेवक तकके देवोंमें मिष्वात्व बाराह कपाय और नव माकपाय की अस्वप्न और अवस्थितविमक्तिका मङ्ग ओपके समान है । सम्पत्त और सम्पत्तिष्वात्व का मंग सामान्य देवोंकी तरह है । अमन्ताणुलम्बी

विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि सम्मतस्स सम्मामिच्छत्तभंगो । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए ति ।

§ ४७३. पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्जत्तएमु छव्वीसं पयडीणमत्थि भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणमत्थि अवट्ठिदं । मणुसतियस्स ओघभंगो । आणदादि जाव णवगेवज्जा ति वावीसं पयडीणमत्थि अवट्ठि०-अप्पदर० । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताण देवोघभंगो । अणंताणु०चउक्क० अत्थि भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि०-अवत्तव्व० । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठिसिद्धि ति सत्तावीसं पयडीणमत्थि अप्पदर०-अवट्ठि० । सम्मामि० अत्थि अवट्ठिदविहत्तिया । एव जाणिदूण णेदव्व जाव अणाहारि ति ।

लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यग्मिध्यात्व की तरह होता है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यश्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए ।

§ ४७३ पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियों की भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तियाँ होती हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्ति होती है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें ओघके समान भग है । आनत स्वर्गसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियों की अवस्थित और अल्पतर-विभक्तियाँ होती हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका सामान्य देवोंके समान भग है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क की भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तियाँ होती हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियों की अल्पतर और अवस्थित विभक्तियाँ होती हैं । सम्यग्मिध्यात्व की अवस्थितविभक्ति होती है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे अवक्तव्यविभक्ति सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीमें ही होती है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन होकर पुन उसका सत्त्व हो जाता है । तथा शेष दोनों प्रकृतियोंका भी अनादि मिथ्यादृष्टिके असत्त्व होता है और सम्यक्त्वके होने पर सत्त्व हो जाता है । तथा सादि मिथ्यादृष्टिके भी उद्वेलना कर देने पर इनका असत्त्व हो जाता है और सम्यक्त्वके होने पर पुन सत्त्व हो जाता है अन्य प्रकृतियोंमें यह बात नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतियोंमें भुजकारविभक्ति नहीं होती, क्योंकि इनका जो अनुभाग रहता है दर्शनमोह के क्षण कालमें वह घट तो जाता है, किन्तु बढ़ता कभी भी नहीं है, क्योंकि ये बन्ध प्रकृतिया नहीं हैं । आदेशसे नारकियोंमें सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिमें अल्पतरविभक्ति नहीं होती, क्योंकि वहाँ दर्शनमोह का क्षण नहीं होता । सम्यक्त्व प्रकृतिमें कृतकृत्यवेदक की अपेक्षा अल्पतर विभक्ति वहाँ होती है । जहाँ कृतकृत्यवेदक जन्म नहीं लेता, जैसे दूसरे आदि नरक और भवनत्रिकमें वहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिमें भा अल्पतरविभक्ति नहीं होती । मनुष्य अपर्याप्त और तिर्यश्च अपर्याप्तकों में सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिमें अवक्तव्य विभक्ति भी नहीं होती, क्योंकि वहाँ सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता । आनत से लेकर उपरिम प्रैवेयक पर्यन्त अनन्तानुबन्धी कषाय में तो भुजकार विभक्ति होती है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीका विसंयोजक मिथ्यात्वमें आकर पुन. इसका संयोजन करने पर अनुभाग को बढ़ाता है किन्तु अन्य किसी भी प्रकृति में भुजगार

§ ४७४ सामित्यानुगमेण दुबिहो गिहोसो—ओपेण भावसण य । ओपेण
 मिच्छत्त-वारसक०-भावणो० भूम० कस्त ? अणुदरस्त मिच्छादिद्विस्त । अणु
 दर०-अवदि० कस्त ? अणुदर० सम्मादिद्विस्त मिच्छादिद्विस्त वा । सम्मत-सम्मा
 मिच्छत्तार्ण अणुदर०-अवत्त्व० कस्त ? सम्मादिद्विस्त । अवदिद० अणुद० सम्मा
 दिद्विस्त मिच्छादिद्विस्त वा । अणुदरु०-अवत्त्व० मिच्छत्तर्णगा । अवरि अवत्त्व० कस्त ?
 मिच्छादिद्विस्त ।

§ ४७५ आदसेण जेरुपणु सचावीसंपयवीणपोषर्णगो । सम्मापि० अवदि०
 अवत्त्व० ओषर्णगो । एव पदमपुडपि० तिरिक्त्वविय-द्वोर्षं सोइम्मादि भाव स
 त्तारे चि । विदियावि जाम सत्तमि चि एव वेव । अवरि सम्मतस्त सम्मामिच्छत्त
 र्णगो । एव पंचित्तिपतिरिक्त्वजोणिजी-मपण०-बाण०-ओत्तिवि चि । पंचित्ति
 तिरिक्त्वअपत्त-मणुसमपत्त० इत्थीसंपयवीणं भूम०-अणुदर०-अवदि० अणुदर०
 सम्मामिच्छत्तार्णमवदि० कस्त ? अणुद० मिच्छादिद्विस्त । अणुदरु० ओषर्णगो ।
 आणदादि भाव अणुदरु० चि मिच्छत्त-वारसक०-अणुदरु० अणुदरु०-अवदि० अणुदरु०
 सम्मत-सम्मामिच्छत्त० द्वोर्षं । अणुदरु०-अवत्त्व० अणुदरु०-अवत्त्व० अणुदरु०-अवत्त्व०

विश्वकि नदी हाती और अनुदिश से लेकर सर्वोपसिद्धि तक का अणुदरु हात्ति-चोइ-
 ई अणुदरु और अणुदरु ।

इद्विस्स ? सेसपदानमोघभंगो । अणुदिसादि जाव सव्वट्टसिद्धि ति सत्तावीसंपयदीण
मप्पदर०-अवट्ठि० सम्मामि० अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० । एवं जाणिदूण णेदव्वं जा
अणाहारि ति ।

§ ४७६. कालाणुगमेण दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त
अट्ठकसाय--अट्ठणोक० भुज ज० एगसमओ, उक्क० अतोमु० । अप्पदर० जहण्णुक०
एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदो० असखे० भागेण
सादिरेथ । एवमणताणु० चउक्क० । णवरि अवत्तव्व० जहण्णुक० एगस० । सम्मत
अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मामि० अप्पदर० जहण्णुक० एगस०
दोण्हं पि अवट्ठि० ज० अतोमु०, उक्क० वेद्धावट्ठिसागरो० तीहि पलिदोवमस्स असखे०
भागेहि सादिरेयाणि । दोण्हं पि अवत्तव्व० जहण्णुक० एगस० । चदुसंज० भुज०
अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अतोमु० । अवट्ठि० मिच्छत्तभगो, धुवबंधितादो । सम्मा
दिट्ठिमि णिरंतरं वज्जभाणचदुसंजलणाणमणुभागस्स कथमवट्ठिट्तं, अणुभागखंडय-

चतुष्ककी भुजगार और अवक्तव्य विभक्तिया किसके होती हैं ? मिथ्यादृष्टिके हांतों हैं । शेष
पदोंका भग ओघके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी
अल्पतर और अवस्थित विभक्ति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती है ?
किसीके भी होती है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अल्पतर विभक्ति दर्शनमोहके क्षपकके होती
है और अवक्तव्य विभक्ति प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिके होती है, अतः दोनों विभक्तियाँ सम्यग्दृष्टिके
बतलाई हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके
मिथ्यात्वमें आकर पुन सयोजन करनेवाले के होती है अतः उसका स्वामी मिथ्यादृष्टि को
बतलाया है । शेष बाईस प्रकृतियों की भुजगार विभक्ति तो मिथ्यादृष्टिके ही होती है, क्यों कि
इनका अनुभाग मिथ्यादृष्टि ही बढ़ा सकता है । और अल्पतर तथा अवस्थित विभक्ति सम्यग्दृष्टि
के भी होती है और मिथ्यादृष्टिके भी । इसी प्रकार आदेशसे भी लगा लेना चाहिये ।

§ ४७६ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे
मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी भुजकारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित
विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्योपमका असख्यातवा भाग अधिक एक
सौ त्रेसठ सागर है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका काल जानना चाहिए । इतना विशेष है
कि अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतरविभक्ति
का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति
का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । दोनों ही प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका जघन्य
काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पत्योपमके तीन असख्यातवत्तें भाग अधिक दो छियासठ
सागर है । दोनों ही प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । चार
सज्वलनोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्त-
र्मुहूर्त है । अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है, क्योंकि सज्वलन कषाय ध्रुवबन्धी है ।

शंका—सम्यग्दृष्टिमें निरन्तर बंधनेवाली चारों सज्वलन कषायोंका अनुभाग अवस्थित

पादाभाषण सगापुभागसंवादी उपरि बंधेनापुभागफल्यवृद्धीए वि अभावादो च ।
 सरिसपणियपरमापुमकुभागे बंधमस्तिदृश वदुमाणे अपद्विदिगल्लणाए गल्लमाणे च
 कप्पमवद्विदत्तं संभवइ ! ज, अनुभागद्वाजस्स दम्बद्वियणयावर्लपणाए चरिमफइय
 चरिमवगणेगपरमापुमिद्वि अवद्विदस्स सगतोक्खित्तसरिसपणियापुभागत्तणेण अणासा
 रियअपुभागकंठयफाळिस्स अबद्धानिरोहादा' । एव वुरिस० । नवरि अप्पइ० ज०
 एमस०, उक्क० दो आवल्लियाओ समऊणामो ।

कैसे है ?

समाधान—एकतो वहाँ अनुभागका काण्डक पात नहीं होता है, दूसरे उसके जो अनुभाग
 की सत्ता होती है वससे ऊपर बंधके द्वारा अनुभाग स्वर्षके की वृद्धि नहीं होती, इसलिये वहाँ
 संस्कृतन कषायके अनुभागका अवस्थितपना बन जाता है ।

संज्ञा—कषय की अपेक्षा समान घनताले परमाणुओंके अनुभागकी वृद्धि हाते हुए और
 अवस्थितगल्लनाके द्वारा वसका गलन होने पर अवस्थितपना ऐसे संभव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यात्मिकनयकी अपेक्षा अन्तिम स्पष्टकी अन्तिम वर्णणाके
 एक परमाणुमें जो अनुभाग अवस्थित है और अपने भीतर छट्टा घनताले परमाणुओंके अनु
 भाग को गर्भित कर लेनेसे जिसके अनुभागाकाण्डकोकी प्रकृतियोंका अनुभाग अपसारित नहीं
 हुआ है उसका अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

इसी प्रकार पुनःपुनः आनना चरिए । इतना विरोध है कि पुनःपुनःकी अस्पतर विम-
 तिका सपन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम वा आकली है ।

विरोधार्थ—एक जीवके अनुभाग की लगातार वृद्धि कमसे कम एक समय और अधिक
 से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक वा सकली है, इसीलिये मुनकार विमतिका अल्प काल एक समय
 और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलावा है । अस्पतर विमतिमें भी यही बात है अर्थात् एक
 जीवके अनुभाग की लगातार वृद्धि कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त
 तक होती है किन्तु अन्तर्मुहूर्त तक अनुभाग की वृद्धि काण्डकपातके बाह ही होती है । अतः
 वहाँ मिन प्रकृतियोंका काण्डकपातके फलत् प्रति समय अनुभाग पटता जाकर क्षय होता है
 वहाँ ही इन प्रकृतियोंमें अस्पतर विमतिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है । अवच्छिन्न विमति
 का काल तो एक समयसे अधिक हो ही नहीं सकता क्योंकि प्रथम समयमें ही अवस्थितमान
 प्रकृतिका उत्कृष्ट हासामे पर अवच्छिन्न विमति होती है । अवस्थित विमतिका काल सन्ध्याकाल
 और सन्ध्यामिध्यातकमे अधन्यसे अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अतदि मिध्याच्छिन्न उपरामसम्बन्धका
 मासकर सन्ध्याकाल और सन्ध्यामिध्यातक की सत्ताका करने यदि वेदकसन्ध्याच्छिन्न होकर इतना
 मोक्षका अप्य कर देता है तो अन्तर्मुहूर्त काल होता है । उत्कृष्ट काल वा क्रियासठ सागर और
 फलक तीन अवस्थातके भाग है जो कि पहले बतला आये हैं । शेष प्रकृतियामे अवस्थित
 विमतिका उत्कृष्ट काल फलक अवस्थातके भाग अधिक एक ही त्रैसठ सागर है । वहाँ भी पहले
 बतला आये हैं । संस्कृतन कषायके विषयमें यह शंका की गई कि जब सन्ध्याच्छिन्न निरन्तर
 संस्कृतन कषायका बंध होता है वा वसका अनुभाग अवस्थित कैसे रहता है, वा उत्तर दिया गया
 कि काण्डकपात नहीं होता, इस लिये तो अनुभाग पटता नहीं और मत्तमें स्थित अनुभागसे
 अधिक अनुभागकषय नहीं होता इसलिये अनुभाग बढ़ता नहीं है अतः अवस्थित रहता है ।

इद्विस्स ? सेसपदाणमोघभंगो । अणुदिसादि जाव सव्वद्वसिद्धि ति सत्तावीसंपयडीण-
मण्णदर० अवट्ठि० सम्मामि० अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० । एवं जाणिदूण णेद्वं जाव
अणाहारि ति ।

§ ४७६. कालाणुगमेण दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-
अद्वकसाय--अद्वणोक० भुज ज० एगसमओ, उक्क० अतोमु० । अप्पदर० जहण्णुक्क०
एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेवद्विसागरोवमसद पल्लिदो० असंखे० भागेण
सादिरेयं । एवमणताणु० चउक्क० । णवरि अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगस० । सम्मत०
अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मामि० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगस०,
दोण्हं पि अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० वेद्धावद्विसागरो० तीहि पल्लिदोवमस्स असखे०
भागेहि सादिरेयाणि । दोण्हं पि अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगस० । चदुसज० भुज०-
अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अतोमु० । अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो, धुववंधित्तादो । सम्मा-
दिद्विम्मि णिरंतरं वज्झमाणचदुसंजलणाणमणुभागस्स कथमवद्विदत्तं, अणुभागखंडय-

चतुष्ककी भुजगार और अवक्तव्य विभक्तियाँ किसके होती हैं ? मिथ्यादृष्टिके होतां हैं । शेष
पदोंका भग ओघके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी
अल्पतर और अवस्थित विभक्ति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती है ?
किसीके भी होती है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अल्पतर विभक्ति दर्शनमोहके क्षपकके होती
है और अवक्तव्य विभक्ति प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टिके होती है, अतः दोनो विभक्तियों सम्यग्दृष्टिके
बतलाई हैं । अदन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके
मिथ्यात्वमें आकर पुन सयोजन करनेवाले के होती है अतः उसका स्वामी मिथ्यादृष्टि को
बतलाया है । शेष बाईस प्रकृतियों की भुजगार विभक्ति तो मिथ्यादृष्टिके ही होती है, क्यों कि
इतका अनुभाग मिथ्यादृष्टि ही बढ़ा सकता है । और अल्पतर तथा अवस्थित विभक्ति सम्यग्दृष्टि
के भी होती है और मिथ्यादृष्टिके भी । इसी प्रकार आदेशसे भी लगा लेना चाहिये ।

§ ४७६ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे
मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी भुजकारविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और
उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अल्पतरविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित
विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमका असख्यातवा भाग अधिक एक
सौ त्रेसठ सागर है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका काल जानना चाहिए । इतना विशेष है
कि अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतरविभक्ति
का जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति
का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । दोनों ही प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका जघन्य
काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असख्यातवें भाग अधिक दो ख्रियासठ
सागर है । दोनों ही प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । चार
सज्वलनोंकी भुजगार और अल्पतरविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्त-
र्मुहूर्त है । अवस्थितविभक्तिका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है, क्योंकि सज्वलन कषाय ध्रुवबन्धी है ।

शंका—सम्यग्दृष्टिमें निरन्तर बंधनेवाली चारों सज्वलन कषायोंका अनुभाग अवस्थित

घादाभावेन सगात्रुभागसंवादो चरि र्बधेणाशुभागफलपुद्गीप वि अभावादो च ।
 सरिसपणियपरमाशुमशुभागे बंधमस्तिदृग् बहुभापे अपद्विदिग्मणाप गसभापे च
 क्यमपद्विदत्तं संभवत् ? अ, मशुभागहाजस्त दम्बद्वियणयामलंपणाप चरिमफलप
 चरिमभगणेपरमाशुमि अचद्विदस्स सगतोक्त्तिचसरिसपणियाशुभागत्तणेण अजोसा
 रियअशुभागकड्यफालिस्स अबद्धानविरोहादा' । एवं पुरिस० । गवरि अप्पद० म०
 एगस०, उद० दो आनसियाओ समरुणाआ ।

कैसे है ?

समाधान—एकता नहीं अनुभागका काण्डक घात नहीं होता है दूसरे इसके का अनुभाग
 की सत्ता होती है इससे ऊपर बन्धके द्वारा अनुभाग स्वर्णको की वृद्धि नहीं होती, इसलिये वहाँ
 संव्यसन कपायके अनुभागका अचरित्वपना बन जाता है ।

संज्ञा—बन्ध की अपेक्षा समान बन्धाले परमाणुओंके अनुभागकी वृद्धि हाते हुए और
 अचरित्वविगमनाके द्वारा उसका गहन होने पर अचरित्वपना टैस संभव है ?

समाधान—नहीं क्योंकि द्रव्याधिक्यपकी अपेक्षा अन्तिम स्वयककी अन्तिम बगण्याके
 एक परमाणुमें जो अनुभाग अचरित्व है और अपने भीरव सहरा बन्धाले परमाणुओंके अनु
 भाग को गर्मित कर लेतेसे जिसके अनुभागकाण्डकोकी फलियोंका अनुभाग अपसारित नहीं
 हुआ है अन्ध्र अवस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

इसी प्रकार पुनःपेदका जानना चरिप । इतना विरोध है कि पुनःपेदकी अल्पतर विम-
 टिका अपन्य काळ एक समय है और अल्प काल एक समय कम हो सकती है ।

विशेषार्थ—एक जीवके अनुभाग की लगातार वृद्धि कमसे कम एक समय और अधिक
 से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक हो सकती है, इसीलिये भुजकार विमटिका अपन्य काल एक समय
 और अल्प काल अन्तर्मुहूर्त पठलाया है । अल्पतर विमटिमें भी यही बात है अर्थात् एक
 जीवके अनुभाग की लगातार वृद्धि कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त
 तक होती है किन्तु अन्तर्मुहूर्त तक अनुभाग की हानि काण्डकघातके बाद ही होती है । अतः
 जहाँ मिन प्रकृतियोंका काण्डकघातके पश्चात् प्रति समय अनुभाग भट्टा जाकर सब हाता है
 वहाँ ही उन प्रकृतियोंमें अल्पतर विमटिका अल्प काल अन्तर्मुहूर्त होता है । अल्पतर विमटि
 का काल जो एक समयसे अधिक हो ही नहीं सकता क्योंकि प्रथम समयमें ही अविद्यमान
 प्रकृतिका उत्पन्न होमाने पर अल्पतर विमटि होती है । अचरित्व विमटिका फल सम्बन्ध
 और सम्बन्धिध्यात्म अपन्यसे अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अनादि सिद्धाष्टि उपरामसम्बन्धक
 प्राप्तकर सम्बन्ध और सम्बन्धिध्यात्म की सत्ताका करके यदि वेदकमन्व्यष्टि हाकर हान
 माहका कण्य कर देता है तो अन्तर्मुहूर्त काल हाता है । अल्प काल वा विवासठ सागर और
 पन्धके तीन अक्षय्यातके भाग है जो कि पहले बतला भाये हैं । शेष प्रकृतिका अचरित्व
 विमटिका अल्प काल पन्धका अक्षय्यातका भाग अधिक एक सौ प्रसठ सागर है । वह भी पहले
 बतला भाये हैं । संव्यसन कपायके विषयमें यह शंका की गई कि जब सम्बन्धिमें निरन्तर
 संव्यसन कपायका बंध हाता है तो उसका अनुभाग अचरित्व कैसे रहता है, तो उत्तर दिया गया
 कि काण्डकघात नहीं हाता इस लिये जो अनुभाग घन्ता नहीं और सत्तामें स्थित अनुभागसे
 अधिक अनुभागबन्ध नहीं होता इसलिये अनुभाग बढ़ता नहीं है अतः अचरित्व रहता है ।

§ ४७७. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज० ज एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्पद० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अणताणु०चउक्क० अवत्तव्व० ओघभंगो । सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्त० सव्वपदानमोघं । णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि । दोण्हं पि अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेतीसं सागरो० संपुण्णाणि । एवं पढमपुढवि० । णवरि सगट्ठिदी । विदियादि जाव सत्तमि ति छव्वीसंपयडीणमेवं चेव । णवरि सगट्ठिदी देसूणा । सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी संपुण्णा । अवत्त० ओघं ।

§ ४७८. तिरिक्ख० णेरइयभगो । णवरि सव्वासिं पयडीणमवट्ठिदं ज० एगस०, उक्क० छव्वीसंपयडीणमंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणं पलिदो० असखे०भागेण सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । पंचिदिय-तिरिक्खदुगस्स एवं चेव । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगसमवो, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण सादिरेयाणि । पंचिदियतिरिक्खजोणिणीण-मेवं चेव । णवरि सम्म० अप्पदर० णत्थि । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसपयडीणं भुज०-अवट्ठि० सम्मत्त०-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-

§ ४७७ आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सालह कषाय और नव नोकषायोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछकम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सब विभक्तियोंका भङ्ग ओघकी तरह है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती । दोनों ही प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेतीस सागर है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल पहले नरककी स्थिति प्रमाण है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी विभक्तियोंका काल इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट काल कुछकम अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी सम्पूर्ण स्थिति प्रमाण है । अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघकी तरह है ।

§ ४७८ सामान्य तिर्यञ्चोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और छव्वीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल पत्यके असख्यातवें भाग अधिक तीन पत्य है । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तके भी ऐसे ही जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनित्थियोंमें भी ऐसे ही जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको

सम्प्रापिच्छतपस्याममप्यदर० बहष्पुष्क० एमस० । एष मधुसअपत्न० ।

‡ ४७६ मधुस्ताण्मोर्ष । जवरि सम्बसिमवट्टि० पंविदियतिरिक्त्वमंगो । एवं मधुसपस्वच-मधुसिणीसु । जवरि मधुसिणीसु पुरिस० अप्यद० बहष्पुष्क० एगस० ।

‡ ४८० द्वाणं जरइयभंगा । जवरि अद्वावीसंपयडीजमवट्टि० चक्क तेवीसं सागरोवमात्रि संपुष्णाणि । मषण०-बाण०-ओइसि० एवं चेष । यावरि सगट्टिदी देसुण । सम्पत्त-सम्प्रापि० अवट्टि० सगट्टिदी । सम्पत्त० अप्यदर० णत्थि । सोइम्मादि भाष सहस्तारे ति देषोर्ष । जवरि सगट्टिदी । मायादादि भाष जवणेयत्त० अद्वावीसंपयडीजमप्यद० बहष्पुष्क० एगस० । अवट्टि० ज० अंतोसु० । अर्णोतापु० चरक्कस्त एगस०, चक्क० सम्प्रासि सगट्टिदी । अर्णोतापुचरक्क० सुज०-अवत्तम्ब० ओर्ष । सम्पत्त० अप्यद० ओर्ष । अवट्टि० ज० एगस०, चक्क० सगट्टिदी । अवत्तम्ब० ओर्ष । सम्प्रापि० एवं चेष । जवरि अप्यद० णत्थि । मधुसिसादि भाष सम्बहसिद्धि ति अद्वावीसं पयडीजमप्यद० बहष्पुष्क० एगस० । अवट्टि० ज० अंतोसु०, चक्क० समाट्टिदी । सम्पत्त० अप्यद० ओष । सम्पत्त-सम्प्रापि०

झोकर रोप अद्वावीस प्रकृतियोंकी अस्पतर विमट्टिका जपन्व और चक्कट्ट काल एक समय है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्णातर्कमें जानना चाहिये ।

‡ ४७९. सामान्य मनुष्योंमें आचकी तरह जानना चाहिये । इतना विरोध है कि इनमें सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विमट्टिका काल पन्धेन्द्रिय तिर्यन्धोंके समान है । इसी प्रकार मनुष्य पर्णात और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये । इतना विरोध है कि मनुष्यनियोंमें पुढपवइकी अस्पतर विमट्टिका जपन्व और चक्कट्ट काल एक समय है ।

‡ ४८० देवोंके नायकियोंके समान मङ्ग है । इतना विरोध है कि अद्वावीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विमट्टिका चक्कट्ट काल सम्पूर्ण तेषीस सागर है । महत्वासी अन्तर और व्यातिपियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इतना विरोध है कि चक्कट्ट काल अद्वावीस अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्बन्ध और सम्प्राप्तिप्यात्वकी अवस्थित विमट्टिका काल अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्बन्धकी अस्पतर विमट्टि नहीं है । सौभर्मसे लेकर सहस्राहसर्ग तकके देवोंमें सामान्य देवोंकी तरह काल है । इतना विरोध है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिये । अन्तसे लेकर मन्मैकेपक तकके देवोंमें अद्वावीस प्रकृतियोंकी अस्पतरविमट्टिका जपन्व और चक्कट्ट एक समय है । अवस्थित विमट्टिका जपन्व काल अन्तर्मुहूर्त है । अन्तस्तुअद्वावीस पत्तुष्की अवस्थित विमट्टिका जपन्व काल एक समय है और चक्कट्ट काल अचका अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । अन्तानुअद्वावीस पत्तुष्की मुद्गर और अवत्तम्ब विमट्टिका काल ओपकी तरह है । सम्बन्ध प्रकृतिकी अस्पतर विमट्टिका काल ओपकी तरह है । अवस्थित विमट्टिका जपन्व काल एक समय है और चक्कट्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । अवत्तम्ब विमट्टिका काल आपकी तरह है । सम्प्राप्तिप्यात्वका मङ्ग इसी प्रकार है । इतना विरोध है कि अस्पतर विमट्टि नहीं है । अनुविरासे लेकर सर्वावसिद्धि तकके देवोंमें अद्वावीस प्रकृतियोंकी अस्पतर विमट्टिका जपन्व और चक्कट्ट काल एक समय है । अवस्थित विमट्टिका जपन्व काल अन्तर्मुहूर्त है और चक्कट्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्बन्ध प्रकृतिकी अस्पतरविमट्टिका काल आपके समान

पलिदो० असंखेभागो, उक्क० दोएहं पि तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणंताणु० चउक्क० भुज०-अवट्टि० ज० एगस०, अप्पदर० अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिं तेत्तीसं साग० देसूणाणि । एवं पढमपुढवि०। णवरि सगट्टिदी देसूणा । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सगट्टिदी देसूणा । सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि ।

§ ४८३. तिरिक्खेसु वावीसं पयडीणं भुज० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । कुदो ? पंचिदिएसु भुजगारं कादूण पुणो एइदिएसु पविसिय पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालेण एइदियबंधेण सरिसमणुभागसत्तकम्म काऊण पुणो सत्याणे चेव भुजगारे कदे पलिदो० असंखे०भागमेत्तंतरकालुवलंभादो । अप्पदर० ज० अतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० अंतोमु० सादिरेयाणि । अवट्टि० ओघं । सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्माभि० अवट्टि० अवत्तव्वं ओघ । अणंताणु०४ मिच्छत्त-भंगो । णवरि भुज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि । अवट्टि० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि । अवत्तव्व० ओघं ।

§ ४८४. पंचिदियतिरिक्ख-पचि०तिरि०पज्जत्तएसु वावीसंपयडीण भुज० ज०

है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय अथवा दो समय है । अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्त-मुहूर्त है तथा सभी विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछकम तेतीस सागर है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी स्थिति प्रमाण है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी ऐसे ही जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछकम अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं है ।

§ ४८३. तिर्यञ्चोमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियोंमें भुजगारका करके पुन एकन्द्रियोंमें जन्म लेकर वहा पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा एकन्द्रियके बन्धके समान अनुभाग सत्कर्मको करके पुन स्वस्थानमें भुजगारके करनेपर भुजगार विभक्तिका अन्तर काल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त अधिक तीन पत्य है । अवस्थित विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर काल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग मिध्यात्वके समान है । इतना विशेष है कि भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पत्य है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है । अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है ।

§ ४८४. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तकोंमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार

एगसममो, षड्० पुण्यकोटिपुष्य । अप्यदर०-अबहि० तिरिक्त्वोपं । सम्मत्० अप्यद०
 जत्वि अन्तरं । सम्मत्-सम्माभि० अबहि० अप्यत्त्व० ज० एगस० पलिदा० अर्सत्वे०
 भागो, षड्० सगहिदी दसूणा । अर्गतापु०षड्० मिष्यत्त्वमगो । जपरि मुञ्ज०
 अबहि० तिरिक्त्वापं । अप्यत्त्व० ज० अंतोमु०, षड्० सगहिदी दसूणा । एवं
 पंचिदियविरिक्त्वमोणिणीणं । जपरि सम्मत्० अप्यदर० जत्वि । पंचि०तिरि०अप्यत्त्व०
 षड्मीसंपयदीणं मुञ्ज०-अबहि० ज० एगस०, अप्यद० अंतोमु०, षड्० सम्मे०
 अंतोमु० । सम्मत्-सम्माभि० अबहि० जत्वि अन्तरं । एवं मणुसअप्यत्त्व० ।

§ ४८५ मणुसवियमि मिष्यत्त्व-वारसक०-जबगोक० मुञ्ज० ज० एगस०,
 षड्० पुण्यकोटी दसूणा । अप्यद० अबहि० तिरिक्त्वमगो । सम्मत्-सम्माभि०
 अप्यदर० महण्युक् अंतोमु० । अबहि०-अवतत्त्व० ज० एगस० पलिदो० अर्सत्वे०
 भागो, षड्० सगहिदी दसूणा । अर्गतापु०षड्० मिष्यत्त्वमगो । जपरि मुञ्ज०
 अबहि०-अप्यत्त्व० पंचिदियविरिक्त्वमगो ।

§ ४८६ देवसु वापीसपयदीण मुञ्ज० ज० एगस०, षड्० अद्वारस० सागरो०

विमटिका जपन्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर पूर्वकटि धूमकत्व प्रमाणा है । अस्पतर
 विमटि और अवस्थित विमटिका अन्तर सामान्य तिरिक्त्वोके समान है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी
 अस्पतर विमटिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवच्छेद्य
 विमटिका जपन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पत्यके असंख्यातवें मात्र प्रमाणा है
 और उक्त अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाणा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क मङ्ग
 मिध्यात्वके समान है । इतना विरोध है कि मुञ्जगार और अवस्थितविमटिका अन्तर
 सामान्य तिरिक्त्वोके समान है । अवच्छेद्य विमटिका जपन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उक्त
 अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाणा है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियविरिक्त्वमोनिणियोंमें जानना
 चाहिए । इतना विरोध है कि सम्यक्त्वकी अस्पतर विमटि नहीं है । पञ्चेन्द्रियविरिक्त्व अपयमात्रों
 में षड्मीस प्रकृतियोंकी मुञ्जगार और अवस्थित विमटिका जपन्य अन्तर एक समय है,
 अस्पतर विमटिका जपन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और सबका उक्त अन्तर अन्तमुहूर्त है ।
 सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विमटिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य
 अपर्षात्रकोंमें जानना चाहिए ।

§ ४८५ तीन प्रकारके मनुष्योंमें मिध्यात्व चारू कपाय और नव माकपायोंकी
 मुञ्जगार विमटिका जपन्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर कुछ कम एक पूर्वकटि है ।
 अस्पतर और अवस्थित विमटिका मङ्ग तिरिक्त्वोके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मि-
 ध्यात्वकी अस्पतर विमटिका जपन्य और उक्त अन्तर अन्तमुहूर्त है । अवस्थित और
 अवच्छेद्य विमटिका जपन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पत्यके असंख्यातवें मात्र प्रमाणा
 है और उक्त अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाणा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क मङ्ग
 मिध्यात्वकी तरह है । इतना विरोध है कि मुञ्जगार अवस्थित और अवच्छेद्य विमटिका अन्तर
 पञ्चेन्द्रिय तिरिक्त्वोके समान है ।

§ ४८६, देवोंमें चारस प्रकृतियोंकी मुञ्जगार विमटिका जपन्य अन्तर एक समय है और

अवष्टि० जहण्णुक्कस्सट्ठिदी । एवं जाणिदूण णेदच्चं जाव अणाहारि ति ।

§ ४८१. अंतराणु० दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण वावीस पयडीण भुजगारस्स अंतरं ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिमागरोवमसदं अतोमुहुत्तमम्भ-हियतीहि पल्लिदोवमेहि सादिरेयं । अप्पदर० ज० अतोमु०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसद पल्लिदो० असखे० भागेण सादिरेयं । अवष्टि० ज० एगस०, उक्क० अतोमु० । सम्मत-सम्मा मिच्छन्नाणमप्पदर० जहण्णुक्क० अतोमु०, चरिम-दुचरिमकंडयाणं पढम-विदिय-

है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओघ की तरह आदेशसे भी काल को लगा लेना चाहिये । नरकमें दृष्टवीस प्रकृतियों में अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि नरकमें जन्म लेकर सम्यग्दृष्टि होने पर इतना काल पाया जाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वमें अवस्थित विभक्तिका काल पूर्ण तेतीस सागर है, क्योंकि वह सम्यग्दृष्टिके भी होती है और मिध्यादृष्टिके भी होती है । इसी प्रकार प्रत्येक नरकमें यथायोग्य समभक्ता । सामान्य तिर्यश्चो में दृष्टवीस प्रकृतियों की अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य है, क्योंकि कोई तिर्यश्च तिर्यश्चकी आयु बाँधकर देवकुरु उत्तरकुरुमें तीन पत्यकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ तो उसके अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य काल अवस्थित विभक्तिका होता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका काल पत्यका असख्यातवा भाग अधिक तीन पत्य होता है, क्योंकि एक मिध्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व की सत्तावाला हुआ । पुन मिध्यात्वमें आकर पत्यके असख्यातवाँ भाग काल तक तिर्यश्च पर्यायमें भ्रमण करके जब सम्यक्त्वके उद्वेलना कालमें अन्तर्मुहूर्त बाकी रहा तो मर कर तीन पत्य की स्थिति लेकर देवकुरु-उत्तरकुरुमें उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वको प्राप्त हो गया तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व की अवस्थितविभक्तिका उत्कृष्ट काल पत्यका असख्यातवा भाग अधिक तीन पत्य होता है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च पर्यायमें इन दोनों प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है सो ही इन दोनों पर्यायों का उत्कृष्ट काल है अत उसी तरह जानना । सामान्य देवों में सभी प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर सर्वार्थसिद्धि की अपेक्षा जानना । भवनत्रिकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व की अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है किन्तु दृष्टवीस प्रकृतियों में कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है, क्योंकि जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् सम्यग्दृष्टि होने पर उक्त काल पाया जाता है । सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सभी प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण जानना ।

§ ४८२ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त और तीन पत्य अधिक एक सौ त्रैसठ सागर है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यका असख्यातवाँ अधिक एक सौ त्रैसठ सागर है । अवस्थितका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि यहाँपर चरम और द्विचरम

अंतरालस्य महत्त्वकस्तंतरभावेण गृहणादौ । अर्धदि० अ० एगस०,
 अर्धतन्म० अ० पक्षिदो० अस्तस० भागो, अर्ध० दोषै पि अर्धपुगालपरियह । अर्ध-
 ताणु० अर्धक० । मिच्छतमंगा । अर्धरि अर्धदि० अ० एगस०, अर्ध० वेदावृत्तिसागरो
 पमाणि देव्याणि । अर्धतन्म० अ० अंतोमु०, अर्ध० अर्धपुगालपरियह दूर्ण ।

१४२. आदत्तेषु गेरुपसु वाचीसं पयडीणं भ्रुजं अप्पद० अ० एगस०
 अंतोमु०, अर्ध० तवीसं सागरो० देव्याणि । अर्धदि० ओषं । सम्पत्त० अप्पद० गत्यि
 अंतरं । सम्पत्त-समापि० अर्धदि० अर्ध० एगस०, अर्धवा वे समया, अर्धत० अर्ध०

काण्डकके अन्तरालका जन्म्य अन्तररूपसे प्रहय किया है और प्रथम तथा द्वितीय काण्ड
 कके अन्तरालका अर्ध अन्तररूपसे प्रहय किया है । अर्धस्थितविमर्शिका जन्म्य अन्तर एक
 समय है । अर्धतन्म्यविमर्शिका जन्म्य अन्तर पस्वके अस्तक्यावर्षे भाग प्रमाय्य है । तथा दोनों विम
 र्शिकोंका अर्ध अन्तर अर्धपुगाल परिवर्तनप्रमाय्य है । अन्तवानुबन्धीवृत्तिका अर्ध
 मिष्प्यत्वकी तरह है । इतना विरोध है कि अर्धस्थितविमर्शिका जन्म्य अन्तर एक समय है
 और अर्ध अन्तर अर्ध कम दो दिवससठ सागर है । अर्धतन्म्यविमर्शिका जन्म्य अन्तर
 अन्तर्मुहूर्त है और अर्ध अन्तर अर्धपुगाल परावर्तनकास प्रमाय्य है ।

विशेषार्थ—ओपसे चार्स प्रहृतियों की मुजगार विमर्शिका अर्ध अन्तर ४ बार वेदक
 सम्पत्त एक बार अर्धम प्रेवक और एक बार वेदक अन्तरकके अस्तको तथा अन्तर्मुहूर्त
 सम्पत्तके अर्धकालको ओडनेसे एक ही त्रैसठ सागर और अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पस्व हावा
 है अधिकसं अधिक इतने कास एक मुजगार विमर्शिका चार्स प्रहृतियों में नहीं हावी । अस्पतर
 विमर्शिका अर्ध अन्तर मितना पहले ओपसे चार्स प्रहृतियों की अर्धस्थित विमर्शिका अर्ध
 कास का है इतना ही हावा है । सम्पत्त और सम्पत्तमिष्प्यत्व प्रहृतिमें अस्पतर विमर्शिका
 जन्म्य और अर्ध अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इन दोनों प्रहृतियों में अर्धमहाके अर्ध कासमें अब
 काण्डकपाव हाता है तमी अस्पतर विमर्शिका होती है, सो प्रथम काण्डक हाकर दूसरा काण्डक
 हाता है, अतः प्रथम काण्डक और दूसरे काण्डकमें मितना अन्तरकाल है इतना वा अर्ध
 अन्तर है और अर्धम्यकाण्डक और अन्तम काण्डककी मितना अन्तरकाल है जन्म्य जन्म्य
 अन्तरकाल हाता है । इन दोनों प्रहृतिवों की अर्धतन्म्य विमर्शिका जन्म्य अन्तर पस्वके
 अस्तक्यावर्षे भाग है, क्वाकि अनादि मिष्प्यावृत्ति-जिन प्रथमोपराम सम्पत्तक हावा इन दोनों
 प्रहृतियों की सत्ता को करके अर्धतन्म्य विमर्शिका करता है । तथा पस्वके अस्तक्यावर्षे भाग कासमें
 शोयो की अर्धना करके पुनः प्रथमोपराम सम्पत्त अस्पतर करके पुनः इन दोनों प्रहृतियों की
 सत्ता को करके अर्धतन्म्य विमर्शिका करता है, अतः जन्म्य अन्तर कास पस्वके अस्तक्यावर्षे भाग
 प्रमाय्य है । तथा अर्ध अन्तर अर्ध कम अर्धपुगाल परावर्तन कास है, क्योंकि प्रथमोपरामके हावा
 शोयो प्रहृतिवों की सत्ताको करके सम्पत्तके अन्तु होकर अर्ध कम अर्धपुगाल परावर्तन कास
 एक अर्ध करके अन्तम म्ब में पुनः सम्पत्त का अस्पतर करके शोयो प्रहृतिवों की सत्ता करके
 पर अर्ध अन्तर होता है । अन्तवानुबन्धीवृत्तिका अर्धतन्म्यविमर्शिका अन्तर भी इसी
 प्रकार कास लेता ।

१४२ आदेशसे मारकियों में चार्स प्रहृतियों की मुजगार और अस्पतर विमर्शिका
 अन्तर जन्म्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और अर्ध अन्तर अर्ध कम वेचीस सागर
 है । अर्धस्थितविमर्शिका अन्तर ओषकी तरह है । सम्पत्तकी अस्पतर विमर्शिका अन्तर नहीं

पल्लिदो० असंखेभागो, उक्क० टोएहं पि तेत्तीसं सागरो० देमूणाणि । अणंताणु० चउक्क० भुज०-अवट्टि० ज० एगस०, अप्पदर० अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसि तेत्तीसं साग० देसूणाणि । एव पढमपुट्टवि० । णवरि सगट्टिदी देमूणा । विट्टियाट्टि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सगट्टिदी देमूणा । सम्मत० अप्पदर० णत्थि ।

§ ४८३. तिरिक्खेसु वावीस पयडीणं भुज० ज० एगस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । कुदो ? पंचिदिएसु भुजगारं कादूण पुणो एइंदिएसु पविसिय पल्लिदो० असंखे० भागमेत्तकालेण एइंदियवधेण सरिसमणुभागसत्तम्म काऊण पुणो सत्थाणे चेव भुजगारे कदे पल्लिदो० असंखे० भागमेत्तंतरकालुवल्लभादो । अप्पदर० ज० अतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० अतोमु० साट्टिरेयाणि । अवट्टि० ओघ । सम्मत० अप्पदर० णत्थि अतर । सम्मत-सम्मामि० अवट्टि० अवत्तव्वं ओघ । अणंताणु० ४ मिन्द्धत्त-भंगो । णवरि भुज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० साट्टिरेयाणि । अवट्टि० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देमूणाणि । अवत्तव्व० ओघं ।

§ ४८४. पंचिदियतिरिक्ख-पचि० तिरि० पज्जत्तएसु वावीसंपयडीण भुज० ज०

है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय अथवा दो समय है । अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुल्लकम तेतीस सागर है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्त-मुहूर्त है तथा सभी विभक्तिकाका उत्कृष्ट अन्तर कुल्लकम तेतीस सागर है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुल्लकम अपनी स्थिति प्रमाण है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी ऐसे ही जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुल्लकम अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तित नहीं है ।

§ ४८३ तिर्यञ्चोमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार विभक्तिका, जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि पञ्चेन्द्रियोंमें भुजगारका करके पुन एञ्चेन्द्रियोंमें जन्म लेकर वहा पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा एकन्द्रियके बन्धके समान अनुभाग सत्कर्मको करके पुन स्वस्थानमें भुजगारके करनेपर भुजगार विभक्तिका अन्तर काल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त अधिक तीन पत्य है । अवस्थित विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर काल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग मिध्यात्वके समान है । इतना विशेष है कि भुजगार विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुल्ल अधिक तीन पत्य है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुल्ल कम तीन पत्य है । अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है ।

§ ४८४. पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रियतियञ्चपर्याप्तकोमें बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार

एगसमभा, उक० पुम्बकोदिपुपत्त । अप्पद०-अबडि तिरिक्खोपं । सम्मत्त० अप्पद०
णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि० अबडि०-अवत्तव्व० ज० एगस० पत्तिदो० असंखं०
यागो, उक० सगट्टिदी दसुणा । अणतापु०-उउक० मिच्छत्तमंगो । णवरि सुज०
अबडि० तिरिक्खोपं । अवत्तव्व० ज० अंतोसु०, उक० सगट्टिदी देसुणा । एवं
पंचिदियतिरिक्खमोणिजीणं । णपरि सम्मत्त० अप्पद० णत्थि । पंचि०तिरि०अपज्ज०
इत्थीसंपयडीणं सुज०-अबडि० ज० एगस०, अप्पद० अंतोसु०, उक० सम्भे०
अंतोसु० । सम्मत्त-सम्मामि० अबडि० णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज० ।

§ ४८५ मणुसतियम्मि मिच्छत्त-वारसक०-अणपोक० सुम ज० एगस०,
उक० पुम्बकोटी दसुणा । अप्पद० अबडि० तिरिक्खमंगो । सम्मत्त-सम्मामि०
अप्पद० अणुपुक्क अंतोसु० । अबडि०-अवत्तव्व० ज० एगस० पत्तिदो० असंखे०
यागा, उक० सगट्टिदी देसुणा । अणतापु०-उउक० मिच्छत्तमंगो । णवरि सुज०
अबडि०-अवत्तव्व पंचिदियतिरिक्खमंगो ।

§ ४८६ देवेसु बायीसंपयडीअ सुज० ज० एगस०, उक० महारस० सागरो०

विमट्ठिका जपन्य अन्तर एक समय है और उक्कट्ट अन्तर पूर्वोक्ति पूरकत्व प्रमाण है । अस्पतर
विमट्ठि और अस्पत्यत विमट्ठिका अन्तर सामान्य तिर्यञ्चोके समान है । सम्पत्त्व प्रकृतिकी
अस्पतर विमट्ठिका अन्तर नहीं है । सम्पत्त्व और सम्पत्तिध्यात्वकी अवस्थित और अवत्तव्व-
विमट्ठिका जपन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पस्वके असंख्यतर्वे भाग प्रमाण है
और उक्कट्ट अन्तर उक्क कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अन्ततापुक्कपीपुक्कका मङ्ग
मिध्यात्वके समान है । इतना विरोध है कि मुजगार और अवस्थितविमट्ठिका अन्तर
सामान्य तिर्यञ्चोके समान है । अवत्तव्व विमट्ठिका जपन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उक्कट्ट
अन्तर उक्क कम अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार पञ्चोत्त्रियतिर्यञ्चयोनित्थिमे जानना
बाहिय । इतना विरोध है कि सम्पत्त्वकी अस्पतर विमट्ठि नहीं है । पञ्चोत्त्रियतिर्यञ्च अपवात्तको
में इत्थीस प्रकृतिबोकी मुजगार और अवस्थित विमट्ठिका जपन्य अन्तर एक समय है
अस्पतर विमट्ठिका जपन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उक्कट्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है ।
सम्पत्त्व और सम्पत्तिध्यात्वकी अवस्थित विमट्ठिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मणुप्य
अपवात्तकोमें जानना बाहिय ।

§ ४८७ तीन प्रकारके मणुप्योमें मिध्यात्व बाह्य कयाय और नव नेकपावोकी
मुजगार विमट्ठिका जपन्य अन्तर एक समय है और उक्कट्ट अन्तर उक्क कम एक पूर्वोक्ति है ।
अस्पतर और अवस्थित विमट्ठिका मङ्ग तिर्यञ्चोके समान है । सम्पत्त्व और सम्पत्ति-
ध्यात्वकी अस्पतर विमट्ठिका जपन्य और उक्कट्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । अवस्थित और
अवत्तव्व विमट्ठिका जपन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पस्वके असंख्यतर्वे भाग प्रमाण
है और उक्कट्ट अन्तर उक्क कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अन्ततापुक्कपीपुक्कका मङ्ग
मिध्यात्वकी तरह है । इतना विरोध है कि मुजगार, अवस्थित और अवत्तव्व विमट्ठिका अन्तर
पञ्चोत्त्रिय तिर्यञ्चोके समान है ।

§ ४८६ देवोमें बाईस प्रकृतिबोकी मुजगार विमट्ठिका जपन्य अन्तर एक समय है और

अद्दसागरोवमेण सादिरेयाणि । अप्पदर० ज०अंतोमु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अवट्टि० ओघं । सम्मत्त० अप्पदर० णत्थि अतरं । सम्मत्त०-सम्मामि० अवट्टि०-अवत्तव्व० ज० एगस० पत्तिदो० असंखे०भागो, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अणताणु०चउक्क० भुज०-अवट्टि०-अप्पदर०-अवत्तव्व० ज० एगस० अतोमु०, उक्क० एकत्तीसं सागरो० देसूणाणि । एव सोहम्मामि जाव सहस्सागे ति । णवरि सगट्टिदी देसूणा । एव भवण०-वाण०-जोदिसिए ति । णवरि सगट्टिदी देसूणा । सम्मत्त० अप्पद० णत्थि । आणटादि जाव णवगेवज्ज० वावीसंपयदीणमवट्टि० जहण्णुक्क० एगस० । अप्पद० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । सम्मत्त० अप्पद० णत्थि अतर । सम्मत्त-सम्मामि० अवट्टि०-अवत्तव्व० अणताणु०-चउक्क० भुज०-अप्पद०-अवट्टि०-अवत्तव्व० ज० ओघ, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणुसि-सादि जाव सव्वट्टिसिद्धि ति छव्वीसपयदीणमवट्टिद० जहण्णुक्क० एगस० । अप्पद० जहण्णुक्क० अतोमु० । सम्मत्त० अप्पद० णत्थि अंतर । सम्मत्त-सम्मामि० अवट्टि० णत्थि अतरं । एव जाणिदूण णेदव्व जाव अणाहारि ति ।

उत्कृष्ट अन्तर आधासागर अधिक अठारह सागर है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इफतीस सागर है । अवस्थित विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मि-ध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और पत्यके असख्यातवैभाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इफतीस सागर है । अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी भुजगार, अवस्थित, अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इफतीस सागर है । इसी प्रकार सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है । आन्तसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका तथा अनन्तानुवन्धी-चतुष्ककी भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

विशेषार्थ—आदेशसे नारकियों में बाईस प्रकृतियों की भुजगार और अल्पतर विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर उतना ही कहा है जितना नरकमें पहले इन प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिका

वक्तृप्र काल कथा है। मुजगार या अस्पर विमक्ति होकर कुछ कम सेतीस सागर पर्यन्त अवस्थितविमक्ति रही, उसके पश्चात् पुनः मुजगार या अस्पर विमक्तिके होनेसे दोनों विमक्तिका का अन्तर काल होता है। नरक में सम्यक्त्व प्रकृतिके अस्परका अन्तर काल नहीं है, क्या कि वहाँ अस्पर अस्पर अस्पर कह के ही जाता है और वह लगातार स्रव पर्यन्त होता है। और सम्यग्मिध्यात्वका वो वहाँ अस्पर होता ही नहीं है। इन दोनों प्रकृतियों की अवस्थितविमक्तिका जगत्प्र अन्तर एक समय अवकाश वो समय कथा है कोई २८ की सत्तावाला मिध्यावृष्टि उद्देशना करता हुआ प्रयापरास सम्यक्त्वके अनुसूत हुआ और अनिष्टितिकरणके विचरम समयमें उद्देशना कर सम्यक्त्व प्रकृतिका अभाव कर चरम समयमें २७ की सत्तावाला हा गया या सम्यग्मिध्यात्वकी उद्देशना कर चरम समयमें २६की सत्तावाला हा गया। अगले समयमें उपरामसम्यग्प्रति हा सम्यक्त्व व सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाला हो गया इस प्रकार अनिष्टितिकरणके एक चरम समयका अवस्थितमें अन्तर पचा अतः एक समय कथा। परन्तु जिम्हाने सम्यक्त्वके प्रथम समयका अवकाशमें ले लिया उनके मत्में वो समय अन्तर होता है। वक्तृप्र अन्तर कुछ कम सेतीस सागर है, क्या कि अवस्थित विमक्तिके पश्चात् उद्देशना करके अब सेतीस सागर काल पूर्ण होने में कुछ काल अवशेष रहे वा सम्यग्प्रति हाकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका सत्त्व करके दूसरे समयमें अवस्थित विमक्तिके हमसे उतना अन्तर काल पाया जाता है। इसी कार अवकाशविमक्तिका भी वक्तृप्र अन्तर काल लगा लेता चाहिये। तिर्यक्त्वा में ब्रह्मीस प्रकृतियों की अवस्थित विमक्तिका मितना वक्तृप्र काल पहले कथा है उतना ही इनमें ब्रह्मीस प्रकृतियों की अस्पर विमक्तिका वक्तृप्र अन्तर काल होता है। इसी तरह अमन्तालुबन्धीमें मुजगारका वक्तृप्र अन्तर काल जानना चाहिये। अनन्तलुबन्धीकी अवस्थितविमक्तिका वक्तृप्र अन्तर कुछ कम तीन पश्य है, क्योंकि वेदकृत उत्तरकृतका कोई तिर्यक् अनन्ता लुबन्धीकी अवस्थित विमक्ति करके उसका विसंशोधन करदे। अतः समयमें सम्यक्त्वसे श्रुत होकर मिध्यात्वमें आकर अनन्तालुबन्धीका बन्ध करके पुनः अवस्थित विमक्ति यदि कर वो वक्तृप्र अन्तर कुछकम तीन पश्य होता है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् और पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् पर्याप्तमें चारैस प्रकृतियोंकी मुजगार विमक्तिका वक्तृप्र अन्तर पूर्वकाटि पृथक्त्व कथा है जब कि इनमें अवस्थित विमक्तिका काल अन्तर्गुह्य अधिक तीन पश्य है, इसका कारण यह है कि तीन पस्वकी स्थितिः भोगमूमिमें होती है किन्तु वहाँ मुजगार विमक्ति नहीं होती अतः तत्त्व शानों तिर्यक्त्वा में पूर्वकाटि पृथक्त्व असक्तियोंके वक्तृप्र कालकी अपेक्षासे अन्तरकाल कथा है। मनुष्यके तीन मेंमें चारैस प्रकृतियोंकी मुजगार विमक्तिका वक्तृप्र अन्तर कुछकम पूर्वकाटि है, क्योंकि मुजगार विमक्ति करके सम्यग्प्रति होनामे पर और अन्तमें सम्यक्त्वसे श्रुत हाकर मिध्यात्वमें आकर पुनः मुजगार करनेसे उतना अन्तर पाया जाता है। मनुष्योंमें अर्धही नहीं हावे, अतः वेदकृतसम्यक्त्वकी अपेक्षा अन्तर कथा है। वेदकृतसम्यग्प्रति मनुष्यस मनुष्य नहीं जाता, अतः कर्ममूमिमाके एक मवकी अपेक्षा वक्तृप्र आयुकी अपेक्षा उद्देश अन्तर काल कथा है। वेदों में चारैस प्रकृतियोंकी मुजगार विमक्तिका वक्तृप्र अन्तर साढ़े अठारह सागर सहस्रार स्वर्गकी अपेक्षा जानना चाहिये, क्योंकि इन प्रकृतियोंमें आगे मुजगार नहीं हाता। तथा अस्परविमक्तिका वक्तृप्र अन्तर कुछ कम इक्षवीस सागर उपरिमवेदकी अपेक्षा जानना चाहिये, क्या कि आता सब सम्यग्प्रति ही हावे है, इस लिये अनुविरासे लेकर सचार्यसिद्धि तक अस्पर विमक्तिका जगत्प्र और वक्तृप्र अन्तर अन्तर्गुह्य ही हाता है। सामान्य वेदोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवकाश विमक्तिका वक्तृप्र अन्तर कुछ कम इक्षवीस सागर भी उपरिम वेदयक की अपेक्षासे हाता है, क्या कि उससे उपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवकाश विमक्ति

§ ४८७. पाणाजीवेहि भगविचयाणुगमेण दुविहो णिहे सो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण वावीसंपयडीणं भुज०-अपपद०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । एवं अणं-ताणु०चउक्क० । णवरि अवत्तव्व० भयणिज्जा । भंगा तिण्णि । सम्मत-सम्मामिच्छ-त्ताणमवट्ठि० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । भगा णव । एव तिरिक्खोघं ।

§ ४८८. आदेसेण णेरइएसु छ्वीसंपयडीणं भुज०-अवट्ठि० सम्मत-सम्मामि० अवट्ठि० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । वावीसंपयडीणं सम्मामि० भंगा तिण्णि । सम्मत० अणंताणु०चउक्काणं भंगा णव । एव सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिदिय तिरिक्ख-मणुसतिय-देवोघं भवणादि जाव सहस्सार त्ति । णवरि विदियादिपुढवि०-पंचिदियतिरिक्खजोणिणी०-भवण०--चाण०--जोइसिए त्ति सम्मत भगा तिण्णि । पंचि०तिरि०अपज्ज० सम्मत०-सम्मामि० णत्थि भंगा । सेससव्वपयडीणं तिण्णि चैव भगा । मणुसअपज्ज० सव्वपयडीण सव्वपदा भयणिज्जा । छ्वीसं पयडीण भगा छ्वीस । सम्मत-सम्मामि० भंगा दोण्णि ।

§ ४८९. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अट्ठावीस पयडीणमवट्ठि० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । णवरि आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति तेवीसं पयडीणं

तो सभव ही नहीं है, अवस्थितविभक्ति होती है, किन्तु इन प्रकृतियोंमें उसका इतना अन्तराल तभी सभव हो सकता है जब कोई उनकी उद्देलना करदे और अन्तमें पुन सम्यक्त्वके साथ दोनों प्रकृतियों की सत्ताको वृत्त करके अवस्थित विभक्ति करे, यह बात अनुदिशादिकमें सभव नहीं है । इसीप्रकार सौधर्मादिकमें भी अन्तर समझना चाहिए ।

§ ४८७ नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघसे बाईस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिके जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए । इतना विशेष है कि अवक्तव्य विभक्ति भजनीय है । भग तीन होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिके जीव नियमसे हैं । शेष विभक्तिया भजनीय हैं । भग नौ होते हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यचोंमें जानना चाहिए ।

§ ४८८ आदेशसे नारकियोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थितविभक्तिके जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिकी अवस्थितविभक्तिके जीव नियमसे हैं । शेष विभक्तियों भजनीय हैं । बाईस प्रकृतियोंके और सम्यग्मिध्यात्वके तीन भग होते हैं । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके नौ भग होते हैं । इसप्रकार सातों पृथिवी, सब पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सामान्य देव तथा भवनवासीसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि दूसरी आदि पृथिवियोंमें तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च योनिनी, भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें सम्यक्त्वके तीन भग होते हैं । पञ्चेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके भग नहीं होते । शेष सब प्रकृतियोंके तीन ही भग होते हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके सभी पद भजनीय हैं । छ्वीस प्रकृतियोंके छ्वीस भग होते हैं तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके दो भग होते हैं ।

§ ४८९ आन्तसे लेकर सर्वायसिद्धि तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिके जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं । इतना विशेष है कि आन्तसे लेकर नवप्रैवेयक तकके

मंगा तिरिष्ण । सम्मसमंगा जव । अर्णताद्यु० चरक० सत्तावीस । उपरि सत्तावीस पयडीण
मंगा तिरिष्ण० । सम्मामि० मंगा गत्यि । एव माण्डिण जेइन्व जाव मणाहारि सि ।

वेबोमि वेईस प्रकृतियोंके तीन मङ्ग होते हैं, सम्यक्त्व प्रकृतिके नौ मङ्ग होते हैं और अनन्ता
नुबन्धी चतुष्क सत्ताईस मङ्ग होते हैं । तबमैवकसे ऊपर सत्ताईस प्रकृतियोंके तीन मङ्ग होते
हैं । सम्यग्मिध्यात्मके मङ्ग नहीं होते । इस प्रकार अ नत्तर अनाहायी पर्यन्त जानना चाहिए ।

निघोषार्थ—भोषसे अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी मुञ्जगार, अस्पतर और अचस्थितविमक्ति
बाले जीव सवा पाये जाते हैं और अचक्षुष्यविमक्तिबाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं अतः तीन
मंग होते हैं । कदाचित् एक विमक्तिबाले जीवोंके साथ एक जीव अचक्षुष्यविमक्तिबाला होता है,
कदाचित् एक विमक्तिबाला के साथ अनेक जीव अचक्षुष्यविमक्तिबाले होते हैं । मूल मंगके साथ
तीन मंग होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्मकी अचस्थितविमक्तिबाले जीव सवा पाये जाते
हैं और शेष विमक्तिबाले जीव विकल्पसे पाये जाते हैं, अथ नौ मंग होते हैं । अचस्थितविमक्तिबालों
के साथ १ कदाचित् एक जीव अस्पतर विमक्तिबाला होता है, २ कदाचित् अनेक जीव अस्पतर
विमक्तिबाले होते हैं, ३ कदाचित् एक जीव अचक्षुष्यविमक्तिबाला होता है ४ कदाचित् अनेक
जीव अचक्षुष्य विमक्तिबाले होते हैं, ५ कदाचित् एक जीव अस्पतरबाला और एक जीव अचक्षुष्य
बाला होता है, ६ कदाचित् एक जीव अस्पतरबाला और अनेक जीव अचक्षुष्यबाले होते हैं,
७ कदाचित् अनेक जीव अस्पतरबाले और एक जीव अचक्षुष्यबाला होता है, ८ कदाचित् अनेक
जीव अस्पतरबाले और अनेक जीव अचक्षुष्यबाले होते हैं । मूल मंगके साथ ये नौ मंग होते हैं ।
आश्चर्यसे मारुतिबाल अन्धीस प्रकृतियोंकी मुञ्जगार और अचस्थितविमक्तिबाले तथा सम्यक्त्व
और सम्यग्मिध्यात्मकी अचस्थितविमक्तिबाले नियमसे होते हैं शेष विमक्तिबाले विकल्पसे जाते
हैं । अथ आईस प्रकृतियोंके तीन मंग हैं । आईस प्रकृतियोंकी मुञ्जगार और अचस्थित विमक्ति-
बालोंके साथ कदाचित् एक जीव अस्पतर विमक्तिबाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अस्पतर
विमक्तिबाली जाते हैं । मूल मङ्गके साथ ये तीन मंग जाते हैं । नरकमें सम्यग्मिध्यात्म प्रकृतिकी
अस्पतर विमक्ति नहीं जाती अतः उसके भी तीन मंग होते हैं—सम्यग्मिध्यात्मकी अचस्थित
विमक्तिके साथ कदाचित् एक जीव अचक्षुष्य विमक्तिबाला होता है, कदाचित् अनेक जीव
अचक्षुष्य विमक्तिबाले होते हैं, मूल मंगके साथ ये तीन मङ्ग होते हैं । सम्यक्त्व और अनन्ता-
नुबन्धीके नौ मङ्ग होते हैं । सम्यक्त्वकी अस्पतर और अचक्षुष्य विमक्ति विकल्पसे जाती है, अथ
अचस्थित विमक्तिके साथ १ कदाचित् एक जीव अस्पतरबाला होता है, २ कदाचित् अनेक जीव
अस्पतरबाले होते हैं कदाचित् पूर्ववत् जानना इच्छी तरङ्ग, अनन्तानुबन्धीकी मुञ्जगार और अचस्थित
विमक्तिबालोंके साथ शेष विमक्तिबालोंको मितानेसे भी नौ मङ्ग जाते हैं । दूसरेसे नरक
साथसे नरक तक पञ्चेन्द्रिय तियेन्व पाणिनी तथा भवगणिकमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अचस्थित
विमक्तिबाले नियमसे जाते हैं । अस्पतरबाले जाते ही नहीं हैं और अचक्षुष्यबाले विकल्पसे
जाते हैं, इच्छीय तीन ही मङ्ग होते हैं । पञ्चेन्द्रिय तियेन्व अपयज्ञोमें सम्यक्त्व और सम्यग्मि-
ध्यात्मकी अचस्थित विमक्तिबाले नियमसे जाते हैं इसलिए मङ्ग नहीं है । शेष सब प्रकृतियोंकी
मुञ्जगार व अचस्थित विमक्तिबाले नियमसे जाते हैं इसलिए अत्यन्त प्रकृतिके तीन तीन मङ्ग जाते
हैं । मनुष्य अपयज्ञे साम्बर मार्गाया है अतः सभी प्रकृतियोंके सभी पर भवनीय हैं । और एक
एक प्रकृतिके तीन तीन पर जाते हैं अतः प्रत्येक प्रकृतिके अन्धीस अन्धीस मङ्ग जाते हैं । सम्यक्त्व
और सम्यग्मिध्यात्मका केवल एक अचस्थित पर ही जाता है, अतः दो दो मङ्ग जाते हैं—कदाचित्
एक जीव अचस्थितबाला होता है, कदाचित् अनेक जीव अचस्थितबाले जाते हैं । जानवसे

§ ४६०. भागाभागाणु० दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण

मिच्छत्त--वारसक०--णवणोक० भुज० सव्वजीवाणं केव० ? संखे० भागो । अप्प० असखे० भागो । अवट्ठि० संखेज्जा भागा । एवमणंताणु० चउक० । णवरि अवत्तव्व० अणंतिमभागो । सम्मत०-सम्मामि० अप्पद०--अवत्तव्व० असखे० भागो । अवट्ठि० असंखेज्जा भागा । एव तिरिक्खोघं । णवरि सम्मामि० अप्पद० गत्थि ।

§ ४६१. आदेसेण णेरइएसु तिरिक्खभगो । णवरि अणताणु० चउक० अवत्तव्व० असंखे० भागो । एवं पढमपुढवि०--पंचिदियतिरिक्ख-पंचि० तिरि० पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सार ति । विट्ठियादि जाव सत्तमपुढवि०--पंचि० तिरिक्ख-जोगिणी०--भवण०--वाण०--जोइसि० एवं चेव । णवरि सम्मत० अप्पद० गत्थि । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्ज० णेरइयभगो । णवरि अणताणु० चउक० अवत्तव्व० गत्थि । सम्मत-सम्मामिच्छत्ताण गत्थि भागाभागो ।

लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त सभी प्रकृतियों की अवस्थित विभक्तिवाले नियमसे होते हैं-शेष पद विकल्पसे होते हैं, अत आनतसे नव प्रैयेयक पर्यन्त तेईस प्रकृतियों के तीन तीन भङ्ग होते हैं, क्योंकि बाईसकी अल्पतर विभक्ति विकल्पसे होती है और सम्यग्मिध्यात्वकी अवक्तव्य विभक्ति विकल्पसे होती है । अनन्तानुवन्धीकी अवक्तव्य, भुजगार और अल्पतर ये तीन विभक्ति विकल्पसे होती हैं इसलिये सत्ताईस भङ्ग होते हैं सम्यक्त्व प्रकृतिकी दो विभक्ति विकल्पसे होती हैं इसलिये नौ भङ्ग होते हैं । अनुदिशादिकमे सत्ताईस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्ति विकल्पसे होती है इसलिये प्रत्येकमे तीन तीन भङ्ग होते हैं । सम्यग्मिध्यात्वकी केवल अवस्थित विभक्ति वाले ही नियमसे होते हैं, अतः भङ्ग नहीं है ।

§ ४९० भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिध्यात्व, वारह कपाय और नव नोकषायोंकी भुजगार विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? संख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अल्पतर विभक्तिवाले असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अवस्थित विभक्तिवाले संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए । इतना विशेष है कि अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर और अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है ।

§ ४९१. आदेशसे नारकियोमे तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि उनमें अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्ति नहीं होती । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भाग-

१४६२ मनुसा० ओषं । णवरि अर्णताणु० चरक० मवत्तम्ब० अस्तंसे० भागो । एवं मनुसपञ्ज०-मनुसिणी० । णवरि जम्मि अस्तंसे० भागो तम्मि संसे० भागो अयम्बो । आणदाणि जाव जवगेवञ्ज० सत्तावीस पयडीणमप्यद० सम्मच०-सम्मामि०-अर्णताणु० चरक० मवत्तम्ब० अस्तंसे० भागो । सम्बेसिमवद्धिद० अस्तंसेञ्जा भागा । णवरि अर्णताणु० ४ भूज० अस्तंसे० भागो । अनुविसादि जाव अवरार्द्धं ति एवं पेव । णवरि सम्म-सम्मामि०-अर्णताणु० चरक० मवत्तम्ब० अर्णताणु० भुम० णत्थि । सम्बद्धे सत्तावीसपयडीणमप्यद संसे० भागा । मवद्धि० संसेञ्जा भागा । सम्मामि० णत्थि मागामाना । एवं आणिट्ठण पेद्वन्मं जाव अणाहारि चि ।

१४६३ परिमाण्यणु० दुबिहो गिहोसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण इन्वीसं पयडीणं तिरियण पद० दम्बपमापेण केवडिया ? अर्णता । अर्णताणु० चरक० मवत्तम्ब० अस्तंसेञ्जा । सम्मच-सम्मामि० दो पदा अस्तंसेञ्जा । अप्यद० संसेञ्जा ।

१४६४ आदेसेण पेद्वपुसु अर्णतावीसं पयडीणं सन्धपदमि० अस्तंसेञ्जा । णवरि सम्म० अप्यद० ओष । एवं पद्वपुडवि० पंचिद्वियतिरिक्त्त-पंचि० तिरि० पञ्ज०

माग नहीं है ।

१४९२ सामान्य मनुष्योंमें आषकी तरह भंग है । इतना किरौप है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अचक्षुष्य विमर्शिताले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाय है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्योमिं जानना चाहिए । इतना किरौप है कि गिनकर मागामाग अस्मत्प्रमातवें भाग प्रमाय है उनमें संख्यातवें भाग प्रमाय कर लेना चाहिए । आनवसे लेकर मवप्रैवेयक तकके देवोंमें सत्तावीस प्रकृतियोंकी अस्वतर विमर्शिताले जीव तथा सम्यक्त्व सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अचक्षुष्य विमर्शिताले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाय हैं । सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विमर्शिताले जीव असंख्यात बहु-मागप्रमाय है । इतना किरौप है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी मुजगार विमर्शिताले जीव असं-ख्यातवें भाग प्रमाय हैं । अनुविरासे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें इसी प्रकार मामना चाहिए । इतना किरौप है कि सम्यक्त्व सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अचक्षुष्य विमर्शिताले तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी मुजगार विमर्शिताले नहीं हैं । सर्वार्थसिद्धिमें सत्तावीस प्रकृतियोंकी अस्वतर विमर्शिताले जीव संख्यातवें भाग प्रमाय हैं । अवस्थित विमर्शिताले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाय हैं । सम्यग्मिध्यात्वका मागामाग नहीं नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

१४९३ परिमाण्यणुगमकी अपेक्षा तिहोरा का प्रकारका है—ओष और आवेरा । ओषसे इन्वीस प्रकृतियोंकी मुजगार, अस्वतर और अवस्थितविमर्शिताले जीव इत्यप्रमायसे कितने हैं ? अत्यन्त हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अचक्षुष्य विमर्शिताले जीव असंख्यात हैं सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अचक्षुष्य और अवस्थित विमर्शिताले जीव असंख्यात हैं और अस्वतर विमर्शिताले जीव संख्यात हैं ।

१४९४ आवेरासे सप्तविंशोमें अर्द्धांस प्रकृतियोंकी सब विमर्शितालोंका परिमाण्य असं-ख्यात है । इतना किरौप है कि सम्यक्त्वकी अस्वतरविमर्शितालोंका परिमाण्य ओषकी तरह जानना चाहिए । इसीप्रकार पक्षी पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतियन्त्र, पञ्चेन्द्रियतियन्त्रपत्रांस, सामान्य

देवोद्यं सोहम्मादि जाव सहस्सारो ति । विटियादि जाव सत्तमि ति एव च । णवरि सम्मत० अप्पद० णत्थि । एवं पंचिदियतिरि० जाणिणी-भवण०-वाण-जोदिसि ए ति ।

§ ४६५, तिरिक्खाणमोघ । णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि । पंचि०तिरि०-अपज्ज० छ्वीसं पयडीणं तिण्ण पदवि० सम्मत-सम्मामि० अवट्ठि० असंखेज्जा । एवं मणुसअपज्ज० । मणुस्सेसु छ्वीसं पयडीणं तिण्णपदविह० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० असंखेज्जा । दोएहमप्पद० छएहमवत्तव्व० संखेज्जा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वपय० सव्वपदवि० संखेज्जा । आणदादि जाव अवरइदं ति अट्टावीसं पयडीणं सव्वपदवि० असंखेज्जा । णवरि सम्मत० अप्पद० ओद्यं । सव्वट्ठे सव्वपयडीणं सव्वपदविहत्तिया संखेज्जा । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ४६६, खेत्ताणु० दुविहो णिहो सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छ्वीसं पयडीणं तिण्णपदवि० केवट्ठि० खेत्ते ? सव्वलोगे । अणंताणु० चउक्क० अवचव्व० सम्म०-सम्मामि० तिण्णपदवि० लोग० असखे०भागे । एवं तिरिक्खोघ । णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि । आदेसेण रोइएसु अट्टावीसं पयडीणं सव्वपदवि० लोग०

देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसीप्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिवाले वहाँ नहीं हैं । इसीप्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यच योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपियोंमें जानना चाहिए ।

§ ४६५, सामान्य तिर्यचोंमें ओघकी तरह भग है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले वहाँ नहीं हैं । पञ्चेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्तकोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । इसीप्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । सामान्य मनुष्योंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले तथा इन दोनों और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियो मे सब प्रकृतियों की सब विभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । आन्त स्वर्गसे लेकर अपराजित विमान तकके देवों में अट्टाईस प्रकृतियों की सब विभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । इतना विशेष है कि सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्तिवालो का परिमाण ओघकी तरह है । सर्वार्थसिद्धिमें सब प्रकृतियों की सब विभक्तिवालो का परिमाण सख्यात है । इसप्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

§ ४६६ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छ्वीस प्रकृतियों की भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले जीवों का कितना क्षेत्र है । सब लोक क्षेत्र है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी तीन विभक्तिवाले जीवों का क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसीप्रकार सामान्य तिर्यचोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इनमें सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है । आदेशसे नारकियों में अट्टाईस प्रकृतियों की सब विभक्तिवाले जीवों का

असंसे०भाग । एवं सम्बन्धेणैव-सम्बन्धिदिपतिरिक्त्व-सम्बन्धुस्त-सम्बन्धेने चि । एवं चाभिदूषण जेद्वन् चाम अणाहारि चि ।

§ ४६७ पौसणाणु० बुविहो जिहो सो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण इम्भीसं पयडीणं तिपिण्ण पदवि० स्वेत्तमगो । अर्णावाणु० पत्तक० अयत्तम्ब० सम्म० सम्मामि० अयत्तम्ब० लोग० असंसे०भागो अट्ठचोरस० देसूणा । सम्म-सम्मामि० अप्पद० स्वेत्त । अयत्ति० लोग० असंसे०भागो अट्ठचोरस० देसूणा सम्बन्धो गो वा ।

§ ४६८ आदेसेण षेरइप्पु इम्भीसं पयडीणं तिपिण्णपदवि० सम्मत्त०-सम्मामि० अयत्ति० लोग० असंसे०भागो अट्ठचोरस० देसूणा । सम्म० अप्प० इयहमयत्तम्ब० स्वेत्त । पट्टमपुट्टवि० स्वेत्तं । विदियादि नाम सत्तमि चि इम्भीसं पयडीणं तिपिण्णपदवि० सम्म०-सम्मामि० अयत्ति० सगपौसणं । इयहमयत्तम्ब० स्वेत्त ।

§ ४६९ तिरिक्त्व० इम्भीसं पयडीणमोप । जवरि अर्णावाणु० पत्तक० अयत्तम्ब० स्वेत्तं । सम्म० अप्पद०-अयत्तम्ब० सम्मामि० अयत्त० स्वेत्तं । दोयहमयत्ति० लो० असंसे०भागो सम्बन्धो गो वा । पंचिदिपतिरिक्त्वतिपमि इम्भीसं पयडीणं

चेत्र श्लोकके अर्थव्याप्तये भागप्रमास्य है । इसी प्रकार सब नगरकी सब पंचेन्द्रवर्तियं सब मनुष्य और सब देवोंमें जानना चाहिये । इस प्रकार जानकर अनाहारी पवन्त से जाना चाहिये ।

§ ४९५ स्थानानुगमकी अप्पेणा निर्देशा दो प्रकारका है—आप और आदेरा । आपसे इम्भीस प्रकृतिया की तीन विभक्तिवाला का स्पर्शन चेत्रके समान है । अनन्तानुगमकी अप्पेणा अयत्तम्बविभक्तिवाले जीवों में और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिच्छात्वकी अयत्तम्बविभक्तिवाले जीवों में श्लोक असंख्यातये भागप्रमास्य और चौदह राजुमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमास्य चेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिच्छात्वकी अयत्तर विभक्तिवाले जीवों का स्पर्शन चेत्रके समान है । अयत्तव्यविभक्तिवाले जीवों में श्लोक असंख्यातये भागप्रमास्य और चौदह राजुमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमास्य और सर्ष श्लोकप्रमास्य चेत्रका स्पर्शन किया है ।

§ ४९८ आहारासे नारकियोंमें इम्भीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवाले जीवोंमें और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिच्छात्वकी अयत्तव्यविभक्तिवाले जीवों में श्लोकके असंख्यातये भागप्रमास्य और चौदह राजुमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमास्य चेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी अयत्तरविभक्तिवाले जीवों का तथा सम्यक्त्व सम्यग्मिच्छात्व और अनन्तानुगमकी अप्पेणा इन कुछ प्रकृतियोंकी अयत्तव्यविभक्तिवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है । पक्षी पृथिवीमें स्पर्शन चेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकियों में इम्भीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तिवालों का और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिच्छात्वकी अयत्तव्य विभक्तिवालों का अप्पेणा अप्पेणा स्पर्शन जानना चाहिये । इन प्रकृतियोंकी अयत्तव्यविभक्तिवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है ।

§ ४९९ सामान्य विषयों में इम्भीस प्रकृतिया का स्पर्शन आहारी तरह है । इतना विशेष है कि अनन्तानुगमकी अप्पेणा अयत्तव्यविभक्तिवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है । सम्यक्त्वकी अयत्तर और अयत्तव्यविभक्तिवालों का तथा सम्यग्मिच्छात्वकी अयत्तव्यविभक्तिवालों का स्पर्शन चेत्रके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिच्छात्वकी अयत्तव्यविभक्तिवाले जीवों में

१ वा प्रती इमममि अप्पे चोच । अयत्ति इति पाठः ।

तिरिणपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० लो० असखे०भागो सव्वलोगो वा । सम्म० अप्पद० छ्णहमवत्त० इत्थि-पुरिस० भुज० लोग० असखे०भागो । वादर-मुहुमएट्टि-एहिंतो आगंतूण पंचदियतिरिक्खेसु उप्पण्णाणमित्थि-पुरिसवेदभुजगारस्स सव्वलोगो किण्ण लब्भदे ? ण, विसोद्विक्खेण पचिदियतिरिक्खेसुप्पज्जमाणानं विग्गहर्इए भुजगारवंधाभावादो । णवरि जोणिणी० सम्म० अप्पद० णत्थि । पचि०तिरि०अपज्ज० छ्णवीसं पयडीणं तिरिणपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० लोग० असखे०भागो सव्वलोगो वा । णवरि इत्थि--पुरिस० भुज० लोग० असखे०भागो । एव मणुस-अपज्ज० । मणुसतियस्स पंचदियतिरिक्खभंगो । णवरि सम्मामि० अप्प० खेतं ।

§ ५००. देवे० छ्णवीस पयडीणं तिरिण पदवि० सम्मत-सम्मामि० अवट्टि० लोग० असखे०भागो अट्ट-णवचोदस० देसूणा । इत्थि-पुरिस० भुज० छ्णहमवत्तव्व० अट्टचोदस देसूणा । सम्मत० अप्प० खेतं । एवं सोहम्मसाणे । भवण०--वाण०-

लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनियो मे छ्णवीस प्रकृतियों की तीन विभक्तिवाले जीवो ने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवाले जीवो ने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्तिवाले जीवो ने तथा छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिवाले जीवो ने और स्त्रीवेद तथा पुरुषवेदकी भुजगारविभक्तिवाले जीवो ने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

शका—वादर और सूक्ष्म एकेन्द्रियो में से आकर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मे उत्पन्न होनेवाले जीवो के स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगारविभक्तिना स्पर्शन सर्वलोक क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विशुद्ध परिणामोंके वशसे पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमे उत्पन्न होनेवाले जीवो के विप्रहगतिमें भुजगारका श्रमाव है ।

इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियो मे सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तको में छ्णवीस प्रकृतियों की तीन विभक्तिवाले जीवो ने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीवो ने लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतना विशेष है कि स्त्रीवेद और पुरुष वेदकी भुजगार विभक्तिवाले जीवो ने लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तको में जानना चाहिए । सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियों में पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्ति वालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ५०० देवो में छ्णवीस प्रकृतियों की तीन विभक्तिवाले जीवो ने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाले जीवो ने लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण और चौदह राजूमेंसे कुछकम आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार विभक्तिवाले जीवो ने और छह प्रकृतियों की अवक्तव्य विभक्तिवाले जीवो ने कुछ कम आठ बटे चौदह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिवालो का

बोदिसि० एवं वेद । णवरि सगपोसर्ण । सम्म० अप्पद० पत्ति । सण्णकुमारदि
 भाव सहस्तारो ति अट्ठापीसं पयडीर्णं सम्भपददि० लो० असंसे० भागो अट्ठोइस
 देसूणा । णवरि सम्म मप्य० स्वेत्त । भाणदादि भाव अच्चुदे ति अट्ठापीसं पयडीर्णं
 सम्भपददि० सगपोसर्ण । सम्म० मप्यद० स्वेत्त । उवरि स्वेत्तमंगा । एवं जाणिदूप
 पेदध्व भाव अणाहारि ति ।

१५०१ कासायु बुनिहो णिह सो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण ऋषीसं
 पयडीर्णं तियिष्पददि० सम्म०-सम्मामि० अवडि० सण्णदा । सम्म० मप्यद० ज०
 एगस०, उक्क अंतोसु० । सम्मामि० मप्यद० ज० एगस०, उक्क० संस्वज्जा समया ।
 सम्मव-सम्मामि०-अर्णतायु०-अरुक्क० अपसम्भ० ज० एगस०, उक्क० मानडि० असंसे०

स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार साधर्म और इरण स्वर्गमें जानना चाहिये । मन्वन्वासी
 स्वन्तर और ब्योतिविबो में इसी प्रकार जन्म चाहिये । इतना विरोप है कि अपना अपना
 स्पर्शन कर्त्तना चाहिये । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं जाती । सन्त्कुमारसे लेकर सह
 छार स्वर्ग तकके देवोंमें अट्ठारस प्रकृतियों की सब विभक्तिवाले देव ने साकके अस्तंभ्यातर्षों माग
 प्रमाण और चौदह रज्जुमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इतना विरोप है
 कि सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आन्व कल्पसे लेकर अच्युत
 कल्प तकके देवा में अट्ठारस प्रकृतियों की सब विभक्तिवालों का स्पर्शन अपने अपने स्पर्शनके
 समान है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अल्पतर विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अच्युत स्वर्गसे
 ऊपर स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेमाना चाहिये ।

विशुधार्थ—आपसे अनन्तागुब्धी चतुष्क और सम्ममिध्यात्व की अवच्छम्य विभक्ति-
 वाला का स्पर्शन जो आठ बटे चौदह रज्जु कहा है सो देवगति की अपेक्षा समझना । सम्यक्त्व
 और सम्ममिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाला ने अतीत कालम सर्वलाक स्पर्श किया है, विहार
 बल्लवस्थान और विक्रिया परके द्वारा वर्तमानमे साकका अस्तंभ्यातर्षों माग और अतीत कालम
 कुछ कम आठ बटे चौदह रज्जु स्पर्श किया है । आदेशसे तारकिया में ऋषीस प्रकृतियों की
 अवस्थित विभक्तिवाले जीवा ने वर्तमान कालम साकका अस्तंभ्यातर्षों माग तथा अतीत कालमे
 साकका अस्तंभ्यातर्षों माग और मारयण्टिक तथा उपवात् परके द्वारा कुछ कम आठ बटे चौदह
 रज्जु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवोंमें ऋषीस प्रकृतियोंकी मुजगार, अल्पतर और अवस्थित
 विभक्तिवाला का तथा सम्बत्त्व और सम्ममिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवाला का स्पर्शन
 वर्तमान की अपेक्षा साकका अस्तंभ्यातर्षों माग और अतीत काल की अपेक्षा कुछ कम
 आठ बटे चौदह रज्जु तथा मारयण्टिक परके द्वारा कुछ कम मी बटे चौदह रज्जु है । इतना
 विरोप है कि अीक्क और पुठपवह की मुजगार विभक्तिवालों में तथा अह प्रकृतियों की अवच्छम्य
 विभक्तिवालों में अतीत कालमे कुछ कम आठ बटे चौदह रज्जु क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी
 प्रकार रोप स्पर्शन बटित कर लेना चाहिये ।

१५१ कासायुगमकी अपेक्षा मिर्सेरा हो प्रकारका है—आप और आवेरा । आपसे
 ऋषीस प्रकृतियों की तीन विभक्तियों का और सम्बत्त्व तथा सम्ममिध्यात्वकी अवस्थित विभ
 का काल सर्वथा है । सम्बत्त्वकी अल्पतर विभक्तिका अवश्य काल एक समय है और अह
 का काल अनन्तुर्ध्व है । सम्ममिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका अवश्य काल एक समय है और अह
 का काल संभ्यात समय है । सम्यक्त्व सम्ममिध्यात्व और अनन्तागुब्धीचतुष्ककी अवच्छम्य

भागो । एवं तिरिक्खोधं । णवरि सम्मामि० अप्पद० णत्थि ।

§ ५०२. आदेसेण णेरइएसु छव्वीसंपयडीणं भुज० अवट्ठि० सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठि० सव्वद्धा । छव्वीसपयडीणमप्पद० छण्हमवत्त० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । सम्म० अप्पद० ओघ । एव पढमपुढवि०-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवोधं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि सम्म० अप्पद० णत्थि । एवं जोणिणि--भवण०--वाण०-जोदिसिए त्ति । पंचि०तिरि०अपज्ज० अट्टावीसंपयडीणमप्पणो पदवि० णेरइयभंगो ।

§ ५०३. मणुसतिएसु छव्वीसपयडीणं तिण्णिपदवि० णेरइयभंगो । णवरि चदुसंज०-पुरिस० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि० अप्प०-अवट्ठि० ओघं । छण्हमवत्तव्व० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । णवरि मणुस-पज्ज० मिच्छ०-वारसक०-अट्टणोक्क० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया ।

विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चो में जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्ति उनमें नहीं होती ।

विशेषार्थ—ऊपर नाना जीवो की अपेक्षा विभक्तियों का काल बतलाया है । ओघसे सम्यक्त्व प्रकृति की अल्पतर विभक्तिवालो का काल जघन्यसे एक समय है । जैसे अनेक जीवो ने दर्शनमोहके क्षण कालमें एक साथ एक समयके लिये सम्यक्त्वकी अल्पतरविभक्ति की । इसी प्रकार उत्कृष्ट काल भी समझना ।

§ ५०२ आदेशसे नारकियों में छव्वीस प्रकृतियों की भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है । छव्वीस प्रकृतियों की अल्पतर विभक्तिका और छह प्रकृतियों की अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका काल ओघकी तरह है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवों में जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियों में इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं हाती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क-देवों में जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तको में अट्टाईस प्रकृतियों की अपनी अपनी विभक्तियों का काल नारकियों के समान है ।

§ ५०३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें छव्वीस प्रकृतियों की तीन विभक्तियों का काल नारकियों की तरह है । इतना विशेष है कि चार सज्जलन और पुरुषवेदकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका काल ओघकी तरह है । छह प्रकृतियों की अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । इतना विशेष है कि मनुष्यपर्याप्तको में मिध्यात्व, वारह कपाय और आठ नोकपायो की अल्पतर विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है । इसी प्रकार

एषं मधुसिनी० । शबरि पुरिस० अप्य० अ० एगस०, उह० संस्तेजा समया । मधुसअपह० अम्बीसंपयदीर्णं मुन०-अवटि० सम्म०-सम्मामि० अवटि० अ० एगस०, उह० पक्षिदो० असंस्ते० भागो । अम्बीसंपय० अप्य० पेरइयमंगो ।

१ ५०४ आजदादि भाव जवगेवजा ति अहावीसंपयदीणमपहि० सम्बद्धा । अम्बीसंपय० अप्य० अणइमवचम्य० अ० एगस०, उह० आवलि० असंस्ते भागो । सम्म० अप्यद० ओषं । अर्णतापु०४ अण० अ० एगस०, उह० पक्षिदो० असंस्ते० भागो । मधुसिसादि भाव जवराइदो ति एषं चेष । शबरि अणइमवच० अर्णतापु०४ अण० जत्थि । सम्पद्धे अम्बीसंपयदीणमप्य० अ० एगस०, उह० संस्तेजा समया । मपहि० सम्बद्धा । सम्म० अप्य० ओषं । सम्म०-सम्मामि० अवटि० सम्बद्धा । एषं आभिदूण वेदम्यं भाव अगाहारि ति ।

१ ५०५ अंतराजु० दुबिहो गिहोसो—ओषेण आदेसेण । ओषेण अम्बीसंपयदं णं तिणिणपदधि० सम्म०-सम्मामि० अवटि० शत्थि अंतर । सम्मत्त-सम्मामि० अप्य० अ० एगस०, उह० अम्मासा । दोणमवच० अर्णतापु०४ उह० अमत्त० अंतरं अ० एगस०, उह० पववीसं मधोरचे सादिरेगे ।

मनुष्यिनियो में जान्ना चाहि । इतना विशेष है कि पुठक्केकी अस्पतर विमक्तिका जपन्व काल एक समय है और उहउह काल संख्यात समय है । मनुष्य अपर्याप्तको में जम्बीस प्रकृतिया की मुजकार और अवस्थितविमक्तिका तथा सम्बन्ध और सम्बन्धित्यात्वकी अवस्थितविमक्तिका जपन्व काल एक समय है और उहउह काल पर्यके असंख्यातबे भाग प्रमास है । जम्बीस प्रकृतियों की अस्पतर विमक्तिका काल नारकिया के समान है ।

१ ५ ४ आनतसे अकर नवमैरेयक तकके देवा में अहार्स प्रकृतिया की अवस्थित विमक्तिका काल सर्वदा है । जम्बीस प्रकृतियोंकी अस्पतरविमक्तिका और अह प्रकृतिया की अवस्थितविमक्तिका जपन्व काल एक समय है और उहउह काल आक्कीके असंख्यातबे भाग प्रमास है । सम्बन्धकी अस्पतर विमक्तिका काल आभके समान है । अनन्तानुबन्धीवतुणकी मुजकारविमक्तिका जपन्व काल एक समय है और उहउह काल पर्यके असंख्यातबे भागप्रमास है । अनुसिरासे अकर अपराजित विमान तकके देवा में इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ अह प्रकृतिया की अवस्थित विमक्ति और अनन्तानुबन्धीवतुणकी मुजकार विमक्ति नहीं होती । सर्वासिद्धिमें जम्बीस प्रकृतियोंकी अस्पतर विमक्तिका जपन्व काल एक समय है और उहउह काल संख्यात समय है । अवस्थित विमक्तिका काल सर्वदा है । सम्बन्ध की अस्पतर विमक्तिका काल ओषके समान है । सम्बन्ध और सम्बन्धित्यात्वकी अवस्थित विमक्तिका काल सर्वदा है । इस प्रकार जानकर अगाहारी पद्यत ले जाना चाहिये ।

१ ५ ५ अन्तराजुमकी अपेक्षा निर्देश वा प्रकारका है—आव और आवेरा । ओषसे जम्बीस प्रकृतियोंकी तीन विमक्तियोंका और सम्बन्ध तथा सम्बन्धित्यात्वकी अवस्थित विमक्तिका अन्तर मर्ही है । सम्बन्ध और सम्बन्धित्यात्वकी अस्पतर विमक्तिका जपन्व अन्तर एक समय है और उहउह अन्तर अ मास है । इन दोमोंकी तथा अनन्तानुबन्धी वतुणकी अवस्थित विमक्तिका जपन्व अन्तर एक समय है और उहउह अन्तर अ मास अर्धक चौबीस

§ ५०६. आदेशेण गेरइएसु छव्वीसंपयडीणं भुज०-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० णत्थि अतर । अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्म० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । सम्मामि० अप्पद० णत्थि । छण्हमवत्तव्व० ओघं । एवं पढमपुढवि० पंचिदियतिरिक्खदोण्णि देवोघ सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति । विदि-यादि जाव सत्तमि त्ति एव चेव । णवरि सम्म० अप्पद० णत्थि । एवं पचि०तिरि०-जोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति ।

§ ५०७. तिरिक्ख० छव्वीसपयडीणमोघ । सम्म०--सम्मामिन्छत्ताणं गेरइय-भंगो । पचिदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसपयडीणं तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० गेरइयभंगो । मणुसतिण्णि छव्वीसंपयडीणं गेरइयभंगो । सम्म०--सम्मामि० ओघं । णवरि मणुसिणी० सम्म०-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० छव्वीसंपयडीण तिण्णि पदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असखे०भागो ।

§ ५०८. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति छव्वीसंपयडीणमप्पद० ज० एगस०,

रात दिन है ।

§ ५०६ आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है। अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व प्रमाण है। सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं होती। छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती। इन्हीं प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिसी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें जानना चाहिए।

§ ५०७ सामान्य तिर्यञ्चोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघकी तरह है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग नारकियोंके समान है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका भङ्ग नारकियोंके समान है। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग ओघके समान है। इतना विशेष है कि मनुष्यनियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी तीनों विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है।

§ ५०८ आनतसे लेकर नवम्रैत्रेयक तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन हैं। अवस्थितविभक्तिका अन्तर

उक्त० सद्य रादिदियाणि । अषट्ठि० गत्यि अंतरं । अर्णतापु० चउक्त० सुम०-अवतम्ब०
 उह० एगस०, उक्त० चउबीसपहोरच सादिरेगे । सम्म०-सम्मायि० देनापं । अणुदि
 सादि भान सम्बद्धसिद्धि वि सधाभीसंपयडीणमप्य ज० एगस०, उक्त० वासपुपंतं
 पक्षिदो० संस्व०भागो । अहाभीसंपयडीणमवट्टि० गत्यि अंतरं । एवं भागिदूज जेद्वं
 भाव अजाहारि वि ।

§ ५०६ भाषाणु० सम्पत्य मोदइओ भावो । एवं भागिदूज जेद्वं जाय अजा
 हारि वि ।

§ ५१० अप्याधुगापुगमेण दुविहो गिहंसो—ओपेण आदेसेण य । ओपेण
 मिच्छत्त-वारसक गवणाक० सम्बत्वोवा अप्यद्वरविहृतिया नीत्वा । सुम०विहृति०
 नीत्वा असंस्व०गुणा । अषट्ठि० भीषा संस्वे०गुणा । सम्म०-सम्मायि० सम्बत्वोवा
 अप्यद्वरवि० । अवत० असंस्वे०गुणा । अषट्ठि० असंस्व०गुणा । अर्णतापु०चउक्त० सप्य
 त्योवा अवतम्ब । अप्यद० अर्णतागुणा । सुम० असंस्वे०गुणा । अषट्ठि० संस्वे०गुणा ।

नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी मुजगार और अवतम्बका अपन्म अन्तर एक समय है
 और उक्त अन्तर उक्त अषट्ठि चौबीस रात दिन है । सम्पत्य और सम्मिध्यात्वका
 मङ्ग सामान्य वेदोंकी तरह है । अणुदिरासे लेकर सर्वासिद्धि तकके वेदोंमें सत्ताईस
 प्रकृतियोंकी अस्पतर विभक्तिका अपन्म अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर विजयादिक
 चारमें वर्षपूर्वकत्वप्रमाण और सर्वासिद्धिमें पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण है । अर्णतास
 प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्ति अन्तर नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ज्ञेयाना
 चाहिये ।

विशेषार्थ—ओपसे मिन प्रकृतियोंके जो विभक्तियासे जीव सदा पाये जाते हैं वनमें
 अन्तर हो ही कैसे सकता है ? ओपसे सम्पत्य और सम्मिध्यात्वकी अस्पतर विभक्तियाओं
 का उक्त अन्तर छ मास है, क्योंकि इन प्रकृतियोंकी वह विभक्ति वर्तनमोहके चक्रके होती
 है और नाना जीवोंकी अपेक्षा वसके चक्रकालका उक्त अन्तर छ मास होता है । रोप सुगम है ।

§ ५११ भाषानुगमकी अपेक्षा सवत्र औदधिक भाव है । इस प्रकार जानकर अनाहारी
 पर्यन्त ज्ञेयाना चाहिये ।

§ ५१ अस्मत्तुत्त्वानुगमकी अपेक्षा निर्देरा दो प्रकारका है—ओप और आदेरा । ओपसे
 मिध्यात्व बाह्य कथाय और नव नाकयावोंकी अस्पतर विभक्तियासे जीव सबसे बोधे हैं ।
 वनसे मुजगार विभक्तियासे जीव असंख्यातगुणे हैं । वनसे अवस्थित विभक्तियासे जीव
 संख्यातगुणे हैं । सम्पत्य और सम्मिध्यात्वकी अस्पतर विभक्तियासे जीव सबसे बोधे हैं ।
 वनसे अवतम्ब विभक्तियासे जीव असंख्यातगुणे हैं । वनसे अवस्थितविभक्तियासे जीव
 असंख्यातगुणे हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवतम्ब विभक्तियासे जीव सबसे बोधे हैं । वनसे
 अस्पतर विभक्तियासे जीव अनन्तगुणे हैं । वनसे मुजगार विभक्तियासे जीव असंख्यातगुणे हैं ।
 वनसे अवस्थित विभक्तियासे जीव संख्यातगुणे हैं ।

१ वा प्रती वक्रिहो चउके माते इति वक्त ।

§ ५०६. आदेसेण णेरइएसु छ्वीसंपयडीणं भुज०-अवट्टि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० णत्थि अतर । अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्म० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । सम्मामि० अप्पद० णत्थि । छण्हमवत्तव्व० ओघं । एवं पढमपुढवि० पंचिंदियतिरिक्खदोणिण देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति । विदि-यादि जाव सत्तमि त्ति एव चेव । णवरि सम्म० अप्पद० णत्थि । एवं पचिंतिरि०-जोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए त्ति ।

§ ५०७. तिरिक्ख० छ्वीसपयडीणमोघ । सम्म०--सम्मामिच्छत्ताणं णेरइय-भंगो । पचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छ्वीसपयडीणं तिण्णिपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० णेरइयभंगो । मणुसतिण्णि छ्वीसंपयडीणं णेरइयभंगो । सम्म०--सम्मामि० ओघं । णवरि मणुसिणी० सम्म०-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० छ्वीसंपयडीणं तिण्णि पदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ५०८. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति छ्वीसंपयडीणमप्पद० ज० एगस०,

रात दिन है ।

§ ५०६ आदेशसे नारकियोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है । अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्गुहूर्त है । सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व प्रमाण है । सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं होती । छह प्रकृतियोंकी अवस्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि वहाँ सम्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति नहीं होती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें जानना चाहिए ।

§ ५०७ सामान्य तिर्यञ्चोंमें छ्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघकी तरह है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी तीन विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका भङ्ग नारकियोंके समान है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें छ्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग नारकियोंके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग ओघके समान है । इतना विशेष है कि मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी तीनों विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

§ ५०८ आनतसे लेकर नवप्रैयेयक तकके देवोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन हैं । अवस्थितविभक्तिका अन्तर

उक्तं सत् रात्रिदियाणि । अरट्टि० गत्यि अंतर् । अर्णताणु० चउक्तं । सुम०-अयत्तम् ।
 जह० एगस०, उक्तं । अतनीसमहोरत्त सादिरगे । सम्म०-सम्मामि० देवापं । अणुवि
 सादि जाय सम्पहसिद्धि वि सत्ताबीसंपयडीणमप्य० ज० एगस०, उक्तं । वासपुपत्त
 पक्षियो० संस्ते० मागो० । महापीसंपयडीणमरट्टि० गत्यि अंतर । एव जाणिदूण जेद्वर्ष
 मान अणाहारि वि ।

§ ५०६ भावाणु० सन्वत्य मोदइओ भाषो । एवं जाणिदूण जेद्वर्षं जाय अणा
 हारि वि ।

§ ५१० अप्याबहुगाणुगमेण दुषिहो गिरेसो—ओघण आवेसेण य । ओपेण
 मिच्छत्त-वारसक० जवणाक० मन्वत्योवा अप्पदरविहत्तिया नीसा । सुम०-पिहत्ति०
 नीसा अरसत्त० गुणा । अरट्टि० नीसा संस्ते० गुणा । सम्म०-सम्मामि० सन्वत्योवा
 अप्पदरवि । अयत्त० अरसत्ते० गुणा । अरट्टि० अरसत्त० गुणा । अर्णताणु० चउक्तं । सन्व
 त्योवा अयत्तम् । अप्पद् अर्णत्तुणा । सुम० अरसत्त० गुणा । अरट्टि० संस्ते० गुणा ।

नीसा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क्री मुञ्जगार और अरट्टिअप्यका अयत्त अन्तर एक समय है
 और उक्त अन्तर कुछ अधिक थोडीस रात दिन है । सम्बन्ध और सम्मिमिध्यात्वका
 मङ्ग सामान्य शब्दोंकी तरह है । अनुदिरासे लेकर सर्वावस्थिति तकके देवोंमें सत्ताईस
 प्रकृतियोंकी अस्पतर विभक्तिका अयत्त अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर विजयादिक
 चारमें वर्षापूर्वकप्रमाण और सर्वावस्थितिमें पूर्वके संख्यातवें मासप्रमाण है । अत्ताईस
 प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्ति का अन्तर नीसा है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना
 चाहिये ।

विशेषार्थ—ओपसे जिन प्रकृतियोंके ओ विभक्तिवाले जीव सत्ता पाये जाते हैं उनमें
 अन्तर हा ही कैसे सकता है ? ओपसे सम्बन्ध और सम्मिमिध्यात्वकी अस्पतर विभक्तिवालों
 का उक्त अन्तर छ मास है, क्योंकि इन प्रकृतियोंकी वह विभक्ति दर्शनमोहके चक्करके होती
 है और नाना जीवोंकी अपेक्षा इसके उपस्यकात्मका उक्त अन्तर छ मास होता है । शेष सुगम है ।

§ ५११ भावानुगमकी अपवा सन्न औरदिक मास है । इस प्रकार जानकर अनाहारी
 पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

§ ५१२ अस्पबहुत्वानुगमकी अपवा मिश्रा दो प्रकारका है—आप और आवेश । ओपसे
 मिध्यात्व, वारह कपाम और म्ब म्बकावावोंकी अस्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे बोड़े हैं ।
 उनसे मुञ्जगार विभक्तिवाले जीव अरसंख्यातगुण्ये हैं । उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव
 संख्यातगुण्ये हैं । सम्बन्ध और सम्मिमिध्यात्वकी अस्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ।
 उनसे अरट्टिअप्य विभक्तिवाले जीव अरसंख्यातगुण्ये हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव
 अरसंख्यातगुण्ये हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क्री अरट्टिअप्य विभक्तिवाले जीव सपसे बाड़े हैं । उनसे
 अस्पतर विभक्तिवाले जीव अन्तगुण्ये हैं । उनसे मुञ्जगार विभक्तिवाले जीव अरसंख्यातगुण्ये हैं ।
 उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यातगुण्ये हैं ।

६ ५११. आदेसेण णेरइएमु तेवीसंपयडीणमोघ । सम्मामि० सव्वत्थोवा अवत्त० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । अणंताणु०चउळ्ळ० ओघं । णवरि अप्पद० असखे०गुणा । एवं पढमपुढवि-पंचिंदियतिरिक्ख-पचि०तिरि०पज्ज०-देवोघं सोहम्मादि जाव सहस्सार ति । विदियादि जाव सत्तमि ति एव चेव । णवरि सम्मत्त० अप्प० णत्थि । एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोइसिए ति ।

६ ५१२. तिरिक्खा० ओघं । णवरि सम्मामि० णेरइयभगो । पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज० छव्वीसपयडीण सव्वत्थोवा अप्पद० । भुज० असंखे०गुणा । अवट्ठि० संखे०गुणा । सम्म०-सम्मामि० णत्थि अप्पावहुअं । एव मणुसअपज्ज० । मणुसाणं णेरइय-भंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा अप्प० । अवत्त० संखे०गुणा । अवट्ठि० असंखे०गुणा । एवं [मणुस-] पज्जत्त-मणुसिणीणं । णवरि मव्वत्थ सखेज्जगुणं कायव्वं ।

६ ५१३. आणदादि जाव णवगेवज्जा ति वावीसपयडीणं सव्वत्थोवा अप्पद० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । सम्म०-सम्मामि० देवोघं । अणताणु०चउळ्ळ० सव्वत्थोवा अवत्त० । अप्पदर० संखे०गुणा । भुज० असंखे०गुणा । अवट्ठि० असंखे०गुणा । अणुदिसादि

६ ५११ आदेशसे नारकियोंने तेईस प्रकृतियोंका अल्पबहुत्व ओषके समान है । सन्त्यग्नि-ध्यात्वकी अवस्थाय विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असत्यात्तगुरो हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अल्पबहुत्व ओषके समान है । इतना विशेष है कि अल्पतर विभक्तिवाले असत्यात्तगुरो हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवी पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चपर्याप्त सामान्य देव तथा सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सन्त्यक्त्वकी अल्पतर विभक्ति वहाँ नहीं होती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चयोनिती भवन्वासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए ।

६ ५१२ सामान्य तिर्यश्चोंमें ओषके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि सन्त्यग्निध्यात्वका भङ्ग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे सुजगार विभक्तिवाले जीव असत्यात्तगुरो हैं । उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव संख्यात्तगुरो हैं । सन्त्यक्त्व और सन्त्यग्निध्यात्वका अल्पबहुत्व वहाँ नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । मनुष्योंमें नारकियोंके समान भङ्ग है । इतना विशेष है कि सन्त्यक्त्व और सन्त्यग्निध्यात्वकी अल्पतर विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यात्तगुरो हैं । उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असत्यात्तगुरो हैं । इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यितियोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सर्वत्र असत्यात्तगुरोके त्यागमें संख्यात्तगुरा कर लेना चाहिये ।

६ ५१३ ज्ञानरसे लेकर स्वर्गपर्यन्त तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियोंका अल्पतरविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असत्यात्तगुरो हैं । सन्त्यक्त्व और सन्त्यग्निध्यात्वका अल्पबहुत्व सामान्य देवोंके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवस्थित-विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अल्पतरविभक्तिवाले जीव संख्यात्तगुरो हैं । उनसे सुजगार विभक्तिवाले जीव असत्यात्तगुरो हैं । उनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असत्यात्तगुरो

आव अनराइद चि सचारीसपयडीणं सव्वत्योवा अप्पद० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । सम्माभि० णत्थि अप्पावहुअ । सव्वट्ठसिद्धिम्मि एषं चव । जवरि संखेज्जगुणं कायम्भं । एषं चाणिट्ठण पेत्तव्वं माव अणाहारि चि ।

पदविश्लेषो

§ ५१४ पदविश्लेषे चि तस्य इमाणि तिग्णि अणियोगहाराणि—समुच्चिन्ना सामिअ अप्पावहुअं चेदि । समुच्चिन्नाणु० दुनिहा णियमा—अह० उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्स पपदं । दुविहा णिहेसो—ओपेण आदसेण य । ओपेण मिच्छव-सोख सक्क०-णवणोक्क० अत्थि उक्कस्सिया बड्डी उक्कस्सिया हाणी अवहाणं च । सम्म० सम्माभिच्छरणं अत्थि उक्कस्सिया हाणी अवहाणं च । एव तिपह मणुस्सार्णं ।

§ ५१५ आदसेण णेरइएसु इत्थीसं पयडीणमोच । सम्म० अत्थि उक्क० हाणी० । एषं पढमपुडधि-तिरिक्खत्थिप-द्वोषं सोहम्मादि जाव सहस्सारकप्पो चि । एषं विदि यादि माव सचमि चि । जवरि सम्मत्त० उक्क० हाणी णत्थि । एषं पंचि०तिरि० चाणिणी०पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मवण०-माप०-आदिसिए चि ।

§ ५१६ आणत्तादि जाव सम्पट्ठसिद्धि चि इत्थीसं पयडीणमत्थि उक्क० हाणी

हैं । अनुष्ठितसे लेकर अपरासित विमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अस्त्वविकल्पितालो चीव सबसे बाह्र हैं । इनसे अश्वस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुण हैं । सम्यग्मिध्यात्य प्रकृतिका अस्त्ववद्वय नहीं है । सर्वार्थसिद्धिमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि असंख्यातगुणके स्थानमें संख्यातगुणा कर लेना चाहिये । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त से जाना चाहिये ।

पदनिश्लेष

§ ५१४ पदनिश्लेषमें ये तीन अनुयोगशर हाते हैं—समुत्कीर्तना स्वामित्व और अस्त्ववद्वय । समुत्कीर्तनानुगम नियमसे वा प्रकारका है—सपत्न्य और ऊट्ट । उक्कट्टका प्रकरण है । निर्देश वा प्रकारका है—आप और आदेश । आपसे मिध्यात्व, सोखह कपाय और मव नोक्कपायोंकी उक्कट्ट बुद्धि, उक्कट्ट हानि और अवस्थान हाता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उक्कट्ट हानि और अवस्थान हाता है । इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए ।

§ ५१५ आदेशसे नारकियोंमें इत्थीस प्रकृतियोंका मङ्ग आपके समाम है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी उक्कट्ट हानि हाती है । इसी प्रकार पहली पृथिवी सामान्य तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्बञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्बञ्चपर्याप्त सामान्य देव और सौपरमस लेकर सहस्रार कस्य तकके देवोंमें कामना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि बाह्रों सम्यक्त्व प्रकृतिकी उक्कट्ट हानि नहीं होती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्बञ्च चोनिनी पञ्चेन्द्रियतिर्बञ्च अपर्याप्त, मनुष्यअपर्याप्त मवनवासी, बन्तर और च्योतिषी देवोंमें कामना चाहिए ।

§ ५१६ आनत त्वगंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें इत्थीस प्रकृतियोंकी उक्कट्ट हानि

अवट्टाणं च । णवरि आणदादि जाव णवगेवज्जा ति अणंताणु०४ ओघं । सम्मत्त० देवोघ । एवं जाणिदूण णेदब्बं जाव अणाहारि ति ।

§ ५१७. जहणणयं पि एवं चेव भाणिदब्बं । णवरि जहणणणिहेसो कायच्चो ।

§ ५१८. सामित्ताणु० दुविहो—जहणणमुकस्स च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सिया वट्टी कस्स ? अण्णदरो जो चट्टुट्टाणियजवमज्भस्सुवरिमतोमुहुत्तमणंतगुणाए वट्टीए वट्टिदो तदो उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण उक्कस्साणु०भागं वधमाणस्स तस्स उक्कस्सिया वट्टी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्टाणं । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्साणुभाग-सतकस्मिओ तेण उक्कस्साणुभागकंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । सम्मत्त-सम्मा-मिच्छताणमुक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवओ तेण पढमे अणुभाग-कंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्टाणं । एव तिण्हं मणुस्साणं ।

§ ५१९. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसं पयहीणमोघं । सम्म० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवओ सम्मत्तट्टिदी अंतोमुहुत्तमत्थि ति णेरइएसु उववण्णो तस्स विदियसमयणेरइयस्स उक्क० हाणी । एव पढमपुट्टवि०-तिरिक्खतिय-देवोघ

और अवस्थान होता है । इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तानु-बन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवोंके समान है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५१७ इसी प्रकार जघन्यका भी कथन कर लेना चाहिये । अन्तर केवल इतना है कि उत्कृष्टके स्थानमें जघन्यका निर्देश करना चाहिये ।

§ ५१८. स्वामित्वाणुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नव नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके हाती है ? जो चतु स्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तगुणी वृद्धिसे बढ़ा, बादमें उत्कृष्ट सङ्कोशको प्राप्त होकर जिसने उत्कृष्ट अनुभागका बन्ध किया उसके उत्कृष्ट वृद्धि हाती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके हाती है । जिस उत्कृष्ट अनुभागकी सत्तावाले जीवने उत्कृष्ट अनुभाग का काण्डक घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि हाती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानि किसके हाती है ? जो दर्शनमोहका चपक जीव है उसके द्वारा प्रथम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके उत्कृष्ट हानि हाती है । उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए ।

§ ५१९ आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट हानि किसके हाती है ? जो दर्शनमोहका क्षपक जीव सम्यक्त्व प्रकृतिकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिके रहते हुए नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस नारकीके सम्यक्त्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट हानि हाती है । इसी प्रकार प्रथम नरक, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें

सोहम्मादि जाय सहसारे चि । एवं विदियादि जाय सचमि चि । जवरि सम्पत्त० उक्त० हाणी गत्यि । एवं पंचिदियतिरिक्त्वाभिणी भवण०-आण०-भोदिसिप चि ।

§ ५२० पंचिदियतिरिक्त्वाभपञ्ज० द्वितीयं पयटीणमुक्त्वा वही कस्त ? जो त्प्याभोमागहण्णाणुभागसंतकम्मिओ तेण त्प्याभोमाउक्त्वाणुभागे पचदे तस्त उक्त्वा-स्सिया वही । उक्त्वा हाणी कस्त ? अण्णदरो जो उक्त्वाणुभागसंतकम्मिओ उक्त्वाणुभागसंतकम्मिओ पयटीणमुक्त्वा पुणो पंचिदियतिरिक्त्वाभपञ्जपसु उववण्णो तेण उक्त्वाणुभागसंतकम्मिओ पादिदे तस्त उक्त्वास्सिया हाणी । तस्सेय स काले उक्त्वास्समवहाण । एवं मयुस०अपञ्ज० ।

§ ५२१ आणदादि जाय जवगेवजा चि द्वितीयं पयटीणमुक्त्वा हाणी कस्त ? अण्णदरो जा पद्यसम्मत्ताहिमुहां तेण पद्ये अणुभागसंतकम्मिओ इदे तस्त उक्त० हाणी । तस्सेन स काले उक्त्वास्समवहाणं । जवरि अर्णताणु०४ उक्त० वही कस्त ? अण्ण० विसं भोपदण संजुपस्त त्प्याभोमाउक्त्वास्संकिद्धेस गदस्त तस्त उक्त० वही । सम्पत्त० देवोपं । अणुविसादि जाय सम्पत्तिसिद्धि चि द्वितीयं पयटीणमुक्त्वा हाणी कस्त ? अण्णदरो जो अर्णताणुपिचउक्त्वा विसजोएमाणओ तेण पद्ये अणुभागसंतकम्मिओ इदे तस्त उक्त० हाणी । तस्सेय से काले उक्त्वास्समवहाणं । सम्पत्त० देवोपं । एवं आणिदण वेद्व्यं

जानना चाहिए । इसी प्रकार बुझीसे लेकर सातवीं प्रथिमी तकके नारकियाम जानना चाहिए । इतना किरोंप है कि वहाँ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट इति नहीं होती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियविकल्प-वामिनी भवनवासी अन्तर और म्यातिथी देवोंमें जानना चाहिए ।

§ ५२ पञ्चेन्द्रियविकल्पअपर्याप्तकर्म द्वितीयं पद्येयोंकी उत्कृष्ट इति किसके होती है ? जिसके अपने याम्य अथवा अनुभागकी सत्ता है उसके अपने याम्य उत्कृष्ट अनुभागका रूप करने पर उत्कृष्ट इति होती है । उत्कृष्ट इति किसके होती है ? जिसके उत्कृष्ट अनुभागकी सत्ता है वह उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट प्रथिमी कर पुन पञ्चेन्द्रियविकल्प अथवापर्याप्तकर्म उत्पन्न हुआ । वहाँ उसके द्वारा उत्कृष्ट अनुभागका उत्कृष्ट वाच किये जान पर उसके उत्कृष्ट इति होती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकर्म जानना चाहिए ।

§ ५२१ आनउस लेकर नवप्रथिमी तकके देवोंमें द्वितीयं पद्येयोंकी उत्कृष्ट इति किसके होती है ? जो जीव प्रथम सम्यक्त्वके अमित्युक्त है उसके द्वारा प्रथम अनुभाग का उत्कृष्ट वाच किये जाने पर उसके उत्कृष्ट इति होती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इतना किरोंप है कि अनन्तरमनुष्यकी उत्कृष्ट इति किसके होती है ? अनन्तर-मनुष्यकी कथायका विसंयोजन करके जो जीव पुनः उत्पन्न संयुक्त होकर तत्प्रायाग्य उत्कृष्ट संज्ञेयका प्राप्त होता है वह जीवके उत्कृष्ट इति होती है । सम्यक्त्व प्रकृतिज्ञान मज्ञ सामान्य देवोंके समान है । अनुविरासे लेकर समोर्धिसिद्धि तकके देवोंमें द्वितीयं पद्येयोंकी उत्कृष्ट इति किसके होती है ? अनन्तरमनुष्यकी विसंयोजन करमात्रा जो जीव प्रथम अनुभाग का उत्कृष्ट वाच करता है उसके उत्कृष्ट इति होती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । सम्यक्त्वका मज्ञ सामान्य देवोंके समान है । इस प्रकार जानकर अनाहारी

जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५२२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदे सो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठकसाय० तिएहं पदाणं जहण्णि० कस्स^१ ? अएणदरो जो सुहुमेइंदिय-जहण्णाणुभागसंतकम्मिओ तेण अणंतभागवड्डीए एगपक्खेवे वड्ढिदूण पवद्धे जहण्णिया वड्ढी । तम्मि चेव घादिदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्य अवट्टाण । सम्मत्त० जहण्णिया हाणी कस्स ? अएणदरो जो चरिमसमयअक्खीणदसणमोहणीयो तस्स जहण्णिया हाणी । जहण्णामवट्टाणं कस्स ? चरिममणुभागखडयोवट्टंत्तस्स । सम्मामि० जह० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो दंसणमोहक्खवओ तेण दुचरिमे अणुभागखंडए हदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवट्टाण । अणंताणु०चउक्क० ज० वड्ढी कस्स ? अण्णदरो जो विसंजोएदूण पुणो संजुज्जमाणओ तस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स विदियसमयसंजुत्तस्स जहण्णिया वड्ढी । जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो विसंजोएदूण अतोसुहुत्तसंजुत्तो विसंतो जाव सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसतकम्मादो हेट्ठा वधदि ताव तेण सञ्चत्थोवे अणुभागे घादिदे तस्स जहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवट्टाण । लोभसजलण० जह० वड्ढी कस्स ? जो सुहुमेइंदियअणुभागसंत-पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५२२ प्रकृतमे जघन्यसे प्रयोजन है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कपायोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान किसके होता है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाला जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव अनन्तभागवृद्धिमें एक प्रक्षेपकको बढाकर घन्ध करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है । उसी प्रक्षेपकके घात किये जाने पर जघन्य हानि होती है । तथा दोनोंमेंसे किमी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमोहका क्षय करनेवालेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य हानि होती है । जघन्य अवस्थान किसके होता है ? अन्तिम अनुभाग काण्डकका अपवर्तन करनेवालेके सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य अवस्थान होता है । सम्यग्मिथ्यात्व ही जघन्य हानि किसके होती है ? दर्शनमोहके क्षपकके द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर उसके जघन्य हानि होती है । उसीके अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । अनन्तानुवधीचतुष्पकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? अनन्तानुवन्धीका विसंयोजन करके पुन उसका संयोजन करनेवाले तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणावाले जीवके संयोजनके दूसरे समयमें जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? जा विसंयोजन करके अन्तर्मुहूर्त वाद संयोजन कर लेने पर विश्राम करता हुआ जब तक सूक्ष्म एकेन्द्रियके जघन्य अनुभाग सत्कर्मसे नीचे वध करता है तब तक उसके द्वारा सबसे थोड़े अनुभागका घात किये जाने पर उसके जघन्य हानि होती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें जघन्य अवस्थान होता है । लोभसज्वलनकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जघन्य अनुभागकी सत्ता वाले जिस सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके सबसे जघन्य अनन्तवें भागप्रमाण अनुभागकी वृद्धि होती

१ ता० प्रती पदाय जहण्णि० [वड्ढी] कस्स, अ० प्रती पदाय जहण्य० कस्स हति पाठः ।



कम्मिओ सज्जमहणमज्जतभागेण बद्धिदो तस्स जहणिया पट्टी । ज० हाणी कस्स ?
 अण्णदरस्स स्वययस्स चरिमसमयसकसायस्स । जहणमवहाणं कस्स ? अण्णदरस्स
 स्वययस्स चरिमे अणुभागस्वडप बट्टमाणस्स । इत्थि-णवुंसयवेदाणं ज० पट्टी कस्स ?
 सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसत्तकम्मियस्स तप्पाओगगजहणमज्जतभागपट्टीप बद्धिदस्स जह
 णिया पट्टी । जह० हाणी कस्स ? इत्थि-णवुंसयवेदोदपणुषट्ठिदस्सवपणं चरिमे अणु
 मागस्वडप इदे तस्स जहणिया हाणी । जहणमवहाणं कस्स ? तेणेव दुचरिम अणु
 मामस्वडप इदे तस्स जहणमवहाण । पुरिस० तिराई संमज्जणार्णं जहणपट्टीप मिच्छत्त-
 मंगो । जहणिया हाणी कस्स ? मय्यादरस्स स्वययस्स चरिमसमयअणिच्छेविदस्स
 तस्स जह० हाणी । जहणमवहाणं कस्स ? मय्याद स्वययस्स चरिमे अणुभागस्स
 स्वडप बट्टमाणस्स । छप्पोक० जहणपट्टीप मिच्छत्तमंगो । जह० हाणी कस्स ? स्व
 गेण दुचरिमे अणुभागस्वडप इदे तस्स जहणिया हाणी । तस्सेव से काख जहणमव
 हाणं । एष तिराई मणुस्सार्णं । जवरि मणुसपत्तत्तपत्तु इत्थि० छप्पोकसायार्णं मंगो ।
 मणुसिणीसु पुरिस-अवुंस० छप्पोकसायार्णं ।

§ ५२३ आदेशेण गेरूपसु मिच्छत्त-भारसक -गवणोक्क० जहणिया पट्टी

इसके जपन्य बुद्धि होती है । जपन्य हानि किसके हाती है ? जपके सकपाय अवस्थाके
 अन्तिम समयमें संकलन लोमकी जपन्य हानि हाती है । जपन्य अवस्थान किसके होता है ?
 संकलन लोमके अन्तिम अनुभाग काण्डकमें वर्तमान अन्यतर जपके जपन्य अवस्थान हाता
 है । स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जपन्य बुद्धि किसके हाती है ? जपन्य अनुभागकी सत्तावाले
 सूक्ष्म परेन्ड्रियके तत्प्राथम्य जपन्य अन्तर्भागबुद्धिके होने पर जपन्य बुद्धि होती है । जपन्य
 हानि किसके हाती है ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जपसे अक्षिपर पढ़नेवाले जपके द्वारा अन्तिम
 अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जपन्य हानि होती है ।
 जपन्य अवस्थान किसके होता है ? वही जपके द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये
 जाने पर इसके जपन्य अवस्थान होता है । पुत्रपत्र और लोमके सिवा शेष तीन संकलन
 कपायोंकी जपन्य बुद्धिका मङ्ग मिष्यात्वके समान है । जपन्य हानि किसके होती है ? अन्तिम
 समकवर्ती अन्तिर्लेपित अन्त्यतर जपके इन प्रवृत्तियोंकी जपन्य हानि होती है । जपन्य अवस्थान
 किसके हाता है ? अन्तिम अनुभाग काण्डकमें वर्तमान जपके जपन्य अवस्थान होता है ।
 जह नोकपायों की जपन्य बुद्धिका मंग मिष्यात्वके समान है । जपन्य हानि किसके होती है ?
 जपके द्वारा द्विचरम अनुभाग काण्डकका घात किये जानेपर इसके जह नोकपायों की जपन्य
 हानि हाती है । तथा वही के अन्त्यतर समय में जपन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार तीनों
 प्रकार के मनुष्यों में जानना चाहिये । इतना विशय है कि मनुष्य पर्याप्तकर्मों स्त्रीवेद का मङ्ग
 जह नोकपायों के समान है और मनुष्यनिवा में पुत्रपत्र तथा नपुंसकवेदका मङ्ग जह
 नोकपायों के समान है ।

§ ५२३ आदेशस नारकिणोमि मिष्यात्व बाण्ड कपाय और मत्र नोकपायोंकी जपन्य

कस्स ? असण्णिपच्छायदेण हदसमुत्पत्तियकम्मेणागदेण अणंतभागेण वड्ढिदूण वंधे तस्स जहण्णिया वड्ढी । तम्मि चेव खंडयघादेण घाइदे जह० हाणी । एगदरत्थ अवट्टाण । सम्मत्त० जहण्णिया हाणी कस्स ? चरिमसमयअक्खवीणटंसणमोहणीयस्स । अणताणु०-चउक्क० ओघ । एव पढमपुढवि-देवोघ ति । विदियादि जाव सत्तमि ति वावीसंपयडीण जहण्णिया वड्ढी कस्स ? मिच्छाइट्टिस्स तप्पाओगअणतभागेण वड्ढिदस्स । तम्मि चेव घाइदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्थ अवट्टाणं । अणताणु०चउक्क० ओघ ।

§ ५२४. तिरिक्खेसु वावीस पयडीणं जह० वड्ढी कस्स ? सुहुमेइट्टिण जह-
ण्णाणुभागसत्तकम्मिण अणंतभागेण वड्ढिदूण पवद्धे जहण्णिया वड्ढी । तम्मि चेव
घाइदे जहण्णिया हाणी । एगदरत्थ अवट्टाणं । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० णेरडय-
भगो । पच्चिदियतिरिक्खतिएसु वावीस पयडीणं जह० वड्ढी कस्स ? सुहुमेइट्टियजह-
ण्णाणुभागसंतकम्मेण आगतूण अणतभागेण वड्ढिदूण पवद्धे जह० वड्ढी । तम्मि चेव
घाइदे जहण्णि० हाणी । एगदरत्थ अवट्टाण । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० तिरिक्खोघं ।
णवरि जोणिणी० सम्म०वज्ज । पच्चिदियतिरिक्खअपज्ज० वावीस पयडीणमेवं चेव ।
अणताणु०चउक्क० मिच्छत्तभगो । एव मणुसअपज्ज० । भवण०-वाण० पढमपुढविभंगो ।

वृद्धि किसके हांती है ? हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ असत्री पर्यायसे आकर जो नरकमे जन्म लेता है और सत्तामे स्थित अनुभागसे अनन्तभागवृद्धिको लिए हुए वध करता है उसके जघन्य वृद्धि हांती है । और उस वधे हुए अनुभागका काण्डक घातके द्वारा घात किए जाने पर जघन्य हानि होती है । इन्हीं दोनोंमेसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्वकी जघन्य हानि किसके हांती है ? दर्शनमोहके क्षपकके अन्तिम समयमे होती है । अनन्तानुवन्धी चतुष्कका भङ्ग ओघके समान है । इसी प्रकार पहली पृथिवी और सामान्य देवोंमें जानना चाहिए । दूसरीमे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमे वाईस प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके हांती है ? जघन्य वृद्धिके योग्य अनन्तभागवृद्धिसे युक्त मिथ्यादृष्टि जीवके हांती है । उसीका घात करने पर जघन्य हानि होती है । दोनों अवस्थाओंमेसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भङ्ग ओघके समान है ।

§ ५२४ तिर्यञ्चोमें वाईस प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके हांती है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके द्वारा अनन्तभागवृद्धिरूप बन्ध करने पर जघन्य वृद्धि हांती है । उसीका घात कर देने पर जघन्य हानि होती है । दोनोंमेसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान हांता है । सम्यक्त्व प्रकृति और अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भङ्ग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें वाईस प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके हांती है ? जघन्य अनुभागकी सत्तावाला सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें जन्म लेकर जब अनन्त-भागवृद्धिको लिए हुये अनुभागका बन्ध करता है तो उसके जघन्य वृद्धि हांती है । उसीका घात करने पर जघन्य हानि हांती है । तथा दोनोंमेसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान हांता है । सम्यक्त्व और अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भङ्ग तिर्यञ्चोके समान है । इतना विशेष है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिको छोड़ देना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें वाईस प्रकृतियोंकी वृद्धि आदिका स्वाभिपना इसी प्रकार है । अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए । भवनवासी और व्यन्तरोंमें पहली

गवरि सम्मतवर्जं । जोदिसिय० विदियपुडविभंगो । एवं सोहम्मादि जाव सहस्सरो ति । गवरि सम्मत० षेरइयमगो ।

§ ५२५ आणदादि जाव सम्मदिसिदि ति इरुपीसं पयडीणं जहणिया हाणी कस्त ? अणंताणु० चरक० विसंभोयंतेण अपच्छिमे अणुभागखंडए इद वस्स जह० हाणी । तस्सेव स काखे जहणपवहाणं । सम्मत० ज० द्वोघ । गवरि अणंताणु० चरकस्स दुचरिमे अणुभागखंडए इदे वस्स जहणिया हाणी । तस्सेव से काल जहणपवहाणं । गवरि आणदादि जाव गवगेमजा ति अणंताणु०४ मोप । एवं जाणिदूण प्पन्नं जाव अणाहारि ति ।

§ ५२६ अप्पाबहुधं दुविहं—जहणपुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहा णि०—मायेण आदसेण य । भोयेण इरुपीसं पयडीणं सम्भयोवा उक्कस्सिया हाणी । षट्ठी भवहाणाणि दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि । सम्मत-सम्मामिच्छघाणं णत्थि अप्पा बहुधं, उक्क०हाणि-भवहाणाणं सरिसदादो । एवं तिण्हं मणुस्साणं ।

§ ५२७ आदेसेण णेरइएसु इरुपीसं पयडीणमोयं । एध सव्वणेरइय तिरिक्ख चरक०-देवोयं भवणादि जाव सहस्सरो ति । पंविदियतिरिक्खअपज्जा इरुपीसं पय

पृथिवीके समान भङ्ग है । इतना विरोध है कि सम्यक्त्व प्रकृतिक्रम छोड़ बना पाहिए । ग्यातिपी दशमें बूसरी पृथिवीके समान भङ्ग है । इसी प्रकार सौपरमसे लेकर सहस्रार तकके बसोंमें जानना चाहिए । इतना विरोध है कि यहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिक्रम भङ्ग नारकियोंके समान है ।

§ ५५. भानव स्वगते लेकर सर्वार्थसिद्धि तकक बसा में छुआस प्रकृतिया की जपन्य हानि किसके हाथी है ? अनन्तानुबन्धी बतुप्पका विसंवाजन करनेवाले जीपके द्वारा अन्तिम अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर जपन्य हानि हाथी है । उसीके अनन्तर समयमें जपन्य अवस्थान होता है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी जपन्य हानिका भङ्ग सामान्य रूपोंकी तरह है । इतना विरोध है कि अनन्तानुबन्धी बतुप्पके विचरन अनुभाग काण्डकका घात किये जाने पर इसकी जपन्य हानि हाथी है और उसीके अनन्तर समयमें इसका जपन्य अवस्थान होता है । इतना विरोध और है कि भानवसे लेकर नवमैवपक तकके बसोंमें अनन्तानुबन्धी बतुप्पका भङ्ग आपके समान है । इस प्रकार जानकर बनाहारी पपन्व से जाना चाहिये ।

§ ५२६ अल्पबहुत्व वा प्रकारका है—जपन्य और उच्छृष्ट । प्रकृतमं उच्छृष्ट प्रयाजन है । निर्देश वा प्रकारका है—आप और आरेण । आपसे इरुपीस प्रकृतियोंकी उच्छृष्ट हानि सबस अल्प है । उच्छृष्ट बुद्धि और अवस्थान दानों समान हैं किन्तु उच्छृष्ट इमिस बुद्ध अधिक है । सम्यक्त्व और सम्यक्प्रियात्ममें अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि हमकी उच्छृष्ट हानि और अवस्थानका प्रमाण समान है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पपाय और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए ।

§ ५२७ आहरण नारकियोंमें इरुपीस प्रकृतियाका अल्पबहुत्व आपके समान है । इसी प्रकार मत्र नारकी सामान्य तियं पन्थे-त्रुवतियं पन्थे-त्रुवतियं-अपयान पन्थे-त्रुवतियं-यार्थिनी, सामान्य इव और भवनवासीस लेकर सहस्रार स्वग तकके बसोंमें जानना चाहिए । पन्थे-त्रुवतियं-अपयानदशमें इरुपीस प्रकृतियोंकी उच्छृष्ट बुद्धि सबस अल्प है । उच्छृष्ट हानि

हीणं सव्वत्थोवा उक्कसिया वड्डी । हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि अणंतगुणाणि । एवं मणुसअपज्ज० ।

§ ५२८, आणदादि जाव सवट्ठसिद्धि ति छ्वीसं पयहीणमुक्क० हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिणाणि । णवरि आणदादि णवगेवज्जा ति अणताणु०४ सव्वत्थोवा उक्क० वड्डी । हाणी अवट्ठाण च अणंतगुण । एव जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ५२९, जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-अट्ठक० ज० वड्डी हाणी अवट्ठाणाणि तिण्णि वि सरिसाणि । सम्मत० सव्वत्थोवा जह० हाणी । अवट्ठाणमणतगुणं । अणंताणु०चउक्क० सव्वत्थोवा ज० वड्डी । हाणी अवट्ठाणाणि दो वि सरिसाणि अणंतगुणाणि । चदुसज०—पुरिस० सव्वत्थोवा ज० हाणी । अवट्ठाणमणंतगुणं । वड्डी अणंतगुणा । एवमित्थि-णवुंसयवेदाणं । छण्णोक० सव्वत्थोवा जहण्णहाणी अवट्ठाणं च । वड्डी अणंतगुणा । सम्मामि० जह० हाणी अवट्ठाणाणि दो वि सरिसाणि । एवं तिह मणुस्साणं । णवरि मणुसपज्ज० इत्थि० छएणोकसायभगो । मणुस्सिणी० पुरिस०-णवुंस० छण्णोक०भंगो ।

§ ५३०, आदेसेण रोइएसु वावीसपयहीणं तिण्ण पदा सरिसा । अणंताणु०-चउक्क० ओघ । सम्मत० णत्थि अण्णावहुअ । एव सत्तसु पुठवीसु तिरिक्वचउक्क० और अवस्थान दोनों समान हैं किन्तु उक्कट वृद्धिसे अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए ।

§ ५२८ आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी उक्कट हानि और अवस्थान दोनों समान हैं । इतना विशेष है कि आनतसे लेकर नवप्रैवयक तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उक्कट वृद्धि सबसे अल्प है । उक्कट हानि और अवस्थान अनन्तगुणे हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५२९ अत्र जघन्य का प्रकरण है । निर्देश दा प्रकार का है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और अवस्थान तीनों ही समान हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य हानि सबसे अल्प है । उससे अवस्थान अनन्तगुणा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य वृद्धि सबसे अल्प है । जघन्य हानि और अवस्थान दोनों ही समान हैं, किन्तु जघन्य वृद्धिसे अनन्तगुणे हैं । चारो सज्वलन और पुरुषवदकी जघन्य हानि सबसे अल्प है । उससे जघन्य अवस्थान अनन्तगुणा है । उससे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है । इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुसकवेदकी अपेक्षा अल्पबहुत्व जानना चाहिए । छह नाकषायोंकी जघन्य हानि और अवस्थान सबसे थोड़े हैं । उनसे जघन्य वृद्धि अनन्तगुणी है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य हानि और अवस्थान दोनों ही समान हैं । इसी प्रकार तान प्रकारक मनुष्योंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि मनुष्य पयाप्तकोंम स्त्रीवदका भङ्ग छह नाकषायोंक समान है और मनुष्याणियों में पुरुषवद और नपुसकवदका भङ्ग छह नाकषायोंक समान है ।

§ ५३० आदेशसे नारकयोंम बाईस प्रकृतियोंके तीनों पद समान हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भङ्ग ओघकी तरह है । सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथावयोंम सामान्य तियश्च, पञ्चेन्द्रियतियश्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च पयाप्त, पञ्चेन्द्रियतिर्यश्चयानिनी, सामान्य देव

देवोपं मयणादि भाव सहस्रारो चि । पंचिदियतिरिक्त्वअपञ्च० छन्वीसं पयडीणं
 विष्णि पदा सरिसा । एवं मणुसअपञ्च०। आणदादि भाव सन्वदसिद्धि चि छन्वीस
 पयडीणं अ० हाणी अबदार्णं च दो चि सरिसाभि । जपरि आणदादि भाव पय
 गेबन्दा चि अर्णतापु० चरक० देवोपं । एवं भाजिद्वं जेद्वं भाव अणाहारि चि ।

एवं पदभिक्षेवो समचो ।

वहिविहती

५५३१ बहिविहतीए तस्य इमाणि तेरस अणियोगहाराणि जादम्भाणि भवंति ।
 तं बहा—समुचितता एगमीवेण सामित क्खसो अंतरं जाणाजीपदि भंगभिवओ
 मागामां परिमाणं खेतं पोसण क्खसो अंतरं भावो मप्याबहुअं चेदि । तस्य समु
 चिततापु० इमिहो गिहो सो—ओपेण भावेसण य । ओपेण छन्वीसं पयडीणमस्यि
 अविहा बड़ी छविहा हाणी अबदार्णं च अर्णतापु० चरक० अबत्तं च । सम्मत्त-सम्मा
 पिच्छतागमस्यि अर्णतापु० हाणी अबदार्णमबत्तं च । एवं गारइपार्णं । जपरि सम्मापि०
 अर्णतापु० हाणी गत्वि । एवं पडमपुडनि -तिरिक्त्वस्यि०-देवोपं सोहम्मादि भाव सह
 सारो चि । विदिपादि भाव सत्तमि चि एवं चेव । जपरि सम्मत्त० सम्मापिच्छत्त-
 र्गो । एवं पंचिदियतिरिक्त्वओपिणी-भरण०-याण०-मादिसिया चि ।

और मन्वत्वासीसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रियवर्षेण अपर्याप्तकमें
 में छन्वीस प्रकृतियोंके तीनों पद समान हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकमें जानना चाहिए ।
 आन्तसे लेकर सर्वोपेक्षित तकके देवोंमें छन्वीस प्रकृतियोंकी अपन्य हानि और अबत्तान हानों
 ही समान हैं । इतना विशेष है कि आन्तसे लेकर नवमैवेयक तकके देवोंमें अन्वत्वापुत्रवी
 अनुष्का मङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है । इस प्रकार जानकर अगाहारी पर्वन्त से जाना चाहिये ।

इस प्रकार पदविशेष समाप्त हुआ ।

बुद्धिबिमक्ति

५५३१ बुद्धि बिमक्तिमें वे तेरह अनुयागद्वार जानने चाहिये । या इस प्रकार हैं—
 समुत्कीर्तना एक ओर की अपेक्षा स्वामित्व काल अन्तर, माना जीवोंकी अपेक्षा भंगविक्रय,
 मागामाग, परिमाण क्षेत्र स्पर्शन, काल अन्तर, भाव और अस्पष्टत्व । उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगम
 की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओप और आत्रा । व्यपसे छन्वीस प्रकृतियोंकी छद्म प्रकार
 की बुद्धि छद्म प्रकारकी हानि और अवस्थान हावा है । अन्वत्वापुत्र भी अनुष्का की अबत्तम्बिमक्ति
 भी हाती है । सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात्की अन्वत्तगुणहानि, अवस्थान और अवच्छम्ब-
 बिमक्ति होती हैं । इसी प्रकार नारिकोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि यहाँ सम्बन्धित्वात्
 की अन्वत्तगुणहानि नहीं होती । इसी प्रकार पदवी प्रियी सामान्य तियन्त पञ्चेन्द्रियवर्षेण
 पञ्चेन्द्रियवर्षेण पयात, सामान्य देव और सौपर्यं स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें जानना
 चाहिए । इसीसे लेकर सातवीं प्रियी तकके नारिकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना
 विशेष है कि इनमें सम्यक्त्वप्रकृतिका मङ्ग सम्बन्धित्वात्के समान है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय-
 वर्षेण पयान्ति, मन्वत्वासी अन्तर और व्यापिणी देवोंमें जानना चाहिये ।

§ ५३२. पंचिदियतिरिक्त्वअपज्ज० छ्वीसं पयडीणं अत्थि छ्विहा वड्डी छ्विहा हाणी अवट्टाणं च । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमत्थि अवट्टिदं । एवं मणुसअपज्ज० । तिहं मणुस्साणमोघं । अणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति चावीसं पयडीणमत्थि अणंत-गुणहाणी अवट्टिदं । अणताणु०चउक्क० छ्वड्डी हाणी अवट्टिदं अवत्तव्वं च । सम्मत्त-सम्मामि० देवोघं । अणुहिस्सादि जाव सव्वट्टसिद्धि त्ति सत्तावीसं पयडीणमत्थि अणतगुणहाणी अवट्टिदं च । सम्मामि० अत्थि अवट्टिद । एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५३३. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक० छ्विहा वड्डी पचविहा हाणी कस्स ? अण्णदरस्स मिच्छादिट्ठिस्स । अणतगुणहाणी अवट्टिदं च कस्स ? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा । एवमणंताणु०चउक्क० । णवरि अवत्तव्व० पढमसमयसंजुत्तस्स । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणंतगुणहाणी कस्स ? अण्णदरस्स दंसणमोहक्त्ववयस्स । एत्थ अण्णदरसहो वेदोगाहणविसेसावेक्खो । अवट्ठि० अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छा-दिट्ठिस्स वा । अवत्तव्व कस्स ? पढमसमयसम्माइट्ठिस्स । एवं तिहं मणुस्साणं ।

§ ५३४. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसं पयडीणमोघं । सम्मामि० अवट्ठि०

§ ५३२ पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकौमे छ्वीस प्रकृतियोंकी छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थान होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व की अवस्थितविभक्ति होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकौमे जानना चाहिये । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें ओघकी तरह भङ्ग है । आनतसे लेकर नव प्रवैयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियों की अनन्तगुणहानि और अवस्थान होते हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि, अवस्थिति और अवक्तव्यविभक्तिया होती हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि और अवस्थान होते हैं । सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्ति होती है । इस प्रकार जानकार अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

§ ५३३ स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघ और आदेश । ओघसे मिध्यात्व, बारह कषाय और नव नोकषायोंकी छह प्रकारकी वृद्धि और पाँच प्रकारकी हानि किसके होती है ? किसी मिध्यादृष्टि जीवके होती है । अनन्तगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी सम्यग्दृष्टि अथवा मिध्यादृष्टिके होते हैं । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए । इतना विशेष है कि अवक्तव्य विभक्ति अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके पुनः सयोजन करनेवालेके प्रथम समयमें होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानि किसके होती है ? किसी भी दर्शनमोहके क्षपकके होती है । यहाँ अन्यतर शब्द किसी खास वेद या अवगाहनाकी अपेक्षा नहीं करता है । अवस्थितविभक्ति किसी भी सम्यग्दृष्टि अथवा मिध्यादृष्टिके होती है । अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है ? सम्यग्दृष्टि जीवके प्रथम समयमें होती है ? इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिए ।

§ ५३४ आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंका भङ्ग ओघकी तरह है । सम्य-

अवचम्ब० ओषं । एवं पद्मपुष्पि तिष्ठितिरिक्त्व-देवोप सोहम्मादि भाष सहस्तारो ति । विदियादि भाष सप्तमि चि एवं चैव । गवरि सम्पत्त० अर्णत्सुगहाणी णत्थि । एवं पंचिदियतिरिक्त्वजाणिणी षड्म०-आण-ओदिसिए चि ।

§ ५३५ पंचिदियतिरिक्त्व०-मणुसम्पत्त० छम्बीसं पयडीणं छवट्टि-छहाणि अयहाणाणि सम्म०-सम्मामि० अवट्टिदं च कस्स ? अण्णद० । आणदादि भाष णव गवत्ता चि नावीसं पयडीणमर्णत्सुगहाणी अवट्टिदं च कस्स ? अण्णद० सम्माइडिस्स मिच्छाइडिस्स वा । सम्पत्त० अर्णत्सुगहाणी कस्स ? अण्णद० कदकरणिज्जस्स । सम्पत्त-सम्मामिच्छताणमवट्टि० अबस० ओषं । अर्णत्ताणु० चउत्त० ओषं । मणुविस्तादि भाष सन्वट्टिसिद्धि चि सत्तानीसं पयडीणमर्णत्सुगहाणी अवट्टि० सम्मायिक्क० अवट्टिदं च कस्स ? अण्णद० सम्मादिडिस्स । अण्णदरसहो विमाणोगाहणभिसेसाभाषपडु प्पापणफलो । एवं नाणिदूष जेद्वं आन अभाहारि चि ।

§ ५३६ काष्ठाणु० दुचिहो गिहो सो—ओपेण भावेसेण य । भापेण पिच्छत्त अहक०-अहणोक्क० पंचवट्टिकालो मह० एगसमभा, उक्क० भाषलियाए अर्सत्त० मागो ।

मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति और अवचम्ब्यविभक्तिका भङ्ग आपकी तरह है । इसी प्रकार पक्षी प्रुषिकी सामान्य तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्त, सामान्य रूप और औषर्म स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें आनना चाहिए । इसीसे लेकर सप्तमी प्रुषिकी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार आनना चाहिए । इतना विशेष है कि जन्में सम्यक्त्वकी अनन्त गुणरूपि नहीं हाती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी मवनवासी ब्यन्तर और स्वातिपी देवोंमें जानना चाहिए ।

§ ५३५ पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्वात्त और मनुष्य अपर्वात्तमें छम्बीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियां छह हानियां और अवस्थान तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति किसके होती हैं ? किसी भी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्वात्त और मनुष्य अपर्वात्तके हाती हैं । आननसे लेकर लक्षप्रैयक तकके देवोंमें बाइस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणरूपि और अवस्थान किमक हात हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके हात हैं । सम्यक्त्व प्रकृतिही अनन्तगुणरूपि किसके हाती है ? किसी भी वृत्तव्यवहक सम्यग्दृष्टिके हाती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित और अवचम्ब्य विभक्तियोंका भङ्ग आपके समान है । अनन्तानुबन्धीपणुत्तका भङ्ग आपके समान है । अनुविशसे लेकर सर्वाभेष्टिदि तकके देवोंमें सत्ताइस प्रकृतियोंकी अनन्त-गुणरूपि और अवस्थित तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तियों किसके हाती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टिके हाती हैं । यहाँ 'अस्यतर' शब्दका प्रयोजन किमी बिमान विशेष या अवगहन विशेषके आभाषका बतलाया है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पण्य से जान्य पाहिये ।

§ ५३६ काष्ठाणुगमकी अपेक्षा निर्देरा वा प्रकारका है—आप और आद्रा । आपसे मिथ्यात्व आठ कणाय और आठ माकपायोंकी पँच वृद्धियोंका जपम्य काल एक ममय है और एकट काल आबजीक अर्सत्तत्तवें भाग प्रमाय है । अनन्तगुणरूपिका जपम्य काल एक

अणंतगुणवट्टिकालो ज० एगस०, उक्क० अतोमु० । छहाणिकालो जहण्णुक्क० एगस० । कुदो ? ओकडुणाए अणुभागकडयदुचरिमाटिफालिमु वा णिवदमाणियासु अणुभाग-
 ट्ठाणस्स घाटाभावादो । तं पि कुदो ? अप्पहाणीकयसरिसधणियकम्मक्खवत्तादो चरिम-
 वग्गणाए पविट्ठाण दुचरिमाटिवग्गणाणं पहाणत्ताभावादो च । अवट्ठि० ज० एगस०,
 उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं पलिदोवमस्स असखे०भागेण सादरेय । सम्मत्त० अणंत-
 गुणहाणिकालो ज० एगस०, उक्क० अतोमु० । अवट्ठिद० ज० अंतोमु०, उक्क० वे-
 छावट्ठिसागरोवमाणि तीट्ठि पलिदो० असखे०भागेहि सादरेयाणि । अवत्त० जहण्णुक्क०
 एगस० । सम्मामि० अणंतगुणहाणि-अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० जह० अंतोमु०,
 उक्क० सम्मत्तभगो । अणताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । णवरि अवत्त० जहण्णुक्क० एगस० ।
 चदुसंजलण० मिच्छत्तभगो । णवरि अणतगुणहाणिकालो उक्क० अतोमुहुत्तं । एवं पुरिस०
 णवरि अणतगुणहाणिकालो ज० एगस०, उक्क० दो आवलियाओ समयूणाओ ।

§ ५३७. आदेसेण णेरइएसु छव्वीस पयहीणं छवट्टिकालो ओघं । छहाणि-
 कालो जहण्णुक्क० एगस० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० तेतीसं सागरो० देमूणाणि ।
 अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० ओघं । सम्मत्त० अणतगुणहाणि-अवत्त० सम्मामि०

समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । छह हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, क्योंकि अपकर्षणके द्वारा अनुभागकाण्डककी द्विचरम आदि फालियोंके पतन होने पर अनुभाग-
 स्थानका घात नहीं हाता है । यह कैसे जाना ? क्योंकि प्रथम तो समान धनवाले कर्मस्कन्ध
 अप्रधान हैं । दूसरे अन्तिम वर्गणामें प्रविष्ट हुई द्विचरम आदि वर्गणाओकी यहाँ प्रधानता नहीं
 हैं । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यका असख्यातवाँ भाग
 अधिक एक सौ त्रैसठ सागर है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक
 समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और
 उत्कृष्ट काल पत्यके तीन असख्यात भागोंसे अधिक दो ड्रियासठ सागर है । अवक्तव्यविभक्तिका
 जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य
 विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
 है और उत्कृष्ट कालका भङ्ग सम्यक्त्वके समान है । अनन्तानुवन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके
 समान है । इतना विशेष है कि अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय
 है । चार सञ्चलन कषायोंका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । इतना विशेष है कि अनन्तगुण-
 हानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा जानना चाहिए । इतना
 विशेष है कि अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक समय कम
 एक आवली है ।

§ ५३७ आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियोंका काल ओघके समान
 है । छह हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल
 एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य
 विभक्तिका भङ्ग ओघके समान है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य
 विभक्तिका काल तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका काल ओघके समान है । सम्यक्त्व

अवत्० ओषं । दोयहमवद्विद ज० एगस०, उक्क० तवीसं सागरो० संपुण्याधि ।
एवं पद्मपुरद्वि० । णवरि सगद्विदी । विदियादि जाष सचमि ति पदं चेष । णवरि
सगद्विदी । सम्मत्त० अर्णत्तगुणहाणी गत्थि ।

§ ५३८ तिरिक्ख० छम्भीसं पयदीणं छवट्टि हाणीणं णेरइयमंगो । अवट्टि०
ज० एगस०, उक्क० तिप्पिया पत्तिदोषमाणि अंतोसुहुत्तेण सादिरयाणि । अर्णत्तपु०
चउक्क० अवत्त० ओषं । सम्मापि० अवत्त० सम्मत्त० अर्णत्तगुणहाणि-अवत्त० ओषं ।
दोयहमवद्वि० मिच्छत्तमंगो । णवरि सादिरयेपमाणं पत्तिदो० अस्तस्से० मागो । एवं तिप्यहं
पंषिदियतिरिक्खणं । णवरि सम्म -सम्मापि० अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० तिप्पिया
पत्तिदोषमाणि पुब्बकोट्टिपुपत्तेण सादिरयाणि । जाणिणीसु सम्मत्त० अर्णत्तगुणहाणी
गत्थि । पंषिदियतिरिक्खमपञ्ज०-मज्जुसअपञ्ज० छम्भीसं पयदीणं छवट्टि हाणीणं णेरइय
मंगो । अवट्टि० सम्म०-सम्मापि० अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोसु० । तिप्यहं
मज्जुस्ताण पंषिदियतिरिक्खमंगो । णवरि पुरिस० चदुसंमत्त०-सम्मापि० अर्णत्त-
गुणहाणी ओषं । मज्जुसिणीसु पुरिस० अर्णत्तगुणहाणी जहण्णुक्क० एगस० ।

§ ५३९ देवाणं णेरइयमंगो । णवरि सम्भेसिमवट्टिदं जह० एगस०, उक्क०

और सम्ममिध्यात्वकी अवस्थित विमत्तिका जपन्व काल एक समय है और उक्त काल
सम्पूर्ण वेदीस सागर है । इसी प्रकार पद्मकी प्रथिषीमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि
वेदीस सागरके स्थानमें पद्म नरककी स्थिति लाने चाहिये । दूसरीसे लेकर साधनी प्रथिषी
वक्के नरकियों में इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि अपने अपने नरककी
स्थिति लेनी चाहिए । तथा सम्मकत्वकी अनन्तगुणहानि दूसरे आवि नरकमें नहीं जाती ।

§ ५३८. सामान्य तिर्यंका में छम्भीस प्रकृतियाकी छह वृत्तियों और छह हानियोंका मङ्ग
नारकिया के समान है । अवस्थित विमत्तिका जपन्व काल एक समय है और उक्त काल
अन्तर्मुहूर्त आषक तीन पत्थ है । अनन्तगुणवर्णनीचगुणकी अवस्थित विमत्तिका काल आपके
समान है । सम्ममिध्यात्वकी अवस्थित विमत्तिका तथा सम्मकत्वकी अनन्तगुणहानि और
अवस्थित विमत्तिका काल आपके समान है । सम्ममिध्यात्व और सम्मकत्वकी अवस्थित
विमत्तिका काल मिध्यात्वके समान है । इतना विशेष है कि कुछ अधिकका प्रमाय पत्थका
अवस्थितमार्ग माग है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यंका, पञ्चेन्द्रियतिर्यंकापर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय-
तिर्यंका पान्तिना में जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्मकत्व और सम्ममिध्यात्वकी
अवस्थित विमत्तिका जपन्व काल एक समय है और उक्त काल पूर्वाकाटि प्रथकत्व
अधिक तीन पत्थ है । पञ्चेन्द्रियतिर्यंका पान्तिनया में सम्मकत्वकी अनन्तगुणहानि नहीं
होती । पञ्चेन्द्रियतिर्यंका अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तका में छह वृत्ति और छह हानियाँ
काल नारकिया के समान है । इनकी अवस्थित विमत्तिका तथा सम्मकत्व और सम्ममिध्यात्वकी
अवस्थित विमत्तिका जपन्व काल एक समय है और उक्त काल अन्तर्मुहूर्त है । तीन
प्रकारके मनुष्या में पञ्चेन्द्रियतिर्यंका के समान मङ्ग है । इतना विशेष है कि पुरुषवत्, आप
सम्पन्न और सम्ममिध्यात्वकी अनन्तगुणहानिका काल आपके समान है । मनुष्यनया में
पुरुषवत्की अनन्तगुणहानिका जपन्व और उक्त काल एक समय है ।

§ ५३९. वेदोंमें नारकियोंके समान मंग है । इतना विशेष है कि सब प्रकृतियों की

तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुष्णाणि । भवण-वाण-जोदिसि० विदियपुढविभंगो । णवरि
 अवट्टिदस्स सगट्टिदी । सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति पढमपुढविभंगो । णवरि अवट्टि०
 सगट्टिदी । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति वावीसं पयडीणमणंतगुणहाणिकालो जह-
 एणुक० एगस० । अवट्टि० ज० अंतोमु०, उक्क०सगट्टिदी । सम्म०-सम्मामि० देवोधं ।
 णवरि सगट्टिदी । अणंताणु०चउक्क० छवट्टी छहाणी० देवोधं । अवट्टि० ज० एगस०,
 उक्क० सगट्टिदी । अवत्तव्व० ओघं । अणुदिसादि जाव सव्वट्टिसिद्धि त्ति छव्वीस
 पयडीणमणंतगुणहाणी० जहएणुक० एगस० । अवट्टि० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी ।
 सम्मत्त० देवोधं । एवरि सम्मत्त-सम्मामि० अवट्टि० जहणुक० सगट्टिदी । एवं
 जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५४०. अतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण वावीसं
 पयडीणं पंचवट्टी पंचहाणी० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० असखेज्जा लोगा । अणंत-
 गुणवट्टी० ज० एगस०, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसद तीहि पल्लिदोवमेहि सादिरियं ।
 अणंतगुणहाणी० ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्टिसागरोवमसदं पल्लिदो० असंखे०भागेण
 सादिरियं । अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि० अणंतगुणहाणी

अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल एक समय है, और उत्कृष्ट काल सम्पूर्ण तेत्तीस सागर है ।
 भवनवासी, अन्तर और ज्यातिषियो मे दूसरी पृथिवीके समान भग है । इतना विशेष है कि
 अवस्थितविभक्तिका काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सौधर्मसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके
 देवोंमें पहली पृथिवीके समान भग है । इतना विशेष है कि अवस्थितविभक्तिका काल अपनी अपनी
 स्थितिप्रमाण है । आनतसे लेकर नवप्रवेयक तकके देवोंमें बाईस प्रकृतियों की अनन्तगुणहानिका
 जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और
 उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भङ्ग सामान्य
 देवो की तरह है । इतना विशेष है कि यहाँ अपनी अपनी स्थिति लेनी चाहिये । अनन्तानुबन्धी
 चतुष्ककी छह वृद्धि और छह हानियों का काल सामान्य देवो की तरह है । अवस्थितविभक्तिका
 जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । अवक्तव्य विभक्तिका काल
 ओघके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि
 का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और
 उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व प्रकृतिका भङ्ग सामान्य देवोंकी तरह है । इतना
 विशेष है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल
 अपनी स्थितिप्रमाण है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५४० अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे
 बाईस प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धि और पाँच हानियोंका जघन्य अन्तर क्रमश एक समय और
 अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असख्यात लोकप्रमाण है । अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर
 एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर तीन पत्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अनन्तगुण-
 हानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यका असख्यातवाँ भाग अधिक एक
 सौ त्रेसठ सागर है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर
 अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानि का जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर

अणुगुण० अंतोमु० । अचट्टि०-अचत्त० ज० एगस० पस्सिदो० असंस्वे० भागो, उक्क०
दायहं पि चचट्टुपोमालपरियट्ट । अणंताणु० चरक्क० मिच्छत्तमंगो । णवरि अचट्टि० ज०
एगस०, उक्क० वेद्धचट्टिसागरो० दसूणाणि । अचत्त० ज० अंतोमु०, उक्क० चचट्टु
पोमालपरियट्ट ।

§ ५४१ आदसेण णेरुपसु मिच्छत्त-वारसक०-अचणोक्क० इवट्टी इहाणी ज०
एगसमयो अंतोमु०, उक्क० तेवीस सागरा० देसूणाणि । अचट्टि० ओपं । अणंताणु०
चरक्क० इवट्टि अचट्टि०-इहाणि-अचत्त० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० तेवीस साग०
देसूणाणि । सम्मत्त० अणंताणुहाणी पत्ति अंतरं । सम्म०-सम्मामि० अचट्टि०-अचत्त०
ज० एगस० पस्सिदो० असंस्वे० भागो, उक्क० तेवीस सागरो० देसूणाणि । एवं सब्ब
णेरुप० । णवरि सगट्टिदी । विदियादि जाव सत्तमि प्ति सम्मत्त० अणंताणुहाणी पत्ति ।

§ ५४२ तिरिक्ख० बाधीसपयवीणं पंचनट्टि-अचहाणि-अचट्टि० ओपं । अणंत्त-
सुणत्तट्टी० ज० एगस०, उक्क० पस्सिदो० असंस्वे० भागो । अणत्तगुणहाणी० ज० अंतोमु०,
उक्क० तिण्णि पस्सिदो० अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि । सम्मत्त० अणंताणुहाणी० णत्ति

अणुमुहूर्त है । अचस्थित विमत्तिका अणुय अन्तर एक समय है और अचत्तव्यविमत्तिका अणुय
अन्तर पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है तथा शानो विमत्तियो का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम
अर्धपुत्राण परावर्तन प्रमाण है । अणुताणुवन्धीचत्तुक्कका मूल मिथ्यात्वके समान है । इतना
विशेष है कि अचस्थितविमत्तिका अणुय अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम
ये विपासठ सागरप्रमाण है । अचत्तव्यविमत्तिका अणुय अन्तर अणुमुहूर्त है और उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम अर्ध पुत्राण परावर्तनप्रमाण है ।

§ ५४१ आदेशसे नारक्तियो में मिथ्यात्व, वारह कथाय और नव भेदक्यायो की क
वृद्धिया का अणुय अन्तर एक समय है और ज इतिमा का अणुय अन्तर अणुमुहूर्त है । तथा
शान्ते का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेवीस सागर है । अचस्थितका अन्तर ओपके समान है ।
अणुताणुवन्धीचत्तुक्ककी क वृद्धियो और अचस्थित विमत्तिका अणुय अन्तर एक समय है,
अह हाणियो और अचत्तव्य विमत्तिका अणुय अन्तर अणुमुहूर्त है । तथा सबका उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम तेवीस सागर है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अणुयगुणवृद्धिका अन्तर नहीं है ।
सम्यक्त्व और सम्ममिथ्यात्वकी अचस्थित विमत्तिका अणुय अन्तर एक समय है और
अचत्तव्य विमत्तिका अणुय अन्तर पर्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा शान्य कम उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम तेवीस सागर है । इसी प्रकार सब नारक्तियो में जानना चर्चित । इतना विशेष
है कि तेवीस सागरके स्वानमें प्रत्येक नारक्तिकी अपनी अपनी स्थिति लेनी चाहिये । दूसरेसे
लेकर सातवें तक तकके नारक्तियो में सम्यक्त्व प्रकृतिकी अणुयगुणवृद्धि नहीं होती ।

§ ५४२. सामान्य विषयो में बाईस प्रकृतियो की पांच वृद्धिया, पांच इतिमा और अच-
स्थित विमत्तिका अन्तर आपके समान है । अणुयगुणवृद्धिका अणुय अन्तर एक समय है
और उत्कृष्ट अन्तर पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अणुयगुणवृद्धिका अणुय अन्तर अणु-
मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अणुमुहूर्त अधिक तीन पर्य है । सामान्य विषयो में सम्यक्त्वप्रकृति-
की अणुयगुणवृद्धिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्ममिथ्यात्वकी अचस्थित और अचत्तव्य

अंतरं । दोहमवट्टि०-अवत्तव्व० ओघं । अणताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । णवरि
 अणंतगुणवट्टी० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० सादिरैयाणि । अवट्टि० ज०
 एगस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देसूणाणि । अवत्त० ओघ । तिण्ह पंचिदियतिरि-
 क्खाणं वावीसंपयडीणं छवट्टि-पंचहाणी० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोटि-
 पुद्यत्तं । [अणत]गुणहाणि०-अवट्टि० तिरिक्खोघं । सम्मत्त० अणंतगुणहाणी० णेरइयभंगो ।
 सम्म०-सम्मामि० अवट्टि०-अवत्त० ज० ओघं, उक्क० सगट्टिदी देसूणा । अणताणु०-
 चउक्क० छवट्टि-छहाणी० जह० एगस० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादि-
 रैयाणि । अवट्टि० तिरिक्खोघं । अवत्त० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसूणा ।
 जोणिणी० सम्म० अणंतगुणहाणी गत्थि । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसपयडीणं
 छवट्टि-अवट्टि० ज० एगस०, छहाणी० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिमंतोमु० । सम्म०-
 सम्मामि० अवट्टि० गत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज० ।

§ ५४३. तिण्ह मणुस्साणं वावीसंपयडीण पचवट्टि-छहाणि-अवट्टि० पचिदिय-
 तिरिक्खभंगो । अणतगुणवट्टी० ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोटी देसूणा । अणताणु०-

विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भङ्ग मिथ्यात्वके समान है । इतना विशेष है कि अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पत्य है । अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य है । अवक्तव्य विभक्तिका अन्तर ओघके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च, पञ्चेन्द्रियतिर्यश्चपर्याप्त और पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च योनिनियो में बाईस प्रकृतियों की छ वृद्धियों और पाँच हानियों का जघन्य अन्तर क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण है । अनन्तगुणहानि और अवस्थित विभक्तिका अन्तर सामान्य तिर्यश्चो के समान है । सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका भङ्ग नारकियों के समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियों की अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तर ओघके समान है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी छह वृद्धियों का जघन्य अन्तर एक समय है और छह हानियों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तीन पत्य है । अवस्थितका अन्तर सामान्य तिर्यश्चोंकी तरह है । अवक्तव्यविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च योनिनियोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि नहीं होती । पञ्चेन्द्रियतिर्यश्च अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी छह वृद्धियों और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है, छह हानियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा सब विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिए ।

§ ५४३ तीन प्रकारके मनुष्यों मे बाईस प्रकृतियों की पाच वृद्धियों छह हानियों और अवस्थित विभक्तिका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चो के समान है । अनन्तगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटी है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका

चतुः पंचिदियतिरिक्त्वमंगो । सम्म०-सम्पामि० अवट्टि०-अवच० पंचि०तिरिक्त्व
मंगो । अर्णतगुणहाणी० ओषं ।

३ १४४ देवेषु मिच्छत-वारसक० जवजोक० द्ववट्टि-पंचहाणी० ज० एगस०
अंतोसु०, चक० अट्टारस सागरा० साविरेयाणि । अवट्टि० अर्षं । अर्णतगुणहाणी०
अह० अंतोसु०, चक० एकतीसं सागरो० देसूणाणि । अर्णतापु०चतक० द्ववट्टि-अवट्टि०
द्वहाणि-अवच० ज० एगस० अंतोसु०, चक० एकतीसं सागरो० देसूणाणि । सम्पच०
अर्णतगुणहाणी० शतिय अंतरं । सम्म०-सम्पामि० अवट्टि०-अवच० ज० ओषं, चक०
एकतीसं साम० देसूणाणि । भवज०-बाण०-नोदिसि० विदियपुढभिर्भंगो । गवरि
सगट्टिदी । साहम्मादि भाष सहस्तारो चि पढमपुढभिर्भंगो । जवरि सगट्टिदी ।
माप्पदादि गवगेषज्जा चि वावीसपयडीणं अर्णतगुणहाणी० ज० अंतोसु०, चक०
सगट्टिदी देसूणा । अवट्टि० जहण्णुक० एगस० । सम्म०-सम्पामि० दवोषं । जवरि
सगट्टिदी देसूणा । अर्णतापु०चतक० द्ववट्टि-अवट्टि० अह० एगस०, द्वहाणि-अवच०
अह० अंतोसु०, चक० सम्बेसिं सगट्टिदी देसूणा । मजुविसादि भाष सम्बहसिद्धि चि
द्वम्बीसंपयडीणमर्णतगुणहाणी० जहण्णुक० अंतोसु० । अवट्टि० जहण्णुक० एगस० ।

मङ्ग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है । सम्यक्त्व और सम्पत्तिप्यात्वकी अवस्थित और अवच्छय
विभक्तिका अन्तर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है । तथा अन्तगुणहाणिका अन्तर ओषके
समान है ।

५ ५४४ दोषों में मिष्यात्व धारक कपाव और नव नोकवाबोकी छह वृद्धियों और पांच
हाणिका अवश्य अन्तर कर्मरा एक समय है और अन्तगुणहूर्त है । तथा चतुष्टय अन्तर कुञ्ज
अन्तिक अट्टारस सागर है । अवस्थितता अन्तर ओषके समान है । अन्तगुणहाणिक अवश्य
अन्तर अन्तगुणहूर्त है और चतुष्टय अन्तर कुञ्ज कम इकतीस सागर है । अन्तगतुब्धीपतुष्की
छह वृद्धियों और अवस्थित विभक्तिका अवश्य अन्तर एक समय है और छह हाणियों तथा
अवच्छय विभक्तिका अवश्य अन्तर अन्तगुणहूर्त है । चतुष्टय अन्तर कुञ्ज कम इकतीस सागर है ।
सम्यक्त्वकी अन्तगुणहाणिका अन्तर नहीं है । सम्बन्ध और सम्पत्तिप्यात्वकी अवस्थित और
अवच्छय विभक्तिका अवश्य अन्तर आपकी तरह है और चतुष्टय अन्तर कुञ्ज कम इकतीस सागर
है । भवजवासी अन्तर और व्याधियिषो में वृष्टी प्रथिषीके समान मंग है । इतना विरोध है कि
वृष्टी प्रथिषीकी स्थितिसे स्वामने अपनी स्थिति लेनी चाहिये । औषध स्वामने लेकर सहचार
स्वर्ग तकके दोषोंम पहली प्रथिषीके समान मंग है । इतना विरोध है कि यहाँ अपनी-अपनी स्थिति
लेनी चाहिये । अन्तसे लेकर लवप्रेषक तकके दोषोंम बाईस प्रवृत्तियोंकी अन्तगुणहाणिका
अवश्य अन्तर अन्तगुणहूर्त है और चतुष्टय अन्तर कुञ्ज कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अवस्थित
विभक्तिका अवश्य और चतुष्टय अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व और सम्पत्तिप्यात्वका मङ्ग
सामान्य दोषोंके समान है । इतना विरोध है कि यहाँ कुञ्ज कम अपनी स्थिति लेनी चाहिये ।
अन्तगतुब्धीपतुष्की छह वृद्धियों और अवस्थित विभक्तिका अवश्य अन्तर एक समय है ।
छ हाणियों और अवच्छय विभक्तिका अवश्य अन्तर अन्तगुणहूर्त है । तथा सबका चतुष्टय अन्तर
कुञ्ज कम अपनी स्थितिप्रमाण है । अन्तगुणहाणिके लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके दोषोंम द्वम्बीस

सम्मत्त० अणंतगुणहाणि-अवट्टि० सम्मामि० अवट्टि० णत्थि अंतरं । एवं जाणिदूण
णेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

६ ५४५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिदं सो—ओघेण आदेसेण
य । ओघेण वावीस पयडीणं तेरसपदा णियमा अत्थि । अणताणु०चउक्क० अवत्तव्व०
भयणिज्ज । सेसपदा णियमा अत्थि ! भंगा तिरिण । सम्म०--सम्मामि० अवट्टि०
णियमा अत्थि । सेसपदा० भयणिज्जा । भंगा णव । एवं तिरिक्खा० । णवरि
सम्मामि० अणंतगुणहाणी णत्थि । भंगा तिरिण ।

प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थित विभक्तिका
जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि और अवस्थित
विभक्तिका तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है । इस प्रकार जानकर
अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

विज्ञोपार्थ—ओघसे बाईस प्रकृतियों की अनन्तगुणवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तर तीन पत्य और
एक सौ त्रैसठ सागर कहा है सो अनन्तगुणवृद्धि मिध्यादृष्टिके ही होती है और भोगभूमिमें
तथा आनतादिर्गमें मिध्यादृष्टिके भी नहीं होती, अत दो बार छियासठ छियामठ सागर तक
वेदक सम्यक्त्वके साथ विताने तथा एक बार उपरिम त्रैयेकमें और तीन पत्यभी स्थितिके साथ
उत्कृष्ट भोगभूमिमें वितानेसे अनन्तगुणवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तर तीन पत्य और एक सौ त्रैसठ
सागर होता है । अनन्तगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर एक सौ त्रैसठ सागर और प्रत्येक असख्या-
तवें भाग होता है सो उतना ही अवस्थितका उत्कृष्ट काल है, अत अनन्तगुणहानि करके उतने
काल तक अवस्थित रहकर पुन अनन्तगुणहानि करनेसे उतना अ तर काल होता है । सम्यक्त्व
और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल पत्यका असख्यातवों
भाग और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परावर्तन पूर्ववत् जानना । अनन्तानु-
बन्धकी अवस्थित विभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छियामठ सागर है क्योंकि अनन्ता-
नुबन्धीकी अवस्थित विभक्ति करके अनन्तानुबन्धीके विसयोजन पूर्वक वेदक सम्यग्दृष्टि हाकर
कुछ कम छियासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहकर पुन सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानमें
जाकर पुन सम्यक्त्व ग्रहण करके कुछ कम छियासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहकर
मिध्यात्वमें जाकर अनन्तानुबन्धीका बन्ध करनेके पश्चात् अवस्थित विभक्तिको करता है ।
आदेशसे नारकियों में छव्वीस प्रकृतियों की छह वृद्धियों और छह हानियों आदिका उत्कृष्ट
अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । वृद्धि मिध्यादृष्टिके होती है और हानि दोनों के होती है ।
और नरकमें मिध्यात्वका अन्तर काल भी कुछ कम तेतीस सागर है और सम्यक्त्वका अन्तर
काल भी कुछ कम तेतीस सागर है अत उतना ही उन विभक्तियों का भी अन्तर काल जानना ।
सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तिका भी उत्कृष्ट अन्तर काल
इसी प्रकार जानना । प्रत्येक नरकमें यह अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है ।

§ ५४५ नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ
और आदेश । ओघसे बाईस प्रकृतियोंके तेरह पद नियमसे होते हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका
अवक्तव्य पद भजनीय है, शेष पद नियमसे होते हैं । भग तीन हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व
प्रकृतिका अवस्थित पद नियमसे होता है, शेष पद भजनीय हैं । भग नौ हैं । इसी प्रकार सामान्य
तिर्यग्भ्रोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं होती ।

१५४६ आदसेण गेरइएसु छन्वीसं पयडीणमणंताणुणबद्धि—अबद्धि० गियमा अत्थि । सेसपकारसपदा मयणिञ्जा । मक्खपररावसेण सुत्तगाहाए च आणिट्ठमगा एधिया हँति १७७१४७ । गवरि अणंताणु० चरुद्ध० मयणिञ्जपदाणि मारह । तेसि मंगा ५३१४४१ । सम्म० अबद्धि० गियमा अत्थि । सेसपदा मयणिञ्जा० । मंगा णव । एषं सम्मामि० । गवरि मंगा तिपिण्ण । एषं सम्भभेरइय-सम्भपध्दिदियतिरिक्ख-तिण्णिमणुस-देव मयणादि भाव सहस्सारो सि । गवरि विदिपादिपुड्ढि-यंवि०तिरि० भाणिणी भयण०-बाभ०-मादिसिपसु सम्भचस्त तिपिण्ण मंगा । पंघ०तिरिपस्त्रमपज्ज० सम्म०-सम्मामि० गत्यि मंगा । मजुस्सअपज्ज० सम्भपयडी० सम्भपदा मयणिञ्जा । छन्वीसं पयडीणं मंगसमासो एसो १५६४३२२ । सम्म०-सम्मामि० मंगा दोपिण्ण । भाणदादि भाव सम्भट्टसिद्धि सि अट्टावीसं पयडीणमबद्धि० गियमा अत्थि । सेसपदा मयणिञ्जा । गवरि भाणदादि भाव गवगेवञ्जा सि अणंताणु०४ अणंताणुणबद्धि-अबद्धिदं गियमा अत्थि । मानीसं पयडीण मंगा तिपिण्ण । अणंताणु चरुद्ध० मगा भाणिय चत्थवा । सम्भचमंगा णव । सम्मामि० मंगा तिपिण्ण । उवरि सत्तावीसं पयडीणं मंगा तिपिण्ण । एषं भाणिट्ठण जेद्धं भाव अणाहारि सि ।

मंग तीन हाते हैं ।

१५४६. आदेशसे नाराकपोमें छन्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थित विमलि नियमसे हाती हैं। शेष व्याख्या पद मञ्जनीय हैं। अक्षरपरवर्तन और सूत्र गणाने द्वारा लिखते गये मंगा की संख्या १७७१४७ होती है। इतना विरोध है कि अनन्तगुणवृद्धिचतुष्कके मञ्जनीय पद बाह्य हैं उनके मंग ५३१४४१ होते हैं। सम्मत्त्वकी अवस्थितविमलि नियमसे हाती है, शेष पद मञ्जनीय हैं। मंग नी हाते हैं। इसी प्रकार सम्मत्त्वप्यात्वके विषयमें जानना चाहिए। इतना विरोध है कि उसके तीन मंग हाते हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पञ्चोत्त्रिय तिर्यञ्च, तीन प्रकारके मनुष्य सामान्य देव और मन्वन्वासीसे लेकर सद्भार स्वर्ग तकके देवा में जानना चाहिए। इतना विरोध है कि दूसरी आवृत्ति धृतिवीयो पञ्चोत्त्रिय तिर्यञ्च धानिनी मन्वन्वासी व्यन्तर और ज्योतिष्के में सम्मत्त्वके तीन मंग हात हैं। पञ्चोत्त्रिय तिर्यञ्च अपर्वातका में सप्तवत्स और सम्मत्त्वप्यात्व प्रकृतिके मंग मही हाते। मनुष्य अपर्वातका में सब प्रकृतिया के सभी पद मञ्जनीय हैं। छन्वीस प्रकृतिया के मंग का जाङ १५६४३२२ हाता है। सम्मत्त्व और सम्मत्त्वप्यात्व प्रकृतिके दो मंग हाते हैं। आन्तमे लेकर सत्तापसिद्धि तकके देवोंमें अट्टारिम प्रकृतिया का अवस्थित पद नियमसे हाता है, शेष पद मञ्जनीय हैं। इतना विरोध है कि आन्तसे लेकर नवमैत्रयक तकके देवोंमें अमन्तागुणवृद्धिचतुष्ककी अनन्तगुण-वृद्धि और अवस्थितविमलि नियमसे हाती है। बाह्य प्रकृतियोंके तीन मंग हाते हैं। अनन्तागु वृद्धिचतुष्कके मंग जानकर कहने चाहिये। सम्मत्त्व प्रकृतिके भी मंग हात हैं। सम्मत्त्व प्यात्वके तीन मंग हाते हैं। नवमैत्रयकसे ऊपर सत्तापसिद्धि प्रकृतियोंके तीन मंग हाते हैं। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

पिशुपार्थ—आपसे बाह्य प्रकृतिया में दह कृतियां छ हातियां और अवस्थितविमलि से लेकर पद नियमसे होते हैं। अनन्तागुणवृद्धिचतुष्कका अवस्थित पद मही हाता विद्वन्वस

§ ५४७. भागाभागाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण
 छब्बीसं पयडीणं पंचवट्टि—छहाणिविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखे०-
 भागो । अणंतगुणवट्टिविहत्तिया सव्वजी० केव० भागो ? सखे० भागो । अवट्टि०
 [अ] संखेज्जा भागा । अणंताणु० चउक्क० अवत्तव्व० अणंतिमभागो । सम्म०-सम्मापि०

होता है, क्यो कि अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके सम्यक्त्वसे च्युत हुआ जीव मिथ्यात्वमे
 आकर अनन्तानुबन्धीका वन्द्य करके जब उसके सत्त्ववाला होता है तो अवक्तव्य विभक्ति होती
 है । अनन्तानुबन्धीके शेष पद नियमसे होते हैं । अतः तीन भग होते हैं । कदाचित् मव जीव
 शेष पद विभक्तिवाले होते है, कदाचित् अनेक जीव शेष पद विभक्तिवाले और एक जीव अवक्तव्य
 विभक्तिवाला होता है । कदाचित् अनेक जीव शेष पद विभक्तिवाले और अनेक जीव अवक्तव्य
 विभक्तिवाले होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनन्तगुणहानि, अवस्थित और
 अवक्तव्य ये तीन पद होते हैं । इनमेंसे अवस्थित पद नियमसे होता है और शेष दो पद
 विकल्पसे होते हैं, अत दो पदोंके नौ भग होते हैं । सामान्य तिर्यञ्चो मे सम्यग्मिथ्यात्वका
 अनन्तगुणहानि पद नहीं होता, अत एक अवक्तव्य पद विकल्पसे होता है और इसलिये तीन
 ही भग होते हैं । आदेशसे नारकियो में छब्बीस प्रकृतियों के दो पद नियमसे होते हैं, और शेष
 ग्यारह पद विकल्पसे होते हैं । अत पहले कही गई गाथाके अनुसार ग्यारह अध्रुव पदों के
 १७०१४६ भग होते हैं । उनमें एक ध्रुव भगके मिला देनेसे १७०१४७ कुल भग होते हैं ।
 अनन्तानुबन्धीके एक अवक्तव्य पदके होनेसे अध्रुव पद बारह होते हैं और बारह अध्रुव पदों के
 ५३१४४० भग होते हैं । उनमें एक ध्रुव भगके मिलानेसे कुल भग होते हैं । दूसरे आदि नरको में
 सम्यक्त्व प्रकृतिका अनन्तगुणहानि पद नहीं होता है अत तीन ही भग होते हैं । पञ्चेन्द्रिय
 तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी एक अवस्थित विभक्ति ही होती है अत
 भग नहीं होते । मनुष्य अपर्याप्त सान्तर मार्गणा है अत उसमें सभी प्रकृतियों के सभी पद
 विकल्पसे होते हैं, अत छब्बीस प्रकृतियों के तेरह पदों के १५९४३२२ भग होते हैं, और
 सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके दो भग होते हैं—कदाचित् एक जीव अवस्थितविभक्तिवाला
 होता है, कदाचित् अनेक जीव अवस्थितविभक्तिवाले होते हैं । आनतसे लेकर नवप्रैयेयक तरु
 बाईस प्रकृतियों के अनन्तगुणहानि और अवस्थित ये दो पद होते हैं, इनमें अवस्थित पद ध्रुव
 है और अनन्तगुणहानि पद अध्रुव है अत तीन भग होते हैं । अनन्तानुबन्धीमें अनन्तगुण
 वृद्धि और अवस्थित पद ध्रुव हैं और शेष बारह पद अध्रुव हैं, अत उसमें भग ५३१४४१ होते
 हैं । सम्यक्त्व प्रकृतिके अनन्तगुणहानि और अवक्तव्य पद अध्रुव हैं अत नौ भग होते हैं और
 सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका केवल एक अवक्तव्य पद अध्रुव है अत तीन भग होते हैं ।
 अनुदिशादिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंका अवस्थित पद ध्रुव है और अनन्तगुणहानि पद अध्रुव है
 अत तीन भग होते हैं । सम्यग्मिथ्यात्वका केवल एक अवस्थित पद ही होता है अत. भग
 नहीं होते ।

§ ५४७ भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश ।
 ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी पाँच वृद्धि और छह हानि विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग
 प्रमाण हैं ? असख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अनन्तगुणवृद्धि विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके
 कितने भाग प्रमाण हैं ? सख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अवस्थित विभक्तिवाले सख्यात बहुभाग
 प्रमाण हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यविभक्तिवाले अनन्तवें भागप्रमाण हैं । सम्यक्त्व

अणुभारण्वहीय०—अवत्तव्य० सम्बन्धी० केव० ? असस्वे० भागो । अवद्वि० असस्वेज्जा
भागा । एवं तिरिक्त्वोर्षं । अवरि सम्मामि० अणुभारण्वहीय पत्वि ।

§ ५४८ अदेसेण गेरइएसु हन्वीसं पयदीणमोर्षं । अवरि अर्णत्ताणु० चत्तक०
अवत्तव्य० असस्वे० भागो । सम्म० सम्मामिच्छत्ताय तिरिक्त्वमंगो । एवं पद्वयुद्धदि०
पंषिदियतिरिक्त्वपंषि० तिरि० पञ्ज० देवोर्षं सोहम्मादि जान सहस्तारो पि । विदि
यादि जाव सत्तमि ति एवं चव । अवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तमंगो । एवं पंषि०
तिरि० आणिणी भवण० भाण० जोदिसिए पि । पंषि० तिरिक्त्वमपञ्ज० हम्पीसं पय
दीयं गेरइयमंगो । अवरि अर्णत्ताणु० चत्तक० अवत्त० गत्वि । सम्म० सम्मामिच्छ-
त्तायं पत्वि भागाभागं । एवं मजुसअपञ्ज० ।

§ ५४९ मजुसाय गेरइयमंगो । अवरि सम्मामि० ओर्षं । मजुसपञ्ज० मजु-
सिणीसु अहावीसं पयदीणमवद्वि० सस्वेज्जा भागा । सेसपदा० संस्वेज्जादिभागो ।
भाजदादि जाव अवगेषज्जा पि वावीसं पयदीणमणत्तणुणहाणि० सम्बन्धी० केव० ?
असस्वेज्जादिभागो । अवद्वि० असस्वेज्जा भागा । अर्णत्ताणु० चत्तक० सम्मत्त० सम्मामि०

और सम्बन्धित्व्यात्मकी अनन्तगुण्यहानि और अवत्तव्यविमर्शिताले जीव सब जीवोंके कितने
भाग प्रमाय हैं ? असंख्यातवें भाग प्रमाय हैं । अवस्थित विमर्शिताले जीव सब जीवोंके
असंख्यात बहुभागप्रमाय हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यक्तोमें जानना चाहिए । इतना विरोध
है कि उनमें सम्बन्धित्व्यात्म प्रकृतिकी अनन्तगुण्यहानि नहीं होती ।

§ ५४८ आदेरासं नारकियोमें हम्पीसं प्रकृतियोंका भागभाग आपकी तरह है । इतना
विरोध है कि अनन्तगुण्यहानिकी अवत्तव्य विमर्शिताले असंख्यातवें भागप्रमाय हैं ।
सम्बन्ध और सम्बन्धित्व्यात्मका भागभाग सामान्य तिर्यक्तोकी तरह है । इसी प्रकार पृथ्वी
पृथ्वी पञ्चेन्द्रियतिर्ष्व पञ्चेन्द्रियतिर्ष्व पर्याप्त सामान्य शेष और सौमर्ग स्वर्गसे लेकर
सह्यार स्वर्ग तकके शेषोंमें जानना चाहिए । इसी पृथ्वीसे लेकर सातवीं तकके नारकियोंमें
इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विरोध है कि सम्बन्ध प्रकृतिका भागभाग सम्बन्धित्व्यात्मकी
तरह है । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्ष्व योनिनी, भवन्वासी स्वन्तर और व्यापितिविबोमें
जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रियतिर्ष्व अपर्याप्तकोंमें हम्पीसं प्रकृतियोंका भागभाग नारकियोंकी
तरह है । इतना विरोध है कि अनन्तगुण्यहानिकी अवत्तव्य पद वहाँ नहीं होता । तथा
सम्बन्ध और सम्बन्धित्व्यात्मका भागभाग नहीं होता । इसी प्रकार मजुस अपर्याप्तकोंमें
जानना चाहिए ।

§ ५४९ सामान्य मजुस्योंमें नारकियोंके समान भाग है । इतना विरोध है कि सम्बन्धित्व्या-
त्मका मजुस्योवकी तरह है । मजुस्य पर्याप्त और मजुस्यतिर्ष्वोंमें अहर्षसं प्रकृतियोंकी अव
स्थित विमर्शिताले संख्यात बहुभागप्रमाय हैं । शेष पदवात्त संख्यातवें भागप्रमाय हैं । आनतसे
लेकर नवप्रैवेयक तकके शेषोंमें वाईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुण्यहानि विमर्शिताले जीव सब जीवोंके
कितने भाग प्रमाय हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाय हैं । अवस्थित विमर्शिताले असंख्यात बहुभाग-
प्रमाय हैं । अनन्तगुण्यहानिकी, सम्बन्ध और सम्बन्धित्व्यात्मका भाग सामान्य शेषोंकी तरह

देवोद्यं । णवरि अणंताणु० अणंतगुणवट्टि० असंखे० भागो । अणुदिसादि जाव अवरराइदो
त्ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० असंखे० भागो । अवट्टि० असंखेज्जा भागा ।
सम्मामि० णत्थि भागाभागो । एव सञ्चट्ठे । णवरि सखेज्ज कायच्च । एवं जाणिदूण
णेदच्चं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५५०. परिमाणानु० दुविहो णिदंसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण
वावीस पयडीणं तेरसपदवि० ट्व्वपमाणेण केव० ? अणता । एवमणताणु० चउक० ।
णवरि अवत्त० असंखेज्जा । सम्मत्त-सम्मामि० अणंतगुणहाणि० ट्व्वपमाणेण केव० ?
संखेज्जा । सेसपदवि० असंखेज्जा । एवं तिरिक्खोद्यं । णवरि सम्मामि० अणंत-
गुणहाणी णत्थि ।

§ ५५१. आदेसेण णेरइएसु अट्टावीसं पयडीणं सञ्चपदवि० असंखेज्जा ।
णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ओद्यं ! एवं पढमपुदवि०-पंचिं० तिरिक्ख०-पंचिं०-
तिरिक्खपज्ज०-देवोद्य सोहम्मादि जाव सहस्सारो त्ति । विद्यादि जाव सत्तमि त्ति
एवं चेव । णवरि सम्मत्त० अणंतगुणहाणी णत्थि । एव जोणिणी-भवण०-वाण०-
जोदिसिए त्ति । पंचिंदियतिरिक्खपज्ज० छव्वीसं पयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-

है । इतना विशेष है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अनन्तगुणवृद्धिवाले असख्यातवें भागप्रमाण हैं ।
अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिवाले
जीव असख्यातवें भागप्रमाण हैं । अचस्थित विभक्तिवाले जीव असख्यात बहुभागप्रमाण हैं ।
सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका भागाभाग नहीं है । इसी प्रकार सर्वार्थभित्तिमें जानना चाहिए । इतना
विशेष है कि असख्यातके स्थानमें सख्यात कर लेना चाहिये । इस प्रकार जानकर अनाहारी
पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

§ ५५० परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे
बाईस प्रकृतियों के तेरह पदविभक्तिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी
प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा परिमाण जानना चाहिए । इतना विशेष है कि इसके
अचक्षु विभक्तिवाले जीव असख्यात हैं । सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिकी
अनन्तगुणहानिवाले जीव द्रव्यप्रमाणसे कितने हैं ? सख्यात हैं । शेष पद विभक्तिवाले जीव
असख्यात हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चो में जानना चाहिए । इतना विशेष है कि तिर्यञ्चो में
सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं है ।

§ ५५१ आदेशसे नारकियोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंके सब पद विभक्तिवाले जीव असख्यात
हैं । इतना विशेष है कि सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानिवालोंका परिमाण ओघके समान
है । इसी प्रकार पहली पृथिवी, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, सामान्य देव और
सौधर्मसे लेकर सहस्रार तकके देवों में जानना चाहिए । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी पर्यन्त
इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि उनमें सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि नहीं
होती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च योनिनी, भक्षनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियों में जानना
चाहिए । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तको में छव्वीस प्रकृतियों के तेरह पद विभक्तिवाले और

सम्मामि० अचट्टि० असंस्वेजा । एवं मजुसअपञ्ज० ।

§ ५५२. मजुसेसु इम्बीसंपयदीर्णं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अचट्टि० असंस्वेजा । अर्णताणुचट्टक० अचत्त० सम्म०-सम्मामि० अर्णताणुहाणी० अचत्त० संस्वेजा । मजुसपञ्ज०-मजुसिणीसु अहावीसंपयदीर्णं सञ्चपदवि० संस्वेजा । आप्पदादि चाप अवरराइदो चि अहावीसंपयदीर्णं सञ्चपदवि० असंस्वेजा । पपरि सम्मत्त० अर्णताणुहाणि० संस्वेजा । सञ्चहसिद्धिदिमाण अहावीसंपयदीर्णं सञ्चपदवि० संस्वेजा । एवं आण्डिण जेदुम्भं जाव अणाहारि चि ।

§ ५५३ स्वेताचुगमेण दुविहो णिहे सो—ओषण आदंसण य । ओषण इम्बीसंपयदीर्णं तेरसपदवि० केवटि स्वेचे ? सञ्चखोग । अर्णताणु०चट्टक० अचत्त० सम्म० सम्मामि० सञ्चपदविहसि० के० स्वेच० ? साग० असंस्व०भागे । एवं तिरिकलोपं । पपरि सम्मामि० अर्णताणुहाणी गत्यि । सेसममाणासु सञ्चपयदीर्णं सञ्चपदविह० खोम० असंस्व०भागे । एवं आण्डिण जेदुम्भं जाव अणाहारि चि ।

§ ५५४ पासणाणु० दुविहो णिहे सो—ओषेण आदंसण य । ओषण इम्बीसंपयदीर्णं तेरसपदवि० के० स्वेचं पोसिदं ? सञ्चखामो । अर्णताणु०चट्टक० अचत्त०

सञ्चकत्त तथा सम्मामिप्यात्वकी अचरित्त विमत्तिवासे जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक में जानना चाहिए ।

§ ५५२ सामान्य मनुष्या में इम्बीस प्रकृतिया की तरह पक्विमत्तिवासे और सञ्चकत्त तथा सम्मामिप्यात्वकी अचरित्त विमत्तिवासे जीव असंख्यात हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अचत्तक्य विमत्तिवासे तथा सम्मत्त और सम्मामिप्यात्व प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि और अचत्तक्य विमत्तिवासे जीव संख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यभित्तों में अर्णताणु प्रकृतिया की सब पद विमत्तिवासे जीव संख्यात हैं । आनन्दसे सकर अपर्याप्त विमान तकके इका में अर्णताणु प्रकृतिया की सब पद विमत्तिवासे जीव असंख्यात हैं । इतना विशेष है कि सम्मत्तक्य प्रकृतिकी अनन्तगुणहानि विमत्तिवासे जीव संख्यात हैं । सर्वावस्थिति विमानमें अर्णताणु प्रकृतिया की सब पद विमत्तिवासे जीव संख्यात हैं । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्वन्त में जाना चाहिए ।

§ ५५३ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देशा का प्रकारका है—आप और आवेरा । आपस इम्बीस प्रकृतियोंकी तरह पद विमत्तिवासे जीवोंका कितना क्षेत्र है ? सब साक क्षेत्र है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अचत्तक्य विमत्तिवासे तथा सञ्चकत्त और सम्मामिप्यात्वकी सर्व पद विमत्तिवासे जीवोंका कितना क्षेत्र है ? साक असंख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्र है । इसी प्रकार सामान्य विमत्तिवासे में जानना चाहिए । इतना विचार है कि तिर्यग्भूमि सम्मामिप्यात्वकी अनन्तगुणहानि की होती । शेष माग्याभा में सब प्रकृतिया की सब पद विमत्तिवासे जीवोंका साक असंख्यातमें भागप्रमाण क्षेत्र है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्वन्त में जाना चाहिए ।

§ ५५४ स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देशा का प्रकारका है—आप और आवेरा । आपस इम्बीस प्रकृतिया की तरह पद विमत्तिवासे जीवोंमें कितना क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब साक स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अचत्तक्य विमत्तिवासे में साक असंख्यातमें भागका

लो० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा । सम्म०-सम्मामि० अणंतगुणहाणि० खेत्तं । अवट्टि० लो० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा सव्वलोगो वा । अवत्त० लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा ।

§ ५५५. आदेशेण णेरइएसु छ्वीसंपयडीणां तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० केव० ? लोग० असंखे०भागो छचोदस० देसूणा । सम्म० अणंतगुणहाणि० छण्हमवत्त० खेत्तं । पढमपुढवि० खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति छ्वीसंपयडीणां तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० सगपोसणं वत्तव्व । छण्हमवत्त० खेत्तं ।

§ ५५६. तिरिक्ख० छ्वीसंपयडीण तेरसपदवि० ओघं । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० छण्हमवत्त० खेत्तं । सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । पंचिदियतिरिक्ख-पचिं०तिरि०पज्ज० छ्वीसंपयडीणां तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । सम्म० अणंतगुणहाणि० इत्थि-पुरिस० छवही० छण्हमवत्त० खेत्तं । एवं जोणिणी० । णवरि सम्मत्त० अणंत-

और चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण क्षेत्रके स्पर्शन किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानिवालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अवस्थित विभक्तिवालोंने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण, चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवक्तव्य विभक्तिवाला ने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण और चौदह राजूमेंसे कुछ कम आठ राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

§ ५५५. आदेशसे नारकियोंमें छ्वीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तिवालों और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालेने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असख्यातवें भागका और चौदह राजूमेंसे कुछ कम छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालो का तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है । पहली पृथिवीमें क्षेत्रके समान स्पर्शन है । दूसरीसे लेकर सातवां पृथिवी तकके नारकियों में छ्वीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालो तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालो का अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ५५६ सामान्य तिर्यञ्चो मे छ्वीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालो का स्पर्शन ओघके समान है । सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तको में छ्वीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालो ने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थितविभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालो का तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी छह वृद्धिवालो का और सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिवालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान

सुग्राणी णत्वि । पंचिदियतिरिक्त्वअपञ्ज० छन्वीसंपयदीर्णं तरसपदधि० सम्म० सम्मायि० अर्षदि० शोग० असंखे०भागो सम्बलोगो वा । णवरि इत्थि-पुरिस० छवद्दी० खत । एवं मणुसअपञ्ज० । तिण् मणुस्तार्णं पंचि०तिरिक्त्वर्भगो । णवरि सम्पत्त० सम्मायि० अर्णतगुणहाणि० ओर्षं ।

§ ५५७ देवसु छन्वीसंपयदीर्णं तरसपदधि० सम्म०-सम्मायि० अर्षदि० शोग० असंखे०भागो अह-णवचोइस० देवूणा । सम्पत्त० अर्णतगुणहाणि० खेत्तं । अणमवत्त० इत्थि पुरिस० छवद्दी० शोग० असंखे०भागा अहचोइ० देवूणा । एव पवण०-भाण०-जोइत्तिए वि । णवरि सगपासर्णं । सम्म० अर्णतगुणहाणी णत्वि । सोइम्मादि माय साइस्तारा वि छन्वीसंपयदीर्णं तरसपदधि० सम्म०-सम्मायि० अर्षदि० अणमवत्त० शोग० असंखे०भागो अहचोइ० देवूणा । सम्पत्त० अर्णतगुण-हाणि० खेत्तं । णवरि सोइम्मीसाणसु अह-णवचोइसभागा देवूणा । भाणदादि माव अणुदा वि षावीसंपयदीर्णमर्षदि० अर्णतगुणहाणि० अर्णताणु० सम्बपदधि० सम्म०

है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च पानिति । में जानना चाहिए । इतना विरोध है कि जन्मे सम्यक्त्वही अनन्तगुणदानि नहीं है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्णातत्रे में छन्वीस प्रकृतिवा की तरह पद विमच्छिवाला ने तथा सम्यक्त्व और मम्ममिध्यात्वही अक्षरित्यत विमच्छिवाला ने साकके असंख्यातर्भे भाग और सर्वलाक प्रमाण क्षेत्रका स्मरण किया है। इतना विरोध है कि स्थीवेत् और पुण्यवेदही छह वृद्धिवाला का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्णातत्र में जानना चाहिए । राय तीम प्रकारके मनुष्या में पञ्चन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान भंग है। इतना विरोध है कि सम्यक्त्व और सम्बमिध्यात्वही अनन्तगुणदानिका स्पर्शन आपके समान है।

§ ५५७ देवा में छन्वीस प्रकृतिया की तरह पद विमच्छिवाला ने और सम्यक्त्व तथा मम्ममिध्यात्वही अक्षरित्यतविमच्छिवाला ने साकके असंख्यातर्भे भाग और चौदह राज्ञेसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ राज्ञ प्रमाण क्षेत्रका स्मरण किया है। सम्यक्त्वही अनन्तगुणदानिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्व मम्ममिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीपतुण्णकी अक्षरित्यत विमच्छिवाला ने तथा स्वीयत् और पुण्यपवद्दी छह वृद्धिवाला ने साकके असंख्यातर्भे भाग और चौदह राज्ञेसे कुछ कम आठ राज्ञ प्रमाण क्षेत्रका स्मरण किया है। इसी प्रकार पवनवासी ध्वन्तर और ग्यादिविया में जानना चाहिए । इतना विरोध है कि बर्तों अपना-अपना स्मरण सेना चाहिए । तथा इनमें सम्यक्त्वही अनन्तगुणदानि नहीं है । सौपमस क्षेत्र स्मरण स्पर्शन क्षेत्रके देवा में छन्वीस प्रकृतिया की तरह पद विमच्छिवाला ने सम्यक्त्व और मम्ममिध्यात्वही अक्षरित्यतविमच्छिवाला ने तथा सम्यक्त्व मम्ममिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी पतुण्णकी अक्षरित्यतविमच्छिवाला ने साकके असंख्यातर्भे भाग और चौदह राज्ञेसे कुछ कम आठ राज्ञ प्रमाण क्षेत्रका स्मरण किया है। सम्यक्त्वही अनन्तगुणदानिवालों का स्मरण क्षेत्रके समान है । इतना विरोध है कि सौपम और ईगान स्वर्गमें चौदह राज्ञेसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ राज्ञ प्रमाण क्षेत्रका स्मरण किया है । आननम सहर अच्युत स्था तच्छ देवा में बर्तों प्रकृतियों की अक्षरित्यत विमच्छि और अनन्तगुणदानिवाला म. अनन्तानुबन्धी पतुण्णकी सर्व पद विमच्छिवाला ने तथा सम्यक्त्व और मम्ममिध्यात्वही अक्षरित्यत और

सम्मामि० अवट्टि०-अवत्तव्व० लोग० असंखे०भागो छचोदस० देसूणा । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० खेतं । उवरि अट्टावीसंपयडीणं सव्वपदवि० खेतं । एवं जाणिदूण पेदव्वं जाव अणाहारि ति ।

§ ५५८. गाणाजीवेहि कालाणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसपयडीणं तेरसपदवि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० सव्वद्धा । छण्हमवत्त० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । सम्म० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मामि० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । एवं तिरिक्खोघं । णवरि सम्मामि० अणंतगुणहाणी णत्थि ।

अवक्तव्य विभक्तिवालो ने लोकके असख्यातवें भाग और चौदह राजूमेंसे कुछ कम छह राजू प्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अच्युत स्वर्गसे ऊपर अट्टाईस प्रकृतिया की सर्व पद विभक्तिवालो का स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे अनन्तानुबन्धी, सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिवालो का जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजू स्पर्शन कहा है सो अतीत कालकी अपेक्षा विहारवत्त्वस्थान आदि सभ पदो के द्वारा जानना चाहिए। आदेशसे नारकियो में छव्वीस प्रकृतियों की तेरह पदविभक्तिवालो का स्पर्शन अतीत कालकी अपेक्षा मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा कुछ कम छह बटे चौदह राजू होता है। सामान्य तिर्यञ्चो में सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालो ने मारणान्तिक और उपपाद पदके द्वारा तीनों कालों में सर्वलोकका स्पर्शन किया है और विहारवत्त्वस्थान आदि सभ पदो के द्वारा लोकका असख्यातवें भाग स्पर्शन किया है। सामान्य देवों में छव्वीस प्रकृतियों की तेरह पद विभक्तिवालो ने और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिवालो ने विहारवत्त्वस्थान, विक्रिया आदि पदो के द्वारा अतीत कालमें कुछ कम आठ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और मारणान्तिक समुद्घातके द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजू क्षेत्रका स्पर्शन किया है और वर्तमानकी अपेक्षा लोकके असख्यातवें भागका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सौधर्मादिक में जानना चाहिए। विशेष यह है कि मारणान्तिक पदके द्वारा कुछ कम नौ बटे चौदह राजू स्पर्शन ईशान पर्यन्त ही होता है, क्यो कि ईशान तकके देव ही एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, ऊपरके देव नहीं करते। तथा आनतादिक स्वर्गमें मारणान्तिक आदि पदो के द्वारा कुछकम छह बटे चौदह राजू स्पर्शन होता है, क्यो कि चित्रा पृथिवीके ऊपरके तलसे नीचे इनका गमन नहीं होता।

§ ५५८ नाना जीवोंकी अपेक्षा कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भाग प्रमाण है। सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सख्यात समय है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोमें जानना चाहिए। इतना विशेष है कि तिर्यञ्चोमें सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानि नहीं है।

§ ५५६ आदेशेण णेरुपसु द्दम्भीसंपयदीणं पंचवट्टि-इहापि० द्दम्भमवच० जह० एगस०, उक्क० आबलि० असंसे० भागो । अणंतगुणवट्टि अवट्टि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० सम्बद्धा । सम्म० अणंतगुणहाणि० आपं । एवं पढमपुट्टि०-पंचिदियतिरिक्ख वंचि०तिरि०पक्ख०-देशोपं सोहम्मादि भाव सहस्सारो ति । विदियादि भाव सत्तमि ति एवं पेव । णवरि सम्मत० अणंतगुणहाणी गत्यि । एवं पंचिदियतिरिक्खमोपिणी मवण०-भाण०-जोइसिए ति । पंचि०तिरि०अपक्ख० द्दम्भीसंपयदीणं तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० णेरइयमगो । एव मजुसअपक्ख० । णवरि द्दम्भीसंपयदीण मणंतगुणवट्टि-अवट्टि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंसे० भागो ।

§ ५५७ मजुस्सेसु द्दम्भीसं पयदीणं तेरसपद्वि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० णेरइयमगो । णवरि चतुसंज पुरिस०-सम्म० अणंतगुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० भंतोसुहुपं । इयणमवच० सम्मामि० अणंतगुणहाणि० जह० एगस०, उक्क० संसेखा समया । मजुसपक्ख० द्दम्भीसं पयदीणं पंचवट्टी० ज० एगस०, उक्क० आबलि० असंसे०

§ ५५९. आदेशे नारकियोमिं द्दम्भीस प्रकृतियोंकी पांच वृत्तियों और च द्दम्भियोंका तथा सम्यक्त्व सम्मामिध्यात्व और अनन्तगुणवट्टिअवट्टिकी अवस्थित विमत्तिका जपम्य काल एक समय है और उक्त काल आकाशके असंख्यातवें भागप्रमाण है । द्दम्भीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवट्टि और अवस्थित विमत्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्मामिध्यात्वकी अवस्थित विमत्तिका काल सर्वथा है । सम्यक्त्वकी अनन्तगुणवट्टिअवट्टि काल आपके समान है । इसी प्रकार पञ्चवीं पृथिवी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पयात्र सामान्य देव और सौपरमेसे लेकर अष्टार स्वर्ग तकके देवोमिं जानना चाहिये । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके देवोमिं इसी प्रकार जानना चाहिये । इतना विशेष है कि दूसरे आदि नरकोमिं सम्यक्त्व प्रकृतिकी अनन्तगुणवट्टि नहीं होती । इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च धोनिटी, मभवत्वासी म्पन्तर और स्वातिपियोंका जानना चाहिये । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोमिं द्दम्भीस प्रकृतियोंकी तेरह पद्वि-त्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्मामिध्यात्वकी अवस्थित विमत्तिका काल नारकियोंके समान है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोमिं जानना चाहिये । इतना विशेष है कि द्दम्भीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवट्टि और अवस्थित विमत्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्मामिध्यात्वकी अवस्थित विमत्तिका जपम्य काल एक समय है और उक्त काल परबके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ५६ मनुष्योंमिं द्दम्भीस प्रकृतियोंकी तेरह पद्वि-त्तियोंका तथा सम्यक्त्व और सम्मामिध्यात्वकी अवस्थित विमत्तिका काल नारकियोंके समान है । इतना विशेष है कि चारों संव-सन कयाव, पुरुषवत् और सम्यक्त्वकी अनन्तगुणवट्टिअवट्टिका जपम्य काल एक समय है और उक्त काल अनन्तगुणवट्टि है । यह प्रकृतियोंकी अवस्थित विमत्तिका और सम्यक्त्वकी अनन्तगुणवट्टिअवट्टि जपम्य काल एक समय है और उक्त काल संख्यात समय है । मनुष्य अपर्याप्तकोमिं द्दम्भीस प्रकृतियोंकी पांच वृत्तियोंका जपम्य काल एक समय है और उक्त काल

१ या प्रती धम्म अर्धगुणवट्टी जह एगस उक्क संसेखा समया इति वदः ।

भागो । छहाणी० सम्मामि० अणंतगुणहाणि० छएहमवत्त० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अणंतगुणवड्ढि-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अवट्ठि० सव्वद्धा । णवरि च्छु-संजल०-पुरिस०-सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं मणु-सिणी० । णवरि पुरिस० अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया ।

१ ५६१. आणदादि जाव णवगोवज्जा ति छव्वीस पयडीणं अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असखे०भागो । एवं छएहमवत्त० । सव्वासिमवट्ठि० सव्वद्धा । सम्मत्त० अणंतगुणहाणि० ओघ । अणंताणुबंधी० सव्वपदा० टेवोधं । अणु-दिसादि जाव अवराइदो ति सत्तावीसं पयडीणं दोपदवि० सम्मामि० अवट्ठि० आणद-भगो । एव सव्वट्ठे । णवरि छव्वीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । एवं जाणिदूण णेदव्व जाव अणाहारि ति ।

१ ५६२. अंतराणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं तेरसपदवि० णत्थि अंतर । एवं सम्म०-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदस्स । छएह-

आवलीके असख्यातवें भाग प्रमाण है । छह हानियोंका, सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहाणिका और छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्य विभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उक्कट काल सख्यात समय है । छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है । इतना विशेष है कि चारों सज्वलन कषाय, पुरुषवेद और सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहाणिका जघन्य काल एक समय है और उक्कट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि पुरुषवेदकी अनन्तगुणहाणिका जघन्य काल एक समय है और उक्कट काल सख्यात समय है ।

१ ५६१ आनतसे लेकर नवप्रैवेयक तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहाणिका जघन्य काल एक समय है और उक्कट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार छह प्रकृतियोंकी अवक्तव्यविभक्तिका काल जानना चाहिए । सब प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका काल सर्वदा है । सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहाणिका काल ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी-कषायके सब पदोंका काल सामान्य देवोंकी तरह है । अनुदिशसे लेकर अपराजित विमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी दो पद विभक्तियोंका तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अवस्थित विभक्ति का काल आनत स्वर्गके समान है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि छव्वीस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहाणिका जघन्य काल एक समय है और उक्कट काल सख्यात समय है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

विशेषार्थ—ओघसे अनेक जीव एक साथ अवक्तव्य विभक्तिवाले हुए और दूसरे समयमें अन्य विभक्तिवाले होगये तो एक समय काल होता है और यदि लगातार अनेक जीव अवक्तव्य विभक्तिवाले होते रहे तो आवलीका असख्यातवें भाग काल होता है । लगातार इससे अधिक समय तक अवक्तव्य विभक्तिवाले जीव नहीं पाये जाते । इसी प्रकार अन्य विभक्तिवालो का तथा आदेशसे चारों गतियोंमें भी काल घटित कर जानना चाहिए ।

१ ५६२ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी तेरह पद विभक्तियोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और

मनस० ज० एगस०, उक्त० चतुर्विंशतिहोरवाणि सादिरेयाणि । सम्म०-सम्प्रापिच्छ-
 चाभमर्णतगुणहाभि० ज० एगस०, उक्त० इम्मासा ।

§ ५६३ आदेसेप गेखपसु इन्वीसं पयडीणं पंचपट्टि पंचहाणी० जह० एगस०,
 उक्त० असले० सोगा । अणंतगुणपट्टि० अनट्टि० गत्ति अंतरं । अणंतगुणहाणि० ज०
 एगस०, उक्त० अंतोसु० । सम्पत्त० अणंतगुणहाभि० ज० एगस०, उक्त० वासपुपत्त ।
 सम्म०-सम्प्रापि० अट्टि० अणहमवत्त० ओषं । एवं पडमपुडवि०-पंचिदियतिरिक्त्त
 पंचि०तिरि०पञ्ज०-देवायं सोहम्मादि ज्ञान सहस्सारे वि । विदियादि ज्ञाप सत्तम
 पुडवि०-पंचिदियतिरिक्त्तमोणिणी-यवण०-माण०-मोइसिए ति एन चेव । जवरि
 सम्पत्त० अणंतगुणहाणी गत्ति ।

§ ५६४ तिरिक्त्त० इन्वीसंपयदीणमोषं । सम्म०-सम्प्रापि० जेरइयमंगो ।
 पंचि०तिरि०अपञ्ज० अट्टावीसं पयडीणं सम्पपट्टि० जेरइयमंगो । कियं मजुस्सार्ण
 पि जेरइयमंगो । जवरि सम्म०-सम्प्रापि० ओषं । मजुस्सिणीसु सम्म०-सम्प्रापिच्छ-
 चायं अणंतगुणहाणि० उक्त० जामपुपत्तं । मजुसअपञ्ज० इन्वीसंपयडीण पंचपट्टि०
 पंचहाणि० ज० एगस०, उक्त० असलेखा सोगा । अणंतगुणपट्टि०-हाणि-अनट्टि० सम्म०

सम्प्रापिच्छात्त्वकी अचस्थित विमट्टिका अन्तर नहीं है । इह प्रकृतियोंकी अचक्ष्म्य विमट्टिका
 जपम्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर कुछ अधिक चौबीस रात दिन है । सम्पत्त्व
 और सम्प्रापिच्छात्त्वकी अनन्तगुणहाणिका जपम्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर
 इह मास है ।

§ ५६३ आदरासे नारकियोंमें इन्वीस प्रकृतियोंकी चौबों बुद्धियों और चौबों इतियोंका
 जपम्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनन्तगुणपट्टि
 और अचस्थितविमट्टिका अन्तर नहीं है । अनन्तगुणहाणिका जपम्य अन्तर एक समय है और
 उक्त अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्पत्त्वकी अनन्तगुणहाणिका जपम्य अन्तर एक समय है और
 उक्त अन्तर वर्षगुणत्वप्रमाण है । सम्पत्त्व और सम्प्रापिच्छात्त्वकी अचस्थितविमट्टिका
 तथा इह प्रकृतियोंकी अचक्ष्म्यविमट्टिका अन्तर आपके समान है । इसी प्रकार पहली धृषिनी
 पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त सामान्य देव और सौपरमसे लेकर सहस्रार स्वर्ग
 तकके देवोंमें जानना चाहिए । इसीसे लेकर सातवीं धृषिनी तकके नारकियोंमें तथा पञ्चेन्द्रिय
 तिर्यञ्चोत्तनी मदनवासी अन्तर और व्याधिपियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । इतना
 विरोध है कि इनमें सम्पत्त्वकी अनन्तगुणहाणि नहीं होती ।

§ ५६४ सामान्य तिर्यञ्चोंमें इन्वीस प्रकृतियोंका मङ्ग आपके समान है । सम्पत्त्व
 और सम्प्रापिच्छात्त्वका मङ्ग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें अट्टावीस
 प्रकृतियोंकी सब पद विमट्टियोंका मङ्ग नारकियोंके समान है । तीन प्रकारके मजुष्योंमें भी
 नारकियोंके समान मङ्ग है । इतना विरोध है कि सम्पत्त्व और सम्प्रापिच्छात्त्वका मङ्ग
 आपके समान है । मजुष्यिनियोंमें सम्पत्त्व और सम्प्रापिच्छात्त्वकी अनन्तगुणहाणिका उक्त
 अन्तर वपपृथक्त्व है । मजुष्य अपर्याप्तकोंमें इन्वीस प्रकृतियोंकी चौब बुद्धियों और चौब
 इतियोंका जपम्य अन्तर एक समय है और उक्त अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अनन्त
 गुणपट्टि, अनन्तगुणहाणि और अचस्थित विमट्टिका तथा सम्पत्त्व और सम्प्रापिच्छात्त्वकी

सम्मामि० अवट्टि० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ५६५. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति वावीसं पयडीणं अणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० सत्त रादिंदियाणि । अवट्टि० सम्म०-सम्मामि० अवट्टि० णत्थि अंतरं । दोएहमवत्त० सम्म० अणतगुणहाणि० अणंताणु० सच्चपदा० देवोघ । अणु-दिसादि जाव सच्चद्वसिद्धि त्ति सत्तावीसं पयडीणमणंतगुणहाणि० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो० सखे०भागो' । एदेसिमवट्टि० सम्मामि० अवट्टि० णत्थि अंतर । एवं जाणिदूण णेदच्चं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५६६. भावाणु० सच्चत्थ ओदइओ भावो । एवं जाणिदूण णेदच्चं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ५६७. अप्पावहुगाणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण वावीसं पयडीण सच्चत्थोवा अणंतभागहाणिविहत्तिया जीवा । असंखेज्जभागहाणिवि० असखे०गुणा । संखेभागहाणिवि० सखे०गुणा । सखे०गुणहाणिवि० सखे०गुणा । असंखे०गुणहाणिवि० असखे०गुणा । अणतभागवट्टिविह० असखे०गुणा । असंखे० भागवट्टिवि० असखे०गुणा । सखे०भागवट्टिवि० सखे०गुणा । सखे०गुणवट्टिवि०

अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ५६५ आनतसे लेकर नवप्रैयेयक तकके देवोंमें वार्डस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर सात रात दिन है । वार्डस प्रकृतियोंकी अवस्थित विभक्तिका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्तिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य विभक्तिका, सम्यक्त्वकी अनन्तगुणहानिका और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके सब पदोंका अन्तर सामान्य देवोंकी तरह है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अन-तगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनुदिशसे अपराजित तक वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पत्यके सख्यातवें भागप्रमाण है । इन प्रकृतियोंकी तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी अवस्थित विभक्तिका अन्तर नहीं है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५६६ भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदयिक भाव है । इस प्रकार जानकर अनाहारी पर्यन्त ले जाना चाहिये ।

§ ५६७ अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे वार्डस प्रकृतियोंकी अनन्तभागहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे असख्यात भाग-हानि विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणों हैं । इनसे सख्यातभागहानि विभक्तिवाले जीव सख्यात-गुणों हैं । इनसे सख्यातगुणहानि विभक्तिवाले जीव सख्यातगुणों है । इनसे असख्यातगुणहानि विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणों हैं । इनसे अनन्तभागवृद्धि विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणों हैं । इनसे असख्यातभागवृद्धि विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणों हैं । इनसे सख्यातभागवृद्धि विभक्तिवाले जीव सख्यातगुणों हैं । इनसे सख्यातगुणवृद्धि विभक्तिवाले जीव सख्यातगुणों हैं ।

संस्ले०गुणा । असंस्ले०गुणवद्विधि० असंस्ले०गुणा । अणतगुणहाणिधि० असंस्ले०गुणा ।
 अणतगुणवद्विधि० असंस्ले०गुणा । अवद्विधि० संस्लेज्जगुणा । एषमणताणु०चरक० ।
 अपरि सव्यस्थोवा अवच०विह० जीवा । अणतभागहाणिधि० अणतगुणा । सेस त
 वेव । सम्म०-सम्मामिच्छत्तार्ण सव्यस्थोवा अणतगुणहाणिधि० जीवा । अवच०विहृति०
 असंस्ले०गुणा । अवद्वि०विहृति० असंस्ले०गुणा ।

§ ५६८ आदेशेण गेरइएसु वावीसंपयडीणमाप । अणताणु०चरक० सम्म
 त्योवा अवच०विहृतिया जीवा । अणतभागहाणिधि० असंस्ले०गुणा । अपरि भाप ।
 सम्मच० ओष । सम्मामि० सव्यस्थोवा अवच०विहृति जीवा । अवद्वि०धि० असंस्ले०
 गुणा । एवं पदमपुद्वि-पंचि०तिरिक्त्वा-पंचि०तिरि पञ्च -द्वनाय सोहम्मादि भाप
 सहसारे ति । विदियादि भाप सत्तमि ति पंचिदियतिरिक्त्वागोभिणी०-अवच०-भाग०
 गोहृति ति एवं वेव । अपरि सम्मच० सम्मामिच्छत्तार्णगो । तिरिक्त्वा० ओष ।
 अपरि सम्मामि० गेरइयमंगा । पंचि०तिरि०अपञ्च० इन्वीसंपयडीणमोप । [अपरि
 अणताणु०] मिच्छत्तार्णगो । सम्मच०-सम्मामिच्छत्तार्ण पत्ति अणुबहुत्व, एषपदत्तादा ।
 एवं मनुसअपञ्च० ।

इन्से असंख्यातगुणवृद्धि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इन्से अनन्तगुण्यहानि विभक्ति-
 वाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इन्से अनन्तगुण्यहानि विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं ।
 इन्से अवस्थित विभक्तिवाले संख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार अनन्ताणुबन्धीवस्तुपञ्चका अस्पष्टत्व
 है । किन्तु इनमें अवलम्ब्य विभक्तिवाले जीव सबसे धाके हैं । इन्से अनन्तभागहानि विभक्तिवाले
 अनन्तगुण्ये हैं । रोप पूर्ववत् जानना । सम्बन्ध और सम्मामिच्छात्वकी अनन्तगुण्यहानि विभक्ति
 वाले जीव सबसे धाके हैं । इन्से अवलम्ब्य विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इन्से अवस्थित
 विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुण्ये हैं ।

§ ५६८ आदेशसे नारिकोंमें बर्तस प्रवृत्तियोंका मङ्ग आपके समान है । अनन्ताणुबन्धी
 वस्तुपञ्चकी अवलम्ब्य विभक्तिवाले जीव सबसे धाके हैं । इन्से अनन्तभागहानि विभक्तिवाले
 जीव असंख्यातगुण्ये हैं । भागे ओषकी तरह मङ्ग है । सम्बन्ध प्रवृत्तिका मङ्ग आपकी तरह
 है । सम्मामिच्छात्वकी अवलम्ब्यविभक्तिवाले जीव सबसे धाके हैं । इन्से अवस्थितविभक्तिवाले
 जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार पहली छविकी पञ्चेन्द्रियवियञ्च पञ्चेन्द्रियवियञ्चपञ्च
 सामान्य देव और सौधर्मसंज्ञकर सहकार स्वर्ग लक्षके देवोंमें आमना चाहिए । दूसरे भरकसे
 ज्ञेकर सातवें फलन्त तथा पञ्चेन्द्रियविर्भावयानिनी भवन्वासी, अन्तर और व्यापितियोंमें इसी
 प्रकार जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सम्बन्ध प्रवृत्तिका मङ्ग सम्मामिच्छात्वके समान
 है । सामान्य विर्भावोंमें आपके समान मङ्ग है । इतना विशेष है कि सम्मामिच्छात्व प्रवृत्तिका
 मङ्ग नारिकोंके समान है । पञ्चेन्द्रियवियञ्च अपर्मात्रणमें इन्वीस प्रवृत्तियोंका मङ्ग आपकी
 तरह है । इतना विशेष है कि अनन्ताणुबन्धीवस्तुपञ्चका मङ्ग मिच्छात्वके समान है अर्थात् इनका
 अवलम्ब्य पद नहीं होता । सम्बन्ध और सम्मामिच्छात्व प्रवृत्तिका अस्पष्टत्व नहीं है, बल्कि
 यहाँ इनका एक ही पद पाया जाता है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्मात्रणमें जानना चाहिए ।

६ ५६६. मणुस्सेसु छ्वीसंपयडीणं णेण्डयभंगो । सम्म०-सम्पामिन्द्धत्ताणं सव्वत्थोवा अणतगुणहाणिविहत्तिया जीवा । अवत्त०विहत्ति० सखे०गुणा । अवट्टि० विहत्ति० असखे०गुणा । एवं [मणुस] पज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि सव्वत्थ संखेज्जगुणं कायव्व । आणटाट्टि जाव णवगेवेज्जा त्ति त्तावीसपयडीणं सव्वत्थोवा अणंतगुण-हाणिविहत्ति० जीवा । अवट्टि०विहत्ति० असखेज्जगुणा । सम्म०-सम्पामिन्द्ध०-अण-ताणु०उच्चक० देवोघ । आणटाट्टिसु अणताणु०वंधीण च्चवट्टि-द्धहाणिमभवो उच्चारणाहि-प्पाएण लिहिदो, विसंजोएदूण सजुत्तम्मि तदुवत्तभादो । मूलवस्खाणाट्टिप्पाएण पुण अणतगुणहाणि-अवट्टिट-अवत्तव्वाणि च्च । एव जाणिय वत्तव्व । अणुदिसाट्टि जाव अवराइदो त्ति सत्तावीसपयडीण सव्वत्थोवा अणतगुणहाणिविहत्तिया जीवा । अवट्टिट-विहत्ति० असखे०गुणा । सम्पामि० णत्थि अप्पावहुअ । एवं सव्वट्टे । णवरि संखेज्ज-गुणं कायव्व । एवं जाणिदूण णेदव्व जाव अणाहारि त्ति ।

एवं णीदे वट्टि त्ति अनियोगद्वार समत्तं होट्टि ।

ट्टाणपरूवणा ।

❀ संतकम्मट्टाणाणि तिविहाणि—वधसमुत्पत्तियाणि हदसमुत्पत्तियाणि हदहदसमुत्पत्तियाणि ।

७ ५६९ सामान्य मनुष्योंम छ्वीस प्रकृतियाका नारकियोंक ममान भद्र है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवत्तन्व्य-विभक्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याय और मनुष्यिनियाम जानना चाहिए । इतना विशेष है कि सर्वत्र सख्यात-गुणा कर लेना चाहिये । आनतसे लेकर नवप्रैवयक तकके देवोंमें वाईस प्रकृतियोंकी अनन्त गुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुवन्धीचतुष्काका भद्र सामान्य देवोंकी तरह है । आनत आदिमें अनन्तानुवन्धी कपायकी छह वृद्धि और छह हानियोंका होना उच्चारणाके अभिप्रायसे लिखा है, क्योंकि अनन्तानुवन्धीकपायका विसयोजन करके पुन उसका सयोजन करने पर छह वृद्धियाँ और छह हानियाँ पाई जाती हैं । किन्तु मूल व्याख्यानके अभिप्रायसे आनत आदिमें अनन्तानुवन्धी कपायके अनन्तगुणहानि, अवस्थित और अवत्तन्व्य पद ही होते हैं । इस प्रकार जानकर उनका कथन करना चाहिये । अनुदिशसे लेकर अपराजितविमान तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी अनन्तगुणहानि विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका अल्पवहुत्व नहीं है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए । इतना विशेष है कि असख्यातगुणोंके स्थानमें सख्यातगुणा कर लेना चाहिये । इस प्रकार जानकर आनाहारी पर्यन्त लेजाना चाहिये ।

इस प्रकार वृद्धि अनियोगद्वार समाप्त हुआ ।

स्थानप्ररूपणा ।

* सत्कर्मस्थान तीन प्रकारके हैं—बन्धसमुत्पत्तिक, हतसमुत्पत्तिक और हतहत-समुत्पत्तिक ।

§ ५७० अन्धात्समुत्पत्तिर्येषां तानि अथसमुत्पत्तिकानि । इते समुत्पत्तिर्येषां तानि इतसमुत्पत्तिकानि । इतस्य इतिः इतइति, तत् समुत्पत्तिर्येषां तानि इतइतिसमुत्पत्तिकानि । 'एष अथ समाप्ता' ति इकारस्त अकारो । एवं तिणिण चैव अणुभागद्वाणानि सौदि, संग्रहणयाबलबन्दादौ । संपदि सण्णादिचन्वीसअणियोगहारस्तु परुषिय समघेसु अणुभागस्त किं बट्टी हाणी अथद्वानं वा अत्यिणस्य ति पुच्छिद्रे तणिणणयविहाणद्व ह्रमगारपरुषणा कदा । बहुमाणो अणुभागा महण्येण उद्धस्तेण वा कसिओ बहुदि, हापमाणो वि महण्येण उद्धस्तेण वा केसिओ हायदि ति पुच्छिद्रे तणिणणयविहाणद्व पणिकस्तेवपरुषणा कदा । अणुभागस्त वट्टि-हाणीओ महण्यया उद्धस्मिया चेदि किं च अथ माहो अण्णाओ अत्यि ति पुच्छिद्रे बहुभा अम्पिहामा हाणीओ वि तधि यामो अथ ति भाणावणद्व बहुपरुषणा वि कदा । संपदि द्वाणपरुषणा ण कायम्मा, अणुभयमेयामावादो । ण च पुब्बं परुषिदस्सेव परुषणा सुधा भाणाविद्वानावणे फलामावादो ति ? एत्य परिहारो उच्यते । ण द्वाणपरुषणा विहला, बहुपरुषणाए परुषिदद्वद्वाणानं विसेसपरुषणयादो । बट्टीओ अथेव, अणंठासंस्तेजसंस्वज्जभाग बहु-संस्तेज्जासंस्तेज्जावतणुबट्टिमएण । तामो च बहुपरुषणाए तेरसअणियोगहारसि सवित्परं परुषिदाओ । तदा पमेयामावादो ण द्वाणपरुषणा कायम्मा ति ण पथवद्वेयं,

§ ५७० मिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति बन्धन होती है उन्हें अणुसमुत्पत्तिक कहते हैं । पाठ किये जानेपर मिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति हाती है उन्हें इतसमुत्पत्तिक कहते हैं । पाठे इतका पुनः पाठ किये जानेपर मिन सत्कर्मस्थानोंकी उत्पत्ति हाती है उन्हें इतइतसमुत्पत्तिक कहते हैं । 'ए ए अथ समाप्ता' इस नियमके अनुसार इकारके स्थानमें अकार आयेरा जानेसे इत रूप बनता है । इस प्रकार संग्रहणया अक्षलम्बन करनेसे अणुभागस्थान तीन प्रकारके ही होते हैं ।

संज्ञा—संज्ञा चादि शोबीस अणुभागधारकोंका प्ररूपक समाप्त होने पर, अणुभागकी क्या वृद्धि, इति और अथस्थान हाणा है या नहीं हाता ? ऐसा प्रश्न किये जाने पर उसका निर्णय करनेके लिये मुजगार प्ररूपका की । अणुभाग यदि बहुता है वा अल्प्य और अल्प रूपसे कितना बहुता है ? यदि घटता है वा अल्प्य और अल्प रूपसे कितना घटता है ? ऐसा पूछने पर उसका निर्णय करनेके लिये पणिकेपका कथन किया । अणुभागकी वृद्धि और इति क्या अल्प्य और अल्पके मेरसे वा ही प्रकारकी हाती है या अल्प्य प्रकारकी भी होती है ? ऐसा पूछने पर वृद्धि अथ प्रकारकी होती है और इति भी अथ ही प्रकारकी हाती है यह बटलानेके लिये वृद्धिका कथन किया । अथ अथ सत्कर्मस्थानाका कथन नहीं करता अथिय क्योंकि कथन करनेके लिये अपूर्ण प्रमेयका अभाव है । और पदस कही हुई पाठका पुनः कथन करना पुनः नहीं है, क्योंकि जामी हुई बस्तुकी पुनः जानकारी करानेसे कोई लाभ नहीं है ।

समाधान—इस शंकाका समाधान करते हैं—स्थानका कथन करना निष्फल नहीं है, क्योंकि वृद्धिका कथन करते समय मिन अथ स्थानोंका कथन किया है वतमें इसके द्वारा विशेष कथन किया गया है । अनन्तभागवृद्धि असंख्यावभागवृद्धि, संख्यावभागवृद्धि, संख्यावगुणवृद्धि असंख्यावगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिके मेरसे वृद्धिको अथ ही है । वृद्धि प्ररूपस्थाने तेरह अणुभागधारकोंके द्वारा वन वृद्धियोंका विस्तारसे कथन किया है । अतः नह वस्तु म होनेसे स्थानका

पादेकमसंखेज्जभेयभिण्णञ्जण्हं वट्ठीणं विसेसपरूवणादुवारेण ट्ठाणपरूवणाए अपुव्व-
पमेयोवलंभादो । तासिं वट्ठीण संगंतब्भूदविसेसपरूवणद्वमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ सव्वत्थोवाणि बंधसमुत्पत्तियाणि ।

§ ५७१. एत्थ अणुभागट्ठाणाणि त्ति पुव्वसुत्तादो अणुवट्ठे, अण्णहा सुत्त-
त्थाणुववत्तीदो । सव्वत्थोवाणि बंधसमुत्पत्तियट्ठाणाणि त्ति एदेण सुत्तेण उवरि भणिस्स-
माणघादट्ठाणेहिंतो बंधट्ठाणाण थोवत्त चेव जेण परूविदं तेण णाणुभागट्ठाणाणि-
ओगहारं छएण वट्ठीणं विसेसपरूवयमिदि ? ण, देसामासियभावेण परूविदतव्विसे-
सादो । संपहि एदेण सुत्तेण सुइदत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—सुहुमणिगोदस्स
सव्वजहएणाणुभागसतट्ठाण सव्वाणुभागट्ठाणाणं पढमं होदि; एदम्हादो हेट्ठा अण्णेसिं
मिच्छत्ताणुभागसंतकम्मट्ठाणाणमभावादो । एत्थेव जहएणं होदि त्ति कुदो णव्वदे ?

कथन नहीं करना चाहिये ऐसी शका नहीं करना चाहिये, क्योंकि छह वृद्धियोंके असख्यात भेद हैं, उनमेंसे प्रत्येकका विशेष कथन होनेसे स्थान प्ररूपणमें अपूर्व विषयका कथन पाया जाता है ।

विशेषार्थ—सत्कर्मस्थान तीन प्रकारके होते हैं । कर्मका बन्ध होनेपर जिस कर्मस्थानकी प्राप्ति होती है उसे बन्धसमुत्पत्तिक सत्कर्मस्थान कहते हैं अर्थात् बन्धसे उत्पन्न होनेवाला सत्कर्म-
स्थान । उस कर्मस्थानके अनुभागका घात किये जानेपर जो सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है उसे हतसमुत्पत्तिक कर्मस्थान कहते हैं । तथा उस घातसे उत्पन्न सत्कर्मस्थानके अनुभागका पुन
घात करने पर जो सत्कर्मस्थान होता है उसे हतहतसमुत्पत्तिक कर्मस्थान कहते हैं । ऊपर शका की गई है कि इन सत्कर्मस्थानोंका कथन तो प्रकारान्तरसे पहले कर ही आये हैं पुन उनके कहनेकी क्या आवश्यकता है तो उसका समाधान किया गया है कि पहले वृद्धि विभक्ति में छह वृद्धियों की अपेक्षासे ही कथन किया है, किन्तु यहाँ उन वृद्धियोंके असख्यात अनन्तर भेदों मेंसे प्रत्येक भेदकी अपेक्षा वृद्धिका कथन किया गया है यही इस कथनमें विशेषता है ।

उन वृद्धियोंके अन्तर्भूत विशेषोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सबसे थोड़े हैं ।

§ ५७१ इस सूत्रमें पूर्वसूत्रसे अनुभागस्थान शब्दकी अनुवृत्ति आती है, उसके बिना सूत्रका अर्थ नहीं हो सकता है ।

शंका—सबसे थोड़े बन्धसमुत्पत्तिक स्थान हैं इस सूत्रके द्वारा आगे कहे गये हतसमु-
त्पत्तिक स्थानोंसे बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंको थोडा बतलाया है, अत यह अनुभागस्थान नामक अनुयोगद्वार छह वृद्धियोंके विशेषका प्ररूपक नहीं है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि देशामर्षकरूपसे इसके द्वारा वृद्धियोंके विशेषका कथन किया गया है ।

अब इस सूत्रसे सूचित अर्थका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है—सूक्ष्म निगोदिया जीवका सबसे जघन्य अनुभागसत्त्वस्थान सब अनुभागस्थानोंमें प्रथम है, क्योंकि उससे नीचे मिथ्यात्वके अन्य अनुभागसत्त्वस्थानोंका अभाव है ।

शंका—सूक्ष्म निगोदिया जीवके ही सबसे जघन्य अनुभागसत्त्वस्थान होता है यह किस प्रमाणसे जाना ?

विष्णुस्तस्य अहण्णाण्युभागसंस्कर्मं कस्त ? सुहुमस्त इदसमुपचितियकम्मियस्ते सि सामिसुत्तादो । अदि पदं अहण्णाणुभागहाण सुहुमिगिगोदेण इत्तसमुपचितियकम्मेशुप्याइदं वा गेदं बंधसमुपचितियहाणं, चादेशुप्याइदस्स बंधदो समुपचितिराहस्सो सि ? ण बंध समुपचितियहाणमेव सि उचयारण इदसमुपचितियहाणस्स पि बंधसमुपचितियहाणत्त पटि विरोहाभावादा । कयमेदस्स बंधसमुपचितियहाणसमाणत्त ? ण, अह कच्चकाणं निष्ठा संसु अणुपपणत्तणेण बंधसमुपचितियहाणाणुभागानिभागपटिच्छद्वहि सरिसाभिभाग- पटिच्छेदत्तणेण च बंधसमुपचितियहाणसमाणत्तुनलमादा । पदं च अहण्णाणुभागहाण- महंकावद्विदं । किमह कं णाम ? अणत्तणुणवद्वी । कयमेदिस्ते अह कसण्णा ? अहण्णं यंकाणमर्णत्तणुणवद्वी सि इवणादो । अहण्णाणुभागहाणमणत्तणुणवद्वीप अवद्विदिमिदि कुदो णत्तव ? अणत्तमागवद्विकद्वय गंतूण असंस्सेज्जभागम्भरियद्वानं होदि । असंस्सेज्ज- मागवद्विकद्वयं गंतूण संस्सेज्जभागम्भरियद्वानं होदि । संस्सेज्जमागवद्विकद्वयं गंतूण संस्से०

समाधान—विष्णुत्वका अपन्य अनुभागसंस्कर्म किसके हाता है ? इतस्सुत्तियक कम्मत्ते सुक्म निगाहिया जीवके हाता है इस स्वामित्वका बतलानेवाले सूत्रसे जाना ।

शंका—परि यह अपन्य अनुभागस्थान निगाहिया जीवके हाता कम्का घात करके उत्पन्न किया गया है वा यह बन्धसमुत्पत्तिक स्थान नहीं हुआ क्योंकि ओ अनुभागस्थान घातसे उत्पन्न किया गया है उसकी बन्धसे उत्पत्ति होनेमें विरोध आता है । आशय यह है कि बन्धसमुत्पत्तिक स्वाम्येकी यह चर्चा है और सबसे अपन्य बन्धसमुत्पत्तिक स्थान इतसमुत्पत्तिक कर्मत्तसे निगाहिया जीवके बतलाया है, अतः यह इतसमुत्पत्तिकस्थान हुआ बन्धसमुत्पत्तिक स्थान नहीं हुआ ।

समाधान—नहीं क्योंकि यह बन्धसमुत्पत्तिक स्थान ही है । कारण कि उपचारसे इतस्सुत्तियक स्थानके भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—यह इतसमुत्पत्तिक स्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान कैसे है ?

समाधान—नहीं क्योंकि प्रथम ता यह स्थान अष्टांक और अर्धके बीचमें इत्तन्न नहीं हुआ है । दूसरे इसके अधिमागी प्रतिच्छेद बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके अनुभागके अधिमागी प्रतिच्छेदके समान है अतः यह स्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान पाया जाता है । यह अपन्य अनुभागस्थान अष्टांकरूपसे अवस्थित है ।

शंका—अष्टांक किसे कहते हैं ?

समाधान—अनन्तगुणवृद्धिका ।

शंका—अनन्तगुणवृद्धिकी अष्टांक संज्ञा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अल्लके अंककी अनन्तगुणवृद्धिरूपसे स्थापना की गई है ।

शंका—अपन्य अनुभागस्थान अनन्तगुणवृद्धिरूपसे अवस्थित है यह कैसे जाना ?

समाधान—काण्डक प्रमाद्य अनन्तगुणवृद्धिके होनेपर अर्धस्वातभागवृद्धिस्थान होता है । काण्डक प्रमाद्य अर्धस्वातभागवृद्धिके होनेपर संस्वातभागवृद्धिस्थान होता है । काण्डक

गुणव्बहियद्वाणं होदि । संखेज्जगुणवड्ढिकंडय गंतूण असंखेज्जगुणव्बहियद्वाणं होदि । असंखे०गुणवड्ढिकंडयं गतूण अणतगुणव्बहियद्वाणं होदि त्ति वेयणाण ऋंडयपरुवणा-सुत्तादो णव्वदे । ण च जहण्णद्वाणे अणट्टंके सते तदुवरि संपुण्णकडयमेत्ताण पचएहं वड्ढीणमेगअणतगुणवड्ढीए च सभवो अत्थि, विरोद्दादो । कि कटयं णाम ? मृचिअगु-लस्स असखे०भागो । तस्स को पडिभागो ? तापाओग्गअसखे०स्वाणि ।

§ ५७२. एसा च कडयआयामसखा छमु वि वड्ढीसु सरिसा त्ति दट्टच्चा । कुदो ? सुत्ताविरुद्धाइरियवयणादो । एट जहण्णाणुभागद्वाणं सतकम्मद्वाणं वधद्वाण-समाणमिदि कुदो एव्वदे ? अणुभागसकमजहण्णपटणिम्बेवमुत्तादो । तं जहा—

प्रमाण सख्यातभागवृद्धिके होनेपर सख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है । काण्डक प्रमाण सख्यातगुण-वृद्धिके होनेपर असख्यातगुणवृद्धि स्थान हाता है । काण्डकप्रमाण असख्यातगुणवृद्धिके होनेपर अनन्तगुणवृद्धि स्थान होता है । काण्डकका कथन करनेवाले वदनागण्टके इस सूत्रसे जाना । यदि जघन्य अनुभागस्थान अष्टाक प्रमाण न हाता तो उसके ऊपर सम्पूर्ण काण्डकप्रमाण पाचों वृद्धिया और एक अनन्तगुणवृद्धि सभव नहीं हाती, क्याकि ऐसा होनेमे धिराध है ।

शंका—काण्डक किसे कहते हैं ?

समाधान—सूच्यगुलके असख्यातवे भागको काण्डक कहते हैं ।

शंका—उसका प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—उसके योग्य असख्यात उसका प्रतिभाग है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्म निगोदिया जीवका जो सबसे जघन्य अनुभाग स्थान होता है वह सब अनुभागस्थानोंमे प्रथम अनुभाग स्थान है उससे जघन्य कोई दूसरा अनुभागस्थान, नहीं होता । मगर वह अनुभागस्थान घातसे उत्पन्न होता है और यहाँ कथन बन्ध समुत्पत्तिक स्थानोका है तो उसका यहाँ ग्रहण नहीं होना चाहिये था । किन्तु घातसे उत्पन्न होने पर भी सूक्ष्म निगोदियाका जघन्य अनुभागस्थान बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके समान ही है । और इसके दो कारण हैं—एक तो यह स्थान अष्टाक और उर्वकके बीचमें उत्पन्न नहीं हाता, दूसरे इसके अविभागी प्रतिच्छेद बन्धसमुत्पत्तिक स्थानके अविभागी प्रतिच्छेदोंके बराबर ही होते हैं । इन दोनों कारणोंका विवेचन क्रमसे किया जाता है—(१) यह जघन्य अनुभाग स्थान अष्टाक रूप है, इसलिये इसकी उत्पत्ति अष्टाक और उर्वकके बीचमें नहीं हाती । तथा इसके ऊपर सम्पूर्ण काण्डकप्रमाण पाँचों वृद्धियाँ और एक अनन्तगुणवृद्धि हाती है इसलिये यह अष्टाक रूप है, क्योंकि अष्टाकके ऊपर ही इतनी वृद्धियाँ हो सकती हैं और जो स्थान अष्टाक और उर्वकके बीचमें उत्पन्न होता है उसपर केवल अनन्तगुणवृद्धि हा हाती है, शेष वृद्धियाँ नहीं हाती ।

§ ५७२ सूत्रसे अविरोद्ध आचार्यवचनोंसे काण्डकका यह प्रमाण छहों वृद्धियोंमें समान जानना चाहिये ।

शंका—यह जघन्य अनुभाग सत्कर्मस्थान बन्धस्थानके समान है यह कैसे जाना ?

समाधान—अनुभाग सक्रम अनुयोगद्वारमें जघन्यपदनिक्षेपका कथन करनेवाले सूत्रसे

सुषुप्तमणिगादनहण्णद्वाणस्सुवरि अणुभागावहतीयै बहिर्दृग्ण षडिय पुणा बंधावस्थिया-
दीदग्धि तग्धि संकामिदे नहण्णिया बहि ति । ण च महण्णद्वाणे संसकम्मद्वाणे संते
अणंतगुणवहिं मोत्तूण अण्णा षट्ठी सभभवदि, अह कुन्वकायं विद्यात्तं समुप्पण्णस्स
सेसनट्ठीणं सभभविराहादो । ण च वंषेण विणा उक्कट्टणाए अणुभागाद्वाणस्स षट्ठी
अत्थि, सरिसधणियपरमाणुधुट्ठीए अणुभागाद्वाणस्स सुट्ठीए अभावादो । उक्कट्टिदे संते
पुम्भिद्वमधिभागपटिच्छदसंस्वादो संपहियमनिभागपटिच्छदसंस्वाए षट्ठी किमत्थि माहो
वत्थि ? अदि अत्थि, अणुभागाद्वाणधुट्ठीए हादम्भं आगद्वाणार्णं व । ण च अविभाग-
पटिच्छदसमूह मोत्तूण अण्णमणुभागाद्वाणमत्थि, अणुबलभादो । अह अत्थि, वंषेण
फरयधुट्ठीए सतीए वि अणुभागाद्वाणधुट्ठीए ण होदम्भं । तत्थि वि उक्कट्टणाए इव अविभाग-
पटिच्छेदवहिं मात्तूण अण्णधुट्ठीए अणुबलभादो । वंषे पदसायं सुट्ठी अत्थि चि पाणु
यागधुट्ठी तस्य बोत्तुं सक्किस्सह, अणुभागापदेसाणमगत्ताभावादो । ण च अण्णस्स बहुत्तेण
अण्णस्स सुट्ठी होदि, विरोहादो । वंषे फरयधुट्ठी अत्थि चि ण द्वाणधुट्ठी वात्तु सक्किस्सह,
अधिभागपटिच्छदवदिरिचफरयाणमणुबलभादो । तम्हा वंषेण उक्कट्टणाए वि अणु-
भागाद्वाणधुट्ठीए हादम्भमिदि ? एत्थ परिहारो सुचदे । तं जहा—ण ताव पढमपक्खुत्त-

वान्त । यह इस प्रकार है—सूक्ष्म निगादिया जीवके जघन्य स्थानके ऊपर अनन्तमाग-
वृद्धि का स्त्रिप हुए बंध करने पर पुनः उसका कन्पावलीसे बाह्य निपटमें कन्पावलीको विटाकर
संक्षमण करके पर जघन्य वृद्धि होती है । यदि सूक्ष्म जीवका जघन्य अनुभागस्वान्त बन्धस्थानके
समान म हाकर, सत्कर्मस्वान्त रूप हावा ता वसमें अनन्तगुणवृद्धिका जाकर दूसरी वृद्धि नहीं
होती क्योंकि मा स्वान्त अष्टांक और अर्धके बीचमें उत्पन्न हुआ है उसमें शेष वृद्धियोंके
हानमें विराय आता है । तथा बन्धके बिना उत्कर्षणके द्वारा अनुभागस्वान्तकी वृद्धि होती है, यह
क्या भी ठीक नहीं है क्योंकि समान बन्धवाले परमाणुओंकी वृद्धि होने पर अनुभागस्वान्तकी
वृद्धिका अभाव है ।

धुंका—उत्कर्षण होने पर पहलेके अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्यासे वर्तमान अविभागी
प्रतिच्छेदोंकी संख्याम वृद्धि होती है या नहीं ? यदि हो ी है ता वागस्वान्तकी तरह अनुभाग-
स्वान्तकी वृद्धि भी हानी चाहिये । और अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहका जाकर अनुभागस्वान्त
काई अन्य वस्तु नहीं है, क्योंकि ऐसा पावा नहीं जाता है । यदि उत्कर्षणके होने पर पहलेके
अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्यासे वर्तमान अविभागी प्रतिच्छेदोंकी संख्यामें वृद्धि नहीं होती है
ता बन्धके द्वारा स्पर्शोंकी वृद्धिके होने पर भी अनुभागस्वान्तकी वृद्धि नहीं हानी चाहिये, क्योंकि
उत्कर्षणकी तरह वसमें भी अविभागी प्रतिच्छेदोंकी वृद्धिके जाकर अन्य वृद्धि नहीं पाई जाती
है । बंधके होने पर प्रवेशोंकी वृद्धि होती है इसलिये अनुभागकी भी वृद्धि होती है ऐसा नहीं कह
सकते हैं, क्योंकि अनुभाग और प्रवेश एक नहीं हैं । और अन्यकी वृद्धि होने पर अन्यकी वृद्धि
होती नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विराय आता है । तथा बन्धके होने पर स्पर्शोंकी वृद्धि
होती है इसलिये स्वान्तकी भी वृद्धि होती है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अविभागी
प्रतिच्छेदोंसे अधिरिक्त स्पर्श नहीं पाये जाते हैं । अतः बंधकी तरह उत्कर्षणके द्वारा भी
अनुभागस्वान्तकी वृद्धि हानी चाहिये ।

दोसो संभवइ, उक्कट्टिदे अणुभागट्टाणाविभागपटिच्छेदाणं वुड्डीए अभावादो । अणु-
भागट्टाण णाम चरिमफहयचरिमवग्गणाए एगपरमाणुमिह्दिट्टअणुभागट्टाणाविभाग-
पटिच्छेदकलावो । ण सो उक्कट्टणाए वड्ढिदि, वधेण विणा तदुक्कट्टणाणुववत्तीदो । ण
च वधेण जादवड्ढी उक्कट्टणावड्ढि ति वुच्चदि, वधे उक्कट्टणाए पणत्ताभावादो । ण च
हेट्टिमपरमाणुणमणुभागे अणुभागट्टाणे उक्कट्टणाए वड्ढिदे अणुभागट्टाणस्स वुड्ढी होदि,
अणुणवुड्ढीए अणुणस्स वुड्ढिविराहादो । ण च उक्कट्टणाए इव वधेण वि अणुभागट्टाण-
वुड्ढीए अभावो, पुण्विल्लअणुभागट्टाणसण्णिदअणुभागाविभागपटिच्छेदकलावादो संप-
हियअणुभागट्टाणसण्णिदअणुभागाविभागपटिच्छेदकलावस्स अणतभागादिसरूवेण
वड्ढिदंसणादो । चरिमफहयचरिमवग्गणाए एगपरमाणुमिह्दिट्टअणुभागस्स ट्टाणत्ते
इच्छिज्जमाणे एगाणुभागट्टाणम्मि अणताणि फहयाणि ति सुत्तेण सह विरोहो होदि ति
णासंकणिज्ज, जहण्णट्टाणस्स जहण्णफहयप्पहुडि उवरिमासेसफहयाण तत्थुवलंभादो ।
ण च हेट्टिमाणुभागट्टाणाण तत्थाभावो, तेहि विणा पयटाणुभागट्टाणस्स वि अभाव-
प्पसगेण तेसि तत्थ अत्थित्तिसिद्धीदो । एगपरमाणुम्मि अवट्टिदगुणस्स अणुभागट्टाणत्ते

समाधान—अब इस शकाका समाधान करते हैं जो इस प्रकार है—प्रथम पक्षमें दिया गया दोष तो संभव नहीं है, क्योंकि उत्कर्षणके होने पर अनुभागस्थानके अविभागी प्रतिच्छेदोकी वृद्धि नहीं होती है। अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणके एक परमाणुमें स्थित अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको अनुभागस्थान कहते हैं। अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोका समूहरूप वह अनुभागस्थान उत्कर्षणसे नहीं बढ़ता है, क्योंकि वधके विना उसका उत्कर्षण नहीं बन सकता है। यदि कहा जाय कि वधके द्वारा होनेवाली वृद्धिको उत्कर्षण वृद्धि कहते हैं सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि वधमें उत्कर्षणका प्राधान्य नहीं है। यदि कहा जाय कि नीचेके परमाणुओंके अनुभागमें जो कि अनुभागस्थान नहीं है, उत्कर्षणके द्वारा बढ़ने पर अनुभागस्थानकी वृद्धि हो जायगी सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अन्यकी वृद्धि होने पर अन्यकी वृद्धिका विरोध है। शायद कहा जाय कि जैसे उत्कर्षणके द्वारा अनुभागस्थानकी वृद्धि नहीं होती है वैसे ही वन्धके द्वारा भी नहीं होती, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पहलेके अनुभागस्थान सहावाले अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहसे साम्प्रतिक अनुभागस्थान सहावाले अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहकी अनन्तभाग आदि रूपसे वृद्धि देखी जाती है।

शका—अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणके एक परमाणुमें स्थित अनुभागको अनुभागस्थान मानने पर एक अनुभागस्थानमें अनन्त स्पर्धक होते हैं इस सूत्रके साथ विरोध आता है ?

समाधान—ऐसी आशका नहीं करना चाहिये, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानके जघन्य स्पर्धकसे लेकर ऊपरके सब स्पर्धक उसमें पाये जाते हैं। शायद कहा जाय कि नीचेके अनुभागस्थानोंका उसमें अभाव है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसके विना प्रवृत्त अनुभागस्थानके भी अभावका प्रसंग उपस्थित होता है, अतः उसमें नीचेके अनुभागस्थानोंका अस्तित्व है यह सिद्ध होता है।

शंका—यदि एक परमाणुमें स्थित अनुभागके अविभागी प्रतिच्छेदोंके समूहको अनुभाग-

इच्छिन्नाभागे एगाणुभागद्वायसस बहण्णावगणप्यदुष्टि जायुक्त्सद्वायुक्त्सवगणो सि
 रूपवद्वीप अरुद्धिदपदेसपरम्पराय मभाबो होदि, एगपरमाणुमि चकत्साणुभागधारमि
 सेसार्णतपरमाणुमभाबादो । तेज जेदं पददि ति ? न, नत्य एसो चकत्साणुभाग
 द्वायपरमाणु अस्त्य तत्य किमेसो एको वेव होदि आहो अण्णे' वि अत्यि चि पुच्छिदं
 एको वेव न होदि अण्णंतेहि तत्य कम्ममल्लंघेहि होदव्वं तेसि च अबद्वाणकसो एसो चि
 चाणावपद्द तपरम्पराकारणादो । अहा जोगद्वाणे सम्बजीनपदसाणं सम्बजोगाविभाग-
 पदिच्छदे मत्तूण द्वायपरम्परा कदा तहा एत्य किण्ण कीरद ? न, तया कीरमाणे अच
 दिदिमल्लणाए परपयदिसंक्रमेण अणुभागकंडयधरिमफासि मात्तूण दुधरिमादिकामीसु
 च अणुभागद्वायसस पादप्यसंगादो । न च एव, कंडयपादं योत्तूण मण्णस्य तग्घादा-
 मात्तादो । म्हा एत्य जोगद्वाणो व्व पञ्चवद्वियणयो नावसंभयम्भो । किमद्दमस्य
 द्वायद्वियणयो च अच संभयिच्चयि ? द्विदीप इव पदसगत्तायाए अणुभागपादो पत्यि चि
 चाणावपद्द । अदि पिच्छतस्त बहण्णाणुभागपद्दवाणमिच्छिच्छदि वो संजमाहि

स्थान मान्य जाता है या एक अनुभागस्थानमें अपन्य वर्ग्यासे संकर उत्कृष्ट स्थानकी उत्कृष्ट
 कार्यो पर्यन्त क्रमसं बहुत रूप प्रदर्शकों रहसका जा कथन किया जाता है इसका अभाव प्राप्त
 होता है, क्योंकि उत्कृष्ट अनुभागके आधारभूत एक परमाणुमें शाय अनन्त परमाणुका अभाव
 है । अतः अनुभागस्थानका एक संकल्प घटित नहीं होता है ।

समाधान—येसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ यह उत्कृष्ट अनुभागस्थानबाला
 परमाणु है वहाँ क्या यह एक ही परमाणु है या अन्य भी परमाणु हैं येसा पूछ जानेपर कहा
 जायगा कि कहा वर एक ही परमाणु नहीं है किन्तु वहाँ अनन्त कमत्कम्भ होने चाहिए और इन
 कर्मत्कम्भोंके अस्त्यस्थानका यह क्रम है यह बतलानके लिये अनुभागस्थानकी एक प्रकारस
 प्रकल्पना की है ।

शंका—जैस यागस्थानमें जीवके सब प्रदर्शकों सब भागोंके अविभागी अतिच्छदोंका
 संकर स्थान प्रकल्पना की है वैसे कथन यहाँ क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं क्योंकि वैसेकथन करवेपर अप्पत्त्यतिगलनाके द्वारा औरअन्य प्रकृति
 रूप संक्रमणके द्वारा अनुभागाणुवकधी अन्ततम फासिका साइकर त्रिचरम आदि फालियोंमें
 अनुभागस्थानके घातका प्रसंग आता है । किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि काण्डकपातका साइकर
 अन्यत्र अस्त्य घात नहीं होता । अतः वहाँ यागस्थानकी तरह पयायधिकनयका अवसम्भन नहीं
 सेय चाहिए ।

शंका—यहाँ पर द्रव्याधिक नयक ही अवसम्भन किसलिये लिया गया है ?

समाधान—प्रदर्शकोंके गलनेस जैसे स्थितिपाल हाता है वैसे प्रदर्शकोंक गलनेस अनुभागका
 घात नहीं होता यह बतलानके लिये वहाँ द्रव्याधिकनयकका अवसम्भन लिया गया है ।

शंका—यदि निष्वात्कका अपन्य अनुभागकम्प्यरधान इष्ट है या संयमक अभिमुख्य रूप

1 या नहीं अथवा चि इति चक्र ।
 ४३

सुहचरिमसमयमिच्छादिद्विस्स जहण्णवंधो किण्ण गहिदो ? ण, तत्थतणजहण्णबंधादो तत्थेवाणुभागसंतकम्मस्स अणंतगुणत्तुवलंभादो । जदि एवं तो संजमाहिमुहचरिमसमयमिच्छादिद्विस्स अणुभागसतकम्मं घेतत्त्वं, सुहुमेइंदियस्स सव्वुक्कस्सविसोहीदो अणंतगुणसण्णपंचिदियंसंजमाहिमुहमिच्छादिद्विचरिमसमयविसोहिए पत्तघादत्तादो त्ति ? ण, तस्स सुहुमेइंदियजहण्णाणुभागसंतकम्मादो अणंतगुणत्तुवलंभादो । तदरांतगुणत्तं कुदो णव्वे ? सव्वत्थोवो संजमाहिमुहसव्वविसुद्धचरिमसमयमिच्छादिद्विस्स जहण्णाणुभागवधो । असण्णपंचिदियस्स सव्वविसुद्धस्स जहण्णाणु०बंधो अणतगुणो । चउरिंदिय० जहण्णाणु०बंधो अणंतगुणो । तेइंदिय० जहण्णाणु०बंधो अणतगुणो । वेइंदिय० जहण्णाणु० अणंतगुणो । वादरेइंदिय० जहण्णाणु०बंधो अणंतगुणो । सुहुमेइंदियअपज्ज० सव्वविसुद्धस्स जहण्णाणुभागबंधो अणंतगुणो । तस्सेव हदसमुप्पाइदजहण्णाणुभागसंतकम्ममरांतगुण । वादरेइंदिएण हदसमुप्पाइदजहण्णाणुभागसतकम्ममणंतगुण । वेइंदिएण जहरणाणु०सतकम्ममरांतगुणं । तेइंदिएण जहण्णाणु०-

अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टिके अनुभागबन्धका जघन्य बन्धरूपसे ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहा होनेवाले जघन्य अनुभागबन्धसे वहाँ प्राप्त होनेवाला अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो सयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके अनुभागसत्कर्मका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवकी सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिसे सयमके अभिमुख हुए अन्तिम समयवर्ती सही पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवके जो विशुद्धि होती है वह अनन्तगुणी होती है और उस विशुद्धिद्वारा उस अनुभागका घात हुआ है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागसत्कर्मसे उसके अनन्तगुणा अनुभागसत्कर्म पाया जाता है ।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके जघन्य अनुभागसत्कर्मसे उसका जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—सयमके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध अन्तिम समयवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके जो जघन्य अनुभागबन्ध होता है वह सबसे थोड़ा है । उससे सर्वविशुद्ध असही पञ्चेन्द्रियके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । उससे चौइन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । उससे तेइन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । उससे वादर एकेन्द्रिय जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । उससे सर्वविशुद्ध सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवके होनेवाला जघन्य अनुभागबन्ध अनन्तगुणा है । उससे उसी जीवके घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है । उससे वादर एकेन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है । उससे दोइन्द्रिय जीवके द्वारा घातसे उत्पन्न किया गया जघन्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा है । उससे तेइन्द्रिय जीवके द्वारा

१, धा० प्रती घणतगुणासण्णपंचिदिय— इति पाठः । २, ता० प्रती तदप्यतगुणसं कत्ता यव्वे

। ति पाठः ।

संतकम्पमर्णत्वात् । चरिदिपण नहणाणु०संतकम्पमर्णत्वात् । असणिएपिचिदिपण
 नहणाणु०संतकम्पमणत्वात् । संभमाहिमुइसम्बविसुदचरिमसमयमिच्चाइडिणा इद
 सणुप्याइदनहणाणुभामसंतकम्पमणत्वात् ति मणिदमप्याबहुअसुतादो । होदु गाम अणु
 मागर्णभाजमर्णत्वात् न संतकम्पानं; अर्णत्वाणए विसोहीए पचपादाणमर्णत्वाणचभिरा
 इदो ति न पचवद्वेयं, नाविसंबंधेण अर्णत्वाणहीणविसोहीदो वि बहुमाणुमाग
 लंइयस्स रंसपादो, तन्ना सुहुमेइदिपण इदसणुप्याइदअणुभागसंतकम्पं केव नहयण
 विदि पत्तम् । सुहुमेइदिपण सम्बविसुदेण नहयणनोगेण इदसणुप्याइदअणुमागो
 नहयणा ति कियण बुद्धे ? न जोगविसेसणेण एत्व पञ्चोर्णनं, भोगादो अणुमाग
 वहीए ममावादो । सणुवस्सविसोहीए अणुभागसंतकम्पं इपंतस्स सम्बनहयणभागेण
 एवे कम्पकसंघे संगल्लतस्स भोकणुणाए बहुकम्पकसंघे जिञ्जरंतस्स भेण घोषा केव पर
 माखु होति तेण अणुभागसंतकम्पस्स वि नहयणत्त होदि ति जोगविसेसणं नियमेणेत्य
 कायम् ? न, परमाणुणं बहुत्तमप्यत्त वा अणुभागवद्विहाणीणं न कारणमिदि बहुसो

पातसे जपन्न किया गया जपन्न्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुण्या है । इससे चैत्रिय जीवके द्वारा
 पातसे जपन्न किया गया अनुभागसत्कर्म अनन्तगुण्या है । इससे अस्मिन् चैत्रिय जीवके द्वारा
 पातसे जपन्न किया गया जपन्न्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुण्या है । इससे संयमके अभियुक्त
 सर्वत्रिद्वय चरम समवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा पातसे जपन्न किया गया जपन्न्य अनुभाग-
 सत्कर्म अनन्तगुण्या है । इस प्रकार कहे गये अस्वबहुत्व सूत्रसे जाना जाता है कि सूत्रम एवेन्द्रिय
 जीवके जपन्न्य अनुभागसत्कर्मसे संयमके अभियुक्त हुए चरम समवर्ती मिथ्यादृष्टि जीवके
 जपन्न्य अनुभागसत्कर्म अनन्तगुण्या है ।

संज्ञा—अनुभागकर्म उत्तरात्तर अनन्तगुण्ये होवे किन्तु अनुभागसत्कर्म उत्तरात्तर
 अनन्तगुण्य नहीं हो सकते; क्योंकि अनन्तगुण्यी विद्युदिके द्वारा पातको प्राप्त हुए अनुभागके
 अनन्तगुण्य होनेमें विरोध है ।

समाधान—पेसी आमका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वातिविरोधके सम्बन्धसे अनन्त
 गुण्यी हीन विद्युदिके भी बहुतसे अनुभागका काण्डकपात देखा जाता है । इसलिये सूत्रम
 एवेन्द्रियके द्वारा पातसे जपन्न किया गया अनुभागसत्कर्म ही जपन्न्य है ऐसा मानना चाहिये ।

संज्ञा—जपन्न्य वाग्वले सर्वत्रिद्वयसूत्रम एवेन्द्रिय जीवके द्वारा पातसे जपन्न किया गया
 अनुभाग जपन्न्य है ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान—यहाँ पर वाग्विरोधसे प्रयोजन नहीं है क्योंकि योगके द्वारा अनुभागकी
 दृष्टि नहीं होती ।

संज्ञा—जो जीव सर्वत्रिद्वय विद्युदिके द्वारा अनुभागसत्कर्मका पात करता है, उसके
 जपन्न्य वाग्वके द्वारा बोड़े कर्म स्वप्नोंकी गलावा है और अपकल्पके द्वारा बहुतसे कर्मत्वान्नोंकी
 निर्जल करता है उसके पतः बोड़े ही परमाणु होते हैं अतः इसक अनुभागसत्कर्म भी जपन्न्य
 होता है, इसलिये यहाँ नियमसे योगका भी विरोध रूपसे मध्य करना चाहिये ।

समाधान—पेसा कबत ठीक नहीं है, क्योंकि परमाणुका वह बहुतपना वा अस्पपना

१ वा प्रती कर्बणुवविहीनो इति पाठः । २ वा प्रती नहयणभोगेयिवा इति पाठः ।

परुविदत्तादो । किं च, ण परमाणुवहुत्तमणुभागवहुत्तस्स कारणं, सम्मत्तसम्मा-
मिच्छत्तुक्कस्साणुभागसामित्तसुत्तएणहाणुववत्तीदो' । तं जहा—दंसणमोहक्खवणं मोत्तूण
सच्चमिह उक्कस्समिदि सामित्तसुत्तं णेदं घडदे, गुणिदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सम्मत्तं
पटिवएणस्स गुणसंकमचरिमसमए वट्टमाणस्स चैव सम्मत्तुक्कस्साणुभागदसणादो ।
सुत्ताहिप्पाएण पुण खविदकम्मंसियलक्खणेणागंतूण सम्मत्तं पटिवज्जिय वेच्चावट्ठि०
भमिय दंसणमोहक्खवणं पारभिय जाव अपुव्वकरणपढमाणुभागकंडयस्स चरिमफाली
ण पददि ताव सम्मत्तस्सुक्कस्समणुभागसतकम्ममिदि । ण च सुत्तमप्पमाणं, जिणवयण-
विणिग्गयस्स अप्पमाणत्तविरोडादो । तम्हा पदेसंवहुत्तमणुभागवहुत्तस्स कारणमिदि
सिद्ध । वेयणसणियाससुत्तणहाणुववत्तीदो च णज्जदे जहा' अणुभागवट्टीए
कसाओ चैव कारणं ण जोगो त्ति । तं जहा—जस्स णामा-गोद-वेदणीयवेदणा खेत्तदो
उक्कस्सा तस्स भावदो णियमा उक्कस्सा त्ति वेयणासुत्तं । रोदं घडदे, खविदकम्मंसिय-
सजोगिमि लोणपूरणाए वट्टमाणमिह उक्कस्साणुभागाभावादो । तदो ण जोगत्योवत्त-
मणुभागथोवत्तस्स कारणमिदि सहदेयव्वं । जदि वि कसाओ असुहपयडीणमणुभाग-

अनुभागकी वृद्धि और हानिका कारण नहीं है । अर्थात् यदि परमाणु बहुत हो तो अनुभाग भी बहुत हा और यदि परमाणु कम हों तो अनुभाग भी कम हो ऐसा नहीं है, यह अनेक बार कहा जा चुका है । तथा परमाणुओंका बहुत होना अनुभागके बहुत्वका कारण नहीं है, अन्यथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट अनुभागका कथन करनेवाला स्वामित्वका सूत्र नहीं बन सकता । उसका खुलासा इस प्रकार है—दर्शनमोहके क्षपकको छोड़कर सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्म पाया जाता है यह स्वामित्व सूत्र है परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि गुणितकर्माशिकलक्षणसे आकर सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके गुण सक्रमके अन्तिम समयमें वर्तमान रहते हुए ही सम्यक्त्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग देखा जाता है । किन्तु सूत्रके अभिप्रायसे क्षपितकर्माशिकलक्षणसे आकर सम्यक्त्वको प्राप्त करके दो छियासठ सागर तक भ्रमण करके दर्शनमोहके क्षपणको प्रारम्भ करके जब तक अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डकी अन्तिम फालिका पतन नहीं होता तब तक सम्यक्त्व प्रकृतिका उत्कृष्ट अनुभाग रहता है । शायद कहा जाय कि सूत्र अप्रमाण है किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जिन भगवानके मुखसे निकला हुआ वचन अप्रमाण नहीं हो सकता । अतः प्रदेश-बहुत्व अनुभागके बहुत्वका कारण नहीं है यह सिद्ध हुआ । तथा वेदनाम्बुष्टका सन्निकष सूत्र भी अन्यथा नहीं बन सकता अतः जाना जाता है कि अनुभागकी वृद्धिमें कषाय ही कारण है, योग नहीं । उसका खुलासा इस प्रकार है—जिस जीवके नाम, गोत्र और वेदनीयकी वेदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट है उसके भावकी अपेक्षा नियमसे उत्कृष्ट होती है । यह वेदना सूत्र है परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि लोकपूरण समुद्धातमें वर्तमान क्षपित कर्माशिक सयोग केवलीके उत्कृष्ट अनुभागका अभाव है । अतः योगका अल्पपना अनुभागके अल्पपनेका कारण नहीं है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

१ आ० प्रती —सामित्त सुत्तयणहाणुववत्तीदो इति पाठः ।

२ आ० प्रती तम्हा पगपदेस-

इति पाठः । ३ आ० प्रती च ण जुज्जदे जहा इति पाठः ।

बुद्धिपरिसोही नि सुहृत्स्माजुभागबुद्धिपरिणं तो वि ण ख्येणपूरणमहिद्वियसमोगि
 केवलिस्स उहृत्स्माजुभागसत्तकम्म संभवइ, धरिमसमयसुहुमसांपराइपण वद्धमयणीय-
 द्विदीपरारसमुहुत्तमेवाप पुम्बकोदिअवहाणामानादो ? ण, धिराणद्विदीपरसिदावयस्स
 असंसे०माममेवाप अषद्विदपरमाखुणं वरुम्माणाजुभागम्मि तिरिच्छेण उहृत्तिदाणं
 वसियमेतकास्सवहाअर्दसणादो ।

शुद्धि—यद्यपि क्वाय अणुम प्रकृतिया के अनुभागकी शुद्धिमें कारण है और विद्युदिरूप
 परियाम्म ह्यम प्रकृतियों के अनुभागकी शुद्धिमें कारण है ता भी साकपूरख समुद्घातमें बर्तमान
 सयोगकेकलीके उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका हाना संभव नहीं है बल्कि सूक्ष्मात्परायिक बीज
 अन्तिम समयमें बदनीय कर्मकी आ वारह सुहृत्प्रमाण स्थिति बौध्ता है, वह स्थिति एक
 पूर्वकादि काल तक नहीं उद्धर सकती ।

समाधान—नहीं क्यों कि पत्सोपमके असंख्यातबे मागप्रमाण पुरानी स्थितिमें जो
 परमाणु मौजूद हैं उनके बन्धमान अनुभागमें आकर तियक् रूपसे उत्कृष्टि हाने पर छाने
 काल तक अवस्थान बेका जाता है ।

विशेषार्थ—एक जीवमें एक समयमें कर्मका जो अनुभाग पाया जाता है उसे स्थान कहते
 हैं । वह स्थान वा प्रकारका है—अनुभागबन्धस्थान और अनुभागसत्कर्मस्थान । बन्धमे गा अनु-
 भागस्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें अनुभागबन्धस्थान वा बन्धसमुत्पत्तिक स्थान कहते हैं । यद्यपि
 स्थित अनुभागका पात करनेपर जो स्थान उत्पन्न होते हैं उनका अनुभाग यदि बंधनेवाले अनु-
 भागके बराबर ही होता है ता उन्हें भी बन्धसमुत्पत्तिक स्थान ही कहते हैं क्योंकि उनका अनुभाग
 बन्धमान अनुभागस्थानके बराबर है । किन्तु आ अनुभागस्थान पातसे ही उत्पन्न होते हैं, बंधसे
 नहीं तथा जिनका अनुभाग पाता जाकर बंधनेवाले अनुभागसे कम होता है अर्थात् अष्टांक
 और उचकके बीजमें तीबेके उर्बकसे अनन्तगुणा और ऊपरके अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन हाता है
 उन्हें अनुभागसत्कर्मस्थान कहते हैं । उर्बका दूसरा नाम इतसमुत्पत्तिक स्थान है । इतसमुत्पत्तिक
 स्थानके अनुभागका भी पातने पर मा स्थान उत्पन्न होते हैं उन्हें इतइतसमुत्पत्तिक स्थान कहते
 हैं । इन तीनों स्थानोंमें बन्धसमुत्पत्तिक स्थान सबसे बड़ा है । क्यों सबसे बड़े हैं यह
 बलमानके लिए ही आभोका कथन किया गया है । बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंमें सबसे अपन्य स्थान
 सूक्ष्म निर्गदियाका जीवका अनुभागस्थान है । यद्यपि यह स्थान पातसे उत्पन्न हाता है तथापि यह
 बन्धस्थानके समान है क्योंकि इसका ऊपर एक प्रक्षेपणिक बन्ध होनेपर अनुभागकी अपन्य बुद्धि
 होती है और अन्तर्मुहूर्तके द्वारा वसीका काण्डकपातके द्वारा पात किये जाने र अपन्य हानि
 होती है । यदि सूक्ष्म निर्गदियाका अपन्य अनुभा स्थान बन्धस्थानके समान न होता वा इतनी
 अपन्य बुद्धि और हानि नहीं होती क्योंकि बन्धके बिना पृष्टि नहीं होती । साथह कहा जाय कि
 अपन्य स्थानके ऊपर एक प्रक्षेपण बुद्धि दपो नहीं होती ता इसका समाधान इस प्रकार है कि पात
 मत्त्वस्थान बन्धसहारा अष्टांक और उर्बकके बीजमें तीबेके उर्बकसे अनन्तगुणा और ऊपरके
 अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन हाता है । इसके ऊपर यदि किशुद्र अपन्य पृष्टिका संकर भी बन्ध हा ता
 भी ऊपरके अष्टांकप्रमाण ही बन्ध हाता है अतः पात मत्त्वस्थानके ऊपर अनन्तगुणसहृदि ही होती
 है अन्तमपानुद्धि नहीं होती । तथा हानिमें भी अनन्तगुणहानि ही होती है अनन्तमागहानि नहीं
 होती । अतः सूक्ष्म निर्गदियाका अपन्य स्थान मत्त्वस्थान नहीं है किन्तु बन्धस्थान है, इमलिए

बिना भी अनुभागके पाठका प्रसंग उपस्थित होगा । अतः जैसे किन्हीं परमाणुओंकी स्थिति कम हो जाने पर भी उनके अनुभागके घट जानेका कोई नियम नहीं है वैसे ही प्रदेशोंका गसन हो जाने पर भी अनुभागस्थानका घात काण्डकपात हुए बिना नहीं होता यह बतलानेके लिये ही यहां द्रव्यार्थिकनयका अक्षयस्वन स्रष्टर अन्तिम स्पर्शकी अन्तिम वर्णिका एक परमाणुमें अनुभागस्थान कहा है । जैसे एक समयमें बांधे गये मिट्ट्यात्क कर्मकी किसी जीवके क-काशी-कोठी सागरकी स्थिति पकी । यह स्थिति एक समयमें बांधे गये सब परमाणुओंकी नहीं है किन्तु आ निपक सवस अन्तिम समयमें इदयमें आनेवाला है उसकी है, किन्तु द्रव्यार्थिकनयसे वह सभी निपकोंकी स्थिति कही जाती है, उसी प्रकार अन्तिम स्पर्शकी अन्तिम वर्णिका एक परमाणुमें सबसे अधिक अनुभाग पाया जाता है अतः उसे ही अनुभागस्थान कहा जाता है । इसीमें अन्य सब स्पर्शकी वर्णिकाओंके परमाणुओंका अनुभाग ग्रभित है । इस प्रकार सूक्ष्म निगाहिया हतसमुत्पत्तिक कर्मबाल जीवके मिट्ट्यात्क आ जपन्य अनुभागस्थान हाता है वह सबसे क्षण्य है । इसके सिवा अन्य आ अनुभागस्थान आगे बतलाये हैं व जपन्य नहीं हैं । मूलमें रांका की गई है कि सूक्ष्म निगाहिया जीवके जपन्य वागके द्वारा आ हतसमुत्पत्तिक अनुभाग हाता है वह जपन्य है ऐसा क्यों नहीं कहा वा इसका यह समाधान किया गया है कि वाग अनुभागकी हानि अथवा वृद्धिमें कारण नहीं हाता क्योंकि प्रकृतिक बदलावण्डमें कहा है कि सवागकक्षी और अयागकक्षीक बदनीय नाम और गोत्रकर्मक उत्कृष्ट अनुभाग ही हाता है । यदि वागकी वृद्धि अनुभागकी वृद्धिका कारण हाती वा यह नियम नहीं बन सकता तब वा कृष्ट और अनुकृष्ट वानों ही अनुभाग संभव हाते । तथा बदनागण्डक सभिकर्प विधानमें कहा है कि जिसके बदनीयकी बदना क्षेत्रकी अपेक्षा उत्कृष्ट हाती है उसके भावबदना नियमस कृष्ट हाती है । इससे भी जाला जाता है कि योगकी वृद्धि अथवा हानि अनुभागकी वृद्धि अथवा हानिक कारण नहीं हाती । सवागकक्षी जप साकपूरण समुद्घातमें बतमान रहते हैं तब उनका कृष्ट क्षेत्र हाता है । भाव भी इसमें मुख्यस्थानकर्ता क्षणक जा हाता है साकपूरण अक्षयामें यह कृष्ट अथवा अनुकृष्ट हाता है, एमा म कृष्टर कृष्ट ही हाता है एमा कहा है । इसमें जाला जाता है कि वागकी हानि-वृद्धि अनुभागकी वृद्धि-हानिका कारण नहीं हाती । तथा इसी कथावपाइम कहा है कि सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात् प्रकृतिका कृष्ट अनुभाग इतनामार्के क्षणकका क्षाककर अन्वत्र सर्वत्र हाता है इससे भी उक्त बात जानी जाती है क्योंकि उमम कहा है कि क्षणिकर्माशिक अवाग जपन्य प्रदरासंभयकी आ मामपी कदी है कम मामपीस आकर अथवा गुणितकमाहासंभय अवाग उत्कृष्ट प्रदरासंभयकी आ मामपी कदी है उमस आकर सम्यक्त्वका महण कर हा त्रियामठ मानर तक भ्रमण करके इतनामार्के क्षण करते हुए अपूर्वकरणम प्रथम अनुभागकाण्डकका जब तक पतन नहीं हाता तब तक उस जीवके सर्वात्म-प्यात्क प्रकृतिक कृष्ट अनुभाग ही हाता है । यदि वागकी वृद्धि हानि अनुभागकी वृद्धि हानिका कारण हाती वा क्षणिकर्माशिक आककर गुणितकमाहासंभय आकर सम्यक्त्वका महण करनहात जीवके ही सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात् प्रकृतिका कृष्ट अनुभाग हाता, क्योंकि गुणितकमाहासंभय वागका बहुत पाया जाता है । और एमा हानर इतनामार्के क्षणकका क्षाककर सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्बन्धित्वात् प्रकृतिका अनुभाग उत्कृष्ट अथवा अनुकृष्ट हाता । किन्तु एमा नहीं हाता क्योंकि पसा कहा नहीं गया है । अतः वाग अनुभागका कारण नह हाता । अतः सूक्ष्म परांग्रूप जीवके सत्ताम स्थित अनुभागका घात करक आ अनुभागस्थान इतना हाता है वही जपन्य अनुभागस्थान है यह सिद्ध हाता है ।

§ ५७३. संपहि एदस्स जहण्णाणुभागट्ठाणस्स सरूवपडिवोहणट्ठमिमा परूवणा कीरदे । त जहा—जहण्णाणुभागट्ठाणस्स सब्वकम्मपरमाणुपुंजं करिय पुणो तत्थ सब्वमंदाणुभागपरमाणुप्पासगुणं पण्णाए पुथ कादूण जहण्णवट्ठिगुणपमाणेण छिएणे सब्वजीवेहि अणंतगुणा सव्वागासघणादो वि अणंतगुणअविभागपडिच्छेदा लब्भंति । तेसिं वग्गमिदि सण्णं करिय ते पुथ ठवेदव्वा । पुणो पुच्चिल्लपरमाणुपुंजम्मि तस्सरिस-गुण विदियपरमाणुं घेत्तूण तदणुभागस्स पुच्चं व पण्णच्छेदणए कदे तत्तिया चेव अणु-भागाविभागपडिच्छेदा लब्भंति । एदेसि पि वग्गमिदि सण्णं करिय पुच्चिल्लवग्गस्स दाहिणपासे एदे वि पुथ ठवेयव्वा । एवमेगेगसरिसधणियपरमाणु घेत्तूण पण्णच्छेदणए करिय दाहिणपासे कंडुज्जुवपंतिरयणा कायव्वा जाव अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तसरिसधणियपरमाणु समत्ता ति । एदेसिं सव्वेसिं पि वग्गणा ति सण्णा । पुणो गहिदसेसपरमाणुपुंजम्मि अवरेगं परमाणुं घेत्तूण पण्णच्छेदणए कदे पुच्चिल्लविभागपडिच्छेदणएहिंतो संपहियअविभागपडिच्छेदा एगेण अविभागपडि-च्छेदेण अहिया हांति । एदेसि वग्गसण्ण कादूण पुच्चिल्लाणमुवरि ठवेदव्वा । पुणो एदेण परमाणुणा अविभागपडिच्छेदेहि सरिसा अभव्वसिद्धिएहि अणंतगुणा सिद्धाण-मणंतभागमेत्ता परमाणु तत्थ लब्भंति । तेसिं पि अणुभागस्स पुच्चं व पण्ण-च्छेदणए कदे अणता ते वग्गा भवंति । एदे सव्वे घेत्तूण विदियवग्गणा होदि । एव

§ ५७३ अब इस जघन्य अनुभागस्थानके स्वरूपको समझानेके लिए यह कथन करते हैं । यथा—जघन्य अनुभागस्थानके सब कर्मपरमाणुओंको एकत्र करके उसमेंसे सबसे मन्द अनु-भागवाले परमाणुके स्पर्शगुणको बुद्धिके द्वारा पृथक् करके, जघन्य वृद्धिरूप अविभागप्रतिच्छेदके प्रमाणसे उसका छेदन करनेपर वहा सब जीवराशिसे अनन्तगुणे और धनरूप समस्त आकाशसे भी अनन्तगुणे अविभागी प्रतिच्छेद पाये जाते हैं । उनकी 'वर्ग' सज्ञा करके उन्हें पृथक् स्थापित कर देना चाहिए । पुन पहलेके परमाणु समूहमेंसे उस परमाणुके समान गुणवाले दूसरे पर-माणुको लो । उसके अनुभागके भी पहलेके समान बुद्धिके द्वारा छेद करनेपर उतने ही अविभागी प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं । इनकी भी 'वर्ग' सज्ञा रखकर पहले वर्गके दाहिनी और उन्हें भी पृथक् स्थापित कर देना चाहिए । इस प्रकार समान धनवाले एक एक परमाणुको लेकर बुद्धिके द्वारा उसके स्पर्शगुणका छेदन करके दक्षिण पार्श्वमें बाणके समान ऋजु पक्तिमें रचना करते जाओ और ऐसा तबतक करो जबतक अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण समान धनवाले परमाणु समाप्त हों । उन सब वर्गोंकी वर्गणा सज्ञा है । पुन ग्रहण करनेसे बाकी वचे हुए परमाणु पुजमेंसे अन्य एक परमाणुको लेकर बुद्धिके द्वारा उसके अनुभागका छेदन करनेपर पहलेके प्रत्येक परमाणुमें पाये जानेवाले अविभागी प्रतिच्छेदोंसे इसमें पाय जानेवाले अविभागी प्रतिच्छेद एक अधिक होते हैं । इनकी भी 'वर्ग' सज्ञा रखकर इन्हें पहलेके वर्गों के ऊपर स्थापित करना चाहिए । इस प्रकार उस परमाणुपुजमें अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अन-न्तवें भागप्रमाण परमाणु ऐसे पाये जाते हैं जिनके अविभागी प्रतिच्छेद उस एक परमाणुके अवि-भागी प्रतिच्छेदोंके समान होते हैं । उन परमाणुओंके भी अनुभागका पहलेके समान बुद्धिके द्वारा छेद करनेपर वे अनन्त वर्ग हो जाते हैं । इन सबको लेकर दूसरी वर्गणा होती है । इस प्रकार

दाशविभागपटिच्छदुत्तरनिषिण्ण०-चत्वारि०-पञ्च०-सत्तादिअविभागपटिच्छदुत्तरकमण
 मवद्विदमणतपरमाण् पत्तण तदणुभागम्म पण्णच्छदणय फाउण अमवमिद्धिएरि अणता
 मुण्णि सिद्धाणमणंतभागमत्तयग्गणाओ उप्पाइय उवरि उवरि रफदम्भाभा । परमत्तियाहि
 पमजाहि एग फरय हादि, अविभागपटिच्छदददि कमवट्टीण पगमं पत्ति पट्टण अत्र
 द्विदतादा । उवरिमपरमाण् अविभागपटिच्छदमंवं पेविरत्तण्ण कमहाणीण अमारण
 विस्साविभागपटिच्छेदमंत्वतादा पा ।

§ ४७४ पुनो, पहमफइयचरिमरगणाए एगवग्गानिभागपटिच्छदददिता पगविभाग
 पटिच्छददुत्तरपरमाण् पत्तिय, किंनु सम्भजीरदि अणंतगुणाविभागपटिच्छदददि अट्टियपर
 परमाण् तन्व चिरंतणपुज्ज अत्तिय । ते पत्तण पहमफइयउप्पाइदकमेण विदियपरय
 सुप्पाएयत्थं । एवं तदियादिकमेण अमवसिद्धिएरि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमत्ताणि
 फरयाणि उप्पाउदम्भाणि । एवमेत्तियफइयसमूहण सुट्टमणिगोदजरहणाणुभागहाणं हादि ।

दाशविभागप्रतिच्छद अचिक्र तीन चार पांच छ और आठ आदि अविभागप्रतिच्छद
 अचिक्र क्रमस अर्चयित अनन्त परमाणुओंका लहर अत्र अनुभागात्मिका द्वारा दहन करके
 अमव्यपदेशित अनन्तगुणी, और मिद्धारशिक अनन्तवें भागप्रमाण बगलाआद्य रूपस परक उदें
 उतर उतर स्थापित कथ । इन प्रकार इनकी पगलाओंका एक रूपक दाता है क्योंकि कदा अवि
 भागप्रतिच्छदोंकी अपेक्षा एक एक पचिक्र प्रति क्रमद्वि अर्चयितकथम चार जाती है । अतया
 उतरक परमाणुओंमें अविभागप्रतिच्छदोंकी संख्याका इतने हुए बरा क्रमगतिता अमात्र दानस
 इतक विद्व अविभागप्रतिच्छदोंकी संख्या पाई जाती है ।

§ ५४५ पुनः प्रथम रूपककी अतिम बगलाक एक बगट अविभागप्रतिच्छदोंस एक
 अविभागप्रतिच्छद अचिक्रयाता परमाणु अमा मदी है, किन्तु यह आबोस अनन्तगुण अविभाग-
 प्रतिच्छद अचिक्रयान परमाणु तम चिरंतन परमाणुपुत्रमें मौजूद है । उदें लहर अत्र क्रमस प्रथम
 गराइकी रचना की थी जमी क्रमस दूसरा रूपक अत्रम करना पादिए । इसी प्रकार तीसरे अदि
 रूपकको क्रमस अमव्यपदेशित अनन्तगुण और मिद्धरगिके अनन्तवें भागमात्र रूपक उत्रम करना
 पादिए । इन प्रकार इन रूपकोंक समूहस सुन्नतिग एषा थीरहा तपस्य अनुभागात्मान बनता है ।

विशुद्धाये- तपस्य अनुभागात्मानक समस्त परमाणुओंका एकत्र करके इनमेंस गवस
 मन् अनुभागात्मान परमाणुका सा आर उमक एव तम और गवसगुणका दाइकर परमाणुका
 बुद्धिके द्वारा महान् करके वमके लव लक दस बग तत्र तत्र अन्तिम दस मात्र हा । उम अन्तिम
 गवसः विमका दूसरा रूपक नहीं हा महता अविभागप्रतिच्छद करत है । अत्रगुणक बग
 अविभागप्रतिच्छद प्रमाण गण्ट करनार गः तीसरा अनन्तगुण अविभागप्रतिच्छद पाये जा
 है । एक परमाणु रहनस । इनअविभागप्रतिच्छदोंक समूहका बग बहल है । अतया अचिक्र
 परमाणु एक एक बगट । दत्तिए, अमन पाये जानसथ अविभागप्रतिच्छदोंका प्रमाण अन्तम है
 फिर भी संतुष्टिके लिए उमका प्रमाण ८ अन्तम करत पादिए । पुनः उन परमाणुओंमग प्रथम
 परमाणुक समस्त अविभागप्रतिच्छदका दूसरा बगलुका ता और उमक भी परमाणुका
 बुद्धिके द्वारा महान् करनार गवसकी अविभाग प्रतिच्छद मात्र हात है । यतार मर लव हा गवसकी
 है कि परमाणु का महान्तरिण है उमक गण्ट कीग लिए जा गवस है ? उमका उत्र बग है कि
 परमाणुमग अमव्यपदेशित है किन्तु तके मुलकी बुद्धिके द्वारा महान्तरिण की उमका है

क्योंकि एक परमाणुसे दूसरे परमाणुम हीनाधिक गुणपर्याय देया जाती है। इस दूसरे वर्गके प्रविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण यद्यपि अनन्त है ता भी सन्धिके लिए आठ कल्पना करना चाहिए और पूर्वोक्त वर्गके दक्षिण भागमें उमकी स्थापना करनी चाहिए—८८। इस क्रमसे पूर्वोक्त परमाणुके समान एक एक परमाणुका लेकर उनके स्पर्शगुणके प्रविभागप्रतिच्छेद करनेपर एक एक वर्ग उत्पन्न होता है। ऐसा तब तक करना चाहिए जब तक जघन्य गुणवाले सब परमाणु समाप्त न हों। ऐसा करनेपर अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तरे भागप्रमाण वर्ग प्राप्त होते हैं। उनका प्रमाण सन्धिके रूपमें इस प्रकार है—८८८८। द्रव्याधिकतयकी अपेक्षा इन सभी वर्गोंकी वर्गणा सक्षा है, क्योंकि वर्गोंके समूहको वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार इन वर्गोंको पृथक् स्थापित करके उस परमाणुपुजमेंसे फिर एक परमाणु ला और बुद्धिके द्वारा उसका छेदन करके, छेदन करनेपर पूर्वोक्त परमाणुओंसे इनमें एक अधिक प्रविभागप्रतिच्छेद पाया जाता है। उसका प्रमाण सन्धिके रूपमें ९ है। यह एक वर्ग है और इसको पृथक् स्थापित करना चाहिए। इस क्रमसे उस परमाणुके समान प्रविभागप्रतिच्छेदवाले जितने परमाणु पाये जाय उनमेंसे एक एकके बुद्धिके द्वारा खण्ड करके अनन्त वर्ग उत्पन्न करने चाहिए। उनका प्रमाण इस प्रकार है—९९९। यह बूसरी वर्गणा है। इसको प्रथम वर्गणाके आगे स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाचवीं आदि वर्गणाएँ, जो कि एक एक अधिक प्रविभागप्रतिच्छेदोंके लिए हुये हैं, उत्पन्न करनी चाहिए। इन वर्गणाओंका प्रमाण अभव्यराशिमें अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तरे भागप्रमाण है। इन सब वर्गणाओंका एक जघन्य स्पर्धक होता है, क्योंकि वर्गणाओंके समूहको स्पर्धक कहते हैं। इस प्रथम स्पर्धकको पृथक् स्थापित करके पूर्वोक्त परमाणुपुजमेंसे एक परमाणुको लेकर बुद्धिके द्वारा उसका छेदन करनेपर द्वितीय स्पर्धककी प्रथम वर्गणाका प्रथम वर्ग उत्पन्न हाता है। इस वर्गमें पाये जानेवाले प्रविभागप्रतिच्छेदोंका प्रमाण सन्धिके रूपसे १६ है। इस क्रमसे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तरे भागमात्र समान प्रविभागप्रतिच्छेदवाले परमाणुओंका लेकर और बुद्धिके द्वारा उनका छेदन करनेपर उतने ही वर्ग उत्पन्न होते हैं। इन वर्गोंका समुदाय दूसरे स्पर्धकका प्रथम वर्गणा कहलाता है। इस प्रथम वर्गणाको प्रथम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके आगे अंतराल देकर स्थापित करना चाहिए। इस क्रमसे वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकको जानकर तब तक उनकी उत्पत्ति करनी चाहिए जब तक पूर्वोक्त परमाणुओंका समुदाय समाप्त न हो। इस प्रकार स्पर्धकोंकी रचना करनेपर अभव्यराशिमें अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तरे भागप्रमाण स्पर्धक और वर्गणाएँ उत्पन्न होती हैं। इनमेंसे अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक परमाणुमें जो अनुभाग पाया जाता है उसे ही जघन्य स्थान कहते हैं। इसकी सन्धि इस प्रकार है—

	प्रथम स्प	द्वि स्प.	तृ स्प	चर प	प स्प	प स्प
प्र० वर्गणा	८ ८ ८ ८	१६	२४	३०	४०	४८
द्वि० वर्गणा	९ ९ ९	१७	२५	३३	४१	४९
तृ० वर्गणा	१० १०	१८	२६	३४	४२	५०
च० वर्गणा	११	१९	२७	३५	४३	५१

§ ५७५ संपदि एदस्त महण्णाणुमागहाणस्त अविभागपटिच्छेदपरूपव्या
 वगणपरूपव्या फरयपरूपव्या अंतरपरूपव्या चेदि एदेहि चहुदि अणियोगहारोहि
 परूपव्या कस्तामो । तत्य अविभागपटिच्छेदपरूपव्याए परूपव्या पमाणमप्याबहुअ चेदि
 तिणि अणियोगहारोणि । जहण्णियाए वगणाए अत्ति अविभागपटिच्छेदा । एवं
 वेद्वं नाम उक्कस्सिया वग्णा ति । एवं परूपव्या गदा ।

§ ५७६ जहण्णियाए वग्णाए अविभागपटिच्छेदा केवविया ? अणता सम्भ
 वीवहि अणतगुणा । एवं वेद्वं नाम उक्कस्सिया वग्णा ति । एवं पमाणपरूपव्या गदा ।

§ ५७७ सम्भत्यावा जहण्णियाए वग्णाए अविभागपटिच्छेदा । उक्कस्सियाए
 वग्णाए अविभागपटिच्छेदा अणतगुणा । को गुणगारो ? सम्भवीवहि अणतगुणो ।
 कुदा ? जहण्णवदहाणपहुदि उवरि असंसेअ०सोगमेतदहाणेसु गदेसु सुहुमेइदिस
 जहण्णहाणवरिसवग्णाए समुप्यचीदो । अजहण्णमशुकस्सियासु वग्णासु अवि
 भागपटिच्छेदा अणतगुणा । को गुणगारो ? अमवसिद्धिएहि अणतगुणो सिद्धाअ
 मणतभागमेतो । अशुकस्सियासु वग्णासु अविभागपटिच्छेदा विससाहिया । अज
 णियासु वग्णासु अविभागपटिच्छेदा विससाहिया । केतिपमेत्तेण ? जहण्णवग्णा
 विभागपटिच्छेदोहि उजउक्कस्सवग्णाविभागपटिच्छेदमेत्तेण । सव्वासु वग्णासु अवि
 भागपटिच्छेदा विससाहिया । के० मत्तण ? जहण्णनग्णाविभागपटिच्छेदमेत्तेण ।

एवमविभागपटिच्छेदपरूपव्या गदा ।

§ ५७८. अब इस उपस्य अनुभागस्थानक अविभागप्रतिच्छेदपरूपव्या वर्ग्यापरूपव्या
 स्पर्शपरूपव्या और अन्तरपरूपव्या इन चार अनुयागहारोंका आशय लेकर कथन करते हैं ।
 ज्ञानमें अविभागप्रतिच्छेदपरूपव्याके प्ररूपव्या प्रमाय और अस्पष्टतुल्य प तीन अनुयागहार हैं ।
 उपस्य वर्ग्यामें अविभागप्रतिच्छेद हैं । इस प्रकार उरुष्ट वर्ग्या पर्यन्त ले जाना चाहिये ।
 इस प्रकार प्ररूपव्या समाप्त हुई ।

§ ५७९. उपस्य वर्ग्यामें कितने अविभागप्रतिच्छेद हैं ? अनन्त हैं । आ सब जीवोंसे
 अनन्तगुण्ये हैं । इस प्रकार उरुष्ट वर्ग्या पर्यन्त ले जाना चाहिये । इस प्रकार प्रमायपरूपव्या
 समाप्त हुई ।

§ ५८०. उपस्य वर्ग्यामें, अविभागप्रतिच्छेद सबसे पाये हैं । उनसे उरुष्ट वर्ग्यामें
 अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुण्ये हैं । गुणकारका प्रमाय कितना है ? सब जीवोंसे अनन्तगुण्ये
 है, क्योंकि उपस्य वन्यस्थानसे लेकर ऊपर असंख्यात शाफप्रमाय पर्यन्त आने पर सूक्ष्म
 एकेन्द्रिय जीवके उपस्य अनुभागस्थानकी अन्तिम वगणाकी उत्पत्ति होती है । उनसे अजपस्य
 अनुकृत वर्ग्याओंमें अविभागप्रतिच्छेद अनन्तगुण्ये हैं । यहाँ पर गुणकारका प्रमाय कितना
 है ? अमव्यवहारिसे अनन्तगुण्ये और सिद्धाररिका अनन्तवां मगप्रमाय गुणकारक प्रमाय है ।
 उनसे अनुकृत वर्ग्याओंमें अविभागप्रतिच्छेद किराप अधिक हैं । उनसे अजपस्य वर्ग्याओंमें
 अविभागप्रतिच्छेद किराप अधिक हैं । कितने अधिक हैं ? अपन्व वर्ग्याके अविभागप्रतिच्छेदोंस
 कम उरुष्ट वर्ग्याके अविभागप्रतिच्छेद प्रमाय अधिक हैं । इससे सभी वगणाओंमें अविभाग-

§ ५७८. वगणपरुवणदाए ताणि चैव तिएण अणियोगद्वाराणि । तत्थ परुवणदाए अत्थि जहएणया वगणा । एवं णेदच्च जाव उक्कस्सवगणे ति । एवं परुवणा गदा ।

§ ५७९. पमाण बुच्चदे—अणतेहि सरिसधणियपरमाणुहि एगा वगणा होदि, दव्वट्ठियणयावत्तणदाओ । पज्जवट्ठियणए पुण अवल्लविदे वगो वि वगणा होदि । णिव्वियप्पवगसस कथ वगणत्तं ? एण, उवरिमएणोत्थि पेक्खिदूएण सव्वियप्पस्स वगणत्तं पडि विरोहाभावाओ । विरोहे वा महाखडवगणाए धुप्रमृएणवगणाए च ण वगणत्तं होज्ज, सरिसधणियाभावाओ । ण च एवं, वगणाण तेवीससखाए अभावप्पसगाओ । जहएणटाएणसव्ववगणाओ वि अभवसिद्धिएहि अणतगुणाओ सिद्धाणमणतिमभागमेत्ताओ । कुदो ? अभवसिद्धिएहि अणतगुण सिद्धाणमणत्तिमभागमेत्तकम्मपरमाणुहि णिप्पएणत्ताओ । एगम्मि जीवे सव्वजीवेहि अणंतगुणा परमाणु क्रिएण मिलति ? ण, मिच्छत्तादिपच्चएहि आगच्छमाणपरमाणुएमभवसिद्धिएहि अणतगुणसिद्धाणत्तिमभागपमाणत्तुवल्लभाओ । ण च एत्तिएसु कम्मपरमाणुपोगलेसु कम्मट्ठिदीए प्रतिच्छेद विशेष अधिक हैं । कितने अधिक हैं ? जघन्य वर्णणाके अविभागप्रतिच्छेदोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

इस प्रकार अविभागप्रतिच्छेदप्ररूपणा ममाप्त हुई ।

§ ५७८ वर्णणाप्ररूपणामें भी व ही तीन अणुयोगद्वार हैं, प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पवहुत्व । उनमेंसे प्ररूपणाकी अपेक्षा जघन्य वर्णणा है । इस प्रकार उक्कट्ट वर्णणा पर्यन्त ले जाना चाहिये । इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ५७९ अब प्रमाणको कहते हैं—द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे समान अविभागप्रतिच्छेदोंके वारक अनन्त परमाणुओंकी एक वर्णणा होती है । किन्तु पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करने पर एक वर्ग भी वर्णणा होता है ।

शंका—वर्ग तो विकल्प रहित है, उसको वर्णणा कैसे कहा जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपरिम एक पक्किओ देरते हुण पक्किा वर्ग भी सविकल्प है, अत उसके वर्णणा होनेमें कोई विरोध नहीं है । यदि विरोध हो तो महास्कन्धवर्णणा और ध्रुवशून्य वर्णणाएँ भी वगणा नहीं हो सकतीं, क्योंकि उनमें समान वनवालोंका अभाव है । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेसे वर्णणाओंकी जो तेईस सख्या वतलाई है उसके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है ।

जघन्य अनुभागस्थानकी सब वर्णणाएँ भी अभव्यराशिसे अनन्तगुणी और सिद्धराशिके अनन्तवे भागप्रमाण हैं, क्योंकि वे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवे भागप्रमाण कर्मपरमाणुओंसे बनी हैं ।

शंका—एक जीवमें सब जीवोंसे अनन्तगुणे परमाणु क्यों नहीं एकत्र होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्यो कि मिथ्यात्व आदि कारणों से बन्धको प्राप्त होनेवाले परमाणु अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवे भागप्रमाण ही पाये जाते हैं । इतने कर्म

सुग्निसु सम्बन्धीवेदि अणतगुणा कम्मपरमाणु होंति, विरोहादो । एके कफइए वि
ममनसिद्धिपरि अणंतगुण-सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ताओ नगणाओ होंति । ताओ च
सम्बफइएसु संत्वाए समाणाओ । कुदो ? साहाबियादो । एवं नगणपमाणपररूप्या गदा ।

§ ५८० अहण्णफइए नगणाओ धावाओ । अमहएणेषु फइएसु नगणाओ
अणंतगुणाओ । सन्वेसु फइएसु नगणाओ विसेसाहियाओ । एवं नगणपररूप्या गदा ।

§ ५८१ फइएपरकवणं तहि येन तीहि अणियोगहारोहि भणिससामो । तं नहा—
मत्वि अहण्णं फइयं । एवं गेइध्वं मासुद्धस्सफइयं चि । पररूप्या गदा ।

§ ५८२ अहण्णए द्वाए अममसिद्धिपरि अणंतगुणसिद्धाणंतिमभागमेत्ताणि
फइयाणि । पमाणपररूप्या गदा ।

§ ५८३ सम्बत्यानं अहण्णफइयं, एगसंतत्वादा । अमहण्णफइयाणि अणंत-
गुणाणि । को गुणगारो ? अममसिद्धिपरि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागमेत्ता ।
सम्बाणि फइयाणि विसेसाहियाणि एगरूपेण । अपवा अविभागपदिच्छेदे अस्सिद्धण
उभदे—अहण्णफइयं योमं । उद्धस्सफइयमणंतगुणं । को गुणगारो ? सम्बन्धीमहि
अणंतगुणो । अमहण्णमणुद्धस्सफइयाणि अणंतगुणाणि । को गुणगारो ? अममसिद्धि
परि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागमेत्ता । अणुद्धस्सफइयाणि विसेसाहियाणि । अमहण्ण

परमाणुओको कर्मोकी स्थितिसे गुप्त्या करने पर समस्त कर्म परमाणु सब जीवोंसे अनन्तगुणसे
नहीं हाते हैं क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध आता है ।

एक एक स्वर्णकर्मों में अमम्य राशिले अनन्तगुणी और सिद्धराशिले अनन्तबर्ण भागप्रमाय
वर्णधार्य होती हैं । व वर्णधार्य संख्यामें समी स्वर्णकर्मों समान होती हैं, क्योंकि ऐसा होना स्वाभा-
विक है । इस प्रकार वर्णधार्य प्रमायपररूप्या समाप्त हुई ।

§ ५८४ अमम्य स्वर्णकर्मों धात्री वर्णधार्य हैं । उनसे अमम्य स्वर्णकर्मों अमम्यगुणी
वर्णधार्य हैं । उनसे सब स्वर्णकर्मों विरोध अधिक वर्णधार्य हैं । इस प्रकार वर्णधार्यपररूप्या
समाप्त हुई ।

§ ५८५ उन्हीं तीन अनुयागधार्योका आशय लेकर स्वर्णकर्म कवण करते हैं । यथा—
अमम्य स्वर्णकर्म है । इस प्रकार उच्छ्व स्वर्णकर्म पर्यन्त लेजाना चाहिये । पररूप्या समाप्त हुई ।

§ ५८६ अमम्य अनुयागस्तानमें अमम्यराशिले अनन्तगुणो और सिद्धराशिले अनन्तबर्ण
भागप्रमाय स्वर्णकर्म हाते हैं । प्रमायपररूप्या समाप्त हुई ।

§ ५८७ अमम्य स्वर्णकर्म सबसे बड़ा है, क्योंकि इसकी संख्या एक है । उससे अमम्य
स्वर्णकर्म अनन्तगुणो है । गुणधारका प्रमाय क्या है ? अमम्यराशिले अनन्तगुणा और सिद्धराशि
के अनन्तबर्ण भागप्रमाय गुणधारका प्रमाय है । उनमें समी स्वर्णकर्म विरोध अधिक हैं, क्योंकि
अमम्य स्वर्णकर्मोंसे हममें एक स्वर्णकर्म अधिक हाता है । अमम्य अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा
करते हैं—अमम्य स्वर्णकर्म बड़ा है । उससे उच्छ्व स्वर्णकर्म अनन्तगुणा है । गुणधार क्या है ? सब
जीवोंसे अनन्तगुणा गुणधार है । अमम्य अनुयाग स्वर्णकर्म अनन्तगुणो है । गुणधार क्या है ?
अमम्यराशिले अनन्तगुणा और सिद्धराशिले अनन्तबर्ण भागप्रमाय गुणधार है । अनुयाग स्वर्णकर्म

फद्दयाणि विसेसा० । सव्वाणि फद्दयाणि विसे० । एवं फद्दयपरस्वणा गदा ।

§ ५८४. अतरपरस्वणदाए अत्थि जहण्णयं फद्दयंतरं । एवं णेट्ठव जाव उक्कस्स-
फद्दयतरं ति । एव परस्वणा गदा ।

§ ५८५. पढम फद्दयतर सव्वजीवेहि अणतगुण । एए णेट्ठव्वं जाव उक्कस्सफद्दयतर
ति । एवमंतरपमाणपरस्वणा० ।

§ ५८६. अप्पावहुअ—सव्वत्तोव जहण्णफद्दयतर । उक्कस्सफद्दयंतरमणतगुणं ।
अजहण्णअणुक्कस्सफद्दयतराणि अणतगुणाणि । अणुक्कस्सफद्दयतराणि विसेसाहियाणि ।
अजहण्णफद्दयतराणि विसे० । सव्वाणि फद्दयतराणि विसे० । अहवा फद्दयतराण-
मप्पावहुअ ण सक्किज्जे काउ, छ्वड्डि-छ्वाणिकुमेण अवट्ठित्तादो । त पि कुदो ?
वयद्दाणाण हेट्ठिमाणं छ्वित्रहाए वड्डीए अवट्ठित्तादो । ण च एट्ठ्हादो द्वाणादो हेट्ठा
वयद्दाणाणमभावो, मव्वत्रिसुद्धमजमाहिमुहमिच्छादिट्ठिआदीणं वधस्स एट्ठ्हादो हेट्ठा
दसणादो । त जहा—सजमाहिमुहसव्वविसुद्धमिच्छादिट्ठिणा वज्झमाणजहण्णमिच्छत-
ट्ठिदीए असखेज्जलोगमेत्ताणि विसोहिट्ठाणाणि भवंति । पुणो एत्थ सव्वुक्कस्सविसोहि-
ट्ठाणेण वज्झमाणअणुभागद्दाणाणि असंखेज्जलोगद्धाणसख्वेणं हंति । पुणो तत्थतण-
जहण्णाणुभागवधद्दाणस्सुवरं तस्सेव उक्कस्साणुभागवधद्दाणमणतगुण । पुणो तस्सेव
विशेय अधि ऋ है । अजवन्य स्पर्धं ऋ विशेय अधिक हैं । सव स्पर्धक विशेष अधिक हैं ।

इस प्रकार स्पर्धकरूपणा समाप्त हुई ।

§ ५८४ अन्तर प्ररूपणामें जवन्य स्पर्धकका अन्तर है । डम प्रकार उत्कृष्ट स्पर्धकके
अन्तर पर्यन्त ले जाना चाहिए । इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ५८५. प्रथम स्पर्धकका अन्तर सव जीवसे अनन्तगुणा है । इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्धकके
अन्तर पर्यन्त ले जाना चाहिए । इम प्रकार अन्तरकी प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ५८६ अल्पवहुअ—जवन्य स्पर्धकका अन्तर सबसे थोडा है । उत्कृष्ट स्पर्धकका अन्तर
अनन्तगुणा है । अजवन्य अनुत्कृष्ट स्पर्धको के अन्तर अनन्तगुणे हैं । अनुत्कृष्ट स्पर्धको के
अन्तर विशेष अधिक हैं । अजवन्य स्पर्धकोके अन्तर विशेष अधिक हैं । सव स्पर्धको के
अन्तर विशेष अधिक हैं । अथवा स्पर्धको के अन्तरो मे अल्पवहु व नहीं किया जा सकता,
क्यों कि वे छद्द वृद्धियो और छद्द हानियो के क्रमसे अवस्थित हैं । और इसका सबूत यह है कि
नीचेके वन्धस्थान छद्द प्रकारकी वृद्धिको लिये हुए अवस्थित हैं । तथा इस वन्धस्थानसे नीचे
अन्य व वस्थानोंका अभाव नहीं है, क्योंकि सबसे विशुद्ध और सयमके अभिसुग्ग हुए मिथ्यादृष्टि
आदिके होनेवाला वय इससे नीचे देखा जाता है । उसका खुलासा इस प्रकार है—सयमके
अभिसुग्ग और सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी जा जवन्य स्थिति बायी जाती है,
उमके कारणभूत असख्यात लोकप्रमाण विशुद्धिस्थान होते हैं । पुन यहा सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि
स्थानसे वधनेवाले अनुभागस्थान असख्यात लोक पट्स्थान रूपसे होते हैं । तथा वया पर होने-
वाले जवन्य अनुभागवन्धस्थानके ऊपर उसीका उत्कृष्ट अनुभागवन्धस्थान अनन्तगुणा है । पुन

धरिमसमयजहण्विसोहिद्वाणेण वज्रकमाणजहण्णाणुभागबंधाणमणंतगुणं । तस्सेवुक्क-
 स्साणुमागबंधाणमणंतगुणं । पुणो तस्सेव दुचरिमसमयमिच्छादिद्विस्त सव्युक्कस्त
 विसोहिद्वाणेण वज्रकमाणजहण्णाणुभागबंधाणमणंतगुणं । तस्सेवुक्कस्साणुमागबंधाण
 मणंतगुणं । पुणो तस्सेव दुचरिमसमयसव्वजहण्विसोहिद्वाणेण वज्रकमाणजहण्णाणुभाग-
 बंधाणमणंतगुणं । तस्सेव उक्कस्साणुमागबंधाणमणंतगुणं । एवं तिधरिमादिसमय
 प्पहुदि अंतोसुहुचकासमणंतगुणसरूपेणोदारोदम्भं जाव सत्याणमिच्छादिद्विपहमसमो
 ति । पुजा असण्णिपंचिंदिय चरिंदिय-सइंदिय-वेइंदिय-भादरेइंदिएसु च अंतोसुहुच
 कासमणेषेप विहाणेण ओदारोदम्भं । पुणो सव्वविसुद्धचरिमसमयसुहुमभपञ्जणयस्त
 सव्युक्कस्तविसोहिद्वाणेण वज्रकमाणजहण्णाणुभागबंधाणमणंतगुणं । तस्सेवुक्कस्साणु-
 मागबंधाणमणंतगुणं । तस्सेव मंदविसोहिद्वाणेण वज्रकमाणजहण्णाणुभागबंधाणमणंतगुणं ।
 तस्सेवुक्कस्साणुमागबंधाणमणंतगुणं । एवं दुचरिमसमयप्पहुदि अणंतगुणकमेण ओदारो
 दम्भं जाव सुहुमसत्याणजहण्वसंतसमाणबंधाणे ति । तण फइयंतराणि छव्विहाए
 वइीए अबहिदाणि ति णम्भवे ।

इसी संभामिमुक्त मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयवर्ती जपन्य विष्णुदिस्थानसे बंधनेवाला अनुमाग-
 बन्धस्थान अनन्तगुणा है । इसीका उत्कृष्ट अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणा है । पुन द्विचरम
 समयवर्ती इसी मिथ्यादृष्टिके सबसे उत्कृष्ट विष्णुदिस्थानसे बंधनेवाला जपन्य अनुमागबन्धस्थान
 अनन्तगुणा है । इसीका उत्कृष्ट अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणा है । पुनः द्विचरम समयवर्ती इसी
 मिथ्यादृष्टिके सबसे जपन्य विष्णुदिस्थानसे बंधनेवाला जपन्य अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणा है ।
 इसीका उत्कृष्ट अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणा है । इसी प्रकार द्विचरम आदि समयसे लेकर
 अनन्तमुहूर्त अक्षरके भीतर स्वस्थान मिथ्यादृष्टिके प्रथम समय पर्यन्त ये अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणे
 रूपसे उतारना चाहिए । पुन असंक्षिप्यभेदत्रिय पौश्र्मिय तेइन्द्रिय वाइन्द्रिय और बाइर एकेन्द्रियेमें
 अनन्तमुहूर्तकाल तक इसी क्रमसे उतारना चाहिए । पुनः सर्वाविष्णु चरम समयवर्ती सूक्ष्म अपर्मातक
 जीवके सर्वोत्कृष्ट विष्णुदिस्थानसे बंधनेवाला जपन्य अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणा है । इसीका
 उत्कृष्ट अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणा है । इसी सूक्ष्म अपर्मातक जीवके मन्द विष्णुदिस्थानसे
 बंधनेवाला जपन्य अनुमागबन्धस्थान अनन्तगुणा है । इसीका उत्कृष्ट अनुमागबन्धस्थान अनन्त-
 गुणा है । इसी प्रकार द्विचरम समयसे लेकर सूक्ष्म अपर्मातक जीवके स्वस्थान जपन्य सत्त्-
 स्थानके समान बन्धस्थान पर्यन्त अनन्तगुणित क्रमसे उतारना चाहिए । इससे जाना जाता है
 कि स्वयंकोका अन्तर वह प्रकारकी वृद्धिरूपसे अचरित है ।

विशेषार्थ—स्पर्शक्रमेण परस्परमे अन्तर पाया जाता है यह बात वा पहले वर्ग वाग्या और
 स्पर्शका कथन करते हुए बतलाई ही है । यदि स्पर्शक्रमेण अन्तर न होता वा स्पर्शक अनेक नहीं
 होते । अन्तर होनेसे ही प्रत्येक स्पर्शकी रचना होती है और वह अन्तर अधिभागप्रतिच्छेदोंका
 लेकर होता है । अहाँ तक एक एक अधिभागप्रतिच्छेद अधिभागके परमायु पाये जाते
 हैं वहाँ तक एक स्पर्श होता है । उसके बाद एक अधिभागप्रतिच्छेद अधिभाग परमायु नहीं पाया
 जाता किन्तु अनन्तगुण्य अधिभागप्रतिच्छेद अधिभागके परमायु पाये जाते हैं । इस रीतिसे दूसरा
 स्पर्शक पारम्भ हो जाता है अतः जपन्य स्वयंकोका अन्तर सबसे कम होता है और जपन्य स्पर्शक

§ ५८७. संपदि परूवणा पमाण सेठी अउहारो भागाभागं अप्पावहुअ चेदि एदेहि छहि अणियोगदारेहि सुहुमजहणणट्टाणपरमाणणं परूवणा कीरदे । त जहा— जहणियाए वगणाए अन्थि कम्मपदेसा । विदियाए वगणाए अन्थि कम्मपदेसा । एव पेदव्वं जाव उक्कस्सवगणे ति । परूवणा गदा ।

§ ५८८. जहणियाए वगणाए कम्मपदेसा केत्तिया ? अणता अभवसिद्धि- एहि अणतगुणा सिद्धाणतिमभागमेत्ता । एव पेदव्वं जाव उक्कस्सवगणे ति ।

§ ५८९. सेठिपरूवणा दुविदा—अणंतरोवणिधा परपरोवणिधा चेदि । तन्थ अणंतरोवणिधाए जहणियाए वगणाए कम्मपदेसा बहुआ । विदियाए वगणाए कम्मपदेसा विसेसहीणा । एव विसेसहीणा विसेसहीणा जाव उक्कस्सिया वगणा ति । भागहारो पुण अभवसिद्धिएहि अणतगुणो सिद्धाणमणतिमभागमेत्तो । एवमएतरोव- णिधा गदा ।

§ ५९०. जहणियाए वगणाए कम्मपदेसेहितो अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तमद्धाए गतूण कम्मपदेसा दुगुणहीणा हांति । एवमवट्ठिमद्धाए

उत्कृष्ट स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा है । किन्तु इममें एक दूसरा पक्ष भी है और वह यह है कि चूंकि स्पर्धकान्तर छह प्रकारकी हानि और छह प्रकारकी वृद्धि को लिए हुए होता है, अतः स्पर्धकान्तरोंमें अल्पबहुत्व नहीं किया जा सकता । अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्पर्धकका अन्तर थोडा है और अमुकका अनन्तगुणा, क्योंकि हानि वृद्धि होनेसे उममें घटती और बढ़ती हो सकती है । तथा उनमें हानि-वृद्धि होती है वह बात इमसे स्पष्ट है कि सूक्ष्म निगोदिया जीवके उक्त बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसे नीचे अन्य भी बन्धस्थान पाये जाते हैं और वे बन्धस्थान छह प्रकारकी वृद्धिको लिए हुए हैं । जैसा कि मूलमें सयमके अभिमुख सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टि जीवसे लेकर सर्वविशुद्ध चरिमसमयवर्ती सूक्ष्म अर्थात् जीवके होनेवाले अनुभागबन्धको उत्तरोत्तर अनन्तगुणा अनन्तगुणा बतलाकर स्पष्ट किया है ।

§ ५९१ अथ प्ररूपणा, प्रमाण, श्रेणी, अवहार, भागाभाग और अल्पबहुत्व इन छह अनुयोगद्वारोंसे सूक्ष्म जीवके जघन्य अनुभागस्थानके परमाणुओंका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है—जघन्य वर्गणामे कर्मप्रदेश हैं । दूसरी वर्गणामे कर्मप्रदेश हैं । इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त लेजाना चाहिए । प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ५९२ जघन्य वर्गणामे कर्मप्रदेश कितने हैं ? अनन्त है जो अभव्यराशिसे अनन्त- गुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है । इस प्रकार उत्कृष्टवर्गणा पर्यन्त लेजाना चाहिए ।

§ ५९३ श्रेणि प्ररूपणा दो प्रकारकी है—अनन्तरोपनिधा और परपरोपनिधा । उनमेंसे अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा जघन्य वर्गणामे कर्मप्रदेश बहुत हैं । दूसरी वर्गणामे कर्मप्रदेश विशेष हीन हैं । इस प्रकार उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त कर्मप्रदेश विशेषहीन विशेषहीन होते हैं । भागहारका प्रमाण अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है । अर्थात् इस भागहारका भाग जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंमें देनेसे जो लब्ध आवे उतने हीन कर्मप्रदेश दूसरी वर्गणामें हैं । इस प्रकार अनन्तरोपनिधाका कथन समाप्त हुआ ।

§ ५९४ जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्थान जानेपर कर्मप्रदेश देने हीन अर्थात् आधे होते हैं । इस प्रकार

मंशुण दुग्गणीणा दुग्गणीणा जाव चरिमणुणाणि ति । तं जहा—अभवसिद्धिपरि
 वर्णकगुणं सिद्धाणमर्णवियभागमेव णिसेगभागाहारं विरत्तेदुण जहण्णवमाणकम्मपदेसेसु
 समस्रदं कादूण दिप्पेसु एकेकस्स रूबस्स वमाणविसेसपमाणं पावदि । पुणो जेभ्येत्थ
 एगेगवमाणविसेसो वग्गण पवि हायमाणो गच्छदि तेण णिसेगभागहारस्स अद्धमेत्तं
 मंशुण जहण्णवमाणपदेसेहितो तदित्थवग्गवपदेसा दुग्गणीणा होति । पुणो पवमणुण
 हाणिपवमवमाणभागहारेणेषु विदियगुणहाणिपवमवमाणपदेसेसु त्थंदिदेसु तत्त्वतणवमाण
 विसेसो होदि । णवरि पवमणुणहाणिवमाणविसेसादो विदियगुणहाणिवमाणविसेसो
 दुग्गणीणो, पुब्बिद्वविहक्कमावदब्बं पेक्खिदूण संपहि विहक्कमाणदब्बस्स दुमागावादो ।
 एत्थ वि यागहारस्स अद्धं गंतुं दुग्गणीणी होदि । एवं जेद्वं जाव चरिमवग्गणे ति ।

अन्तिम गुणहानिके प्राप्त होने तक अवस्थित अज्ञान जाने पर कर्मप्रवेश आये आये होते हैं ।
 इसका झुलासा इस प्रकार है—अमर्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिसे अनन्तवर्ण
 भागप्रमाण निपेकभागहारका बिरलान करके उसके ऊपर अचन्य वर्णोंके कर्मप्रवेशोंके
 समान लण्ड करके वेनेपर एक एक अंकके प्रति वर्णव्यतिरोपका प्रमाण प्राप्त होता है ।
 यथा यहाँ पर वर्णोंके प्रति एक एक वर्णव्यतिरोप पट्टा जाता है अतः निपेकभागहारका
 भावा प्रमाण जानेपर अचन्य वर्णोंके प्रवेशोंसे वहाँ पर स्थित वर्णोंके प्रवेश होने हीन
 होते हैं । उसके बाद प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्णोंके भागहारसे ही दूसरी गुणहानिकी प्रथम
 वर्णोंके प्रवेशोंमें भाग वेनेपर वहाँका वर्णव्यतिरोप आया है । इतना विरोप है कि प्रथम गुणहानिके
 वर्णव्यतिरोपसे दूसरी गुणहानिका वर्णव्यतिरोप बूना हीन है, क्योंकि पहले जिस द्रव्यमें भाग दिया
 गया था वससे अब जिस द्रव्यमें भाग दिया गया है वह द्रव्य आया है । यहाँ भी भागहारका
 भावा प्रमाण जानेपर बूनी हानि होती है । इस प्रकार अन्तिम वर्णों पर्यन्त सेजाना चाहिए ।

विशेषार्थ—सूत्रम निगोदिया जीवका जा अचन्य वर्णस्थान है उसके परमाणुओंका कथन
 करनेके लिए यह अनुयागस्थान बड़े हैं । उनमेंसे प्रथम अनुयागहारका कथन अंकसहितसे इस
 प्रकार समझना चाहिए । अमर्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिसे अनन्तवर्ण भागप्रमाण निपेक-
 भागहारका प्रमाण १६ है और अचन्य वर्णोंके कर्मप्रवेशोंका परिमाण ५१२ है । निपेकभागहार
 १६ का बिरलान करके उसके ऊपर अचन्य वर्णोंके कर्मप्रवेशोंके १६ लण्ड करके एक एकके
 ऊपर वेनेसे एक एक रूपके प्रति वर्णव्यतिरोपका प्रमाण आता है । यथा—

३०	३०	३०	३२	३०	३२	३२	३०	३२	३२	३०	३२	३३	३२	३०	३०
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१

इसीका दूसरे प्रकारसे यहाँ कह सकते हैं कि अचन्य वर्णोंके कर्मप्रवेश ५१२ में निपेकभागहार
 १६ का भाग वेनेसे ३२ लण्ड आया है और यही प्रत्येक वर्णोंमें विरोप अथवा अचन्य प्रमाण
 आया है । अर्थात् प्रत्येक वर्णोंमें ३२, ३० परमाणु कम होते आते हैं । तथा निपेकभागहार १६
 का भावा ८ होता है अतः जब प्रत्येक वर्णोंमें ३२, ३० परमाणु कम होते आते हैं तो अज्ञान
 स्थान जानेपर आगेकी वर्णोंमें अचन्य वर्णोंके कर्मप्रवेशोंसे आये कर्मपरमाणु पाये जायेंगे
 यह स्वाभाविक ही है । जैसे ३१२, ४८, ४४८, ४१६, ३८४, ३५०, ३०, ३८ के अज्ञान स्थान
 जानेपर ०५६ कर्म परमाणु नर्वा वर्णोंमें आते हैं या कि प्रथम वर्णोंके कर्मप्रवेशोंसे आये हैं ।
 जिस प्रकार प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्णों ५१२ में निपेकभागहार १६ का भाग वेनेसे एक एक
 वर्णोंका ३२ अथवा या क्वी प्रकार दूसरी गुणहानिकी प्रथम वर्णोंके कर्मपरमाणु २५६ में

§ ५६१. एत्थ तिण्णि अणियोगहारिणि—परूवणा पमाणमप्पावहुअं चेदि । परूवणाए अत्थि णाणापदेसगुणहाणिट्ठाणंतरसलागाओ एगपदेसगुणहाणिअद्धाणं च । [परूवणा गदा ।]

§ ५६२. णाणापदेसगुणहाणिसलागाओ एगपदेसगुणहाणिअद्धाणं च अभवसिद्धिएहि अणतगुणं सिद्धाणमणंतभागमेत्तं होटि । पमाणपरूवणा गदा ।

§ ५६३. सव्वत्थोवाओ णाणापदेसगुणहाणिसलागाओ । एगपदेसगुणहाणिट्ठाणंतरमणंतगुणं । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागमेत्तो । एव सेट्ठिपरूवणा गदा ।

§ ५६४. पढमाए वग्गणाए कम्मपदेसपमाणेण सव्ववग्गणकम्मपदेसा केवडिएण कालेण अवहिरिज्जति ? अणंतएण कालेण अवहिरिज्जति । एवं णेट्ठवं जाव चरिम-

निषेकभागहार १६ का भाग देनेसे एक एक वर्गणाके प्रति चयका प्रमाण १६ आता है । यह चय पहलेके प्रमाणसे आधा है, क्योंकि पहले भाज्यराशिका प्रमाण ५१२ था और अब २५६ है । यहाँ भी निषेकभागहारका आधा अर्थात् आठ स्थान जानेपर कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आधा रह जाता है । इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए । यथा—

प्रथम कृणहानि	२ गुणहानि	३ गुणहानि	४ गुणहानि	५ गुणहानि	चरम गुणहानि
२८८	१४४	७२	३६	१८	९
३२०	१६०	८०	४०	२०	१०
३५२	१८६	८८	४४	२२	११
३८४	१९२	९६	४८	२४	१२
४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३
४४८	२२४	११२	५६	२८	१४
४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५
५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६

इस प्रकार जघन्य स्थानकी प्रथम वर्गणासे लेकर चरम वर्गणा पर्यन्त कर्मपरमाणुओंका प्रमाण जानना चाहिए ।

§ ५९१ इसका कथन करनेके लिये भी तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व । प्ररूपणाकी अपेक्षा नानाप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर शलाकाएँ हैं और एकप्रदेशगुणहानिअध्वान है । प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ५९२ नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाएँ और एकप्रदेशगुणहानिआयाम अभव्य राशिसे अनन्तगुणो और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण हैं । प्रमाणप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ५९३ नानाप्रदेशगुणहानिशलाकाएँ सबसे थोड़ी हैं । उनसे एकप्रदेशगुणहानिस्थानान्तर अनन्तगुणा है ? गुणकारका प्रमाण कितना है ? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकारका प्रमाण है ।

इस प्रकार श्रेणिप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ५९४ पहली वर्गणामें जितने कर्मप्रदेश हैं उतने प्रमाणसे यदि सब वर्गणाओंके कर्मप्रदेशोंका अपहार किया जाय तो कितने कालमें किया जा सकता है ? अनन्त कालमें उनका

वशात्तेति । अथवा दिवद्गुणहाणिहासंतरेण कालेन अवहिरिर्जाति ।

१ ५६५ तदो विदियाए वशात्ताए कम्मपदेसपमाणेण सम्भवमाणकम्मपदेसा केव विरेण कालेखं अवहिरिर्जाति ? साविरेयदिवद्गुणहाणिहासंतरेण कालेण अवहिरिर्जाति । तं जहा—पहमवग्गयाकम्मपदेसपमाणेया सम्भवग्गयाकम्मपदेसपिंढे क्खे दिवद्गुणहाणिमेत्तपहमवग्गयाओ होंति । मंपहि विदियादिवग्गयापहारकाले इच्छिक्खमाणे दिवद्गुणहाणि विरत्तेदूण सव्वदब्बं समत्वंड कादूण दिग्णं एक्के कस्स रुवस्स पहमवग्गपपमाणं पावदि । पुणो विदियवग्गपपमाणेण अवहिरिदुमिच्छामो ति हेहा भिसेग मामहारं विरत्तेदूण पहमवग्गयाए समत्वंड कादूण दिग्णाए एक्के कस्स रुवस्स वग्गपपमिसेसपमाणं पावदि । पुणो एत्थ एगकम्मपरिवदवग्गपमिसेसपमाणेण अवहिरियविरत्तवग्गपपदि विद्वपहमवग्गयाओ अनिदं अवपिदसेस दिवद्गुणहाणिमेत्तविदियवग्गयाओ होंति । अवपिदवग्गपमिसेसा पि दिवद्गुणहाणिमेत्ता होंति । पुणो एवे वि वप्पमाणेण कस्सामो । तं जहा—स्यूणगिसेगभागहारमेत्तवग्गपमिसेसे पेत्तूण जदि एगविदिय

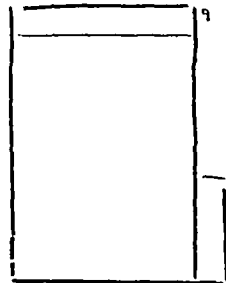
अपहार किया जा सकता है । इसी प्रकार अन्तिम वग्रा पर्यन्त से जाना चाहिये । अथवा डेढ़ गुणहानिस्वान्तरेण कालेन अवहिरिर्जाति हो सकता है ।

विशेषार्थ—अपहारकालसे सरल रूपसे समझनेके लिये अष्टवर्षदृष्टि इस प्रकार है—सब बर्ग्याओंके कर्मप्रवेशोंका प्रमाण ४९१५२ गुणहानिका प्रमाण ६४; डेढ़गुणहानि ९६, वां गुणहानि ६४ × २ = १२८; प्रथम बर्ग्या ५१२ बर्ग्याप्रवेशका प्रमाण वा गुणहानि अथवा नियेकमागहारसे भाजित प्रथम बर्ग्या ५१२ + १२८ = ४। पक्षी बर्ग्याके कर्मप्रवेश ५१२ से यदि सब बर्ग्याओंके कर्मप्रवेश ४९१५२ का अपहार किया जाय वा डेढ़ गुणहानि कालमें कलका अपहार हो सकता है ४९१५२ + ५१२ = ५६ = ६४ × १३ अर्थात् डेढ़ गुणहानि ।

१ ५९५ अन्तरे वृत्ती बर्ग्यामें जितने कर्मप्रवेश हैं वतने प्रमाणसे सब बर्ग्याओंके कर्मप्रवेशोंका अपहार कितने कालमें होता है ? कुछ अधिक डेढ़ गुणहानि स्वान्तरेण कलके द्वारा कलका अपहार होता है । कलका सुझासा इस प्रकार है—प्रथम बर्ग्यामें जितने कर्मप्रवेश हैं वतने प्रमाणसे नमस्त बर्ग्याओंके कर्मप्रवेशोंके पिण्ड करने पर डेढ़ गुणहानिप्रमाण प्रथम बर्ग्याएँ होती हैं । अथ द्वितीय भाषि बर्ग्याओंका अपहारकाल खाना इष्ट होनेपर डेढ़ गुणहानिका विरसन करके सब इन्वके समान कण्ड करके प्रत्येकके ऊपर बेनेपर एक एक बर्ग्याके प्रति प्रथम बर्ग्याका प्रमाण आता है । पुनः द्वितीय बर्ग्याके प्रमाणसे अपहार करनेकी इच्छा है इच्छिप नीचे नियेकमागहारका विरसन करके प्रत्येकके ऊपर सम कण्ड करके प्रथम बर्ग्याके बेनेपर एक एक रूपके प्रति बर्ग्याविरोपका प्रमाण आता है । पुनः वहाँ एक बर्ग्याके प्रति पात्र बर्ग्याविरोपके प्रमाणअपरिम विरसनके प्रत्येक एक पर स्थित प्रथम बर्ग्यामेंसे पठा बेनेपर डेढ़ गुणहानिप्रमाण द्वितीय बर्ग्याएँ होती हैं और पठये गये बर्ग्याविरोप भी डेढ़ गुणहानि प्रमाण होते हैं । पुनः इन्हें भी द्वितीय बर्ग्याके प्रमाणसे करते हैं । वसका सुझासा इस प्रकार है—एक कर्म नियेकमागहार प्रमाण बर्ग्याप्रवेशोंको लेकर यदि एक द्वितीय बर्ग्याका प्रमाण

१ वा मदी कालंतेव अवहिरिर्जाति इति पठ्य । २ वा मदी केवधिरि कालेव इति पठ्य ।

वगणपमाणं लब्धदि तो दिवडूगुणहाणिमेत्तवगणविसेसेसु केत्तियं विदियवगणपमाणं लभामो त्ति फलगुणिदिच्छाए पमाणेणोवट्टिदाए ज लद्ध त दिवडूगुणहाणीए पक्खित्ते सादिरेयदिवडूगुणहाणिमेत्तो विदियणिसेगभागहारो होदि । अधवा दिवडूगुणहाणिमेत्तं



पढमवगणाखेत्तं ठविय पुणो एगवगणविसेसविक्रवभ-दिवडूगुण-हाणिआयाममेत्तफालिमवणिदे सेसखेत्तं दिवडूगुणयामं विदियवगण-विक्रवभमेत्तं होदूण चेदुदि । पुणो त फालिं घेत्तूण विदियवगण-विक्रवभस्सुवरि तिरिच्छेण पादिय ठविदे दिवडूगुणयामपमाणं विदियवगणविक्रवभं ण पावदि । पुणो केत्तियमेत्तेण पावदि त्ति भणिदे गुणहाणिअद्धरूवणमेत्तवगणविसेसखेत्त जदि होदि तो

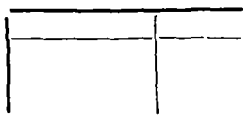
पावदि । पक्खेवख्वं पि एगं लब्धदि । ण च एत्तियखेत्तमत्थि तेण सादिरेयदिवडूगुण-हाणिहाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि त्ति सिद्धं ।

आता है तो डेढ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंमें द्वितीय वर्गणाओंका कितना प्रमाण प्राप्त होता है ऐसा त्रैराशिक करने पर फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे डेढ गुणहानिमें मिला देनेपर कुछ अधिक डेढ गुणहानिप्रमाण द्वितीय-वर्गणाका भागहार होता है । अथवा डेढ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाके क्षेत्रको स्थापित कके पुनः एक वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़ी और डेढ गुणहानिप्रमाण लम्बी फालिको निकाल देनेपर शेष क्षेत्र डेढ गुणहानि लम्बा और द्वितीय वर्गणाप्रमाण चौड़ा होकर स्थित रहता है । पुन उस फालिको लेकर द्वितीय वर्गणाके विष्कम्भके ऊपर तिरछे रूपसे स्थापित करने पर वह डेढ गुणहानि लम्बा होकर द्वितीय वर्गणाके विष्कम्भको नहीं प्राप्त होता है । पुन कितने मात्रसे प्राप्त होता है ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि यदि वर्गणाविशेषका क्षेत्र एक कम अर्द्ध गुणहानिप्रमाण और होता तो प्राप्त होता और प्रक्षेपरूप भी एक प्राप्त होता किन्तु इतना क्षेत्र नहीं है अत कुछ अधिक डेढ गुणहानि स्थानान्तर कालके द्वारा अपहार होता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—प्रथम वर्गणाके प्रमाणसे द्वितीय वर्गणाका प्रमाण एक वर्गणाविशेष हीन होता है, अत द्वितीय वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका प्रमाण $५१२-४=५०८$ है । इससे सब वर्गणाओंके कर्मप्रदेशों का अपहार करने पर $४९१५२-५०८=४९६४४$ कुछ अधिक डेढ गुणहानि प्रमाण अपहार काल होता है । डेढ गुणहानि ९६ का विरलन करके, सब द्रव्य ४९१५२ के समान खड करके प्रत्येकके ऊपर देने पर प्रथम वर्गणा ५१२ आती है—

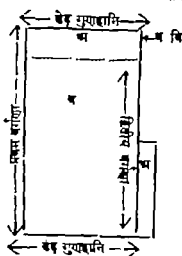
५१२	५१२	५१२	५१२	९६ वार।
१	१	१	१	

निष्केकभागाहार १२८ का विरलन करके प्रत्येकके ऊपर सम खड करके प्रथम वर्गणाके देनेपर



§ ५६६ तद्वियवगणपमाणेण अन्वहिरिन्जमाणे दोफालिमेत्ता वगणविसेसा हॉति । तामो दोफालीओ भायामेण सभिदे विफिण्णुखहाणिमेत्ता वगणविसेसा हॉति ? पुणो ते तद्वियवगणपमाणेण अन्वहिरिन्जमाणं दुरुवृणवगुणहाणिमेत्तवगण विसेसस्सत्त पेत्तूण पुम्बस्सत्तस्सुपरिं ठयिद्द पग भागाहारस्सवमहियं कम्मदि । पुणो

एक एकके मति वगणविरोधका प्रमाण आता है— $\frac{४}{१} \frac{४}{१} \frac{४}{१} \frac{४}{१}$ — — १२८ पार , इस वर्गाकारविरोधका अपरिम विरक्तन पर स्थिता बड़ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गाकारभ्रमेसे पटा देने पर (५१२-४) ९६ = ५८ × ९६ बड़ गुणहानि प्रमाण द्वितीय वर्गाकार्य हाती हैं । पटाये गये वगणविरोध मी बड़ गुणहानिप्रमाण हाते हैं ५१२ × ९६ = ५८ × ९६ = ४ × ९६ । यदि एक कम निषेकभागाहार (१२८-१) = १२७ वर्गाकारविरोधोंकी (१२७ × ४) एक द्वितीय वर्गाकार्य होती है तो बड़े गुणहानिप्रमाण वर्गाकारविरोधों (९६ × ४) की $\frac{९६ \times ४ \times १}{१२७ \times ४} = \frac{३८४}{५८}$ द्वितीय वर्गाकार्य होती है। $\frac{३८४}{५८}$ का बड़े गुणहानि ९६ में मिला देने पर कुल अधिक बड़े गुणहानि ९६ $\frac{३८४}{५८} = \frac{४९१५२}{५८}$ द्वितीय वर्गाकार्यका भागाहार होता है । अब क्षेत्रकी अपेक्षा इस भागाहारका सिद्ध करते हैं—बड़ गुणहानिप्रमाण लम्बा और प्रथम वगणप्रमाण चौड़ा क्षेत्र स्थापित करके उसमें से एक वर्गाकारविरोधप्रमाण चौड़े और बड़ गुणहानि प्रमाण लम्बे “अ” क्षेत्रको फलितरूपसे अलग करने पर शेष “ब” क्षेत्र बड़े गुणहानिप्रमाण लम्बा और द्वितीय वर्गाकार्यप्रमाण चौड़ा होकर स्थित रहता है । पुन द्वितीय वर्गाकार्यके विष्कम्भके उपर तिरछे रूपसे इस फलितरूप “अ” क्षेत्रमें स्थापित करनेपर द्वितीय वर्गाकार्यका विष्कम्भ पूरा नहीं प्राप्त होता । उसमें एक कम अर्ध गुणहानिप्रमाण वर्गाकार्य विरोधोंकी कमी रहती है । क्योंकि “अ” फलितरूप प्रमाण बड़े गुणहानि ९६ प्रमाण लम्बा और एक वर्गाकारविरोध ४ प्रमाण चौड़ा = ९६ × ४ है और द्वितीय वर्गाकार्यका प्रमाण ५८ = १२७ × ४ है । (१२७ × ४) - (९६ × ४) = ३१ × ४ अर्थात् द्वितीय वर्गाकार्य पूरा होनेमें एक कम अर्ध गुणहानि



($\frac{९४}{१}$ - १ = ९१) प्रमाण वर्गाकारविरोध (४) की कमी है । यदि

एक कम अर्धगुणहानिप्रमाण वर्गाकारविरोध और हाठे का एक द्वितीय वर्गाकार्य पूरा हो जाती । परन्तु इतना यहाँ नहीं है, अतः सब दृश्यका द्वितीय वर्गाकार्यके प्रमाणसे करनेके लिए वह सापेक्ष बड़े गुणहानिसे अपहृत होता है यह कहा है ।

§ ५९६ समस्त वर्गाकार्यको कर्मप्रवेशका पृथीय वर्गाकार्यके प्रमाणके द्वारा अपहार करने पर हा फलीमात्र वर्गाकारविरोध होते हैं । उन दो फलितरूपको भावामके साथ जोड़ देने पर तीन गुणहानि प्रमाण वर्गाकारविरोध होते हैं । पुन इन तीन गुणहानिप्रमाण वर्गाकारविरोधोंकी पृथीय वर्गाकार्यके प्रमाणसे अपहृत करने पर हा कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गाकारविरोध क्षेत्रका

दुख्वाहियगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसखेतमहियमत्थि । तम्हि तदियवग्गणपमाणेण कीरमाणे तप्पमाणं ण पूरेदि, चदुख्खूणगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसाणमभावादो । तेण सादिरेय ख्वाहियदिवडुगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि त्ति सिद्धं ।

§ ५६७. संपहि चउत्थवग्गणपमाणेण सञ्चदञ्चे अवहिरिज्जमाणे सादिरेय-दुख्वाहियदिवडुगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि । तं जहा—दिवडु-गुणहाणिमेत्तविकखंभतिणिवग्गणविसेसमेत्तखेत्ते अवणिदे अवसेसखेतं दिवडुगुणहाणि-विकखंभेण चउत्थवग्गणआयामेण अवचिद्धदि । पुणो अवणिदत्तिणिएण फालीओ तप्पमाणेण कस्सामो—तिरूवूणवेगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसु एगा चउत्थवग्गणा होदि त्ति अद्ध-वंचमगुणहाणिमेत्तवग्गणविसेसेसु वेचउत्थवग्गणाओ सादिरेयाओ होंति निणिए ण पूरेंति,

ग्रहण करके पहिले क्षेत्र पर रखने पर भागाहारमें एक रूपकी अधिकता प्राप्त होती है । पुन दो अधिक गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेष क्षेत्र अधिक है उसे तृतीय वर्गणाके प्रमाणसे करने पर उसके प्रमाणको पूरा नहीं करता, क्योंकि चार कम गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है । अत सातिरेक एक अधिक डेढ गुणहानि स्थानन्तर कालके द्वारा वह अपहृत होता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—तृतीय वर्गणाका प्रमाण (५०४) प्रथम वर्गणाके प्रमाण (५१२) से दो वर्गणा विशेष (२ × ४) कम होता है । पूर्वोक्त प्रकारसे प्रथम वर्गणाप्रमाण चौड़ा और डेढ गुणहानि प्रमाण लम्बा क्षेत्र स्थापित करके उसमेसे एक एक वर्गणाविशेषप्रमाण चौड़ी और डेढ गुणहानिप्रमाण लम्बी दो फालियोंको अलग करने पर शेष क्षेत्र तृतीय वर्गणाप्रमाण चौड़ा और डेढ गुणहानिप्रमाण लम्बा (५०४ × ९६) स्थित रहता है । पुनः उन दो फालियोंको आयामके साथ जोड़नेसे (१३ गुणहानि वर्गणाविशेष + १३ गुणहानि वर्गणाविशेष) तीन गुणहानि वर्गणाविशेष होते हैं (६४ × ३ × ४) = १९२ × ४ । इसको तृतीय वर्गणा (५०४ = १२६ × ४) के प्रमाणसे करने पर एक तृतीय वर्गणा और दो अधिक गुणहानि (६४ + २ = ६६) वर्गणाविशेष प्रमाण क्षेत्र शेष रह जाता है (१९२ × ४ - १२६ × ४ = ६६ × ४) । इस शेष क्षेत्र (६६ × ४) की पूरी तृतीय वर्गणा नहीं होती, क्योंकि (१२६ × ४ - ६६ × ४ = ६० × ४) चार कम गुणहानिप्रमाण (६४ - ४ = ६०) वर्गणाविशेष (४) की कमी है । अतः तृतीय वर्गणाका अपहार काल कुछ विशेष एक अधिक डेढ गुणहानिप्रमाण है $९६ + १ + \frac{६६}{१२६} = ९७ \frac{६६}{१२६}$, $\frac{४६१५२}{५०४} = ९७ \frac{६६}{१२६}$ ।

§ ५९७ अब चतुर्थ वर्गणाके प्रमाणके द्वारा समस्त द्रव्यको अपहृत करने पर दो अधिक डेढ गुणहानिसे कुछ अधिक स्थानन्तर कालके द्वारा अपहृत होता है । उमका खुलासा इस प्रकार है—डेढ गुणहानिप्रमाण लम्बे और तीन वर्गणाविशेष प्रमाण चौड़े क्षेत्रको अलग करने पर शेष क्षेत्र डेढ गुणहानि प्रमाण लम्बा और चतुर्थ वर्गणाप्रमाण चौड़ा अवस्थित रहता है । फिर अलगकी हुई तीन फालियोंको चतुर्थ वर्गणाके प्रमाणसे करते हैं—यदि तीन कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी एक चतुर्थ वर्गणा होती है तो साढे चार गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी चतुर्थ वर्गणाएँ कुछ अधिक दो होती हैं, तीन पूरी तीन नहीं होतीं, क्योंकि

णवषगणविसैखणदिवद्गुणहाणिमेतवगणविसैसाणमभावादो । तेण सादिरेयदुस्माहिय दिवद्गुणहाणिहाणंतरेण कालेण अबहिरिज्जदि ति सिद्धं ।

१ ५६८ पंचमवगणपमाणाण अबहिरिज्जमाणे सादिरेयतिरुमाहियदिवद्गुण- हाणिहाणंतरेण कालेण सम्बदज्वमभहिरिज्जदि । दिवद्गुणसैखणि पंचमषगणपमाणायद दिवद्गुणहाणिविकल्पमलेसे अबणिदे सम्बरिदद्गुणहाणिमेतवगणविसैसैम्हा सादिरेय तिषिणपंचमषगणपमाणमुपलभादो । चत्तारि रूमाणि ण पूरति, सोल्लसवगणविसैसैहि पूषदोगुणहाणिमेतवगणविसैसाणमभावादो ।

नौ वर्गव्यतिरोप कम डढ़ गुणहानिप्रमाय वर्गव्यतिरोपका अभाव है, अतः वा अधिक डढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक स्वानान्तर कालके द्वारा इसका अपहार हाता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—चौथी वर्ग्या ५० से समस्त द्रव्य ४९१५० का अपहार करने पर $\frac{४९१५०}{५००}$

$९८ \frac{१५०}{५} = ९८ \frac{३८}{१०५}$ अर्थात् वा अधिक डढ़ गुणहानि ($९६ + ० = ९८$) से कुछ अधिक

$\frac{३८}{१०५}$ अपहारकाल प्राप्त होता है । पूर्वोक्त डढ़ गुणहानिप्रमाय (९६) लम्बे और प्रथम वगणप्रमाय

(५१०) चौड़ क्षेत्र में से डढ़ गुणहानि प्रमाय (९६) लम्बे और तीन वर्गव्यतिरोप (३×४)

प्रमाय चौड़ क्षेत्रका अलग करनेपर शेष क्षेत्र डढ़ गुणहानिप्रमाय (९६) लम्बा और पशुर्ष वर्ग्या

(५०) प्रमाय चौड़ा अवस्थित रहता है । यदि तीन कम वा गुणहानि ($६४ \times ० - ३ - १५$)

वर्गव्यतिरोप (४) की एक पशुष वर्ग्या (५) प्राप्त होती है वा अलग महसु किये

गये क्षेत्र (डढ़ गुणहानि $\times ३ \times ४ =$ साडे चार गुणहानि $\times ४ = ३ \times ६४ \times ४$) की कुछ अधिक वा

चौथी वर्ग्यार्थ प्राप्त होती है $३ \times ६४ \times ४ \times १ + १०५ \times ४ = \frac{३२ \times ९ \times ४}{१०५ \times ४} = ० \frac{३८}{१०५}$ । पशुष

वग्या पूरी तीन नहीं होती क्योंकि पूरी तीन होनेमें नौ कम डढ़ गुणहानिप्रमाय वर्ग्या

विरायोकी कमी है ($३ \times १२५ \times ४ - ३० \times ६ \times ४ = ८० \times ४ = ६६ - ६ \times ४$) । अतः समस्त द्रव्य

के चौथी वर्ग्याके प्रमायसे करने पर बह वा अधिक डढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा

अपहृत हाता है यह कहा है ।

१ ५६८ चौथी वर्ग्याके प्रमायसे अपहृत करने पर समस्त द्रव्य तीन अधिक डढ़

गुणहानिसे कुछ अधिक स्वानान्तर कालके द्वारा अपहृत हाता है । डढ़ गुणहानि प्रमाय क्षेत्रमें

से चौथी वर्ग्याप्रमाय आबामबले और डढ़ गुणहानिप्रमाय विस्तारबल क्षेत्रका अलग

करने पर शेष रहे डढ़ गुणहानिप्रमाय वर्ग्याविरायोमें चौथी वर्ग्याके साधिक तीन प्राप्त

हैं । पूरी चार नहीं प्राप्त होती; क्योंकि सातह वर्गव्यतिरोप कम वा गुणहानिप्रमाय वर्ग्या-

विरायोका अभाव है ।

विशेषार्थ—पौचवी वर्ग्या (४६६) के प्रमायसे समस्त द्रव्य (४२१५०) का अपहृत करने

पर तीन अधिक डढ़ गुणहानिसे कुछ अधिक काल प्राप्त हाता है ($\frac{४२१५०}{४६६} = ९६ \frac{१०}{२२४}$) । क्षेत्र

की अवस्था डढ़ गुणहानि प्रमाय (६६) लम्बे और चार वग्या विराय प्रमाय चौड़ (४×४)

क्षेत्रका अलग करनेपर शेष क्षेत्र पौचवी वर्ग्याप्रमाय (४६६) चौड़ा और डढ़ गुणहानि

§ ५६६. सपहि ळद्ववगणपमाणेण सच्चदव्ये अरहिरिज्जमाणे साट्टिरेयतिणिण-
रूवाहियदिवडुगुणहाणिमेत्तकालेण अरहिरिज्जट्टि । ट्टिडुगुणहाणिमेत्तपढमवगणामु
छद्ववगणपमाणे अवणिदे अवणिदसेसअद्धद्वगुणहाणिमेत्तवगणविसेसेमु' साट्टिरेय-
तिण्हं रूवाणमुवलंभादो । चत्तारि रूवाणि ण पूरंति, वीसवगणविसेसहीणअद्धगुणहाणि-
वगणविसेसाणमभावादो ।

§ ६००. संपहि सत्तमवगणपमाणेण सच्चदव्ये अरहिरिज्जमाणे साट्टिरेयचदु-
रूवाहियदिवडुगुणहाणिट्टाणतरेण कालेण अरहिरिज्जट्टि । दिवडुगुणहाणिमेत्तपढम-
वगणामु सत्तमवगणाए अवणिटाए तत्थुव्वरिट्ठणवगुणहाणिमेत्तवगणविसेसेमु

प्रमाण (६६) लम्बा रहता है । अलग किये हुए क्षेत्र (डेढ गुणहानि $१\frac{१}{२} \times ६४ \times ४ \times ४ = ६ \times ६४ \times ४$) में से पाँचवाँ वर्गणा पूरी चार ($५६६ \times ४ = १२४ \times ४ \times ४$) प्राप्त नहीं होती, क्योंकि ($१२४ \times ४ \times ४ - ६ \times ६४ \times ४ = ११२ \times ४ = २ \times ६४ - १६ \times ४ = १२८ - ६४ \times ४$) सोलह कम दो गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है, इसलिए समस्त द्रव्यको पाँचवाँ वर्गणाके प्रमाणसे करनेपर वह तीन अधिक डेढ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है ।

§ ५९९ अब छठी वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करने पर वह तीन अधिक डेढ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहन होता है । डेढ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाओंमेंसे छठी वर्गणाके प्रमाणका अलग करने पर अलग किये गये क्षेत्र साढे सात गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंमें छठी वर्गणां कुछ अधिक तीन प्राप्त होती हैं । पूरी चार नहीं प्राप्त होती, क्योंकि वीस वर्गणाविशेष कम अर्द्ध गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंका अभाव है ।

विशेषार्थ—छठवाँ वर्गणा (४६२) से समस्त द्रव्य ४९१५२ का अपहरण करनेपर तीन अधिक डेढ गुणहानि ($६६ + ३ = ९९$) से कुछ अधिक काल आता है $\frac{४९१५२}{४९२} = ९९ \frac{१११}{१२३}$ ।

पूर्वोक्त प्रकारसे डेढ गुणहानि लम्बे और पाँच वर्गणाविशेष प्रमाण चौडे क्षेत्रको अलग करनेपर छठवाँ वर्गणाप्रमाण (४९२) चौड़ा और डेढ गुणहानिप्रमाण (६६) लम्बा क्षेत्र शेष रहता है । अलग किए हुए साढे सात गुणहानि वर्गणाविशेष प्रमाण ($१\frac{१}{२}$ गुणहानि $\times ५$ वर्गणाविशेष $= ७\frac{१}{२}$ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेष $= \frac{१५}{२} \times ६४ \times ४$) क्षेत्रमें कुछ अधिक तीन छठी वर्गणाएँ प्राप्त होती हैं ($\frac{१५}{२} \times ६४ \times ४ = ३ \times १२३ \times ४ + १११ \times ४$) । छठवाँ वर्गणा पूरी चार नहीं प्राप्त होती, क्योंकि वीस कम अर्द्ध गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंकी कमी है ($४ \times १२३ \times ४ - ३ \times ६४ \times ४ = १२ \times ४ = \frac{६४}{२} - २० \times ४$) । अतः सब द्रव्यको छठवाँ वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह तीन अधिक डेढ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है ।

§ ६०० अब सप्तम वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्यका अपहरण करनेपर वह कुछ विशेष चार अधिक डेढ गुणहानिप्रमाण काल द्वारा अपहृत होता है । डेढ गुणहानिप्रमाण प्रथम वर्गणाओंमेंसे सातवाँ वर्गणाके अलग करने पर वहा शेष रहे नौ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोंमें

सादिरयचतुर्भुवनंभोदो । पंचरूपाणि च पूरति, तीसवर्गगणविसेमूपापगुणद्वान्णियेत
पगणविसेसाणमभावाद्दो ।

§ ६०१ संपदि महमवगणपमाणेण सव्वदम्भे अवहिरिज्जमाणे सादिरयपंच
स्वादिपदिबहुगुणहाणिहाणतरण कालेण अवहिरिज्जदि । पडमवगणविस्त्वंमदिबहु
गुणहाणिमायदस्सेत्तम्मि महमवगणविस्त्वंमदिबहुगुणहाणिमायदस्सेत्ते अवणिदे उच्च
रिदसत्तफालीसु सादिरयपंचमवगणपमाजुप्पतीदो । छमहमवगणाओ ण उप्पज्जति,
वादात्तीसवगणविसेमूपादिवहुगुणहाणिमेत्तवगणविसेसाणमभावाद्दो ।

सातवीं वर्ग्यापें कुल अधिक चार प्राप्त होती हैं । पूरी चौं च नहीं प्राप्त होती, क्योंकि तीस वर्ग्या
विरोप कम एक गुणहनिप्रमाण वर्ग्याविरोपोंका अभाव है ।

विशेषार्थ—सातवीं वर्ग्याके प्रमाण ($४८८ = १२२ \times ४$) से समस्त रूप्य ४९१५० का
अपहरण करने पर चार अधिक डेढ़ गुणहानि ($९६ + ४ = १$) से कुल अधिक काल आता
है। $\frac{४९१५०}{४८८} = १ \frac{८८}{१२०}$ । डेढ़ गुणहनिप्रमाण लम्बे और प्रथम वर्ग्याप्रमाण चौड़े क्षेत्रमें

से डेढ़ गुणहानि लम्बे और छह वर्ग्याविरोपप्रमाण चौड़े अथवा ($१२ \times ६ = ९$) नौ गुण
हानि वर्ग्याविरोपप्रमाण क्षेत्रका अलग करने पर डेढ़ गुणहानि लम्बा और सातवीं वर्ग्या
प्रमाण चौड़ा (९६×४८८) क्षेत्र शेष रहता है । अलग किये हुए क्षेत्र ($९ \times ६४ \times ४$) में
सातवीं वर्ग्यापें कुल अधिक चार प्राप्त होती हैं ($९ \times ६४ \times ४ = ४८८ \times ४ + ८८ \times ४$) ।
चौं च अष्ट पूरा नहीं होता क्योंकि तीस वर्ग्याविरोप कम गुणहनिप्रमाण वर्ग्याविरोपोंकी
कमी है ($९ \times ४८८ - ९ \times ६४ \times ४ = ६४ \times ४ - १० \times ४$), इसलिये सब रूप्यका
सातवीं वर्ग्याके प्रमाणसे करने पर बह चार अधिक डेढ़ गुणहनिसे कुल अधिक कालके द्वारा
अपहृत जाता है यह कहा है ।

§ ६१ अब आठवीं वर्ग्याके प्रमाणसे समस्त रूप्यका अपहरण करने पर बह कुल
विरोप चौं च अधिक डेढ़ गुणहानि स्थानान्तर कालके द्वारा अपहृत जाता है । प्रथम वर्ग्याप्रमाण
विस्तारवासे और डेढ़ गुणहनिप्रमाण आयामवासे क्षेत्रमेंसे आठवीं वर्ग्याप्रमाण विस्तारवासे
और डेढ़ गुणहनिप्रमाण आयामवासे क्षेत्रको अलग करने पर, शेष रही मात्र पञ्चविंशति आठवीं
वर्ग्या कुल अधिक चौं च अपहृत होती हैं । आठवीं वर्ग्या छह लम्बे मही होती, क्योंकि
विवासीम वर्ग्याविरोप कम डेढ़ गुणहनिप्रमाण वर्ग्याविरोपोंका अभाव है ।

विशेषार्थ—आठवीं वर्ग्या ($४८४ = १२१ \times ४$) में समस्त रूप्य ४९१५० का अपहृत
करने पर कुल विरोप चौं च अधिक डेढ़ गुणहानि ($९६ + ४ = १$) से कुल अधिक काल प्राप्त
जाता है। $\frac{४९१५०}{४८४} = १ \frac{६०}{१२१}$ । डेढ़ गुणहनिप्रमाण लम्बे और आठवीं वर्ग्याप्रमाण चौड़े

क्षेत्रमेंसे डेढ़ गुणहनिप्रमाण लम्बे और आठवीं वर्ग्याविरोपप्रमाण चौड़े क्षेत्रका अलग करने पर
शेष रहे सात वर्ग्याविरोपप्रमाण चौड़े और डेढ़ गुणहनिप्रमाण लम्बे क्षेत्र ($९६ \times ४ \times ४$)
में आठवीं वर्ग्या कुल अधिक चौं च अपहृत होती हैं ($९६ \times ४ \times ४ = ९६ \times ४८४ + ६४ \times ४$) । अत्र
अष्ट पूरा नहीं जाता क्योंकि विवासीम वर्ग्याविरोप कम डेढ़ गुणहनिप्रमाण वर्ग्याविरोपोंकी
कमी है ($६ \times ४८४ - ९६ \times ४ \times ४ = ५४ \times ४ - ५६ \times ४ - ४० \times ४$) अतः सब रूप्यका आठवीं

वन्धरासी अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागो । अजहण्णअणुकस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा अणतगुणा ५७७६ । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणतिमभागो किंचूणदिवड्डुगुणहाणिमेत्तो वा । अजहण्णियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ५७८८ । केत्तियमेत्तेण ? उक्खस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण । अणुकस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६२६१ । के० मेत्तेण ? उक्खस्सवग्गणकम्मपदेसूणजहण्णवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण । सव्वासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६३०० । के० मेत्तेण ? उक्खस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण ।

एवमेसा परूवणा जहण्णाणुभागस्स कदा ।

१ ६०६. जदि एदस्स टाणस्स चरिमफइयचरिमवग्गणाए एगो वग्गो चेव जहण्णाणुभागटाणं होदि तो तं भोत्तूण अवसेसवग्ग-वग्गणा-फइयपदेसाण परूवणा असंवद्धिया, जहण्णटाणपरूवणाए अजहण्णटाणपरूवणाणुववत्तीदो त्ति ? ण, एदं

अन्योन्याभ्यस्तराशि गुणकारका प्रमाण है जो अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है । अजघन्य अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश अनन्तगुणे हैं ५७७९ । गुणकार कितना है ? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण कुछ कम डेढ़ गुणहानि मात्र गुणकारका प्रमाण है । अजघन्य वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक है ५७८८ । कितने अधिक हैं ? उत्कृष्ट वर्गणाके जितने कर्मप्रदेश हैं उतने अधिक हैं । अनुत्कृष्ट वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ६२९१ । कितने अधिक हैं ? उत्कृष्ट वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे हीन जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशप्रमाण अधिक हैं । सब वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ६३०० । कितने अधिक हैं ? उत्कृष्ट वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

विशेषार्थ—पहले विशेषार्थमें सब वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण अङ्कसदृष्टिसे ६३०० बतला आये हैं तथा प्रत्येक वर्गणांमें उनका वटवाग करके प्रत्येक वर्गणाके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण भी बतला आये हैं । उस वटवारके अनुसार सबसे प्रथम वर्गणांमें, जो कि जघन्य वर्गणा है, ५१२ कर्मपरमाणु हैं और सबसे अन्तिम वर्गणांमें, जो कि उत्कृष्ट वर्गणा है, ९कर्मपरमाणु हैं अत जघन्य और उत्कृष्टके सिवाय शेष वर्गणाओंमें कितने परमाणु हैं ? इस प्रश्नका सरल उत्तर यह है कि जघन्य वर्गणा और उत्कृष्ट वर्गणाके परमाणुओंको सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे घटा देना चाहिए । यथा— $५१२ + ९ = ५२१$ । $६३०० - ५२१ = ५७७९$ इतने शेष वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आता है । इसी तरह सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे जघन्य वर्गणाके परमाणुओंको कम करनेसे $६३०० - ५१२ = ५७८८$ अजघन्य वर्गणाओंके परमाणुओंका प्रमाण आता है । तथा सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे उत्कृष्ट वर्गणाके परमाणुओंको घटा देनेसे $६३०० - ९ = ६२९१$ अनुत्कृष्ट वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आता है । इस प्रकार उत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य-अनुत्कृष्ट, अजघन्य और अनुत्कृष्ट वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंकी सख्या जान लेने पर उनमें अल्पबहुत्व लगा लेना चाहिए ।

इस प्रकार जघन्य अनुभागकी यह प्ररूपणा हुई ।

१ ६०६ शंका—यदि इस अनुभागस्थानके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाका एक वर्ग ही जघन्य अनुभागस्थान है तो उसके सिवा शेष वर्गों, वर्गणाओं और स्पर्धकोंके प्रदेशोंका कथन करना असंगत है, क्योंकि जघन्य स्थानकी प्ररूपणांमें अजघन्य स्थानकी प्ररूपणा नहीं बन सकती ।

महण्णहाणं केवलं न होदि, किंतु एवविहवन्मा-अभाणा-फहयपदेसाविणाभावि पि
 भाभापचह कयपरुमणाए महण्णहाणपरुमणत्त पडि विरोहाभावादो । संपहि एदं
 महण्णहाणं सम्बनीवरासिमेत्तकूबेहि स्वंडिय सस्य एगळदं घेतुण महण्णहाणं पडिरासिय
 तस्य एदम्मि पक्खेपे पक्खित्ते विदियमणुभागहाणं होदि । जेदं पददे, एवविहस्स
 अणुभागहाणस्स बंधादो पादादो वा उप्पत्तीए अणुवचतीदो । न ताव बंधादो
 उप्पज्जदि, सरिसवणियअणंतपरमाणहि हेडिमणंतवन्माणा फहयपदेसानिणाभावीहि विणा
 एहस्सेव परमाणुस्स वपागमणविरोहादो । न च कम्ममि परमाण् अत्थि, अणंतान्त
 परमाणुसमुत्पयसपाममेण तस्य एगेवन्माणसमुत्पत्तीदो । न च एहिस्से बगणाए पि
 बंधो अत्थि, मय्यताणत्तवन्माणाहि विणा एगसमयपवद्धानुवचतीदो । न च वज्जमाण
 कम्मवत्तंपम्मि अप्पिदेगपरमाणु मोत्तूण अनसेसकम्मपदेसा पुम्मिप्सअणुभागहाणम्मि
 सरिसवणिया होट्टा अज्जदि, अणंतानुम्बवग्ग-वग्गणा-फहएहि विणा अणुभाग-
 वट्टीए अणुवचतीदो । न च पावण वि उप्पज्जदि, अणंतवन्मा-अभाणा फहयपदेसा पादे कदे
 तस्य एगपरमाणुस्स हेडिमएगवन्माणुमागादो सम्बनीवरासिपडिभागानिभागपडिप्पत्तं
 अम्महिपस्स अवहाणुवचतीदो । तन्हा एसा अणुभागवट्टी न जुज्जदे ? एस्य परिहारो

समाधान-—नहीं, क्योंकि यह अथन्य अणुभागस्वान अकेला नहीं होता है, किन्तु इस
 प्रकारके वर्ग वर्गोंका स्पर्श और प्रवेशोंका अविनाभावी हावा है यह बतलानेके लिये पूर्वमें की
 गई प्रहणाममें अथन्य अणुभागस्वानक कथनके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

अब इस अथन्य स्वानके सब बीबराशिरामाय लण्ड कर और बनमेंसे एक लण्ड लेकर
 अथन्य स्वानके प्रतिराशि बनाकर हसमें इस प्रवेशके प्रक्षिप्त कर देनेपर दूसरा अणुभागस्वान
 होता है ।

संज्ञा-—यह दूसरा अणुभागस्वान बटित नहीं होता है, क्योंकि इस प्रकारका अणुभाग-
 स्वान न वा बंधसे ही उत्पन्न होता है और न पावसे ही उत्पन्न होता है । बंधसे वा लयन होता
 ही नहीं क्योंकि नीचेकी अनन्त वर्गोंका स्पर्श और प्रवेशोंके अविनाभावी समान बनबासे
 अनन्त परमाणुओंके बिना अकेले एक ही परमाणुका बंधके लिए आगमन माननेमें विरोध
 जाता है । तथा कर्ममें एक परमाणु है तो नहीं क्योंकि वहाँ अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदाय
 समागमसे एक एक वर्गोंकी उत्पत्ति होती है । शाब्द कहा जाय कि एक वर्गोंका ही अर्थ
 हावा है सा भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्तानन्त वर्गोंकाओंके बिना एक समयप्रवृत्त
 नहीं बनता । शाब्द कहा जाय कि बंधनेवाले कर्मरूपमें विच्छिन्न एक परमाणुका जाइकर
 रोप सब कर्मप्रवेश पहलेंके अणुभागस्वाममें समान बनबासे होकर रहते हैं, सा भी ठीक नहीं है,
 क्योंकि अनन्त अपूर्व वर्ग, वर्गोंका और स्पर्शकोंके बिना अणुभागकी वृद्धि नहीं हो सकती अतः
 इस प्रकारके अणुभागस्वानकी बंधसे तो उत्पत्ति हो नहीं सकती और न पावसे ही उत्पत्ति
 होती है, क्योंकि अनन्त वर्ग, वर्गोंका और स्पर्शकोंका पाव करने पर वहाँ अथन्य एक वर्गोंका
 अणुभागसे सर्व बीबराशिको प्रतिभाग बनाकर अविभागप्रतिषेधोंसे अधिक एक परमाणुका
 अथन्य पाया जाता है, अतः यह अणुभाग वृद्धि ठीक नहीं है ।

§ ६०२. णवमवगणपमाणेण सव्वद्व्ये अवहिरिज्जमाणे क्वेवचिरेण कालेण अवहिरिज्जदि ? सादिरेयल्लरूवाहियदिवदुगुणहाणिट्ठाणंतरेण कालेण अवहिरिज्जदि । कारणं चित्तिं वत्तव्वं ।

§ ६०३. सपहि का वगणा दोगुणहाणिपमाणेण अवहिरिज्जदि ? पढमगुणहाणीए अद्धं गंतूण जा छिदा सा अवहिरिज्जदि । पढमवगणविमखंभं चत्तारि फालीओ फाऊण तत्थेगफालिं घेत्तूण गुणहाणिअद्धपमाणेण आयामेण ग्वदिय तीसु चदुब्भागखडेसु समयविरोहेण होइदे चदुब्भागूणपढमवगणविमखभवे-
गुणहाणिआयदखेत्तुप्पत्तिदंसणादो । एत्तो उवरिमखेत्तविण्णासो तेरासियकमो च जाणिय वत्तव्वो जाव जहएणट्ठाएचरिमवगणे च्चि, विसेसाभावादो ।

एवमवहारो गदो ।

वर्गणाके प्रमाणसे करने पर वह पाँच अधिक डेढ गुणहानिसे कुछ अधिक कालके द्वारा अपहृत होता है यह कहा है ।

§ ६०२ नौवीं वर्गणाके प्रमाणसे समस्त द्रव्य अपहृत होने पर वह कितने कालके द्वारा अपहृत होता है ? कुछ विशेष छह रूप अधिक डेड़ गुणहानिप्रमाण कालके द्वारा अपहृत होता है । कारण जान कर कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—नौवीं वर्गणा (४८० = १२० × ४) से समस्त द्रव्य ४९१५० को अपहृत करने पर छह रूप अधिक डेढ गुणहानि (९६ + ६ = १०२) से कुछ अधिक काल प्राप्त होता है $\frac{४९१५२}{४८०} = १०२ \frac{४८}{१२०}$ । सातवाँ अङ्क पूरा नहीं होता, क्योंकि चौबीस वर्गणाविशेष कम डेढ गुणहानिप्रमाण वर्गणाविशेषोकी कमी है (७ × ४८० - ९६ × ८ × ४ = ७२ × ४ = ९६ × ४ - २४ × ४) । इसीप्रकार दसवीं, ग्यारहवीं, बारहवीं आदि वर्गणाओंका अपहार काल लाना चाहिये ।

§ ६०३ अब कौनसी वर्गणा दो गुणहानिप्रमाण कालसे सब द्रव्यके अपहृत होने पर आती है ? प्रथम गुणहानिका अर्ध भाग स्थान जाकर जो वर्गणा स्थित है वह सब द्रव्यके अपहृत होनेपर आती है । प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारकी चार फालिया करके, उनमेंसे एक फाली ग्रहण कर गुणहानिके अर्धभागप्रमाण आयामसे उसके सण्ड कर, उस चतुर्थ भागके तीन सण्डों को नियमानुसार मिला देनेपर चौथा भाग कम प्रथम वर्गणाप्रमाण विस्तारवाला और दो गुणहानि आयामवाला क्षेत्र उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है । इससे आगेका क्षेत्रविन्यास और त्रैशिक क्रम जघन्य स्थानकी अन्तिम वर्गणाके प्राप्त होने तक जानकर कहना चाहिये, क्योंकि कोई विशेषता नहीं है ।

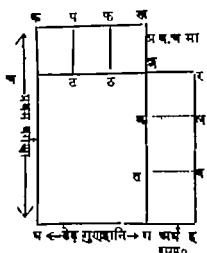
विशेषार्थ—गुणहानि (६४) का आधा (३२) स्थान जाकर जो वर्गणा (३८४) प्राप्त होती है । उससे समस्त द्रव्य (४९१५२) को अपहृत करने पर दो गुणहानि (६४ × २ = १२८) काल प्राप्त होता है $\frac{४९१५२}{३८४} = १२८$ । प्रथम वर्गणाप्रमाण (५१२) चौडे और डेढ गुणहानि

§ ६०४ भागाभागं ब्रह्मिण्याय बग्गणाए कम्मपदेसा सम्बग्गणकम्मपदेसाणं केपडिमो मामो ? अर्पतिमभागो । एमं पेदम्बं जाय चरिमबग्गणे पि ।

भागाभाग गर्द ।

§ ६०५ अप्पाबहुर्धं—सम्बत्थोवा उक्कस्सियाए बग्गणाए कम्मपदेसा ६ । ब्रह्मणाए बग्गणाए कम्मपदेसा अर्पतगुणा ५१२ । को गुणगारो ? किंभूणज्जोण-

प्रमास्य (९६) सम्बे क्षेत्र प क ख ग में से प्रथम बर्ग्याप्रमास्य विस्तारका एक चौथा भाग प्रमास्य क प चौथा और डेड़ गुण्यहानि लम्बा क्षेत्र प क ख ग के लम्बाईकी अपेक्षा अर्ध गुण्यहानि प्रमास्य (३२) लम्बे तीन लण्ड क प ट व प फ ठ ट, फ म् ड ठ को रेखा ज ग की बाईं ओर इस प्रकार स्थापित करो कि रेखा प ट जो अर्ध गुण्यहानि (३२) लम्बी है वह रेखा प ग की सीध में बाईं तरफ खूकर ग ह का रूप धारण कर ल और रेखा क व जो प्रथम बर्ग्याका चौथा भाग है वह रेखा ग ख पर पड़कर 'त' स्वन उत्पन्न हो जाव । रेखा ट प रेखा ह व का और रेखा क प रेखा त व का रूप धारण कर लेती है । इस प्रकार क्षेत्र प क प ट की बजाय क्षेत्र ग ह व त बन जाता है । इसी प्रकार क्षेत्र ट प फ ठ की रेखा ठ ठ को अप गुण्यहानिप्रमास्य (३२) लम्बी रेखा त व पर रखकर रेखा ट प को रेखा त ख पर रखनेसे प्रथम बर्ग्याके एक चौथा भाग स्वाम व तक जाती है । अब क्षेत्र ट प फ ठ की बजाय क्षेत्र त व ख व बन जाता है । इसी प्रकार रेखा ठ ख को रेखा व ख पर रखनेसे और रेखा ठ फ को रेखा व ख पर बिन्दु व से ख तक पहुँचा देनेसे क्षेत्र ठ फ ख ख की बजाय क्षेत्र व ख र ल बन जाता है । इससे रेखा प ग जो डेड़ गुण्यहानि प्रमास्य लम्बी थी उसमें अर्ध गुण्यहानि लम्बी रेखा ग ह के मिल जानेसे रेखा प ह दो गुण्यहानि प्रमास्य लम्बी हो जाती है और प्रथम बर्ग्याप्रमास्य रेखा प क में से एक चौथा प्रथम बर्ग्या प्रमास्य रेखा क व कम हो जानेसे रेखा प व तीन चौथा प्रथम बर्ग्याप्रमास्य रह जाती है । इस प्रकार मनीन क्षेत्र प व र ह वा गुण्यहानिप्रमास्य लम्बा और चौथा भाग कम प्रथम बर्ग्या प्रमास्य चौथा बन जाता है जिसका क्षेत्रफल क्षेत्र प क ख ग के बराबर है । प्रथम बर्ग्याकी तीस चौथा भागप्रमास्य यही कह बगला है जा समस्त ब्रह्मके द्वागुण्यहानिसे अपहृत करने पर जाती है ।



इस प्रकार अपहारकस समाप्त हुआ ।

§ ६०४ भागाभाग—अपन्व बर्ग्यामें कर्मपदेरा सब बर्ग्याओंके कितने भागप्रमास्य हैं ? अनन्तवर्धे महाप्रमास्य हैं । इस प्रकार चरम बर्ग्या पर्यन्त जानना चाहिए । इस प्रकार भागाभाग समाप्त हुआ ।

§ ६०५ अब अस्पष्टबुद्ध करते हैं—अच्छ बर्ग्यामें कर्मपदेरा सबसे बाड़े हैं ९ । अधम्य बर्ग्यामें कर्मपदेरा अनन्तगुण्ये हैं ५१२ । गुण्यकरका प्रमास्य क्या है ? कुछ कम

वभत्थरासी अभर्वासिद्धि एहि अणंतगुणो सिद्धाणंतिमभागो । अजहण्णअणुकस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा अणतगुणा ५७७६ । को गुणगारो ? अभवसिद्धि एहि अणंतगुणो सिद्धाणतिमभागो किंचूणदिवड्डुगुणहाणिमेत्तो वा । अजहण्णियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ५७८८ । केत्तियमेत्तेण ? उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण । अणुकस्सियासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६२६१ । के० मेत्तेण ? उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसुणजहण्णवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण । सव्वासु वग्गणासु कम्मपदेसा विसेसाहिया ६३०० । के० मेत्तेण ? उक्कस्सवग्गणकम्मपदेसमेत्तेण ।

एवमेसा परूवणा जहण्णाणुभागस्स कदा ।

१ ६०६. जदि एदस्स ट्ठाणस्स चरिमफद्दयचरिमवग्गणाए एगो वग्गो चैव जहण्णाणुभागट्ठाणं होदि तो तं मोत्तूण अवसेसवग्ग-वग्गणा-फद्दयपदेसाणं परूवणा असंबद्धिया, जहण्णट्ठाणपरूवणाए अजहण्णट्ठाणपरूवणाणुववत्तीदो त्ति ? ण, एदं

अन्योन्याभ्यस्तराशि गुणकारका प्रमाण है जो अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है । अजघन्य अनुक्कट्ट वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश अनन्तगुणो हैं ५७७९ । गुणकार कितना है ? अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण कुछ कम डेढ गुणहानि मात्र गुणकारका प्रमाण है । अजघन्य वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक है ५७८८ । कितने अधिक हैं ? उक्कट्ट वर्गणाके जितने कर्मप्रदेश हैं उतने अधिक हैं । अनुक्कट्ट वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक है ६२९१ । कितने अधिक हैं ? उक्कट्ट वर्गणाके कर्मप्रदेशोंसे हीन जघन्य वर्गणाके कर्मप्रदेशप्रमाण अधिक हैं । सब वर्गणाओंमें कर्मप्रदेश विशेष अधिक हैं ६३०० । कितने अधिक हैं ? उक्कट्ट वर्गणाके कर्मप्रदेशोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

विशेषार्थ—पहले विशेषार्थमें सब वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण अङ्कसदृष्टिसे ६३०० बतला आये हैं तथा प्रत्येक वर्गणामें उनका वटवाग करके प्रत्येक वर्गणाके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण भी बतला आये हैं । उस वटवारेके अनुसार सबसे प्रथम वर्गणामें, जो कि जघन्य वर्गणा है, ५१२ कर्मपरमाणु हैं और सबसे अन्तिम वर्गणामें, जो कि उक्कट्ट वर्गणा है, ९कर्मपरमाणु हैं अत जघन्य और उक्कट्टके सिवाय शेष वर्गणाओंमें कितने परमाणु हैं ? इस प्रश्नका सरल उत्तर यह है कि जघन्य वर्गणा और उक्कट्ट वर्गणाके परमाणुओंको सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे घटा देना चाहिए । यथा—५१२ + ९ = ५२१ । ६३०० - ५२१ = ५७७९ इतने शेष वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आता है । इसी तरह सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे जघन्य वर्गणाके परमाणुओंको कम करनेसे ६३०० - ५१२ = ५७८८ अजघन्य वर्गणाओंके परमाणुओंका प्रमाण आता है । तथा सब वर्गणाओंके परमाणुओंमेंसे उक्कट्ट वर्गणाके परमाणुओंको घटा देनेसे ६३०० - ९ = ६२९१ अनुक्कट्ट वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंका प्रमाण आता है । इस प्रकार उक्कट्ट, जघन्य, अजघन्य-अनुक्कट्ट, अजघन्य और अनुक्कट्ट वर्गणाओंके कर्मपरमाणुओंकी सख्या जान लेने पर उनमें अल्पबहुत्व लगा लेना चाहिए ।

इस प्रकार जघन्य अनुभागकी यह प्ररूपणा हुई ।

१ ६०६ शंका—यदि इस अनुभागस्थानके अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाका एक वर्ग ही जघन्य अनुभागस्थान है तो उसके सिवा शेष वर्गों, वर्गणाओं और स्पर्धकोंके प्रवेशोंका कथन करना असंगत है, क्योंकि जघन्य स्थानकी प्ररूपणामें अजघन्य स्थानकी प्ररूपणा नहीं बन सकती ।

जहणहाण केवलं न होदि, किंतु एवंविहवग्ग-वग्गणा-फहयपदेसाविणाभाधि चि
 नापानजह कयपरकथाए जहणहाणपरकथजत्त पदि विरोहायावादो । संपदि एदं
 जहणहाणं सन्वजीवरासियेतस्सेहि स्तंभिय तस्य एगखंडं जेचुण जहणहाणं पदिरासिय
 तस्य एदम्मि पक्खेवे पक्खित्ते भिदियमशुभागहाणं होदि । वेदं पद्वे, एवंविहस्त
 मशुभागहाणस्त बंधादो वादादो वा जप्पसीए अशुवचरीदो । न ताव बंधादो
 जप्पज्जदि, सरिसधणियअणंतपरमाण्हि हेट्ठिमाणंतपग्गणा फहयपदेसाविणाभाधीहि पिणा
 एकस्सेव परमाणुस्त बंधागमणविरोहादो । न च कम्ममि परमाणु अत्थि, अणंताजत्त
 परमाणुसमुदयसमागमेण तस्य एगेगवमाणसमुप्यचीदो । न च एकस्से पग्गणाए वि
 बंधो अत्थि, अणंताणत्तवग्गणाहि विखा एगसमयपवद्धाणुवचरीदो । न च वज्जमाण
 कम्मकलंपम्मि अप्पिदेगपरमाणु मोचुण अवसेसकम्मपदेसा पुम्भिनल्लअशुभागहाणम्मि
 सरिसधणिया होदूख अच्छदि, अणंतापुम्भवग्गणा-वग्गणा-फहयपदि पिणा मशुयाग
 वहीए अशुवचरीदो । न च घादण चि जप्पज्जदि, अणंतवग्गणा-वग्गणा-फहयाणं घादं फदे
 तस्य एगपरमाणुस्त हेट्ठिमएगवग्गणाशुभागदो सन्वजीवरासिपदिमागानिभागपदिच्छेदोहिं
 अण्णरियस्त अवहाणुवचरीदो । तन्ना एसा मशुभागवही न जुज्जवे ? एस्य परिहारो

समाधान-नहीं क्योंकि यह सभ्य अनुमागस्वान अकेला नहीं होता है, किन्तु इस
 प्रकारके बर्ग, बर्ग्या स्पर्धक और प्रवेशकोंके अविनामाही होता है यह बतलानेके लिये पूर्वमें भी
 गर्त ग्रहणसममें प्रथम अनुमागस्वानके कथनके प्रति धर्म विरोध नहीं है ।

अब इस अणन्व स्थानके सब जीवराशिप्रमासु लण्ड कर और उनमेंसे एक लण्ड लेकर
 अणन्व स्थानके प्रतिराशि बनाकर इसमें इस प्रक्षेपके प्रक्षिप्त कर देनेपर दूसरा अनुमागस्थान
 होता है ।

इंका-यह दूसरा अनुमागस्थान घटित नहीं होता है, क्योंकि इस प्रकारका अनुमाग-
 स्थान न तो बंधसे ही उत्पन्न होता है और न पाठसे ही उत्पन्न होता है । बंधसे तो उत्पन्न होता
 ही नहीं, क्योंकि नीचेकी अनन्त बर्ग्या स्पर्धक और प्रवेशकोंके अविनामाही समान धनवाले
 अनन्त परमाणुओंके बिना अकेले एक ही परमाणुका बंधके लिए आगमन माननेमें विरोध
 पाता है । तथा कर्ममें एक परमाणु है भी नहीं क्योंकि वहाँ अनन्तानन्त परमाणुओंके समुदाय
 समागमसे एक एक बर्ग्याकी उत्पत्ति होती है । शायद कहा जाय कि एक बर्ग्याका ही कल्प
 होता है सा भी कल्पना ठीक नहीं है, क्योंकि अनन्तानन्त बर्ग्याओंके बिना एक समप्रवृत्त
 नहीं बनता । शायद कहा जाय कि बंधनेमें कर्मकल्पमें निश्चित एक परमाणुका छोड़कर
 शेष सब कर्मप्रवेश पहलेके अनुमागस्थानमें समान धनवाले बाँकर रखते हैं, सा भी ठीक नहीं है,
 क्योंकि अनन्त अपूर्व बर्ग बर्ग्या और स्पर्धकोंके बिना अनुमागकी वृद्धि नहीं हो सकती अतः
 इस प्रकारके अनुमागस्थानकी बंधसे तो उत्पत्ति ही नहीं सकती और न पाठसे ही उत्पत्ति
 होती है क्योंकि अनन्त बर्ग बर्ग्या और स्पर्धकोंका पाठ करने पर वहाँ अक्षतन एक बर्ग्याके
 अनुमागसे सर्व जीवराशिका प्रतिमाग बनाकर अविनागप्रतिच्छेदोंसे अधिक एक परमाणुका
 अक्षतन पाया जाता है अतः यह अनुमाग वृद्धि ठीक नहीं है ।

बुद्धे—बंधेण ताव एदस्स ढाणस्स उप्पत्ती एा होदि त्ति जं भणिदं तएण घढ्ढे, जहण्णढाणादो अणंतवग्ग-वग्गणा-फहएहि अब्भहियसमयपवद्धम्मि अण्णाणुभागढाणु-प्पत्तीए विरोहाभावादो । ण च एगो वग्गो वग्गणा फहय वा एगसमयपवद्धो होदि, अणव्भुवग्गमादो । एा च एगो परमाणू गहणमागच्छदि, अणंतपरमाणुसमुदयसमागमेण विणा कम्मइयजहएणवग्गणाए वि अणुप्पत्तीदो । कथं पुण तस्स समयपवद्धस्स फहयरचना कीरदे, एगसमयपवद्धम्मि जदि वि परमाणू णत्थि तो वि बुद्धीए पुंय कादूण परमाणु त्ति सकप्पिय एगद्वपुंज करिय णिसेगविण्णासक्कमो बुद्धे—

१ ६०७. तं जहा—हेट्ठिमढाणवग्गणाणुभागेहि सरिसधणियवग्गो सव्वे घेतूण तेसिं सव्वेसिं पि हेढा चेव रयणा कायव्वा, हेट्ठिमढाणदो उवरिमरयणाए अप्पा-ओग्गत्तादो । पुणो उवरिदपरमाणूणमुवरि फहयरयणाए कदाए विदियढाणमुप्पज्जदि । पुव्विल्ल ढाणं पेक्खिदूण सव्वजीवरासिणा खड्दिदेगखंडमेत्ताविभागपडिच्छेदाणमेत्थ अन्निहियाणमुवलंभादो । तं जहा—दव्वट्ठियणयजहएणढाणं चरिमफहयचरिमवग्गणेग-वग्गसण्णिद सव्वजीवरासिणा खड्दिय तत्थ एगखंडं घेतूण विरलिय जहएणपक्खेव-फहयसलागाणं समखंडं करिय दिण्णे एक्केकस्स रूवस्स पक्खेवजहएणफहयपमाणं

समाधान—इस शङ्काका समाधान करते हैं—वधसे इस अनुभागस्थानकी उत्पत्ति नहीं होती यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि जघन्य अनुभागस्थानकी अपेक्षा समयप्रवद्धमें अनन्त वर्ग, वर्गणा और स्पर्धकोसे अधिक अन्य अनुभागस्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं है । तथा, एक वर्ग, वर्गणा अथवा स्पर्धक एक समयप्रवद्ध होता है ऐसा भी नहीं है, क्योंकि हमने ऐसा माना नहीं है । और न यही मानते हैं कि एक परमाणुका ग्रहण होता है, क्योंकि अनन्त परमाणुओंके समुदाय समागमके बिना कर्मोंकी एक जघन्य वर्गणा भी नहीं उत्पन्न होती । ऐसी अवस्थामे यह प्रश्न हो सकता है कि उस समयप्रवद्धमें स्पर्धक रचना किस प्रकार की जाती है इसका उत्तर यह है कि यद्यपि एक समयप्रवद्धमें एक परमाणु नहीं है अर्थात् वह स्कन्धरूप होता है तो भी बुद्धिके द्वारा उसे पृथक् करके उसमें परमाणुकी कल्पना करके उनका पुज करके निषेक रचना क्रमका कथन करते हैं—

१ ६०७ वह इस प्रकार है—नीचेके अनुभागस्थानके वर्गमें जितना अनुभाग है उस अनुभागके समान अनुभागवाले सब वर्गोंको लेकर उन सबकी नीचे ही रचना करनी चाहिये, क्योंकि नीचेके स्थानसे ऊपरकी रचना करनेके अयोग्य है । पुन शेष बचे हुए परमाणुओंकी उसके ऊपर स्पर्धक रचना करने पर दूसरा स्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि पहलेके अनुभाग-स्थानकी अपेक्षा इस अनुभागस्थानमें पहलेके अनुभागस्थानके सर्व जीवराशि प्रमाण खण्डोंमेंसे एक खण्ड प्रमाण अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाये जाते हैं । इसका खुलासा इस प्रकार है—द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा जघन्य स्थानरूप अन्तिम स्पर्धककी अन्तिम वर्गणाके एक वर्गके सर्व जीवराशि प्रमाण खण्ड करके उनमेंसे एक खण्डको लेकर विरलन करे और उस विरलनराशिके प्रत्येक एक पर जघन्य प्रचेपरूप स्पर्धकोंकी शालाकाओंके समान खण्ड करके देनेपर प्रत्येक एकके प्रति जघन्य प्रचेपरस्पर्धकका प्रमाण आता है ।

पावदि । क्यमेवस्स पक्खेवमहण्णफइयववपसो ? पटिरासीक्यमहण्णद्वाणे एदम्मि पक्खेवे पक्खेवमहण्णफइयं समुप्यज्जदि चि कारणे कज्जुपयारादो । एसो एगलंदाशु मागा पक्खेवमहण्णफइयचरिमवमणेगवमासमुप्यसिभिमित्तो कर्षं पक्खेवमहण्णफइयं समुप्यचीए कारणं ? न, एदम्हादो हेहिमअभिभागपटिच्छेदेहि महण्णफइयसमुप्यचीए अदंसगादो । दंसणे वा महण्णफइयम्भंतरे अणंताणि महण्णफइयाणि होअ ? न च एवं, अव्ववत्त्वावतीदो । न च सरिसपणियाशुभागा महण्णफइयस्स चप्पायया, एगोली अशुभागसमागतणेण तस्युपविहाणं पुपकज्जकारित्तभिरोहादो । न च एगोलीअशुभागा इहिमा तदुप्यायया, तदशुभागाभिभागपटिच्छेदसंस्वाए एत्येव पयदाशुभागो धवलंमादो । न च पयदाशुभागादो अहिमो अशुभागो अत्ति जेण तस्स फइयसण्णा होअ । तदो समंवाक्खित्तसयल्लवमाअगणाशुभागत्ता एदं वेव महण्णफइयं । एत्यं बद्धिदाशुभागो वेव महण्णफइयसमुप्यसिभिमित्तमिदि घेचम्वं । एदम्मि पक्खेवमहण्णफइयं महण्णपक्खेव फइयससमागविरलणाए विदियरूपोवरि द्विदमहण्णफइयं पसुण पक्खेवे पक्खेवस्स विदियफइयसमुप्यज्जदि । एदम्मि पटिरासीक्यमि, विदियरूपपरिदे पक्खेवे पक्खेवस्स

शुद्धा—इसकी प्रशंसा जपन्य स्पर्शक संज्ञा क्यों है ?

समाधान—प्रतिरक्षित रूप जपन्य अनुभागस्वामि से इसे प्रतिष्ठित करने पर प्रशंसा जपन्य स्पर्शककी उत्पत्ति होती है, इसलिये कारखाने कार्याका उपचार करके इसकी प्रशंसा जपन्य स्पर्शक संज्ञा रखी है ।

शुद्धा—यह एक स्वच्छ रूप अनुभाग प्रशंसा जपन्य स्पर्शककी प्रतिष्ठित वर्गोंका एक वर्गकी उत्पत्तिमें कारण है, अतः यह प्रशंसा जपन्य स्पर्शककी उत्पत्तिमें निमित्त कैसे हो सकता है ?

समाधान—यही क्योंकि इससे अपमत्त अविभागप्रतिष्ठाओंके द्वारा जपन्य स्पर्शककी उत्पत्ति नहीं देखी जाती । यदि देखी जाय तो जपन्य स्पर्शकके भीतर भी अनन्त जपन्य स्पर्शक हो जाय । किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर अम्यहरयाही अपर्यंत जाती है । शायद कहा जाय कि सदृश धनधाने अनुभाग जपन्य स्पर्शकका उत्पन्न करते हैं, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि एक पंचिम अनुभागोंके समान होनेसे इसमें प्रतिष्ठित हुए पृथक् पृथक् कार्य नहीं कर सकत हैं । शायद कहा जाय कि एक पंचिम रहनेवाले नीचके अनुभाग इसका उत्पादक है, सा भी ठीक नहीं है क्योंकि इन अनुभागोंके अविभागप्रतिष्ठाओंकी संख्या यहाँ बहुत अनुभागमें पाई जाती है । और बहुत अनुभागसे अधिक अनुभाग है नहीं जिससे इसकी स्पर्शक संज्ञा हो जाय । अतः जपने भीतर समस्त बग और बगलाओंके अनुभागका प्रतिष्ठित कर लेनेके कारण ही जपन्य स्पर्शक है और यहाँ पर यदा हुआ अनुभाग ही जपन्य स्पर्शककी उत्पत्तिमें निमित्त है ऐसा सोचकर करना समझिये । इस प्रशंसा जपन्य स्पर्शकमें जपन्य प्रशंसा स्पर्शक शब्दात्मकोंके विरलनके द्वारा अंकके ऊपर स्थित जपन्य स्पर्शकका लेकर मिला देने पर प्रशंसा शब्द स्पर्शक उत्पन्न होता है । प्रतिरक्षित रूप इसमें विरलनके हीमर अंकके

१ या प्रती अक्षरक (यमेव अक्षरकानामा इति वाच्यः । २ ता प्रती विरिच [स] क्कोरि वा प्रती विरिचकनादि इति वाच्यः ।

तदिय फइयमुप्पज्जदि । एवमेदेण कमेण विरलणमेत्तवंडेमु पविट्ठेसु विदियमणुभाग-
ट्ठाणमुप्पज्जदि, जहण्णट्ठाणे सव्वजीवेहि खंडिदे तत्थ एगखडमेत्ताणुभागस्स ततो एत्थ
अव्भहियस्स उवलंभादो ।

§ ६०८. एकम्मि कम्मपरमाणुम्मि ट्ठिटाविभागपडिच्छेदाणमणुभागट्ठाण-वग्ग-

ऊपर स्थित जघन्य स्पर्धकको मिला देनेपर प्रक्षेपका तीसरा स्पर्धक उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस क्रमसे विरलन प्रमाण खण्डोके प्रविष्ट होनेपर दूसरा अनुभागस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि जघन्य स्थानके सब जीवराशि प्रमाण खण्ड करने पर उनमेंसे एक खण्ड प्रमाण अनुभाग इस दूसरे अनुभागस्थानमें अविक्र पाया जाता है।

विशेषार्थ—अब अनुभागस्थानकी स्पर्धक रचनाको बतलाते हैं। पहले बतला आये हैं कि जघन्य स्थानके ऊपर छह प्रकारकी वृद्धिया होती हैं और यह भी बतला आये हैं कि सूच्यगुलके असख्यातवें भाग वार पहली वृद्धिके हो जाने पर आगेकी वृद्धि होती है तथा सदृष्टिके द्वारा उसे समझा भी आये हैं। और यह भी बतला आये हैं कि सबसे प्रथम अनन्तभागवृद्धिमें अनन्तका प्रमाण उतना ही लेना चाहिए जितना जीवराशिका प्रमाण है। अतः जघन्य स्थानमें जीवराशिका भाग देकर जो लब्ध आये उसे उसी जघन्य स्थानमें जोड़ देनेसे अनन्तभागवृद्धि युक्त दूसरा अनुभागस्थान होता है। किन्तु एक एक अनुभागस्थानमें अनेक स्पर्धक होते हैं यह पहले बतला चुके हैं और वहा पर स्पर्धक रचनाको बतलाना प्रधान लक्ष्य है, अतः उसके बतलानेके लिए हमें इसे फैलाना होगा। जघन्य अनुभागस्थानमें अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण स्पर्धक होते हैं, अतः उसकी स्पर्धक शलाकाका प्रमाण अभव्य राशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण होता है। इस प्रमाणसे जघन्य अनुभागस्थानमें भाग देने पर एक स्पर्धकका प्रमाण आता है। जघन्य स्थानसे दूसरे अनुभागस्थानमें ये स्पर्धक अधिक होते हैं। इन बडे हुए स्पर्धकोंको वृद्धि स्पर्धक या प्रक्षेप स्पर्धक कहते हैं। इन स्पर्धकोंका जितना प्रमाण है उसका विरलन करा और जघन्य स्थानसे दूसरे अनुभागस्थानमें जितना अनुभाग अधिक है—अर्थात् जघन्य स्थानमें जीवराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आया उतना—उस अनुभागके समान भाग करके प्रत्येक प्रक्षेप स्पर्धकपर एक एक भाग दे दो। यह एक एक भाग प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण होता है, अर्थात् इन भागोंको जघन्य स्थानके अन्तिम स्पर्धकके ऊपर जोड़नेसे प्रक्षेप स्पर्धक या वृद्धि स्पर्धकका प्रमाण आता है। जैसे—जघन्य स्थानका प्रमाण ६५५३६ है और जीवराशिका प्रमाण ४ है। ४ से ६५५३६ में भाग देनेसे लब्ध १६३८४ आता है। इस १६३८४ को ६५५३६ में जोड़नेसे ८१९२० दूसरे अनुभागस्थानका प्रमाण होता है, किन्तु यह १६३८४ प्रमाण अनेक स्पर्धकोंमें विभाजित है और उन स्पर्धकोंका प्रमाण चार है अतः चारका विरलन करके ११११ इनके ऊपर १६९८४ के चार समान भाग करके प्रत्येकके ऊपर देनेसे ४०९६,४०६६ प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण होता है, इस प्रक्षेप स्पर्धकके प्रमाण ४०९६को जघन्य स्थान ६५५३६ में जोड़ देनेसे ६९६३२ जघन्य प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण आता है। इस प्रक्षेप जघन्य स्पर्धकके ऊपर दूसरे विरलन रूपपर अर्थात् एक पर स्थित ४०९६ को जोड़ देनेसे दूसरे प्रक्षेप स्पर्धकका प्रमाण आता है। इसी प्रकार विरलन प्रमाण जितने खण्ड हैं एक एक करके उन सबको जोड़ देनेपर ८१९२० दूसरे अनुभागस्थानका प्रमाण होता है। इस दूसरे अनुभागस्थानमें सबसे जघन्य अनुभाग स्थान में जीवराशिका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आता है उतना अनुभाग अधिक पाया जाता है।

§ ६०८ शंका—एक कर्म परमाणुमें स्थित अविभागप्रतिच्छेदोंका अनुभागस्थान, वर्ग,

ब्रह्मणः-प्रत्ययवयसो चत्वारि वि क्रय संगच्छत ? न, एकस्मि भूतपयत्ये इदं पुरंदरादि सङ्गाणामुपसंभ्रमादौ । अपिदधीवमि द्विदपरमाप्नुषोमन्नाभिभागपटिच्छेदेदेहिता अहिपत्त विवकलाए एदेसिमेतपरमाप्नुपरिदाविभागपटिच्छेदाजमप्नुभागद्वाणसङ्गा । सेसपर माप्नुजविभागपटिच्छेदेदेहिता सरिसासरिसत्तविवकलाहि विणा तन्नि चैव विवकिल्वदे तस्तय वन्नावयसो । सरिसपणियविवकलाए वन्नावयसो । सम्बन्निदेहि अणंतगुणमत रिय अधिभागपटिच्छेदुत्तरकमेण गंतूण पुणो सम्बन्निदेहि अणंतगुणाधिभागपटिच्छेदुत्तराणपामोगतविवकलाए तस्सेव फयसङ्गा सि । न तस्य चतुर्णं नामाणं पचत्ती विवकलादे । अदि एकस्मि कम्मपरमाप्नुमि द्विदअधिभागपटिच्छेदाणं द्वाणसङ्गा इच्छिक्कादि तो एकस्मि दाने अणंताणि अप्नुभागद्वाणाणि होंति, अणंताणं सरिसपणिय परमाणुं तस्युपसंभ्रमादो सि ? न, सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिदिदिसरिमणिसेगमि अणत्तान्तकम्मद्विदिपसंभ्रमादो । एगपरमाप्नुद्विदीदो सेसपरमाप्नुद्विदीणं मेदामत्तादो तस्य अणत्तसि द्विदीणमग्राहणं चे एत्त वि तो कलाहि तेणेण कारणेण अण्णेसिमग्राहणमिदि किण्ण पेण्णदे ? अदि एणं तो भोमस्स वि द्वाणपरुपणा एणं चय कियण कौरदे ?

बर्ग्या और स्पर्शक से चारों संज्ञायें कैसे पटित होती हैं ?

समाधान—यहाँ क्योंकि एक ही जीव परमाणुमें इन्द्र और पुरन्दर अग्नि संज्ञायें पाई जाती हैं । वही प्रकार उक्त संज्ञायें भी जाननी चाहिये । विवक्षित जीवमें स्थित पुद्गल परमाणुओंके अधिभागप्रतिच्छेदोंसे अधिकपनेकी विवक्षा करनेपर एक परमाणुमें पाये जानेवाले इन अधिभाग-प्रतिच्छेदोंकी अनुमागस्थान संज्ञा है । शेष परमाणुओंके अधिभागप्रतिच्छेदोंसे सत्तरता और असत्तरताकी विवक्षा न करके केवल वही एक परमाणुकी विवक्षा करने पर वहीकी बर्ग संज्ञा है । सत्तरा वनत्ताओंकी विवक्षा करने पर उसकी बर्ग्या संज्ञा है । प्रथम अग्नि स्पर्शककी अन्तिम कण्ठासे द्वितीयदि स्पर्शककी प्रथम कण्ठाका अन्तर अधिभागप्रतिच्छेदोंकी अनेका सब जीवराशिसे अनन्तगुणा है । अतः सब जीवराशिसे अनन्तगुणे अधिभागप्रतिच्छेदोंके छर्दपनेकी योग्यताकी विवक्षा करनेपर उसकी स्पर्शक संज्ञा है । अतः एक परमाणुमें चारों संज्ञाओंकी मद्युषि होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—यदि एक कर्मपरमाणुमें स्थित अधिभागप्रतिच्छेदोंकी स्थान संज्ञा मानल जा तो एक स्वामि अन्तत अनुमागस्थान प्राप्त होते हैं क्योंकि यहाँ समान अधिभागप्रतिच्छेदोंके धारक अनन्त परमाणु पाये जाते हैं ।

समाधान—यहाँ क्योंकि ऐसा करने पर सत्तर काड़ीकाही सागरकी स्थितिवासे अन्तिम निवेकमे अणन्तामन्त कर्मविचित्रोक्त प्रसंग प्राप्त जाता है ।

शंका—एक परमाणुकी स्थितिसे शेष परमाणुओंकी स्थितिमें कोई भेद नहीं है, अतः यहाँ अन्त्य स्थितिबोधका ग्रहण नहीं किया जाता ?

समाधान—जा यहाँ पर भी वही कारणसे अन्यका ग्रहण नहीं किया ऐसा क्यों नहीं मानते हो ।

शंका—यदि ऐसा है तो वागस्थानका कथम भी इसी प्रकार क्यों नहीं करते ?

ण, तत्थ वि एदेणेव कमेण जोगट्टाणपरूवणाए कयत्तादो । जदि एवं तो एगजीवपदे-
सुक्कस्सजोगाविभागपडिच्छेदाणं जोगट्टाणसण्णा पावदि त्ति णासंफणिज्जं, कम्मक्खंधादो
कम्मपदेसाणं व जीवादो जीवपदेसाणमपुधभावेणं सव्वजीवपदेसजोगाविभागपडिच्छे-
दाणमेगजोगट्टाणत्तं पडि विरोहाभावादो । कम्मक्खंधादो कम्मपदेसा पुधभूदा णत्थि
त्ति सव्वे कम्मक्खंधाविभागपडिच्छेदे धेत्तण एगमणुभागट्टाणमिदि किण्ण बुच्चदे ? ण,
कम्मक्खंधादो भेदं गच्छताणं कारणवसेण संजोगमागयाणं परमाण्णं खधेण सह एयत्त-
विरोहादो ।

§ ६०६. एदस्स विदियाणुभागट्टाणस्स पदेसरचणा पुव्वं व कायव्वा । किंतु
चिराणसंतकम्मस्स पदेसविण्णासो वट्टमाणबंधपदेसविण्णासेण सरिसो ण होदि,
उवरिमपक्खेवफइयाणं पढमफइयआदिवग्गणाए हेट्ठिमवग्गणपदेसेहिंतो असंखेज्जगुण-
हीणपदेसत्तादो । अथवा सव्वत्थ गोबुच्छायारेणेव पदेसा चेहंति, उक्कड्ठिदपदेसाणं
तत्थ सुण्णट्टाणे वज्जमाणपदेसेहि सह समयाविरोहेण विण्णासं करिय अवसेसपदेसाणं
सव्वत्थ गोबुच्छायारेण विएणासविहाणादो ।

§ ६१०. एवं विदियट्टाणपरूवणं काऊण संपहि तदियट्टाणपरूवणा कीरदे ।

समाधान—नहीं, क्योंकि वहा भी इसी क्रमसे योगस्थानका कथन किया है ।

शंका—यदि ऐसा है तो एक जीवके एक प्रदेशमें होनेवाले उत्कृष्ट योगके अविभागप्रति-
च्छेदोंकी भी योगस्थान सज्ञा प्राप्त होती है ।

समाधान—ऐसी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जैसे कर्मस्कन्धसे कर्मपरमाणु
भिन्न हैं, वैसे जीवसे जीवके प्रदेश भिन्न नहीं हैं, अतः जीवके सब प्रदेशोंमें होनेवाले योगके
अविभागप्रतिच्छेदोंका एक योगस्थान होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—कर्मस्कन्धसे कर्मप्रदेश भिन्न नहीं हैं, अतः कर्मस्कन्धके सब अविभागप्रतिच्छेदोंका
एक अनुभागस्थान होता है ऐसा क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मप्रदेश कर्मस्कन्धसे भिन्न हैं किन्तु निमित्तके वशसे सयोगको
प्राप्त हो गये हैं, अतः उनका स्कन्धके साथ अभेद नहीं हो सकता ।

§ ६०६ इस द्वितीय अनुभागस्थानकी प्रदेश रचना भी पहलेके समान करनी चाहिए,
किन्तु जिस क्रमसे वर्तमानमें बधनेवाले प्रदेशोंकी रचना होती है पहलेके सत्तामे स्थित प्रदेशोंकी
रचना इस क्रमसे नहीं होती, क्योंकि ऊपरके प्रक्षेप स्पर्धकोंके प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें
अधस्तन वर्गणके प्रदेशोंसे असख्यातगुणे हीन प्रदेश पाये जाते हैं । अथवा सर्वत्र गोपुच्छके
आकारसे ही प्रदेश स्थित रहते हैं, क्योंकि उत्कर्षणको प्राप्त हुए प्रदेशोंकी शून्य स्थानमें बधनेवाले
प्रदेशोंके साथ यथाविधि रचना करके बाकीके प्रदेशोंकी सर्वत्र गोपुच्छरूपसे ही स्थापना होनेका
विधान है ।

§ ६१० इस प्रकार द्वितीय अनुभागस्थानका कथन करके अब तीसरे अनुभागस्थानका

तं महा—सम्बन्धीनेहि विदियद्वाणे भागे हिदे नं रुद्धं तन्मि तं चेष पडिरासिय पक्वित्ते तदियमणुभागहाणं होदि । पुब्बिन्सद्वाणंतरादां पदं द्वाणंतरमणंतमागम्भियं, अहण्णहाणादो अणंतमागम्भियविदियद्वाणं सम्बन्धीनेहि लंदिदूण तत्त्वेगत्तवस्स वडि द्वादा । पुब्बिन्सपक्वलेषफइयंतरादो संपहियद्वाणपक्वलेषफइयंतरं अणंतमागम्भियं, पत्त्वणफइयसत्तागाहि विहज्जमाणरासिस्स पुब्बिन्सविहज्जमाणरासि पेक्वियूण अणंतमागम्भियत्तादो । पुब्बिन्सपक्वलेषफइयसत्तागाहितो संपहियपक्वलेषफइयसत्तागा सरिसा, एहाप वि फइयसत्तागाप वडिदाप फइयतरस्स पुब्बिन्सपक्वलेषफइयंतरादो अणंतमागहीणत्तप्पसंगादो । सेसं पुन्नं व चत्तम्भं । एवं तदियद्वाणपक्वणा गदा ।

१६११ सपहि चत्त्वद्वाणुप्पत्तिं भणित्तामो । तं महा—तदियद्वाणादो दो पक्वलेषु एगपिसुत्तेसु च अणणित्ते [सु] अणणित्तेस अहण्णहाणं होदि । पुणो सम्बन्धीतरासिणा अहण्णहाणे सपिसुत्तदोपक्वलेषु च ओवडिदेसु नं रुद्धं तं पेत्तूप तदियद्वाणं पडिरासिय तस्य पक्वित्ते चत्त्वद्वाणुप्पत्तदि । पत्त्वणद्वाणंतरं विदिय तदियद्वाणंतरादो अणंतमागम्भियं, विहज्जमाणरासिस्स पुब्बिन्सविहज्जमाणरासी पेक्वियूण अणंतमागम्भियत्तादो । पुब्बिन्सपक्वलेषफइयंतरादो पत्त्वणपक्वलेषफइयंतरं

कथन करते हैं । वह इस प्रकार है—दूसरे अनुभागस्थानमें सब जीवरारिका भाग बेनेपर जा सम्भ भाग वसे वसीके प्रतिरारि करके वसमें मिला बेने पर तीसर अनुभागस्थान हाता है । पहलेके अनुभाग स्थानान्तरसे यह अनुभागस्थानान्तर अनन्तर्वं भाग अधिक है, क्योंकि जपन्य अनुभागस्थानसे अनन्तर्वं भागप्रमाय अधिक द्वितीय अनुभागस्थानके सर्व जीवरारिप्रमाण खण्ड करके वसमें से एक खण्डकी इसमें वृद्धि हुई है तथा पहलेके प्रक्षेप स्पर्शकान्तरसे सम्प्रतिक स्थानका प्रक्षेपस्पर्शकान्तर अनन्तर्वं भाग अधिक है, क्योंकि पहले जिस राशिमें भाग दिया गया था उस राशिका अपेक्षा यहाँकी शलाकाओंसे भागितकी जानेवासी राशि अनन्तर्वं भाग अधिक है । तथा पहलेके प्रक्षेप स्पर्शककी शलाकाओंसे वर्तमान प्रक्षेप स्पर्शककी शलाका समान हैं, क्योंकि यदि वससे इसमें एक भी शलाका अधिक मानी जायगी तो पहलेके प्रक्षेप स्पर्शकान्तरसे वर्तमान स्पर्शकान्तरके अनन्तर्भाग हीन होनेका प्रसंग प्राप्त हागा । शेष बावें पहलेकी तरह कहनी चाहिए । इस प्रकार तीसरे अनुभागस्थानका कथन समाप्त हुआ ।

१६११ अब चौथे अनुभागस्थानकी उत्पत्तिको करते हैं । वह इस प्रकार है—तीसरे अनुभागस्थानमेंसे वा प्रक्षेप और एक पिण्डके पटने पर जा शेष रहता है वह जपन्य स्थान हाता है । पुनः सब जीवरारिका जपन्य स्थानमें और पिण्ड सहित वा प्रक्षेपोंमें भाग बेनेपर जा अत्र भाग वसे खंडर तीसरे अनुभागस्थानका प्रतिरारि करके वसमें जाइ बेनेपर चौथा अनुभागस्थान उत्पन्न हाता है । इस अनुभागस्थानका अन्तर दूसरे और तीसर अनुभागस्थानके अन्तरसे अनन्तर्वं भाग अधिक है क्योंकि यहाँ पर जिस राशिमें भाग दिया गया है वह राशि पहलेकी विषम्यमान राशिसे अनन्तर्वं भागप्रमाय अधिक है । पहलेके प्रक्षेप स्पर्शकके अन्तरसे इस अनुभागस्थानके प्रक्षेप स्पर्शकका अन्तर अनन्तर्वं भागप्रमाण अधिक है । तथा इस स्थानकी

१ वा प्रती वरं (६) धा प्रती वरं इति पाठः । २ वा प्रती वरं इति पाठः ।

अणंतभागवभहियं, पुच्विल्लपक्खेवफहयसलागाओ पेक्खिदूण एत्थतणपक्खेवफहय-
सलागाओ सरिसाओ, फहयतराण विसंसाहियत्तण्णहाणुववत्तीदो । एवं णेद्वं जाव
अणंतभागवद्धिटाणं कंडयस्स चरिमहाणे त्ति । एटाणि अणुभागटाणाणि वंधेण विणा
उक्कट्टणाए ण उप्पज्जंति, वंधे अणुभागसंतसमाणे ततो ऊणे वा सते उक्कट्टिदफहयाणं
सतफहएहितो अणंतभागवभहियाणमणुवत्तभादो । वंधादो उक्कट्टणादो च अणुभागटाणे
णिप्पण्णे सते वधादो चेव णिप्पण्णमिदि किमट्ठं वुचुठे ? ण, उक्कट्टणाए वधायत्ताए
वंधसरूवाए वंधे चेव अंतवभावादो ।

प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ पहलेके प्रक्षेपस्पर्धक शलाकाओंके बराबर हैं। यदि शलाकाएँ समान न
होतीं तो पहलेके प्रक्षेप स्पर्धकान्तरसे इस स्थानका प्रक्षेप स्पर्धकान्तर अनन्तर्वेँ भागप्रमाण
अधिक न होता। इस प्रकार काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानोंके अन्तिम स्थान पर्यन्त
स्थानोंकी उत्पत्तिका यह क्रम ले जाना चाहिए। ये अनुभागस्थान वधके विना उत्कर्षणके द्वारा
नहीं उत्पन्न होते हैं, क्योंकि सत्तामें विद्यमान अनुभागके समान अथवा उससे कम वधके होनेपर
उत्कर्षित स्पर्धक सत्तामें विद्यमान स्पर्धकोंसे अनन्तर्वेँ भागप्रमाण अधिक नहीं पाये जाते हैं।

शंका—अनुभागस्थानके बन्धसे और उत्कर्षणसे निष्पन्न होने पर वह बन्धसे ही निष्पन्न
हुआ है ऐसा क्यों कहा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कर्षण वधके अधीन है और वध स्वरूप है, अतः उसका
बधमें ही अन्तर्भाव होता है।

विशेषार्थ—पहले जिस प्रकार जघन्य स्थानकी प्रदेश रचना कही है उसी प्रकार दूसरे
अनुभागस्थानकी भी प्रदेशरचना समझनी चाहिये। किन्तु इतना विशेष है कि सत्तामें स्थित
कर्मपरमाणुओंको छोड़ कर नवीन बन्धको प्राप्त हुए परमाणुओंकी प्रदेश रचना, जिन
परमाणुओं में अनुभाग बढ़ाया गया है उन परमाणुओंके साथ कहनी चाहिये। किन्तु सत्ता में
स्थित कर्मपरमाणुओंकी प्रदेशरचना नहीं होती, क्योंकि बन्धकालमें जिस क्रमसे उनकी
रचना होती है, उत्कर्षण और अपकर्षणके होनेसे उस क्रमसे वे अवस्थित नहीं रह पाते हैं।
कहने का तात्पर्य यह है कि बन्धको प्राप्त हुए निषेकोंकी प्रदेशरचना तत्काल हो जाती है और
वह गोपुच्छाकार रूपसे होती है, अर्थात् जैसे गायकी पूछ क्रमसे घटती हुई हांती है वैसे ही
निषेकोंकी रचना भी एक एक चय घटते क्रमसे होती है। किन्तु यह रचना बराबर ऐसी ही नहीं
बनी रहती, आगे जब उन निषेकोंमें अनुभाग घटता या बढ़ता है तो रचित निषेकोंके क्रममें
व्यतिक्रम हो जाता है, अतः बन्धकालमें पहलेसे सत्तामें स्थित परमाणुओंकी निषेकरचनाका
निषेध किया है और दोनोंमें अन्तर बतलाया है। अब इस दूसरे अनुभागस्थानके नवकबन्धकी
प्रदेशरचनाको कहते हैं—समयप्रवृद्धमें जघन्य अनुभागस्थानसे अधिक अनुभागवाले जितने
परमाणु हों उनको पृथक् स्थापित करो और जघन्य स्थानके समान अनुभागवाले शेष सब
परमाणुओंको लेकर उनकी रचना करो। रचना करने पर वे सब परमाणु जघन्य अनुभाग-
स्थानकी जघन्य वर्गणासे लेकर उसीकी उत्कृष्ट वर्गणा पर्यन्त स्थित हो जाते हैं। उसके बाद
अधिक अनुभागवाले परमाणुओंको लो, उनका प्रमाण अनन्त है उनमेंसे जघन्य प्रक्षेप स्पर्धक
प्रमाण परमाणुओंको लेकर जघन्य स्थानके अन्तिम स्पर्धकके ऊपर उनकी स्थापना करो। ऐसा
करनेसे प्रथम प्रक्षेप स्पर्धक उत्पन्न होता है। पुनः उनमेंसे द्वितीय स्पर्धकप्रमाण परमाणुओंको
प्रथम प्रक्षेप स्पर्धकके ऊपर अन्तराल देकर स्थापित करनेसे द्वितीय स्पर्धक उत्पन्न होता है। इस

प्रकार पुनः पुनः परमायुष्योको लेकर सब तक स्पर्शक रचना करनी चाहिये जब तक पूर्वक
 स्थापित किये गये परमायु समाप्त हों। इस प्रकार दूसरे अनुभागस्थानकी स्पर्शक रचना जाननी
 पड़िये। यह अनन्तभागवृद्धियुक्त प्रथम स्थान है, अर्थात् जपन्व अनुभागस्थानका सब जीव
 रश्मिसे माहित करके जा लक्ष्य भावे वतना अधिक है। इस दूसरे अनुभागस्थानको सब जीव
 रश्मिसे माहित करके जा लक्ष्य भावे इसे दूसरे अनुभागस्थानमें छोड़ देनेसे तीसरा अनुभाग-
 स्थान होता है। जैसे अर्धसंघट्टिसे दूसरे अनुभागस्थानका प्रमाण ८१९२ आया था इसमें
 जीवरश्मिके कल्पित प्रमाण ४ से भाग देकर लक्ष्य २ ४८० को ओड़ देनेसे विसरे अनुभाग-
 स्थानका प्रमाण १०२४ ० आता है, वह अनन्तभागवृद्धि युक्त दूसरा स्थान है। पहलेके स्थानके
 अन्तरसे इस स्थानका अन्तर अनन्तमें भागप्रमाण अधिक है। अर्थात् पहलेके स्थानका अन्तर
 ८१६२ - ६५५३६ = १६३८४ है और इस स्थानका अन्तर १ २४ - ८१६२ = २ ४८० है।
 अतः पहलेके स्थानके अन्तरसे यदि अनन्तका प्रमाण ४ कल्पना किया जाय तो इस स्थानका
 अन्तर अनन्तमें भागप्रमाण अधिक होता है। तथा दूसरे अनुभागस्थानके प्रक्षेप स्पर्शकके अन्तरसे
 इस तीसरे अनुभागस्थानके प्रक्षेप स्पर्शकका अन्तर भी अनन्तमें भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि
 पहलेकी विभक्तमान राशिसे इस स्थानकी विभक्तमान राशि अनन्तमें भागप्रमाण अधिक है।
 अर्थात् दूसरे अनुभागस्थानकी विभक्त की जानेवाली राशिका प्रमाण अर्धसंघट्टिस ८१६२ है
 और इस तीसरे स्थानकी विभक्त की जानेवाली राशिका प्रमाण १ २४ है अतः वृत्तसे इसका
 प्रमाण अनन्तमें भागप्रमाण अधिक है। तथा प्रक्षेप रश्मिक शलाकाएँ वानों स्थानोंकी बराबर
 बराबर हैं, क्योंकि सभी अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकाएँ परस्परमें
 समान हैं। अर्धस्वातभागवृद्धि युक्त स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकाएँ परस्परमें समान हैं।
 अर्धस्वातभागवृद्धि युक्त स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकाएँ भी परस्परमें समान हैं। इसी प्रकार
 अर्धस्वातभागवृद्धि अर्धस्वातभागवृद्धि और अनन्तभागवृद्धिकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकाएँ भी परस्परमें
 समान जाननी चाहिये। यदि स्पर्शक शलाकाओंका परस्परमें समान न माना जायगा तो
 अनन्तमें भागप्रमाण अधिकपना नहीं बन सकेगा। इसका सुभासा इस प्रकार है—रूपाधिक नर्ष
 जीवरश्मिसे अपने अनन्तरवर्ती नीचेके अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थानमें भाग देनेपर स्थानका
 अन्तर आता है। इस अन्तरके स्पर्शक शलाकाओंसे माहित करने पर स्पर्शकान्तर आता है।
 इसी प्रकार इस स्थानमें समस्त जीवरश्मिसे भाग देनेपर ऊपरके स्थानका अन्तर आता है। इस
 स्थानान्तरमें ऊपरकी स्पर्शक शलाकाओंसे भाग देनेपर ऊपरका स्पर्शकान्तर आता है। जैसे
 तीसरे स्थानके अनन्तरवर्ती नीचेके दूसरे स्थानका प्रमाण अर्धसंघट्टिसे ८१६२० है। इसमें एक
 अधिक जीवरश्मिके कल्पित प्रमाण ४ + १ = ५ का भाग देकर १६३८४ आता है। यह नीचेका
 स्थानान्तर है। अर्थात् जपन्व अनुभागस्थान ६५५३६ में और दूसरे अनुभागस्थान ८१६२ में
 १६३८४ का अन्तर है। इस अन्तरमें कल्पित स्पर्शक शलाका ४ का भाग देनेपर ४ ९६ स्पर्शकान्तर
 आता है। तथा वही दूसरे स्थान ८१९० में सब जीवरश्मि ४ का भाग देनेसे २०४८ ऊपरके
 स्थानान्तरका प्रमाण आता है। अर्थात् तीसरे अनुभागस्थान १ २४० और दूसरे अनुभाग-
 स्थान ८१६२ में २ ४८० का अन्तर है। इसी २ ४८ में स्पर्शक शलाका ४ का भाग देनेसे
 ५१२० ऊपरके स्पर्शकान्तरका प्रमाण आता है। यह स्पर्शकान्तर पहलेके स्पर्शकान्तर ४०९६ से
 अनन्तमें भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि ४ ९६ में अनन्तके कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे १०२४
 लक्ष्य आता है। इस लक्ष्यका ४ ९६ + १ २४ आनेसे ५१२ स्पर्शकान्तरका प्रमाण होता है।
 अब पहलेकी स्पर्शक शलाकासे ऊपरके स्थानकी स्पर्शक शलाकाएँ यदि एक अधिक हों तो भी
 यतः पहलेके भागद्वारासे ऊपरके स्थानके स्पर्शकान्तरका भागद्वारा अनन्तमें भागप्रमाण अधिक है

§ ६१२. पुगो अंगुलस्स असंखे०भागमेत्तकंडयपमाणेसु अणतभागवड्डिटाणेसु

जं चरिममणंतभागवड्डिटाणं तम्मि असंखेज्जलोगेहि भागे हिदे जं लद्ध तम्मि तत्थेव पक्खत्ते पढममसंखेज्जभागवड्डिटाणमुप्पज्जदि । एदस्स ट्ठाणंतरं हेट्ठिमअणंतभागवड्डि-
ट्ठाणतरादो अणंतगुणं । को गुणगारो ? सब्वजीवाणमसंखे०भागो । तेसि को पडि-
भागो ? असंखेज्जा लोगा । हेट्ठिमफइयंतरादो एत्थतणफइयंतरमणंतगुणं । गुणगारो
जाणिय वत्तव्वो । हेट्ठिमट्ठाणाणं पक्खेवफइयसलागेहितो एदस्स पक्खेवफइयसलागाओ
असंखे०भागेण अब्भहियाओ । एदं कुदो णव्वदे ? असंखेज्जभागवड्डिटाणाणं

अत नीचेके स्पर्धकान्तरसे ऊपरका स्पर्धकान्तर अनन्तवें भागप्रमाण हीन होगा । किन्तु ऐसा नहीं है
अतः सब प्रज्ञेपोंकी स्पर्धक शलाकाएँ सजाति प्रज्ञेपोंकी स्पर्धक शलाकाओंके समान ही होती हैं । इस
तीसरे अनुभागस्थानको समस्त जीवराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें जोड़ देनेसे
चौथा अनुभागस्थान होता है । जैसे तीसरे अनुभागस्थानका प्रमाण अकसदृष्टिसे १०२४०० है ।
इसमें जीवराशिसे कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे लब्ध २५६०० आता है । इसे उसमें जोड़
देनेसे १०२४०० + २५६०० = १२८००० चौथे स्थानका प्रमाण होता है । यह चौथा अनुभाग
स्थान अपने पूर्ववर्ती तीसरे अनुभागस्थानसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है । उतना ही दोनों स्थानोंमें
अन्तर है । इस अन्तरमें स्पर्धक शलाकाओंसे भाग देनेपर स्पर्धकान्तर होता है । यह स्पर्धकान्तर
भी पहलेके स्पर्धकान्तरसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है, क्योंकि दोनों स्थानोंकी स्पर्धक शलाकाएँ
समान हैं । इस चौथे अनुभागस्थानमें सर्व जीवराशिसे भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें
जाड़ देनेसे पाचवें अनुभागस्थान होता है । यहा पर भी स्थानान्तर और स्पर्धकान्तरका क्रम
पहलेकी तरह समझ लेना चाहिये । इस प्रकार जघन्य अनुभागस्थानके ऊपर काण्डकप्रमाण
अनन्तभागवृद्धिस्थान होते हैं । ये स्थान बंधसे उत्पन्न होते हैं, उत्कर्षणसे नहीं उत्पन्न होते,
क्योंकि जब अनुभागबन्ध सत्तामें स्थित अनुभागसे कम होता है या उसके समान होता है तब
उत्कर्षणको प्राप्त हुए स्पर्धकोंका अनुभाग सत्तामें स्थित स्पर्धकोंके अनुभागसे अनन्तवें भागप्रमाण
अधिक नहीं हो सकता । यद्यपि बन्धके समय उत्कर्षण भी होता है, इसलिए अनुभागस्थानोंकी
उत्पत्ति बन्ध और उत्कर्षण दोनोंसे कही जा सकती है परन्तु इन्हें बन्धस्थान ही कहा जाता
है, क्योंकि उत्कर्षण बन्धके अधीन है, बन्धके बिना उत्कर्षण नहीं होता इसलिये उसका बन्धमें
ही अन्तर्भाव कर लिया है ।

§ ६१२ पुन अ गुल के असख्यातवें भागप्रमाण स्थानोंके समुदायको एक काण्डक कहते
हैं । अत अ गुलके असख्यातवें भाग काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि स्थानोंमें जो अन्तिम
अनन्तभागवृद्धि स्थान है उसमें असख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसी स्थानमें
जाड़ देने पर पहला असख्यातभागवृद्धि स्थान उत्पन्न होता है । इस स्थानका अन्तर नीचेके
अनन्तभागवृद्धि स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है । गुणकार क्या है ? यहा गुणकारका प्रमाण सब
जीवोंके असख्यातवें भागप्रमाण है । उसका प्रतिभाग क्या है ? प्रतिभाग असख्यात लोकप्रमाण
है । तथा नीचेके स्पर्धकान्तरसे इस स्थानका स्पर्धकान्तर अनन्तगुणा है ? गुणकारका प्रमाण
जानकर कहना चाहिये । नीचेके स्थानोंके प्रज्ञेप स्पर्धकोंकी शलाकाओंसे इस स्थानकी प्रज्ञेप
स्पर्धक शलाकाएँ असख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं ।

पक्षेपफलयसलागाओ हेडिमहाणपक्षेपफलयसस्रगाहितो असंसे०भागम्महियाओ । संसे०भागवद्विहाणपक्षेवस्त फलयसलागाओ हेडिमहाणपक्षेवफलयसलागाहितो संसे०भागम्महियाओ । संसेज्जगुणवद्विहाणपक्षेवफलयसलागाओ संसेज्जगुणाओ । असंसेज्जगुणवद्विहाणपक्षेवफलयसस्रगाओ असंसेज्जगुणामो' । अर्णत्तगुणवद्विहाण पक्षेवफलयसलागाओ अर्णत्तगुणाओ ति सुत्ताविन्दुवकस्वाणादो गम्भवे । यदि एवं तो हेडिमअर्णत्तभागवद्विहाण कंठयमेत्तार्ण पक्षेवफलयसलागाओ अण्णोण्ण पेक्खिस्सगुण अर्णत्तभागम्महियाओ किम्म जादाओ ? ज, तस्य पक्षवलेण बहुत्तुवत्तमादो ।

१६१३ असंसेज्जभागवद्विहाणं सम्भनीपरासिणा स्वडिय तस्य एगत्तं चं पेतूण पडिरासीकयमसंसेज्जभागवद्विहाणे पक्खिस्सचे तदुत्तरिमअर्णत्तभागवद्विहाणं होदि । हेडिमअसंसेज्जभागवद्विहाणंतरत्तो एवं हाणत्तरमर्णत्तगुणहीणं । तत्त्वत्तणफलयत्तरादो पि एत्त्वत्तणफलयत्तरमर्णत्तगुणहीणं; तत्त्वत्तणपक्षेवफलयसलागाहितो एत्त्वत्तणपक्षेवफलय सलागाभा विसेसहीणाओ । एत्त्व कारणं भाणिय वत्तम्भं । पुणो असंसे०भागवद्वि हायादा उपरिमअर्णत्तभागवद्विहाणं सम्भनीवेहि स्वडिय तस्य छट्ठेमत्तं चं तत्त्वेव पक्खिस्सचे अण्णत्तमर्णत्तभागवद्विहायासुप्पज्जदि । एवं रोदम्भं भाप कंठयमेत्तणमर्णत्त-

शुंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—असंस्पातभागवद्वि रूप स्वानोंकी प्रक्षेपस्पर्शक शलाकार्ण नीचेके स्वानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णोंसे असंस्पातर्णें मागप्रमाय अधिक हैं । संस्पातभागवद्विको जिनके रूप स्वानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णें नीचेके स्वानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णोंसे संस्पातर्णें मागप्रमाय अधिक हैं । संस्पातगुणवद्वि स्वानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णें संस्पातगुणी हैं । असंस्पातगुणवद्वि स्वानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णें असंस्पातगुणी हैं और अनन्तगुणवद्वि स्वानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णें अनन्तगुणी हैं । इस सूत्रसे अभिहित व्याख्यानसे जाना ।

शुंका—यदि ऐसा है तो नीचेके काण्डकप्रमाय अनन्तभागवद्विस्वानोंकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णें परस्परमें एक दूसरेकी अवेदा अमन्तर्णें मागप्रमाय अधिक क्यों नहीं हुई ?

समाधान—नहीं क्योंकि उनमें प्रत्यक्षसे बहुत्व पाया जाता है ।

१६१४ असंस्पातभागवद्वि स्वानका सब जीवरशिसे लण्डित करके उनमेंसे एक लण्ड लेकर उसे प्रतिरारीकृत असंस्पातभागवद्वि स्वानमें जाइ देनेपर असंस्पातभागवद्वि स्वानसे आगेका अनन्तभागवद्वि स्वान होता है । नीचेके असंस्पातभागवद्वि स्वानके अन्तरसे इस स्वानका अन्तर अमन्तगुणा हीन है । उस स्वानके स्पर्शकके अन्तरसे इस स्वानके स्पर्शकका अन्तर अनन्तगुणा हीन है । इस स्वानकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णोंसे इस स्वानकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्णें विराप हीन हैं । यहाँ कारण जानकर कहना चाहिये । पुन' असंस्पातभागवद्विस्वानसे ऊपरके अनन्तभागवद्विस्वानके सब जीवरशि प्रमाय लण्ड करके उनमेंसे एक लण्ड लेकर उसे वही अनन्तभागवद्विस्वानमें जाइ देनेपर दूसरा अमन्त-

भागवद्विद्याणाणं चरिमअणंतभागवद्विद्याणे त्ति । एत्थ द्वाणंतर-फइयंतर-पक्खेव-फइयसलागाणं संखाण पक्खणा जहा पढमअणंतभागवद्विद्याणकंडए कटा तथा कायन्वा, अविसेसादो ।

§ ६१४. पुणो कंडयस्स चरिममणंतभागवद्विद्याणमसखेज्जलोगेहि खंडिय तत्थेग-खडे तत्थेव पक्खित्ते विदियमसंखेज्जभागवद्विद्याणमुप्पज्जटि । एत्थ पक्खेवफइयसलाग-पमाणस्स द्वाणंतर-फइयंतराणं पमाणस्स य पक्खणा पुच्च व कायन्वा । एवं णेद्वं जाव कडयमेत्ताणमसंखेज्जभागवद्विद्याणं चरिमअसंखेज्जभागवद्विद्याणं त्ति । तदुवरि पुवं व अणतभागवद्विद्याणाणं कंडय गंतूण संखेज्जभागवद्विद्याणं होदि । एदस्स द्वाणंतर-मणंतभागवद्विद्याणतरहितो अणंतगुण हेट्ठिमअसंखेज्जभागवद्विद्याणतरहितो असखेज्जगुणं । संखेज्जभागवद्विद्याणपक्खेवफइयसलागाओ हेट्ठिमअणंतभागवद्वि-असंखे०भागवद्विद्याणाणं पक्खेवफइयसलागाहितो संखे०भागवद्विद्याओ । जहा द्वाणतराणि तथा फइयंतराणि वि वत्तव्वाणि । एव कंडयवद्विद्याकडयवग्गमेत्ताणि अणतभागवद्विद्याणाणि कंडयमेत्त-असखेज्जभागवद्विद्याणाणि च उवरिं गंतूण विदिय संखेज्जभागवद्विद्याणं होदि । एव-मेदेण कमेण कंडयमेत्ताणि संखेज्जभागवद्विद्याणाणि उप्पाएदव्वाणि । ततो उवरि एणं

भागवद्विस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार यह क्रम काण्डकप्रमाण अनन्तभागवद्वि स्थानोंमें अन्तिम अनन्तभागवद्विस्थानके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये । अर्थात् उत्पन्न हुए अनन्त-भागवद्विस्थानके जीवराशिप्रमाण रण्ड करके उनमेंसे एक रण्डको लेकर उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेसे आगेका स्थान उत्पन्न होता है आदि । यहाँ पर भी नीचेके स्थानसे ऊपरके स्थानका अन्तर, नीचेके स्पर्धकसे ऊपरके स्पर्धकका अन्तर और उसकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंकी सख्याका कथन जैसा प्रथम अनन्तभागवद्विस्थान काण्डकमें किया है वैसे ही करना चाहिये, दोनोंके कथनमें कोई अन्तर नहीं है ।

§ ६१४ पुन काण्डकके अन्तिम अनन्तभागवद्वि स्थानके असख्यात लोक प्रमाण रण्ड करके उनमेंसे एक रण्ड लेकर उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेपर दूसरा असख्यातभागवद्वि स्थान उत्पन्न होता है । यहाँ पर भी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंके प्रमाणका तथा नीचेके स्थानसे इस स्थानके अन्तर और नीचेके स्पर्धकसे इस स्थानके स्पर्धकके अन्तरके प्रमाणका कथन पहलेकी तरह कर लेना चाहिये । इस प्रकार इस क्रमको काण्डकप्रमाण असख्यातभाग वृद्धिस्थानोंके अन्तिम असख्यातभागवद्वि स्थान पर्यन्त ले जाना चाहिये । अन्तिम असख्यातभागवद्वि स्थानके ऊपर पहलेकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभागवद्वि स्थानोंके होनेपर सख्यातभागवद्वि स्थान होता है । इस स्थानका अन्तर अनन्तभागवद्वि स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है तथा नीचेके असख्यातभागवद्वि स्थानके अन्तरसे असख्यातगुणा है । सख्यातभागवद्वि स्थानकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाएँ नीचेके अनन्तभागवद्वि और असख्यातभागवद्वि स्थानोंकी प्रक्षेप स्पर्धक शलाकाओंसे सख्यातवें भागप्रमाण अधिक हैं । जैसे स्थानोंके अन्तरका कथन किया है वैसे ही स्पर्धकोंका अन्तर भी कहना चाहिये । इस प्रकार एक काण्डक और काण्डकके वर्गप्रमाण अनन्तभागवद्वि स्थान तथा काण्डकप्रमाण असख्यातभागवद्वि-स्थानोंके होनेपर दूसरा सख्यातभागवद्वि स्थान होता है । इस प्रकार इस क्रमसे काण्डकप्रमाण

संसे० मागवद्विहाणविसयं गतूण पदमसंसेज्जगुणवद्दी' उप्पज्जदि । एदिस्से द्वाणतरं
 हेदिमअणंतमागवद्विहाणतरंहेदिंते अणत्तुण्यं संसेज्जमागवद्वि असंसेज्जमागवद्विहाणतरं
 हेदिंते असंसेज्जगुण्यं । तेसिं तिण्हं पक्खेवफइयंतरादो पदस्स द्वाणस्स पक्खेवफइयतरं
 मखंतगुणमसंसे० गुणं च । तेसिं चेव पक्खेवफइयसअग्गाहिंते एत्थवणपक्खेवफइय
 सअग्गाभो संसेज्जगुणामो । कुदो एतं णम्भवे ? आइरियायां सुत्ताविस्सुदयणादो ।
 एवं समयाविरोहण कंइयमेत्तेसु संसेज्जगुणवद्विहाणेषु गदेसु पुणो संसेज्जगुणवद्वि
 विसयं गंतूण असंसेज्जगुणवद्दी होदि । को एत्थ गुणगारो ? असंसेज्जा सोगा । हेदि
 माणंतमागवद्विहाणे असंसेज्जेहिं छोगेहिं गुणिदे असंसेज्जगुणवद्दी होदि चि मणिदं
 हादि । वद्विदाणुभागो हेदिमाणंतमागवद्विहाणं पडिरासिय पक्खेव असंसेज्जगुणवद्वि
 हाणं होदि । मागहारा इव सअवेसु गुणगारा वद्दीए चेव हांति चि कुदो णम्भवे ?
 मयांतगुणवद्दी काए परिचव्दीए परिचव्दिदा ? सम्भजीवेहिं चि वयणासुत्तादो । पुम्भमय-
 दिदअणुभागो चि वद्दी चेव तेण विणा संपहिं वद्विदअणुभागणेष अणस्स द्वाणस्स

संख्यातमागवद्विस्थान रूपम करने चाहिये । इससे ऊपर एक संख्यातमागवद्विस्थानके
 अन्तमूर्त स्थानोंके होनेपर पक्षी संख्यातगुणवद्विस्थान रूपम हावा है । इसका स्थानान्तर
 अपस्थान अनन्तमागवद्विस्थानान्तरसे अनन्तगुणा है और संख्यातमागवद्वि तथा असंख्यातमाग-
 वद्विस्थानोंके अन्तरसे असंख्यातगुणा है । एक हीनो स्थानोंके प्रक्षेप स्पर्शको अन्तरसे इस
 स्थानके प्रक्षेप स्पर्शका अन्तर अनन्तगुणा और असंख्यातगुणा है । उन हीनों स्थानोंकी प्रक्षेप
 स्पर्शक शक्ताकाओंसे इस स्थानकी प्रक्षेप स्पर्शक शक्ताकार्य संख्यातगुणी हैं ।

शंका—यह किस प्रमाणासे जाना ?

समाधान—आचार्योंके सूत्रसे अभिद्वय वचनोंसे जाना ।

इस प्रकार आगमके अभिद्वय काण्डकप्रमाण संख्यातगुणवद्विस्थानोंके बीचने पर पुनः
 एक संख्यातगुणवद्विस्थानके अन्तमूर्त स्थानोंका विचार असंख्यातगुणवद्विस्थान हावा है ।

शंका—इस असंख्यातगुणवद्विस्थानमें गुणकारका प्रमाणा क्या है ?

समाधान—असंख्यात लोक । आशय यह है कि इस स्थानके नीचेके अनन्तमागवद्वि
 स्थानके असंख्यात लोकसे गुणा करने पर असंख्यातगुणवद्वि हावी है ।

अपस्थान अनन्तमागवद्विस्थानको प्रतिगारि करके अन्तमें बड़े हुए अनुभागके जाइ देनेसे
 असंख्यातगुणवद्विस्थान होता है ।

शंका—सब स्थानोंमें भागहारोंके समान गुणकार वृद्धिके अनुसार ही हावे हैं या
 कैसे जाना ?

समाधान—अनन्तगुणवद्वि किस वृद्धिसे वृद्धिका प्राप्त हुई है ? सर्व जीवराशिरूप गुण-
 वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुई है इस बचनादण्डके सूत्रसे जाना ।

शंका—पक्षिका अक्षरिथ अनुभाग भां वृद्धिस्वरूप ही है, क्योंकि उसके बिना वर्तमानमें
 वृद्ध हुए अनुभागसे ही अन्त्य स्थानकी कर्ण्यत मर्त्यां हो सकती ?

१ ता ध । प्रत्यो पदमाल्लवज्जुणवद्दी इति पठ्य । २. ता धा शब्दो गुणवार वद्दीए
 इति पठ्य ।

पत्तीए अभावादो त्ति ? सच्चमेद, किंतु ण चिराणाणुभागो एत्थ घेप्पदि, वड्डि-
णिमित्ताणुभागोण विणा वड्डिअणुभागोण चैव एत्थ अहियारादो । तं पि कुटो णव्वदे ?
वड्डि पडुच्च भागहार-गुणगारपस्वणणहाणुववत्तीदो । हेट्ठिमअणतभागवड्डिटाणंतरादो
असंखेज्जगुणवड्डिटाणंतरमणतगुण सेसवड्डिटाणंतरेहितो अमंखे०गुणं । अणंतभाग-
वड्डिपक्खेवफइयंतरादो एदस्स फइयंतरमणतगुणं ।

§ ६१५. एदमसखेज्जगुणवड्डिटाणं सव्वजीवेहि खंडिय जं लद्धं तम्मि तत्थेव
पक्खित्ते उवरिमणंतभागवड्डिटाणं होदि । हेट्ठिमअसखेज्जगुणवड्डिटाणंतरादो एदस्स
टाणतरमणंतगुणहीणं । तस्स पक्खेवफइयंतरादो वि एदस्स फइयतरमणंतगुणहीण ।
असंखेज्जगुणवड्डिए हेट्ठिमअणंतभागवड्डिकइयस्स टाणंतरादो एद टाणंतरमसखे०-
गुणं । तत्थतणफइयंतरादो वि एत्थतणफइयतरमसखेज्जगुण । एवं जाणिदूण समया-
विरोहेण णेदव्वं जाव कइयमेत्ताणि असखेज्जगुणवड्डिटाणाणि समुप्पण्णाणि त्ति ।

§ ६१६. पुणो अवरमेगमसखेज्जगुणवड्डिविसयं गंतूण जं चरिममुव्वंकट्टाण-
मवट्ठिदं तम्मि रूवाहियसव्वजीवरासिणा गुणिदे पढममट्ट कट्टाणमुप्पज्जदि । एदस्स
ट्टाणंतरं पुव्विल्लासेसट्टाणतरेहितो अणतगुण । एदस्स फइयतर पि पुव्विल्लासेस-

समाधान—उक्त कथन सत्य है, किन्तु यहाँ पर चिरकालके अनुभागका ग्रहण नहीं
करते, क्योंकि यहाँ पर वृद्धिमें कारणभूत अनुभागके विना केवल वृद्धिप्राप्त अनुभागका ही
अधिकार है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—यदि वृद्धिमें कारणभूत अनुभागके विना वृद्धिप्राप्त अनुभागका ही अधिकार
न होता तो वृद्धिकी अपेक्षा भागहार और गुणकारका कथन नहीं बन सकता था ।

अधस्तन अनन्तभागवृद्धिस्थानके अन्तरसे असख्यातगुणवृद्धिस्थानका अन्तर अनन्त-
गुणा है तथा शेष वृद्धिस्थानोंके अन्तरसे असख्यातगुणा है । अनन्तभागवृद्धिके प्रक्षेप स्पर्धकके
अन्तरसे इस स्थानके स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा है ।

§ ६१५. इस असख्यातगुणवृद्धिस्थानमें सब जीवराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसे
उसी स्थानमें जोड़ देनेपर ऊपरका अनन्तभागवृद्धिस्थान होता है । अधस्तन असख्यातगुणवृद्धि-
स्थानके अन्तरसे इस स्थानका अन्तर अनन्तगुणा हीन है । उसके प्रक्षेप स्पर्धकके अन्तरसे भी
इस स्थानके स्पर्धकका अन्तर अनन्तगुणा हीन है । असख्यातगुणवृद्धिके अधस्तन अनन्तभाग-
वृद्धिकाण्डकके स्थानान्तरसे इस स्थानका अन्तर असख्यातगुणा है । उसके स्पर्धकान्तरसे
भी इस स्थानका स्पर्धकान्तर असख्यातगुणा है । इस प्रकार काण्डकप्रमाण असख्यातगुणवृद्धि-
स्थानोंकी उत्पत्ति होने तक इस क्रमको जानकर आगमानुसार ले जाना चाहिये ।

§ ६१६ इस प्रकार काण्डकप्रमाण असख्यातगुणवृद्धिस्थानोंकी उत्पत्ति होनेके पश्चात्
एक अन्य असख्यातगुणवृद्धिस्थानके अन्तर्भूत वृद्धियोगे जो अन्तिम अनन्तभागवृद्धिस्थान
आता है उसे एक अधिक समस्त जीवराशिसे गुणा करने पर पहला अष्टाकस्थान उत्पन्न होता
है । इस स्थानका अन्तर पहलेके सब स्थानोंके अन्तरसे अनन्तगुणा है । इसका स्पर्धकान्तर भी

फर्यंतरादो अर्थात्तुण । कारणं चित्तिय पत्तर्भ ।

५६१७ पक्षेयसत्तागाभो सम्भासु पट्टीसु अमयसिद्धिपहि अर्थात्तुण-सिद्धा
णंतिमभागमेचाभो । सगसगफर्यसत्तागाहि पट्टिदमशुभागे भागे हिदे सव्यत्य फर्यं
तरप्यपी पत्तम्भा । एनमेगस्त संघसमुपपत्तियद्ददाणस्त जहा परूयणा फदा तहा मय
सैसमसंस्वेज्जोमेत्तद्ददाणाम् अह कण विप्पा पक्खिअपत्तदाणाम् च परूयणा फयम्भा ।

एवमेसा संघसमुपपत्तियद्ददाणपरूयणा फदा ।

पक्षेके समस्त स्पर्शकान्तरसे अनन्तगुणा है । इसका कारण विचार कर कहना चाहिये ।

५६१७ सब बुद्धियोंमें प्रक्षेप शलाकार्थे अमय्यराशिते अनन्तगुणी और सिद्धराशिके
अनन्तमें भागमात्र हैं । वही हुए अनुभागमें अपनी अपनी स्पर्शक शलाकार्थोंका भाग देनेपर
सर्व स्पर्शकान्तरकी उत्पत्ति करनी चाहिये । इस प्रकार जिस क्रमसे एक बन्धसमुत्पत्तिक
पट्टस्वान्ता कथन किया है उसी क्रमसे असंख्यात श्लोकप्रमाण समस्त पट्टस्वान्तोंका तथा
अष्टांकके बिना पीछके पूर्व स्थानोंका कथन कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—अथव्य अनुभागस्वान्तके ऊपर जो काण्डकप्रमाण अनन्तानुभागवृत्तिस्थान
हूय वे क्रमसे अन्तिम अनुभागवृत्तिस्थानमें असंख्यात श्लोकका भाग देनेसे जो लक्ष्य भाव उसे
वही अन्तिम अनुभागवृत्तिस्थानमें जाइनसे पहला असंख्यातभागवृत्तिस्थान होता है । इस
स्थानका अन्तर नीचेके स्थानके अन्तरसे अनन्तगुणा है क्योंकि समस्त जीवरशिममें असंख्यात
श्लोकका भाग देनेसे जो लक्ष्य भाव है वही वहाँ गुणकार है । इस असंख्यातभागवृत्तिरूप
प्रक्षेपमें इस स्थानकी स्पर्शक शलाकार्थोंका भाग देनेपर जो लक्ष्य भाव है वही यहाँ स्पर्शक-
ान्तरका प्रमाण होता है । यह स्पर्शकान्तर नीचेके स्थानके स्पर्शकान्तरसे अनन्तगुणा है, क्योंकि
नीचेके अनन्तभागवृत्तिस्थानकी स्पर्शक शलाकार्थोंसे रूपाधिक सर्व जीवरशिमको गुणा करके
गुणनफलसे अन्तिम अनन्तभागवृत्तिस्थानमें भाग देनेसे स्पर्शकान्तर होता है । अनन्तमात्र-
वृत्तिकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्थोंसे असंख्यातभागवृत्तिकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्थे असंख्यातमें
भाग अधिक हैं । इससे संख्यातभागवृत्तिकी प्रक्षेप स्पर्शक शलाकार्थे संख्यातमें भाग अधिक हैं ।
इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए । इसी प्रकार असंख्यातभागवृत्तिकी प्रक्षेप स्पर्शक
शलाकार्थोंसे असंख्यात श्लोकका गुणा करके गुणनफलसे अन्तिम अनन्तभागवृत्तिस्थानमें
भाग देनेसे असंख्यातभागवृत्तिरूप प्रक्षेपका स्पर्शकान्तर हाता है । नीचेके स्पर्शकान्तरसे ऊपरके
स्पर्शकान्तरमें भाग देनेसे जो लक्ष्य भाव नीचेके ऊपरका स्पर्शकान्तर रहना ही गुणा हाता है ।
इस असंख्यातभागवृत्तिस्थानसे ऊपर काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृत्तिस्थान हात हैं । उनका
कथन पहलेके अनन्तभागवृत्तिस्थानोंकी तरह जानना चाहिए । इतना विशेष है कि असंख्यात-
भागवृत्तिके स्पर्शकान्तरोंसे ऊपरके अनन्तभागवृत्तिरूप प्रक्षेपोंके स्थानान्तर और स्पर्शकान्तर
अनन्तगुणे हीम हात हैं, तथा नीचेके काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृत्तिस्थानोंके स्थानान्तर और
स्पर्शकान्तरोंसे ऊपरके काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृत्तिस्थानोंके स्थानान्तर और स्पर्शकान्तर
असंख्यातमें भागप्रमाण अधिक हाते हैं । इसका कारण यह है कि असंख्यातभागवृत्तिस्थानमें
माग्यारका प्रमाण जीवरशिमका असंख्यातका भाग है और अनन्तभागवृत्तिमें माग्यारका प्रमाण
समस्त जीवरशिम है, अतः माग्यारक प्रमाणमें अन्तर होनेसे उक्त अन्तर पड़ता है । जैसे यदि
अन्तिम अनन्तानुभागवृत्तिस्थानका प्रमाण १ है कल्पना किया जाय ता इसमें असंख्यातक

§ ६१८. एदेसि वधट्टाणाणं कारणभूदकसायुदयट्टाणाणं पि अवट्टाणकमो परिसो चेव भागहार-गुणगारेहि टाणसंखाए च भेदाभावादो । तेणेसा परूवणा अणुभागबंध-ज्भवसाणट्टाणाणं पि णिरवयवा वत्तव्वा । एटाणि एव विहाणेण परूविटबंधसमुत्पत्तिय-ट्टाणाणि थोवाणि ति वेत्तव्वं ।

❀ हृदसमुत्पत्तियाणि असखेज्जगुणाणि ।

§ ६१९. एत्थ ताव हृदसमुत्पत्तियट्टाणाण सरूवपरूवणं कस्सामो । कत्तो एदेसिं समुत्पत्ती ? विसोहिट्टाणेहिंतो ? काणि विसोहिट्टाणाणि ? वट्टाणुभाग-

कल्पित प्रमाण दोका भाग देनेसे ८०००० आता है। यह स्थानान्तर नीचेके स्थानान्तरोंसे कई गुणा है। तथा असख्यातभागवृद्धिस्थानके कल्पित प्रमाण $१६०००० + ८०००० = २४००००$ में आगेका अनन्तभागवृद्धि युक्त स्थान लानेके लिये जीवराशिके कल्पित प्रमाण ४ का भाग देनेसे लब्ध ६०००० आता है। यह स्थानान्तर नीचेके अनन्तभागवृद्धिस्थानोंके अन्तरसे अधिक है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। दूसरे काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थानोंसे अन्तिम स्थानमें असख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेसे दूसरा असख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस प्रकार काण्डकप्रमाण असख्यातभागवृद्धिस्थान होते हैं। काण्डकप्रमाण असख्यातभागवृद्धिस्थानोंमेंसे जो अन्तिम असख्यातभागवृद्धिस्थान है उसके ऊपर पहलेकी तरह काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होते हैं। उनमेंसे अन्तिम अनन्तभागवृद्धिस्थानमें उच्छ्रष्ट सख्यातका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उसे उसीमें जोड़ देनेसे पहला सख्यात-भागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इसके ऊपर काण्डकप्रमाण अनन्तभागवृद्धिस्थान होने पर असख्यातभागवृद्धिस्थान है और काण्डकप्रमाण असख्यातभागवृद्धिस्थान होनेपर दूसरा सख्यातभागवृद्धिस्थान होता है। इस तरह काण्डकप्रमाण सख्यातभागवृद्धिस्थानोंके हो जानेपर ऊपर सख्यातभागवृद्धिस्थान विषयक अनन्तभागवृद्धिस्थानोंमें जो अन्तिम स्थान है उसमें उच्छ्रष्ट सख्यातका गुणा करनेसे जो लब्ध आवे उसे उसीमें जोड़ देनेसे पहला सख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। उक्त क्रमसे काण्डकप्रमाण सख्यातगुणवृद्धिस्थानोंके हो जाने पर, ऊपर सख्यातगुण-वृद्धिविषयक अनन्तभागवृद्धिस्थानोंमेंसे अन्तके स्थानमें असख्यात लोकका गुणा करनेसे जो लब्ध आवे उसे उसी स्थानमें जोड़ देनेसे पहला असख्यातगुणवृद्धिस्थान होता है। इसी प्रकार आगेका विचार कर कथन करके षट्स्थानकी उत्पत्ति कहनी चाहिए। इस प्रकार बन्धसमुत्पत्तिक स्थानकी उत्पत्तिका सागोपाग विचार किया।

इस प्रकार यह बन्धसमुत्पत्तिकस्थानका कथन हुआ।

§ ६१८ इन बन्धस्थानोंके कारणभूत कर्पायके उदयस्थानोंके भी अवस्थानका क्रम ऐसा ही है, क्योंकि दोनोंके भागहार, गुणकार और स्थानसख्यामें कोई भेद नहीं है। अतः यह पूरा कथन अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानोंके विषयमें भी कहना चाहिये। इस प्रकार कहे गये ये बन्धसमुत्पत्तिक स्थान थोड़े हैं ऐसा सूत्रका अर्थ लेना चाहिये।

❀ उनसे हतसमुत्पत्तिक स्थान असख्यातगुणे हैं।

§ ६१९ यहाँ अब हतसमुत्पत्तिकस्थानोंके स्वरूपका कथन करते हैं।

शका—इन स्थानोंकी उत्पत्ति किनसे होती है ?

समाधान—विशुद्धिस्थानोंसे।

संतस्स घादहेदुमीवपरिणामा । ताणि च असंस्वज्जलोगमेवाणि ऋत्विहाए वट्टीए अबद्धि
दाणि । पदेसि सीसपडिबोहणह वामपासे रयणा कायम्मा । सुहुमणिगोदमपज्जद
अहण्णाणुभागहाणप्यहुदि मान पज्जपसाणचरिमाणुभागबंधहाणे ति ताव पदेसि
मसंस्वज्जसोगमेवबंधसमुप्पत्तियहाण्णाणमेगसद्वियागारेण दाहिणपासे रयणा कायम्मा ।
एवं कादूण पुमा सिस्सपडिबोहणहमधुमागबंधहाणां घादणकमं भजिस्सामो । तं
अहा—एगण भीयेण सम्बुक्कस्सविसोहिहाणपरिणदेण सम्बुक्कस्सअणुभागबंधहाण
पादिदे चरिममह कादो हेहा अणंतगुणहीणं तथा हेद्विमबंधसमुप्पत्तियठव्वंफहाणादो
अणंतगुणं हादूण दोणं हाणाणं विद्याल इदसमुप्पत्तियसण्णिदमधुभागहाणमुप्पज्जदि ।
एदस्स हाणस्स पदंसनिष्णासो अहा वंधहाणाणं पक्कमदो तथा पक्कवन्धो, पदस
विष्णासविसंजासेण विष्णा सत्त्वतणअणुभागस्सेव यावत्तपिहाण्णादो । पुणो मण्णेण
भीयेण दुचरिमविसोहिहाणपरिणदण पज्जपसाणठव्वके घादिद पुम्बुत्तरकुम्बकाणं विद्याल
पुम्बुप्पण्णपादहाणस्सुमार अणंतभागव्यहियं होदूण विदियं इदसमुप्पत्तियहाणमुप्प
ज्जदि । एत्थ वट्टीए मागहारो अममसिद्धिएहि अणत्तगुणो सिद्धाणंतिममागा । एदण
मागहारण अहण्णहाण माग हिदे ज सद्धं तमि तत्थेव पक्कित्थे विदियमणंतमाग
वट्टिहाणं हादि ति भावत्थो । एत्थ सम्बजीवरासी वट्टिमागहारो ति क्कण्ण इच्छिदा ?

संज्ञा—विद्युद्विस्थान किन्हें कहते हैं ?

समाधान—जीवके जा परियाम बांधे गये अनुभागसत्कर्म के घातके कारण हैं उन्हें
विद्युद्विस्थान कहते हैं ।

व विद्युद्विस्थान असंख्यात साकममास्य हैं और अह प्रकारकी वृद्धिका लिये हुए हैं ।
शिल्पोका समग्रनेके लिये इन स्थानोंकी रचना बाई बार करना चाहिये और सूक्ष्म निगमविद्या
अपपर्याप्तके अचन्य अनुभागस्थानसे लेकर अन्तिम अनुभाग सम्भ्रमण तक इन असंख्यात
श्लोकप्रमाण्य कल्पसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक श्रेणिके आकारमें बाहिनी बार रचना करनी चाहिये ।
पेसा करके पुनः शिल्पोका समग्रनेके लिये अनुभागव्यपस्थानोंके घात करनेके क्रमका बहुत
हैं । वह इस प्रकार है—सर्वाकृष्ट विद्युद्विस्थानसे परिशुद्ध हुए एक जीवके द्वारा सर्वाकृष्ट
अनुभागव्यपस्थानका घात किये जाने पर अन्तके अर्धाकस अमन्तगुणा हीन और उससे
नीचेके कल्पसमुत्पत्तिक सर्वकस्थानसे अनन्तगुणा हाकर दाना स्थानोंके बीचमें इत्तसमुत्पत्तिक
नामका अनुभागस्थान उत्पन्न हावा है । इस स्थानके मन्त्रोंकी रचना जैसी कल्पस्थानोंकी कही
है वही प्रकार कहनी चाहिये । क्योंकि मन्त्रों रचना प्लट विना उसके अनुभागका ही कम
कर दिया है । पुनः द्विचरम विद्युद्विस्थानस परिशुद्ध हुए किसी अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उक्त
का घात किये जानेपर पूर्व सर्वक और उत्तर सर्वकके बीचमें पहले कल्प हुए इत्तसमुत्पत्तिकस्थानके
ऊपर अनन्तभाग अधिक दूसरा इत्तसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न हावा है । बाह्य पर हुए अनन्तभाग
वृद्धिका मागहार अमन्त्रराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिसे अनन्तके मागदमाय है । इम
मागहारस अप्य स्थानमें माग बने पर जा लक्ष्य भाव उसे वही स्थानमें आइ एम पर दूसरा
अनन्तभागवृद्धि स्थान हावा है, यह उक्त कथनका भाषाथ है ।

ण, कसायुदयद्वाणाणं व विसोहिद्वाणवट्टिद्वाणीणमभवसिद्धि एहि अणंतगुणं सिद्धाणंतिम भागं योत्तूण गुणगारभागहाराण सव्वजीवरासिपमाणत्तासभवादो । ण च कारण-गुणगार-भागहारेहिंतो कज्जगुणगार-भागहाराण पुधभावसंभवो, विरोहादो । पुणो अण्णेण जीवेण तिचरिमविसोहिद्वाणपरिणएण चरिमुव्वंके घादिदे तदियमणंतभागवट्टिद्वाण-मुप्पज्जदि । पुणो अवरेण चदुचरिमविसोहिद्वाणपरिणदेण पज्जवसाणुव्वंके घादिदे चउत्थमणंतभागवट्टीए घादद्वाणमुप्पज्जदि । एवं कइयमेत्ताणि अणतभागहीणविसोहि-द्वाणाणि हेद्वा ओसरिय द्विदअसखेज्जभागहीणविसोहिद्वाणपरिणएण चरिमुव्वंके घादिदे घादद्वाणेसु कइयमेत्तअणंतभागवट्टीओ उवरि गंतूण पढममसखेज्जभागवट्टिद्वाण-मुप्पज्जदि । एत्थ वट्टिभागहारो असंखेज्जा लोगा । कुदो ? सुत्ताविरुद्धगुरुवयणादो । एवं विलोमेण द्विदएगेगविसोहिद्वाणेण चरिमुव्वंके घादिदे असंखेज्जलोगमेत्ताणि हद-समुत्पत्तियद्वाणाणि अप्पिदअट्ठकुव्वंकाण विचाले उप्पज्जंति । णवरि घादद्वाणेसु घादघादद्वाणेसु च सव्वजीवरासिगुणगारो भागहारो वे त्ति ण वत्तव्वं । कुदो ? घाद-द्वाणे सव्वजीवरासिणा गुणिदे उक्कस्सबंधद्वाणादो अणतगुणघादद्वाणसमुप्पत्तीदो । ण च बधद्वाणादो घादद्वाणमणंतगुणं होदि, विरोहादो । एदेसिमसंखेज्जलोगमेत्तउव्वंक-

शंका—यहा पर वृद्धिका भागाहार सर्व जीवराशि है ऐसा क्यों नहीं माना ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कषायके उदयस्थानोंको तरह विशुद्धिस्थानोंकी वृद्धि और हानि

का गुणकार और भागहार अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाणको छोड़कर सर्वराशिप्रमाण नहीं बन सकता है । अर्थात् जैसे कषायके उदयस्थानोंकी वृद्धि-हानिका गुणकार और भागहार अभव्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिके अनन्तवें भागप्रमाण है वैसा ही विशुद्धिस्थानोंमें भी जानना चाहिये, क्योंकि कषाय उदयस्थान कारण हैं और विशुद्धि स्थान उनके कार्य हैं और कारणके गुणकार और भागहारोंसे कार्यके गुणकार और भागहार जुड़े नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसा होनेमें विरोध है ।

पुन त्रिचरम विशुद्धिस्थानसे परिणत हुए किसी अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर तीसरा अनन्तभागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है । पुन चतु चरम विशुद्धि स्थानसे परिणत हुए अन्य जीवके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर अनन्तभागवृद्धिको लिये हुए चतुर्थ घातस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार काण्डकप्रमाण अनन्तभाग हीन विशुद्धि स्थान नीचे उतरकर स्थित असख्यात भाग हीन विशुद्धिस्थानसे परिणत हुए जीवके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर घातस्थानोंमें काण्डकप्रमाण अनन्तभाग वृद्धिया ऊपर जाकर पहला असख्यातभागवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है । यहा पर असख्यातभागवृद्धिका भागहार असख्यात लोक है, क्योंकि सूत्रके अविरुद्ध गुरुके ऐसे वचन हैं । इस प्रकार विलोसक्रमसे स्थित एक एक विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किये जानेपर विवक्षित अष्टाक और उर्वकके बीचमें असख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं । इतना विशेष है कि घातस्थानोंमें और घातघातस्थानोंमें गुणकार और भागहारका प्रमाण सर्व जीवराशि है ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि घातस्थानको सर्व जीवराशिसे गुणा करने पर उत्कृष्ट बन्धस्थानसे अनन्तगुणे घातस्थानकी उत्पत्ति होती है । किन्तु बन्धस्थानसे घातस्थान अनन्तगुणा नहीं होता

पत्वारि-पञ्च-द-सप्त-अष्ट कार्णं स्मृज्जहाणसहियाणं हाजंतरफहयंतरादीभं परूषणाए
 कीरमाणाए बंधहाणमंगो । एवं चरिमुच्चकमस्सिद्धं एत्थियाणि वेप घादहाणापि
 एत्थिच्चिदि, चकस्सभिसोहिहाणप्यहुदि जान महण्णभिसोहिहाणे पि ताव सम्भभिसोहि
 हाणेहि चरिमुच्चकं पादिय भादहाणाणमुप्याइदत्तादो । पुणो चकस्सभिसोहिहाणेण
 दुचरिमसम्भके पादिदे हेहा पुम्भिद्वसम्भमहण्णपादहाणादो हेहा अर्णतमागहीणं हाद्वप
 अण्णं पादहाणमुप्यच्चदि । एत्थ हाणीए मागहारो रूनाहियसम्भभीवरासी । कुदो ?
 एगेण परिणामेण घादं संतं पि चकस्सजम्भंकादा दुचरिमसम्भकस्स रूनाहियसम्भ
 भीवरासिणा च्चिदिदेगत्ववपरिहाणिदसभादो । पुणो दुचरिमभिसोहिहाणेण दुचरिम
 अनुमागबंधहाणे पादिदे अण्णं भादहाणमणंतमागम्महियं होद्वण अनुमागवत्तमुप्यच्चदि ।
 को एत्थ वड्ढिमागहारो ? अमभसिद्धिएहि अर्णतमुणो सिद्धाणमणंतिमभागो, कवरणापु
 स्सकच्चसिद्धीए जाइपत्तादो । अनुमागबंधवत्तवसाणहाणार्णं च अनुमागयादवत्तव
 साणहाणार्णं वड्ढिमागहारो गुणगारो च किण्ण होदि ? ज, अनुमागवड्ढिहेदुपरिणामार्णं
 घादहेउपरिणामाणं च सरिसत्तविरोहादो । एदं संपहि सपुण्णानुमागपाद
 हाणमुचरिमपतीए महण्णपादहाणेण सरिसं ज होदि, पुम्भिद्वमहण्णहाणार्णं सम्भ

है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है । एक कम पट्टवान सहित इन असंख्यात लोकप्रमाय
 सर्वत्र चतुरद्व पञ्चाद्व पञ्चद्व सप्ताद्व और अष्टाद्वोंके स्थानान्तर और स्वर्णकान्तर आदिका
 क्वचन करने पर काका मङ्ग बन्धस्वान्तोंके समान है । इस प्रकार अन्तिम सर्वत्रके आगमसे इतने
 ही पाठस्थान उत्पन्न होते हैं, क्योंकि उत्पन्न विद्युद्विस्थानसे लेकर अपत्य विद्युद्विस्थान तक सब
 विद्युद्विस्थानोंसे अन्तिम सर्वत्रके पाठ कर पाठस्थानोंकी उत्पत्ति की जाती है । पुनः एकद्व
 विद्युद्विस्थानसे द्विचरम सर्वत्रका पाठ करने पर नीचे पदोंके सर्व अपत्य पाठस्थानसे नीचे
 अन्तममाग हीन वृत्तया पाठस्थान उत्पन्न होता है । यहां इन्द्रिका मागहार एक अधिक सर्व जीव-
 राशि है, क्योंकि एक परिणामसे पाठ होने पर भी एकद्व सर्वत्रके द्विचरम सर्वत्रमें एक अधिक
 सर्वत्रके माग होने पर जो एक अण्व सम्भ आता है । तनी हानि देनी जाती है । सारंग्य
 यह है कि अन्तिम सर्वत्रके द्विचरम एक इतना हीन है इसलिये इस पाठस्थानकी इन्द्रिका
 मागहार ह्यधिक सर्व जीवराशि रखा है । पुनः द्विचरम विद्युद्विस्थानसे द्विचरम अनुमागवत्त-
 स्थानका पाठ करने पर अन्तममाग अधिक अन्य अपुनवत्त पाठस्थान उत्पन्न होता है ।

संज्ञा—यहां पर वृद्धि मागहार कितना है ?

समाधान—अमभ्यराशिसे अमभ्यगुणो और सिद्धराशिसे अन्तममें मागप्रमाय है,
 क्योंकि कारयके अनुमाग कार्यकी सिद्धि होना अधिक ही है ।

संज्ञा—अनुमागपावाध्यवसायस्थानोंकी वृद्धि मागहार और गुणकार अनुमाग
 क्पावत्तवसायस्थानोंके मागहार और गुणकारके समान क्यों नहीं होते ।

समाधान—क्योंकि अनुमागकी वृद्धिके कारयमूल परिणामोंके और अनुमागके पाठ
 के कारयमूल परिणामोंके समान होनेमें विरोध है ।

यह इस समय उत्पन्न हुआ अनुमागपाठस्थान ऊपरकी वृद्धिमें अपत्य पाठस्थानके समान

जीवरासिणा खंडिय तत्थेगखंडेणूण संपहियजहण्णट्टाणमभवसिद्धिएहि अणंतगुणं सिद्धाणमणत्तिमभागमेत्तभागहारेण खंडिय तत्थेगखंडेण अहियत्तादो । उवरिमपंतीए विदियघादट्टाणेण वि सरिस ण होदि, विहज्जमाणरासीण अवहाररासीणं च सरिसत्ता-भावादो ।

§ ६२०. तम्हि चेवाणुभागबंधट्टाणे तिचरिमअब्भवसाणट्टाणेण घादिदे अण्णं घादट्टाणमुप्पज्जदि । एदं पि अपुणरुत्तं । कारणं चित्तिय वत्तव्वं । एवमेदम्हि अणु-भागबंधट्टाणे घादिज्जमाणे वि असंखेज्जलोगमेत्ताणि घादट्टाणाणि अपुणरुत्ताणि उप्प-ज्जति, अणुभागघादहेदुपरिणामाणमसखेज्जलोगपरिमाणत्तादो । पज्जवसाणअणुभाग-बंधट्टाणे घादिज्जमाणे उप्पण्णअणुभागघादट्टाणेहितो दुचरिमअणुभागबंधट्टाणघादज्जिद-अणुभागट्टाणाणि सरिसाणि, घादहेदुविसोहिट्टाणाणं समाणत्तादो । पुणो तेणेव चरिमपरिणामेण तिचरिमउव्वंके घादिदे विदियपरिवाहीए उप्पण्णहदसमुप्पत्तियसव्व-जहण्णट्टाणादो हेट्टा अणंतभागहीण होदूण अण्णमपुणरुत्तट्टाणमुप्पज्जदि । भीयमाण-दव्वागमणं पडि को एत्थ भागहारो ? रुवाहियसव्वजीवरासी । पुणो दुचरिमपरि-णामेण तिचरिमउव्वंके घादिदे तदियपंतिजहण्णट्टाणादो अणंतभागवहियं होदूण अण्णमपुणरुत्तट्टाणमुप्पज्जदि । को एत्थं वड्ढिभागहारो ? अबवसिद्धिएहि अणंतगुणो

नहीं है, क्योंकि पहलेका जघन्य स्थान सब जीवराशिका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतना न्यून है और साम्प्रतिक जघन्य स्थान अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोके अनन्तवें भागप्रमाण भागहारका भाग देने पर जो वहा एक भाग लब्ध आता है उतना अधिक देखा जाता है । तथा यह घातस्थान ऊपरकी पक्तिमें स्थित दूसरे घातस्थानके भी समान नहीं है, क्योंकि भाज्य राशिया और भाजक राशिया समान नहीं हैं ।

§ ६२० उसी अनुभागबन्धस्थानका त्रिचरम अर्धवसायस्थानके द्वारा घात किये जाने पर अन्य घातस्थान उत्पन्न होता है । यह घातस्थान भी अपुनरुक्त है । इसके अपुनरुक्त होनेका कारण विचार कर कहना चाहिये । इस प्रकार इस अनुभागबन्धस्थानका भी घात स्थि ऊर्ध्वो पर असख्यात लोकप्रमाण अपुनरुक्त घातस्थान उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अनुभागके घातके कारणभूत परिणाम असख्यात लोकप्रमाण हैं । द्विचरम अनुभागबन्धस्थानके घातसे उत्पन्न अनुभागस्थान अन्तिम अनुभागबन्धस्थानके घातसे उत्पन्न अनुभागघातस्थानोंके बराबर ही होते हैं, क्योंकि घातके कारणभूत विशुद्धिस्थान दोनोंके समान हैं । पुन उसी अन्तिम परिणामके द्वारा त्रिचरम उर्वकका घात किये जाने पर दूसरी परिपाटीसे उत्पन्न होनेवाले सर्व जघन्य हतसमुत्पत्तिकस्थानसे नीचे अनन्तभागहीन होकर दूसरा अपुनरुक्तस्थान उत्पन्न होता है ।

शका—हीयमान द्रव्यका प्रमाण लानेके लिये यहा भागहारका प्रमाण क्या है ?

समाधान—एक अधिक सर्व जीवराशि ।

पुन द्विचरम परिणामके द्वारा त्रिचरम उर्वकका घात किये जाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है, जो कि तीसरी पक्तिके जघन्यस्थानसे अनन्तवें भागप्रमाण अधिक है ।

शका—यहा पर वृद्धिका भागहार क्या है ?

सिद्धाणमण्णतिममागा । कुदा ? उक्खस्सपादग्गमपसाखहाणाण पेक्खिस्सुदण तत्तो अणंतर
 हेट्ठिमपादग्गमवसाणहाणस्स अमब्बसिद्धिपट्ठि अणत्तणुणसिद्धाणमखतभागमेत्त
 मागहारण खंडिद्द तत्त्यगखंडण ऊणत्तादा । कुदा अपुणरुत्तदा ? भिण्णमागहारहि
 मोवहिज्जमाणहाणार्ण सरिससाभावादो । एत्थं तिचरिमाणुभागबंधहाणे पि घादिज्जमाणे
 तदियपरिवाटीए अणुभागपादग्गमवसाणहाणमत्ताणि अणुभागपादहाणाणि अपुणरुत्ताणि
 उप्पादेद्व्वाणि । एत्थं चट्ठुचरिमाणुभागहाणप्यहुट्ठि जाय इहा रूणद्धहाणमेत्तबंध
 हाणिहाणार्ण चरिमहाणे ति ताव घादिय हाणं पट्ठि असंख्खलागमेत्ताणि पादहाणाणि
 अपुणरुत्ताणि उप्पादद्व्वाणि । एत्थं रूणद्धहाणमेत्तअणुभागबंधहाणाणि अस्सियुण
 एषियाणि चव घादहाणाणि उप्पज्जति । पञ्चपसाणाणुभागबंधहाणं घादिय सस
 मद्द कुम्भकाणं वियासेसु पादहाणाणि किण्ण उप्पाइज्जति ? ण, एत्थंविहृत्तुक्खपसा
 मावादा । अदि अद्द कुम्भकाणं विखालं चव घादहाणाणमुप्पत्तिभियमो वा संख्खेज्जा
 सख्खेज्जाणुभागबंधहाणार्ण घादण ण होदम्भं ? ण, तेसु घादिज्जमाणेसु घादहाणाणि
 मोत्तुण बंधहाणार्ण समुप्पत्तीदो । घादणुप्पणार्ण कयं बंधहाणववपसा ? ण, बंधहाण

समाधान—अमभ्यराशिसे अनन्तगुणा और सिद्धराशिसे अनन्तबे मागप्रमाण बुद्धिका
 मागहार है, क्योंकि उक्त पातान्यवसायस्थानकी अपेक्षा उससे अनन्तरवर्ती नीचका पातान्य
 वसायस्थान अमभ्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिसे अनन्तबे मागप्रमाण मागहारका माग
 बेनेपर वा एक माग लक्ष्य जाता है कतना कम है ।

शंका—यह अपुनरुत्त कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, भिन्न भिन्न मागहारोंके द्वारा अपचरतको प्राप्त होनेवाले स्थान
 समान नहीं हो सकते ।

इसी प्रकार त्रिचरम अनुभागबन्धस्थानका भी पात करने पर सीसरी परिपाटीसे
 अनुभागपाताभ्यवसायस्थानोंकी संख्याके वरावर अपुनरुत्त अनुभागपातस्थान उत्पन्न करने
 चाहिये । इसी प्रकार चट्ठुचरम अनुभागस्थानसे लेकर एक कम पदस्थानमात्र पंध हानिस्थानोंके
 अन्तिम स्थान पर्यन्त घातिस्थानकी अपेक्षा असंख्यात लक्ष मात्र अपुनरुत्त पातस्थान उत्पन्न
 करने चाहिये । इस प्रकार एक कम पदस्थानमात्र अनुभागबन्धस्थानोंकी अपेक्षा इतम ही पात-
 स्थान उत्पन्न होते हैं ।

शंका—अन्तिम अनुभागबन्धस्थानका पात करके शेष अष्टांक और तर्कके बीचमें
 पातस्थान क्यों नहीं उत्पन्न किये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इस प्रकारका गुरुश्लोक अपदेश नहीं पाया जाता है ?

शंका—यदि अष्टांक और तर्कके बीचमें ही पातस्थानोंकी उत्पत्तिका निकम है, तो
 संख्यात और असंख्यात अनुभागबन्धस्थानोंका पात नहीं होना चाहिये ।

समाधान—नहीं क्योंकि क्तका पात हमेपर पातस्थानोंकी उत्पत्ति न हाकर बन्ध-
 स्थानोंकी उत्पत्ति होती है ।

शंका—जो स्थान पातसे उत्पन्न होते हैं उन्हें बन्धस्थान कैसे कहा जा सकता है ?

मेवे त्ति घादेणुप्पण्णाणं पि वधट्टाणववएससिद्धीदो । संपहि अप्णेगो जीवो जो एग-
 छट्टाणेणूणअसंखेज्जलोगमेत्तट्टाणधारओ तेण उक्कस्सपरिणामट्टाणपरिणदेण संपहिय-
 चरिमउव्वके घादिदे दुचरिमअट्टंक्कस्स हेट्टदो अणंतगुणहीणं ततो हेट्टिमअणंतगुणहीण-
 उव्वकट्टाणादो अणंतगुण होदूण अण्ण हदसमुप्पत्तियट्टाणमुप्पज्जट्ठि । पुणो दुचरिम-
 परिणामट्टाणेण तम्मि चैव चरिमउव्वंके घादिदे विदियमणंतभागवट्टिघादट्टाणमुप्पज्जट्ठि ।
 पुणो तिचरिमादिविसोहिट्टाणेहि तम्मि चैव चरिमउव्वंके घादिज्जमाणे परिणाम-
 ट्टाणमेत्ताणि चैव हदसमुप्पत्तियट्टाणाणि उप्पज्जंति । कि पमाणानि घादट्टाण-
 हेदुपरिणामट्टाणाणि ? रूवूणछट्टाणव्वहियअसखेज्जलोगमेत्तछट्टाणपमाणानि । पुणो
 दुचरिमुव्वंके तेहि चैव परिणामट्टाणेहि पुव्वविहाणेण परिवाडीए घादिदे एत्थ वि परि-
 णामट्टाणमेत्ताणं घादट्टाणाण पंती अपुणरुत्ता पुव्विल्लघादट्टाणपंतीए हेट्टदो उप्पज्जट्ठि ।
 पुणो तेहि चैव परिणामट्टाणेहि पुव्वविहाणेण तिचरिमुव्वंके घादिदे एत्थ वि अणुभाग-
 घादज्जभवसाणट्टाणमेत्ताणि चैव हदसमुप्पत्तियट्टाणाणि विदियपत्तीए हेट्टदो पंतिया-
 गारेण उप्पज्जति । एवं रूवूणछट्टाणमेत्तेसु अणुभागवधट्टाणेसु घादिज्जमाणेसु रूवूण-
 छट्टाणमेत्ताओ अणुभागघादज्जभवसाणट्टाणपमाणायदाओ घादट्टाणपतीओ उप्पज्जंति ।
 एवमसंखेज्जलोगमेत्तवधसमुप्पत्तियअट्ट कुव्वंकाण विचालेसु घादज्जभवसाणट्टाणपमाणा-

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्धस्थान ही हैं इसलिए घातसे उत्पन्न हुए स्थानोंकी भी
 बन्धस्थान सज्ञा सिद्ध होती है ।

अब एक ऐसा जीव लो जो एक षट्स्थानसे कम असख्यात लोकमात्र स्थानोंका धारक है ।
 चत्कष्ट परिणामस्थानसे युक्त उस जीवने साम्प्रतिक अन्तिम उर्वकका घात किया है । घात करने
 पर उसके अन्य हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है जो द्विचरम अष्टाकसे नीचे अनन्तगुणा हीन
 और उससे नीचेके अनन्तगुणे हीन उर्वकस्थानसे अनन्तगुणा होता है । पुन द्विचरम परिणाम-
 स्थानसे उसी अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर अनन्तभागवृद्धिका लिये हुए दूसरा घातस्थान
 उत्पन्न होता है । पुन त्रिचरम आदि विशुद्धिस्थानोंसे उसी अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर
 परिणामस्थानोंकी सख्याके बराबर ही हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं ।

शंका—घातस्थानोंके कारणभूत परिणामस्थानोंका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक कम षट्स्थान अधिक असख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंका जितना
 प्रमाण है उतना है ।

§ ६२३ पुन पूर्व विधानके अनुसार क्रमवार उन्हीं परिणामस्थानोंसे द्विचरम उर्वकका
 घात किये जाने पर यहा भी पहले कहे गये घातस्थानोंकी पक्तिसे नीचे परिणामस्थानप्रमाण
 घातस्थानोंकी अपुनरुक्त पक्ति उत्पन्न होती है । पुन पूर्व विधानके अनुसार उन्हीं परिणामस्थानोंसे
 त्रिचरम उर्वकका घात किये जाने पर यहा भी दूसरी पक्तिसे नीचे पक्तिरूपसे अनुभागघाताध्यव-
 सायस्थानप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार एक कम षट्स्थानप्रमाण
 अनुभागबन्धस्थानोंके घाते जाने पर एक कम षट्स्थानप्रमाण अनुभागघाताध्यवसायस्थानप्रमाण
 लम्बी घातस्थानपक्तियाँ उत्पन्न होती हैं । इस प्रकार असख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक

यदाहो स्रृणुष्वहाण्येसाहो इदसमुप्यसियद्वाणपंतीओ पादेकमुपादेदन्वाओ । जनरि
सुहुमणिगोदअपञ्चतवचसमुप्यसियमइण्णसंतहाणादो जनरि संस्वेज्जमइ कुम्भकाणं
विचालेसु इदसमुप्यसियद्वाणाणि ण उप्पज्जंति । कुदो ? साहायियादो । को सहाया ?
अंतरंग कारण । ण च एस जाआ अप्पसिद्धो, उक्कस्ताणुभागपादहाणीदो तस्सेम्बुक्क-
स्सिया षट्ठी विसेसाहिया ति एनमादीसु एदस्स संबवहारस्स पसिद्धिदंसणादो ।
अणुभागस्स उक्कस्सिया हाणी घोषा । तस्सेमुक्कस्सिया षट्ठी विससाहिया ति गम्भदे
महापथ-कसायपाहुदमुचेहितो । एत्य पुण संस्वेज्जह कुम्भकाणं विचालेसु इदसमुप्यसिय
हाणाणि जत्थि ति परुवयमुत्तेण विणा सहाओ दुरहिगम्मा ति । एत्य परिहारो
बुधदे । सम्भत्थोवा हाणी । षट्ठी विसेसाहिया ति अं सुत्त तं कमाकमवट्ठि
हाणीओ अस्सिन्नु जेणावट्ठिदं तेम दोएहं पि अस्थाणमेदं चेन सुत्त ति पेत्तम्भं ।
अकमवट्ठि हाणीसु पसिद्ध सुत्तं एत्य वि होदि ति कुदा जन्वदे ? सुत्ताविरुद्धमाइरिय
ययणादो । मइ कुम्भकाणं विचालेसु ष अणंतभागवट्ठि-हाणि असंस्वे०भागवट्ठि-हाणि-
संस्वे०भागवट्ठि-हाणि-संस्वे०गुणवट्ठि हाणि-असंस्वेज्जागुणवट्ठि-हाणीणं विचालेसु इद

अष्टांक और अर्बकके अन्तरालमें इतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी पाठान्धबसाबस्थानप्रमास्य सम्भी और
संख्यामें एक कम पदस्थानप्रमास्य अलग-अलग पंक्तिर्णो उत्पन्न करनी चाहिये । किन्तु इतना विरोध
है कि सूत्रम निर्गाविया अन्वयपर्याप्तकके पन्चसमुत्पत्तिक अन्वय सत्त्वस्थानसे ऊपर संख्यात
अष्टांक और अर्बकोंके बीचमें इतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न नहीं हाते हैं क्योंकि ऐसा स्वभाव है ।

शंका—स्वभाव किसे कहते हैं ?

समाधान—अन्तरंग कारणको स्वभाव कहते हैं । शायद कहा जाय कि यह जो
व्यपत्तिकी गई है कि संख्यात अष्टांक और अर्बकके बीचमें स्वभावसे ही इतसमुत्पत्तिकस्थान
नहीं उत्पन्न हाते हैं यह आसन्न है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अनुभागपातकी
एकछह हानिसे हमीकी एकछह वृद्धि विरोध अधिक हाती है इत्यर्थमें इस व्यवहारकी प्रसिद्धि
एकी जाती है ।

शंका—अनुभागकी एकछह हानि बाकी है । वहीकी एकछह वृद्धि विरोध अधिक है यह
पाठ महावन्धसे और कयायपाहुद्वक वृद्धिसूत्रसे जानी जाती है । किन्तु वहाँ ता संख्यात
अष्टांक और अर्बकों अन्तरालमें इतसमुत्पत्तिकस्थान नहीं हाते हैं ऐसा कथन करनेवाला
कोई सूत्र नहीं है, अत उक्तके बिना स्वभावका जानना कष्टसाध्य है ।

समाधान—इस शंकाका समाधान करते हैं—हर्षिन मन्धसे स्तोत्र है, वृद्धि वससे विरोध
अधिक है यह सूत्र पत-क्रम और अक्रमसे हानेवाली वृद्धि और हानिका स्थिषे हुए अक्षरित्य है,
अत हानो ही अर्बकों सम्बन्धमें यही सूत्र है ऐसा मानना चाहिये ।

शंका—या सूत्र अक्रमसे हानवाली वृद्धि और हानिक अर्बमें पसिद्ध है वही सूत्र यहाँ
भी लगता है यह किसे जाना ?

समाधान—सूत्रस्य अविच्छेद आचार्य वचनोत्ते जान्य ।

शंका—अष्टांक और अर्बकके बीचकी तरह अन्वयभागवृद्धि अन्वयभागहानि असंख्यात-
भागवृद्धि असंख्यातभागहर्षिन संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहर्षिन, संख्यातभागवृद्धि संख्यात-

समुत्पत्तियद्वाणाणि गत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? एत्थेव कसायपाहुडे अणुभागसंक्रमो णाम अत्थाहियारो, तत्थ चउवीसअणियोगद्वारेसु समुजगार-पटणिकखेव-वड्डीसु समत्तेसु पुणो अणुभागद्वानपरूवण कुणदि—एत्तो द्वाणाणि कादव्वाणि । जहा संतकम्मद्वान परूवणा कदा संक्रमद्वानपरूवणा कायव्वा । उक्कस्सए अणुभागबंधद्वाने एगं सतकम्मं तमेगं संक्रमद्वानं । दुचरिमे अणुभागबंधद्वाने एवमेव । एव ताव जाव पच्चद्वानुपुव्वीए पढमणतगुणहीणबंधद्वानमपत्तं ति । पुव्वानुपुव्वीए गणिज्जमाणे जं चरिममणंतगुणं बंधद्वान तस्स हेद्वा अणंतरमणतगुणहीणं एदम्मि अंतरे असखेज्जलोगमेत्ताणि घाट-द्वानाणि । ताणि संतकम्मद्वानाणि । ताणि चेव सकमद्वानाणि । तदो पुणो बंधद्वानाणि च संक्रमद्वानाणि च ताव तुल्लाणि जाव पच्चद्वानुपुव्वीए विदियमणंतगुणहीणं बंधद्वान । विदियस्स अणंतगुणहीणबंधद्वानस्स उवरिल्ले अंतरे असखेज्जलोगमेत्ताणि घाटद्वानाणि । एवमणतगुणहीणबंधद्वानस्स उवरिल्ले अंतरे असखेज्जलोगमेत्ताणि घाटद्वानाणि भवंति गत्थि अण्णम्मि कम्मि वि त्ति एदम्महादो विउलगिरिमत्थयत्थवड्डुमाणदिवायरादो विणिग्गमिय गोदम-लोहज्ज-जंबुसामियादि--आइरियपरंपराए आगतूण गुणहराइरिय पाविय गाहासरूवेण परिणमिय अज्जमखु-णागहत्थीहिंतो जइवसहायरियमुवणमिय चुण्णिमुत्तायारेण परिणददिव्वज्ज्भुणिकिरणादो णव्वदे । एदाणि हदसमुत्पत्तिय-

गुणहानि, असख्यातगुणवृद्धि और असख्यातगुणहानिके अन्तरालोंमें हतसमुत्पत्तिकस्थान नहीं होते यह कैसे जाना ?

समाधान—इसी कसायपाहुडेमें अनुभागसक्रम नामका अर्थाधिकार है । उसमें मुजकार, पदनिक्षेप और वृद्धि अधिकारके साथ साथ चौबीस अनुयोगद्वारोंके समाप्त होनेपर अनुभाग-स्थानका कथन इस प्रकार है—अब सक्रमस्थानका कथन करना चाहिये । जिस प्रकार अनुभागसत्कर्मस्थानोंका कथन किया है उसी प्रकार सक्रमस्थानोंका भी कथन करना चाहिये । उक्तष्ट बन्धस्थानमें एक सत्कर्म है वह एक सक्रमस्थान है । द्विचरम अनुभागबन्धस्थानमें भी इसी प्रकार पश्चादानुपूर्वीके क्रमसे तब तक ले जाना चाहिये जब तक प्रथम अनन्तगुणहीन बन्धस्थानको नहीं प्राप्त हुआ है । पूर्वानुपूर्वीसे गिनने पर जो अन्तिम अनन्तगुण बन्धस्थान और उससे नीचे अनन्तर अनन्तगुणा हीन बन्धस्थान है इस बीचमें असख्यात लोकप्रमाण घातस्थान उत्पन्न होते हैं । ये सत्कर्मस्थान हैं और ये ही सक्रमस्थान हैं । इसके बाद पश्चादानुपूर्वीसे दूसरे अनन्तगुणहीन बन्धस्थान पर्यन्त बन्धस्थान और सक्रमस्थान बराबर हैं । दूसरे अनन्तगुणहीन बन्धस्थानके ऊपरके अ तरमें असख्यात लोकप्रमाण घातस्थान होते हैं । इस प्रकार अनन्तगुणहीन बन्धस्थानके ऊपरके अन्तरमें असख्यात लोकप्रमाण घातस्थान होते हैं अन्यमें नहीं होते, इस प्रकार विपुलाचलके ऊपर स्थित भगवान महावीररूपी दिवाकरसे निकल कर गौतम, लोहाय, जम्बूसामी आदि आचार्य परम्परासे आकर, गुणधराचार्यको प्राप्त होकर वहा गाथा-रूपसे परिणमन करके पुन आर्यमक्षु और नागहस्ती आचार्यके द्वारा आचार्य यतिवृषभको प्राप्त होकर उक्त चूर्णिसूत्ररूपसे परिणत हुई दिव्यध्वनिरूपी किरणसे जाना जाता है ।

द्वाणाणि बंधसमुत्पत्तियद्वाणां अर्सेस्त्रयुणाणि । कां गुणगारो ? अर्सेस्त्रयुणां लोका ।
 बंधसमुत्पत्तियद्वाणाणि अंगुलस्त अर्सेस्त्रयुणां भागणोबद्धिय लद अर्सेस्त्रयुणां लोकेण गुणिद
 इदसमुत्पत्तियद्वाणां प भाणुत्पत्तीदो ।

ये इदसमुत्पत्तिक स्थान बन्धसमुत्पत्तिकस्थानांसे अर्सेस्त्रयुणां हाते हैं । यहाँ पर
 गुणकारका प्रमाय क्या है ? अर्सेस्त्रयुणां लाकप्रमाय है, क्योंकि बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंका अंगुलसे
 अर्सेस्त्रयुणां भागसे मासित करके जा लक्ष्य जाता है उसे अर्सेस्त्रयुणां लाकसे गुणित करने पर
 इदसमुत्पत्तिक स्थानोंकी संख्या उत्पन्न होती है ।

विशुपार्य-बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करके इदसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते
 हैं । जो अनुभागस्थान पाचसे उत्पन्न होते हैं उन्हें बंधसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं । सजामें
 स्थित अनुभागका पाठ करनेपर जा स्थान उत्पन्न हाते हैं उनमेंसे भी कुछ स्थान बध्यमान अनुभाग
 स्थानके समान हाते हैं व बन्धसमुत्पत्तिक स्थान कहे जाते हैं । किन्तु जा अनुभागस्थान पाठसे
 ही उत्पन्न हाते हैं बन्धसे उत्पन्न नहीं हाते उन्हें इदसमुत्पत्तिकस्थान कहते हैं । ये इदसमुत्पत्तिक
 स्थान बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंसे अर्सेस्त्रयुणां हाते हैं । उनका कथन इस प्रकार है—सूस्त्र
 निगोहिषा अपर्याप्तक जघन्य अनुभागस्थानसे लेकर लक्ष्य अनुभागस्थान तकके
 अर्सेस्त्रयुणां लाकप्रमाय बन्धसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक पंक्ति बाहिनी आर रक्का और बन्ध
 स्थानोंके अनुभागका पाठ करने में कारण जघन्य परिणामस्थानसे लेकर लक्ष्य परिणाम
 स्थान तकके जो अर्सेस्त्रयुणां लाकप्रमाय परिणाम हैं उन्हें बाईं आर रक्का । एक जीबने सर्वोत्कृष्ट
 पाठपरिणामस्थानके द्वारा लक्ष्य अनुभागस्थानका पाठ किया । ऐसा करनेसे अन्तिम
 अनन्तगुणपुष्टि स्थान रूप अष्टांक और उससे अनन्तरवर्ती नीचेके वक्क इन पाठोंके बीचमें इद-
 समुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न हाता है जा कि उस अष्टांकसे अनन्तगुणा हीन और एक पूर्वकसे
 अनन्तगुणा अनुभागवाला होता है । यह समुत्पत्तिकस्थान सबसे अधन्य होता है क्योंकि
 सर्वोत्कृष्ट परिणामोंके द्वारा पाठा आकर उत्पन्न हाता है । दूसरे एक जीबने लक्ष्य विद्वित्स्थान
 से नीचेके द्विचरित विद्वित्स्थानके द्वारा ऊपरके पूर्वकका पाठ किया । ऐसा करने पर अष्टांक
 और पूर्वकके बीचमें पहलेके उत्पन्न हुए इदसमुत्पत्तिकस्थानसे ऊपर दूसरा इदसमुत्पत्तिकस्थान
 उत्पन्न होता है । यह स्थान पहलेके अधन्य स्थानसे अनन्तवर्षे भागप्रमाय अधिक है । अर्थात् अमम्प-
 रासिसे अनन्तगुणे और सिद्धरासिके अनन्तवर्षे भागप्रमाय भागहारसे जघन्य इदसमुत्पत्तिकस्थानमें
 भाग होनेपर जो लक्ष्य जाव उसे लक्ष्य जघन्य स्थानमें जोड़ देनेपर दूसरा अनुभागस्थान हाता है ।
 पहले बन्धस्थानमें भागहार और गुणकार अनन्तप्रमाय सब जीवरशि वक्का जाये हैं और
 वक्का इदसमुत्पत्तिकस्थानमें इनका प्रमाय अमम्परासिसे अनन्तगुणा और सिद्धरासिके अनन्तवर्षे
 भागप्रमाय बतलाया है । इसका कारण यह है कि पाठस्थानोंकी उत्पत्तिके कारण जो विद्वित्स्थान
 हैं उनमें भी गुणकार और भागहारका प्रमाय अमम्परासिसे अनन्तगुणा और सिद्धरासिके अनन्तवर्षे
 भाग ही है अतः कारणके गुणकार और भागहारसे कांर्षे जा पाठस्थान हैं इनका गुणकार और
 भागहार सुवा गर्धी हो सकता । तथा यदि अनन्तका प्रमाय सर्व जीवरशि ही माना जाव वा उससे
 पाठस्थानका गुणा करनेपर अष्टांकसे अनन्तगुणा पाठस्थान होगा किन्तु अष्टांकसे ऊपर पाठ-
 स्थानकी उत्पत्तिक निषेध है । सभी पाठस्थान अष्टांक और पूर्वकके बीचमें उत्पन्न हाते हैं ऐसा
 शास्त्रोंका कथन है । अस्तु, किसी अन्य तीसरे जीबके द्वारा एक द्विचरित विद्वित्स्थानके नीचेके
 त्रिचरित विद्वित्स्थानके द्वारा वही अन्तिम पूर्वकका पाठ किये जानेपर तीसरा इदसमुत्पत्तिक
 स्थान उत्पन्न हाता है । शायद कोई कहे कि एक अन्तिम पूर्वकसे अनेक इदसमुत्पत्तिक स्थान कैसे

उत्पन्न हो सकते हैं तो इसका यह समाधान है कि घातके कारण परिणामोंके भेदसे घात होकर शेष बचे अनुभागमें भेद हो जाता है, अतः घातस्थान अनेक बन जाते हैं। किसी अन्य चौथे जीवके द्वारा उक्त विशुद्धिस्थानके नीचेके चतुश्चरिम विशुद्धिस्थानके द्वारा उक्त अन्तिम उर्वकका घात किये जाने पर चौथा अनन्तभागवृद्धि युक्त घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार पचचरिम, और षट्चरिम आदि विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात करते करते तब तक हतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक सर्व जघन्य विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात हो। इस प्रकार असख्यात लोक पट्स्थानप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थान होते हैं। बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अन्तिम उर्वकको लेकर अन्तिम अष्टाक और उर्वकके बीचमें हतसमुत्पत्तिकस्थान इतने ही उत्पन्न होते हैं अधिक नहीं, क्योंकि कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती। इन स्थानोंकी उत्पत्तिके कारण हैं—छह प्रकारकी वृद्धिको लिये हुए विशुद्धिस्थान। उनसे विशुद्धिस्थानप्रमाण ही स्थान उत्पन्न होते हैं। इसके बाद अन्तिम विशुद्धिस्थानके द्वारा अन्तिम द्विचरम उर्वकका घात किये जाने पर सर्व जघन्य स्थानसे नीचे अनन्तभागहीन होकर दूसरा अपुनरुक्त हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है। ऊपरके स्थानको रूपाधिक सर्व जीवराशिसे भाजित करनेपर जो लब्ध आता है उतना यह स्थान ऊपरके स्थानसे हीन होता है, क्योंकि उत्कृष्ट उर्वकसे द्विचरम उर्वक भी इतना ही हीन है और दोनोंका घात समान परिणामके द्वारा हुआ है अतः इससे जो स्थान उत्पन्न होते हैं, उनमें भी उतना ही अन्तर होना चाहिये। पुनः द्विचरम परिणामके द्वारा उसी द्विचरम उर्वकका घात किये जानेपर दूसरा घातस्थान उत्पन्न होता है। इसी प्रकार त्रिचरम आदि विशुद्धिस्थानोंसे द्विचरम उर्वकका घात करनेपर परिणामोंके बराबर ही घातस्थान उत्पन्न होते हैं। यह घातस्थानोंकी दूसरी पक्ति हुई। इसी प्रकार उक्त परिणामस्थानोंके द्वारा त्रिचरम उर्वक, चतुश्चरम उर्वक, पचचरम उर्वक आदि उर्वकोंका घात कर करके घातस्थानोंकी तीसरी, चौथी, पाँचवीं आदि पक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट आदि सब परिणामोंके द्वारा शेष बन्धस्थानोंका भी घात करके घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। ऐसा करनेसे घातस्थानोंकी चौड़ाई पट्स्थानप्रमाण और लम्बाई विशुद्धिस्थानप्रमाण होती है। इस प्रकार उत्पन्न हुए सब स्थान अपुनरुक्त ही होते हैं, क्योंकि उनमें समानता होनेका कोई कारण ही नहीं है। यथा—पहली पत्तिके पहले स्थानमें रूपाधिक सर्व जीवराशिका भाग देनेसे जो लब्ध आवे उतना उस स्थानसे दूसरी पत्तिका पहला स्थान हीन है और दूसरी पत्तिके पहले स्थानमें अभव्य राशिसे अनन्तगुणे या सिद्धराशिके अनन्तवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना दूसरी पत्तिके पहले स्थानसे दूसरा स्थान अधिक है। इस प्रकार सभी पक्तियोंके दूसरे स्थान परस्परमें असमान हैं। इसीसे सभी पक्तियोंके सब स्थानोंमें असमानताका विचार कर लेना चाहिये। अब द्विचरम अष्टाकसे नीचे और उसके अनन्तरवर्ती नीचेके उर्वकसे ऊपर दोनों बन्धस्थानोंके बीचमें उत्पन्न होनेवाले घातस्थानोंको कहते हैं। एक जीवने उत्कृष्ट परिणामके द्वारा एक पट्स्थानहीन उत्कृष्ट अनुभागसत्कर्मका घात किया। ऐसा करनेसे द्विचरम अष्टाकसे नीचे अनन्तगुणा हीन होकर और उसीके नीचेके उर्वकसे ऊपर अनन्तगुणा होकर हतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न हाता है। पुनः द्विचरम परिणामस्थानके द्वारा उसी अन्तिम उर्वकका घात करने पर दूसरा अनन्तभागवृद्धि युक्त घातस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार यहाँ पर भी पहले विधानके अनुसार त्रिचरम आदि विशुद्धिस्थानोंके द्वारा उसी अन्तिम उर्वकका घात करके परिणामस्थानोंकी सख्याके बराबर घातस्थान उत्पन्न करने चाहिये। फिर अन्तिम परिणामके द्वारा द्विचरम बन्धस्थानका घात करने पर अन्य घातस्थान उत्पन्न होता है जो पहलेके जघन्य स्थानसे अनन्तगुणा हीन होता है। पुनः द्विचरम परिणामके द्वारा

❁ इददसमुप्यधियाणि असस्वेजगुणाणि ।

१६२१ एव पादद्वयपरुषणं कादूण संपदि इददसमुप्यधियाणाणं परुषणं कस्तामो । तं नहा—पुम्बनिहाजेण महण्णनिसोहिद्वयप्यद्वि आब सक्कस्सनिहोहिद्वये प्ति ताब एदासिमसंस्वज्जसोगमेत्तपादहेदुविसोहिद्वयद्वयाणाणमेगसेहिआगारेण रयणं कादूया पुणो एदासि दक्खिवापासे सुदुमपिगोदअपक्कजमहण्णाणुमागपंभहाणप्यद्वि असंस्वेज्जसोगमेत्तपंसमुप्यधियाणाणं च एगसेहिआगारेण रचणं कादूण पुणो सुदुम गिगादअपक्कजमहण्णद्वयाणादो चपरि संस्वेज्जद्वयाणअद्व कुम्बंकर्यामठरायि मोत्तूया सेसासेसद्वयाणाणमद्व कुम्बंकाणं यिथासेसु असंस्वे०सोगमेचाण इदसमुत्पधियाणाणं च पादेकमेगसेधियागारेण रचणं काकण पुणां चरिमपंसमुप्यधियमद्व कुम्बंकाणं विथासिमअसंस्वे०सोगमेचइदसमुप्यधियाणाणं च पादेकमेगपरिमत्तम्बंके चक्कस्स

इसी द्विचरम बन्धस्थानका घाट करने पर अन्य पाठस्थान उत्पन्न होता है था पहलेके स्थानसे अनन्तर्वे मागप्रमाख अधिक होता है । इस प्रकार सब परिग्रामोंक द्वारा द्विचरम त्रिचरम आदि अनुमागबन्धस्थानका घाट करके अष्टांक और उर्बंकोके बीचमें घाटस्थानोंकी पटस्थान पक्षियों उत्पन्न करनी चाहिये । इस प्रकार द्विचरम अष्टांक और उत्स नीचेके उर्बंकोके बीचमें घाट स्थानोंका कथन किया । अब दो पटस्थानकी अनुमागबन्धस्थानका घाट करके त्रिचरम अष्टांक और उत्स नीचेके उर्बंकोके बीचमें घाटस्थान उत्पन्न करने चाहिये । ऐसा करनेसे त्रिचरम अष्टांक और उर्बंकोके बीचमें उत्पन्न होनेवाले असंख्यात लोकप्रमाण पटस्थानोंका कथन समाप्त होता है । इसी प्रकार चतुरचरम पंचचरम आदि असंख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्बंकोके बीचमें पूर्व-पश्चिम लम्बा और दक्षिण-उत्तर चौड़ा असंख्यात लोकप्रमाण पाठस्थानोंका पट्ट उत्पन्न होता है । सूक्ष्म निगादिवा अपर्थात्तकके अधन्य स्थानके ऊपर संख्यात बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और उर्बंकोके अन्तरालोंका छोड़कर ऊपरक असंख्यात लोकप्रमाण अष्टांक और उर्बंकोके अन्तरालोंमें दो पाठस्थान उत्पन्न होते हैं, सबमें नहीं । और यह पाठ इसी कसायपादुदके अनुमागसंक्रम नामक प्रकरणमें आये हुए सूत्रिसूत्रोंसे जानी जाती है । इस प्रकार इतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन जानना चाहिये ।

❁ इतइत्समुत्पत्तिकस्थान असंख्यातगुणे हैं ।

१६२१ इस प्रकार पाठस्थानोंका कथन करके अब इतइत्समुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते हैं । यह इस प्रकार है—पहले कही गई विधिसे अनुसार अपन्व विद्युद्विस्थानसं लोक बहुर विद्युद्विस्थान पर्यन्त पाठके कारण इन असंख्यात लोकप्रमाण विद्युद्वि कुल पटस्थानोंकी एक पक्षिके रूपमें रचना करा । पुनः इनके दक्षिण भागमें सूक्ष्म निगादिवा लक्ष्यपयात्तकके अधन्य अनुमागबन्धस्थानसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण बंधसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक पक्षिके रूपमें रचना करा । पुनः सूक्ष्म निगादिवा लक्ष्यपयात्तकके अधन्य स्थानसे ऊपर संख्यात पटस्थानोंके अष्टांक और उर्बंकोके अन्तरालोंका छोड़कर बाकीके सब पटस्थानोंके अष्टांक और उर्बंकोके मध्येक अन्तरालमें असंख्यात लोकप्रमाण इतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी एक पक्षिके रूपमें रचना करे । पुनः अन्तिम बन्धसमुत्पत्तिक अष्टांक और उर्बंकोके मध्यवर्ती असंख्यात लोकप्रमाण इतसमुत्पत्तिक पटस्थानोंके मध्येक एक उर्बंकोका बहुर परिग्रामस्थानस पाठ किये जान पर,

परिणामद्वारेण घादिदे चरिमअट्टकादो हेदा अणंतगुणहीणं तस्सेव हेट्टिमउव्वंकटाणादो अणंतगुणं होदूण दोण्हं पि अंतरे पढमं हदहदसमुत्पत्तियद्वारेणमुत्पत्तिदि । पुणो अणंत-
 भागहीणदुचरिमविसोहिद्वारेण तम्मि चैव उक्कसाणुभागे घादिदे पुव्वुत्पण्णद्वारेणो
 उवरि अणंतभागवभहियं होदूण विदिय हदहदसमुत्पत्तियद्वारेणमुत्पत्तिदि । एवं
 जत्तियाणि विसोहिद्वारेणो अत्थि तेहि सव्वेहि वि णाणाजीवे अस्सिदूण चरिमउव्वंकै
 घादिदे चरिमअट्टकुव्वकाणं विच्चाले परिणामद्वारेणो हदहदसमुत्पत्तियद्वारेणो उत्प-
 ज्जति । पुणो सव्वविसोहिद्वारेणो हि दुचरिमउव्वंकै घादिदे सव्वजहण्हदहदसमुत्पत्तिय-
 द्वारेणो हेदा अणंतभागहीणद्वारेणो मादिं कादूण विसोहिद्वारेणो हदहदसमुत्पत्तिय-
 द्वारेणो उत्पज्जति । एवं तिरूवूणद्वारेणो अंतरतित्तिरिमादिसव्वद्वारेणो सु परिवाडीए
 सव्वविसोहिद्वारेणो हि घादिदेसु विसोहिद्वारेणो आयामरूवूणद्वारेणो त्तिरिमादिसव्वद्वारेणो
 हदहद-
 समुत्पत्तियद्वारेणो उत्पण्णोति । एव दुचरिम-तित्तिरिमादिअट्ट कुव्वंकाणं
 विच्चालेसु हदहदसमुत्पत्तियद्वारेणो उत्पादेद्वारेणो जाव सव्वहदसमुत्पत्तियअट्ट-
 कुव्वंकाणं विच्चालेसुत्पण्णोति । एव चरिमबंधसमुत्पत्तियअट्टकुव्वंकाणमते अट्टिद-
 असखेज्जलोगमेत्तहदसमुत्पत्तियद्वारेणो मसखेज्जलोगमेत्तअट्टकुव्वंकाणं विच्चालेसु
 रूवूण-
 द्वारेणो विक्रवभाणि विसोहिद्वारेणो यदाणि हदहदसमुत्पत्तियद्वारेणो पदराणि समुत्पण्णोति
 होति । पुणो पञ्चाणुपुव्वीए ओदरिदूण बंधसमुत्पत्तियदुचरिमअट्ट कुव्वंकाण-
 मते अवट्टिदअसखेज्जलोगमेत्तहदसमुत्पत्तियद्वारेणो मट्टकुव्वंकाणं विच्चालेसु सव्वेसु
 चरम अष्टाकसे नीचे अनन्तगुणा हीन और उसीके नीचेके उर्वक स्थानसे अनन्तगुणा होकर
 दोनोंके बीचमें पहला हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है । पुन अनन्तभागहीन द्विचरम
 विशुद्धिस्थानसे सी उत्कृष्ट अनुभागके घाते जानेपर पूर्व उत्पन्न हुए स्थानसे उपर अनन्तभागवृद्धि-
 को लिए हुए दूसरा हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा जितने
 विशुद्धिस्थान हैं उन सभीसे अन्तिम उर्वकका घात किये जानेपर अन्तिम अष्टाक और उर्वकके बीच
 में परिणामस्थानोंकी सख्याके बराबर ही हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं । पुन सव विशुद्धि-
 स्थानोंसे द्विचरम उर्वकका घात किये जानेपर सबसे जघन्य हतहतसमुत्पत्तिकस्थानसे नीचे अनन्त-
 भागहीन स्थानसे लेकर विशुद्धिस्थानोंकी सख्याके बराबर हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं ।
 इस प्रकार तीन कम षट्स्थानोंके अन्तर्वर्ती त्रिचरम आदि सव स्थानोंके एक एक करके सर्व-
 विशुद्धिस्थानोंके द्वारा घाते जाने पर विशुद्धिस्थान प्रमाण लम्बे और एक कम षट्स्थानप्रमाण
 चौड़े हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार द्विचरम, त्रिचरम, चतु चरम आदि
 अष्टाक और उर्वकके बीचमें तब तक हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक
 सब हतसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी अष्टाक और उर्वकके बीचमें स्थान उत्पन्न हों । इस प्रकार
 अन्तिम बन्धसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी अष्टाक और उर्वकके बीचमें स्थित असख्यात लोकप्रमाण
 हतसमुत्पत्तिकस्थानोंके असख्यात लोकप्रमाण अष्टाक और उर्वकके अन्तरालोंमें एक कम
 षट्स्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे हतहतसमुत्पत्तिकस्थान प्रतर उत्पन्न
 होते हैं । पुन क्रमसे पश्चादानुपूर्वीसे उतर कर, बन्धसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी द्विचरम अष्टाक
 और उर्वकके बीचमें स्थित असख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानसम्बन्धी सब अष्टाक

वि रूपाद्यहाणविक्रमभिसोहिपमाणायदहदहदसमुप्यपियहाणपदराणि एषं वे
 उपादेदम्भाणि । पुनो हेहा ओसरिदृण बंधसमुप्यपियतिपरिमअद् कुर्न्वकाणमतरे
 अदद्विदरूपाद्यहाणविक्रमभिसोहिहाणपमाणायदहदहदसमुप्यपियहाणपदरस्त अर्सलेज्ज-
 सोगमेवअद् कुर्न्वकाण विवालेसु रूपाद्यहाणविक्रमभिसोहिहाणपमाणायदहदहद
 समुप्यपियहाणपदराणि वि एषं वेव उपादेदम्भाणि । एषं बंधसमुप्यपियवहुपरिम-
 अद् कुर्न्वकाणमतरमादि कायूण हेहा अप्पदिसिद्वर्धसमुप्यपियअद् कुर्न्वकतरमर्त
 क्कदृण मपद्विद्वसम्बअद् कुर्न्वकाणमतरेसु रूपाद्यहाणविक्रममेण भिसोहिहाणायामेण
 सहिदहदहदसमुप्यपियहाणपदराणमसंलेज्जतो गमेवअद् कुर्न्वकतरेसु रूपाद्यहाणविक्रमभ
 भिसोहिहाणायदहदहदहदसमुप्यपियहाणपदराणि अम्भामोहेण उपादेदम्भाणि । नहा बंध
 समुप्यपियहाणार्ण इदिमसंलेज्जद् कुर्न्वकाणमतरेसु घादहाणार्ण पडिसेहो कदो तहा
 एत्थ इदिमसंलेज्जार्ण घादहाणद् कुर्न्वकाणमतरेसु घादघादहाणाणि ण उप्पज्जंति ति
 पडिसेहो ण कायम्भो, बंधहाणेसु पनचणसहापस्त पडिसेहस्त घादहाणेषु पचि
 विरोहादो ।

एषं इदहदसमुप्यपियहाणपरम्परा कदा ।

और वर्बकोके बीचमें एक कम पदस्थानप्रमाण चौड़े और विद्युद्विस्थानप्रमाण लम्बे इतहत्-
 समुत्पत्तिक्रस्वानरूपी प्रतर इसी प्रकार उत्पन्न करने चाहिये । पुनः नीचेकी ओर गहर कर बन्ध-
 समुत्पत्तिक्र स्वानसम्बन्धी त्रिचरम अष्टांक और लर्बकोके बीचमें स्थित एक कम पदस्थानप्रमाण
 चौड़े और विद्युद्विस्थानप्रमाण लम्बे इतसमुत्पत्तिक्रस्वानरूपी प्रतरके अर्संभवात् शोकप्रमाण
 अष्टांक और लर्बकोके अन्तर्गतांमि एक कम पदस्थानप्रमाण चौड़े और विद्युद्विस्थानप्रमाण
 लम्बे इतइतसमुत्पत्तिक्रस्वानोके प्रतर भी इसी प्रकार उत्पन्न करने चाहिये । इस प्रकार बन्ध
 समुत्पत्तिक्रस्वानसम्बन्धी त्रिचरम अष्टांक और लर्बकोके अन्तरसे लेकर नीचे अग्रविसिद्ध
 बन्धसमुत्पत्तिक्र स्वानसम्बन्धा अष्टांक और लर्बकोके अन्तर पर्यन्त अष्टांक और लर्बकोके सब
 अन्तर्गतांमि एक कम पदस्थान प्रम य चौड़े और विद्युद्विस्थानप्रमाण लम्बे या इतसमुत्पत्तिक्र-
 स्वानरूपी प्रतर स्थित हैं इनके अर्संभवात् शोकप्रमाण अष्टांक और लर्बकोके अन्तर्गतांमि एक
 कम पदस्थानप्रमाण चौड़े और विद्युद्विस्थानप्रमाण लम्बे इतइतसमुत्पत्तिक्रस्वानाके प्रतर
 अन्ति रहित हाकर उत्पन्न करने चाहिये । जैसे बन्धसमुत्पत्तिक्रस्वानोके नीचेक संभवात्
 अष्टांक और लर्बकोके अन्तर्गतांमि पाठस्थानोके हानेका निषेध किंवा है वैसे ही यहां नीचेके
 संभवात् पाठस्थान सम्बन्धी अष्टांक और लर्बकोके अन्तर्गतांमि पाठपाठस्थान नहीं उत्पन्न
 होते हैं ऐसा निषेध नहीं करना चाहिये; क्योंकि जिस प्रतिपेयकी प्रवृत्ति स्वभावसे ही
 बन्धस्थानोमें जाती है उसकी पाठस्थानोमें प्रवृत्ति हानेमें विरोध आता है । अर्थात् पाठस्थानोके
 सब अष्टांक और लर्बक सम्बन्धी अन्तर्गतांमि पाठपाठस्थान उत्पन्न करने चाहिये ।

विशेषार्थ—अब इतइतसमुत्पत्तिक्रस्वानोका कथन करते हैं । अथवा विद्युद्विस्थानसे
 लेकर उत्कृष्ट विद्युद्विस्थान पर्यन्त अर्संभवात् शोकप्रमाण ओ विद्युद्विस्थान पत्ते गये अनुमागसे
 शेष बन्ध अनुमागके पाठके कारण हैं इनकी एक पंक्ति रूपसे रचन्य कर्य और इनकी बाहिनी

§ ६४३. संपहि तदियवारहदहदसमुत्पत्तियट्टाणाणं परूवणं कस्सामो । वंध-
समुत्पत्तियचरिमअट्टकुव्वंकाणं विचाले संट्टिरूवणुणद्धाणविकखंभविसोहिट्टाणपमाणा-
यदहदसमुत्पत्तियट्टाणपदरस्स असखेज्जलोगमेत्तअट्टकुव्वंकाणं विचालेसु रूवणुणद्धाण-
विकखंभेण विसोहिट्टाणपमाणायमेण अवट्टिदअसखेज्जलोगमेत्तहदहदसमुत्पत्तियट्टाणपद-
राणमसंखेज्जलोगमेत्तअट्टकुव्वंकाणं विचालेसु रूवणुणद्धाणविकखभविसोहिट्टाणपमा-

श्रोर सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य स्थानसे लेकर असख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानोंकी एक पक्ति रूपसे रचना करो । फिर सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तकके जघन्य स्थानसे उपरके सख्यात पदस्थान सम्बन्धी अष्टाक और उर्वकोंको छोड़कर उसके वादके असख्यात लोकप्रमाण बन्धसमुत्पत्तिक स्थानसम्बन्धी अष्टाक और उर्वकोंके अन्तरालोंमें असख्यात लोक-प्रमाण हतसमुत्पत्तिकस्थानोंकी रचना करो । अब अन्तिम बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टाक और उर्वकोंके बीचमें असख्यात लोकप्रमाण हतसमुत्पत्तिक पदस्थान सम्बन्धी अन्तिम उर्वकका उत्कृष्ट परिणामसे घात करने पर अष्टाक और उर्वकके बीचमें पहला हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होता है जो अष्टाकसे अनन्तगुणा हीन होता है और उसके नीचेके उर्वकसे अनन्तगुणा होता है । पुन उत्कृष्ट परिणामसे अनन्तगुणे हीन द्विचरम परिणामस्थानके द्वारा उसी अन्तिम उर्वकका घात करने पर दूसरा हतहतसमुत्पत्तिकस्थान होता है । यह स्थान पहले स्थानसे अनन्तवें भाग अधिक अनुभागवाला होता है, क्योंकि पहलेके विशुद्धिस्थानसे अनन्तवें भाग हीन दूसरे विशुद्धिस्थानके द्वारा घाता गया है । इस प्रकार जितनी जितनी हानिसे युक्त परिणाम स्थानके द्वारा अन्तिम उर्वकका घात किया जाता है उतने उतने अधिक अनुभागवाला हहहत-समुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार करने पर अन्तिम अष्टाक और उर्वकके बीचमें परिणामस्थानोंकी सख्याके बराबर ही हतहतसमुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न होते हैं । पुन उत्कृष्ट परिणामस्थानके द्वारा द्विचरम उर्वकका घात करने पर दूसरी पत्तिका पहला हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होता है । यह स्थान सबसे जघन्य हतहतसमुत्पत्तिकस्थानसे अनन्तवें भाग हीन होता है । इस प्रकार इस अनुभागस्थानका घात करके परिणामस्थानोंकी सख्याके बराबर हतहत-समुत्पत्तिक स्थान पहलेकी तरह उत्पन्न कर लेने चाहिये । पुन उसी उत्कृष्ट परिणामस्थानके द्वारा त्रिचरम उर्वकका घात करने पर दूसरी पत्तिके जघन्य स्थानसे अनन्तवें भाग हीन तीसरी पत्तिका पहला स्थान होता है । इस प्रकार इस पत्तिके भी परिणामस्थानोंकी सख्याके बराबर ही हतहतसमुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न होते हैं । इस तरह द्विचरम आदि हतसमुत्पत्तिक स्थानोंको क्रमसे घात कर परिणामस्थान प्रमाण हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होते हैं । इन स्थानोंका पटल भी षटस्थान प्रमाण चौड़ा और परिणामस्थान प्रमाण लम्बा होता है ।

इस प्रकार हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन किया ।

§ ६२५ अब तीसरी बार हतहतसमुत्पत्तिकस्थानोंका कथन करते हैं । बन्धसमुत्पत्तिक-स्थान सम्बन्धी अन्तिम अष्टाक और उर्वकके बीचमें स्थित, एक कम षटस्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थान प्रमाण लम्बे हतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी प्रतरके असख्यात लोकप्रमाण अष्टाक और उर्वकोंके बीचमें एक कम षटस्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थान प्रमाण लम्बे रूपसे स्थित असख्यातप्रमाण हतहतसमुत्पत्तिकस्थानरूप प्रतरोंके असख्यात लोकप्रमाण अष्टाक और उर्वकोंके अन्तरालोंमें एक कम षटस्थान प्रमाण चौड़े और विशुद्धिस्थानप्रमाण लम्बे

गायद्वद्वद्वसमुप्यत्तियद्वाणपदराणमसंस्तेज्जलोगमेवा समुप्यपी परुषेदन्वा । एवं सेस
 र्भसमुप्यत्तियअद् कुम्भंकार्णं विचालसु द्विद्वद्वसमुप्यत्तियद्वाणाणि पादिय घादद्वाणाणं
 परुषणाए कदाए घादद्वाणाणं तदियपरिवाहीए परुषणा समत्ता होदि । एवमुप्यणुप्यण
 पादद्वाणद् कुम्भंकार्णं विचालेसु घादद्वाणाणि ताव सप्यादेदन्वाणि नाव संस्तेज्जामो
 परिवाहीओ गद्दामो ति । एत्तो सबरि पादद्वाणाणि ण अप्पस्स ति ति तं कुदो णम्भदे ?
 सुवाविस्सद्दार्शियवयणादो । एदाणि सम्भद्वद्वद्वसमुप्यत्तियद्वाणाणि द्वसमुप्यत्तियद्वाणे-
 हिता असंस्तेज्जगुणाणि । को घुणगारो ? असंस्तेजा सोगा । एवं मिच्छवस्स द्वाण
 परुषणा कदा ।

असंख्यात साक्षप्रमाण इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थानरूपी प्रवर्तोंकी उत्पत्तिका कथन करना चाहिये । इस
 प्रकार शेष बन्धसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और तर्कोंके बीचमें स्थित इतसमुत्पत्तिकस्थानों
 का पाठ करके पाठस्थानोंकी प्रकृष्टता करने पर तीसरी परिपाटीसे पाठस्थानोंका कथन समाप्त
 होगा है । इस प्रकार पुन पुनः उत्पन्न हुए पाठस्थान सम्बन्धी अष्टांक और तर्कोंके बीचमें
 तब तक पाठस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक संख्यात परिपाटियां समाप्त हों ।

शुद्धा—संख्यात परिपाटियां समाप्त होनेपर पाठस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं यह कैसे
 जाना जाता है ।

समाधान—सूत्रके अतिरिक्त आचार्य बचनोंसे जाना जाता है ।

ये सब इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थान इतसमुत्पत्तिकस्थानोंसे असंख्यातगुण्ये हैं । गुण्यकारका
 प्रमाण क्या है ? असंख्यात श्लोक है । अर्थात् इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थान इतसमुत्पत्तिकस्थानोंसे
 असंख्यातसोऽङ्गुण्ये हैं । इस प्रकार मिथ्यात्व प्रवृत्तिके स्थानोंका कथन किया ।

विशेषार्थ—अब इतद्वत्समुत्पत्तिक स्थानोंका कथन दूसरी परिपाटीसे करत है । बन्ध
 समुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अन्तितम अष्टांक और तर्कोंके बीचमें असंख्यात साक्षप्रमाण इत-
 समुत्पत्तिकस्थान हात हैं । तथा इतसमुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अन्तितम अष्टांक और तर्कोंके
 बीचमें असंख्यात साक्षप्रमाण इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थान हाते हैं । प्रथम परिपाटीसे उत्पन्न इतद्वत्
 समुत्पत्तिक स्थान सम्बन्धी अन्तितम अष्टांक और तर्कोंके बीचमें दूसरी परिपाटीसे असंख्यात
 साक्षप्रमाण इतद्वत्समुत्पत्तिक स्थान हात हैं । इसी प्रकार इन्हीं स्थानोंके द्विचरम त्रिचरम
 चतुरचरम पंचचरम आदि इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और तर्कोंके बीचमें
 दूसरी परिपाटीसे असंख्यात साक्षप्रमाण इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थान उत्पन्न करने चाहिये । इस
 प्रकार प्रथम परिपाटीसे उत्पन्न हुए इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और तर्कोंके
 बीचमें दूसरी परिपाटीसे इतद्वत्समुत्पत्तिक स्थान उत्पन्न करने चाहिये । ऐसा करनेमें इतद्वत्-
 समुत्पत्तिकस्थानोंकी दूसरी परिपाटी समाप्त होती है । दूसरी परिपाटीसे उत्पन्न हुए इतद्वत्समु-
 त्पत्तिकस्थान सम्बन्धी अष्टांक और तर्कोंके बीचमें फिर भी असंख्यात साक्षप्रमाण इतद्वत्
 समुत्पत्तिकस्थानोंका तीसरी परिपाटीसे उत्पन्न करने पर इतद्वत्समुत्पत्तिकस्थानोंकी तीसरी
 परिपाटी समाप्त होती है । इस प्रकार अनन्तर रूपक हुए अष्टांक और तर्कोंके बीचमें तब तक
 पाठपाठस्थान उत्पन्न करने चाहिये जब तक संख्यात परिपाटियां हों । किन्तु अन्तिम पाठ-
 पाठस्थान सम्बन्धी अष्टांक और तर्कोंके बीचमें पाठपाठस्थान उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि
 सबस अन्तिम पाठपाठस्थानोंका पाठ नहीं होता । और यह बात आचार्य बचनोंसे जानी

❀ सोलसकसाय-णघणोकसायाणं मिच्छत्तस्सेव तिघिहा टाणपरूवणा कायन्वा ।

§ ६४३. विसेसाभावादो ।

§ ६४४. सपहि एदेण सुत्तेण देसामासिएण सूचिदसम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताण टाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा—लदासमाणजहण्णफइयप्पहुडि जाव दारुसमाण-देसघादिउकस्सफइए त्ति ताव एदाणि अभवसिद्धिएहि अणतगुण-सिद्धाणमणतिम-भागमेत्तफइयाणि घेत्तूण सम्मत्तस्स एगमुक्कस्साणुभागट्टाणं होदि । पुणो अपुव्वकरणे पढमाणुभागखडए घादिदे विदियमणुभागट्टाण होदि । एवं पढमाणुभागकडयप्पहुडि जाव अट्टवस्समेत्तट्टिदिसत्तकम्मं चेद्वदि त्ति ताव एदम्मि अंतरे अणुभागकंडयघाद-मस्सिदूण संखेज्जसहस्साणुभागट्टाणाणि लब्भंति, दुचरिमादिफालीओ अस्सिदूण अणु-भागट्टाणुप्पत्तीए अभावादो । पुणो अट्टवस्सट्टिदिसत्तकम्मप्पहुडि जाव एगा ट्टिदी एग-समयकाला ताव एदम्मि अंतरे अंतोमुहुत्तमेत्ताणि अणुभागट्टाणाणि लब्भंति, सम्मत्तस्स एत्थ अणुसमयओवट्टणाए उवलंभादो । का अणुसमयओवट्टणा ? उदय-उदया-वलियासु पविस्समाणट्टिदीणमणुभागस्स उदयावलयवाहिरट्टिदीणमणुभागस्स य समयं

जाती है कि घातस्थानोंकी सख्यात परिपाटियों बीत जाने पर सबसे अन्तमें घातसे जो अनुभाग शेष रहता है उसका पुन घात नहीं होता । इस प्रकार सबसे थोड़े बन्धसमुत्पत्तिकस्थान हैं, उनसे असख्यातगुणे हतसमुत्पत्तिकस्थान हैं और उनसे भी असख्यातगुणे हतहतसमुत्पत्तिक स्थान होते हैं । ये स्थान मिध्यात्व प्रकृतिके अनुभागको लेकर कहे गये हैं ।

* सोलह कषाय और नव नोकषायोंके तीन प्रकारके स्थानोंका कथन मिध्यात्वकी ही तरह करना चाहिये ।

§ ६२६ क्योंकि दोनोंके कथनमें कोई भेद नहीं है ।

§ ६२७ अब इस सूत्रके द्वारा देशामर्शकरूपसे सूचित सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व प्रकृतियोंके स्थानोंका कथन करते हैं । वह इस प्रकार है—लतासमान जघन्य स्पर्धकसे दारु समान उल्कट्ट देशघाती स्पर्धक पर्यन्त अभव्यराशिसे अनन्तगुणे और सिद्धराशिके अनन्तवै-भाग मात्र स्पर्धकोंको लेकर सम्यक्त्व प्रकृतिका एक उल्कट्ट अनुभागस्थान होता है । पुन अपूर्वकरणमें प्रथम अनुभागकाण्डकका घात किये जाने पर दूसरा अनुभागस्थान होता है । इस प्रकार प्रथम अनुभागकाण्डकसे लेकर जब तक आठ वर्ष प्रमाण स्थितिकी सत्ता रहती है तब तक इस अन्तरमें अनुभागकाण्डकघातकी अपेक्षा सख्यात हजार अनुभागस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि द्विचरम आदि फालियोंकी अपेक्षा अनुभागस्थानकी उत्पत्ति नहीं होती । पुन आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर जब तक एक समयकी स्थिति रहती है तब तक इस अन्तरमें अन्तमुहूर्त मात्र अनुभागस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि यहा सम्यक्त्व प्रकृतिकी प्रति समय अपवर्तना पाई जाती है ।

शका—प्रति समय अपवर्तना किसे कहते हैं ?

समाधान—उदय और उदयावलिमें प्रवेश करनेवाली स्थितियोंके अनुभागका तथा

पदि अर्णतयुगहीणकमेण पादो । एषं सम्मत्तस्त अंतोमुहुत्तमेताणि चेव अणुभाग-
 हाणाणि ह्येति । मिच्छत्ताणुभागे पढमसमयवचसमसम्मादिद्विम्मि अर्णसेज्जलोगमेण
 परिणामेहि सम्मत्तसरुणेण संक्रामिज्जमाणे अर्णसेज्जलोगमेत्तहाणाणि सम्मत्तस्त किण्ण
 लम्भंति ? ण, तस्य अणुभागविसैसुप्पत्तिणिमित्तपरिणामागममापादा । तं पि कुदो
 णव्वदं ? सम्मत्तस्त अंतोमुहुत्ताणि चेव अणुभागहाणाणि ह्येति पि अर्णताइरिण्हितो ।
 सम्माइद्विम्मि मिच्छत्ते सम्मत्तस्तुनरि सक्रममाणे अणुभागहाणार्णं वियप्या किण्ण
 लम्भंति ? ण, मिच्छत्ताणुभागे सम्मत्ताणुभागसरुणं परिणममाणे पोरणाणुभाग मोत्तूण
 अणुभागवदिहाणीणमणुवत्तमादो । एषं सम्मामिच्छत्तस्त पि वचच्च । णरि एदस्त
 संसेज्जसहसमेताणि चेव अणुभागहाणाणि ह्येति । कंदयपादेण विणा अणुसमय
 ओवहणाए अणुभागहाणाणमणुवत्तमादो ।

एवमणुभागे सि अं पदं तस्त अस्वरूपजा समवा ।

ज्यावन्तिसे बाहरकी स्थितियोंके अनुभागका जो प्रतिसमय अन्तर्गुह्यहीन क्रमसे घात होता
 है उसे प्रतिसमय अपवर्तना कहते हैं ।

इस प्रकार सन्धकत्व प्रकृतिके अन्तर्गुह्यमात्र ही अनुभागस्त्वान् हाते हैं ।

शुद्धा-अपराम सन्धकत्वके प्रथम समयमें अर्णत्वात् शोकमात्र परिणामोंके द्वारा
 मिथ्यात्वका अनुभाग सन्धकत्व प्रकृतिरूपसे संक्रमण करता है । ऐसी अवस्थामें सन्धकत्वके
 अर्णत्वात् शोकमात्र स्थान क्यों नहीं हाते ?

समाधान-नहीं क्योंकि वम समय अनुभागविरोधी उत्पत्तिमें निमित्तमूत परिणाम
 नष्ट होते ।

शुद्धा-यह कैसे जाना ?

समाधान-सन्धकत्व प्रकृतिके अन्तर्गुह्यत्वं प्रमाय ही अनुभागस्त्वान् हाते हैं । ऐसा
 कथन करने वाले आचार्योंसे जाना ।

शुद्धा-सन्धकत्वके मिथ्यात्वका सन्धकत्व प्रकृतिमें संक्रमण होने पर अनुभागस्त्वान्तोंके
 विकल्प क्यों नहीं पाये जाते ?

समाधान-नहीं क्योंकि मिथ्यात्वके अनुभागके सन्धकत्वके अनुभागरूपसे परिणाम
 करने पर पुराने अनुभागको बाह्य कर अनुभागकी शुद्धि अथवा हानि नहीं पाई जाती है । अर्थात्
 पुराना ही अनुभाग रहता है, न बढ़ भटका है और न कृता है ।

इसी प्रकार सन्धकत्वके मिथ्यात्वका भी कथन करता पादिये । इतना किन्तु है कि
 सन्धकत्वके मिथ्यात्वके अर्णत्वात् हमारमात्र ही अनुभागस्त्वान् हाते हैं, क्योंकि काण्डकपातके
 बिना प्रतिसमय अपवर्तनाके द्वारा अनुभागस्त्वान् नहीं होते हैं ।

इस प्रकार गायामें आये हुए 'अनुभाग' पदका व्याख्यान समाप्त हुआ ।

अनुभागविमर्श समाप्त ।

अणुभागविहत्ती समत्ता

१ अणुभागविहृतिश्रुतिगुणिसुस्तापि

पक्षो अणुभागविहृती दुषिहा—मूलपयदिअणुभागविहृती चेव उत्तरपयदि अणुभागविहृती चेव । पक्षो मूलपयदिअणुभागविहृती भागिदब्धा ।

उत्तरपयदिअणुभागविहृतिं वचइस्तामो । पुष्यं गमभिञ्जा इमा पस्वणा । सम्मत्तस्त पश्य वसपादिफलयमार्दि कादूण जाव चरिमदसपादिफलयं ति एवाणि फरयाणि । सम्मामिच्छतस्त अणुभागसंतकम्म सम्बधादिमादिफलयमार्दि कादूण दाकअसमाणस्त अर्णतभागे गिद्धिदं । मिच्छतस्त अणुभागसंतकम्म जम्मि सम्मा- मिच्छतस्त अणुभागसंतकम्मं गिद्धिदं त्तो अर्णतरफलयमादधा चरि मण्डिसिद्धं । बारसकसायाणमणुभागसंतकम्मं सम्बधादीणं दुहाणियमादिफलयमार्दि कादूण चरि मण्डिसिद्धं । चदुसंमसण-णनणोकसायाणमणुभागसंतकम्म देसधादीणमादिफलयमार्दि कादूण चरि सम्बधादि ति मण्डिसिद्धं ।

उत्तर दुषिहा सण्णा—धादिसण्णा हाणसण्णा च । ताओ दो पि पक्खो गिञ्चंति । मिच्छतस्त अणुभागसंतकम्मं जइणय सम्बधादी दुहाणियं । चकस्तय मणुभागसंतकम्म सम्बधादी चदुहाणियं । एवं बारसकसाय-अण्णोकसायाणं । सम्मत्तस्त अणुभागसंतकम्म देसधादी एगहाणियं वा दुहाणियं वा । सम्मामिच्छतस्त अणुभागसंतकम्म सम्बधादी दुहाणियं । एवकं चेव हाणं । चदुसंमसण्णाणमणुभाग संतकम्मं सम्बधादी वा देसधादी वा एगहाणियं वा दुहाणियं वा तिहाणियं वा चतुहाणियं वा । इत्थिवदस्त अणुभागसंतकम्म सम्बधादी दुहाणियं वा तिहाणियं वा चतुहाणियं वा । मोक्षुण स्ववगचरिमसमयइत्थिवदयं चदुपभिसर्गं । तस्त देसधादी एगहाणियं । पुरिसवेदस्त अणुभागसंतकम्म जइणयं दसपादी एगहाणियं । चकस्तसाणुभागसंतकम्म सम्बधादी चदुहाणियं । णयुंसयवेदस्त अणुभागसंतकम्मं जइणयं सम्बधादी दुहाणियं । चकस्तयमणुभागसंतकम्मं सम्बधादी चतुहाणियं । चरि स्ववगस्त चरिमसमयणुसयवेदयस्त अणुभागसंतकम्म दसपादी एगहाणियं ।

- (१) पृ २। (२) पृ २२२। (३) पृ २२। (४) पृ २२२। (५) पृ २२२।
 (६) पृ २२२। (७) पृ २२२। (८) पृ २२२। (९) पृ २२२। (१०) पृ २२२।
 (११) पृ २२२। (१२) पृ २२२। (१३) पृ २२२। (१४) पृ २२२। (१५) पृ २२२। (१६) पृ २२२।
 (१७) पृ २२२।

'एगजीवेण सामित्तं । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? 'उक्कमाणु-
भागं वंधिदूण जाव ण हणटि । ताव सो होज्ज एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ
वा चउरिदिओ वा असण्णी वा सण्णी वा । 'असंखेज्जवस्साउएसु मणुस्सोववाट्ठिय-
देवेषु च णत्थि । 'एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं । सम्मत-सम्मामिच्छताण-
मुक्कस्साणुभागसंतकम्मं कस्स ? दंसणमोहवखवगं मोत्तूण सव्वस्स उक्कस्सयं ।

'मिच्छत्तस्स जहण्णयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? सुहुमस्स । 'हदसमुप्पत्तिय-
कम्मेण अण्णदरो एइंदिओ वा वेइंदिओ वा तेइंदिओ वा चउरिंदिओ वा असण्णी
वा सण्णी वा सुहुमो वा वादरो वा पज्जत्तो वा अपज्जत्तो वा जहण्णाणुभागसंत-
कम्मिओ होदि । 'एवमट्ठकसायाण । सम्मतस्स जहएणयमणुभागसंतकम्मं कस्स ?
चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । 'सम्मामिच्छत्तस्स जहएणयमणुभागसंतकम्म
कस्स ? अण्णज्जमाणए अपच्छिमे अणुभागकंडए वट्टमाणस्स । 'अणताणुवंधीणं
जहएणयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? पढमसमयसजुत्तस्स । 'को'पसंजलणस्स जहएणय-
मणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमसमयअसकामयस्स । 'एवं माण-माया-
सजलणणं । लोभसंजलणस्स जहएणयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिम-
समयसकसायस्स । 'इत्थिवेदस्स जहएणयमणुभागसंतकम्मं कस्स ? खवयस्स
चरिमसमयइत्थिवेदयस्स । पुरिसवेदस्स जहएणाणुभागसंतकम्म कस्स ? 'पुरिस-
वेदेण उवट्ठिदस्स चरिमसमयअसंकामयस्स । 'अणुसंयवेदयस्स जहएणाणुभागसंत-
कम्म कस्स ? खवगस्स चरिमसमयणवुसयवेदयस्स । 'अण्णोकसायाणं जहएणाणु-
भागसंतकम्मं कस्स ? खवगस्स चरिमे अणुभागखडए वट्टमाणयस्स ।

णिरयगदीए मिच्छत्तस्स जहएणाणुभागसंतकम्मं कस्स ? असण्णस्स हद-
समुप्पत्तियकम्मेण आगदस्स जाव हेहा सतकम्मस्स वधदि ताव । 'एवं वारसकसाय-
णवणोकसायाणं । सम्मतस्स जहएणाणुभागसंतकम्म कस्स ? चरिमसमयअक्खीण-
दंसणमोहणीयस्स । 'सम्मामिच्छत्तस्स जहएणयं णत्थि । 'अणताणुवंधीणमोघ ।
एव सव्वत्थ णेद्ववं ।

'कालाणुगमेण । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवचिरं फालादो
होदि ? 'जहएणुकस्सेण अतोमुहुत्तं । अणुकस्साणुभागसंतकम्मं केवचिरं कालादो

- (१) पृ० १५७ । (२) पृ० १५८ । (३) पृ० १२६ । (४) पृ० १६० । (५) पृ० १६१ ।
(६) पृ० १६३ । (७) पृ० १६४ । (८) पृ० १६५ । (९) पृ० १६६ । (१०) पृ० १६८ ।
(११) पृ० १७१ । (१२) पृ० १७२ । (१३) पृ० १७३ । (१४) पृ० १७४ । (१५) पृ० १७५ ।
(१६) पृ० १७७ । (१७) पृ० १७८ । (१८) पृ० १७९ । (१९) पृ० १८५ । (२०) पृ० १८६ ।

होदि ? अहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण असंस्लेखा पागगळपरियहा । 'एवं सोखस कसाय-जवणोकसायानं । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिओ केवधिरं काळादो होदि ? अहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण वेद्यावट्टिसागरोपमाणि सादिरे याणि । 'अणुक्कस्सअणुभागसंतकम्मिओ केवधिरं काळादो होदि ? अहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

मिच्छत्तस्स अहण्णाणुभागसंतकम्मिओ केवधिरं काळादो होदि ? अहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं सम्माभिच्छत्त-अट्टकसाय-अण्णोकसायानं । सम्मत्त-अण्णत्ताणु-बंधि-अणुसंजळण-विपिणवेदायं अहण्णाणुभागसंतकम्मिओ केवधिरं काळादो होदि ? अहण्णुकस्सेण एगसमओ ।

अंतरं । मिच्छत्त-सोखसकसाय जवणोकसायानमुक्कस्साणुभागसंतकम्मिअंतरं केवधिरं काळादो होदि ? अहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण असंस्लेखा पोमाळपरियहा । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं अहापयदि अंतरं ।

अहण्णाणुभागसंतकम्मिअंतरं केवधिरं काळादो होदि ? मिच्छत्तअट्टकसाय अण्णत्ताणुबंधीणं च मोत्तूण सेसाणं पत्थि अंतरं । 'मिच्छत्त अट्टकसायानं अहण्णाणु-यामसंतकम्मिअंतरं केवधिरं काळादो होदि ? 'अहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण असंस्लेखा लोगा । अण्णत्ताणुबंधीणं अहण्णाणुभागसंतकम्मिअंतरं केवधिरं काळादो होदि ? अहण्णेण अंतोमुहुत्तं । 'उक्कस्सेण अणुवपोगमळपरियहा ।

'प्याणाभीवेदि भंगपिअओ । 'तस्य अट्टपदं । जे उक्कस्साणुभागविहत्तिया ते अणुक्कस्साणुभागसस अविहत्तिया । जे अणुक्कस्साणुभागसस विहत्तिया ते उक्कस्सअणु-भागसस अविहत्तिया । जेसि पयडी अत्थि तेसु पयदं, अकम्मे अण्णवहारो । एदेण अट्ट-पदेण । 'सब्बे जीवा मिच्छत्तस्स उक्कस्सअणुभागसस सिया सब्बे अविहत्तिया । 'सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च । सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च । अणु-क्कस्सअणुभागसस सिया सब्बे जीवा विहत्तिया । सिया विहत्तिया च अविहत्तिआ च । 'सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च । एवं सेसाणं कम्मणं सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-वज्जाणं । सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणमुक्कस्सअणुभागसस सिया सब्बे जीवा विहत्तिया । एवं तिपिण भंमा । अणुक्कस्सअणुभागसस सिया सब्बे अविहत्तिया । एवं तिपिण भंमा ।

(१) ३ १०० । (२) ३ १०० । (३) ३ १०० । (४) ३ १०० । (५) ३ १०० । (६) ३ १०० ।
 (७) ३ १०० । (८) ३ १०० । (९) ३ १०० । (१०) ३ १०० । (११) ३ १०० । (१२) ३ १०० । (१३) ३ १०० । (१४) ३ १०० । (१५) ३ १०० ।
 (१६) ३ १०० । (१७) ३ १०० ।

१णाणाजीवेहि कालो । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहएणेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पत्तिदोवमस्स असखेज्जदिभागो । एवं सेसायां कम्मायां सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाण । २सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणु-भागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा ।

३मिच्छत्त-अट्टकसायायां जहण्णाणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । सम्मत्त-अणंताणुबंधित्तारि-चट्टुसंजलण--तिवेदाण जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ । ४उक्कस्सेण सखेज्जा समया । णवरि अणताणुबंधीणमुक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सम्मामिच्छत्त-अणोकोसायायां जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

५णाणाजीवेहि अंतरं । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । ६एव सेसकम्माणं । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण णत्थि अंतरं ।

७जहण्णाणुभागकम्मंसियतरं णाणाजीवेहि । मिच्छत्त-अट्टकसायायां णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त--लोभसंजलण--अणोकोसायायां जहण्णाणुभागकम्मंसियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण अणमासा । ८अणंताणु-बंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण असखेज्जा लोगा । इत्थि-णवुसयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि । ९तिसंजलण-पुरिसवेदाण जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण वस्स सादिरेय ।

१०अप्पावहुअमुक्कस्सय जहा उक्कस्सबंधो तहा । ११णवरि सव्वपच्छा सम्मामिच्छत्त-मणंतगुणहीणं । १२सम्मत्तमणंतगुणहीणं ।

जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियदंडओ । सव्वमंदाणुभागं लोभसजलणस्स अणुभाग-संतकम्मं । मायासजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणतगुण । १३माणसजलणस्स अणुभाग-संतकम्ममणतगुणं । कोधसजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । सम्मत्तस्स जहण्णाणु-भागसंतकम्ममणतगुण । १४पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागो अणतगुणो । १५इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । सम्मा-

(१) पृ० २३३ । (२) पृ० २३४ । (३) पृ० २३६ । (४) पृ० २३७ । (५) पृ० २४१
 (६) पृ० २४२ । (७) पृ० २४४ । (८) पृ० २४५ । (९) पृ० २४६ । (१०) पृ० २५६ ।
 (११) पृ० २५८ । (१२) पृ० २५९ । (१३) पृ० २६० । (१४) पृ० २६१ । (१५) पृ० २६२
 (१६) पृ० २६३ ।

मिच्छतस्त नहण्णाशुभागो अर्णतगुणो । अर्णताशुर्धमाणनहण्णाशुभागो अर्णतगुणो ।
 क्रोपस्त नहण्णाशुभागा विसैसाहिभो । मायाए नहण्णाशुभागा विसैसाहिभो ।
 लोभस्त नहण्णाशुभागा विसैसाहिभा । इस्तस्त नहण्णाशुभागा अर्णतगुणो ।
 रदीए नहण्णाशुभागा अर्णतगुणो । द्रुगुंधाए नहण्णाशुभागो अर्णतगुणो । भयस्त
 नहण्णाशुभागो अर्णतगुणा । सोगस्त नहण्णाशुभागो अर्णतगुणो । अरदीए
 नहण्णाशुभागो अर्णतगुणा । अपद्यत्वाणमाणस्त नहण्णाशुभागा अर्णतगुणा ।
 कापस्त नहण्णाशुभागो विसैसाहिभो । मायाए नहण्णाशुभागो विसैसाहिभा ।
 लोभस्त नहण्णाशुभागा विसैसाहिभो । पद्यत्वाणमाणस्त नहण्णाशुभागो अर्णतगुणो ।
 क्रोपस्त नहण्णाशुभागो विसैसाहिभो । मायाए नहण्णाशुभागो विसैसाहिभा ।
 लोभस्त नहण्णाशुभागो विसैसाहिभो । मिच्छतस्त नहण्णाशुभागो अर्णतगुणा ।

‘गिर्यागईए नहण्णयमशुभागसंतक्रम् । सत्त्वमदाशुभागं सम्मत्तं । सम्मामिच्छ-
 तस्त नहण्णाशुभागो अर्णतगुणो । अर्णताशुर्धमाणस्त नहण्णाशुभागो अर्णतगुणो ।
 क्रोपस्त नहण्णाशुभागो विसैसाहिभो । मायाए नहण्णाशुभागो विसैसाहिभो । लोभस्त
 नहण्णाशुभागो विसैसाहिभो । सेसाणि जया सम्मादिहीए बंधे तथा अद्व्याणि ।

जया बंधे सुजगार-पदणिकस्व-बद्धीभो तथा संतक्रम्मे वि कायम्बाधो ।

संतक्रम्महाणाणि विविहाणि—बंधसमुप्पत्तियाणि इदसमुप्पत्तियाणि इदइद
 समुप्पत्तियाणि । ‘सम्भस्योराणि बंधसमुप्पत्तियाणि । ‘इदसमुप्पत्तियाणि असंसख
 गुणाणि । ‘इदइदसमुप्पत्तियाणि असंसखगुणाणि । ‘साल्लसकाय-जयणोक्कसायार्ण
 मिच्छतस्तेष विविहा हाणवरुवणा कायम्बा ।

एवमशुभागे पि अ पदं तस्त अत्यपरुवणा समत्ता ।



(१) इ० २१५। (२) इ २१५। (३) इ २१६। (४) इ २१७। (५) इ २१८। (६) इ २१९।
 (७) इ २२०। (८) इ २२०। (९) इ २२१। (१०) इ २२१। (११) इ २२२। (१२) इ २२२।
 (१३) इ २२३। (१४) इ २२४। (१५) इ २२४।

१णाणाजीवेहि कालो । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहएणेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पत्तिदोवमस्स असंखेज्जटिभागो । एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाण । २सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणु-भागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा ।

३मिच्छत्त-अट्टकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मिया केवचिर कालादो होंति ? सव्वद्धा । सम्मत्त-अणंताणुबंधिचत्तारि-चट्टुसंजलण--तिवेदाण जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ । ४उक्कस्सेण सखेज्जा समया । णवरि अणंताणुबंधीणमुक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जटिभागो । सम्मामिच्छत्त-अएणोकसायाण जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

५णाणाजीवेहि अंतरं । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । ६एव सेसकम्माणं । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण णत्थि अंतरं ।

७जहण्णाणुभागकम्मंसियंतरं णाणाजीवेहि । मिच्छत्त-अट्टकसायाणं णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त--लोभसंजलण--अण्णोकसायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसियाणमंतरं केवचिर कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण छम्मासा । ८अणंताणु-बंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । इत्थि-णवुंसयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि । ९तिसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण वस्स सादिरेय ।

१०अप्पावहुअमुक्कस्सयं जहा उक्कस्सबंधो तहा । ११णवरि सव्वपच्छा सम्मामिच्छत्त-मणंतगुणहीणं । १२सम्मत्तमणंतगुणहीणं ।

जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियदंडओ । सव्वमंदाणुभागं लोभसंजलणस्स अणुभाग-संतकम्मं । मायासंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुण । १३माणसजलणस्स अणुभाग-संतकम्ममणंतगुणं । कोधसजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । सम्मत्तस्स जहण्णाणु-भागसंतकम्ममणंतगुण । १४पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १५इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । १६णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । सम्मा-

(१) पृ० २३३ । (२) पृ० २३४ । (३) पृ० २३६ । (४) पृ० २३७ । (५) पृ० २४१
 (६) पृ० २४२ । (७) पृ० २४४ । (८) पृ० २४५ । (९) पृ० २४६ । (१०) पृ० २४६ ।
 (११) पृ० २५८ । (१२) पृ० २५९ । (१३) पृ० २६० । (१४) पृ० २६१ । (१५) पृ० २६२
 (१६) पृ० २६३ ।

मिच्छतस्त जहण्णाशुभागो अणंतगुणो । अणंताशुबंधिमाणजहण्णाशुभागो अणंतगुणो ।
 कोपस्त जहण्णाशुभागो विसैसाहिमो । मायाए जहण्णाशुभागो विसैसाहिमो ।
 क्षेमस्त जहण्णमो अणुभागो विसैसाहिमो । इस्सस्त जहण्णाशुभागा अणंतगुणो ।
 रदीए जहण्णाशुभागा अणंतगुणो । दुगुद्धाए जहण्णाशुभागो अणंतगुणो । मयस्त
 जहण्णाशुभागो अणंतगुणा । सोगस्त जहण्णाशुभागो अणंतगुणो । अरदीए
 जहण्णाशुभागो अणंतगुणो । मयच्चत्वाणमाणस्त जहण्णाशुभागो अणंतगुणा ।
 कोपस्त जहण्णाशुभागो विसैसाहिमो । मायाए जहण्णाशुभागा विसैसाहिमा ।
 क्षेमस्त जहण्णाशुभागा विसैसाहिमा । पत्तरत्वाणमाणस्त जहण्णाशुभागो अणंतगुणो ।
 कोपस्त जहण्णाशुभागो विसैसाहिमा । मायाए जहण्णाशुभागो विसैसाहिमा ।
 क्षेमस्त जहण्णाशुभागो विसैसाहिमो । मिच्छतस्त जहण्णाशुभागा अणंतगुणो ।

गिरयगईए जहण्णयमशुभमसंतकम्म । सध्वमंदाशुभाग सम्मत्तं । सम्मामिच्छ-
 तस्त जहण्णाशुभागो अणंतगुणो । अणंताशुबंधिमाणस्त जहण्णाशुभागा अणंतगुणो ।
 कोपस्त जहण्णाशुभागो विसैसाहिमा । मायाए जहण्णाशुभागो विसैसाहिमो । क्षेमस्त
 जहण्णाशुभागो विसैसाहिमो । सेसाभि अपरा सम्मादिदीए बंध तथा णद्व्याणि ।

अथा बंधे सुमगार-पदणित्तसेव-बद्धीयो तथा संतकम्म वि कायम्भाओ ।

संतकम्महाणाणि तिविहाणि—बंधसमुत्पत्तिपाणि इदसमुत्पत्तिपाणि इदइद
 समुत्पत्तिपाणि । "सम्पत्त्यावाणि बंधसमुत्पत्तिपाणि । "इदसमुत्पत्तिपाणि इदइद
 गुणाणि । "इदइदसमुत्पत्तिपाणि असंसेज्जगुणाणि । "साकसच्चय-अरणोक्कसायणं
 मिच्छतस्तसेव तिविहा णणवत्तणा कायम्भा ।

एवमशुभागं धि र्भं पदं तस्त अत्परत्तणा समया ।

^१णाणाजीवेहि कालो । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहएणेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पत्तिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाण । ^२सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणु-भागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा ।

^३मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा । सम्मत्त-अणंताणुबंधिचत्तारि-चट्ठसंजलण--तिवेदाण जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णेण एगसमओ । ^४उक्कस्सेण संखेज्जा समया । णवरि अणताणुबंधीणमुक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सम्मामिच्छत्त-अणोकासायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसिया केवचिरं कालादो होंति ? जहण्णुकस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

^५णाणाजीवेहि अतरं । मिच्छत्तस्स उक्कस्साणुभागसंतकम्मंसियाणमतरं केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । ^६एव सेसकम्माणं । णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि अंतरं ।

^७जहण्णाणुभागकम्मंसियंतरं णाणाजीवेहि । मिच्छत्त-अट्ठकसायाणं णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त--लोभसंजलण--अणोकासायाणं जहण्णाणुभागकम्मंसियाणमंतर केवचिर कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण अण्मासा । ^८अणंताणु-बंधीणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । इत्थि-णवुंसयवेदजहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि । ^९तिसंजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णाणुभागसंतकम्मियाणमतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणेण एगसमओ । उक्कस्सेण वस्स सादिरेय ।

^{१०}अप्पावहुअमुक्कस्सयं जहा उक्कस्सबंधो तहा । ^{११}णवरि सव्वपच्छा सम्मामिच्छत्त-मणंतगुणहीणं । ^{१२}सम्मत्तमणंतगुणहीणं ।

जहण्णाणुभागसंतकम्मंसियदंडओ । सव्वमंदाणुभागं लोभसंजलणस्स अणुभाग-संतकम्मं । मायासंजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुण । ^{१३}माणसजलणस्स अणुभाग-संतकम्ममणंतगुणं । कोधसजलणस्स अणुभागसंतकम्ममणंतगुणं । सम्मत्तस्स जहण्णाणु-भागसंतकम्ममणंतगुण । ^{१४}पुरिसवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । ^{१५}इत्थिवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । ^{१६}णवुंसयवेदस्स जहण्णाणुभागो अणंतगुणो । सम्मा-

(१) पृ० २३३ । (२) पृ० २३४ । (३) पृ० २३६ । (४) पृ० २३७ । (५) पृ० २४१
(६) पृ० २४२ । (७) पृ० २४४ । (८) पृ० २४५ । (९) पृ० २४६ । (१०) पृ० २४६ ।
(११) पृ० २५८ । (१२) पृ० २५९ । (१३) पृ० २६० । (१४) पृ० २६१ । (१५) पृ० २६२
(१६) पृ० २६३ ।

७ जयप्रकाशगत-विशेषसम्पत्सूची

अ	अडक	११३	छायापरकनद्या	१११	वित्तशोधना	२०८		
	असुभय	१	द	देसपारि	११	विलेखिहास	१८०	
	असुभागाडक	१११	प	पश्चिमसै।	१७	स	सम्प।	११३
	असुभयविहारी	२		पश्चिमसेवपरकनद्या	१११		सम्पपारि	३, १३
प	उपकसुभापत्रि	११६	फ	कदम	१७८		सुसुभयिग्येवकनद्यासु	
	उत्तरपत्रि	१२३	ब	बंशहास	१६३		भगवाद्या	१४२
	उत्तरपत्रिअसुभागाविहारी	२	म	मन्मसुत्तरिण	१११	ह	हस्तमुत्पत्ति	११३ १११
				महात्मेवपारिवहैव	११		हस्तमुत्पत्ति	१११
क	कदम	११४		मूलमयविअसुभागाविहारी			हस्तमुत्पत्तिकर्तकम्माडास	१६३
ख	कन्या	२०८	ब	बन्दा	१४४		हस्तमुत्पत्तिकर्तक-	
घ	पारि	११५		बन्दा	१४८ १४८		कम्माडास	११३
च	परिमत्तमनकर्तकमन्त्र	११३		पत्रि	११६			
ट	हास	११५		पत्रिपरकनद्या	१११			

२ अवतरण-सूची

अवतरण	पृष्ठ	अवतरण	पृष्ठ	अवतरण	पृष्ठ
अग्रतभागवद्विक्रय	३३३	ए० छत्र समाप्ता (अपूर्णा)	३३१	जत्स यामागोदनेदगीय	३४०

३ ऐतिहासिक नामसूची

आ आर्यमल्लु	३८८	ज जम्बूस्वामी	३८८	ल लोहार्य	३८८
उ उच्चारणाचार्य २,	१५१	न नागहस्ति	३८८	व वर्धमान दिवाकर	३८८
	२०५	य यतिवृषभाचार्य	१२१,		
ग गुणधर आचार्य	३८८	यतिवृषभ	१५१,		
गीतम	३८८	१५७, १७६, २७१, ३८८			

४ भौगोलिक नामसूची

विपुलगिरि ३८८

५ ग्रन्थनामोल्लेख

उच्चारणा १७६, १८६,	क कपायप्रामृत ३८७, ३८८	म महान्व	१३३, १३५
१०५, २०२, २१०, २१६	च चूर्णिसूत्र १६५, २०२,	महान्व सूत्र	३८७
२३५, २३८, २४२,	२१०, २१८, २३४, २३८		
२४७, २७३	२५८, २७१, २७२		
	२७३, ३८८		

६ चूर्णिसूत्रगत-शब्दसूची

अ अकम्भ २१४	अणुकस्वाणुभागसत	१५०, १५१, १६१ १६४,
अट्टकसाय १६४, १६३,	कम्मिअ १८६	१६५, १६६, १६८, १७१.
२०६, २३६	अणुभागकंहय १६५	१७२, २५६, २६०, २६७
अट्टपद २१४	अणुभागखंहय १७५,	अर्थात्तगुण २५६, २६०,
अणुकस्वाणुभाग २१४,	अणुभागविहत्ती २	२६१, २६२, २६३,
२१६, २१८	अणुभागसंतकम्म १३०,	२६४, २६६, २६७
अणुकस्वाणुभागसंतकम्म	१३१, १३२ १३६, १३६	२६८, २६९, २७०,
१८६	१४३, १४४, १४६, १४६,	अणुत्तगुणहीय २५८, २५९

जहण्यागुभागसतकभिन्न	१६०, १६३, २३६
जहण्यागुभागसतकभिन्न	यतर २०६, २०८ २०९
	२१०
जहण्यागुभागसतकभिन्न	दृश्य २५६
जहण्यागुभागसतकभिन्न	१८६, १८९
	१६३, २३७
जहा	२५६, २७०, २७३
जहापयति	२०२
जीय	२१५ २१६ २१७
ट	हाथ १४४
	हाथसण्णा १३५
ण	शायणोक्त्याय १३०, १६०
	१७७, १८७, २०१
	शयति २३७, २५८
	शयु सयवेद १५०, १७५,
	२६३
	शायणानीय २१३, २३३
	शिर्यगदि १७५, २६६
त	तहा २५६, २७०, २७३
	तिहाणिय १४६
	तिविद ३३०
	तिवेद १६३, २३६
	तेहृदिश्र १५८, १६३
द	दारुश्रसमाण १३०
	दुगु च्छा २३६
	हुडाणिय १३२, १३६,
	१४३, १४४, १५६,
	देसघादि १३२ १४३
	१४६, १४८, १४९, १५१
	देसघादिफहय १२६
	दसणमोहकखवग १६०
प	पक्षखाण्यमाण २६८
	पञ्जत १६३
	पढमसमयसञ्जुत १६६
	पदणिकखेव २७३
	पयदि २१४

पगद	२१४
पन्थगा	१२६
पनिदोषम	२३३
पुरिखेद	१४६, १७०,
	१७३, २६३
क	कपय १२६
ग	कटय १६३
	कादरकसाय १३०, १४०
	१७७
	पक्ष २७०, २७३
	समसमुपनिय ३३० ३३०
भ	भग २६६
	भुजगार २७३
	भंग २१८
	भंगदिश्र २१३
म	मगुस्तो ग्यादियदेय १५६
	माया नायाजलण १७१
	मायासजलण २६०
	माया २६४, २६८, २७०
	मायासंजलण २५६
	मिच्छत १३१, १३६
	१५७, १६१, १७१, १८५,
	१६२, २०१, २०८,
	२१५, २३३, २३६,
	२६८
	मूलपयदिश्रगुभागविहति २
र	रदि २६६
ल	लोग २०६
	लोम २६४ २६८, २७०
	लोमसजलण १७१, २५६
व	वट्टमाण १६५, १७५
	वट्टि २७३
	विसेसादिश्र २६३, २६४,
	२६७, २६८, २७०
	विहत्तिय २१६, २१७
	वेहृदिय १५८, १६३
	वेहृदियद्विसागरोवम १८८
स	सण्णा १३५
	सण्णी १५८, १६३
	समय २३७

गमण	१२६ १४३,
	१६०, १६५, १८७,
	१६३, २००, २१७
	२३३, २३४, २३६,
	२५६, २१० २६६,
गमणादिदि	२७०
गमणादिद्वय	१३०, १३१
	१४४, १६०, १६१,
	१७८, १८७ १६३,
	२००, २१७, २३३,
	२३४, २३७, २५८,
	२६३, २६३,
गमणादिद्वयगुभाग	१४४
गम	२१५, २१६
	२१७, २१८,
गम्यादि	१३०, १३२
	१३६, १३६, १४४,
	१४६ १५०, १५१,
सयतय	१७६
सयतयाय	३३२
सयदा	२३५, २३६
सयपन्था	२१८
सयमदागुभाग	२५६ २६६
सादिरिय	१८८
सामित्त	१५०
सिया	२१५, २१६,
	२१७, २१८
सुहुम	१६१, १६३
सेस	२०६, २१७
	२३३, २७०
सोग	२६७
सोलसकसाय	१६०, १८७
	२०१
सखेज्ज	२३७
सतकम्म	२७३
सतकम्महाण	३३०
ह	हदसमुपपचियकम्म १६३,
	१७५
	हदहदसमुपपचिय ३३०
	हस्स २६५

७ अथपञ्चलागत विशेषशब्दसूची

अ	आह्वय	३३३	आद्यपरस्मया	३३३	किर्तयेन्वा	२ ८	
	आहुम्या	२	इ	इत्थादि	१३	वित्थोहिहाय	३८
	आहुमागङ्गा	३३३	प	परबिन्से।	१ ७	स	सम्प।
	आहुम्यागङ्गादि	२		परबिन्सेवपरस्मया	३३३		सम्पदि
उ	उक्तपुत्रादि	३३३	फ	कश्च	३३३		मुमुक्षुगोदधदवाहु
	उत्तरपदि	१०३	य	कश्चिदाद्य	१२३		माम्हाद्य
	उत्तरपदिआहुमागङ्गादि	२		कश्चिन्सेव	३३३	इ	इत्तमुत्पदि १२३ ३३३
			म	महात्थेनवादिनदेव	१५		इत्तमुत्पदि
क	कश्च	३३४		महात्थेनवादिनदेवदि	२		इत्तमुत्पदिपञ्चलागता
ख	कश्चि	२०८	व	कश्च	३४४		इत्तमुत्पदिपञ्चलागता
घ	कादि	३३५		कश्चिन्वा	३४४ ३४८		इत्तमुत्पदिपञ्चलागता
च	कारिमतमवच्छेदप्रमत् १२९			कश्चि	३३५		इत्तमुत्पदिपञ्चलागता
ट	हाय	३३५		कश्चिपरस्मया	३३९		इत्तमुत्पदिपञ्चलागता